# BIBLIOTHECA INDICA:

## COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY

## THE ASIATIC SOCIETY OF BENGAL

---

# THE TATTVA-CHINTÁMAṆI

BY

GANGES'A UPÁDHYÁYA.

PART II.

ANUMÁNA KHAṆḌA

FROM ANUMITI TO BÁDH

FROM THE COMMENTARIES OF

MATHURÁNÁTHA TARKAVÁGI'S'A

EDITED BY

PANDIT KÁMÁKHYÁ NÁTHA TARKAVÁGI'S'A

PROFESSOR, SANSKRIT COLLEGE, CALCUTTA.

---

शकाब्दाः १८१४ । इं

TA:

ST MISSION PRESS.

[redacted]

# तत्त्वचिन्तामणौ

## अनुमानखण्डं

अनुमित्यादिबाधान्तं ।

श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचितं ।

श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचित-रहस्यनामकटीकासहितं ।

आसियाटीक-सोसाइटी-समाजानुमत्या

संस्कृतविद्यालयाध्यापक-

श्रीकामाख्यानाथतर्कवागीशेन

परिशोधितम् ।

कलिकाताराजधान्यां

व्याप्तिस्-मिशनयन्त्रे मुद्रितं ।

शकाब्दाः १८१४ । इं १८९२ ।

## शुद्धिपत्रं।

| अशुद्धं। | शुद्धं। | पृष्ठं। | पङ्क्तिः। |
|---|---|---|---|
| परामर्शौ | परामर्शो | २ | २ |
| निश्चयो | निश्चये | २१ | २ |
| साध्यभाव | साध्याभाव | ३१ | २ |
| साध्यासामान्यीय | साध्यसामान्यीय | ३१ | ८ |
| तदवृत्तित्व | तद्वदवृत्तित्व | ४० | २ |
| भदेना | भेदेना | ४८ | १० |
| घटाद्यभावत्वेव | घटाद्यभावस्यैव | ५६ | २ |
| कारणत्यन्ता | कारणत्वत्यन्ता | १०५ | १ |
| रहस्य | रहस्ये | १२३ | ३ |
| योगाभावे | योजनाभावे | १६२ | २० |
| सान | साधन | १६२ | २० |
| ,च | च– | १६७ | १ |
| च कास्तीति | चकास्तीति | १७० | १४ |
| तद्दा | तर्ह्यां | १७१ | ७ |
| माभूत् | मा भूत् | १८८ | ८ |
| उपधी | उपाधी | १९६ | ६ |
| विद्यमान | विद्यमानः | १९६ | ६ |
| संसर्गाग्रहो | संसर्गाग्रहो | २०० | १२ |
| पाकप्राकजत्व | प्राकपाकजत्व | २०४ | ११ |
| “व्याप्यते,” | “व्याप्यते | २३१ | १ |

| अशुद्धं। | शुद्धं। | पृष्ठं। | पङ्क्तिः। |
|---|---|---|---|
| त्याशङ्क्यतेचेति .. | त्याशङ्क्यते च," इति | २३२ .. | ३ |
| व्याघातनिवृत्त्या .. | व्याघातनिवर्त्त्या .. | २३३ .. | १६ |
| ृथिवी .. .. | पृथिवी .. .. | २३७ .. | १० |
| स्ततदुभाभ्यां.." .. | स्तदुभाभ्यां .. | २४० .. | १२ |
| सत्त्येथं: .. .. | सत्त्येत्यर्थः .. | २५३ .. | ७ |
| तत्पुषीय .. .. | तत्पुरुषीय .. | २५५ .. | १६ |
| घटकतयैव .. .. | घटकतयैव .. | २६६ .. | २१ |
| मध्यत्वच्च .. .. | साध्यत्वञ्च .. | २७८ .. | १७ |
| भगवज .. .. | भगवज् ... .. | २८६ .. | १४ |
| भावत्वन .. .. | भावत्वेन .. .. | ३३३ .. | ६ |
| रहस्य .. .. | रहस्ये .. .. | ३३५ .. | १४ |
| भिचारस्य .. .. | व्यभिचारस्य .. | ३५० .. | १३ |
| पाधित्वा .. .. | उपाधित्वा .. | ३५६ .. | १६ |
| न्यथा .. .. .. | न्येषा .. .. | ३५८ .. | १ |
| यदेत्यर्थकः' .. .. | 'यदेत्यर्थकः, .. | ३६० .. | ६ |
| वच्छे .. .. .. | वच्छे- .. .. | ३७१ .. | १ |
| गुणाप्यत्वे .. .. | गुणान्याप्यत्वे .. | ४०४ .. | ४ |
| निरूपयितुं .. .. | निरूप्य .. .. | ४०८ .. | १६ |
| प्रमामानु .. .. | प्रमानु .. .. | ४६३ .. | ६ |
| व्याप्ति स्मरणा .. | व्याप्तिस्मरणा .. | ४७२ .. | १२ |
| तदानी .. .. | तदानीं .. .. | ४७० .. | १ |
| असधारणां .. .. | असाधारणां .. | ४७६ .. | १२ |
| कथ .. .. .. | कथं .. .. | ५१४ .. | १८ |
| वा नुमि .. .. | वानुमि .. .. | ५२० .. | १७ |
| केवलान्वयि .. .. | केवलान्वयि .. | ५६२ .. | ४ |

| विषयः । | पृष्ठं । |
|---|---|
| हेत्वाभाससामान्यलक्षणं .. .. .. .. | ७६२ |
| सव्यभिचारपूर्व्वपक्षः .. .. .. .. | ७८४ |
| सव्यभिचारसिद्धान्तः .. .. .. .. | ८१६ |
| साधारणपूर्व्वपक्षः .. .. .. .. | ८१९ |
| साधारणसिद्धान्तः .. .. .. .. | ८२३ |
| असाधारणपूर्व्वपक्षः .. .. .. .. | ८२५ |
| असाधारणसिद्धान्तः .. .. .. .. | ८२९ |
| अनुपसंहारिपूर्व्वपक्षः .. .. .. .. | ८३२ |
| अनुपसंहारिसिद्धान्तः .. .. .. .. | ८३८ |
| विरुद्धपूर्व्वपक्षः .. .. .. .. .. | ८४२ |
| विरुद्धसिद्धान्तः .. .. .. .. .. | ८५५ |
| सत्प्रतिपक्षपूर्व्वपक्षः .. .. .. .. | ८६५ |
| सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तः .. .. .. .. | ८७१ |
| असिद्धिपूर्व्वपक्षः .. .. .. .. .. | ८९७ |
| असिद्धिसिद्धान्तः .. .. .. .. | ९१९ |
| बाधपूर्व्व पक्षः .. .. .. .. .. | ९३८ |
| बाधसिद्धान्तः .. .. .. .. .. | ९६० |

| अशुद्धं । | शुद्धं । | पृष्ठं । | पङ्क्तिः |
|---|---|---|---|
| काग्रान्ता | काग्रात्यन्ता | ५६३ | १ |
| प्रतित्वात् | प्रतियोगित्वात् | ५७६ | ६ |
| वज्रादि | वज्राग्रादि | ५८६ | ३ |
| श्रीदू | श्रीमद्भ | ६०३ | ३ |
| प्रनाण्यक | प्रामाण्यक | ६०३ | ११ |
| परमान्व | परमाण्व | ६०५ | ६ |
| परमानु | परमाणु | ६०५ | १६ |
| तद्भूत | उद्भूत | ६०७ | २० |
| पराणु | परमाणु | ६०८ | १२ |
| विशेषश्च | विशेष | ६२६ | ५ |
| व्यवृत्ता | व्यावृत्ता | ६३७ | ६ |
| नागत्या | नायत्या | ६४७ | १२ |
| प्रमाणति | प्रमाणेति | ६६० | १६ |
| मापाद्य | मुपपाद्य | ६७५ | १२ |
| मर्थापत्तिः | अर्थापत्तिः | ६७७ | १७ |

| विषयः। | | | | | पृष्ठं। |
|---|---|---|---|---|---|
| उपाधिदूषकतावीजपूर्व्वपक्षः | .. | .. | .. | | ३८३ |
| उपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तः | .. | .. | .. | | ३९३ |
| उपाध्याभासनिरूपणं | .. | .. | .. | .. | ३९८ |
| पक्षतापूर्व्वपक्षः | .. | .. | .. | .. | ४०७ |
| पक्षतासिद्धान्तः | .. | .. | .. | .. | ४३२ |
| परामर्शपूर्व्वपक्षः | .. | .. | .. | .. | ४४२ |
| परामर्शसिद्धान्तः | .. | .. | .. | .. | ४९३ |
| केवलान्वय्यनुमानपूर्व्वपक्षः | .. | .. | .. | .. | ५५२ |
| केवलान्वय्यनुमानसिद्धान्तः | .. | .. | .. | .. | ५७२ |
| केवलव्यतिरेक्यनुमानपूर्व्वपक्षः | .. | .. | .. | | ५८२ |
| केवलव्यतिरेक्यनुमानसिद्धान्तः | .. | .. | .. | | ६०४ |
| संशयकरणकार्थापत्तिपूर्व्वपक्षः | .. | .. | .. | | ६४५ |
| संशयकरणकार्थापत्तिसिद्धान्तः | .. | .. | .. | | ६५८ |
| अनुपपत्तिकरणकार्थापत्तिः | .. | .. | .. | | ६७३ |
| अवयवविभागः | .. | .. | .. | .. | ६८९ |
| न्यायलक्षणं | .. | .. | .. | .. | ६९१ |
| अवयवलक्षणं | .. | .. | .. | .. | ६९८ |
| प्रतिज्ञालक्षणं | .. | .. | .. | .. | ७०३ |
| हेतुलक्षणं | .. | .. | .. | .. | ७२५ |
| अन्वयिहेतुलक्षणं | .. | .. | .. | .. | ७३५ |
| व्यतिरेकिहेतुलक्षणं | .. | .. | .. | .. | ७३७ |
| उदाहरणसामान्यलक्षणं | .. | .. | .. | .. | ७४० |
| उदाहरणविशेषलक्षणं | .. | .. | .. | .. | ७४१ |
| उपनयसामान्यविशेषलक्षणानि | .. | .. | .. | | ७४९ |
| निगमनलक्षणं | .. | .. | .. | .. | ७५२ |

# तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे अनुमित्यादि-बाधान्तभागस्य सूचीपत्रं।


| विषयः। | पृष्ठं। |
|---|---|
| अनुमित्यनुमानलक्षणं | २ |
| अनुमानप्रामाण्यं | २१ |
| व्याप्तिपञ्चकं | ३० |
| सिंह-व्याघ्रव्याप्तिलक्षणं | ४९ |
| व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभावः | ५३ |
| व्याप्तिपूर्व्वपक्षः | ६९ |
| व्याप्तिसिद्धान्तलक्षणं | १०० |
| सामान्याभावः | १२४ |
| विशेषव्याप्तिः | १३० |
| अतएव चतुष्टयं | १६५ |
| व्याप्तिग्रहोपायपूर्व्वपक्षः | १७४ |
| व्याप्तिग्रहोपायसिद्धान्तः | २१० |
| तर्कनिरूपणं | २१९ |
| व्याप्त्यनुगमः | २४३ |
| सामान्यलक्षणापूर्व्वपक्षः | २५३ |
| सामान्यलक्षणासिद्धान्तः | २८३ |
| उपाधिवादपूर्व्वपक्षः | २९४ |
| उपाधिवादसिद्धान्तः | ३३६ |
| उपाधिविभागः | ३७८ |

ॐ नमः शिवाय ।

# तत्त्वचिन्तामणौ

## अनुमानाख्यद्वितीयखण्डम् ।

प्रत्यक्षोपजीवकत्वात् प्रत्यक्षानन्तरं बहुवादिसम्मतत्वादुपमानात् प्रागनुमानं निरूप्यते ।

---

## अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्यम् ।

न्यायाम्बुधिकृतसेतुं हेतुं श्रीराममखिलसम्पत्तेः ।
तातं त्रिभुवनगीतं तर्कालङ्कारमादरान्नत्वा ॥
श्रीमता मथुरानाथ-तर्कवागीशधीमता ।
विशदीकृत्य दर्श्यन्ते द्वितीयमणिफक्किकाः ॥

आन्वीक्षिकीपण्डितमण्डलीषु
सत्ताण्डवैरध्ययनं विनापि ।
मदुक्तमेतत् परिचिन्त्य धीराः
निःशङ्कमध्यापनमातनुध्वम् ॥

यद्यपीदं बहुभिर्बहुषु बहुधा चर्व्वितं श्रूयते च कैश्चित् सामा-[illegible]ा हेत्वाभासान्तं, तथापि तन्मानास्थानविततमशेषाप्रकाशकं बहु-

तत्र व्याप्तिविशिष्ट-पक्षधर्म्मताज्ञानजन्यं ज्ञानमनुमितिस्तत्करणमनुमानं तच्च लिङ्गपरामर्शो न तु परामृश्यमाणं लिङ्गमिति वक्ष्यते।

---

तरकुतर्कसम्वलितमसाम्प्रदायिकज्ञातो व्यामोहायैव केवलं सर्व्वेषां भवतीति सर्व्वार्थजिघृक्षया रत्तर्कमामूलंव्याख्याय वैशद्याय च ममात्र परं निर्व्बन्धः। प्रत्यक्षं निरूपितमिदानीं अनुमानं निरूपणीयमतः शिष्यावधानाय[१] प्रतिजानीते[२], 'प्रत्यक्षानन्तरमित्यादिना, अन्यथा[३] अरण्यरुदितं स्यादिति भावः[४]। 'प्रत्यक्षानन्तरं' प्रत्यक्षनिरूपणानन्तरं, 'उपमानात् प्राक्' उपमाननिरूपणात् प्राक्, 'अनुमानं निरूप्यते' इत्यन्वयः, 'निरूप्यते' लक्षण-स्वरूप-प्रामाण्यादिभिर्ज्ञाप्यते, लक्षण-स्वरूप-प्रामाण्यादिप्रकारकज्ञानानुकूलव्यापारविषयोऽनुमानमित्यर्थः। व्यापारः शब्दप्रयोग एव, तद्विषयता व्यापारानुबन्धिन्येव। प्रत्यक्षग्रन्थानुमानग्रन्थयोरेकवाक्यताप्रति-

---

(१) शिष्यशुश्रूषायै इत्यर्थः।

(२) प्रतिज्ञा च अव्यवहितोत्तरकालकर्त्तव्यत्वप्रकारकबोधानुकूलव्यापारः, तादृशव्यापारश्च प्रत्यक्षानन्तरमित्यादि निरूप्यते इत्यन्तं व वर्त्तमानसामीप्यविहितलटा निष्पन्नेन निरूप्यते इति वाक्येन प्रयोगाकरणकालाव्यवहितोत्तरकालीनत्वेन निरूपणबोधनात्।

(३) निरूपणस्य प्रतिज्ञापूर्व्वकत्वाभावे।

(४) अरण्यरोदनं यथा निष्फलं तथा तादृशनिरूपणं स्यात्।

पत्तये प्रत्यक्षानुमानयोः सङ्गतिलक्षपेण सङ्गतिमपि दर्शयति, 'प्रत्यक्षोपजीवकत्वादिति अनुमानस्य प्रत्यक्षकार्य्यत्वादित्यर्थः। भवति हि व्याप्तिज्ञानात्मकमनुमानमिन्द्रियात्मकप्रत्यक्षफलमिति भावः। अत्र ज्ञानजन्यजिज्ञासाप्रयोज्यत्वं पञ्चम्यर्थः, अन्वयश्चास्य प्रत्यक्षानन्तरनिरूपणे, तथाच प्रत्यक्षोपजीवकत्वज्ञानजन्यजिज्ञासाप्रयोज्यप्रत्यक्षानन्तरनिरूपणविषयोऽनुमानमित्यर्थः। एतेन सङ्गतिलक्षपेण सङ्गतिर्दर्शिता, अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकज्ञानविषयत्वं हि सङ्गतित्वं, तथाचानन्तराभिधाने प्रत्यक्षकार्य्यत्वज्ञानजन्यजिज्ञासाप्रयोज्यत्वग्रहे प्रत्यक्षकार्य्यत्वेऽपि अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकज्ञानविषयत्वग्रहात् तुल्यवित्तिवेद्यत्वेन उत्तरकालं मानसबोधसम्भवात्। एकवाक्यत्वञ्च एकप्रयोजनप्रयोजनकप्रतिपत्तिविषयार्थकत्वं, पूर्व्वग्रन्थार्थप्रतिपत्तिप्रयोजनप्रयोजनकप्रतिपत्तिविषयार्थकत्वमिति यावत् प्रयोजनन्तु परम्परया मुक्तिरेव। एकवाक्यताप्रतिपत्तौ च सङ्गतिप्रदर्शनं लिङ्गज्ञानविधया हेतुः, यत् यत्सङ्गतिमत्प्रतिपादकवाक्यं भवति तत्तत्प्रतिपादकग्रन्थेनैकवाक्यं भवति यथा सन्निकर्षादिग्रन्थ एव प्रत्यक्षकार्य्यत्वैककार्य्यकारित्वादिसङ्गतिमत्प्रतिपादकवाक्यं भवति प्रत्यक्षप्रदिपादकग्रन्थेनैकवाक्यमपि भवतीति व्याप्तेः। न चैतादृशैकवाक्यताप्रतिपत्तिर्न प्रकृतोपयोगिनीति वाच्यम्। तत्प्रतिपत्तेः प्रत्यक्षग्रन्थप्रयोज्यफलेच्छावतोऽनुमानग्रन्थप्रवृत्तावुपयोगित्वात्। नन्वनुमाने प्रत्यक्षोपजीवकत्ववच्चक्षुराद्यात्मके प्रत्यक्षेऽप्यनुमानोपजीवकत्वस्याविशिष्टतया अनुमाननिरूपणानन्तरं प्रत्यक्षनिरूपणापत्तिः। भवति हि कार्य्यमात्रेऽदृष्टस्य हेतुतया चक्षुराद्यावप्यदृष्टं हेतुः तच्चादृष्टं

दीपदानादौ प्रवृत्त्या, तत्प्रवृत्तिश्च दीपदानादौ स्वेष्टसाधनताद्यनुमानादित्यदृष्टद्वारा चक्षुरादिकमनुमानोपजीवकं। न चादृष्टाद्वारकोपजीवकत्वमेव सङ्गतिरिति वाच्यम्। स्वेष्टसाधनतानुमितिहेतुकप्रवृत्त्यादिक्रमेण घर्षणादिजनितायां खण्डचक्षुरादिव्यक्तावदृष्टद्वारापि परम्परयानुमानोपजीवकत्वसत्त्वात्। न च प्रवृत्त्यद्वारकं जन्यत्वरूपं वा[१] उपजीवकत्वमेव सङ्गतिरिति वाच्यम्। मनसोऽनुमानत्वनये आत्ममनःसंयोगस्य निर्व्विकल्पादिद्वारा प्रत्यक्षप्रमितिकरणत्वेन प्रत्यक्षप्रमाणरूपस्य साक्षान्मनोरूपानुमानजन्यत्वेन तादृशानुमानोपजीवकत्वस्यापि प्रत्यक्षे सत्त्वात्। एतेन यत्किञ्चित्प्रमितिविभाजकोपाध्यवच्छिन्ननिरूपितफलोपधानात्मककरणत्वावच्छेदेन उपजीवकत्वमेव सङ्गतिः तच्चानुमान एवास्ति न तु इन्द्रियात्मकप्रत्यक्षप्रमाणे मनः-श्रवणयोरजन्यत्वात् फलोपधानात्मकत्वविवक्षणादीश्वरीयव्याप्तिज्ञानस्यास्मदाद्यनुमितिस्वरूपयोग्यकरणत्वेऽपि[२] अनुमाननिष्ठप्रत्यक्षोपजीवकत्वस्य न सङ्गतित्वहानिरित्यपि प्रत्युक्तम्। मनसोऽनुमितिकरणत्वनयेऽनुमितिकरणत्वावच्छेदेनापि प्रत्यक्षोपजीवकत्वाभावात् तादृशोपजीवकत्वस्यैव सङ्गतित्वे शब्दे उपमानोपजीवकत्वस्याप्यसङ्गतित्वापाताच्च व्यवहारादितोऽपि शक्तिग्रहात् शाब्दधीकरणत्वावच्छेदेनोपमानोपजीवकत्वाभावादिति चेत्। न। प्रत्यक्षानुमानयोः परस्परं उपजीवकत्वाविशेषेऽपि यत् यदुपजीवकं तत् तन्निरूपणानन्तरं निरूप्यमिति नियमाभावादेव अनुमाननिरूपणानन्तरं प्रत्यक्षनिरूपण-

(१) परम्परयोपजीवकत्वं न साक्षाज्जन्यत्वमपि तु प्रयोज्यत्वमेव।
(२) स्वरूपयोग्यत्वेपीति ख०।

प्रसङ्गविरहात् प्रत्यक्षानन्तरमेव अनुमानं निरूपितं, न त्वनुमानानन्तरं प्रत्यक्षमिति अत्र स्वतन्त्रेच्छस्येति न्यायेन(१) इच्छाया एव वीजत्वादिति दिक्।

अनुमानग्रन्थोपमानग्रन्थयोरेकवाक्यताप्रतिपत्तयेऽनुमानोपमानयोरपि सङ्गतिमत्रैव दर्शयति, 'बहुवादीति। न चैतत्प्रदर्शनमनुमाननिरूपणावसर एवोचितमिति वाच्यम्। स्वतन्त्रेच्छस्य नियन्तुमशक्यत्वात्। न च तथाप्यनुमानस्य बहुवादिसम्मतत्वोत्कीर्त्तनात् कथमुपमाने सङ्गतिलाभ इति वाच्यम्। 'बहुवादिसम्मतत्वादित्यस्योपमाने बहुवादिसम्मतानुमानोपजीवकत्वादित्यर्थात्। भवति च गोसदृशो गवयपदवाच्य इत्यतिदेशवाक्यार्थज्ञानात्मकोपमाने गवादिपदशक्तिग्राहकानुमानोपजीवकत्वमिति भावः। अत्रापि ज्ञानजन्यजिज्ञासाप्रयोज्यत्वं पञ्चम्यर्थः, अन्वयस्तस्य 'उपमानादित्यत्र उपमानपदार्थे उपमाननिरूपणे।

दीधितिकृतस्तु बहुवादिसम्मतत्वोत्कीर्त्तनेनावसरस्य सङ्गतित्वं सूच्यते, तथा हि अनुमानस्य बहुवादिसम्मतत्वेन निरसनीयाल्पवादिविप्रतिपत्तिकतया बहुतरदुःखाजनकप्रतिपत्तिकत्वाद्वैव प्रथमं व्युत्पित्सोर्जिज्ञासा न तु उपमाने तस्याल्पवादिसम्मतत्वेन निरसनीयबहुवादिविप्रतिपत्तिकतया बहुतरदुःखानुबन्धिप्रतिपत्तिकत्वात्, तथाच अनुमाने प्रथमं प्रतिबन्धकीभूतग्रिथजिज्ञासोत्पत्तौ(२) तज्जि-

---

(१) स्वतन्त्रेच्छस्य पर्य्यनुयोगानर्हत्वमिति न्यायेनेत्यर्थः।

(२) उपमाननिरूपणप्रतिबन्धकीभूतग्रिथजिज्ञासोत्पत्तौ इत्यर्थः।

रूपणे च[१] तन्निरूपणस्यैवावसरसङ्गत्या उपमाननिरूपणमिति भावः इत्याहुः[२] तन्मये ज्ञानप्रयोज्यप्राथमिकजिज्ञासाप्रयोज्यत्वमत्र पञ्चम्यर्थः, अन्वयश्चास्य उपमानात् प्राङ्निरूपणे एवञ्च बहुवादिसम्मतत्वज्ञानप्रयोज्यप्राथमिकजिज्ञासाप्रयोज्योपमानप्राङ्निरूपणविषयोऽनुमानमित्यन्वय इति ध्येयम् ।

मिश्रास्तु 'प्रत्यक्षोपजीवकत्वादित्यादिः 'निरूप्यत इत्यन्तग्रन्थोऽत्र कस्यचित् कल्पितो न तु वास्तविकः पाठः । 'अथानुमानं निरूप्यते' इत्येव पाठोवास्तविकः, तावतैव सिद्ध-साध्यसमभिव्याहारबललभ्यस्य हेतु-हेतुमद्भावस्य प्रतिबन्धकीभूतजिज्ञासानिवर्त्तकसिद्धत्वकथनेनावसरस्य च सङ्गतिलाभसम्भवात्, अन्यथा शब्दखण्डेऽप्युपमानोपजीवकत्वात् उपमानानन्तरं शब्दोनिरूप्यते इत्यस्य वक्तव्यत्वापातादित्याहुः ।

अनुमिते. प्रत्यक्षादिप्रमितिभिन्नत्वज्ञानं विना अनुमितिकरणत्वेन अनुमानस्य इतरभिन्नत्वज्ञानं न सम्भवति अनुमिति-प्रत्यक्षयोरभेदग्रहात् प्रत्यक्षादिप्रमितिकरणे व्यभिचारज्ञानापत्तेः, अतः प्रथमतोऽनुमितेरितरभेदानुमापकमाह, 'तत्रेति, अतोनार्थान्तरावकाशः ।

केचित्तु अनुमितिकरणत्वमनुमानलक्षणं करणीयं, तज्ज्ञानञ्च नानुमितिज्ञानं विना सम्भवति तस्य तद्घटितमूर्त्तिकत्वा-

(१) अनुमाननिरूपणे इत्यर्थः, तन्निर्व्वचने इति ख० ।

(२) इति वदन्तीति ख० ग० ।

दतः प्रथमतोऽनुमितिं ज्ञापयति, 'तत्रेति, अतोनार्थान्तरावकाश इत्याहुः ।

'तत्र' कर्त्तव्ये लक्षणादिप्रकारकानुमाननिरूपणे, सप्तम्यर्थो-विशेषणता, अन्वयश्चास्यानुमितिरित्यनेन, तथाच कर्त्तव्यलक्षणा-दिप्रकारकानुमाननिरूपणविशेषणीभूता अनुमितिरीदृशं ज्ञान-मित्यन्वयः। 'व्याप्तिविशिष्टेति व्याप्तिविशिष्टञ्च तत् पक्षधर्मताज्ञा-नञ्चेति कर्म्मधारयः समासः, तथाच 'व्याप्तिविशिष्टं' व्याप्तिप्रकारकं, यत् 'पक्षधर्म्मताज्ञानं' हेतोः पक्षे सम्बन्धज्ञानं, तज्जन्यज्ञानमनुमिति-रित्यर्थः। भवति च पर्व्वतोवह्निमान् इत्याद्यनुमितिर्व्वह्निव्याप्यधूम-वान् पर्व्वत इत्यादिव्याप्तिप्रकारक-पक्षनिष्ठहेतुसम्बन्धज्ञानजन्येति लक्षणसमन्वयः। अत्र धूमवान् पर्वत इत्यादिकेवलपक्षधर्म्मताज्ञानजन्ये तदनुव्यवसाये धूमवत्पर्वतवान् देश इत्यादिविशिष्टवैशिष्ट्यबोधादौ चातिव्याप्तिवारणाय 'व्याप्तिप्रकारकेति। न च पक्षविशेष्यकहेतुसम्बन्ध-ज्ञानत्वेन हेतुत्वविवक्षणेऽप्येतद्दोषवारणसम्भव इति वाच्यम्। असम्भ-वापत्तेः अनुमितावपि तेन रूपेणाहेतुत्वात्। वह्निव्याप्योधूम इत्यादि-केवलव्याप्तिप्रकारकज्ञानजन्ये वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादिज्ञाने-ऽतिव्याप्तिवारणाय 'पक्षधर्म्मतेति। वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादि-परामर्शजन्ये संस्कारेऽतिव्याप्तिवारणाय चरमज्ञानपदं। ननु तथापि वह्निव्याप्यधूमवन्महानससदृशः पर्व्वतपदवाच्य इत्यतिदेशवाक्यार्थ-ज्ञानजन्यायामयं पर्व्वतपदवाच्य इत्युपमितावतिव्याप्तिः तज्जनकी-भूतस्यातिदेशवाक्यार्थज्ञानस्यायं वह्निव्याप्यधूमवन्महानससदृशः इति सादृश्यप्रत्यक्षस्य च व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्म्मताज्ञानत्वात्। ईश्वरीय-

तादृशज्ञानमादाय घटादिशाब्दबोधादौ चातिव्याप्तिः। न च व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्मताज्ञानजन्यत्वमत्र तादृशनिश्चयत्वावच्छिन्नजनकताप्रतियोगिकजन्यत्वमिति नोपमित्यादावतिव्याप्तिः तत्र तादृशनिश्चयत्वेनाहेतुत्वादिति वाच्यम्। असम्भवापत्तेः वह्निव्याप्योधूमः आलोकवान् पर्व्वतः वह्निव्याप्योधूमः धूमवान् पर्वत इत्यादि ज्ञानादप्यनुमितिप्रसङ्गादनुमितावपि तेन रूपेणाहेतुत्वात्। न च व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यत्वं पक्षविशेष्यकसम्बन्धावगाहितांशे व्याप्तिप्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्नजन्यत्वं, पक्षविशेष्यकसम्बन्धावगाहितांशे व्याप्तिप्रकारकत्वञ्च विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहित्वपर्यवसन्नमिति नासम्भवः, वह्निव्याप्योधूम आलोकवान् पर्वत इत्यादिज्ञानस्य व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहित्वाभावादनुमितौ तेन रूपेण हेतुत्वे बाधकाभावादिति वाच्यं। व्याप्तेः सामानाधिकरण्यानतिरेकितया वह्निसमानाधिकरणधूमवान् पर्वत इत्यादिज्ञानादप्यनुमितिप्रसङ्गादनुमितौ तेन रूपेणाहेतुत्वादिति चेत्। न। हेतुरधिकरणे प्रकारः, अधिकरणं वृत्तित्वे, वृत्तित्वमभावे, अभावः प्रतियोगितायां, प्रतियोगित्वमवच्छेदके, अवच्छेदकमन्योन्याभावे, अन्योन्यभावस्य साध्यतावच्छेदके, तच्च साध्ये, साध्यमधिकरणे, अधिकरणं वृत्तित्वे, वृत्तित्वं हेतौ, हेतुः पक्षे इत्याकारकविलक्षणविषयताकनिश्चयत्वावच्छिन्नजनकताप्रतियोगिकजन्यताया विवक्षितत्वात्। अत एव प्रथमज्ञानपदमपि सार्थकं संशयान्यतादृशविलक्षणविषयताकत्वेन हेतुत्वप्रवेशे असम्भवापत्तेः इच्छादितोऽपि अनुमित्युत्पादप्रसङ्गात्(१) अनुमितावपि

---

(१) अनुमित्यनुत्पादादिति क०, ख०।

तेन रूपेणाहेतुत्वात्। न चानुमितावगृहीताप्रामाण्यकतादृशनिश्चयत्वेनैव हेतुत्वाद्दोषाभाव इति वाच्यम्। विशेषण-विशेष्यभावे विनिगमकाभावेनाप्रामाण्यग्रहाभावस्य पृथगेव हेतुतया कारणतावच्छेदके तस्याप्रवेशात् तस्य प्रवेशेऽपि अधिकन्त्विति न्यायेन तादृशनिश्चयत्वस्य कारणतावच्छेदकत्वानपायाच्च। अथ तथापि वह्निव्याप्यधूमवत्पर्व्वतवान् देश इत्यादिविशिष्ट-वैशिष्ट्यप्रत्यक्षे तादृशविशिष्ट-वैशिष्ट्यशाब्दबोधे चातिव्याप्तिः दण्डो रक्तो न वेति संशये रक्तदण्डवानिति ज्ञानानुदयात् तत्तद्विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानं प्रति तत्तद्विशेषणतावच्छेदकप्रकारक-तत्तद्विशेषणनिश्चयत्वेनैव कारणतया तत्रापि यथोक्तनिश्चयत्वेन हेतुत्वादिति चेत्। न। अभावाविषयकत्वेन प्रतियोगित्वाविषयकत्वेन वा चरमज्ञानविशेषणात् यथोक्तविशिष्ट-वैशिष्ट्यप्रत्यक्षादेश्च[१] व्याप्तिघटकतया अभावादिविषयकत्वात्। न चैवं पक्षधर्मतापदवैयर्थ्यं तादृशविलक्षणव्याप्तिप्रकारताकनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिककार्य्यताश्रयाभावाविषयकज्ञानत्वस्यैव सम्यक्त्वात् वह्निव्याप्योधूम इत्यादिकेवलव्याप्तिप्रकारकज्ञानजन्यस्य वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इत्यादिज्ञानस्य व्याप्तिघटकतया[२] अभावादिविषयकत्वेनैव वारणादिति वाच्यं। असम्भवापत्तेः अनुमितिं प्रत्यपि तेन रूपेणाहेतुत्वात्. तादृशव्याप्तिप्रकारिताकनिश्चयत्वमपेक्ष्य लाघवेन ज्ञानत्वेन मनस्त्वेन वानुमितिं प्रति करणत्वात् परामर्शहेतुतयैवातिप्रसङ्गभ-

(१) यथोक्तविशिष्ट-वैशिष्ट्यबोधादेरिति ख०।

(२) व्याप्तिज्ञानात्मकतयेति क०।

ज्ञात्। अतएव ज्ञातुर्न वेति संशयोत्तरं जायमानेऽयं ज्ञातुरिति प्रत्यक्षे इदं न रजतमिति भ्रमोत्तरं जायमाने इदं रजतमित्यादिप्रत्यक्षे च ज्ञातत्त्वेण विशेषणज्ञानविधया वा ज्ञातुत्वव्याप्यवक्रकोटरादिमान् रजतत्वव्याप्यचाकचक्यविशेषवानित्यादिविशेषदर्शनस्य व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्मतानिश्चयात्मकस्य जनकत्वेऽपि नातिव्याप्तिः विशेषदर्शनस्य विपरीतविस्मयविरोधित्वेन विशेषणज्ञानत्वेन वा हेतुतया एतादृशनिश्चयत्वेनाकारणत्वात् तत्र व्याप्तेरुपनीतभानसामग्रीसत्त्वेन व्याप्तिघटकतया अभावादिविषयकत्वाच्च, न वा तमानयेत्यादौ तच्छब्देन व्याप्त्यादिविशिष्टोपस्थितिद्वारा जनिते वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतमानयेत्यादिशाब्दबोधे महावाक्यार्थज्ञानस्य पदार्थोपस्थितिविधया अवान्तरवाक्यार्थज्ञानजन्यतयोपनयार्थज्ञानजन्ये न्यायार्थज्ञाने वातिव्याप्तिः पदार्थोपस्थितेः कारणतावच्छेदकेऽतिरिक्तस्य पदज्ञानजन्यत्वस्य प्रविष्टतया निश्चयत्वस्याप्रविष्टतया च तत्रापि तादृशनिश्चयत्वेनाकारणत्वात् व्याप्तिघटकतया अभावादिविषयकत्वाच्च। नापि परामर्शानुव्यवसाये वह्निव्याप्योधूमः धूमवान् पर्वतः वह्निव्याप्योधूमः आलोकवान् पर्वत इत्यादिज्ञानानुव्यवसाये वा विषयविधया परामर्शस्य तादृशज्ञानस्य च हेतुत्वेऽप्यतिव्याप्तिः अनुव्यवसायं प्रति परामर्शादिविषयत्वेन तत्तद्व्यक्तित्वेन वा हेतुतया तत्रापि यथोक्तनिश्चयत्वेनाकारणत्वात् व्याप्तिघटकतया अभावादिविषयकत्वाच्च। एवमनुमितिवदापत्तावपि परामर्शस्य हेतुत्वेऽप्यापत्तौ नातिव्याप्तिः तत्राप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितयथोक्तनिश्चयत्वेन हेतुतया कारणतावच्छेदकेऽतिरिक्तस्याप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितत्वस्य

प्रवेशात् व्याप्तेरुपनीतभानसामग्रीसत्त्वेन व्याप्तिघटकतया तत्राप्यभा-वादिविषयकत्वाच्च। न वा वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादिविशिष्ट-स्मरणे तादृशविशिष्टानुभवस्य हेतुत्वेऽपि अतिव्याप्तिः, तस्य व्याप्तिघट-कतया अभावादिविषयकत्वात् तच्च तादृशविलक्षणविषयताकज्ञानत्वेन ज्ञानत्वेन[1] वा तादृशविशिष्टानुभवस्य हेतुतया तादृशविलक्षणविषय-ताकनिश्चयत्वेनाजनकत्वाच्च। न चैवं तादृशसंशयात् स्मृत्यापत्तिः, संस्का-राभावादेव ततः स्मरणानुत्पत्तेः संस्कारं प्रति तादृशनिश्चयत्वेनैव हेतुत्वात्। न च विनिगमकाभावः, संशयस्थले संस्कारादिकल्पना-गौरवस्यैव विनिगमकत्वादिति द्रष्टव्यं[2] न चाभावाद्यविषयकत्वेन चरमज्ञानविशेषणेऽभावादिविषयकानुमितौ अव्याप्तिः साध्य-हेत्वा-देरननुगमात् एकोपादानेऽन्यानुमितावव्याप्तिः व्यतिरेक्यनुमितौ चाव्याप्तिः तच्च यथोक्तविलक्षणविषयताकनिश्चयत्वेनाहेतुत्वादिति वाच्यम्। तादृशकार्य्यतावदभावाद्यविषयकज्ञानवृत्तिप्रत्यक्षासमवेत-धर्मसमवायित्वस्य विवक्षितत्वात्, इत्थञ्च पर्वतो वह्निमान् घटः सत्तावानित्याद्यन्वयव्याप्तिज्ञानजन्याभावाद्यविषयकानुमितिव्यक्तिमा-दायैवाभावादिविषयकानुमितौ अन्यसाध्यकानुमितौ व्यतिरेक्य-नुमितौ च लक्षणसमन्वयः तद्वृत्तितादृशधर्मस्यानुमितित्वस्य सर्वत्र सत्त्वात्। अत्र सत्ता-गुणत्व-ज्ञानत्वानुभवत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय

---

(१) स्मरणं प्रति विलक्षणसंस्कारस्य हेतुतयैवातिप्रसङ्गवारणं सम्भ-वतीति भावः।

(२) संस्कारं प्रति ज्ञानत्वेन हेतुत्वे संशयोत्तरं संस्कारापत्तिरिति भावः।

समवायसमवेतेति, कालिकसम्बन्धेनानुमितित्वस्यापि प्रत्यक्षवृत्ति-
त्वादतिव्याप्तिवारणाय समवायित्वमिति। न चैवं चरमज्ञानपदं व्यर्थं
परामर्शजन्यसंस्कारस्य व्याप्तिघटकतया अभावादिविषयकत्वेनैव वार-
णादिति वाच्यम्। समवायेन तादृशकार्य्यतावदभावाविषयकज्ञान-
वृत्तिताकाभाय तदुपादानादन्यथा जन्यमात्रस्य कालोपाधितया
कालिकसम्बन्धेन संस्कारत्व-घटत्वादेरप्यनुमितिवृत्तितया अतिव्या-
प्त्यापत्तेः। वस्तुतस्तु तादृशकार्य्यताश्रयज्ञानसमवेत-प्रत्यक्षासमवेतधर्म-
समवायित्वमेव वक्तव्यं न त्वभावाद्यविषयकत्वेन तज्ज्ञानं विशेषणीयम्।
वृक्षोरक्तो न वेति संशयोत्तरमपि रक्तत्व-तदभाववद्वृक्षवानिति
रक्तत्वांशे संशयाकारस्य रक्तत्व-तदभावविशिष्टवैशिष्ट्यविषयताकज्ञान-
स्यानुभवसिद्धतया लाघवात् तत्तद्विशेषणतावच्छेदकप्रकारकतत्तद्वि-
शेष्यज्ञानत्वेनैव विशिष्टवैशिष्ट्यबोधं प्रति हेतुतया वह्निव्याप्यधूमवत्-
पर्वतवान्देश इत्यादिविशिष्ट-वैशिष्ट्यशाब्दबोधे अतिव्याप्तिविरहात्
तत्र कारणतावच्छेदके निश्चयत्वस्याप्रवेशात् हेतुतावच्छेदकादिरूपेण
हेत्वादिभिन्नविषयकभ्रमरूपपरामर्शादप्यनुमित्युत्पत्त्या अनुमितेः
कारणावच्छेदके हेत्वादेर्न प्रवेशः, विशिष्टवैशिष्ट्यबोधस्य कारणता-
वच्छेदके च हेत्वादेरवश्यं प्रवेशः हेतुतावच्छेदकादिरूपेण हेत्वा-
विभिन्नविषयकनिश्चयात् हेतुतावच्छेदकरूपेण हेत्वादिविषयक-
विशिष्टवैशिष्ट्यबोधानुत्पत्तेरतो निश्चयत्वस्य तत्कारणतावच्छेदके प्रवे-
शेऽप्यतिव्याप्तिविरहाच्च अनुमितिं प्रति येन रूपेण परामर्शस्य
कारणता तदवच्छिन्नकारणताया एव लक्षणघटकत्वात्, आपत्तेश्च
कारणतावच्छेदकेऽप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितत्वस्याधिकस्य प्रवेशादेव वार-

त्वात् प्रत्यक्षासमवेतेत्यनेनैव वारणाच्च, इत्यञ्च परामर्शजन्यसंस्कार-वारणायैव चरमज्ञानपदं। न चाभावाद्यविषयकत्वविशेषणानुपादाने यत्र विषयविशेषे नियमतोवह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतनिश्चय एवोद्बोधकविधया हेतुः तादृशविषयविशेषे स्मृतित्वमादाय स्मृतिमात्रेऽतिव्याप्तिः तत्र लाघवात् सामान्यतोवह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतनिश्चयत्वेनैव उद्बोधकविधया हेतुत्वादिति वाच्यं। चरमज्ञानपदस्यानुभवपरत्वात् तथाच तादृशविलक्षणविषयताकनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिककार्य्यताश्रयानुभवसमवेतप्रत्यक्षासमवेतधर्मसमवायित्वमिति लक्षणं फलितमतो न कोऽपि दोष इति सम्प्रदायविदः। तदसत् अनुमिति-परामर्शयोस्तत्तद्व्यक्तित्वेन हेतु-हेतुमद्भावनये अनुमितावपि[1] तादृशनिश्चयत्वेनाहेतुत्वादसम्भवापत्तेः[2]।

---

(१) हेतु-हेतुमद्भावादनुमितावपीति क॰।

(२) एतदनन्तरं ख-चिह्नितपुस्तके अधिकः पाठो वर्त्तते यथा, हेतुभेदेन हेतुतावच्छेदकसम्बन्धभेदेन वानन्तकार्य्य-कारणभावापत्त्या परामर्शानानुमितिहेतुः, किन्तु यद्यल्लिङ्गकपरामर्शानन्तरं तत्तत्पक्षकतत्तत्साध्यकानुमितिरनुभवसिद्ध तत्तल्लिङ्गकपरामर्शाभावकूटविशिष्टात्मत्वमेव तत्तत्पक्षक-तत्तत्साध्यकानुमितौ समवायसम्बन्धेन प्रतिबन्धकं प्रतिबन्धकता च सामान्यतस्तल्लिङ्गकपरामर्शाभावकूटविशिष्टत्वेन न तु विशिष्टात्मत्वादेः प्रवेशः गौरवात् तेन सत्त्वादिमादाय न विनिगमनाविरहः। न च तथापि परामर्शाभावकूटानां परस्परं विशेषण-विशेष्यभावे विनिगमकाभावेन गुरुतरानन्तकार्य्य-कारणभावापत्तेर्दुर्वारत्वादिति वाच्यं। परामर्शाभावानां परस्परं विशेष्यत्वाभावविशिष्ट विशेषणताघटितत्वया आत्मत्वे

नव्यास्तु येन परामर्शेनाव्यवहितोत्तरमनुमितिरेव जनिता न हूपमित्यादि तादृशपरामर्शविशेषपरं व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्मता-ज्ञानपदमिति न क्वाप्यतिव्याप्तिः। जन्यत्वञ्च एकात्मावच्छेदेनाव्यवहितोत्तरवर्त्तित्वम्। अन्यथा तादृशनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणत्वनिरूपितजन्यत्वप्रवेशे उक्तरीत्या असम्भवापत्तेः, जन्यतासामान्यनिवेशे ज्ञानत्वेन कार्य्यत्वेन विशेषणज्ञानत्वेन विशिष्टबुद्धित्वेनेत्यादिरूपेण कार्य्य-कारणभावमादाय शाब्दबोधादेरपि तादृशपरामर्शविशेष-जन्यत्वेनातिव्याप्त्यापत्तेः। न चैवं परामर्शान्तरजन्यानुमितावव्याप्तिरिति वाच्यम्। तादृशज्ञानवृत्ति-प्रत्यक्षासमवेतधर्मसमवायित्वस्य विवक्षितत्वात् समवायेन तद्वृत्तितालाभाय चरमज्ञानपदं। न चैवं यां काञ्चित् अनुमितिव्यक्तिमुपादाय तद्व्यक्तिसमवेतप्रत्यक्षासमवेत-धर्मसमवायित्वमेव लक्षणमस्त्विति वाच्यम्। तस्यापि लक्षणान्तरत्वात्, प्रकृते च तस्याप्रवेशेन वैयर्थ्याभावात्। इत्यञ्च व्याप्तिविशिष्टस्य व्याप्तिविशिष्टे वा पक्षधर्मता व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मतेति षष्ठी-सप्तमी-तत्पुरुषाभ्यां व्याप्तिविशिष्टवृत्तिर्या पक्षधर्मता तज्ज्ञानजन्यज्ञानमनुमितिरित्यर्थोऽपि सम्भवति, धूमवान् पर्वत इति ज्ञानजन्यानुव्यवसायादावतिव्याप्तेर्ज्ञानपदस्य ज्ञानविशेषपरत्वेनैव वारणात् ह्रदोवह्नि-

---

च समवायघटितत्वया परामर्शाभावात्मत्वयोः विशेषणता-समवायोभयघटितसामानाधिकरण्यस्य ततोऽपि लघुत्वादिति परस्परविशेष्य-विशेषणभावानापन्नानां परामर्शाभावकूटानां युगपदात्मत्वांश एव विशेषणत्वोपगमाद्विति स्वतन्त्रमतेऽपि तादृशजनकत्वस्य [illegible]घटकत्वेऽसम्भवापत्तेः इति।

मान् इत्यादिभ्रमानुमितेर्वह्निव्याप्यजलवान् पर्वत इत्यादिभ्रमजन्य-पर्वतो वह्निमानित्यादिप्रमानुमितेश्च तादृशधर्मघटनयैव संग्रहात् । एवं व्याप्तिविशिष्टश्चासौ पक्षधर्मश्चेति व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मः तस्य भावः व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मतेति कर्मधारयोत्तरभावप्रत्ययेन व्याप्ति-विशिष्टत्वसमानाधिकरणपक्षधर्मतायाः ज्ञानजन्यं ज्ञानमनुमितिरि-त्यर्थोऽपि सम्भवति, भ्रमानुमित्यव्याप्त्यादेर्यथोक्तरूपेणैव वारणात् । एवं व्याप्तिविशिष्टश्च पक्षधर्मश्च व्याप्तिविशिष्ट-पक्षधर्मौ तयोर्भावः तथा तज्ज्ञानजन्यज्ञानमिति द्वन्द्वोत्तरत्वप्रत्ययेन व्याप्तिविशिष्टत्व-पक्षधर्मत्वोभयविषयकज्ञानजन्यं ज्ञानमनुमितिरित्यर्थोऽपि सम्भवति, धूमो वह्निव्याप्यः आलोकवान् पर्वत इति ज्ञानजन्ये धूमो वह्निव्याप्यः धूमवान्पर्वत इति ज्ञानजन्ये चातिव्याप्तिः ज्ञानपदस्य ज्ञानविशेष-परत्वेनैव वारणादिति प्राहुः ।

केचित्तु व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यत्वमेव लक्षणं जन्यत्वञ्च परामर्शत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिकं ग्राह्यं, परामर्शत्वञ्च अनु-मितित्वावच्छिन्नकारणतावच्छेदकतया सिद्धो मानसत्वव्याप्यजातिवि-शेषः, सर्वत्र मानसपरामर्शादेवानुमितिरित्यभ्युपगमात् क्षणविलम्बस्य अपक्षनिर्णेयत्वात् । एवञ्च न क्वाप्यतिप्रसङ्गः अन्यत्र तादृशजातिवि-विशेषेणाहेतुत्वात् । इत्थञ्च तादृशधर्मघटनापि न कर्त्तव्या वह्निव्या-प्यधूमवान्पर्वत इति निश्चयस्य परामर्शत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपि-तानुमितित्वावच्छिन्नजन्यताया अनुमितिमात्र एव सत्त्वात्, आपत्तेश्च कारणतावच्छेदके अप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितत्वस्याधिकस्य प्रवेशादेव वारणात् आपत्तीतरत्वेन वा परामर्शानां विशेषणीयमित्याहुः ।

16091

'तत्करणमिति' तत्पदं अनुमितित्वजातिविशेषविशिष्टपरं तथा-चानुमितेः करणमनुमानमित्यर्थः। ननु तत्करणमित्यत्र तच्छब्दस्या-नुमितित्वजातिविशेषविशिष्टपरत्वेऽनुमानमित्यत्र चानुपूर्व्यमाधातुना-प्यनुमितित्वजातिविशेषविशिष्टस्य प्रत्यायनात् करणल्युटा च करणप्र-त्यायनादनुमितिकरणमनुमितिकरणतावदित्यनुमितिकरणत्वविशि-ष्टेऽनुमितिकरणत्वविशिष्टस्याभेदसंसर्गेणान्वयो वाच्यः तथाचोद्देश्यता-वच्छेदक-विधेयतावच्छेदकयोरभेदाद् घटोघट इति वत् पुनरुक्तिः। न च अव्यय-निपातातिरिक्तनामार्थयोर्भेदान्वयस्याव्युत्पन्नतया तत्कर-णमित्यस्यानुमितिसम्बन्ध्यभिन्नमनुमितिकरणमित्यर्थः, तच्छब्दस्यानु-मितित्वजातिविशेषविशिष्टसम्बन्धिपरत्वात् करणतायाः कार्य्यघटित-त्वेन करणपदस्यानुमितिकरणपरत्वात् अभिन्नत्वस्य च संसर्गत्वात् अनु-मानमित्यत्र तु धात्वर्थस्यानुमितेः ल्युटः प्रत्ययतया तदर्थेऽनुमितिक-रणे करणतासम्बन्धेनैवान्वयादनुमितिमदनुमितिकरणमित्यर्थः, कर-णतायाः कार्य्यघटितत्वेन अनुमितिकरणस्य विशिष्टस्यैव ल्युडर्थत्वात्। तथाचानुमितिसम्बन्धिमदनुमितिकरणं अनुमितिमदनुमितिकरणा-भिन्नमित्येवान्वयबोधात् विधेयतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणधर्मवत्त्वस्य उद्देश्यवाचकपदादलाभेन घटोनीलघटः नीलघटधर्मा घटोनीलघट इत्यादाविव न पौनरुक्त्यमिति वाच्यं। तथापि करणपद-ल्युडादिप-दयोः करणताघटकपदार्थेषु अधिकरण-तद्वृत्तित्वादिषु खण्डशक्तिनये पौनरुक्त्यस्य दुर्व्वारत्वात् खण्डशक्तिनये अनुमानमित्यत्र धात्वर्थस्यानु-मितेः आश्रयतासम्बन्धेन ल्युडर्थेऽधिकरणेऽन्वयवत् तत्करणमित्यत्रापि तत्पदार्थस्यानुमितेः करणपदार्थेऽधिकरणे आश्रयत्वेनान्वयादिति

।१०७।

येत् । न । तत्पदार्थस्याव्ययपद-निपातपदाद्यतिरिक्तनामार्थतया ना-मार्थस्य भेदेनान्वयस्याव्युत्पन्नतया तत्पदार्थस्यानुमितेराश्रयतासम्ब-न्धेन करणपदार्थेऽन्वयासम्भवात् । अन्यथा सकरणत्वं सकर्म्मकत्वमि-त्यादावपि तदीयकरणत्वादिप्रत्ययापत्तेः । न चैवं घटकरणं दण्ड-इत्यादौ खण्डशक्तिनये घटवद्वृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वघटि-तस्य(१) घटकरत्वस्याप्रत्ययप्रसङ्गः करणपदादधिकरण-तद्वृत्तित्वादे-रुपस्थितत्वेऽपि घटस्य ततोऽनुपस्थितेरिति वाच्यम् । करणादिपदस्य खण्डशक्तिनयेऽपि कार्य्यवत्त्वरूपेण कार्य्यवदंशेऽप्यवश्यं शक्तिकल्पनात् । अन्यथा केवलकरणादिपदात् तात्पर्य्यधीसत्त्वेऽपि विना कार्य्यवाच-कपदाध्याहारं घटादिकरणप्रत्ययापत्तेः । कार्य्यवद्वृत्त्यभावप्रति-योगितानवच्छेदकघटितकरणत्वे गौरवादधिकरणत्वेनाधिकरणा-प्रवेशादधिकरणांशे कार्य्यातिरिक्तस्याप्रकारतया कार्य्यवत्त्वरूपेणैव कार्य्याधिकरणे करणादिपदस्य शक्तेरावश्यकत्वाच्च । अन्यथा पदा-न्निर्व्विकल्पकोपस्थितेरनभ्युपगमेनाधिकरणस्य ततोऽनुपस्थितिप्रस-ङ्गात् । न च कार्य्यवाचकघटादिपदस्यैव कार्य्यवति लक्षणा करणा-दिपदस्य तु केवलवृत्तित्वादिष्वेव शक्तिः कार्य्यवतो निरूपकतासम्ब-न्धेन वृत्तित्वेऽन्वयाच्च विशिष्टलाभ इति वाच्यम् । तर्हि लाघवात् करणादिपदस्य केवलधर्म्मवत्येव शक्त्यापत्तेः इतरांशस्य कार्य्यवाचक-घटादिपदे लक्षणयैव लाभसम्भवात् । एतेन खण्डशक्तिनये करणा-दिपदस्य नानात्वेऽपि तदर्थानां यथा भेदेन परस्परमन्वयोऽव्युत्पत्ति-

(१) घटवद्वृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकघटितस्येति क०, ग० ।



16091

वैचित्र्यात् तथा करणादिपदसमभिव्याहृतषष्ठ्यादीतरविभक्तिशून्यत-दादिपदार्थस्यापि करणपदार्थे भेदान्वयो व्युत्पत्तिवैचित्र्यादिति कस्यचित् प्रलपितमप्यपास्तम्। खण्डशक्तिनयेऽपि कार्य्यवदंशे शक्ते-रावश्यकत्वे व्युत्पत्तिसङ्कोचे प्रमाणाभावात् तदादिपदस्य कार्य्यस-म्बन्धिपरतया तादात्म्यसम्बन्धेनैवान्वयबोधसम्भवात्। न च खण्डशक्ति-नये कार्य्यवदंशे शक्तेरावश्यकत्वे कार्य्यभेदेन शक्तिभेदस्याविशिष्टतया विशिष्टशक्तिपक्षमपेक्ष्य खण्डशक्तिपक्षे किं लाघवमिति वाच्यं। वैशिष्ट्यांशे शक्त्यकल्पनादेव तत्र लाघवसम्भवात्। इत्थञ्च खण्डश-क्तिपक्षेऽपि प्रकृतेऽनुमितिसम्बन्धिमदनुमितिकरणं अनुमितिमदनु-मितिकरणाभिन्नमित्यन्वयबोधान्न पुनरुक्तिः।

केचित्तु तत्पदं न स्वरूपतोऽनुमितित्वजातिविशेषविशिष्टपरं किन्तु व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञानवृत्तिप्रत्यक्षासमवेतध-र्मरूपेण तादृशधर्मसमवायिपरं, तथाच तादृशधर्मसमवायिकरण-मनुमानमित्यर्थः, अतो न पुनरुक्तिशङ्कापि। नन्वेवं तादृशधर्म-समवायिकरणत्वेन इतरभेदसाधने व्यर्थविशेषणत्वं तद्घटकस्य व्याप्ति-ज्ञानत्वस्यैव हेतुत्वसम्भवात्। न च व्याप्तिज्ञानत्वेन व्याप्तिज्ञानत्वं न प्रविष्टमिति न वैयर्थ्यमिति वाच्यम्। तथापि तादात्म्येन व्याप्तिज्ञानस्यैव गमकत्वसम्भवात्। न च व्याप्तेरननुगमेन एकत-रव्याप्तिज्ञानस्य हेतुत्वे अनुमितिकरणमात्रस्य पक्षत्वात् भागासि-द्धिरतस्तादृशधर्मसमवायिकारणत्वं सर्व्वसाधारणं हेतुरिति वाच्यं। अधिकस्य भागासिद्धिवारकत्वेऽपि व्याप्तिपक्षानुपयुक्ततया वैयर्थ्या-

दिति चेत्। न। भिन्नधर्म्मिकतया धूमप्रागभाववद्वैयर्थ्यात्[१] करणत्वनिष्ठव्याप्तेर्व्याप्तिज्ञानत्वानवच्छेद्यत्वादित्याहुः।

लक्षणमुक्त्वा स्वरूपमाह, 'तच्चेति अनुमानञ्चेत्यर्थः, 'लिङ्गपरामर्शः' व्याप्तिज्ञानं, परामर्शस्य व्यापाराभावेनाकरणत्वात्।

अन्ये तु नन्वेतावता अनुमितिकरणत्वमनुमानलक्षणमुक्तं भवति तत् कथं स्यात् ज्ञायमानलिङ्गस्यानुमितिकरणत्वेन अनुमानेतराप्रसिद्ध्या इतरभेदानुमापकत्वाभावात् इतरभेदानुमापकत्वस्यैव च लक्षणपदार्थत्वादित्यत आह,' 'तच्चेतीति प्राहुः।

'वक्ष्यत इति, परामृश्यमानलिङ्गस्यानुमितिकरणत्वे अतीतानागतलिङ्गादनुमितिर्न स्यादिति भावः।

लक्षणं निरूपितं[२] इदानीं प्रामाण्यं निरूपयितुं प्रथमतश्चार्व्वाकमतमाशङ्कते, 'अथेति,। 'न प्रमाणं' न प्रमितिकरणं, ननु यदि चानुमानमनुमितिकरणं न प्रमाणमित्यर्थः तदाश्रयासिद्धिः तन्मतेऽनुमितिकरणस्याप्रसिद्धेः, यद्यनुमानं धूमादि न प्रमाणमित्यर्थः तदा सिद्धसाधनं व्याप्तिज्ञानस्यैव नैयायिकैः प्रमाणत्वोपगमादिति चेत्। न। अनुमानमित्यस्य व्याप्तिज्ञानमित्यर्थात्। न च तथाप्याश्रयासिद्धिः तन्मते सर्व्वत्र व्यभिचारसंशयसत्त्वेन व्याप्तिनिश्चयानुत्पादादिति वाच्यं। तन्मते संशयात्मकस्य प्रसिद्धेः। न चांशतः सिद्धसाधनं, पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धेरुद्देश्यत्वात्। न च

(१) तथाच व्यर्थविशेषणत्वघटकसामानाधिकरण्यविरहान्न दोष इति भावः।

(२) लक्षणमुक्तमिति ख०।

निर्व्विकल्पकद्वारा स्वप्रत्यक्षात्मकप्रमितिं प्रति करणत्वाद्बाध इति वाच्यं । निर्व्विकल्पकं प्रति करणत्वाभावात् विशिष्टज्ञानस्य तु तन्मते असद्विषयकत्वेनाप्रमितित्वाच्च । अत्र च प्रमाजनकतावच्छेदकरूपशून्यत्वादिति हेतुरूह्यः, तच्च तन्मते इन्द्रियत्वं अस्मन्मते व्याप्तिनिश्चयत्वादिकमपि । ननु अयं हेतुः स्वरूपासिद्धः तादृशव्याप्तिनिश्चयत्वस्यैव सर्व्वत्र सत्त्वादित्यत आह, 'योग्योपाधीनामिति साध्यव्यापकतया गृहीतानामिन्धनादिलक्षणयोग्यधर्म्माणामित्यर्थः, 'योग्यानुपलब्ध्या' योग्यतासहितया अनुपलब्ध्या, 'अभावनिश्चयेऽपीति प्रत्यक्षतोव्यभिचारितासम्बन्धेन इन्धनत्वादिरूपेण अभावस्य धूमादौ हेतौ निश्चयेऽपीत्यर्थः, तेनोपाधित्वस्य अतीन्द्रियत्वेन तदवच्छिन्नाभावस्य लौकिकप्रत्यक्षागम्यत्वेऽपि न क्षतिः । न च व्यभिचारित्वस्यातीन्द्रियघटिततया तत्सम्बन्धेन इन्धनत्वाद्यवच्छिन्नाभावोऽपि कथं लौकिकप्रत्यक्षगम्य इति वाच्यम् । साध्याभाववद्व्यक्तिनिष्ठयोग्यव्यक्तिवृत्तित्वरूपव्यभिचारिताविशेषसम्बन्धेन तदभावस्य प्रत्यक्षसम्भवादिति भावः । 'अयोग्योपाधिशङ्कयेति साध्यव्यापकतया गृहीतस्य मनोवाच्यादिलक्षणायोग्यधर्म्मस्य व्यभिचारितासम्बन्धेन धूमादौ हेतौ शङ्कयेत्यर्थः । यद्वा साध्यव्यापकत्वरूपायोग्यधर्म्मप्रकारेण साध्यव्यापकीभूतधर्म्मस्य व्यभिचारितासामान्यसम्बन्धेन धूमादौ हेतौ शङ्कयेत्यर्थः, 'व्यभिचारसंशयादिति सर्व्वत्र हेतौ साध्यव्यभिचारसंशयादित्यर्थः, व्यभिचारसंशये च व्याप्तिनिश्चयस्यैवासम्भवात् कथं तत्र व्याप्तिनिश्चयत्वमिति भावः । ननु भूयः साध्य-साधनसहचारज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानप्रतिबन्धकतया तत्सत्त्वे तत्रैव व्यभिचारसंशयासम्भवेन व्याप्ति-

अथानुमानं न प्रमाणं योग्योपाधीनां योग्यानुपलब्ध्याभावनिश्चयेऽप्ययोग्योपाधिशङ्कया व्यभिचारसंशयात् शतशः सहचरितयोरपि व्यभिचारोपलब्धेश्च लोके धूमादिदर्शनानन्तरं वह्न्यादिव्यवहारश्च सम्भा-

वनिश्चयसम्भव इत्यत आह, 'शतश इति'[१] शतशः सहचरितत्वेन ज्ञातयोर्द्वयोरपीत्यर्थः,[२] तथाच भूयः सहचारज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानप्रतिबन्धकत्वमेवासिद्धमिति भावः। नन्वेवं वह्निसन्निकर्ष-पर्व्वतविशेष्यकवह्निप्रकारकसंस्काराद्यभावदशायामपि धूमदर्शनानन्तरं पर्व्वतोवह्निमान् इत्यादिप्रयोगोऽनुभूयते स कथं स्यात् तादृशशब्दप्रयोगं प्रति पर्व्वतविशेष्यक-वह्निप्रकारकबुद्धेर्हेतुत्वादित्यत आह, 'लोक इति लोकानामित्यर्थः, 'धूमादीति, वह्नीन्द्रियसन्निकर्ष-पर्व्वतविशेष्यक-वह्निप्रकारकसंस्काराद्यभावदशायामित्यादि, 'वह्न्यादिव्यवहारस्य' पर्व्वतोवह्निमानित्यादिशब्दप्रयोगः।

केचित्तु 'वह्न्यादिव्यवहारः' पर्व्वतविशेष्यक-वह्निप्रकारकप्रवृत्तिरित्याहुः। तदसत् वह्निप्रकारिका पर्व्वते प्रवृत्तिर्हि साध्यतया, उद्देश्यतया वा, उपादानतया वा, नाद्यौ वह्निमत्पर्व्वतस्य सिद्ध-

---

(१) शतशः सहचरितयोरितीति ख०।

(२) एतदनन्तरं क—चिह्नितपुस्तके अधिकः पाठो वर्त्तते यथा, व्यभिचारोपलब्धेरिति यथा लौहलेख्यत्व-पार्थिवत्वयोर्हीरके इत्यर्थः इति ।

वनामाधात् संवादेन च प्रामाण्याभिमानादिति नाप्र-
त्यक्षं प्रमाणमिति, न, अप्रमाणसाधर्म्येणाप्रामाण्य-
साधने दृष्टसाधर्म्यस्यानुमानत्वात् एतद्वाक्यस्य सन्दिग्ध-

---

त्वात्, नान्यः' उपादानगोचरलौकिकसाक्षात्कारस्यैव प्रवृत्तिहेतु-
तया न्यायनयेऽप्यनुमित्यात्मकज्ञानात्तदसम्भवादिति मन्तव्यं।

'सम्भावनेति, 'सम्भावना' पर्व्वते वह्निसंसर्गाग्रहोवह्नेः पर्व्वतस्य च ज्ञानम्। न च लाघवाद्व्यवहारं प्रति विशिष्टधिय एव हेतुत्वं न तु असंसर्गाग्रहादेर्गौरवादिति वाच्यं। न हि वयमसंसर्गाग्रहादेर्व्यवहारकारणत्वं ब्रूमः, किन्तु तदुपलक्षितवह्न्यादिज्ञानादीनामेव कुर्व्वद्रूपत्वेन धर्मविशेषेण, अनन्तानुमितिकल्पनापेक्षया कुर्व्वद्रूपत्वकल्पनाया एव लघुत्वादिति भावः। ननु धूमदर्शनानन्तरं वह्न्यादिव्यवहारजनिका न सम्भावना तज्जनकीभूतज्ञानस्य वह्निमति वह्निप्रकारकानुभवत्वेनानुभवादित्यत आह, 'संवादेनेति, 'संवादेन' संवादादिव्यवहारजनकत्वादिरूपसाधारणधर्मदर्शनेन दोषेण च, 'प्रामाण्यं' वह्निमति वह्निप्रकारानुभवत्वं, 'अभिमानः' पुनरगृहीतासंसर्गकं ज्ञानद्वयमेकमेव ज्ञानं वेत्यन्यदेतत्। उपसंहरति, 'इतीति, 'इति' अतो हेतोः, 'नाप्रत्यक्षमिति प्रत्यक्षातिरिक्तं न प्रमाणमित्यर्थः, अनुमानाप्रामाण्ये तेन घटपदं घटे शक्तं असति वृत्त्यन्तरे वृद्धैस्तत्र प्रयुज्यमानत्वादित्यादिना प्रकारेण शक्तिग्रहे एव शब्दः प्रमाणं स्यादिति शब्दो न प्रमाणं, शब्दस्याप्रामाण्ये तेनातिदेशवाक्यार्थज्ञान एव उपमानं प्रमाणं स्यादित्युपमानमपि न प्रमाणमिति भावः। न

विपर्य्यस्तान्यतरं प्रत्यर्थवत्त्वात् तयोश्च परकीययोर-प्रत्यक्षत्वात् अनुमानमप्रमाणमिति वाक्यस्य प्रामा-

---

च प्रत्यक्षातिरिक्तस्याप्रामाण्ये कथमतीन्द्रियपदार्थसिद्धिरिति वाच्यं । तैरतीन्द्रियपदार्थानभ्युपगमादिति भावः । ननूपक्रमोपसंहारवि-रोधः येन रूपेण प्रतिज्ञा क्रियते तेनैव रूपेण निगमनमपीति वक्तकथकसम्प्रदायसिद्धत्वात्, अत्र च अनुमानं न प्रमाणमित्य-स्योपक्रमत्वात् नाप्रत्यक्षं प्रमाणमित्यस्य चोपसंहारत्वादिति चेत्, अत्र मिश्राः नाप्रत्यक्षं प्रमाणमित्युपक्रमः अनुमानं न प्रमाणमित्या-दिकन्तु हेतुरिति प्राहुः ।

नव्यास्तु नाप्रत्यक्षं प्रमाणमित्यपि प्रतिज्ञान्तरं न तु अनुमानं न प्रमाणमित्यस्योपसंहारः, तथाच यतोऽनुमानं न प्रमाणं अतः प्रत्यक्षातिरिक्तं शब्दोपमानमपि न प्रमाणमित्यर्थ इत्याहुः ।

वस्तुतस्तु नाप्रत्यक्षं प्रमाणमित्यपि नोपसंहारः अनुमानं न प्रमाणमित्यपि नोपक्रमः उपक्रमोपसंहारयोः प्रतिज्ञा-निगमनयोस्तै-रनङ्गीकारात्, किन्तु स्वरूपकीर्त्तनमात्रमित्येव तत्त्वं ।

अथानुमानस्याप्रामाण्यं केन प्रकारेण साध्यते, किं प्रमाप्रयो-जकतावच्छेदकरूपशून्यत्वलिङ्गकेनानुमानेन, किं वा अनुमानं न प्रमाणमिति शब्देन, तत्राद्ये आह, 'अप्रमाणेति, 'अप्रमाणसाध-र्म्येण' अप्रमाणत्वव्याप्येन प्रमाजनकतावच्छेदकरूपशून्यत्वेन(१) 'दृष्ट-साधर्म्यस्य' साधर्म्यदर्शनस्य अप्रमाणत्वव्याप्यदर्शनस्येति यावत् ।

---

(१) प्रमात्वताप्रयोजकरूपशून्यत्वेनेति ख० ।

च्याप्रामाण्ययोर्व्याघातात्‌ । अपि चानुमानाप्रामाण्ये प्रत्यक्षस्याप्यप्रमाणत्वापत्तेः प्रामाण्यस्यानुमेयत्वात्‌ स्वतश्च प्रामाण्यग्रहे तत्संशयानुपपत्तेः । व्याप्तिग्रहोपायश्च वक्ष्यते ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे अनुमितिनिरूपणं ।

---

अन्ये आह, 'एतद्वाक्यस्येति अनुमानं न प्रमाणमितिवाक्यस्येत्यर्थः, 'अर्थवत्त्वात्‌' प्रयोजनवत्त्वात्‌ न तु स्वं प्रतीत्यर्थः, 'तयोः' सन्देहविपर्ययोः, अयमर्थः अनुमानं प्रमाणं न वेति संशयस्य अनुमानं अप्रमाणमेवेति विपर्ययस्य वा निरासबाधनताज्ञानादेतद्वाक्यप्रयोगे तव प्रवृत्तिः तच्च ज्ञानं कथं स्यात्‌ परकीयसंशय-विपर्ययोरप्रत्यक्षत्वात्‌ अतोऽनुमानं प्रमाणं अवश्योपेयमिति । 'प्रामाण्याप्रामाण्ययोरिति प्रामाण्येऽप्रामाण्ये चेत्यर्थः, 'व्याघातात्‌' प्रत्यक्षातिरिक्तस्य अप्रामाण्यव्याघातात्‌, अनुमानमप्रामाण्यमिति वाक्यस्य प्रामाण्ये हि आयातं प्रत्यक्षातिरिक्तस्य शब्दस्य साक्षादेव प्रामाण्यं, अप्रामाण्ये च अप्रामाण्यभ्रमजनकत्वमिति । अनुमानेऽप्रामाण्यस्य भ्रम एव जननीयः, भ्रमत्वञ्च ज्ञानस्य विषयबाधाधीनमेवेत्यनुमानाप्रामाण्ये बाध एवेति भावः । ननु भ्रमजनकत्वलक्षणं अप्रामाण्यं शब्दस्य नोच्यते येन भ्रमत्वस्य विषयबाधाधीनतया प्रत्यक्षातिरिक्तस्यानुमानस्य प्रामाण्यस्वीकारापत्तिः, परन्तु प्रमाकरणत्वव्यतिरेकलक्षणमित्यस्वरसादाह, 'अपि चेति, 'प्रत्यक्षस्यापि'

प्रत्यचस्यापि, 'अप्रमाणत्वापत्तेरिति प्रमात्वाभावापत्तेरित्यर्थः, प्रमात्वे प्रमाणाभावादिति भावः। कथं प्रमाणं नास्ति तदाह, 'प्रामाण्य-स्येति प्रमात्वस्येत्यर्थः। ननु प्रत्यचप्रमात्वं स्वेनैव गृह्यते इति स्वय-मेव स्वप्रमात्वे प्रमाणमतो न तत्रानुमानापेचेत्यत आह, 'स्वत इति, 'तत्संशयेति प्रमात्वसंशयेत्यर्थः। अयं घट इत्यादिज्ञानानन्तरं तृतीयचणे[१] इदं ज्ञानं प्रमा न वेति संशयोजायते, भवन्मते तन्न स्यात् स्वेनैव स्वप्रमात्वस्य निश्चितत्वादिति भावः। एतच्चापाततः अयं घट इत्यादिसविकल्पकज्ञानस्य हि तृतीयचणे प्रमात्वसंशयः तेन च तन्मयेऽपि न स्वस्मिन् प्रामाण्यं गृह्यते तस्यासन्मात्रविषयत्वेन प्रमात्वस्यैव तत्राभावात् किन्तु पारमार्थिकव्यक्तिमात्रविषयकनिर्व्वि-कल्पकज्ञानमेव तन्मते प्रमा तेनैव स्वस्मिन् प्रामाण्यं स्वेन गृह्यते तत्र तृतीयचणे प्रामाण्यसंशयोऽसिद्धः। किञ्च तन्मते संशयं प्रत्यपि कुर्व्वद्रूपत्वेनैव निश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वात् निश्चयसत्त्वेऽपि संशयोत्पत्तौ विरोधाभावः। कुर्व्वद्रूपत्वस्य फलबलकल्प्यत्वेन यदुत्तरं संशयो जायते तत्र तदभावात्। वस्तुतस्तु अनुमानस्याप्रामाण्ये निर्व्विकल्प-कज्ञानस्यैवासद्विषयकत्व-स्वविषयकत्व-प्रामाण्यावगाहित्वसिद्धिः कथं स्यात् सद्विषयकत्वादिहेतुकानुमानेनैव असद्विषयकत्वस्य ज्ञान-त्वहेतुकानुमानेनैव स्वविषयकत्वस्य स्वेतराग्राह्यप्रामाण्यकत्वे सति ग्राह्यप्रामाण्यकत्वहेतुकानुमानेनैव प्रामाण्यावगाहित्वस्य सिद्धेः। न च तदपि स्वेनैव गृह्यत इति वाच्यं। विषयानवस्थाभिया प्रामाण्य-

(१) सर्व्वत्र 'तृतीयचणे' इत्यत्र 'द्वितीयचणे' इति ख—चिह्नितपुस्तक-पाठः।

तद्घटकपदार्थाद्यतिरिक्तधर्म्मस्य स्वतोग्राह्यत्वानभ्युपगमात्। अपि च धूमदर्शनानन्तरं जायमाने वह्न्यादिव्यवहारजनके ज्ञाने अनुमितित्वजातिविशेषस्यानुमिनोमीत्यबाधितानुव्यवसायसिद्धतया अपलापासम्भवः अनुमितित्वरूपजातिविशेषस्य सिद्धत्वे तदवच्छिन्नं प्रति व्याप्तिज्ञानादेः करणत्वमप्यावश्यकं, अन्यथा तदवच्छिन्नोत्पत्तिनियमानुपपत्तेः। न चास्तु अनुमितिरूपोज्ञानविशेषः अस्तु च तत्र व्याप्तिज्ञानादेः करणत्वं तथापि तादृशज्ञानविशेषस्य सविकल्पकरूपत्वेनासन्मात्रविषयकतया प्रमात्वाभावात्र तत्करणस्य प्रमाणत्वमिति वाच्यम्। सविकल्पकविज्ञानस्यासन्मात्रविषयकत्वासिद्धेः अनुमितिविषयीभूतानां पर्व्वतत्व-वह्नित्वादीनां सर्व्वेषां पारमार्थिकत्वादित्येव दूषणं सारं। ननु व्याप्तिनिश्चयस्य स्वोत्पत्तावेव प्रामाण्यं सम्भवति सेव न सम्भवति उपायाभावादित्यत आह, 'व्याप्तिग्रहोपायश्चेति(१)।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे अनुमितिनिरूपणरहस्यम्।

---

(१) व्याप्तिग्रहोपाय इति क०.ख०।

# अथ व्याप्तिवादः ।

नन्वनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञाने का व्याप्तिः न तावदव्यभिचरितत्वं तद्धि न साध्याभाववदवृत्तित्वम् साध्य-

---

## अथ व्याप्तिवादरहस्यं ।

अनुमानप्रामाण्यं निरूप्य व्याप्तिस्वरूपनिरूपणमारभते, 'नन्वि-त्यादिना, 'अनुमितिहेत्वित्यस्य अनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमितिहेत्वि-त्यर्थः, 'व्याप्तिज्ञान इत्यत्र च विषयत्वं सप्तम्यर्थः, तथाचानुमाननिष्ठप्रमाण्यानुमितिहेतुव्याप्तिज्ञानविषयीभूता व्याप्तिः केत्यर्थः, अनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमितिहेत्वित्यनेन व्याप्तेरनुमानप्रामाण्योपपादकत्वकथनादनुमानप्रामाण्यनिरूपणानन्तरं व्याप्तिनिरूपणे उपोद्घात एव सङ्गतिरिति सूचितं। उपपादकत्वञ्च ज्ञापकत्वं ।

केचित्तु अनुमितिपदं अनुमितिनिष्ठेतरभेदानुमितिपरं, तथाचानुमितिनिष्ठेतरभेदानुमितौ यो हेतुः प्रागुक्तव्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यत्वरूपः, तद्घटकं यद्व्याप्तिज्ञानं तदंशे विशेषणीभूता व्याप्तिः केत्यर्थः, घटकत्वार्थकसप्तमीतत्पुरुषसमासात्[1] तथाच प्रागुक्तानुमितिलक्षणोपोद्घात एव सङ्गतिरनेन सूचिता इत्याहुः ।

---

(१) अनुमितिहेतौ व्याप्तिज्ञानं अनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञानमिति सप्तमीतत्पुरुषसमासादित्यर्थः ।

'न तावदिति, 'तावत्' वाक्यालङ्कारे, 'अव्यभिचरितत्वं' अव्यभिचरितत्वपदप्रतिपाद्यं, तत्र हेतुमाह, 'तद्धीत्यादि, 'हि' यस्मात्, 'तत्' अव्यभिचरितत्वपदप्रतिपाद्यं, 'नेति, सर्व्वस्मिन्नेव लक्षणे सम्बध्यते, तथाच व्याप्तिर्यतः साध्याभाववदवृत्तित्वादिरूपाव्यभिचरितत्वशब्दप्रतिपाद्यस्वरूपा न अतोऽव्यभिचरितत्वशब्दप्रतिपाद्यस्वरूपा नेत्यर्थः पर्य्यवसितः, विशेषाभावकूटस्य सामान्याभावहेतुता च प्रसिद्धैवेति, अतः एतन्नञ्द्वयोपादानं न निरर्थकम्। ''साध्याभाववदवृत्तित्वमिति, 'वृत्तं' वृत्तिः, भावे निष्ठाप्रत्ययात्, वृत्तस्याभावः 'अवृत्तं' वृत्त्यभाव इति यावत्, साध्याभाववतोऽवृत्तं 'साध्याभाववदवृत्तं' साध्याभाववद्वृत्त्यभाव इति यावत्, तद्यत्रास्ति साध्याभाववदवृत्ती मत्वर्थीयेन्प्रत्ययात् तस्य भावः 'साध्याभाववदवृत्तित्वं' तथाच साध्याभाववद्वृत्त्यभाववत्त्वमिति फलितमिति प्राञ्चः, तदसत् न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेदर्थप्रतिपत्तिकर इत्यनुशासनविरोधात् तत्र कर्मधारयपदस्य बहुव्रीहीतरसमासपरत्वात्(१)

(१) अत्र कर्म्मधारयपदस्य समासमात्रपरत्वे साध्याभाववदवृत्तित्वमित्यत्र साध्याभाववत्पदस्य साधुत्वानुपपत्तिः साध्यस्याभावः साध्याभाव इति समासोत्तरमतुप्प्रत्ययस्य अनुशासनविरुद्धत्वात् अतः बहुव्रीहीतरसमासपरत्वमावश्यकं तथाच साध्यं अभावो यस्य स साध्याभावः इति बहुव्रीह्युत्तरं मतुप्प्रत्यये नानुशासनविरोधः। बहुव्रीहिश्चेदर्थप्रतिपत्तिकर इत्युक्तौ कृष्णसर्पवद्वल्मीकमित्यादिप्रयोगस्य साधुत्वानुपपत्तिः कृष्णसर्पेति पदस्य नित्यसमासतया तदुत्तरं मतुप्प्रत्यये अनुशासनविरोधः, कृष्णाः सर्पा यत्र इति विग्रहस्य विलक्षणवैशात्यावच्छिन्नसर्पवत्त्वबोधकत्वासम्भवेन बहुव्रीहेरर्थप्रतिपत्तिकरत्वाभावात् नास्माकं तादृशप्रयोगासाधुत्वम्।

तत्त्वागुणवत्त्वमिति साधर्म्यव्याख्यानावसरे, गुणप्रकाशरहस्ये तद्दीधितिरहस्ये च स्फुटं, अव्ययीभावसमासोत्तरपदार्थेन समं तत्समासानिविष्टपदार्थान्तरान्वयस्याव्युत्पन्नत्वाच्च[१] भूतलोपकुम्भं भूतलाघटमित्यादौ भूतलवृत्तिघटसमीप-तदत्यन्ताभावयोरप्रतीतेः। एतेन वृत्तेरभावोऽवृत्तीत्यव्ययीभावानन्तरं साध्याभाववतोऽवृत्तिर्यत्रेति बहुव्रीहिरित्यपि प्रत्युक्तं वृत्तौ साध्याभाववतोऽनन्वयापत्तेः अव्ययीभावसमासस्याव्ययतया तेन समं समासान्तरासम्भवाच्च नञुपाद्यादिरूपाव्ययविशेषाणामेव समस्यमानत्वेन परिगणितत्वात्[२]। वस्तुतस्तु साध्याभाववतो न वृत्तिर्यत्र इति त्रिपदव्यधिकरणबहुव्रीह्युत्तरं त्वप्रत्ययः साध्याभाववत इत्यत्र निरूपितत्वं षष्ठ्यर्थः, अन्वयस्यास्य वृत्तौ, तथाच साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्त्यभाव-

---

(१) अव्ययीभावसमासोत्तरपदार्थेन समं तत्समासानिविष्टपदार्थान्तरस्यान्वयस्याव्युत्पन्नत्वादित्यत्र अन्तरपदमनर्थकमिति नाशङ्कनीयं उपकुम्भमित्यादावपि तत्समासानिविष्ट-समीपादिपदप्रतिपाद्यसामीप्याद्यर्थे अनन्वयप्रसङ्गात् अधिकस्य अन्तरपदस्य दाने तु तत्समासनिविष्टपदाप्रतिपाद्यार्थान्वयबोधस्याव्युत्पन्नत्वादित्यर्थकत्वसम्भवात् नानुपपत्तिगन्धोऽपि इति ध्येयम्। तत्समासानिविष्टपदार्थान्वयस्याव्युत्पन्नत्वादित्येव ग-चिह्नितपुस्तकपाठः।

(२) ननु भूतलोपकुम्भं भूतलाघटमित्यादिप्रयोगदर्शनात् कथमेतादृशनियमोयुक्तिसह इति चेत्, न, नञुपाध्याद्यव्ययविशेषाणां समस्यमानत्वेन परिगणितत्वात् इत्यत्र आदिपदेन उपकुम्भादेरपि परिग्रहान्नासङ्गतिरिति।

वह्निमन्साध्याभाववदवृत्तित्वं साध्यवत्प्रतियोगिकान्यो-
न्याभावासामानाधिकरण्यं सकलसाध्याभाववन्निष्ठा-

---

वत्त्वमव्यभिचरितत्वमिति फलितं। न च व्यधिकरणबहुव्रीहिः सर्वत्र न साधुरिति वाच्यं। अयं हेतुः साध्याभाववदवृत्तिरित्यादौ व्यधिकरणबहुव्रीहिं विना गत्यन्तराभावेनात्रापि व्यधिकरणबहुव्रीहेः साधुत्वात्। साध्याभावाधिकरणवृत्तित्वाभावस्य तादृशवृत्ति-सामान्याभावोबोध्यः। तेन धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूमाभाववज्जल-ह्रदादिवृत्तित्वाभावस्य धूमाभाववद्वृत्तित्व-जलत्वोभयत्वाद्यवच्छिन्ना-भावस्य च वह्नौ सत्त्वेऽपि नातिव्याप्तिः। साध्याभाववद्वृत्तित्वस्य हेतुताव-च्छेदकसम्बन्धेन विवक्षणीया तेन वह्न्यभाववति धूमावयवे जल-ह्रदादौ(१) समवायेन कालिकविशेषणतया धूमस्य वृत्तावपि न क्षतिः। साध्याभावस्य साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रति-योगिताकोबोध्यः तेन वह्निमान् धूमादित्यादौ समवायादिसम्ब-न्धेन वह्निसामान्याभाववति संयोगसम्बन्धेन, तत्तद्वह्नित्व-वह्नि-जलो-भयत्वाद्यवच्छिन्नाभाववति च पर्वतादौ संयोगेन धूमस्य वृत्तावपि न क्षतिः(२)। तादृशसाध्याभाववत्त्वञ्च अभावीयविशेषणताविशेषेण बोध्यं

---

(१) धूमावयवं परित्यज्य जलह्रदादिपर्यन्तानुधावनं प्रसिद्धविपक्षस्थल-मादायाव्याप्तिसम्भवे तदप्रदर्शने न्यूनताभङ्गायेति।

(२) ननु साध्याभावपदस्य प्रथमोपस्थिततया तदंशे विशेषणीभूतस्य साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वपदस्य व्यावृत्तिं दर्शयित्वैव शेषदलोपात्त-

भावप्रतियोगित्वं साध्यवदन्यावृत्तित्वं वा केवलान्वयिन्यभावात्।

---

तेन गुणत्ववान् ज्ञानत्वात् सत्तावान् जातेरित्यादौ विषयित्वाव्याप्यत्वादिसम्बन्धेन[१] तादृशसाध्याभाववति ज्ञानादौ ज्ञानत्व-जात्यादेर्वृत्तावपि नाव्याप्तिः। जात्यत्यन्ताभाव-तद्वदन्योन्याभावयोरत्यन्ताभावो न प्रतियोगि-प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपः किन्त्वतिरिक्तः तेन घटत्वात्यन्ताभाववान् घटान्योन्याभाववान् वा पटत्वात् इत्यादौ विशेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणस्याप्रसिद्धा नाव्याप्तिः। अत्यन्ताभावादेरत्यन्ताभावस्य प्रतियोग्यादिस्वरूपत्वनये तु साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वं वक्तव्यम्[२]।

---

वृत्तित्वाभावांशे विशेषणीभूतस्य हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वस्य व्यावृत्तिदानं पश्चादेवोचितमिति व्युत्क्रमेण व्यावृत्तिदाने न्यूनता स्यादिति चेत्, न, प्रथमं वृत्तित्वसामान्याभावानुक्तौ साध्याभावांशे साध्यतावच्छेदकधर्म्मसम्बन्धावच्छिन्नत्वस्य व्यावृत्तिदानं न सम्भवतीति व्युत्क्रमेण व्यावृत्तिदानं।

(१) अव्याप्यत्वस्य वृत्त्यनियामकतया तत्सम्बन्धमादायाव्याप्तिर्न सम्भवतीत्यत आदिपदं आदिपदेन कालिकसम्बन्धपरिग्रहः, जन्यमात्रस्य कालोपाधित्वे मानाभावेन वह्निमान् धूमादित्यादौ नाव्याप्तिसम्भावनेति प्रसिद्धोदाहरणं परित्यक्तं अतएव ज्ञानत्वहेतुं परित्यज्य जातेर्हेतुत्वमुक्तं तत्र साध्याभाववति महाकाले जातेर्वर्त्तमानत्वादव्याप्तिर्दुर्वारैवेति ध्येयम्।

(२) ननु तथापि गुणत्ववान् ज्ञानत्वात् सत्तावान् जातेरित्यादौ विषयित्वाव्याप्यत्वादिसम्बन्धेन तादृशसाध्याभाववति ज्ञानादौ ज्ञानत्व-जात्यादे-

वृत्त्यन्तं प्रतियोगिताविशेषणं, तादृशसम्बन्धश्च वह्निमान् धूमादित्यादिभावसाध्यकस्थले विशेषणताविशेषएव, घटत्वाभाववान् पटत्वादित्याद्यभावसाध्यकस्थले तु समवायादिरेव, समवाय-विषयित्वादिसम्बन्धेन[१] प्रमेयादिसाध्यके ज्ञानत्वादिहेतौ साध्यतावच्छेदकसमवायादिसम्बन्धावच्छिन्नप्रमेयाद्यभावस्य कालिकादिसम्बन्धेन योऽभावः सोऽपि प्रमेयतया साध्यान्तर्गतस्तदीयप्रतियोगितावच्छेदककालिकादिसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणे ज्ञानत्वादेर्वृत्तेरव्याप्तिवारणाय सामान्यपदोपादानं, साध्यसामान्यीयत्वञ्च यावत्साध्यनिरूपितत्वं स्वानिरूपकसाध्यकभिन्नत्वमिति यावत्[२]। अस्यैकोक्तिमात्रतया गौरवस्यादोषत्वात् कारणतावच्छेदके च भावसाध्यकस्थले

---

वर्त्तमानत्वादव्याप्तिः। न च साध्याभावाधिकरणत्वमभावीयविशेषणताविशेषेण विवक्षितमिति वाच्यम्। तथा सति घटत्वात्यन्ताभाववान् घटान्योन्याभाववान् वा पटत्वादित्यादौ साध्याभावस्य घटत्वादेर्विशेषणताविशेषसम्बन्धेनाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्या अव्याप्तिरिति चेत्। न। साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वस्य विवक्षितत्वादिति ख० ग०।

(१) साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तिमत्साध्यीयप्रतियोगिताविवक्षणे समवायसम्बन्धेन प्रामेयसाध्यकहेतौ अव्याप्तिवारणं सम्भवति अतः विषयित्वसम्बन्धानुसरणमिति भावः।

(२) अत्रानुगमस्तु साध्यतावच्छेदकसमानाधिकरणभेदप्रतियोगितानवच्छेदकत्वं भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वञ्च निरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्नं ग्राह्यमिति।

अभावीयविशेषणतांविशेषेण साध्याभावाधिकरणत्वं अभावसाध्यकस्थले च यथायथं समवायादिसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वमुपादेयं साध्यभेदेन कार्य्य-कारणभावभेदात् । न च तथापि घटान्योन्याभाववान् पटत्वादित्यत्रान्योन्याभावसाध्यकस्थले घटत्वादिरूपे साध्याभावे न साध्यप्रतियोगित्वं न वा समवायादिसम्बन्धस्तदवच्छेदकः तादात्म्यस्यैव तदवच्छेदकत्वादित्यव्याप्तिस्तदवस्थेति वाच्यम् । अत्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वेन घटभेदस्य घटभेदात्यन्ताभावत्वावच्छिन्नाभावरूपतया घटभेदात्यन्ताभावरूपस्य घटभेदप्रतियोगितावच्छेदकीभूतघटत्वस्यापि समवायसम्बन्धेन घटभेदप्रतियोगित्वात् । न चान्यत्रात्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वेऽपि घटादिभेदात्यन्ताभावाभावो न घटादिभेदस्वरूपः किन्तु तत्प्रतियोगितावच्छेदकीभूतघटत्वात्यन्ताभावस्वरूप एवेति सिद्धान्तइति वाच्यं । यथा हि घटत्वावच्छिन्नघटवत्ताग्रहे घटात्यन्ताभावाग्रहात् घटात्यन्ताभावाभावव्यवहाराच्च घटात्यन्ताभावाभावोघटस्वरूपः तथा घटभेदवत्ताग्रहे घटभेदात्यन्ताभावाग्रहात् घटभेदात्यन्ताभावाभावव्यवहाराच्च घटभेद एव तदत्यन्ताभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव इति तत्सिद्धान्तः(१) न युक्तिसहः । विनिगमकाभावेनापि घटत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभाववद्घटभेदस्यापि घटभेदात्यन्ताभावाभावत्वसिद्धेरप्रत्यूहत्वाच्च । अत एव तादृ-

---

(१) घटान्योन्याभावात्यन्ताभावाभावस्य घटत्वात्यन्ताभावस्वरूपत्वरूप-सिद्धान्त इत्यर्थः ।

प्रसिद्धान्तोनोपाध्यायमतः, अत एव स्वाभावविरहात्मकं वस्तुनः प्रतियोगितेत्याचार्याः, अन्यथा घटभेदात्यन्ताभावप्रतियोगिनि घटभेदे तल्लक्षणाव्याप्त्यापत्तेः अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदक-घटत्वात्यन्ताभावे तल्लक्षणस्यातिव्याप्त्यापत्तेश्च(१)। न चैवं घटत्वत्वा-वच्छिन्नप्रतियोगिताकघटत्वात्यन्ताभावस्यापि घटभेदस्वरूपत्वापत्ति-रिति वाच्यं। तदत्यन्ताभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यैव तत्स्वरूपत्वाभ्युपगमात् तद्वत्तायाश्च तादृशतदत्यन्ताभावाभावस्यैव व्यवहारात्। उपाध्यायैर्घटत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकघटत्वात्यन्ता-भावस्यापि घटभेदस्वरूपत्वाभ्युपगमाच्च। न चैवं साध्यसामान्यीय-प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनैव साध्याभावाधिकरणत्वं विवक्ष्यतां किं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववद्वृत्तित्वस्य प्रतियोगि-ताविशेषणत्वेनेति वाच्यम्। कालिकसम्बन्धावच्छिन्नात्मत्वप्रकारक-प्रमाविशेष्यत्वाभावस्य(२) विशेषणताविशेषेण साध्यत्वे आत्मत्वादिहेता-

---

(१) अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदके तल्लक्षणस्यातिव्याप्त्यापत्तेश्चेति ख० ग०। अयमपि पाठः समीचीनः यतः घटत्वात्यन्ताभावस्य घटभेदा-स्वरूपत्वे घटत्वं न घटभेदप्रतियोगितावच्छेदकं तदभावस्य घटभेदास्वरूप-त्वात्, घटत्वात्यन्ताभावस्य घटभेदस्वरूपत्वे तु घटत्वं घटभेदप्रतियोगित्वा-वच्छेदकमेव तदत्यन्ताभावस्य घटभेदस्वरूपत्वादिति।

(२) अथात्र साध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धसामान्येन सा-ध्याभावाधिकरणत्वं, अथ वा प्रत्येकं साध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदको यो यः सम्बन्धस्तत्तत्सम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वं इत्याशङ्काद्वयी तत्र द्वितीयाशङ्कायां प्रमाविशेष्यत्वाभावसाध्यकेऽव्याप्तिर्न सम्भवति अन्याना-

वच्याप्त्यापत्तेः कालिकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभावस्य विशेषणताविशेषेण सम्बन्धेन योऽभावस्तस्यापि साध्यरूपतया कालिकसम्बन्धवद्विशेषणताविशेषोऽपि साध्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धस्तेन सम्बन्धेनात्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वरूपसाध्याभाववति आत्मनि हेतोरात्मत्वस्य वृत्तेः(१)। प्रतियोगितावच्छेदकवत् प्रतियोग्यपि अन्योन्याभावाभावः(२) तेन तादात्म्यसम्बन्धेन साध्यतायां साध्यतावच्छेदकसम्ब-

---

मेव तादृशकालिक-स्वरूपोभयसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वात् उक्तस्थले तु तादृशोभयसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्या अव्याप्तिः सम्भवति इत्युभयाव्याप्तिदानार्थं आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभावसाध्यकानुसरणं।

(१) अत्र साध्याभावः साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताको बोध्यः, एतल्लाभायैव साध्यपदमिति भावः। तेन पूर्व्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टसाध्याभाववृत्तिपूर्व्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टसाध्याभावाभावरूपसाध्यीयप्रतियोगितावच्छेदकीभूतस्वरूपसम्बन्धेन साध्याभाववति हेतोर्वृत्तित्वेऽपि पूर्व्वोक्तस्थले नाव्याप्तिः। न च कपिसंयोग्येतत्त्वादित्यव्याप्तिवारणाय निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वे निवेशयितव्ये कालिकसम्बन्धेन निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्धेर्वोक्तविशेषणदानेऽपि उक्तस्थले अव्याप्तेरपरीहारेण तादृशस्थले अव्याप्तिवारणाय तन्निवेशोऽनुचित इति वाच्यं। अन्योन्याभावस्य कालिकसम्बन्धेन योऽभावः तस्य विशेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्यतायां आत्मत्वादिहेतावव्याप्त्यापत्तेः, अन्योन्याभावरूपसाध्याभावस्य कालिकसम्बन्धेन व्याप्यवृत्तितया निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वप्रसिद्ध्या उक्तविशेषणदाने अत्राव्याप्तिपरीहारः सम्भवत्येवेति भावः।

(२) अथैतन्मते घटभिन्नं कपालत्वादित्यव्याप्तिः तादृशसमवायसम्बन्धेन घटस्वरूपसाध्याभावाधिकरणे कपाले हेतोर्वृत्तेरिति चेत्, न,

न्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्तिसाध्यीयप्रतियोगित्वस्य नाप्रसिद्धिः। इत्य-न्तात्यन्ताभावत्वनिरूपितत्वेनापि साध्यसामान्यीयप्रतियोगिता विशे-षणीया अन्यथा घटान्योन्याभाववान् घटत्वादित्यादावव्याप्त्यापत्तेः तादात्म्यसम्बन्धस्यापि साध्याभाववृत्तिसाध्यीयप्रतियोगितावच्छेदक-त्वात्[१]। यद्वा साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्तिसाध्य-सामान्यीयप्रतियोगित्व-तदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धेनैव सा-ध्याभावाधिकरणत्वं विवक्षणीयं वृत्त्यन्तमन्यतरविशेषणं, एवञ्च घटान्योन्याभाववान् पटत्वादित्यादौ साध्याभावस्य घटत्वादेः सा-ध्यप्रतियोगित्वविरहेऽपि न क्षतिः तादृशान्यतरस्य प्रतियोगिताव-च्छेदकत्वस्यैव तत्र सत्त्वात्। न च तथापि कपिसंयोग्येतद्वृक्षत्वा-दित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतावव्याप्तिरिति वाच्यम्। निरुक्तसा-ध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिता या, निरुक्तसम्बन्धसंसर्गकनिरवच्छिन्ना-धिकरणता तदाश्रयावृत्तित्वस्य विवक्षितत्वात्। गुण-कर्मान्य-त्वविशिष्टसत्त्वाभाववान् गुणत्वादित्यादौ सत्त्वात्मकसाध्याभावाधि-करणत्वस्य गुणादिवृत्तित्वेऽपि साध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिताधिकर-णत्वस्य गुणाद्यवृत्तित्वान्नाव्याप्तिः। न चैवं कपिसंयोगाभाववान्

---

स्वावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-स्वाश्रयनिरूपितत्वोभयसम्बन्धेन तादृशप्रति-योगिताविशिष्टसाध्याभावाधिकरणत्वस्य विवक्षितत्वात् स्वपदं निरुक्त-प्रतियोगितापरं। न च निरुक्तप्रतियोगितायां अत्यन्ताभावत्वनिरूपित-त्वनिवेशो व्यर्थ इति वाच्यं। तद्विवक्षायां अत्रैव तात्पर्य्यात्।

(१) तथाच तादात्म्येन घटत्वस्वरूपसाध्याभावाधिकरणे घटत्वे हेतो-र्वृत्तित्वादव्याप्तिरिति भावः।

सत्त्वात् इत्यादौ निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्याव्याप्तिरिति वाच्यम् । केवलान्वयिन्यभावादित्यनेन ग्रन्थकृतैवास्य दोषस्य वक्ष्यमाणत्वात् । न च तथापि संयोगिभिन्नं गुणत्वादित्यादौ निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्याव्याप्तिः अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तित्वनियमवादिनये तस्य केवलान्वय्यनन्तर्गतत्वादिति वाच्यम् । अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तितानियमवादिनये अन्योन्याभावान्तरात्यन्ताभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपत्वेऽप्यव्याप्यवृत्तिमदन्योन्याभावाभावस्य व्याप्यवृत्तिस्वरूपस्यातिरिक्तस्याभ्युपगमात् तच्चाग्रे स्फुटीभविष्यति ।

ननु तथापि समवायादिना गगनादिहेतुके इदं वह्निमद् गगनादित्यादावतिव्याप्तिः वह्न्यभाववति हेतुतावच्छेदकसमवायादिसम्बन्धेन गगनादेरवृत्तेः । न च तल्लक्ष्यमेव हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन पक्षधर्म्मत्वाभावाच्चासद्धेतुत्वव्यवहार इति वाच्यम् । तत्रापि व्याप्तिभ्रमेणैवानुमितेरनुभवसिद्धत्वात्, अन्यथा धूमवान् वह्नेरित्यादेरपि लक्ष्यत्वस्य सुवचत्वात् । एवं द्रव्यं गुण-कर्म्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तिः विशिष्टसत्त्वस्य केवलसत्त्वानतिरेकितया द्रव्यत्वाभाववत्यपि गुणादौ तस्य वृत्तेः गुणे गुण-कर्म्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वेति प्रतीतेः सर्व्वसिद्धत्वात् । सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिश्च सत्ताभाववति सामान्यादौ हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन वृत्तेरप्रसिद्धेरिति चेत् । न । हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेत्वधिकरणताप्रतियोगिक-हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपितविशेषणताविशेषसम्बन्धेन निरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपितनिरुक्तसम्बन्धसंसर्गकनिरवच्छिन्नाधिकरणताश्रयवृ-

त्तित्वसामान्याभावस्य विवक्षितत्वात्, वृत्तित्वञ्च न हेतुतावच्छेदक-सम्बन्धेन विवक्षणीयं, अस्ति च सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादौ सत्ता-भावाधिकरणताश्रयवृत्तित्वस्य हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छि-न्नाधेयतानिरूपितविशेषणताविशेषसम्बन्धेन सामान्याभावो द्रव्यत्वादौ, समवायसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपितविशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छि-न्नप्रतियोगिताकसत्ताभावाधिकरणत्वाश्रयवृत्तित्वाभावस्य व्यधिकरण-सम्बन्धावच्छिन्नाभावतया संयोगसम्बन्धावच्छिन्नगुणाभावादेरिव केव-लान्वयित्वात्। द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ च द्रव्यत्वाभावाधिकरणगुणादि-वृत्तित्वस्यैव समवायसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपितविशेषणतासम्बन्धेन सत्तायां सत्त्वान्नातिव्याप्तिः। द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तिवारणा-य प्रतियोगिकान्तमाधेयताविशेषणं। वस्तुतस्तु एतल्लक्षणकर्त्तृनये विशि-ष्टसत्त्वं विशिष्टनिरूपिताधारतासम्बन्धेनैव द्रव्यत्वव्याप्यं न तु समवाय-सम्बन्धेन, तथाच प्रतियोगिकान्तमाधेयताविशेषणमनुपादेयमेव, तदु-पादाने हेतुतावच्छेदकभेदेन कार्य्य-कारणभावभेदापत्तेः। हेतुता-वच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धित्वे सतीत्यनेनापि विशेषणाद्वक्तिमान् गगनादित्यादौ नातिव्याप्तिः। ननु तथापि उभयत्वमुभयत्रैव पर्य्याप्तं न तु एकत्रेति सिद्धान्तादरे(१) घटत्ववान् घटत्व-तदभाववदुभय-त्वादित्यादौ पर्य्याप्त्याख्यसम्बन्धेन हेतुत्वेऽतिव्याप्तिः घटत्वाभाववति हेतुतावच्छेदकपर्य्याप्त्याख्यसम्बन्धेन हेतोरवृत्तेः घटो घट-पटोभय-

(१) प्रत्येकमसतो धर्म्मस्य उभयत्रापि सत्ताया अयोगात् "उभयत्व-मुभयत्रैव पर्य्याप्तं न तु एकत्र" इति सिद्धान्तस्य न सर्व्वजनसम्मतत्वं अत-उक्तं "इति सिद्धान्तादरे" इति।

मितिवत् घटोघटश्च-तदभाववदुभयमित्यप्रतीतेरिति चेत्। न। तादृशसिद्धान्तादरे हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यसमानाधिकरणत्वे सतीत्यनेनैव विशेषणीयत्वादिति। अत एव निविशतां वा वृत्तिमत्त्वं साध्यसमानाधिकरणत्वं वेति केवलान्वयिग्रन्थे दीधितिकृतः।

केचित्तु निरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिता या विशेषणतासम्बन्धेन यथोक्तसम्बन्धेन वा निरवच्छिन्नाधिकरणता तदाश्रयव्यक्त्यवर्त्तमानं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नयद्धर्मावच्छिन्नाधिकरणत्वसामान्यं तद्धर्मवत्त्वं विवक्षितं। धूमवान् वह्नेरित्यादौ पर्व्वतादिनिष्ठवह्न्यधिकरणताव्यक्तेर्धूमाभावाधिकरणावृत्तित्वेऽपि अयोगोलकनिष्ठवह्न्यधिकरणताव्यक्तेरतथात्वान्नातिव्याप्तिरित्याहुः।

अन्ये तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नस्वाधिकरणताश्रयवृत्तियन्निरवच्छिन्नाधिकरणत्वं तद्वृत्तिनिरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपितयथोक्तसम्बन्धावच्छिन्नाधिकरणतात्वकत्वमिति विशेषण-विशेष्यभावव्यत्यासे तात्पर्य्यं, स्वपदं हेतुपरं, इत्यञ्च कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात् कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वादित्यादावपि नाव्याप्तिरित्याहुरिति सङ्क्षेपः।

लक्षणान्तरमाह, 'साध्यवद्भिन्नेति साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान् तदवृत्तित्वमित्यर्थः। कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकाव्याप्तिवारणाय 'साध्यवद्भिन्नेति साध्याभाववतो विशेषणमिति प्राञ्चः। तदसत् 'साध्याभाववदित्यस्य व्यर्थत्वापत्तेः साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वस्यैव सम्यक्त्वात्(१)।

(१) साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वमित्यस्यैव व्याप्तित्वादिति क॰।

नव्यास्तु साध्यवद्भिन्ने यः साध्याभावः साध्यवद्भिन्नसाध्याभावः तदवृत्तित्वमिति सप्तमीतत्पुरुषोत्तरं मतुप्प्रत्ययः तथाच साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्याभावस्तद्वदवृत्तित्वमित्यर्थः। एवञ्च साध्यवद्भिन्नवृत्तीत्यनुक्तौ संयोगी द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिः संयोगाभाववति द्रव्ये द्रव्यत्वस्य वृत्तेः, तदुपादाने च संयोगवद्भिन्नवृत्तिः संयोगाभावो गुणादिवृत्तिः संयोगाभाव एव अधिकरणभेदेनाभावभेदात् तद्वदवृत्तित्वान्नाव्याप्तिः। न च तथापि साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वमित्येवास्तु किं साध्याभाववदित्यनेनेति वाच्यम्। यथोक्तलक्षणे तस्याप्रवेशेन वैयर्थ्याभावात्(१) तस्यापि लक्षणान्तरत्वात्। न च तथापि साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यस्तद्वदवृत्तित्वमेवास्तु किं साध्याभावपदेनेति वाच्यं। तादृशद्रव्यत्वादिमद्वृत्तित्वादसम्भवापत्तेः। साध्याभावेत्यत्र साध्यपदमप्यत एव द्रव्यत्वादेरपि द्रव्यत्वाभावाभावत्वात् भावरूपाभावस्य चाधिकरणभेदेन भेदाभावात्।

ननु तथापि घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभाववान् गगनत्वादित्यत्र घटानधिकरणदेशावच्छेदेन घटाकाशसंयोगाभावस्य गगने सत्त्वात् सद्धेतुतयाव्याप्तिः साध्यवद्भिन्ने घटे वर्त्तमानस्य साध्याभावस्य घटाकाशसंयोगरूपस्य गगनेऽपि सत्त्वात् तत्र च हेतोर्वृत्तेः। न च साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टसाध्याभाववत्त्वं विवक्षितमिति वाच्यम्। साध्याभावपदवैयर्थ्यापत्तेः। साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टवदवृत्तित्वस्यैव सम्य-

---

(१) स्वसमानाधिकरणव्याप्यतावच्छेदकधर्मान्तरघटितत्वस्यैव व्यर्थविशेषणघटितत्वरूपत्वात् साध्यवद्भिन्नवृत्तिसाध्याभाववदवृत्तित्वस्य साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वाघटितत्वेन नोक्तलक्षणं व्यर्थविशेषणघटितमिति भावः।

त्वादिति चेत्। न। अभावाभावस्यातिरिक्तत्वमतेनैतल्लक्षणकरणात् तथाच अधिकरणभेदेनाभावभेदात् साध्यवह्निके घटे वर्त्तमानस्य साध्याभावस्य प्रतियोगिव्यधिकरणस्य प्रतियोगिमति गगनेऽसत्त्वादव्याप्तेरभावात्। न चैवं साध्याभावेत्यत्र साध्यपदवैयर्थ्यं अभावाभावस्यातिरिक्तत्वेन द्रव्यत्वादेरभावत्वाभावात् साध्यवह्निमद्वृत्तिघटाभावादेस्तु हेतुमत्यसत्त्वात् अधिकरणभेदेनाभावभेदादिति वाच्यं। यत्र प्रतियोगिसमानाधिकरणत्व-प्रतियोगिव्यधिकरणत्वलक्षणविरुद्धधर्म्माध्यासस्तत्रैवाधिकरणभेदेन अभावभेदाभ्युपगमो न तु सर्व्वत्र, तथाच साध्यवह्निमद्वृत्तिघटाभावादेर्हेतुमत्यपि सत्त्वात् असम्भववारणाय साध्यपदोपादानात्।

यद्वा घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभावाभावोऽतिरिक्तः घटाकाशसंयोग-घटत्वादीनामननुगततया तथात्वस्य वक्तुमशक्यत्वात्। घटत्व-द्रव्यत्वाद्यभावाभावस्तु नातिरिक्तः घटत्व-द्रव्यत्वादीनामप्यनुगतत्वात् तथाच द्रव्यत्वादिकमादायासम्भववारणायैव साध्यपदमिति प्राञ्चरित्यास्तां(१) विस्तरः।

---

(१) ननु घटत्व-घटाकाशतत्संयोगान्यतराभाववान् गगनत्वात् इत्यत्राव्याप्तिदुर्व्वारैव घटत्व-घटाकाशतत्संयोगस्यानुगततया तत्र तादृशान्यतराभावाभावत्वकल्पने बाधकाभावात् क्लृप्तानां तथात्वकल्पनसम्भवे अतिरिक्ततथात्वकल्पनानौचित्यात् इति चेत्। न। यद्वेति वाकारस्यानास्थासूचकत्वात्। वस्तुतस्तु घटत्व-घटाकाशतत्संयोगान्यतराभावाभावस्य घटे व्याप्यवृत्तित्वेन निरवच्छिन्नवृत्तिकतया घटे किञ्चिदवच्छेदेन तादृशान्यतराभावो नास्तीति प्रतीतेरप्रामाणिकत्वं परन्तु तादृशान्यतराभावाभावस्य

"साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावेति" हेतौ साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावाधिकरणवृत्तित्वाभाव इत्यर्थः। अन्योन्याभावस्य प्रतियोग्यवृत्तित्वेन विशेषणीयः, तेन साध्यवतोव्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिकान्योन्याभाववति हेतोर्वृत्तावपि नासम्भवः(१)। नन्वेवमपि नानाधिकरणकसाध्यके वह्निमान् धूमादित्यादौ साध्याधिकरणीभूततत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिकान्योन्याभाववति हेतोर्वृत्तेरव्याप्तिर्दुर्व्वारा, प्रतियोग्यवृत्तित्वमपहाय साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावविवक्षणे तु पञ्चमेन सह पौनरुक्त्यमिति चेत्। न। वक्ष्यमाणकेवलान्वय्यव्याप्तिवदस्याप्यत्र दोषत्वात्। न च तथापि

---

तादृशान्यतरस्वरूपत्वे तादृशान्यतरान्तर्गतघटाकाशतत्संयोगस्य अवच्छिन्नवृत्तिकतया तत्प्रतीतेः प्रामाणिकत्वापत्तेः। अतिरिक्तत्वपक्षे घटे तादृशाभावस्य व्याप्यवृत्तित्वेन निरवच्छिन्नवृत्तिकतया तत्प्रतीतेर्न प्रामाणिकत्वम्। घटाकाशसंयोगाभावत्वेन साध्यत्वे तादृशसाध्यस्य केवलान्वयितया भेदस्य व्याप्यवृत्तितया तद्भिन्नत्वस्याप्रसिद्धत्वेनाव्याप्तेरशक्यपरीहारत्वादतोऽन्यतराभावः साध्यीकृत इति ध्येयम्।

(१) अथात्र स्वप्रतियोग्यवृत्तित्वविशेषणादाने अन्योन्यपदं व्यर्थं साध्यवत्प्रतियोगिकात्यन्ताभावस्य स्वप्रतियोग्यवृत्तित्वात् इति चेत्। न। धर्म्मिभेदस्य धर्म्मात्यन्ताभावानतिरिक्तत्वेन स्वप्रतियोग्यवृत्तिसाध्यवत्प्रतियोगिकाभावाप्रसिद्धेः अन्योन्यपदनिवेशे च अन्योन्याभावत्वनिरूपकप्रतियोगिताश्रयावृत्तित्वलाभात् नाभावाप्रसिद्धिरिति। वस्तुतस्तु अन्योन्याभावत्वस्य अखण्डोपाधितया अन्योन्याभावत्वनिवेशे अभावत्वापेक्षया गौरवानवकाशादिति ध्येयम्।

साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावमात्रस्यैव एतल्लक्षणघटकत्वे वक्ष्यमाण-केवलान्वय्यव्याप्तिरचासङ्गता केवलान्वयिसाध्यकेऽपि साध्याधिकरणी-भूततत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नान्योन्याभावस्य प्रसिद्धत्वादिति वाच्यं। अत्रापि तादृशान्योन्याभावस्य प्रसिद्धत्वेऽपि तद्वति हेतोर्वृत्तेरेवा-व्याप्तेर्दुर्व्वारत्वात्।

यद्वा साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावपदेन साध्यवत्त्वावच्छिन्न-प्रतियोगिताकान्योन्याभाव एव विवक्षितः। न चैवं पञ्चमाभेदः, तत्र साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिकान्योन्याभाववत्त्वेन प्रवेशः अत्र तु तादृ-शान्योन्याभावाधिकरणत्वेनेत्यधिकरणत्वप्रवेशाप्रवेशाभ्यामेव भेदात्। अखण्डाभावघटकतया च नाधिकरणत्वांशस्य वैयर्थ्यमिति न कोऽपि दोष इति दिक्।

'सकलेति' साकल्यं साध्याभाववतोविशेषणं तथाच यावन्ति साध्याभावाधिकरणानि तन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वं हेतौ व्याप्तिरि-त्यर्थः। धूमाद्यभाववज्जलह्रदादिनिष्ठाभावप्रतियोगित्वाद्वह्न्यादावति-व्याप्तिरिति यावदिति साध्याभाववतोविशेषणं, साध्याभावविशेषणत्वे तत्तद्ध्रदावृत्तित्वादिरूपेण यो वह्न्याद्यभावस्तस्यापि सकलमध्ये प्रवेशात् तावदधिकरणाप्रसिद्ध्या असम्भवापत्तेः(१)। न च द्रव्यं

---

(१) सकलस्य साध्याभावविशेषणत्वे तत्तद्ध्रदावृत्तित्वाद्यवच्छिन्नाभाव-कूटाधिकरणाप्रसिद्ध्या मथुरानाथेनासम्भवो दत्तः। जगदीशेन तत्राव्या-प्तिर्दत्ता अत्रायमाशयः स्वप्रतियोगिमत्त्वाग्रहविरोधिताघटकसम्बन्धेन सा-ध्याभाववत्त्वनिवेशो मथुरानाथाभिमतः तथाच तत्तद्ध्रदावृत्तित्वाद्यव-

सत्त्वादित्यादौ द्रव्यत्वाभाववति गुणादौ सत्त्वादेर्विशिष्टाभावादिसत्त्वादतिव्याप्तिरिति वाच्यं । तादृशाभावप्रतियोगितावच्छेदकहेतुतावच्छेदकवत्त्वस्यैव विवक्षितत्वात्। प्रतियोगिता च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्ना ग्राह्या तेन द्रव्यत्वाभाववति गुणादौ सत्तादेः संयोगादिसम्बन्धावच्छिन्नाभावसत्त्वेऽपि नातिव्याप्तिः। साध्याभावस्य साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताको बोध्यः, अन्यथा पर्व्वतादावपि वह्न्यादेर्विशिष्टाभावादिसत्त्वेन समवायादिसम्बन्धावच्छिन्नवह्न्यादिसामान्याभावसत्त्वेन च यावदन्तर्गततया तन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वाभावात् धूमस्यासम्भवः स्यात्। न च कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात् इत्यादौ एतद्वृक्षस्यापि तादृशसाध्याभाववत्त्वेन यावदन्तर्गततया तन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वाभावादेतद्वृक्षत्वस्याव्याप्तिरिति वाच्यम्। किञ्चिदनवच्छिन्नायाः साध्याभावाधि-

---

च्छिन्नाभावस्य स्वप्रतियोगिमत्ताग्रहविरोधिताघटकसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणाप्रसिद्धत्वादसम्भवसङ्गतिः, साध्यवत्ताग्रहविरोधिताघटकसम्बन्धेन साध्याभाववत्त्वनिवेशो जगदीशाभिप्रेतः तथाच कालिकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकघटत्वाभावसाध्यक-आत्मत्वादिहेतौ जन्यत्वसमन्वयः साध्यवत्ताग्रहविरोधिताघटककालिकसम्बन्धेन साध्याभावकूटस्य काले प्रसिद्धत्वात् जगदीशेनाव्याप्तिर्दत्ता। ननु गगनत्वाभाववान् पटत्वादित्यत्र लक्ष्यागमनात् कथमसम्भवः गगनत्वाभावाभावकूटाधिकरणत्वस्य गगने प्रसिद्धत्वादिति चेत्। न। घटभिन्नत्वप्रकारकप्रमाविशेष्य-गगनत्वोभयत्वावच्छिन्नाभावमादाय तद्दोषतादवस्थ्यात्, तदभावघटितकूटाधिकरणाप्रसिद्धेरिति।

करणताया इव विवक्षितत्वात्, इत्थञ्च किञ्चिदनवच्छिन्नायाः कपिसंयोगाभावाधिकरणताया गुणादावेव सत्त्वात्तत्र च हेतोरप्यभाव-सत्त्वान्नाव्याप्तिः। न च कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वादित्यादौ साध्याभावस्य कपिसंयोगादेर्निरवच्छिन्नाधिकरणत्वाप्रसिद्धाव्याप्तिरिति वाच्यं। केवलान्वयिन्यभावादित्यनेन ग्रन्थकृतैव एतद्दोषस्य वक्ष्यमाण-त्वात्। न च पृथिवी कपिसंयोगादित्यादौ पृथिवीत्वाभाववति जलादौ यावत्येव कपिसंयोगाभावसत्त्वादतिव्याप्तिरिति वाच्यं। तन्निष्ठपदेन तत्र निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात्, इत्थञ्च पृथिवीत्वाभावाधिकरणे जलादौ यावदन्तर्गते निरवच्छिन्नवृत्ति-मानभावो न कपिसंयोगाभावः किन्तु घटत्वाद्यभाव एव तत्प्रतियो-गित्वस्य हेतावसत्त्वान्नातिव्याप्तिः। न चैवमन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्ति-तानियमनये द्रव्यत्वाभाववान् संयोगवद्भिन्नत्वादित्यादेरपि सद्धेतुतया तत्राव्याप्तिः संयोगवद्भिन्नत्वाभावस्य संयोगरूपस्य निरवच्छिन्नवृत्तेर-प्रसिद्धेरिति वाच्यं। अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तितानियमनयेऽन्योन्या-भावस्याभावो न प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपः किन्त्वतिरिक्तो व्याप्यवृत्तिरन्यथा मूलावच्छेदेन कपिसंयोगिभेदाभावभानानुपपत्ते-रिति संयोगवद्भिन्नत्वाभावस्यापि निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वात्। वस्तुतस्तु सकलपदमशेषपरं न त्वनेकपरं एतद्घटत्वाभाववान् पटत्वादित्याद्ये-कव्यक्तिविपक्षके साध्याभावाधिकरणस्य यावत्त्वाप्रसिद्धाव्याप्त्यापत्तेः, तथाच किञ्चिदनवच्छिन्नाया निरूक्तसाध्याभावाधिकरणताया व्यापकीभूतो योऽभावः हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-तत्प्रतियोगितावच्छेदकहेतुतावच्छेदकवत्त्वं लक्षणार्थः। न च सत्त्वादिसामान्याभा-

यत्रापि प्रमेयत्वादिना निरुक्तसाध्याभावाधिकरणताव्यापकत्वात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः। तद्वन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वं व्यापकत्वमित्युक्तौ तु निर्धूमत्ववान् निर्व्वह्नित्वादित्यादावव्याप्तिः निर्व्वह्नित्वाभावानां वह्निव्यक्तीनां सर्व्वासामेव चालनीन्यायेन निर्धूमत्वाभावाधिकरणतावन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वादिति वाच्यं। तादृशाभावाधिकरणताव्यापकतावच्छेदकं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-यद्धर्मावच्छिन्नाभावत्वं तद्धर्मवत्त्वस्य विवक्षितत्वात् व्यापकतावच्छेदकत्वन्तु तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वं न तु तद्वन्निष्ठप्रतियोगिव्यधिकरणाभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वं तद्वति निरवच्छिन्नवृत्तिमान् योऽभावस्तत्प्रतियोगितानवच्छेदकत्वं वा, प्रकृते व्यापकतायां प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्य निरवच्छिन्नत्वस्य वा प्रवेशे प्रयोजनविरहात् तेन पृथिवी कपिसंयोगादित्यादौ नातिव्याप्तिः कपिसंयोगाभावत्वस्य निरुक्तव्यापकतावच्छेदकत्वविरहादित्येव परमार्थः।

"साध्यवदन्येति अत्रापि प्रथमलक्षणोक्तरीत्या हेतौ साध्यवदन्यवृत्तित्वाभाव इत्यर्थः। तादृशवृत्तित्वाभावस्य तादृशवृत्तित्वसामान्याभावो बोध्यः" तेन धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूमवदन्यजलह्रदादिवृत्तित्वाभावस्य धूमवदन्यवृत्तित्व-जलत्वोभयाभावस्य च हेतौ सत्त्वेऽपि नातिव्याप्तिः। साध्यवदन्यत्वञ्च अन्योन्याभावत्वनिरूपितसाध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववत्त्वं तेन वह्निमान् धूमादित्यादौ तत्तद्वह्निमदन्यस्मिन्धूमादेर्वृत्तावपि नाव्याप्तिः, न वा वह्निमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिकात्यन्ताभावस्य स्वावच्छिन्नभिन्नभेदरूपत्वा-

धिकरणे(१) पर्व्वतादौ धूमस्य वृत्तावप्यव्याप्तिः(२) तत्र साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताया अत्यन्ताभावत्वनिरूपितत्वेन अन्योन्याभावत्वनिरूपितत्वविरहात् । अन्योन्याभावत्वनिरूपितत्वञ्च तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नत्वमेव, साध्यवत्त्वञ्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्यं तेन वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्निमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य समवायेन वह्निमतोऽन्योन्याभावस्याधिकरणे पर्व्वतादौ धूमादेर्वृत्तावपि नाव्याप्तिः(३)। सर्व्वमन्यत् प्रथमलक्षणोक्तदिशावसेयं(४) । यथा चास्य न तृतीयलक्षणाभेदस्तथोक्तं तत्रैवेति समासः । सर्व्वाण्येव लक्षणानि केवलान्वय्यव्याप्त्या दूषयति, 'केवलान्वयिन्यभावादिति पञ्चानामेव लक्षणानां इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादिव्याप्यवृत्तिकेवलान्वयिसाध्यके कपिसंयो-

---

(१) स्वावच्छिन्नभिन्नभेदस्य स्वस्वरूपानतिरिक्तत्वमिति भावः ।

(२) नन्वत्र सर्व्वासम्भवसम्भवे कथमव्याप्तिदानं सङ्गतमिति चेत् । न । शब्दवान् गगनत्वादित्यादौ लक्ष्ययागगनसम्भवात् तत्र साध्यवदत्यन्ताभावस्य केवलान्वयितया तदवच्छिन्नभिन्नाप्रसिद्धेरिति । .

(३) अत्र तादात्म्यसम्बन्धेन गगनसाध्यक-तद्व्यक्तित्वहेतौ लक्ष्ययागगनान्नासम्भवः ।

(४) प्रथमलक्षणरीत्यावसेयमिति ख० । प्रथमलक्षणे यथा साध्याभावाधिकरणत्वं सम्बन्धविशेषेण विवक्षितं अत्रापि तथा साध्यवद्भेदाधिकरणत्वं सम्बन्धविशेषेण वक्तव्यं,प्रथमलक्षणे यथा हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणताप्रतियोगिक-हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयताप्रतियोगिकत्वरूपसम्बन्धेन साध्याभाववद्वृत्तित्वाभावो विवक्षितः तथा अत्रापि साध्यवदन्यवृत्तित्वाभावो विवक्षणीयः अन्यथा प्रागुक्तदोषाणाम् अत्राप्यवकाशः स्यात् इति ।

## इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे व्याप्तिवादे व्याप्तिपञ्चकं।

---

गाभाववान् सत्त्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिकेवलान्वयिसाध्यकेऽपि चाभावादित्यर्थः, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-प्रतियोगिताकसाध्याभावस्य साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य चाप्रसिद्धत्वात् कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वादित्यादौ निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वस्याप्रसिद्धत्वाच्च इति भावः। तृतीयलक्षणस्य केवलान्वयिसाध्यकासत्त्वञ्च तद्व्याख्यानावसर एव प्रपञ्चितम्। एतच्चोपलक्षणं द्वितीये कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादावव्याप्तिः अधिकरणभेदेनाभावभेदे मानाभावेन कपिसंयोगवद्भिन्नवृत्तिकपिसंयोगाभावोऽपि द्रव्यवृत्तिः कपिसंयोगाभाव एव तद्वृत्तित्वादेतद्वृक्षत्वस्य। न च साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टसाध्याभाववदवृत्तित्वं वक्तव्यं एवञ्च वृक्षस्य विशिष्टाधिकरणत्वाभावान्नाव्याप्तिरिति वाच्यं। साध्याभावपदवैयर्थ्यापत्तेः। साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टवदवृत्तित्वस्यैव सम्यक्त्वात्।सद्धेतौ हेत्वधिकरणे विशिष्टाधिकरणत्वाभावादेवासम्भवाभावात्। तृतीये साध्यवत्प्रतियोगिताकान्योन्याभावमात्रस्य घटकत्वे चालनीन्यायेनान्योन्याभावमादाय नानाधिकरणकसाध्यके वह्निमान् धूमादित्यादावव्याप्तिश्चेत्यपि बोध्यम्।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानखण्डे व्याप्तिवादरहस्ये व्याप्तिपञ्चकरहस्यं।

## अथ सिंह-व्याघ्रोक्तव्याप्तिलक्षणरहस्यम्।

नापि साध्यासामानाधिकरण्यानधिकरणत्वं साध्यवैयधिकरण्यानधिकरणत्वं वा, तदुभयमपि साध्यान-

---

### अथ सिंह-व्याघ्रोक्तव्याप्तिलक्षणरहस्यं।

'नापीति, अत्र 'साध्यासामानाधिकरण्यं' न साध्याधिकरणवृत्तित्वाभावः, द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्त्यापत्तेः द्रव्यत्वाधिकरणवृत्तित्वाभावानधिकरणत्वात् सत्तायाः। नापि साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वञ्च द्वितीयेन पौनरुक्त्यापत्तेः। किन्तु साध्याधिकरणत्वाभाववद्वृत्तित्वं तदनधिकरणत्वं तद्भिन्नत्वं अधिकरणत्वप्रवेशे प्रयोजनविरहात्, तथाच साध्याधिकरणत्वाभाववद्वृत्तिभिन्नत्वं हेतावव्यभिचारित्वमिति फलितं, अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतावव्याप्तिवारणायाधिकरणत्वप्रवेशः, अव्याप्यवृत्तेरधिकरणता तु नाव्याप्यवृत्तिः[१], साध्याधिकरणत्वञ्च साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नं ग्राह्यं अन्यथा 'गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादौ सत्ताया एव साध्यत्वेन साध्याधिकरणत्वाभाववत्सामान्यादिवृत्तिभिन्नत्वाज्जातेरित्यतिव्याप्तिः स्यात्। स्याच्च समवायेन वह्न्यादौ साध्ये संयोगेन

---

(१) व्याप्यवृत्तिरिति ख॰।

धिकरणानधिकरणत्वं तच्च तत्र यत्किञ्चित्साध्यानधि-
करणाधिकरणे धूमे चासिद्धम्।

---

धूमादिहेतावतिव्याप्तिः[१] वह्न्यधिकरणत्वाभाववज्जलह्रदाद्येव तद्-
वृत्तित्वात् धूमादेः। इत्यस्य साध्यतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छिन्न-
वह्न्यधिकरणत्वाभाववत् पर्व्वताद्यपि धूमस्य तद्वृत्तित्वाच्चातिव्याप्तिः।
वृत्तिश्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्या तेन तादृशवह्न्यधिकरणत्वा-
भाववति धूमावयवे समवायेन धूमस्य वृत्तावपि न क्षतिः। न चैवं
सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिः सत्ताधिकरणत्वाभाववति सामा-
न्यादौ हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन वृत्तेरप्रसिद्धेरिति वाच्यम्।
तादृशसाध्याधिकरणत्वाभावव्यापकान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदक-
त्वमिति विवक्षितत्वात्, साध्याधिकरणत्वाभावसमानाधिकरणेत्युक्तौ
धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूमाधिकरणत्वाभाववति जलह्रदादौ वह्नि-
मदन्योन्याभावसत्त्वादतिव्याप्तिरिति व्यापकत्वानुधावनं। अन्योन्या-
भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नं हेतुताव-
च्छेदकावच्छिन्नञ्च ग्राह्यं अन्यथा वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्न्यधि-
करणत्वाभाववति धूमावयवे धूमवदन्योन्याभावासत्त्वादव्याप्तिः स्यात्,
स्याच्च द्रव्यं जातेरित्यादौ घटत्व-पटत्वादितत्तज्जातिमतोऽन्योन्या-
भावस्य द्रव्यत्वाधिकरणत्वाभावव्यापकत्वेनातिव्याप्तिः। अव्याप्यवृत्ति-

---

(१) वह्निमान् धूमादित्यादौ च समवायेन वह्नेः साध्यत्वे संयोगेन धूमा-
दिहेतावतिव्याप्तिरिति ख०।

मतोऽन्योन्याभावस्तु साध्याव्याप्यवृत्तिरिति पृथिवी संयोगादित्यादावव्याप्यवृत्तिहेतुके व्यभिचारिणि नातिव्याप्तिरिति संक्षेपः ।

'साध्यवैयधिकरण्येति, 'साध्यवैयधिकरण्यं' साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वं, साध्यवदवृत्तित्वपरत्वे द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः, अव्याप्यवृत्तिमतोऽन्योन्याभावस्तु साव्याप्यवृत्तिरित्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतौ नाव्याप्तिः, अनधिकरणत्वमित्यत्राधिकरणत्वांशस्य प्रवेशात्तु साध्यवदन्यावृत्तित्वमित्यनेन यथाश्रुतस्य पौनरुक्त्यं, अखण्डाभावघटकतया साधिकरणत्वांशस्य न वैयर्थ्यम् । साध्यवद्भिन्नत्वञ्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकताकभेदवत्त्वं बोध्यं तेन वह्निमान् धूमादित्यादौ धूमस्य समवायेन वह्निमतोभिन्ने यत्किञ्चित्साध्यवद्भिन्ने च पर्व्वतादौ वृत्तित्वेऽपि न क्षतिः तादृशसाध्यवद्भिन्नत्वव्यापकान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वमिति तु समुदायार्थनिष्कर्षः, अन्यथा पूर्व्ववत् साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वमित्यत्र वृत्तेर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनैव वाच्यतया जातिमान् द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्त्यापत्तेः(१) शेषं पूर्व्ववत् । लक्षणद्वयमेकदैव दूषयति, 'तदुभयमपीति, 'साध्यानधिकरणानधिकरणत्वं' साध्यानधिकरणानधिकरणत्वनियतं साध्यानधिकरणावृत्तित्वव्याप्यमिति यावत्, 'तच्च' व्यापकीभूतं साध्यानधिकरणावृत्तित्वञ्च, 'तत्र' केवलान्वयिसाध्यके, 'असिद्धमित्यन्वयः साध्यानधिकरणत्वस्य साध्याधिकरणत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वस्य तत्राप्रसिद्धेः, 'यत्-किञ्चिदिति यदि साध्यानधिकरणत्वं न तत्सामान्यभेदः किन्तु

(१) सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादावप्रसिद्ध्यापत्तेरिति ख० ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे सिंह-व्याघ्रोक्तव्याप्तिलक्षणम् ।

---

साध्याधिकरणप्रतियोगिकभेदमात्रं तदा वह्निमान् धूमादित्यत्र यत्किञ्चिद्वह्न्यनधिकरणे पर्व्वतादौ वर्त्तमाने धूमेऽप्यसिद्धमित्यर्थः । अप्यर्थकचकारात् केवलान्वयिसमुच्चयः, तथाच व्यापकाभावाद्-व्याप्यीभूतं तदुभयलक्षणमपि तदुभयत्रासिद्धमिति भावः । 'साध्या-नधिकरणानधिकरणत्वमिति यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते यथोक्तलक्षण-द्वयस्य तत्स्वरूपत्वाभावादिति ध्येयं(१) ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानखण्डे व्याप्तिवादे सिंह-व्याघ्रोक्तव्याप्तिलक्षणरहस्यम् ।

---

(१) भट्टाचार्य्यानुयायिनस्तु 'तदुभयमपि' तदुभयलक्षणवाक्यमपि, 'सा-ध्यानधिकरणानधिकरणत्वं' साध्यानधिकरणानधिकरणत्वबोधजनकं, सा-ध्याधिकरणत्वसामान्याभाववद्वृत्तित्वाभाव-साध्यवत्सामान्यभिन्नवृत्तित्वाभावा-न्यतरबोधजनकमिति यावत्, 'तत्र' तादृशान्यतराभाववत्त्वस्य, 'तत्र' केव-लान्वयिसाध्यके, 'असिद्धमित्यन्वयः, साध्याधिकरणत्वसामान्याभावाप्रसि-द्धत्वादिति भावः । ननु तदुभयवाक्यं न यथोक्तान्यतराभावबोधजनकं, अपि तु साध्याधिकरणत्वप्रतियोगिकाभाववद्वृत्तित्वसामान्याभाव-साध्य-वत्प्रतियोगिकभेदवद्वृत्तित्वसामान्याभावान्यतरबोधजनकमेव साध्याधिक-रणत्वप्रतियोगिकाभाव—साध्यवत्प्रतियोगिकभेदौ च केवलान्वयिनि नाप्र-सिद्धावित्यत आह, 'यत्किञ्चिदिति, शेषं पूर्व्ववदिति प्राहुः । इति क्वचि-त्पुस्तके अधिकः पाठः ।

## अथ व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभावः ।

अथेदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यत्र समवायितया वाच्यत्वाभावो घट एव प्रसिद्धः व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य केवलान्वयित्वात् । नचैवं घट एव व्यभिचारः, साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभा-

---

### अथ व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभावरहस्यं ।

व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववादिनोऽन्यथाख्यात्यस्वीकारिणः प्राभाकरस्य मतमादाय 'साध्यात्यन्ताभाववदवृत्तित्वमिति प्रथमलक्षणे केवलान्वयिन्यव्याप्तिमुद्धरति, 'अथेति, 'समवायितयेति समवायित्वादिरूपेण वाच्यत्वावृत्तिधर्म्मेणेत्यर्थः। आदिपदात् समवेतत्व-घटत्व-पटत्वादेर्व्वाच्यत्वावृत्तिधर्म्ममात्रस्य परिग्रहः, 'घट एव प्रसिद्ध इति एवकारोऽप्यर्थे घटेऽपि प्रसिद्ध इत्यर्थः, अन्यथा तादृशाभावस्य पदार्थमात्रे प्रसिद्धत्वादवधारणासङ्गतेः। ननु प्रतियोगिना सममभावस्य विरोधाद्वाच्यत्ववति घटे कथं तदभाव इत्यत आह, 'व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभावस्येति स्वाधिकरणावृत्तिधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्येत्यर्थः, स्वपदं प्रतियोगितापरं, 'केवलान्वयित्वात्' सर्व्वत्र सत्त्वात्, प्रतियोगिमत्यप्रतियोगिमति च सत्त्वादिति यावत्, अभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिनैव समं

यवद्वृत्तित्वं हि व्यभिचारः, न च वाच्यत्वाभावस्तादृशो-घटे, इति चेत्तर्हि तादृशसाध्याभावसामानाधिकर-ण्याभावोव्याप्तिः। तथाचाप्रसिद्धिः प्रतियोग्यवृत्तिश्च धर्म्मो न प्रतियोगितावच्छेदकः तद्विशिष्टज्ञानस्याभाव-

---

विरोधी न तु प्रतियोगिमात्रेण व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नप्रति-योगी च न क्वचिदप्यस्ति अप्रसिद्धत्वादतः सर्व्वत्रैव तदवच्छिन्ना-भावः। न च वाच्यत्वमीश्वरेच्छा तत्र च गुणत्वेच्छात्वादिसमवायित्व-भगवदात्मसमवेतत्वयोः सत्त्वेन समवायित्वं समवेतत्वं वा कुतोवाच्य-त्वनिष्ठप्रतियोगिताव्यधिकरणमिति वाच्यं। वाच्यत्वं न ईश्वरेच्छा-मात्रं किन्तु तद्विषयत्वमित्यभ्युपगमादिति भावः। 'समवायित-येत्यस्य घटादिसमवायितयेत्यर्थः' इत्यप्यन्ये। यद्यपि समवायि-त्वादिना व्यधिकरणधर्म्मेण वाच्यत्वाभावस्य प्रसिद्धावपि तत्तत्साध्या-भाव-विशिष्टाभावोभयाभावादिकमादायासम्भववारणाय साध्यताव-च्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावस्यैव लक्षणघटकत्वात्तादृ-शाभावस्य च वाच्यत्वादिसाध्यकेऽप्रसिद्धत्वादव्याप्तिर्दुर्व्वारैव। न च साध्यप्रतियोगिताकाभावमात्रं लक्षणघटकमिति भ्रमादियमाशङ्केति वाच्यं। तथा सति विशिष्टाभावोभयाभावादिरूपं समानाधिकरण-धर्म्मावच्छिन्नाभावमादायैव प्रसिद्धिसम्भवेन व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्न-प्रतियोगिताकाभावपर्य्यन्तानुधावनवैफल्यात्। न च वैशिष्ट्य-व्यासज्य-वृत्तिधर्म्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावमात्रं लक्षणघटकमिति भ्रमेण इयमाशङ्केति वाच्यं। दण्डावच्छिन्नपुरुषाभावस्यैव सम-

धीहेतुत्वात् अन्यथा निर्व्विकल्पादपि घटो नास्तीति प्रतीत्यापत्तेः, गवि शशशृङ्गं नास्तीतिप्रतीतेरप्रसिद्धेः शशशृङ्गं नास्तीति च शशे शृङ्गाभाववदित्यर्थः।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे व्याप्तिवादे व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभावः॥

---

वायित्वावच्छिन्नवाच्यत्वाभावस्यापि विशिष्टाभावत्वात् समवायसमवायित्वयोर्वैशिष्ट्यावच्छेदकीभूतधर्म्मघटकत्वात्। तथापि साध्याभावपदेन साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावो न विवक्षणीयः किन्तु साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यसमानाधिकरणत्व-व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावव्यक्तिभिन्नत्वोभयाभाववदभावमात्रं विवक्षणीयं, तावतैव तत्तत्साध्यव्यक्त्यभाव-विशिष्टाभावादेर्व्वारणसम्भवात् तादृशोभयाभाववत्त्वस्य तत्र विरहात्। संयोगी द्रव्यत्वादित्यादौ द्रव्यत्व-गुणासमवेतत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावो व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावस्य तादृशाभावः सुलभः, कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वादिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादिकेवलान्वयिसाध्यके तु व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभाव एव तथा। न च केवलान्वयिनि व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभावमादायैव प्रसिद्ध्युपपादने साध्याभावपदेन साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिता-

काभाव एव विवक्षितां किं तादृशोभयाभाववद्भावविवक्षणेन केवलान्वयिनि च स्वरूपसम्बन्धेन वाच्यत्वत्वेन घटाद्यभावस्यैव तादृशस्य प्रसिद्धत्वादिति वाच्यम्। प्रमेयसाध्यके व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावमादायापि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रसिद्ध्यसम्भवात्, न हि प्रमेयत्वं कस्यचिद्व्यधिकरणधर्मः, प्रमेयत्वेन घटाभावादिरूपसमानाधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावे च मानाभावादिति पूर्व्वपक्षिणां निगूढाभिप्रायः, शेषमनुपदं वक्ष्यामः। 'न चैवमिति, 'एवं' स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावाभ्युपगमे, 'व्यभिचार इति प्रमेयत्वस्य वाच्यत्वव्यभिचारित्वमित्यर्थः, वाच्यत्वत्वेन व्यधिकरणधर्म्मेण स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रमेयत्वाद्यभावस्य साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्याधिकरणे घटे प्रमेयत्वस्य वृत्तेरिति भावः। न च प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिव्यधिकरणतादृशाभाववद्वृत्तित्वमेव व्यभिचारः अन्यथा संयोगसाध्यकसद्धेतावतिव्याप्तिरिति[1] कथमियमाशङ्केति वाच्यम्। व्याप्यवृत्तिर्या साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावाधिकरणता तदाश्रयवृत्तित्वं व्यभिचार इत्यभिप्रायेणाशङ्कनात्, व्याप्यवृत्तित्वन्तु निरवच्छिन्नत्वं। 'साध्यतेति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्वृत्तित्वमित्यर्थः, वाच्यत्वत्वेन व्यधिकरणधर्म्मेण स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रमेयत्वाद्यभावस्य साध्य-

(१) व्यभिचारित्वलक्षणस्यातिव्याप्तिरित्यर्थः सद्धेतोर्व्यभिचारित्वलक्षणाक्रान्तत्वादिति भावः।

तावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽपि न साध्याभाव इति भावः। 'तादृशः' साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-प्रतियोगिताकः। 'तद्वी'ति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्वृत्तित्वस्य व्यभिचारत्वे इत्यर्थः, 'तादृशसाध्याभावे'ति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्वृत्तित्वाभाव एव व्याप्तिर्न तु निरुक्तोभयाभाववदभाववदवृत्तित्वरूपेत्यर्थः, अव्यभिचरितत्वपदार्थस्यैव व्याप्तित्वात् अव्यभिचरितत्वपदार्थस्य च व्यभिचरितत्वस्याभावोऽव्यभिचरितत्वमिति व्युत्पत्त्या व्यभिचारसामान्याभावरूपत्वादिति भावः। 'अप्रसिद्धि'रिति, वाच्यत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकवाच्यत्वाभावस्याप्रसिद्धत्वादिति भावः। ननु अव्यभिचरितत्वपदं न यौगिकं किन्तु निरुक्तोभयाभाववान् योऽभावस्तदवृत्तित्वरूपे प्राथमिकलक्षणवाक्यार्थे पारिभाषिकमखण्डपदमेव, अथ एतस्याव्यभिचरितत्वपदार्थत्वे असम्भव एव वह्निमान् धूमादिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकवह्नि-वाच्यत्वाद्यभाववति पर्व्वत-घटादौ धूम-ज्ञेयत्वादेर्वृत्तेः। न च तद्वृत्तित्वस्यापि व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभाव-विशिष्टाभावोभयाभावादिमादायैव सर्व्वत्र लक्षणसमन्वय इति वाच्यम्। तथा सति धूमवान् वह्नेरित्यादावपि तादृशोभयाभाववदभाववदवृत्तित्वस्य व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभाव-विशिष्टाभावोभयाभावादेः(१) वह्न्यादौ सत्त्वा-

(१) व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभाव-तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नाभाव-विशिष्टाभावोभयाभावादेरिति ख०।

व्यभिचारिमात्रेऽतिव्याप्तेरिति चेत्। न। तद्वद्वृत्तित्वपदेन तद्भिन्नतत्तज्जातीयव्याप्यवृत्त्यभावप्रतियोगित्वस्य विवक्षणात्, इत्थञ्च वह्निमान् धूमादित्यादौ व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नवह्न्याद्यभाववति पर्वतादौ तत्तज्जातीयस्य धूमादेर्व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावस्य सत्त्वान्नासम्भवः, धूमवान् वह्नेरित्यादौ च तादृशोभयाभाववद्भावो व्यभिचारनिरूपकतत्तदधिकरणव्यक्त्यवृत्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकतत्तदधिकरणव्यक्त्यवृत्त्यभावः तदधिकरणे तत्तदधिकरणव्यक्तौ तत्तत्तज्जातीयस्य वह्न्यादेरभावस्यासत्त्वान्नातिव्याप्तिः। साजात्यञ्च न यथाकथञ्चिद्रूपेण व्यावर्त्तकत्वाभावात्, नापि स्वसमानाधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व-स्वासमानाधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वान्यतररूपेण अभावभेदेन प्रतियोगिताया भिन्नत्वात् साध्याभावनिष्ठसमानाधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वादेर्हेत्वभावावृत्तित्वादसम्भवापत्तेः, किन्तु स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्यतमत्व-स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदकूटवत्त्वान्यतररूपेण(१), स्वपदद्वयं प्रतियोगितापरं, धूमवान् वह्नेरित्यादौ व्यभिचारनिरूपकतत्तदधिकरणव्यक्त्यवृत्तिसामान्याभावाधिकरणे तत्तदधिकरणव्यक्तावपि तत्तत्तज्जातीयस्य वह्न्यादेर्वैशिष्ट्यव्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नाभावस्य समवायादिसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्य च सत्त्वादतिव्याप्तितादवस्थ्यमतो व्याप्यवृत्तित्वमभावविशेषणं, व्याप्य-

---

(१) 'स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदकूटवत्त्वं' स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकोयोयोऽभावस्तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदकूटवत्त्वमित्यर्थः।

वृत्तित्वस्य हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नसमानाधिकरणत्व-व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाववृत्तिभिन्नत्वोभयाभाववत्त्वं तेन न तद्दोषतादवस्थ्यं। द्रव्यं संयोगादित्याद्यव्याप्यवृत्तिहेतुके द्रव्यमात्रसमवेताभाव-गुण-कर्माद्यवृत्त्यभावादेरन्ततः सर्वत्र विशेषणताविशेषेण साध्यप्रकारकप्रमाविशेष्यत्व-साधनान्यतराभावादेश्च तादृशस्य सुलभत्वान्नाव्याप्तिः। इदं वाच्यं प्रमेयादित्यादौ घटत्वेन पटाभाव-पटत्वेन घटाभावादिमादाय प्रमेयमात्रस्यैव तादृशाभावप्रतियोगित्वान्नाव्याप्तिः। न च विशिष्टाभावादिवारणाय तदन्निष्ठतत्सजातीयाभावनिरूपितहेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकहेतुतावच्छेदकवत्त्वमेव विवक्ष्यतां किं यथोक्ताव्याप्यवृत्तित्वेनाभावविशेषणेन इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादिकेवलान्वयिहेतुके च ज्ञेयत्वत्वादिना घटाद्यभावमादायैव लक्षणसम्भवादिति वाच्यं। पृथिवी संयोगादित्याद्यव्याप्यवृत्तिहेतुके व्यभिचारिण्यतिव्याप्तेः इदं वाच्यं प्रमेयादित्यादौ तादृशाभावाप्रसिद्धेश्च। एवं द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ व्यभिचारनिरूपकतत्तदधिकरणावृत्तिसामान्याभावस्यापि सजातीयोऽभावः सत्तात्वादिना सत्ताद्यभाव एव तत्प्रतियोगित्वस्य सत्त्वादौ सत्त्वादतिव्याप्तितादवस्थ्यं अतस्तदन्निष्ठेति। न च तथापि धूमवान् वह्नेरित्यादौ तादृशोभयभाववदभावो धूमत्वादिना धूमाद्यभाव एव तद्वति जलह्रदादौ तत्सजातीयस्य वह्न्यभावस्य सत्त्वादेवं तादृशाभावो द्रव्यत्वत्वादिना धूमाद्यभावः तद्वति यावत्येव तत्सजातीयस्य वह्न्यादेर्व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावस्य सत्त्वान्नातिव्याप्तिरिति वाच्यम्। यावत्त्वेन प्रथमाभावविशेषणात्, तथाच तत्तदयोगोलकादिरूपव्यभिचारस्थलावृत्त्य-

भावोऽपि तादृशोभयाभाववत्तया यावदन्तर्गततत्तदधिकरणे तप्त-द्रयोगोलकादौ तत्तज्जातीयस्य वह्न्यादेरभावस्यासत्त्वान्नातिव्याप्तिः, इत्यत्र यावत्तत्तादृशोभयाभाववन्तोऽभावाः प्रत्येकं तत्तद्व्यक्तीनां सजातीयस्य समानाधिकरणस्य व्याप्यवृत्तेरभावस्य प्रतियोगित्वम-व्यभिचारित्वमिति समुदितार्थनिष्कर्ष इति न कोऽपि दोषः इत्य-स्वरसा दाह, 'प्रतियोग्यवृत्तिश्चेति तदवृत्तिधर्मो न तन्निष्ठप्रतियो-गिताया अवच्छेदक इत्यर्थः, तथाच व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्र-तियोगिताकाभावस्यैवाप्रसिद्धत्वाद्यथोक्तमव्यभिचरितत्वमप्रसिद्धमिति भावः।

स्यादेवन्तु केवलान्वयिनि साध्यस्याभाव एवाप्रसिद्ध इत्यव्याप्ति-रभिहितेति भ्रमेण तत्र यथाकथञ्चिद्रूपेण साध्याभावस्य प्रसिद्धिं दर्शयति, 'अथेति, 'समवायित्वेति समवायित्वादिरूपेण वाच्य-त्वावृत्तिधर्मेणेत्यर्थः। आदिपदात्समवेतत्व-घटत्व-पटत्वादेर्वाच्यत्वा-वृत्तिधर्ममात्रस्य परिग्रहः। इदमुपलक्षणं वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्ति-धर्मावच्छिन्नवाच्यत्वाभावोऽपि द्रष्टव्यः। भ्रमं निराकृत्य दूषयति, 'तर्हीति साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्वृत्तित्वं यदि व्यभिचारस्तदेत्यर्थः, 'तादृशसाध्याभावेति साध्यतावच्छेदकाव-च्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्वृत्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकतत्-वृत्त्यवृत्तित्वाभाव एव व्याप्तिः न तु साध्याभाववद्वृत्तित्वप्रतियोगिता-काभावमात्रमित्यर्थः साध्याभाववद्वृत्तित्वमात्रस्य व्यभिचारत्वे सद्धेता-वतिव्याप्तिरतः साध्याभाववद्वृत्तित्वप्रतियोगिताकाभावमात्रस्य व्याप्ति-त्वेऽपि व्यभिचारिण्यतिव्याप्त्यापत्तेस्तौल्यात्साध्याभाववद्वृत्तित्वसामा-

न्याभावस्य व्याप्तित्वे चासम्भवात् व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नस्य वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नस्य च साध्याभावस्याधिकरणे हेतोर्वृत्तेरिति भावः । किञ्च वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नसाध्याभावमादायैव केवलान्वयिनि साध्याभावप्रसिद्धिसम्भवेऽपि व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्न-साध्याभावमादाय प्रसिद्ध्यभिधानमत्यन्तमसङ्गतमेव तस्यैवाप्रसिद्ध-त्वादित्यभिप्रायेण दूषणान्तरमाह, 'प्रतियोग्यवृत्तिस्येति, सर्व्वमन्यत्पू-र्व्ववदित्याहुः ।

तदवृत्तिधर्म्मस्य तन्निष्ठप्रतियोगितावच्छेदकत्वे मानाभावे हेतु-माह, 'तद्विशिष्टेति 'असिद्धेरित्यन्तमेकोग्रन्थः, 'तद्विशिष्टज्ञानस्य' प्र-तियोगिनि प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य, 'अभावधीहेतुत्वात्' अभावलौकिकप्रत्यक्षहेतुत्वात्, 'गवि शशशृङ्गं नास्तीति प्रतीतेरसिद्धे-रिति योजना, तव नयेऽपि शशीयत्वे गोवृत्तिशृङ्गाभावप्रतियोगिता-वच्छेदकत्वप्रत्ययासिद्धेरित्यर्थः(१), शृङ्गे शशीयत्वस्य बाधितत्वेन शशी-यत्वप्रकारकशृङ्गज्ञानासम्भवादन्यथा अन्यथाख्यात्यापत्तेरिति भावः । ननु अभावलौकिकप्रत्यक्षं प्रति प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियो-गिज्ञानत्वेन न हेतुत्वं किन्तु प्रतियोगितावच्छेदक-प्रतियोगिनोर्ज्ञान-विरहदशायां नेत्याकारकाभावप्रत्यक्षवारणाय प्रतियोगितावच्छेदक-प्रतियोग्युभयविषयकज्ञानत्वेनैव हेतुत्वं लाघवात् तच्च प्रकृतेऽप्यस्ति शशीयत्व-शृङ्गयोरपि खण्डशः समूहालम्बनज्ञानसम्भवात् । न च तथापि शृङ्गे शशीयत्वस्य बाधादेव शशशृङ्गं नास्तीति प्रत्यक्षस्य

(१) गोवृत्तिशृङ्गाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वप्रत्ययस्यासिद्धेरित्यर्थ इति ख०, ग० ।

शृङ्गे शशीयत्वप्रकारकस्य असम्भव इति वाच्यम्। बाधान्तादृश-प्रत्यक्षासम्भवेऽपि शशीयत्वेन शृङ्गं नास्तीत्याकारकप्रत्यक्षे स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेनाभावे स्वातन्त्र्येण शशीयत्वप्रकारत्वे बाधकाभावात् तत्र शृङ्गे शशीयत्वस्याप्रकारत्वात्। न च तादृशप्रत्ययाभ्युपगमे "अभावप्रत्ययो हि विशिष्टवैशिष्ट्यबोधमर्य्यादां नातिशेते" इति सिद्धान्तव्याघातः, 'अभावप्रत्ययः' अभावलौकिकसाक्षात्कारः, 'विशिष्टवैशिष्ट्यमर्य्यादां' अभावे प्रतियोगितावच्छेदकविशिष्टप्रतियोगिनः प्रतियोगिताख्यवैशिष्ट्यविषयितां, 'नातिशेते' न जहाति, इति तदर्थादिति वाच्यम्। तत्र 'विशिष्टवैशिष्ट्यमर्यादामित्यस्य प्रतियोगितायां यत्किञ्चिद्धर्म्मविशिष्टस्य वैशिष्ट्यविषयितामित्यर्थादित्यत आह, 'अन्यथेति यदि प्रतियोगितावच्छेदक-प्रतियोगिनोर्ज्ञानमेवाभावप्रत्यक्षहेतुर्न तु तत्प्रकारकप्रतियोगिज्ञानं तदेत्यर्थः, 'निर्व्विकल्पकादपीति घट-घटत्वयोर्निर्व्विकल्पकमात्रानन्तरमपीत्यर्थः, मात्रपदाद्धर्म्मान्तरप्रकारकज्ञानव्यवच्छेदः, 'घटोनास्तीतीति विशेषणतावच्छेदकप्रकारकविशेषणज्ञानस्य विशिष्टवैशिष्ट्यधीहेतुतया विशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकस्य घटोनास्तीति प्रत्यक्षस्य तदानीमसम्भवेऽपि केवलविशिष्ट्ये विशेषणमिति न्यायेन घटोनास्तीति प्रत्यक्षस्यापत्तेरित्यर्थः, न हि "अभावप्रत्ययोहीतिसिद्धान्तक्षतिभिया सामग्री कार्य्यं नार्ज्जयेत्, प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य हेतुत्वे तदभावादेव तदानीं न तादृशं प्रत्यक्षं तत्सत्त्वस्थले तु विशिष्टवैशिष्ट्यधीसामग्रीसत्त्वादर्थसमाजसिद्धमेव विशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकत्वं। न चैतदतिप्रसङ्गवारणाय प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानत्वेनैव हेतुत्वमस्तु लाघवात् किं प्रति-

योगिविशेष्यकत्वप्रवेशेन, तादृशस्य ज्ञानं प्रकृतेऽपि सम्भवति शशी-यत्वप्रकारेण लोभादेरेव ज्ञानसत्त्वात् पूर्व्वपक्षिणः अन्यथाख्या-त्यनभ्युपगमेन रजतत्वप्रकारकशुक्तिज्ञानाद्रजताभावप्रत्यक्षापादनस्या-सम्भवादिति वाच्यम्। तथापि शशीयत्वेन शृङ्गं नास्तीति प्रत्यक्षा-सम्भवात् अभावसाक्षात्कारो हि प्रतियोगिनि तद्धर्म्मविशिष्टमवगाह-मान एव तद्धर्म्मस्य अवच्छेदकत्वमवगाहते नान्यथेति नियमात्, अन्यथाख्यात्यनभ्युपगमेन शृङ्गे शशीयत्ववैशिष्ट्यावगाहनस्य च असम्भवादिति भावः। इदमापाततः न्यायनये शृङ्गे शशीयत्वस्य बाधि-तत्वेऽपि बाधाप्रतिसन्धानदशायां शृङ्गे शशीयत्वप्रकारकज्ञानस्य भ्रमरूपस्यैव सम्भवेन शशशृङ्गं नास्तीत्याकारकप्रत्यक्षे बाधकाभावात्। बाधप्रतिसन्धानदशायामपि शशीयत्वांशे निर्धर्मितावच्छेदकादेकत्र द्वयमिति न्यायेन शशीयत्व-शृङ्गत्वोभयप्रकारकज्ञानाच्छशीयत्वांशे निर्धर्मितावच्छेदकस्य एकत्र द्वयमिति न्यायेन शशीयत्व-शृङ्गत्वोभय-विशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकस्य शशशृङ्गं नास्तीति प्रत्यक्षस्य सम्भवाच्च। न हि प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिप्रमात्वेन हेतुत्वं, गौर-वात् किन्तु तादृशनिश्चयत्वेन। एतेन शृङ्गे न शशीयत्वमिति बाधनिश्चये सत्यपि शशशृङ्गं नास्तीति प्रतीतेरनुभवसिद्धतया शशी-यत्वरूपव्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावे शशीयत्वावच्छि-न्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन शशीयत्वेन रूपेण शृङ्गं नाच प्रकारः किन्तु शशे गोवृत्तिशृङ्गाभावः गोवृत्तिशृङ्गे शशीयत्वाभावो वा तद्वि-षयः। न च बाधप्रतिसन्धानदशायां तथाविषयत्वेऽपि तदप्रति-सन्धानदशायां शशीयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकशृङ्गाभावं एव य-

थोक्तप्रकारेण विषय इति वाच्यम्। प्रतीतेः समानाकारकत्वेऽपि पुरुषावस्थावैचित्र्येण विषयवैचित्र्यस्य क्वाप्यदर्शनात्। न च तथापि प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिज्ञानस्य स्वातन्त्र्येणाभावप्रत्यक्षं प्रति हेतुत्वानङ्गीकर्तॄणां नव्यानां नये शृङ्गे न शशीयत्वमिति बाधप्रतिसन्धानदशायामपि शशीयत्वेन शृङ्गं नास्तीति प्रत्यक्षसम्भवात् तदेव व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावे मानं तत्र स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन शशीयत्वस्य प्रतियोगितासम्बन्धेन शृङ्गत्वविशिष्टस्य चाभावे प्रकारतया बाधबुद्धेरप्रतिबन्धकत्वादिति वाच्यम्। अभावलौकिकसाक्षात्कारो हि तद्धर्मविशिष्टस्य प्रतियोगिनोऽभावे प्रतियोगिताख्यवैशिष्ट्यमवगाहमान एव तद्धर्मस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वमवगाहते न तु तदनवगाह्य इति नियमेन तादृशप्रतीतेरसम्भवात् अन्यथा घटत्वेन कम्बुग्रीवादिमान्नास्तीत्यपि प्रत्यक्षं स्यात्। न चेष्टापत्तिः, घटोनास्ति घटत्वेन घटोनास्तीत्यादिप्रत्यक्षस्यैव सर्व्वसिद्धत्वादिति कस्यचित् प्रलपितमप्यपास्तं। शृङ्गे न शशीयत्वमिति बाधप्रतिसन्धानदशायामपि शशशृङ्गं नास्तीति प्रतीतेः एकत्र द्वयमिति न्यायेन शशीयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकशृङ्गाभावविषयकत्वसम्भवात्। घटत्वेन कम्बुग्रीवादिमान्नास्तीत्यादिप्रत्यक्षाभावस्य विवादग्रस्ततया यथोक्तनियमस्यापि विवादग्रस्तत्वाच्च। वस्तुतस्तु शवि शशशृङ्गं नास्ति शशीयत्वेन शृङ्गं नास्तीत्यादिप्रतीतौ मानाभाव एव, प्रमाणसत्त्वेऽपि शशीयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेनाभावे शृङ्गस्य स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन शृङ्गाभावे शशीयत्वस्य च भ्रमएव अतिरिक्तव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावा-

भ्युपगमे तत् प्रत्यक्षं प्रत्यनन्ततत्तत्प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारक-प्रतियोगिज्ञानस्य प्राचामये हेतुत्वकल्पने अतिरिक्ताभाव-तत्प्रति-योगित्व-तदवच्छेदकत्वादिकल्पने गौरवात्। न च तादृशप्रतीतीनां तत्तदंशे प्रमात्वमपि सर्व्वानुभवसिद्धमिति वाच्यं। अप्रसिद्धेः, अन्यथा शुक्तौ रजतत्वज्ञानेऽपि प्रमात्वानुभवस्य सुवचतया शुक्तेरपि रजतत्वापत्तेः इत्येव तत्त्वं।

प्राञ्चस्तु प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्याहार्य्यारोपः संसर्गाभावबुद्धौ कारणं अन्यथा ह्रदादौ संयोगादियत्किञ्चित्सम्ब-न्धावच्छिन्नवह्न्यादिसामान्याभावग्रहदशायां समवाय-स्वरूपादिसम्ब-न्धान्तरावच्छिन्नतदभावानां सर्वेषामेव नियतं ग्रहापत्तेः। आरोपस्य हेतुत्वे तु तत्तत्सम्बन्धेन प्रतियोग्यारोपविलम्बादेव विलम्बसम्भवात्, एवञ्च गवि शृङ्गस्याबाधितत्वेनारोपाभावात् शशीयत्वेन शृङ्गाभाव-प्रत्ययस्तत्र कथं स्यात् येन तत्प्रमाणं भवेदित्याहुः। तदसत् आरोपस्य हेतुत्वे मानाभावात्। न हि ह्रदे वह्निमारोप्यैव वह्निर्नास्तीत्यनु-भवः, ह्रदादौ संयोगादियत्किञ्चित्सम्बन्धेन वह्न्यादिसामान्याभाव-ग्रहदशायान्नियतं समवाय-स्वरूपादिसम्बन्धान्तरावच्छिन्नाभावग्रहस्य सत्यसंसर्गाग्रहे इष्टत्वात् सर्वत्रैव 'वह्निर्नास्ती'त्येवाकारात् समवायेन वह्निर्नास्तीत्याद्याकारस्य च समवायत्वादिना समवायाद्युपस्थिति-विलम्बेनैव विलम्बसम्भवात्। अन्यथा प्रतियोग्यारोपो नाभावधीमात्रे हेतुरभावभ्रमे व्यभिचारात्। नापि तत्प्रमायां, पाकरक्तघटे श्यामा-भावप्रत्ययात् तत्र च श्यामारोपासम्भवात् भ्रम-प्रमासाधारणाहार्य्य-ज्ञानमात्रस्यैव हेतुत्वे च प्रकृतेऽपि सम्भवात् गौरवाच्च। किञ्च

प्रतियोग्यारोपस्य कारणत्वे हि गुणादौ गुणाद्यन्यत्वविशिष्टसत्त्वाद्यभावप्रत्ययो न स्यात् तत्प्रतियोगिनः सत्त्वादेरारोपाभावात् किन्तु प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकप्रतियोग्यभाववति प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिज्ञानं प्रतियोग्यारोपः स एव कारणं तच्च प्रकृतेऽपि अक्षतमेव अश्वीयत्वावच्छिन्नशृङ्गाभाववति गवि अश्वीयत्वप्रकारकशृङ्गप्रतीतेः सम्भवात्। अपि चैवमपि गवि अश्वशृङ्गं नास्तीतिप्रत्ययो मास्तु अश्वे अश्वशृङ्गं नास्तीति प्रतीतौ न कोपि विरोधः। तत्र शृङ्गारोपस्यापि सम्भवात् अस्यैव व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावे प्रमाणत्वस्य सुवचत्वादिति कृतं पल्लवितेन।

ननु व्यधिकरणधर्मस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वानभ्युपगमे अश्वशृङ्गं नास्तीत्यादौ कीदृशान्वयबोधः। अश्वीयत्व-शृङ्गत्वोभयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्याप्रसिद्धतया तेन सम्बन्धेन अभावे अश्वीयत्वावच्छिन्नशृङ्गप्रकारकान्वयबोधस्य अश्वीयत्वांशे भ्रमात्मकस्यासम्भवात्। न च प्रतियोगितामात्रसम्बन्धेनाभावे अश्वीयत्वावच्छिन्नशृङ्गस्यान्वयः तादृशव्यवहारस्य सार्वत्रिकत्वेनातिप्रसङ्गविरहादिति वाच्यं। नञाद्यर्थेऽभावेऽन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेनैव प्रतियोगिनोऽन्वयस्य व्युत्पन्नत्वादित्यत आह, 'अश्वेति', 'वृत्ति चेति वृत्त्यस्य चेत्यर्थः, गवि अश्वशृङ्गं नास्तीत्यादौ च गोवृत्तिशृङ्गं अश्वीयत्वाभाववत् अश्वीयत्वं गोवृत्तिशृङ्गवृत्तित्वाभाववदिति वार्थः(१)।

---

(१) अश्वशृङ्गं गोवृत्तित्वाभाववदित्याद्यन्वयबोध इति ख०।

इदमापाततः शशशृङ्गं नास्तीत्यादिवाक्यश्रवणानन्तरं शशः शृङ्गवान् शृङ्गाभावो न शशवृत्तिरित्यादिभ्रमानुदयापत्तेः। एतेन शृङ्गं शशीयत्वाभाववत् इत्यपि नार्थः, तादृशवाक्यश्रवणानन्तरं शृङ्गं शशीयमितिभ्रमानुपपत्तेः। वस्तुतस्तु नञाद्यर्थेऽभावे प्रतियोगिनोऽन्वये अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं विशिष्टधर्मः संसर्ग इति न व्युत्पत्तिः, किन्तु परस्परविशेष्य-विशेषणभावेनान्वयितावच्छेदकमवच्छिन्नत्वं स्वनिष्ठप्रतियोगिता चेति त्रयं संसर्ग इत्येव व्युत्पत्तिः, तथाच प्रकृते शशीयत्वस्य शृङ्गत्वस्यावच्छिन्नत्वस्य शृङ्गनिष्ठप्रतियोगित्वस्य च खण्डशः प्रसिद्धत्वात् परस्परविशेष्य-विशेषणभावेन तच्चतुष्टयसंसर्गकः संसर्गांशे भ्रमात्मकोऽभावे शशीयत्वावच्छिन्नशृङ्गप्रकारकान्वयबोधः। एवं पीतः शङ्खो नास्तीत्यादावपि, अत एव गुरुधर्मस्य प्रतियोगितानवच्छेदकत्वनयेऽपि कम्बुग्रीवादिमान्नास्तीत्यादिबुद्धौ नान्वयबोधानुपपत्तिः कम्बुग्रीवादिमत्त्वस्यावच्छिन्नत्वस्य कम्बुग्रीवादिमद्व्यक्तिनिष्ठप्रतियोगित्वस्य च खण्डशः प्रसिद्धत्वात् परस्परं विशेष्य-विशेषणभावेन[१] एतत्त्रितयसंसर्गकस्य संसर्गांशे भ्रमात्मकस्यैव कम्बुग्रीवादिमद्व्यक्तिप्रकारकाभावविशेष्यकान्वयबोधस्य सम्भवात्। शशशृङ्गवत्पीतशङ्खवदित्यादिविशिष्टबुद्धिं प्रति प्रतिबन्धकत्वमपि परस्परविशेष्य-विशेषणभावेन तादृशचतुष्टयसंसर्गस्याभावे शशीयत्व-पीतत्वाद्यवच्छिन्नशृङ्ग-शङ्खादिप्रकारकस्य निश्चयस्यैवेति तत्त्वं।

केचित्तु अन्वयितावच्छेदकमवच्छिन्नत्वं स्वनिष्ठप्रतियोगित्वञ्चेति

(१) विशेषण-विशेष्यभावेनेति ख० ग०।

अयं स्वरूपः संसर्गः सम्बन्धता च व्यासज्यवृत्तिरित्येव व्युत्पत्तिरिति न काप्यनुपपत्तिरित्याहुः।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे व्याप्तिवादे व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव-रहस्यं।

---

## अथ पूर्व्वपक्षः।

अथ साध्यासामानाधिकरण्यानधिकरणत्वे सति साधिकरणत्वं व्याप्तिः केवलान्वयिनि साध्यासामानाधिकरण्यं निरधिकरणे आकाशादौ प्रसिद्धमिति चेत्।

---

## अथ पूर्व्वपक्षरहस्यं।

केषाञ्चिल्लक्षणं दूषयितुमाशङ्कते(१), 'अथेति, ननु किमिह असामानाधिकरण्यं तदधिकरणवृत्तित्वाभावः तदनधिकरणवृत्तित्वम् वा, आद्ये व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिः साध्यसमानाधिकरणत्वे सतीत्यस्यैव सम्यक्त्वे अभावद्वयघटनायां गौरवं 'साधिकरणत्वमित्यस्य वैयर्थ्यञ्च। द्वितीये समवायादिना आकाशादिहेतुके वह्निमानाकाशादित्यादावतिव्याप्तिवारणाय हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धिवाचकस्य साधिकरणपदस्य सार्थकत्वेऽपि केवलान्वयिन्यव्याप्तिः 'केवलान्वयिनि साध्यासामानाधिकरण्यं हि निरधिकरणे आकाशादौ प्रसिद्धमिति मूलविरोधश्च। नैवं 'साध्यासामानाधिकरण्येत्यत्र साध्यस्यासामानाधिकरण्यं येषु तानि साध्यासामानाधिकरण्यानीति बहुव्रीहिः तेषामनधिकरणत्वं तदभाववत्त्वं तस्मिन् सति साधिकरणत्वं तदवच्छिन्नाधिकरणताकत्वं सतिसप्तम्या अवच्छेदकत्वबोध-

---

(१) केषाञ्चिल्लक्षणमाशङ्कते इति ख० ग०।

न। साध्यासामानाधिकरण्यं हि न साध्यानधिकरणाधिकरणत्वं साध्याधिकरणानधिकरणत्वं वा केवलान्वयिनि यत्किञ्चित्साध्याधिकरणानधिकरणे धूमे चा-

---

मात् अवच्छेदकत्वञ्चात्यन्यूनवृत्तित्वं तथाच साध्यवदवृत्तिसकलपदार्थाभाववत्त्वं यदधिकरणताया अन्यूनवृत्ति तत्त्वमित्यर्थः, यत्पदं हेतुपरं, अन्यूनवृत्तित्वं व्यापकत्वं, तच्च तत्समानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वं, अभावश्च साध्यवदवृत्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकोबोध्यः तेन वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नाभावं जलादिलक्षणतादृशतत्तत्पदार्थविशेषाभावञ्चादाय नातिव्याप्तिः। हेत्वधिकरणता च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्या तेन धूमावयवादिमादाय नाव्याप्तिः। न च यस्यान्यूनवृत्ति तत्त्वमित्येवमेवास्तु किमधिकरणताप्रवेशेनेति वाच्यं। यथा सन्निवेशे वैयर्थ्याभावात्। न च द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः वृत्तिमन्मात्रस्यैव कालिक-दैशिकविशेषणताभ्यां साध्यवन्महाकाल-दिगादिवृत्तित्वेन द्रव्यत्ववदवृत्तिरवृत्तिरेव(१) तदभावस्य सत्ताधिकरणताव्यापकत्वात्। यदि चावृत्तेरपि काल-दिग्वृत्तित्वं तदा द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादावव्याप्तिः द्रव्यत्ववदवृत्तेरप्रसिद्धेरिति वाच्यं। विशेषणताविशेषेण साध्यवदवृत्तीनां विशेषणताविशेषेणाभावस्य विवक्षितत्वात् एतच्चानुगतमपीति दिक्।

ननु केवलान्वयिनि साध्यवदवृत्तित्वं कुत्र प्रसिद्धमित्यत आह

---

(१) द्रव्यत्ववद्वृत्तित्वेन तदवृत्तिरवृत्तिरेवेति ग०।

तेः। नापि स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रति-
गिसाध्यसामानाधिकरण्यं पर्व्वतीयवह्नेर्म्महानसीय-
मसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वात् द्रव्यत्वा-
रव्याप्यवृत्त्यव्याप्यतापत्तेश्च। न च प्रतियोगिविरो-

'केवलान्वयिनीति यथाश्रुतं, यथासम्भवं विकल्प्य दूषयति, 'साध्या-सामानाधिकरण्यं हीति, 'साध्यानधिकरणाधिकरणत्वं' साध्यानधि-करणवृत्तित्वं, 'साध्याधिकरणानधिकरणत्वं' साध्याधिकरणवृत्तित्वा-भावः, 'केवलान्वयिनीति आद्ये इत्यर्थः, साध्यानधिकरणस्याप्रसिद्धेरि-त्यर्थः। द्वितीये त्वाह, 'यत्किञ्चिदिति साध्याधिकरणविशेषणमेतत्, 'अनधिकरणे' वृत्तित्वाभाववति, साध्याधिकरणवृत्तित्वसामान्याभा-वोक्तौ च द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिरिति भावः। प्रकारान्तरेणा-व्यभिचारित्वमाशङ्क्य निराकरोति, 'नापीति, 'स्वं' साधनं, एवञ्च केवलान्वयिन्यपि नाव्याप्तिः ज्ञेयत्वादिसमानाधिकरणघटाभावादिप्र-तियोगित्वाभावस्य वाच्यत्वादौ सत्त्वादिति भावः। 'पर्व्वतीयवह्नेरिति, एवं महानसीयवह्नेः[१] पर्व्वतीयधूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगि-त्वात् कुत्रापि वह्नौ न तादृशाभावाप्रतियोगित्वमित्यर्थः। नन्वप्रति-योगिपदेन प्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नं वक्तव्य-मित्यस्वरसादाह, 'द्रव्यत्वादेरिति, 'अव्याप्यवृत्तीति संयोगादीत्यर्थः, 'प्रतियोगिविरोधित्वमिति प्रतियोग्यधिकरणावृत्तित्वमित्यर्थः, प्रति-योग्यनधिकरणवृत्तित्वोक्तौ उक्ताव्याप्तितादवस्थ्यात् अग्रे संयोगी

(१) एवमपर्व्वतीयवह्नेरिति ख॰ ग॰।

धित्वं व्याप्यवृत्तित्वं वा अभावविशेषणं देयं, संयोगादौ साध्ये सत्त्वादेरनैकान्तिकत्वाभावप्रसङ्गात्। न हि प्रतियोगिविरोधी संयोगादेरपरोऽत्यन्ताभावोऽस्ति, अधिकरणभेदेनाभावभेदाभावात्। नापि साधनवन्निष्ठान्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवत्कत्वं व्याप्तिः मूले

---

सत्त्वादित्यत्रातिव्याप्त्यभिधानासङ्गतेश्च। 'व्याप्येति स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदको य एकव्यक्तिमात्रवृत्तिधर्मस्तद्वत्त्वं व्याप्यवृत्तित्वं, प्रमेयत्वादिमादाय संयोगाभावादेरपि व्याप्यवृत्तित्ववारणाय एकव्यक्तिमात्रवृत्तीति, कालिकविशेषणत्व-दैशिकविशेषणताविशेषातिरिक्तसम्बन्धेनावच्छिन्नवृत्तिको यस्तदन्यत्वं वा व्याप्यवृत्तित्वं(१) व्यतिरेकिधर्ममात्रस्यैव काले दिगुपाधौ चाव्याप्यवृत्तितया अवच्छिन्नवृत्तिकत्वात् तृतीयान्तं वृत्तिविशेषणं, व्याप्यवृत्तिश्च न किञ्चिदवच्छिन्ना, न तु अनवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वं(२) व्याप्यवृत्तित्वं उक्ताव्याप्तेस्तादवस्थ्यात् अये संयोगी सत्त्वादित्यत्रातिव्याप्त्यभिधानासङ्गतेश्च संयोगाभावस्यापि गुणादौ निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वात्।

केचित्तु स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं व्याप्यवृत्तित्वं, प्रतियोगिता च वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नत्वेन विशेषणीया, तेन नाप्रसिद्धिरित्याहुः।

---

(१) अत्र दैशिकविशेषणतापदेन दिक्कृतविशेषणता ग्राह्या।
(२) निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वमिति ख०।

ऽस्ः कपिसंयोगवान्नेत्यबाधितप्रतीतेः तदन्योन्याभाव-
यापि तत्र सत्त्वात् । न चैवं भेदाभेदः, अवच्छेदकभेदेन

---

'अनैकान्तिकत्वेति व्यभिचरितत्वेत्यर्थः, सत्तासमानाधिकरण-संयोगादेरभावः प्रतियोग्यसमानाधिकरणो व्याप्यवृत्तिश्च न भवत्येव द्रव्ये तस्य संयोगसमानाधिकरणत्वात् किन्तु घटत्वादेरभाव एव तादृशस्तदप्रतियोगित्वात् संयोगस्येति भावः । ननु सत्ताधिकरण-गुणादिनिष्ठसंयोगाभावो द्रव्यवृत्तिसंयोगाभावादतिरिक्तः स च प्रतियोग्यसमानाधिकरणो व्याप्यवृत्तिश्च तत्प्रतियोगित्वात् संयोगस्य नातिव्याप्तिरित्यत आह, 'न हीति, 'अधिकरणेति, गौरवात् मानाभावाच्चेति भावः । स्वाधिकरणे निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वं यदि स्वसमानाधिकरणत्वमुच्यते तदा तु न कोऽपि दोष इत्यवधेयं । 'तद-न्योन्याभावस्य' कपिसंयोगवदन्योन्याभावस्य, 'तत्र' वृक्षे, तथाच कपि-संयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादावव्याप्तिरिति भावः, 'भेदाभेद इति भेद-सहितोऽभेद इत्यर्थः, मध्यपदलोपिसमासात्, साहित्यं सामानाधि-करण्यं । यद्वा 'न चैवमित्यनन्तरं वृक्ष इतिशेषः, 'भेदाभेद इत्यत्र भेदा-दौ अस्य स्तः इत्यर्थः, "अ-इकौ मत्वर्थे" इत्यनेनाप्रत्ययः, यथा जयन्ती अस्मिन् तिष्ठतीति वैजयन्तो विष्णुः, 'वैजयन्ती' वनमाला, तथाच वृक्षो भेदाभेदवान् इत्यर्थः । 'तत्सत्त्वेति तयोरेकत्र सत्त्वेत्यर्थः । केचित्तु तन्नेत्यादौ चादिप्रत्ययेन सप्तम्यादिरिव साधनसमानाधिकर-णान्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवत्त्वलमित्यत्र बहुव्रीह्युत्तरककारेण मतुप्प्रत्ययादिः स्मर्य्यते तेन च व्याप्यत्वरूपसम्बन्धाश्रयः साध्या-

तत्सत्त्वाभ्युपगमात् साधनवन्निष्ठान्योन्याभावाप्रति-योगि साध्यवद्यस्येति षष्ठ्यर्थव्याप्य-व्यापकभावानिरू-पणात् साध्य-साधनयोर्व्याप्तिनिरूप्यत्वात् वह्निमत्त्वव्-त्तस्य धूमवन्महानसनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगित्वाच्च

---

त्वरूपसम्बन्धाश्रयो वा स्मर्य्यते, विग्रहवाक्यस्थषष्ठ्या अर्थवतो बहु-व्रीह्युत्तरककारस्यारितमतुबाद्यर्थत्वनियमात् तत्र प्रथमे तदेकदेशे व्याप्यत्वे निरूपितत्वसम्बन्धेन साध्यवतोऽन्वयः, द्वितीये तदेकदेशे साध्ये आधेयतासम्बन्धेन साध्यवतोऽन्वयः, तथाच साधनसमानाधिकरणा-न्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवन्निरूपितव्याप्यत्वं साधनसमानाधिक-रणान्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवद्वृत्तिसाध्यव्याप्यत्वं वा लक्षणवाक्यार्थः, स च दुर्ज्ञेयः घटकीभूतव्याप्यत्वस्यैवाज्ञानादित्याह, 'साधनेति, 'इति षष्ठ्यर्थेति इत्यत्र विग्रहवाक्ये या षष्ठी तदर्थस्य व्याप्यत्वस्याज्ञानादित्यर्थः तथाच तदज्ञाने तद्गत एव प्रकृतलक्षणवाक्यस्थककारस्यारितमतुबा-द्यर्थत्वनियमेन प्रकृतलक्षणवाक्यार्थस्यापि दुर्ज्ञेयत्वमिति भावः। न-विग्रहवाक्यस्थषष्ठ्याः संयोगत्वादिरूपेण संयोगादिरूपहेतुतावच्छेद-सम्बन्ध एवार्थो न तु व्याप्यत्वादिरित्यस्वरसादाह,'साध्य-साधनयोरि-भावप्रधानो निर्देशः साध्यत्व-साधनत्वयोरित्यर्थः,'व्याप्तिनिरूप्यत्वादि व्याप्तिज्ञानाधीनज्ञानविषयत्वादित्यर्थः । साध्यत्वं हि व्याप्तिप्रतियो-गित्वं, साधनत्वं व्याप्त्यनुयोगित्वं तथाचात्माश्रय इति भावः । न साध्यत्वं साधनत्वं न प्रवेशनीयं धूमत्व-वह्नित्वादिनैव विशिष्य व्या-

विशेषाभावकूटादेवाभावव्यवहारोपपत्तौ सामान्याभावे मानाभावात्। नापि साधनसमानाधिकरणयावद्धर्मनिरूपितवैयधिकरण्यानधिकरणसाध्यसामा-

---

निवक्तव्या अतो दूषणान्तरमाह,‘वह्निमत्पर्व्वतस्येति। ननु यत्समानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितासामान्यं यद्धर्मावच्छिन्नपर्य्याप्तावच्छेदकताकं न भवति तद्धर्मावच्छिन्नेन सह तस्य सामानाधिकरण्यमित्येव तस्यार्थः, एवञ्च धूमसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगित्वं न वह्नित्वावच्छिन्नावच्छेद्यमिति नाव्याप्तिरित्यत आह, ‘विशेषाभावेति, ‘अभावव्यवहारेति हृदो वह्निसामान्याभाववानित्यादिवह्नित्वादिसामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रकारकप्रतीत्युपपत्तेरित्यर्थः, सामान्याभाव इति सामान्याभावस्यातिरिक्तस्य सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वे मानाभावादित्यर्थः(१) किन्तु विशेषाभावस्यैव वह्नित्वादिसामान्यधर्मः प्रतियोगितावच्छेदकः, तथाच धूमसमानाधिकरणानां प्रत्येकं तत्तद्वह्निमदन्योन्याभावानामेव प्रतियोगितावच्छेदको वह्नित्वावच्छिन्नोवह्निरित्यव्याप्तिस्तदवस्थैव। न चैवं धूमवान् वह्निसामान्याभाववान् इत्यादिप्रत्ययस्यापि प्रमात्वापत्तिः वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य तत्तदन्याभावस्य धूमवति सत्त्वादिति वाच्यं। वह्नित्वासामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं तादृशप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन वह्नित्वावच्छिन्नो वा व्याप्यवृत्तिः तच्च विशेषाभावकूट एव पर्य्या-

---

(१) विशेषाभावातिरिक्तस्य सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वे मानाभावादित्यर्थं इति स० ग०।

नाधिकरण्यं साधनसमानाधिकरणस्य प्रमेयत्वादे-र्वैयधिकरण्याप्रसिद्धेः महानसादौ समवायितया वह्नि-वह्निमतोरत्यन्तान्योन्याभावयोः सत्त्वात् धूमा-

---

भ्रोति न तु प्रत्येकाभाव इति, द्रव्यं द्रव्यत्व-गुणत्वोभयवदिति प्रत्यक्षवत्तत्प्रतीतेरप्रमात्वादिति हृदयं। 'साधनेति साधनसमानाधिकरणा यावन्तो धर्मास्तेषां वैयधिकरण्यस्यानधिकरणं यत्साध्यं तत्सामानाधिकरण्यमित्यर्थः। अत्र साधनवैयधिकरण्यानधिकरणेत्युक्तौ द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिरतः 'साधनसमानाधिकरणधर्मेति, धूमवान् वह्नेरित्यादावपि धूमादेर्वह्न्यादिसमानाधिकरणद्रव्यत्वादि-वैयधिकरण्यानधिकरणत्वादतिव्याप्तिरतः 'यावदिति, वैयधिकरण्यञ्च तदनधिकरणवृत्तित्वं, न तु तदधिकरणावृत्तित्वं, 'प्रमेयत्वादेर्वैयधिकरण्याप्रसिद्धेरित्युत्तरग्रन्थासङ्गतेः। न च साधनसमानाधिकरण-यावद्धर्माधिकरणाप्रसिद्ध्या तदनधिकरणमप्यप्रसिद्धमिति वाच्यं। प्रत्येकनिरूपितवैयधिकरण्यस्योक्तत्वात्। नन्वेवं वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्नेर्धूमसमानाधिकरणमहानसत्वाद्यनधिकरणायःपिण्डादि-वृत्तित्वाधिकरणतया अव्याप्तिः। न च वैयधिकरण्यपदेन तदनधिकरणमात्रवृत्तित्वं वक्तव्यमिति(१) वाच्यं। रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादावव्याप्तेः पटरूपस्य पृथिवीत्वसमानाधिकरणयावद्धर्मान्तर्गतघटत्वानधिकरणमात्रवृत्तित्वात् घटीयरूपस्य पृथिवीत्वसमाना-

---

(१) तदनधिकरणमात्रवृत्तित्वमुक्तमितीति ख०।

वव्युक्तलक्षणाभावाच्च। अथानौपाधिकः सम्बन्धो-व्याप्तिः उपाधिश्च साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकः, व्यापकत्वन्तु तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं, व्यभिचारे चावश्यमुपाधिः, प्रतियोगित्वं न विरोधित्वं सद्वा-

---

धिकरणयावदन्तर्गतपटत्वानधिकरणमात्रवृत्तित्वादिक्रमेण कस्यापि रूपस्य साधनसमानाधिकरणयावद्धर्मप्रत्येकनिरूपितवैयधिकरण्यानधिकरणत्वाभावात् गुणान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादावतिव्याप्तेश्च विशिष्टस्यानतिरिक्तत्वादिति चेत्। न। साधनसमानाधिकरणा यावन्तो धर्म्मास्तत्प्रत्येकानधिकरणमात्रवृत्ति यद्धर्म्मावच्छिन्नाधिकरणत्वं तादृशधर्मभिन्नं यत्साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वादिति दिक्।

ननु व्यतिरेकित्वेन धर्मो विशेषणीयः, यद्वा यावत्पदं तादृशस्य कस्यापि धर्मस्य अनधिकरणमात्रवृत्तीतिस्फोरणाय, तथाच साधनसमानाधिकरणयत्किञ्चिद्धर्म्मानधिकरणमात्रवृत्ति यद्धर्म्मावच्छिन्नाधिकरणत्वं तद्धर्मभिन्नं यत्साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यं इति[१] पर्य्यवसितमिति नायं दोष इत्यस्वरसादाह, महानसादाविति, 'धूमादावपीति, अत्र तदनधिकरणपदेन तद्-

---

(१) साधनसमानाधिकरणयत्किञ्चिद्धर्म्माधिकरणावृत्ति यद्यद्धर्म्मावच्छिन्नाधिकरणत्वं तत्तद्धर्म्मभिन्नं यत् साध्यतावच्छेदकं तत्तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यमितीति ख०।

नवस्थाननियमलक्षणं गोत्वाश्वत्वयोरतथात्वात् अन्यो-न्याभावप्रतियोगिन्यसत्त्वाच्च। किन्तु यथाधिकरणा-भावयोः स्वरूपविशेषः सम्बन्धः तथा प्रतियोगित्वमनु-

---

भावाधिकरणं तद्वह्निमत्त्वञ्च वक्तव्यमुभयथापि धूमसमानाधिकरण-यत्किञ्चिद्धर्मो वह्निरेव समवायेन तदभावाधिकरणं तद्वह्निमत्त्वञ्च महानसादावेव तद्वृत्तित्वाद्वह्नित्वावच्छिन्नाधिकरणताया अव्याप्ति-रिति भावः।

मिश्रास्तु अत्र वैयधिकरण्यं तदनधिकरणवृत्तित्वं तदधिकरणा-वृत्तित्वं वा आद्ये आह, 'प्रमेयत्वादेरिति, द्वितीयमपि तद्वन्निष्ठा-त्यन्ताभावप्रतियोगित्वं, तद्वन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वं वा द्वयमप्ययुक्तमित्याह, 'महानसादावितीत्याहुः।

आचार्य्यीयलक्षणमाशङ्कते, 'अथेति, 'अनौपाधिकः सम्बन्ध इति उपाध्यभावविशिष्टं साध्यसामानाधिकरण्यमित्यर्थः। वैशिष्ट्यञ्चैकाधि-करणवृत्तित्वं, उपाध्यभावस्य सम्बन्धसामान्येन ग्राह्यः[१] अन्यथा द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ गुणवत्त्वाद्युपाधेरभावस्य सत्त्वादौ सत्त्वादतिव्याप्त्यापत्तेः, न तु व्यभिचारितासम्बन्धेन साधनाव्यापकत्वदलवैयर्थ्यापत्तेः[२]।

---

(१) सम्बन्धत्वावच्छिन्नसंसर्गताकप्रतियोगिताक इत्यर्थः, सङ्केतौ कस्या-प्युपाधित्वाभावात् नाव्याप्तिसम्भावना।

(२) व्यभिचारित्वसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य उपाध्यभावस्य व्याप्ति-लक्षणाघटकत्वे सर्व्वत्र साध्यव्यापकत्वमेव उपाधिलक्षणं न तु तत्र साधनाव्यापकत्वप्रवेशः, सङ्केतौ साध्यव्यापकस्य उपाधित्वेऽपि

योगित्वमपि, अभावविरहात्मत्वं वेति चेत्, यत्किञ्चित्साध्यव्यापक-साधनाव्यापकधर्म्मनिषेधो न धूमादौ, प्रकृतसाध्यव्यापक-साधनाव्यापकधर्म्मस्य सिद्ध्यसिद्धिभ्यां न निषेद्धुं शक्यः यावत्साध्यव्यापके प्रमेयत्वादौ साध-

---

केचित्तु उपाध्यभावः उपाधितावच्छेदकसम्बन्धेन उपाधिसामान्याभाव एव ग्राह्यः, द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ च सत्त्वादावुपाधितावच्छेदकसम्बन्धेन द्रव्य-सत्त्वान्यतरत्वाद्युपाधेरेवाभावस्यासत्त्वान्नातिव्याप्तिः। न च तादात्म्येनैतद्वह्निहेतुके संयोगेन धूमसाध्यके व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिः तत्र साधनवृत्तेर्धर्मस्य साधनव्यापकत्वनियमेनोपाधित्वासम्भवादिति वाच्यम्। तस्य विरुद्धत्वेन साध्यसामानाधिकरण्यदलेनैव वारणादित्याहुः।

तदसत् प्रमेयत्वान्यत् प्रमेयत्वात् घटाभाववान् घटाभावादित्यादौ व्यभिचारिण्यतिव्याप्तेः तत्र साधनावृत्तिधर्मस्यैव उपाधित्वसम्भवादिति(१) दिक्।

---

व्यभिचरितत्वसम्बन्धेन तदभावस्य हेतौ सत्त्वान्न कोऽपि दोषः पदमादधाति व्याप्यस्य व्यापकाव्यभिचरितत्वेन व्यापकव्यापकस्याप्यव्यभिचरितत्वमिति।

(१) अत्र साधनान्तर्भावेणैव साधनस्य व्यभिचरिततया साधनवृत्तिधर्म्ममात्रस्य साधनाव्यापकत्वविरहेण उपाधित्वासम्भवादिति भावः।

नाव्यापकत्वं यावत्साधनाव्यापके च घटत्वादौ साध्यव्यापकत्वं निषिध्यत इति चेत्। न। व्यधिकरणत्वात् यावत्साधनाव्यापकमव्यापकं यत्साध्यस्य, यावत्साध्यव्यापकं व्यापकं वा यस्य तत्त्वं तदिति चेत्। न। सोपाधेरपि

---

ननु उपाधित्वं साध्यसमव्याप्तत्वे सति[१] साधनाव्यापकत्वं समव्याप्तत्वञ्च व्याप्तिघटितं तच्च व्याप्यत्वमनौपाधिकत्वान्तररूपमित्यनवस्थेत्यत आह, 'उपाधिस्त्वेति'। ननु तथापि व्यापकत्वं व्याप्तिनिरूपकत्वं तच्च व्याप्यत्वमनौपाधिकत्वान्तररूपमित्यनवस्था तदवस्थैवेत्यत आह, 'व्यापकत्वन्त्विति'। नन्वेवं यत्र व्यभिचारिणि नोपाधिसम्भवस्तत्रातिव्याप्तिरित्यत आह, 'व्यभिचारे चेति'। ननु प्रतियोगित्वं विरोधित्वं विरोधित्वञ्च नियतसहानवस्थानं नियतसहानवस्थानञ्च तदभावव्याप्यत्वं तदपि च व्याप्यत्वमनौपाधिकत्वान्तररूपमित्यनवस्थेत्यत आह, 'प्रतियोगित्वञ्चेति' प्रतियोगित्वं सहानवस्थाननियमलक्षणं विरोधित्वं नेत्यन्वयः, 'अतथात्वात्' प्रतियोग्यनुयोगिभावानापन्नत्वात्।

---

(१) तथाचोक्तमाचार्य्यैः "समासमाविनाभावौ एकत्र स्तो यदा यदा समेन यदि नो व्याप्तस्तयोर्हीनोऽप्रयोजकः" इति, 'यदा यदा' यस्मिन् यस्मिन् समये, 'एकत्र' एकधर्म्मिणि, 'समासमाविनाभावौ स्तः' साध्यस्य समव्याप्तत्वं हेतोः समव्याप्तत्वाभावश्च वर्त्तेते, तदा स उपाधिरिति शेषः, 'समेन यदि नो व्याप्तः' यदि साध्यसमव्याप्तत्वाभावः, तर्हि 'तयोर्हीनः' 'तयोः' साध्यसमव्याप्तत्व-हेतुसमव्याप्तत्वयोः 'हीनः' एकतरेण विरहितः, 'अप्रयोजकः' व्यभिचारानुमापक इत्यर्थः।

नयात्वात्, तथाहि साधनस्य वह्नेरव्यापकं यावदार्द्रे-न्धनन्तत् प्रत्येकमव्यापकं साध्यधूमस्य, द्वितीये साध्य-धूमस्य व्यापकमार्द्रेन्धनं तत् व्यापकं महानसीयवह्नेः ।

---

'अन्योन्येति[१] । इदमापाततः येन सम्बन्धेनाभावस्तेनैव सम्बन्धेन व्याप्यत्वं महानवस्थाननियमपदेनावश्यं वक्तव्यम्, अन्यथा समवायादिसम्बन्धावच्छिन्नवह्न्याद्यभाववति महानसादौ संयोगेन वह्न्यादेर्वृत्तेरव्याप्त्यापत्तेः, तथाचान्योन्याभावप्रतियोगिनि नाव्याप्तिः अन्योन्याभावस्य तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकतया तेन सम्बन्धेन प्रतियोगिनः तदभावव्याप्यत्वात्, किन्तु संयोगादिसम्बन्धावच्छिन्नसत्ताद्यभावप्रतियोगिन्यव्याप्तिः तेन सम्बन्धेन प्रतियोगिसत्तादेस्तदभावाव्याप्यत्वात् घटत्वादेर्द्रव्यत्वाद्यभावप्रतियोगित्वापत्तिश्च । स्वाभावविरोधित्वमित्युक्तौ च स्वाभाव इत्यत्र षष्ठ्यर्थस्य दुर्व्वचत्वमित्येव दूषणं परं । 'तथा प्रतियोगित्वमपीति, प्रतियोग्यभावयोः स्वरूपसम्बन्धविशेष इति शेषः । 'अभावविरहात्मत्वं वेति यस्याभावस्याभावो यो भवति स तस्याभावस्य प्रतियोगी भवतीत्यर्थः । भवति च घटाभावस्य प्रतियोगी घटो घटाभावस्याभावः, तदभावत्वं तत्प्रतियोगि-

---

(१) द्रव्यत्व-गुणयोः परस्परं सहानवस्थाननियमघटकाविरोधित्वाभावेऽपि द्रव्यत्वं न गुण इति प्रतीत्या अन्योन्याभावप्रतियोगित्वं वर्त्तत-एवेति भावः ।

नापि साध्यं यावद्व्यभिचारि तदव्यभिचारित्व-मनौपाधिकत्वं, साध्यव्यभिचारित्वस्यैव गमकत्वसम्भवात्, तच्च दूषितम्।

---

त्वमिति तु निष्कर्षः, घटाभावस्यापि घटप्रतियोगित्वात्। प्रतियोगितावच्छेदकस्यैव तादात्म्यसम्बन्धेन प्रतियोगिनोऽप्यन्योन्याभावाभावतया नान्योन्याभावप्रतियोगिन्यव्याप्तिः, न वा अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकेऽतिव्याप्तिः, अत्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वेन घटादिभेदस्य घटादिभेदात्यन्ताभावाभावरूपतया घटादिभेदात्यन्ताभावरूपस्य घटत्वादेः प्रतियोगितावच्छेदकधर्मस्यापि घटाद्यन्योन्याभावप्रतियोगित्वात्. विवेचितश्चेदं 'साध्याभाववदवृत्तित्वमिति प्रथमलक्षणव्याख्यानावसरे। न च तथापि संयोगादिसम्बन्धावच्छिन्नगुणाद्यभावरूपव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावप्रतियोगिन्यव्याप्तिः तादृशव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्य केवलान्वयितया तदभावत्वस्य तत्प्रतियोगिन्यभावादिति वाच्यम्। आकाशाद्यभाव-केवलान्वयित्वेऽपि प्रतियोगित्वव्यवहारान्यथानुपपत्त्या आकाशादेः तदभावत्वस्यैव व्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्य केवलान्वयित्वेऽ-तदभावत्वस्य तत्प्रतियोगिन्यभ्युपगमात्। केवलान्वयित्वलक्षणे प्रतियोगि-व्यधिकरणानिरूपितवृत्तिमत्त्वस्यात्यन्ताभावविशेषणतया च न केवलान्वयित्वानुपपत्तिः। न चैवं समवायसम्बन्धेन गुणादिमति घटे तादृशगुणाद्यभावाभावप्रत्ययापत्तिरिति वाच्यं। प्रतियोगितावच्छे

नापि कार्त्स्न्येन सम्बन्धो व्याप्तिः एकव्यक्तिके तदभावात् नानाव्यक्तिकेऽपि सकलधूमसम्बन्धस्य प्रत्येकवह्न्यावभावात्। अत एव न कार्त्स्न्येन साध्येन सम्बन्धो व्याप्तिः विषमव्याप्ते तदभावाच्च। न च यावत्साधनाश्रयाश्रितसाध्यसम्बन्धः, साधनाश्रये महानसादौ सकले प्रत्येकवह्नेराश्रितत्वाभावात्।

दकसम्बन्धेन प्रतियोगिमत्त्वस्यैवाभावाभावप्रत्ययनियामकत्वं, अन्यथा समवायेन घटादिमति कपाले संयोगसम्बन्धावच्छिन्नघटात्यन्ताभावाभावप्रत्ययापत्तेः। एवं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगित्तावच्छेदककालमादायैवात्यन्ताभावाभावप्रत्ययः, अन्यथोत्पत्तिकालेऽपि संयोगसम्बन्धावच्छिन्नैतद्घटात्यन्ताभावो नास्तीति प्रत्ययापत्तेः। अतो गुणादिमत्यपि कालादौ न तादृशगुणाद्यभावाभावप्रत्यय इति मणिकृतामाशयः।

केचित्तु नेदं प्रतियोगितासामान्यनिर्व्वचनं(१) तस्य स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपत्वात्, किन्तु प्रकृतलक्षणघटकप्रतियोगितामात्रनिर्वचनम्, तेनान्योन्याभावस्य व्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्य च प्रतियोगिन्यव्याप्तिः(२) अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकेऽतिव्याप्तिश्च न

---

(१) प्रतियोगितासामान्यलक्षणमित्यर्थः।

(२) तेनान्योन्याभाव-व्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावप्रतियोगिनोरव्याप्तिरिति ख॰ ग॰।

नापि साधनसमानाधिकरणयावद्धर्म्मसमानाधिकरणसाध्यसामानाधिकरण्यं, यावद्धर्म्मसामानाधिकरण्यं हि यावत्तद्धर्म्माधिकरणाधिकरणत्वं तच्चाप्रसिद्धं साधनसमानाधिकरणसकलमहानसत्वाद्यधिकरणाप्रतीतेः।

---

दोषायेति भावः। न चैवं प्रकृतलक्षणेऽत्यन्ताभावपदवैयर्थ्यमिति वाच्यम्। तस्य स्वरूपकीर्त्तनमात्रत्वादित्याहुः। तदसत् आचार्य्यैरभावविरहात्मत्वं वस्तुनः प्रतियोगितेत्यनेन प्रतियोगितासामान्यस्यैव निर्व्वचनात् तदुक्ताभिप्रायेणैवोपपादने प्रकृतेऽपि प्रतियोगितासामान्यलक्षणत्वे क्षतिविरहात्।

'अभावविरहेत्यत्र षष्ठीतत्पुरुषसमासात् षष्ठ्यर्थः प्रतियोगित्वं[१] तच्च स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपमेव वाच्यम् तथाच लाघवादावश्यकत्वाच्च तदेव प्रतियोगित्वं न तु अभावविरहात्मत्वं गौरवादित्यस्वरस 'वा'शब्देन सूचितः। 'यत्किञ्चिदिति यत्किञ्चित्साध्यव्यापक यत्किञ्चित्साधनाव्यापकधर्म्माभाव इत्यर्थः, गुणवत्त्वादिसाध्यव्यापक प्रमेयत्वादिसाधनाव्यापकस्य द्रव्यत्वादेर्धूमादौ सत्त्वादिति भावः। 'प्रकृतेति प्रकृतसाध्यव्यापक-प्रकृतसाधनाव्यापकधर्मस्येत्यर्थः। 'निरोद्धुमिति प्रकृतसाधननिष्ठनिषेधप्रतियोगित्वेन ज्ञातुमशक्य इत्यर्थः, प्रकृते, 'यावदिति, 'निषिध्यत इति अनौपाधिकत्वपदेन निषेध

---

(१) षष्ठ्यर्थतया प्रतियोगित्वं घटकमिति ख०, ग०।

नापि स्वाभाविकः सम्बन्धो व्याप्तिः, स्वभावजन्यत्वे तदाश्रितत्वादौ वा अव्याप्त्यतिव्याप्तेः।

नाप्यविनाभावः, केवलान्वयिन्यभावात्।

प्रतियोगितया बोध्यत इत्यर्थः, यावत्साध्यव्यापके साधनाव्यापकत्वाभावो यावत्साधनाव्यापके साध्यव्यापकत्वाभावो वा अनौपाधिकत्वपदार्थ इति भावः। 'व्यधिकरणत्वादि'ति निरुक्तनिषेधस्य हेतुनिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यव्यधिकरणत्वादित्यर्थः, तथाच तादृशानौपाधिकत्वविशिष्टं साध्यसामानाधिकरण्यं सर्व्वत्र हेतौ नास्तीत्यव्याप्तिरिति भावः। वैयधिकरण्यमुद्धरति, 'यावदि'ति, 'यत्साध्यस्य' यत्साधनसमानाधिकरणसाध्यस्य, 'यस्य' साधनस्य, 'तत्' अनौपाधिकत्वं, तथाच यावत्स्वाव्यापकाव्यापकसाध्यकत्वं, यावत्साध्यव्यापकाव्यापकत्वं वाऽनौपाधिकत्वमित्यर्थः। 'तथाही'त्यादि, इदञ्च यथाश्रुताभिप्रायेण, यत्साधनाव्यापकतावच्छेदकं यावत् साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नाव्यापकतावच्छेदकं तत्त्वं, साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नव्यापकतावच्छेदकं यावत् यद्धर्मावच्छिन्नव्यापकतावच्छेदकं तद्धर्मावच्छिन्नत्वं वा अनौपाधिकत्वं इत्यर्थे तु(१) न कोपि दोष इत्यवधेयं।

'नापी'ति, साध्यं यावतामव्यभिचारि यावदभाववदवृत्ति तावदव्यभिचारित्वं तावदभाववदवृत्तित्वं साधनस्यानौपाधिकत्वमित्यर्थः। सोपाधौ तु साध्यमुपाधेरेवाव्यभिचारि न च साधनं तद-

(१) इत्युक्ते तु इति ग०।

अथ सम्बन्धमात्रं व्याप्तिः व्यभिचारिसम्बन्धस्यापि केनचित् सह व्याप्तित्वात्, धूमादिव्याप्तिस्तु विशिष्यैव निर्व्वक्तव्येति, तन्न, लिङ्गपरामर्शविषयव्याप्तिस्वरूप-

---

व्यभिचारीति तद्व्यवच्छेद इति भावः। तर्हि लाघवात् साध्याव्यभि-चरितत्वमेव तदस्त्वित्याह, 'साध्येति, अत्रेष्टापत्तेराह, 'तत्रेति केवलान्वय्यव्याप्तेरिति भावः। ननु तर्हि केवलान्वयिसंग्रहार्थमेः गुरुशरीरस्याप्युक्तलक्षणस्यादरोऽस्त्विति चेत्। न। अत्रापि केवला-न्वय्यसंग्रहतादवस्थ्यात् तत्र हि साध्यस्य प्रमेयत्वादेर्यदन्ताभाववद्-वृत्तित्वं तादृशधर्म्माप्रसिद्धेरिति हृदयम्।

लीलावतीकारमतमाशङ्क्य[१] निराकरोति, 'नापीति, 'का-र्त्स्न्येनेति, विशेषणे तृतीया, तथाच कार्त्स्न्येन कार्त्स्न्यविशिष्टे-सर्व्वेणेति यावत्। 'अत्र कार्त्स्न्यं साधनस्य साध्यस्य साधनाश्रयस्य साधनसमानाधिकरणधर्मस्य वा विवक्षितम्। आद्ये कृत्स्नेन साध-नेन साध्यस्य सामानाधिकरण्यमित्यर्थः, तच्चैकव्यक्तिहेतुकस्थले ना-स्तीत्याह, 'एकव्यक्तिक इति, अनेकाशेषत्वरूपस्य कार्त्स्न्यस्याभावा-दिति भावः।

अत्रैव पक्षे दूषणान्तरमाह, 'नानेति। न च कृत्स्नेषु साध्यसम्बन्ध इत्यर्थः इति वाच्यं। तथाप्येकव्यक्तिहेतुकस्थलेऽव्याप्तेः पृथिवी पृथि-वीत्वव्यापकजातेरित्यादावतिव्याप्तेश्च। अर्थाभिधानपुरःसरं द्विती-

---

(१) लीलावतीकारमतमाशङ्क्येति ख०, ग०।

निरूपणप्रस्तावे लक्षणाभिधानस्यार्थान्तरत्वात्। न च सम्बन्धमात्रं तथा, तद्बोधादनुमित्यनुत्पत्तेः।

---

—रस्यति, 'अत एवेति एकव्यक्तिसाध्यकाव्याप्तेरेवेत्यर्थः, 'विषमव्याप्त-इति वह्निमान् धूमादित्यादावित्यर्थः, अयोगोलकीयवह्निसामानाधिकरण्यस्य धूमेऽभावादिति भावः। इदमुपलक्षणं सत्त्वावान् परिमाणादित्यादिसमव्याप्तेऽप्यव्याप्तेः सकलसत्त्वासम्बन्धस्य कुत्रापि परिमाणेऽभावादित्यपि बोध्यं। अर्थपरिष्कारपूर्व्वकं तृतीयं निरस्यति, न चेति, 'प्रत्येकवह्नेरिति, इदमुपलक्षणं एकमात्रवृत्तिसाध्यकेऽव्याप्तेश्चेत्यपि बोध्यं[१]। अर्थपरिष्कारपूर्वकं चतुर्थं निरस्यति, 'नापीति, 'यावद्धर्म्माधिकरणेति यावत्साधनसमानाधिकरणधर्म्माधिकरणवृत्तित्वमित्यर्थः, 'अप्रतीतेरिति। न च साधनसमानाधिकरणा यावन्तो धर्म्मास्तेषां प्रत्येकनिरूपितं सामानाधिकरण्यं विवक्षणीयमिति वाच्यं। धूमसमानाधिकरणानां यावद्धर्म्माणां महानसत्वादीनां प्रत्येकनिरूपितसामानाधिकरण्यस्यापि कुत्रापि वह्नावभावादिति भावः। इदञ्च यथाश्रुताभिप्रायेण, यदि तु यद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यत्वेन साधनसामानाधिकरण्यव्यापकत्वं तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यमिति विवक्ष्यते तदा नायं दोष इत्यवधेयं।

टीकाकारलक्षणं प्राह्नते, 'नापीति स्वाभाविकं साध्यसामाना-

---

(१) शब्दवान् गगनत्वादित्यादौ यावत्साधनाश्रयाप्रसिद्धत्वादव्याप्तिरिति भावः।

नापि व्याप्तिपदप्रवृत्तिनिमित्तमिदं सम्बन्धमात्रेऽपि व्याप्तिपदाप्रयोगात् ।

---

धिकरण्यमित्यर्थः, व्यभिचारिणि तु साध्यसामानाधिकरण्यमौप धिकमिति भावः । स्वाभाविकत्वं हि हेतुस्वरूपजन्यत्वं, हेतुस्वरूपाश्रितत्वं वा, आद्ये द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ पृथिवीत्वादिनिष्ठद्रव्यत्वादिसामानाधिकरण्यस्य नित्यतया[१] अव्याप्तिः, द्वितीये द्रव सत्त्वादित्यादौ व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिरित्याह, 'स्वभावेति, 'स्वभावजन्यत्वे' हेतुस्वरूपजन्यत्वे, 'तदाश्रितत्वादौ वा,' स्वाभाविकपदार्थ इति शेषः, 'अव्याप्त्यतिव्याप्तेरिति अव्याप्तिसहितातिव्याप्तेरित्यर्थः मध्यपदलोपिसमासात्, अन्यथा द्वन्द्वैविध्येन द्विवचन-नपुंसकलिङ्गतयोरन्यतरापत्तेः[२] 'तदाश्रितत्वादावित्यादिपदादनारोपितत्वपरिग्रहः, तत्रापि द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिर्बोध्या । सत्तायां द्रव्यत्वसामानाधिकरण्यस्यानारोपितत्वात् ।

'अविनेति, 'विना' साध्येन विना साध्याभाववति, 'भावः' वृत्ति यस्य तद्भिन्नः साध्याभाववद्वृत्तिभिन्न इति यावत्, व्याप्य इति शेष

---

(१) साध्यसामानाधिकरण्यपदेन अवश्यं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यसामानाधिकरण्यस्य विवक्षणीयतया समवायसम्बन्धावच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य समवायसम्बन्धस्वरूपत्वात् समवायस्य नित्यत्वेन तस्यापि नित्यत्वमिति भावः ।

(२) इतरेतरद्वन्द्वपक्षे द्विवचनं समाहारद्वन्द्वपक्षे च नपुंसकत्वं प्रसज्येतेति भावः ।

केवलान्वयिनि केवलान्वयिधर्म्मसम्बन्धो व्यतिरेकिणि साध्यवदन्यावृत्तित्वं व्याप्तिः एतयोरनुमितिविशेषजनकत्वं अनुमितिमात्रे पक्षधर्म्मतैव प्रयोजिका ।

---

त्यन्ताभावान्योन्याभावभेदेन च भेदात् प्राथमिकाव्यभिचारित्वेन पौनरुक्त्यं(१) ।

केचित्तु 'अविनाभावः' इत्यभावे साध्यविनाभावस्य साध्याभाववन्निष्ठाभावस्य प्रतियोगितासम्बन्धेनाभावः साध्याभावव्यापकत्वमिति वत् । तथाच हेतोः साध्याभावव्यापकाभावप्रतियोगित्वं व्याप्तिरिति फलितं । न चैवं सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वमिति पूर्व्वोक्तेन पौनरुक्त्यं तत्रापि साकल्यस्य व्यापकत्वरूपत्वादिति वाच्यं । तत्र व्यापकत्वं साध्याभाववन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्वमत्र तु व्यापकत्वं साध्याभाववन्निष्ठाभावस्य प्रतियोगितासम्बन्धेनाभाववत्त्वमिति भेदादित्याहुः ।

'अथेति, 'सम्बन्धमात्रं' साध्यसामानाधिकरण्यमात्रं, तत्र तत्सामानाधिकरण्यं 'तत्र तस्य व्याप्तिरिति यावत् । नन्वेवं द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ सत्तानिष्ठद्रव्यत्वसामानाधिकरण्यस्यापि सत्तानिष्ठद्रव्यत्वव्याप्तित्वापत्तिरित्यत्र इष्टापत्तिमाह, 'व्यभिचारीति व्यभिचारिहेतुनिष्ठसाध्य-

---

(१) प्राथमिकाव्यभिचरितत्वपदार्थस्य साध्याभाववदवृत्तित्वात्यन्ताभावगर्भत्वं, अविनाभावपदार्थस्य तु साध्याभाववद्वृत्तिभेदगर्भत्वं अतो न पौनरुक्त्यमिति भावः ।

न चातिप्रसङ्गः, विशेषसामग्रीसहिताया एव सामान्य-
सामग्र्याः कार्य्यजनकत्वनियमादिति केचित्, तदपि न,
साध्यवदन्यावृत्तित्वस्य धूमेऽसत्त्वात् वह्निमत्पर्व्वतान्य

---

सामानाधिकरण्यस्यापीत्यर्थः, 'केनचित् सहेति किञ्चिद्रूपावच्छिन्ने
न साध्येन सहेत्यर्थः, द्रव्यत्वादेरपि जातित्वादिना सत्तादिव्यापकत्वा
दिति भावः। यथाश्रुते द्रव्यत्व-सत्तासामानाधिकरण्यस्यान्येन स
व्याप्तित्वासम्भवादसङ्गतेः, 'धूमादिव्याप्तिस्त्विति धूमत्वाद्यवच्छिन्न
निष्ठवह्नित्वाद्यवच्छिन्नव्याप्तिस्त्वित्यर्थः, 'विशिष्यैवेति धूमत्वावच्छिन्ने-
वह्नित्वावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं धूमत्वावच्छिन्ने वह्नित्वावच्छिन्न
व्याप्तिः, द्रव्य ावच्छिन्ने सत्तात्वावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं द्रव्यत्व
वच्छिन्ने सत्ता ावच्छिन्नव्याप्तिरिति विशिष्यैव निर्वक्तव्येत्यर्थः, न त
तद्धर्म्मावच्छिन्ने तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं तद्धर्म्मावच्छि
तद्धर्म्मावच्छिन्नव्याप्तिरिति सामान्यतो यत्तद्भ्यामेकोक्त्या निर्वक्त
तेन व्यभिचारिणि नातिव्याप्तिरिति भावः। इदं व्याप्तेर्लक्षणं,
वा अनुमितिकारणीभूतपरामर्शविषयतावच्छेदकं, व्याप्तिपदप्र
वृत्तिनिमित्तं वा, आद्ये आह, 'लिङ्गेति, द्वितीये त्वाह, 'न चे
'सम्बन्धमात्रं' साध्यसामानाधिकरण्यत्वावच्छिन्नमात्रं, 'तथा' अनुमि
तिहेतुपरामर्शविषयः, 'तदबोधादिति अव्यभिचारांशाज्ञानदशा
वह्न्यव्यभिचार्य्यभाववान् पर्व्वतः वह्न्यव्यभिचार्य्यभावव्याप्यवान् इत्या
ज्ञानदशायां वा वह्निसमानाधिकरणधूमवान् पर्व्वत इति सामान
धिकरण्यविशिष्टपरामर्शादनुमित्यनुदयात् इत्यर्थः। न च स्व

स्मिन् धूमसत्त्वात् । न च सकलसाध्यवदन्यावृत्तित्वं, वह्निमतां प्रत्येकं तथात्वात् । सर्व्वत्र लक्षणे साध्यत्व-साधनत्व-तदभिमतत्वानां व्याप्तिनिरूप्यत्वेनात्माश्रयः,

---

भिचारांशज्ञानदशायां अनुमित्यनुत्पादोऽसिद्धः तथा वह्न्यव्यभिचार्य्यभाववान् पर्व्वत इत्यादिज्ञानदशायामपि, अस्तु वा पक्षे साध्याव्यभिचार्य्यभावादिज्ञानाभावोऽप्यनुमितिहेतुरिति वाच्यं। सर्व्वजनानुभवबाधितत्वात् साध्याव्यभिचार्य्यभाव-तद्व्याप्यादिज्ञानानामनुमितिप्रतिबन्धकत्वकल्पने महागौरवाच्चेति भावः। तृतीये अर्थान्तरे वाह, 'नापीति ।

केषाञ्चिन्मतमाह, 'केवलान्वयिनीति केवलान्वयित्वघटदशायामित्यर्थः । 'केवलान्वयिधर्म्मसम्बन्ध' इति[१] केवलान्वयिसाध्यसामानाधिकरण्यमित्यर्थः, साध्यस्य केवलान्वयित्वाऽभावे साध्यसामानाध्यपक्षेऽप्यनुमित्यनुदयात् केवलान्वयित्वं साध्यविशेषणं, तच्चाभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वं, तथाचान्योन्याभावप्रतियोगिवच्छेदकसाध्यसामानाधिकरण्यमित्यर्थः। ननु तथापि इदं वाच्यं त्वादित्यादावसम्भवः घटत्वादिविशिष्टवाच्यत्वादिमतोऽन्योन्याप्रतियोगितावच्छेदकत्वाद्वाच्यत्वादेर्व्विशिष्टस्यावच्छेदकत्वे विशेष्यवच्छेदकत्वात्। न चानवच्छेदकत्वं पर्य्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेदशून्यत्वं इति वाच्यं। घटत्वविशिष्टवाच्यत्ववान् ज्ञेयत्वादित्यादा-

---

(१) 'केवलान्वयिसम्बन्ध इतीति ख०, ग० ।

साध्यत्वं हि न सिद्धिकर्म्मत्वं, सिषाधयिषाविषयत्वं वा महानसीयवह्नौ तदभावात्। न च सामान्यतो-व्याप्त्यवगमोऽस्त्येव परस्य कथमन्यथा दूषणेनासाध-

---

वतिव्याप्तेः वाच्यत्वस्य पर्य्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यतया घटत्व-विशिष्टवाच्यत्वस्यापि तथात्वात् विशिष्टवाच्यत्वस्य वाच्यत्वानतिरिक्त-त्वादिति चेत्। न। अन्योन्याभावप्रतियोगितासामान्ये यद्धर्म्मा-वच्छिन्नपर्य्याप्त्यवच्छेदकताकत्वाभावस्तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वात् यन्निष्ठपर्य्याप्त्यवच्छेदकत्वाभावस्तत्सामानाधिकरण्यमि-त्युक्तौ इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ वाच्यत्वादेः स्वरूपतोऽभाव तियोगितानवच्छेदकत्वेन वाच्यत्वादिनिष्ठपर्य्याप्त्यवच्छेदकत्वाप्रसि व्याप्त्यापत्तिरतोऽवच्छिन्नानुसरणं। न च तथापि वाच्यत्वादेः कालि कसम्बन्धेनान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वादसम्भव इति वाच्य साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेनावच्छेदकताया विशेषणात् त्वादिनिष्ठस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकताकत्वन्तु संयोगादिस वाच्यादेरत्यन्ताभावप्रतियोगितायामेव प्रसिद्धं। साध्यतावच्छेदक अभेदेन व्याप्तेर्भेदात्तादात्म्यसम्बन्धेन प्रमेयादिसाध्यके पुनरन्योन्या वप्रतियोगितासामान्ये यद्धर्म्मनिष्ठपर्य्याप्त्यवच्छेदकत्वाभावस्तद्धर्म्मा न्नसामानाधिकरण्यमित्येव वक्तव्यं शब्दैकस्यानुपादेयत्वात्, यद्धर्म साध्यतावच्छेदकपरं। अवच्छेदकता च साध्यतावच्छेदकतावच्छेद सम्बन्धावच्छिन्नत्वेन विशेषणीया तेन प्रमेयत्वादेः कालिकसम्ब नान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि तादात्म्यसम्बन्धेन प्रमे

कतां साधयेदिति वाच्यं। स्वार्थानुमानोपयोगिव्याप्ति-स्वरूपनिरूपणं विना कथायामप्रवेशादिति।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे पूर्व्वपक्षः।

---

---

च्छिन्नसाध्यके नासम्भवः। तद्धर्मविच्छिन्नसामानाधिकरण्यञ्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नस्य सम्बन्धिनि या हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्ना सम्बन्धिता तन्निरूपकतावच्छेदकहेतुतावच्छेदकत्वं, तेन सम्बन्धान्तरेण साध्यसामानाधिकरण्यज्ञानेऽपि नानुमितिः, न वा इदं वाच्यं गगनादित्यादौ समवायादिसम्बन्धेन गगनादिहेतुके, इदं वाच्यं घटत्व-पटत्वोभयस्मादित्यादौ समवायासम्बन्धेन विरुद्धोभयादिहेतुके चातिव्याप्तिरिति भावः। व्यतिरेकिणीति व्यतिरेकित्वघटदशायामित्यर्थः, 'व्याप्तिः' परामर्शविषयतयानुमितिप्रयोजिका व्याप्तिः। नन्वेवं परस्परं व्यभिचारमत आह, 'एतयोरिति, 'जनकत्वं' परामर्शविषयतया जनकतावच्छेदकत्वं, केवलान्वयिसाध्यकानुमितौ निरुक्तकेवलान्वयिसाध्यसामानाधिकरण्यविशिष्टवत्तापरामर्शः, व्यतिरेकिसाध्यकानुमितौ साध्यवदन्यावृत्तिमत्त्वपरामर्शो हेतुरित्यर्थः। केवलान्वयिसाध्य-

कत्वञ्च निरुक्तकेवलान्वयिसाध्यसामानाधिकरण्यविशिष्टवत्तापरा-मर्शाव्यवहितोत्तरोत्पन्नत्वमेव, तेनेदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादावपि व्यतिरेकित्वभ्रमदशायां साध्यवदन्यावृत्तित्वमात्रपरामर्शादनुमित्यु-त्पादेऽपि न व्यभिचारस्तदवस्थः। न च क्लृप्तकारणबाधान्न भवत्येव तत्र तदानीमनुमितिरिति वाच्यम्। अनुभवविरोधात् तथापि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धादिभेदेन निरुक्तसामानाधिकरण्यस्य विभिन्न-तया परस्परं व्यभिचारस्य दुर्व्वारत्वाच्च। एवं साध्यवदन्यावृत्ति-मत्तापरामर्शाव्यवहितोत्तरोत्पन्नानुमितित्वमेव व्यतिरेकिसाध्यकत्वं तेन व्यतिरेकिसाध्यके केवलान्वयित्वभ्रमदशायां निरुक्तकेवलान्वयि-साध्यसामानाधिकरण्यमात्रपरामर्शादनुमित्युत्पादेऽपि न व्यभिचार-स्तदवस्थः, नापि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धादिभेदेन साध्यवदन्यावृत्तित्व-स्यापि विभिन्नतया परस्परं व्यभिचारश्चेति भावः।

ननु तर्ह्यनुमितिसामान्ये किं प्रयोजनमित्यत आह, 'अनु-मितिमात्र इति, 'पक्षधर्मतैव' पर्वतादिनिरूपितसांसर्गिकविषयते-निरूपितान्तं स्वरूपकथनं तन्निवेशे अननुगमापत्तेः, 'प्रयोजिका' ज्ञाननिष्ठतया कारणतावच्छेदिका, तथाचानुमितित्वावच्छिन्नं प्र-सामान्यतो विशिष्टज्ञानत्वेनैव हेतुत्वमिति भावः। ज्ञानत्वेनैव हेतु-त्वमिति वस्तुगतिः, विशिष्टत्वप्रवेशे प्रयोजनविरहात् गौरवात् प्रकारित्व-विशेष्यित्वमादाय विनिगमनाविरहेण कार्य्य-कारणभाव-द्वयप्रसङ्गाच्च। नन्वेवं निरुक्तव्याप्तिविषयज्ञानविरहदशायामपि धूमवान् पर्वत इत्यादिपक्षधर्मताज्ञानादनुमितिसामान्योत्पत्त्यापत्तिः सामा-न्यसामग्रीसत्त्वादित्यत आह, 'न चेति, 'विशेषसामग्रीति, केवलान्व-

यिसाध्यकानुमितिसामग्री व्यतिरेकिसाध्यकानुमितिसामग्री च प्रकृते विशेषसामग्रीति भावः। 'सकलेति यावन्ति साध्यवन्ति तदन्या-वृत्तित्वमित्यर्थः, साध्ये साकल्यविशेषणे यावत्साध्याधिकरणाप्रसिद्धेः[१], 'तथात्वादिति यावत्साध्यवतोऽन्यत्वादित्यर्थः, यावत्त्वावच्छिन्नप्रतियो-गिताकान्योन्याभावस्य केवलान्वयित्वादिति भावः। इदमापाततः साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववदवृत्तित्वं वक्तव्यं, सामा-न्याभावानभ्युपगमेऽपि साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाव-कूटाधिकरणावृत्तित्वमेव वक्तव्यमित्युक्तदोषाभावात्। वस्तुतस्तु सर्व्व-त्रैव साध्ये केवलान्वयित्व-व्यतिरेकित्वग्रहदशाभेदेन कार्य्य-कारण-भावद्वयकल्पनमपेक्ष्य लाघवात् हेतुसमानाधिकरणान्योन्याभावे-त्यादिवक्ष्यमाणव्याप्तिज्ञानमेव सर्व्वत्र हेतुरुचितस्तस्योभयदशाया-मेव सम्भवात्। न च हेतुसामानाधिकरण्यप्रवेशे एकस्मिन्नेव साध्य-हेतुतावच्छेदकभेदेनानन्तकार्य्य-कारणभावापत्त्या तदपेक्ष्य कार्य्य-कारणभावद्वयमेव लघ्विति वाच्यं। उक्तक्रमेण निरुक्तव्याप्तिद्वय-स्यापि हेतुतावच्छेदकघटिततया हेतुतावच्छेदकभेदेन कार्य्य-कारण-भावस्याविशिष्टत्वात्। न च तथापि यत्र विषयविशेषे व्यतिरेकित्व-ग्रहदशायां कदापि अनुमितिर्नोत्पन्ना तत्र लाघवात् केवलान्वयि-साध्यसामानाधिकरण्यज्ञानस्यैव हेतुत्वं युक्तमिति[२] वाच्यं। तत्राप्य-भावे हेतुसामानाधिकरण्यानुपस्थितिदशायामनुमित्यनुदयात् हेतु-

---

(१) वह्निमान् धूमादित्यादौ यावतां वह्नीनामधिकरणत्वं न एकस्मिन् धर्म्मिणि वर्त्तते इति भावः।

(२) वक्तव्यमितीति ग०।

मानाभाव इति वाच्यम्। सर्वत्र विशिष्टानुभव एव विशेषणज्ञानं हेतुरिति सम्प्रदायमतेनैतदभिधानात्।

यद्वा पर्वतीयवह्निकल्पने लाघवं तदन्यवह्निकल्पने च गौरवमिति ज्ञानस्य पर्वतीयवह्न्यतिरिक्तसिद्धौ प्रतिबन्धकतया तत्सत्त्वदशायामेव सामान्यपरामर्शादपि पर्वतीयवह्निमात्रविषयकानुमितिसम्भवः।

केचित् तु यत्र वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानिति सिद्ध्यात्मकपरामर्शः ततः पर्वते पर्वतीयवह्न्यनुमितिर्जायतामिति सिषाधयिषा तत्रैव सामान्यपरामर्शादपि पर्वतीयवह्निमात्रविधेय
मितिसम्भवः सिद्धेः प्रतिबन्धकतया वह्न्यन्तरभानासम्भवादित

एवमस्तु यदा वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्शः पर्वतः प
तीयवह्नीतरवह्न्यभाववान् इति बाधज्ञानञ्च वर्त्तते तदा पर्वती
वह्नित्वेन न पर्वतीयवह्नेर्भानमनुमितेर्व्यापकतावच्छेदकप्रकारक
नियमादपि तु वह्नित्वरूपेणैव पर्वतीयवह्निमात्रभानमिति
वच्छिन्नेतरबाधज्ञानस्य भिन्नप्रकारकत्वेऽपि सामान्यरूपेण
वच्छिन्नेतरविधेयकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रत्यतिरिक्तप्रतिबन्ध
मादिति प्राचीनमतमभिप्रत्यैवेदं दूषणमित्याहुः। तादृ
मतविचारस्त्वस्मत्कृतसिद्धान्तरहस्येऽनुसन्धेयः।

इदन्त्ववधेयं तादृशानुमितिषु महानसीयवह्न्यादेरस
मिष्टापत्तेः सुकरत्वान्मूलोक्तमिदमसंगतमिति दिक्।

तटस्थः शङ्कते, 'न चेति, 'सामान्यतः'[1] व्याप्तिपदवाच्यत्वप्र
'परस्य' नन्वनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञाने का व्याप्तिरिति

परस्य, 'दूषणेन' अव्याप्त्यादिलक्षणदूषणेन, 'असाधकता' अनुमित्य-
प्रयोजकता, उक्तव्याप्तीनामिति शेषः। तथाच किं व्याप्तिनिरूपणे-
नेति भावः। 'स्वार्थेति स्वस्मिन् स्वीये शिष्यादौ अर्थः प्रयोजनं
यस्य तादृशं यदनुमानं व्याप्तिज्ञानं शिष्यादेर्व्याप्तिज्ञानमिति यावत्,
तदुपयोगि यदिदं व्याप्तिस्वरूपनिरूपणं तद्विनेत्यर्थः, 'कथायामिति
[redacted] शिष्यादेरित्यादिः, 'कथा' विचारः, 'अप्रवेशात्' प्रवेशा-
[redacted]त्, व्याप्तिनिरूपणं विना शिष्यादेर्व्याप्तिज्ञानासम्भवेन सद्धेतु-
[redacted]तुलपरिचयस्यैवाशक्यतया हेतूदाहरणप्रयोगस्यैवासम्भवादि-
[redacted] तथाच न [illegible] नच परप्रश्नसमाधित्सया व्याप्तिनिरूपण-
[redacted]तु शिष्या[illegible] व्याप्तिस्वरूपज्ञानं विना कथायां प्रवेशो न
सम्भवतीत्येतदर्थमपीति भावः।

[redacted]ति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
[redacted]नाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये व्याप्तिवादे पूर्वपक्षरहस्यम्।

[redacted]ानजन्या

## अथ सिद्धान्तलक्षणम् ।

अत्रोच्यते । प्रतियोग्यसमानाधिकरणयत्समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं भवति तेन समं तस्य सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्त अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सिद्धान्तलक्षणम् ।

---

## अथ सिद्धान्तलक्षणरहस्यम् ।

'प्रतियोग्यसमानाधिकरणेति, 'यत्पदं हेतुत्वेनाभि[illegible] द्वितीययत्पदं साध्यतावच्छेदकपरं, 'प्रतियोगितावच्छेदका[illegible] प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपं, 'यत्र भवति', 'तेन समं सामानाधि[illegible] तदवच्छिन्नेन समं सामानाधिकरण्यं, 'तस्य' हेतोः, 'व्याप्तिरि[illegible] जना, तद्धर्मावच्छिन्नेन सह तस्य हेतोर्व्याप्तिरित्यर्थः। भवति[illegible]-मान् धूमादित्यादौ धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियो[illegible]-च्छेदकं वह्नित्वं तदवच्छिन्नसमानाधिकरणो धूमः, धूमवा[illegible]-त्यादौ वह्निसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेद[illegible]-त्वमिति नातिप्रसङ्गः। प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नेत्यादि यथाश्रुतम् न सम्भवति वह्निमान् धूमादित्यादौ सर्वेषामेव वह्नीनां हेतुसम[illegible]

नाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकतत्तद्वह्नित्व-वह्नि-जलोभयत्वा-
द्यवच्छिन्नत्वादसम्भवापत्तेः। न चैवमपि वह्निसमानाधिकरणात्यन्ता-
भावप्रतियोगितानवच्छेदकं प्रमेयत्वं तदवच्छिन्नधूमसमानाधिकरणो
वह्निरित्यतिव्याप्तिरिति वाच्यं। व्यभिचारिणोऽपि वह्न्यादेः प्रमेयत्वा-
दिरूपेण धूमादेर्व्याप्यत्वाभ्युपगमात् धूमत्वेनैव धूमो न वह्निव्यापकः प्रमे-
यत्वादिना तु व्यापको भवत्येव। अत्र सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादिव्यति-
रेकिसाध्यके[1] साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिकसाध्यसा-
[redacted]भावमादायाव्याप्तिवारणाय हेतुसमानाधिकरणत्वमत्यन्ताभाव-
[redacted]णं, तच्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोरधि-
[redacted]करणं तच्च येन केनापि सम्बन्धेन वर्त्तमानत्वं, अन्यथा इदं गगनं
[redacted]त्वप्रकारकप्रमात इत्यादौ विशेष्यतासम्बन्धेन हेतुतायां समवाय-
[redacted]धेन हेत्वधिकरणे आत्मनि वर्त्तमानस्य गगनत्वसामान्याभावस्य
[redacted]गितावच्छेदकमेव गगनत्वत्वमित्यव्याप्तिः स्यात् स्याच्च द्रव्यं गुण-
[redacted]त्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ हेतुभूतसत्ताधिकरणे गुणे वर्त्तमानस्य
[redacted]ामान्याभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकमेव द्रव्यत्वत्वमित्यव्याप्तिः।
[redacted]हेतौ साध्यसामान्याभावस्य प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यविरहात्

---

(१) केवलान्वयिसाध्यके साध्यसामान्याभावाप्रसिद्ध्या तमादाय तत्रा-
व्याप्तिर्न सम्भवतीत्यत उक्तं व्यतिरेकिसाध्यके इति। वह्निमान् धूमादि-
त्यादौ प्रसिद्धस्थले संयोगेन वह्नेरव्याप्यवृत्तितया हेतुसमानाधिकरणत्व-
विशेषेऽपि अव्याप्त्यपरिहारात् सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादिव्याप्यवृत्तिसाध्य-
कस्थलानुसरणं। समवायेन साध्यतायामुक्तस्थलस्य प्रसिद्धस्थलत्वमिति
ध्येयम्।

प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वस्य हेतोर्विशेषणत्वेनैव नैतदव्याप्तिद्वयाव-काश इति वाच्यम्। प्रथमे आत्मत्वरूपहेत्वधिकरणमादाय द्वितीये गुणादिमादाय वक्ष्यमाणक्रमेण वक्ष्यमाणद्विविधप्रतियोग्यसामा-नाधिकरण्यस्यैव साध्याभावस्य(१) हेतौ सत्त्वात् तच्चानुपदं स्फुटीभवि-ष्यति। अधिकरणत्वञ्च सम्बन्धित्वमात्रं तेन तादात्म्यादिवृत्त्यनियामक-सम्बन्धेन हेतुतायां हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेत्वधिकरणत्वाप्रसिद्धा-वपि नाव्याप्तिः। सम्बन्धित्वञ्च धर्म्मित्वं तच्च वृत्तिनियामकानियामक-सम्बन्धमात्रनिरूपितसम्बन्धिमात्रसाधारणो धर्म्म-धर्म्मिभावाख्यः [illegible] सम्बन्धविशेषः, न त्वाधारमात्रवृत्तिः। अत एवागृहीतासंसर्गक[illegible] धर्म्मिभावगोचरैकज्ञानत्वं विशिष्टज्ञानत्वमिति मीमांसकाः, [illegible] घटस्य ज्ञानं चैत्रस्य धनमित्यादिविषयित्व-स्वत्वादिवृत्त्यनियाम[illegible] सम्बन्धसंसर्गकविशिष्टप्रत्ययादौ तल्लक्षणाव्याप्त्यापत्तेः(२)। एतेन [illegible]त-तावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोरधिकरणत्व[illegible] वृत्त्यनियामकसम्बन्धेन हेतुतायामव्याप्तिः तादृशहेतोः सम्ब[illegible] मात्रविवक्षणे च द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादौ अव्याप्तिस्तदवस्था [illegible] विशिष्टनिरूपिताधारताविरहेऽपि तत्सम्बन्धितायाः सत्त्वा[illegible] निरस्तं। विशिष्टनिरूपिताधारतावद्विशिष्टनिरूपिताया धर्म्मितापर-

---

(१) साध्याभावस्य प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यस्यैवेति योजना।

(२) धर्म्म-धर्म्मिभावाख्यस्वरूपसम्बन्धविशेषस्य आधारमात्रवृत्तित्वे घटस्य ज्ञानं चैत्रस्य धनमित्यादिविशिष्टप्रत्यक्षे विषयित्व-स्वत्वरूपवृत्त्य-नियामकसम्बन्धावच्छिन्नाधारत्वाप्रसिद्धा धर्म्म-धर्म्मिभावगोचरत्वविरहेण धर्म्म-धर्म्मिगोचरैकज्ञानत्वरूपविशिष्टज्ञानलक्षणाव्याप्त्यापत्तिरिति भा[illegible]

नान्या: सम्बन्धिताया अपि विलक्षणतया गुणादावसत्त्वात्। सत्त्ववान् द्रव्यत्वादित्यादौ द्रव्यत्वाद्यधिकरणे महाकालादौ कालिकविशेषणतादिना वर्त्तमानस्य सत्त्वादिसामान्याभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकमेव सत्त्वमित्यव्याप्तिः, एवं कपिसंयोगी एतत्त्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकेऽव्याप्तिश्च साध्यसामान्याभावस्यापि निरुक्तहेतुसामानाधिकरण्यादतः 'प्रतियोग्यसमानाधिकरणेति यत्पदार्थस्य हेतोर्विशेषणं, तथाच स्वप्रतियोग्यसमानाधिकरणस्य हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धिनि येन केनापि सम्बन्धेन वर्त्तमानो योऽभावस्तत्प्रतियोगितानवच्छेदकं यदित्यर्थः, स्वपदमभावपरम्। न च साध्य-साधनभेदेन व्याप्तिभेदात् व्याप्यवृत्तिसाध्यके नेदं विशेषणं सफलं अभावीयविशेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्याभाववृत्तिसाध्यीयप्रतियोगित्व-तदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धेन वा(१) हेत्वधिकरणवृत्तित्वविवक्षणादेव साध्याभावस्य यथाकथञ्चित्सम्बन्धेन हेत्वधिकरणवृत्तितामादाय व्याप्यवृत्तिव्यतिरेकिसाध्यकमात्राव्याप्तेर्वारणसम्भवा-

---

(१) अभावीयविशेषणताविशेषसम्बन्धेन हेत्वधिकरणवृत्तित्वोक्तौ द्रव्यत्वाभाववान् सत्त्वादित्यादौ अतिव्याप्तिः द्रव्यत्वरूपसाध्याभावस्य अभावीयविशेषणताविशेषसम्बन्धेनावर्त्तमानत्वात् अतः साध्याभाववृत्तीत्यादि, इत्यञ्च साध्यादिभेदेन व्याप्तिभेदात् भावसाध्यकस्थले अभावीयविशेषणताविशेषसम्बन्धेनैव हेत्वधिकरणवृत्तित्वं, अभावसाध्यकस्थले यथायथं संयोग-समवायादिसम्बन्धेनैव हेत्वधिकरणवृत्तित्वं प्राब्देक्यस्यानुपादेयत्वात्। न तु साध्याभाववृत्तिसाध्यीयप्रतियोगित्व-तदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धत्वेन तादृशसम्बन्धस्य व्याप्तिलक्षणघटकत्वं प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यनिवेशापेक्षया महागौरवापत्तेः इति तात्पर्य्यम्।

दिति वाच्यं। तथाप्येतद्विशेषणानुपादाने साध्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्व-भ्रमेण हेतुसामानाधिकरण्यभ्रमेऽनुमित्यनुदयापत्तेः, हेतुसमानाधि-करणाभावप्रतियोगितायां साध्यतावच्छेदकावच्छेद्यत्वग्रहे तादृशप्रति-योगितासामान्ये साध्यतावच्छेदकावच्छेद्यत्वाभावग्रहासम्भवात् प्रकृत-लक्षणे वक्ष्यमाणयुक्त्या तथैव विवक्षणीयत्वात् इति भावः। स्वप्रतियो-ग्यसमानाधिकरणत्वञ्च न स्वप्रतियोग्यधिकरणे केनापि सम्बन्धेन वर्त्तते यत्तदन्यत्वं संयोगी सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः सत्ताया द्रव्ये संयोगा-भावस्य प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वात्, किन्तु स्वप्रतियोग्यधिकरणे केनापि सम्बन्धेन वर्त्तमानत्वसामान्याभावः, तथाच सामानाधिकरण्य-स्याव्याप्यवृत्तितया सत्ताया गुणादावेव संयोगसामानाधिकरण्याभाव-वत्त्वमतो नातिव्याप्तिः। एतेन इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ तादृशा-भाव एवाप्रसिद्धः यदभावप्रतियोग्यसमानाधिकरणं ज्ञेयत्वमित्यपि निरस्तं। सामानाधिकरण्यस्याव्याप्यवृत्तितया सामान्यत्वाद्यभावस्यैव तादृशस्य प्रसिद्धत्वात्। न चैवं वह्नेरव्याप्यवृत्तितया वह्निमान् धूमा-दित्यादावव्याप्तिः हेतुसमानाधिकरणस्य साध्यसामान्याभावस्यापि धूमावयवावच्छेदेन प्रतियोगिसामानाधिकरण्याभावस्य धूमादौ सत्त्वा-दिति वाच्यं। स्वप्रतियोग्यधिकरणे वर्त्तमानत्वसामान्याभावविशिष्ट-हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनाधिकरणत्वस्य वि-वक्षितत्वात्। इत्थञ्च वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्न्यादिसामान्याभा-वस्य प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वाभावविशिष्टहेतुतावच्छेदकावच्छिन्न-हेतोर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनाधिकरणमेवाप्रसिद्धमतः अभावान्तरस्यैव लक्षणघटकत्वान्नाव्याप्तिः।

केचित्तु प्रतियोग्यसमानाधिकरणेत्यन्ताभावविशेषणं। न चैवं कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादावव्याप्तिस्तदवस्था संयोगी सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिवारणाय सामानाधिकरण्यस्याव्याप्यवृत्तित्वाभ्युपगमावश्यकतया हेतुसमानाधिकरणकपिसंयोगाभावस्यापि गुणादौ प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वादिति वाच्यं। स्वप्रतियोग्यसामानाधिकरण्यविशिष्टेऽभावे हेत्वधिकरणवृत्तिताया विवक्षितत्वादित्याहुः। तदसत् विशिष्टस्यानतिरिक्ततया गुणाद्यन्यत्वविशिष्टसत्ताया गुणादिवृत्तित्ववत्प्रतियोगिसामानाधिकरण्याभावविशिष्टकपिसंयोगाभावस्यापि एतद्वृक्षवृत्तित्वात्। न च हेत्वधिकरणावच्छेदेन प्रतियोगिसामानाधिकरण्यसामान्याभाववत्त्वं विवक्षितमेतल्लाभायैव च हेतुसमानाधिकरणमिति वाच्यं। कुसृष्टिकल्पनापत्तेः। वस्तुतस्तु प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वं न प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वाभावः सत्तायां गुणे न संयोगाभावप्रतियोगिसामानाधिकरण्यमिति प्रतीतेर्गुणादौ सत्तानिष्ठतादृशसमानाधिकरणत्वस्यावच्छेदकतासम्बन्धेनाभावविषयकतया सामानाधिकरण्यस्याव्याप्यवृत्तित्वे मानाभावेन संयोगी सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तेः, किन्तु प्रतियोग्यनधिकरणे येन केनापि सम्बन्धेन वर्त्तमानत्वं तदपि हेतुविशेषणं न तु अभावविशेषणं कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादावव्याप्तेस्तादवस्थ्यात् हेतुसमानाधिकरणकपिसंयोगाभावस्यापि प्रतियोग्यनधिकरणगुणादिवृत्तित्वात्, विशिष्टस्यानतिरिक्ततया प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टस्याभावस्य हेत्वधिकरणवृत्तिताविवक्षणेऽप्यनिस्तारात्। न च निरुक्तप्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वस्य हेतुविशेषणत्वेऽपि वह्नेरव्याप्यवृत्तितया वह्निमान् धूमा-

दित्यादावव्याप्तिः धूमादेर्धूमादिसमानाधिकरणवह्न्यादिसामान्याभावस्यापि प्रतियोग्यनधिकरणे धूमावयवादौ वृत्तेः, कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तिः निरुक्तहेतुसमानाधिकरणोऽभावः कपिसंयोगसामान्याभावः विशिष्टस्यानतिरिक्ततया तत्प्रतियोग्यनधिकरणगुणादिवृत्तिरपि हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेतुः तत्प्रतियोगितावच्छेदकत्वात् कपिसंयोगत्वस्येति वाच्यं। निरुक्तप्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनाधिकरणत्वस्य विवक्षितत्वात्। एवञ्च वह्निमान् धूमात् कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ(१) वह्नि-कपिसंयोगादिसामान्याभावस्य प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टहेतुतावच्छेदकविशिष्टहेतोर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनाधिकरणमेवाप्रसिद्धमित्यभावान्तरस्यैव लक्षणघटकत्वान्नाव्याप्तिः। इत्यञ्च प्रतियोग्यनधिकरणं यद्धेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेत्वधिकरणं तत्र येन केनापि सम्बन्धेन वर्त्तमानो योऽभाव इत्यभावान्तार्थनिष्कर्षः प्रतियोग्यनधिकरणहेत्वधिकरणस्यैव प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टहेत्वधिकरणतया वृत्तित्वपर्य्यन्तप्रवेशे गौरवात् प्रयोजनाभावाच्च। अत्र प्रतियोग्यनधिकरणत्वं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन यत्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिसम्बन्धि तदन्यत्वं, अन्यथा ज्ञानवान् द्रव्यत्वात् वह्निमान् धूमादित्यादौ समवायेन ज्ञानवत्त्वादेः साध्यतायामिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ कालिकसम्बन्धेन वाच्यत्वादेः साध्यतायाञ्चातिव्याप्त्यापत्तेः हेतुसमानाधिकरणस्य

(१) एतत्त्वविशिष्टसत्त्वादित्यादाविति क०।

समवायसम्बन्धावच्छिन्नज्ञान-वह्न्याद्यभावस्य कालिकसम्बन्धावच्छिन्न-वाच्यत्वाद्यभावस्य च विषयत्व-संयोग-विशेषणताविशेषसम्बन्धेन प्रतियोग्यधिकरणमेव हेत्वधिकरणमित्यभावान्तरा एव तादृशाः तत्प्रतियोगितानवच्छेदकत्वात् ज्ञानत्व-वह्नित्व-वाच्यत्वत्वादेः । गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेः भूतत्व-मूर्त्तत्वोभयवान् मूर्त्तत्वादित्यादावतिव्याप्त्यापत्तेश्च हेतुसमानाधिकरणस्य विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यधिकरणमेव हेत्वधिकरणमित्यभावान्तर एव तादृशः तत्प्रतियोगितानवच्छेदकत्वाद्विशिष्टसत्तात्वादेः । विषयितादिवृत्त्यनियामकसम्बन्धेन घटादेः साध्यतायां ज्ञानत्वादिहेतौ विषयितादिसम्बन्धावच्छिन्नघटाद्यभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यधिकरणाप्रसिद्ध्याऽतिव्याप्त्यापत्तिरतोऽधिकरणत्वमपहाय सम्बन्धित्वानुधावनम् ।

केचित्तु प्रतियोग्यनधिकरणत्वं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन यत्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य सम्बन्धि तदन्यत्वं तावतापि ज्ञानवान् द्रव्यत्वादित्यादावतिव्याप्तिवारणसम्भवादित्याहुः । तदसत् विषयित्व-कालिकविशेषणत्वादिसम्बन्धेन[1] घटादेः साध्यतायां नित्यज्ञानत्व-महाकालत्वादिहेतावव्याप्त्यापत्तेः हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेत्वधिकरणस्य साध्यतावच्छेदकविषयित्वादिसम्बन्धेनाभावमात्रस्यैव प्रति-

(१) विषयित्वादेः संसर्गत्वानभ्युपगमे अव्याप्तिदानार्थं कालिकसम्बन्धानुसरणं कालो हि जगदाधार इति प्रतीत्यनुरोधेन कालिकसम्बन्धस्य संसर्गत्वमवश्यमभ्युपेयमिति ।

योगिसम्बन्धितया तादृशाभावाप्रसिद्धेः प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन तथात्वाभिधाने च सम्बन्धान्तरावच्छिन्नाभावमादायैव प्रसिद्धिरित्यनुपदं वक्ष्यामः।

प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नत्वञ्च प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्यं तेन गुण-कर्म्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् सत्त्वादित्यादौ हेत्वधिकरणस्य गुण-कर्म्मादेः स्वरूपसम्बन्धेन गुण-कर्म्मान्यत्ववतः सत्त्वादेः समवायसम्बन्धेनाधिकरणत्वेऽपि(१) नातिव्याप्तिः। ननु तथापि प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धित्वं किं प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य यस्य कस्यचिदसम्बन्धित्वं, प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धित्वं वा, प्रतियोगितावच्छेदकयत्किञ्चिदवच्छिन्नसामान्यासम्बन्धित्वं वा, आद्ये कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादावव्याप्तिः कपिसंयोगत्वावच्छिन्नयत्किञ्चित्कपिसंयोगासम्बन्धित्वादेतद्वृक्षस्य, द्वितीये वह्निमान् धूमादित्यादावसम्भवः यतः एवमभावो नास्ति यस्य प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धी हेतुसम्बन्धी पर्व्वतादिः, जलत्वाद्यभावनिष्ठस्याकाशाभावादिभेदस्याभावाधिकरणकाभावत्वेनाधिकरणस्वरूपतया आकाशाभावादिरपि जलत्वाद्यभावप्रतियोगी तत्सम्बन्धित्वात् पर्व्वतादेः। न च द्रव्यत्वाद्यात्मकभावरूपाभाव एव तादृशः प्रसिद्ध इति वाच्यं। भावस्यापि स्वसमानाधिकरणान्योन्याभावभिन्नत्वात्तद्भेदस्य चाधिकरणस्वरूपानतिरेकितया अन्योन्याभावरूपप्रतियोगिसम्बन्धिहेतु-

(१) सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन गुण-कर्म्मान्यत्वविशिष्टसत्ताधिकरणत्वस्यैव विशिष्टाधिकरणतात्वमिति भावः।

सम्बन्धिकत्वात्, अन्योन्याभावान्तरस्याधिकरणातिरिक्तत्वेऽपि अन्योन्याभावान्योन्याभावस्याधिकरणस्वरूपानतिरिक्तत्वात्[१]। न च नव्यनये अभावाधिकरणकाभावस्यान्योन्याभावान्योन्याभावस्य चाधिकरणस्वरूपत्वाभावादत्यन्ताभावत्वनिरूपितप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धित्वस्य विवक्षितत्वाद्वा[२] नाप्रसिद्धिरिति वाच्यं। तथापि सर्व्वेषामेव भावरूपाणामभावरूपाणां वा अभावानां पूर्व्वक्षणादियत्किञ्चिद्वृत्तित्वविशिष्टस्याभावात्यन्ताभावात्मकत्वस्य सर्व्वसिद्धतया तादृशस्याभावरूपप्रतियोग्यधिकरणमेव हेत्वधिकरणमित्यप्रसिद्धेर्दुर्व्वारत्वात् पूर्व्वक्षणादिवृत्तित्वविशिष्टानां घटादिवृत्तित्वविशिष्टानां वा जलत्वाभावादीनामभावाभावस्य विशिष्टजलत्वाभावादेः केवलजलत्वाभावाद्यनतिरिक्तत्वात्। तृतीये घटत्वाभावो घटत्वाभावत्वादित्यादौ तादात्म्यसम्बन्धेन अभावसाध्यकेऽव्याप्तिः गोत्वादिरूपयत्किञ्चित्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धिहेतुसम्बन्धिनिष्ठस्य गवादिभेदस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वाद्घटत्वाभावत्वादेः, प्राचां मतेऽभावाधिकरणकाभावप्रतियोगिकाभावस्याधिकरणस्वरूपानतिरेकितया गवादिभेदे वर्त्तमानस्य घटत्वाभावादिभेदस्य गवादिभेदस्वरूपत्वात्।

---

(१) अन्योन्याभावान्योन्याभावस्यातिरिक्तत्वे तदन्योन्याभावस्याप्यतिरिक्तत्वमित्यनवस्था स्यादतः अन्योन्याभावान्योन्याभावस्याधिकरणस्वरूपत्वमिति तात्पर्य्यम्।

(२) आकाशाभावादिनिष्ठजलत्वाभावीयप्रतियोगित्वं अन्योन्याभावत्वनिरूपितं न त्वत्यन्ताभावत्वनिरूपितमिति न दोषः।

कपिसंयोगाभावे[१] साध्ये आत्मत्व-द्रव्यत्वादिहेतावव्याप्तिश्च आत्मत्वादिसमानाधिकरणकपिसंयोगाभावाभावस्य कपिसंयोगस्य गुणसामान्याभावत्व-समवेतसामान्याभावत्वरूपयत्किञ्चित्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धित्वादात्मादेरिति । मैवं, स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धिनिरूपकहेतुसम्बन्धिनिष्ठाभावनिरूपिता या या प्रतियोगिता तदनवच्छेदकत्वस्य विवक्षितत्वात्, स्वपदं प्रतियोगितापरं । इत्यञ्च वह्निमान् धूमादित्यादौ जलत्वाद्यभावस्य जलत्वादिनिष्ठजलत्वत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तय एव तादृश्यः प्रसिद्धाः, प्रतियोगितावच्छेदकभेदेन प्रतियोगिताभेदात्, तदवच्छेदकञ्च न वह्नित्वादिकमिति नासम्भवः । घटत्वाभावो घटत्वाभावत्वादित्यादौ च घटत्वाभावत्वावच्छिन्ना घटत्वाभावनिष्ठा गवादिभेदनिरूपिता प्रतियोगिताव्यक्तिर्न तादृशी, किन्तु गवादिनिष्ठगोत्वाद्यवच्छिन्नतदीयप्रतियोगिताव्यक्तिरेव तादृशी तदनवच्छेदकमेव घटाभावत्वमिति नाव्याप्तिः । एवं कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वादित्यादावपि कपिसंयोगाभावत्वावच्छिन्ना कपिसंयोगाभावनिष्ठा कपिसंयोगनिरूपिता प्रतियोगिताव्यक्तिर्न तादृशी, किन्तु गुणादिसामान्याभावनिष्ठगुणसामान्याभावत्वाद्यवच्छिन्नतदीयप्रतियोगिताव्यक्तिरेव तादृशी तदनवच्छेदकमेव कपिसंयोगाभावत्वमिति नाव्याप्तिः ।

---

(१) अभावाधिकरणकाभावप्रतियोगिकाभावस्य अधिकरणस्वरूपत्वानभ्युपगमे अव्याप्तिमाह कपिसंयोगाभाव इति ।

वस्तुतस्तु स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसामान्या-सम्बन्धिनिरूपकहेतुसम्बन्धिका या या प्रतियोगिता तदनवच्छेदकं यदित्येव विवक्षणीयं, अभावनिवेशे प्रयोजनविरहादिति तत्त्वम्[१]।

तादृशी या या प्रतियोगिता तदनाश्रयो यत्तेन समं सामानाधिकरण्यमित्युक्तावसम्भवः वह्निमान् धूमादित्यादौ सर्व्वेषामेव वह्नीनां तत्तद्वह्नित्वोभयत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगितायास्तादृश्या आश्रयत्वादतोऽवच्छेदकानुधावनं। नन्वेवमपि वह्निमान् धूमादित्यादावसम्भवः वह्नित्वादेर्म्महानसीयत्वविशिष्टवह्नित्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगितायास्तादृश्या अवच्छेदकत्वात् विशिष्टस्यावच्छेदकत्वे तद्घटकतया विशेष्यस्याप्यवच्छेदकत्वात्। अथानवच्छेदकत्वं पर्य्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यत्वं तथाच वह्नित्वादिकं केवलं न महानसीयत्वविशिष्टवह्नित्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताया अवच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणमतो नासम्भवः। न च तथापि दण्डिमान् दण्डि-

---

(१) अनुगमप्रकारो च हेत्वधिकरणवृत्तिप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसामानाधिकरण्यमित्यादिरूपा, प्रतियोगितायां हेत्वधिकरणवृत्तित्वं स्वविशिष्टाधिकरणत्वसम्बन्धावच्छिन्नस्वनिष्ठावच्छेदकताकभेदवत्त्वसम्बन्धेन अधिकरणत्वे स्ववैशिष्ट्यं स्वावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-स्वावच्छेदकधर्म्मावच्छिन्नत्वोभयसम्बन्धेन इति, हेत्वधिकरणवृत्तिप्रतियोगितानवच्छेदकेत्यनेन तादृशप्रतियोगितावच्छेदकत्वसामान्याभावस्य विवक्षणात् धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूमत्वस्य यत्किञ्चित्प्रतियोगितानवच्छेदकत्वेऽपि नातिव्याप्तिरिति।

संयोगादित्यादिनानाव्यक्तिसाध्यतावच्छेदकस्थलेऽव्याप्तिः[१] साध्यतावच्छेदकीभूतानां सर्व्वासामेव दण्डव्यक्तीनां चालनीन्यायेन दण्डि-संयोगवन्निष्ठ-तत्तद्दण्डावच्छिन्न-प्रतियोगिताक-तत्तद्दण्डाभावप्रति-योगितायास्तादृश्या अवच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणत्वादिति वाच्यं। आत्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽभावप्रतियोगितानव-च्छेदकतया दण्डव्यक्तीनां पर्य्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेदकतावत्त्वविरहात् तत्त्व-दण्डत्वयोरप्यवश्यमवच्छेदककोटिप्रविष्टत्वादिति[२] चेत्। न। तथा सति महानसीयत्वविशिष्टवह्निमान् धूमादित्यादावतिव्याप्तिः वह्नित्वस्य पर्य्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यतया महानसीयत्व-विशिष्टवह्नित्वस्यापि तथात्वात् महानसीयत्वविशिष्टवह्नित्वस्य वह्नि-त्वानतिरिक्तत्वात्, तद्दण्डिमान् दण्डिसंयोगादित्यादावतिव्याप्तिश्च आत्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽभावप्रतियोगितानवच्छेद-कतया साध्यतावच्छेदकीभूत-तत्तद्दण्डव्यक्तेरपि पर्य्याप्त्याख्यतादृश-प्रतियोगितावच्छेदकताशून्यत्वादिति। मैवं, स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसामान्याभावसम्बन्धिनिरूपकहेतुसम्बन्धिका या या

---

(१) दण्डिसंयोगादित्यत्र दण्डिसंयोगपदेन दण्डिप्रतियोगिकत्वविशिष्ट-संयोगस्य विवक्षितत्वं तेन संयोगस्य निष्ठतया दण्डिसंयोगस्य दण्डिनि सत्त्वेऽपि न सद्धेतुत्वव्याघातः, तत्प्रतियोगिकत्वविशिष्टस्य संयोगस्य तस्मिन्ननभ्युपगमादिति।

(२) अवच्छेदकतावच्छेदकसाधारणावच्छेदकत्वमतेनेदं, तथाच तद्दण्डा-भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वं तद्दण्ड इव तत्त्व-दण्डत्वयोरपि पर्य्याप्तं न तु तद्दण्डव्यक्तिमात्रे इति न दोष इति भावः।

प्रतियोगिता तत्तत्प्रतियोगितासामान्ये यद्धर्म्मपर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वाभावस्तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वात् । यत्र येन रूपेण साध्यतावच्छेदकत्वं तत्र तेन रूपेण तदेव यद्धर्म्मपदेन ग्राह्यं, इत्यस्य वह्निमान् धूमादित्यादौ धूमवन्निष्ठमहानसीयवह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रतियोगितायाः महानसीयत्वविशिष्टवह्नित्वपर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वेऽपि शुद्धवह्नित्वस्यैव साध्यतावच्छेदकतया शुद्धवह्नित्वपर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वविरहासम्भवः । महानसीयत्वविशिष्टवह्निमान् धूमादित्यादौ च धूमवन्निष्ठमहानसीयवह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रतियोगितायास्तादृशप्रतियोगितान्तर्गतायाः साध्यतावच्छेदकीभूतमहानसीयत्वविशिष्टवह्नित्वपर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वान्नातिव्याप्तिः । एवं तद्दण्डिमान् दण्डिसंयोगादित्यादौ दण्डिसंयोगवन्निष्ठतद्दण्ड्यभावप्रतियोगितायास्तादृशप्रतियोगितान्तर्गतायाः शुद्धतद्दण्डव्यक्तिपर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वाभाववत्त्वेऽपि तद्दण्डत्वविशिष्टव्यक्तेरेव साध्यतावच्छेदकतया तादृशतद्दण्डव्यक्तिपर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वान्नातिव्याप्तिः। एतेन द्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वान् द्रव्यसमवायित्वादित्यादिनानाजातिसाध्यतावच्छेदकस्थलेऽव्याप्तिः साध्यतावच्छेदकीभूतानां सर्व्वासां द्रव्यत्वव्याप्यजातीनां चालनीन्यायेन द्रव्यसमवायिनि वर्त्तमानस्य स्वरूपतः पृथिवीत्व-जलत्वादिरूपद्रव्यत्वव्याप्यतत्तज्जात्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणत्वात् जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्यैव स्वरूपतोऽवच्छेदकतानभ्युपगमादित्यपि परास्तं । महानसीयत्वविशिष्टवह्निमान् धूमात् तद्दण्डिमान् दण्डिसंयोगादित्यादावतिव्याप्तिवार-

णाय यथोक्तविवचाया . आवश्यकत्वे तत एवाव्याप्तेर्निरासात्, स्वरूपतः पृथिवीत्व-जलत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताया द्रव्यत्वव्याप्यजातित्वविशिष्टपर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वाभावात्। न चैवं विवक्षणे घ्राणग्राह्यगुणवान् पृथिवीत्वादित्यादौ लघुसमनियतगुरुरूपेण साध्यतायामव्याप्तिः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वस्य सम्भवति लघुधर्म्मे गुरावभावेन घ्राणग्राह्यगुणत्वनिष्ठावच्छेदकत्वाप्रसिद्धेः लाघवाद्गन्धत्वस्यैव प्रतियोगितावच्छेदकत्वात्। अनतिरिक्तवृत्तित्वरूपावच्छेदकत्वप्रवेशे सत्तावान् जातेरित्यादावव्याप्तिः विशिष्टसत्तात्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताया अनतिरिक्तवृत्तित्वात् सत्तात्वादेरिति वाच्यं। लघुसमनियतगुरुधर्म्मेण साध्यतायामलक्ष्यत्वात्(१)। अतएव गुरुधर्म्मो न कारणतावच्छेदकः तन्निष्ठपर्य्याप्तावच्छेदकत्वाप्रसिद्ध्या तेन रूपेण व्यापकत्वविरहात् यथोक्तव्यापकताया अस्य कारणताघटकत्वात्। अन्यथा गुरुधर्म्मेणापि व्यापकत्वे कार्य्याव्यवहितपूर्व्वत्वव्यापकतावच्छेदकान्यथासिद्ध्यनिरूपकधर्म्मस्यैव कारणतावच्छेदकतया गुरुधर्म्मस्यापि कारणतावच्छेदकत्वापत्तेः। गुरुधर्म्मस्य कारणतानवच्छेदकत्वन्तु तद्घटितव्यापकत्वस्य गौरवेण कारणतापदार्थत्वविरहात्।

वस्तुतस्तु लघुसमनियतगुरुधर्म्मस्य शक्यतावनवच्छेदकत्वेऽपि कम्बुग्रीवादिमान्नास्तीत्याद्यबाधितप्रतीतेः प्रतियोगिताया अवच्छेदकत्वमस्त्येव, न हि तत्प्रतीतेस्तत्प्रतियोगिकाभावमात्रं विषयः, तथाविध-

---

(१) लघुसमनियतगुरुधर्म्मावच्छिन्नविधेयकानुमितिस्तु लघुधर्म्मावच्छिन्ने व्यापकत्वज्ञानादेव भवतीत्यभिप्रायेणैतदुक्तमिति।

यत्किञ्चिद्व्यक्तिसत्त्वेऽपि तादृशप्रतीत्यापत्तेः। गुरुधर्म्मस्य कारणतानवच्छेदकत्वस्यावश्यक्लृप्तनियतपूर्व्ववर्त्तिसहभावादिवद्गौरवस्यापि स्वातन्त्र्येणान्यथासिद्धिसम्पादकत्वात्(१)।

यद्वा कार्य्याव्यवहितपूर्व्वत्वरूपव्यापकतावच्छेदकान्यथासिद्धिनिरूपकधर्म्मस्यैव न कारणतावच्छेदकत्वमपि तु तादृशधर्म्मत्वरूपस्यातिरिक्ताखण्डपदार्थरूपस्य वा कारणत्वस्य स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपावच्छेदकत्ववत एव कारणतावच्छेदकत्वं तथाच लघुसमनियतगुरुधर्म्मस्य प्रतीतिबलादभावप्रतियोगितायाः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वेऽपि यथोक्तरूपायाः कारणतायाः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वविरहादेव न कारणतावच्छेदकत्वं। न चैवं दण्डत्वादेर्लघुधर्म्मस्यापि कारणतायास्तादृशावच्छेदकत्वे मानाभावः कारणतावच्छेदकधर्म्मवत्त्वस्यैव कारणतारूपत्वेन दण्डत्वस्यैव कारणतारूपतया स्वस्यैव स्वावच्छेदकत्वासम्भवस्येति वाच्यं। दण्डत्वेन घटकारणत्वमित्यादिप्रतीतेरेव मानत्वात् प्रतीतिबलात् स्वस्यापि धर्म्मान्तरविशिष्टस्वावच्छेदकत्वाच्चेत्येव तत्त्वं।

ननु तथाप्यसम्भवः वह्निमान् धूमादित्यादौ धूमादिसमानाधिकरणवह्न्याद्यन्योन्याभावप्रतियोगितायाः तादृशसमवायादियत्किञ्चित्सम्बन्धावच्छिन्नवह्न्यादिसामान्यात्यन्ताभावप्रतियोगितायाश्च तादृशप्रतियोगितान्तर्गताया वह्नित्वाद्यवच्छेद्यत्वात्। न च साध्यता-

---

(१) यथावश्यक्लृप्तनियतपूर्व्ववर्त्तिसहभावादेः अन्यथासिद्धिसम्पादकत्वं तथा गौरवस्यापि स्वातन्त्र्येणान्यथासिद्धिसम्पादकत्वं अतो गुरुधर्म्मावच्छिन्नस्यान्यथासिद्धत्वं न तु कारणत्वमिति समुदिततात्पर्य्यम्।

वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेन प्रतियोगिताव्यक्तयोर्विशेषणीयाः स्वावच्छेदकसम्बन्धेनेतिस्थाने साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेनेति वा वक्तव्यमिति वाच्यं। तथा सति कालिकसम्बन्धेन घटादेः साध्यत्वे कालपरिमाणादिहेतावव्याप्त्यापत्तेः तत्र स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धिनिरूपकहेतुसम्बन्धिकायाः साध्यतावच्छेदककालिकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितायाः साध्यतावच्छेदककालिकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धिनिरूपकहेतुसम्बन्धिकायाः प्रतियोगितायाश्चाप्रसिद्धत्वात् निरूपकहेतुसम्बन्धिनो महाकालस्य कालिकसम्बन्धेन वृत्तिमन्मात्रस्यैवाधारत्वात्। न च कालिकसम्बन्धावच्छिन्नगगणाद्यभावप्रतियोगितैव तादृशी प्रसिद्धा तस्याश्च स्वावच्छेदककालिकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकगगणत्वाद्यवच्छिन्नासम्बन्धित्वस्य हेतुसम्बन्धिनि महाकाले सत्वात्, महाकालस्य गगणाद्यसम्बन्धित्वादिति वाच्यं। कालिकसम्बन्धेन गगणादेर्वृत्तिमत्त्वे महाकाले कालिकसम्बन्धेन गगणादेरपि सम्बन्धित्वात् तेन सम्बन्धेन गगणादेरवृत्तित्वे तु तेन सम्बन्धेन गगणत्वाद्यवच्छिन्नसम्बन्धिन एवाप्रसिद्धत्वमित्युभयथापि कालिकसम्बन्धावच्छिन्नगगणाद्यभावप्रतियोगितामादाय प्रसिद्ध्यसम्भवात्। किञ्च घटवान् नित्यज्ञानत्वादित्यादौ विषयितासम्बन्धेन घटादिसाध्यके विषयितासम्बन्धावच्छिन्नगगणाद्यभावप्रतियोगितामादायापि न प्रसिद्धिसम्भवः विषयितया गगणादेरपि नित्यज्ञाने सत्त्वादिति। मैवं। स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धिनिरूपकहेतुसम्बन्धिकप्रतियोगितासामान्ये साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्धर्मनिष्ठपर्य्याप्त्यवच्छेद-

कताकत्वोभयाभावस्तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वात् । इत्यत्र घटवान् कालपरिमाणादित्यादौ समवायादिसम्बन्धावच्छिन्नघटाद्यभावप्रतियोगितामादायैव प्रसिद्धिः । एतेन घटत्वाभाववान् पटत्वादित्यादावव्याप्तिः पटत्वसमानाधिकरणस्य गोत्वाभावादेर्घटत्वाभावनिष्ठप्रतियोगिताया घटत्वाभावत्वावच्छेद्यत्वात् अभावाधिकरणकाभावप्रतियोगिकाभावस्याधिकरणस्वरूपानतिरेकितया गोत्वाभावादिनिष्ठघटत्वाभावभेदस्य गोत्वाभावादिरूपत्वेन घटत्वाभावस्यापि गोत्वाभावादिप्रतियोगित्वात् तत्प्रतियोगिताव्यक्तेः स्वावच्छेदकतादात्म्यसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धित्वस्यापि हेतुसम्बन्धिनि सत्त्वाच्चेति प्राचां दूषणमप्यपास्तं । तत्प्रतियोगिताव्यक्तेः घटत्वाभावत्वाद्यवच्छेद्यत्वेऽपि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वाभावेनोभयाभाववत्त्वात् । अथैवमपि घटवान् नित्यज्ञानत्वात् इत्यादौ वृत्त्यनियामकविषयितादिसम्बन्धेन साध्यतायामव्याप्तिस्तादात्म्यातिरिक्तवृत्त्यनियामकसम्बन्धमात्रस्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वेन[1] तत्र साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वस्याप्रसिद्धत्वात् । यदि च वृत्त्यनियामकविषयितादिसम्बन्धस्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वेऽपि घटत्वज्ञानाद्यत्यन्ताभावादेः प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकसम्बन्धेनैवाभावप्रतियोगितावच्छेदकतायामेव तदवच्छिन्नत्वं प्रसिद्धमित्युच्यते, तदापि

---

[1]) तादात्म्यस्य वृत्त्यनियामकत्वेऽपि तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगित्वमवश्यमभ्युपेयमन्यथा तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्वरूपस्यान्योन्याभावत्वस्य दुर्व्वचत्वापत्तिरिति तात्पर्य्यम् ।

वृत्त्यनियामकविषयतादिसम्बन्धेन साध्यतायां घटवज्ज्ञानत्वादित्यादावतिव्याप्तिः वृत्त्यनियामकसम्बन्धस्य अभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वेन ज्ञानत्वसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितायां विषयितादिसम्बन्धावच्छिन्नत्व-घटत्वाद्यवच्छिन्नत्वोभयाभावसत्त्वादिति चेत्। न। वृत्तिनियामकसम्बन्धवत् वृत्त्यनियामकसम्बन्धस्याप्यभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वात्। न चैवमपि तादात्म्यसम्बन्धेन साध्यतायां घटो द्रव्यत्वादित्यादावतिव्याप्तिः मूलोक्तलक्षणवाक्येऽत्यन्ताभावपदसत्त्वेन अत्यन्ताभावनिरूपितप्रतियोगिताया एव लक्षणघटकतया तादृशप्रतियोगितासामान्ये तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नत्व-घटत्वाद्यवच्छेद्यत्वोभयाभावसत्त्वादिति वाच्यम्। अत्यन्ताभावस्यात्र प्रयोजनविरहेणानुपादेयत्वात्। न च तथापि संयोगादिसम्बन्धेन द्रव्यत्वादिसाध्यके द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादावतिव्याप्तिः संयोगसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यत्वाभावनिरूपितप्रतियोगिताव्यक्तेः स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसम्बन्धिन एवाप्रसिद्धत्वं किन्त्वभावान्तरीयप्रतियोगिताव्यक्तय एव तथा तत्र संयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-द्रव्यत्वावच्छिन्नत्वोभयाभावसत्त्वादिति वाच्यम्। तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यदलेनैव तन्निरासात् साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन तदवच्छिन्नसम्बन्धिनि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धित्वस्य तदर्थत्वात्(१) साध्यतावच्छेदक-हेतुतावच्छेदकसम्बन्धघटितसाध्यसामानाधिकरण्यज्ञाने सम्बन्धान्तरेण साध्यसामानाधिकरण्यज्ञाने वानुमित्यनुदयात्। तादा-

(१) तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यदलार्थत्वादित्यर्थः।

त्यादिवृत्त्यनियामकसम्बन्धेन साध्यत्वे हेतुत्वे चाव्याप्तिवारणाय अधि-करणत्वं वृत्तित्वमपहाय सम्बन्धित्वप्रवेशः। न च तथापि व्यापक-तालक्षणमतिव्याप्तमेव स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्न-सामान्यासम्बन्धिनिरूपकहेतुसम्बन्धिकप्रतियोगितासामान्ये साध्यता-वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्धर्मपर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वोभयाभावः त-द्धर्म्मावच्छिन्नत्वं व्यापकत्वमित्यस्यैव व्यापकतालक्षणत्वात् स्वपदं प्रति-योगितापरमिति वाच्यं। साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धित्वे सती-त्यनेनापि व्यापकतालक्षणे विशेषणीयत्वात्, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धा-श्रयवृत्तित्वेन व्यापकतावच्छेदकधर्म्मो वा विशेषणीयः तेन द्रव्यत्वादेः संयोगसम्बन्धेन प्रमेयत्वादिरूपेण पृथिवीत्वादिव्यापकताभ्युपगमेऽपि न क्षतिः। न च प्रतियोग्यसामानाधिकरण्य-हेतुसामानाधिकरण्य-साध्य-सामानाधिकरण्यदलेषु सर्व्वत्रैव सम्बन्धित्वप्रवेशेऽधिकरणत्व-वृत्तित्वयोः क्वाप्यप्रवेशात् संयोगेन गगणादेर्द्रव्यत्वादिव्याप्यत्वं, पृथिवीत्वादेः संयो-गेन गगणादिव्याप्यत्वञ्च स्यात् पृथिवीत्वाधिकरणे संयोगेन गगणा-भावसत्त्वेऽपि तस्य संयोगेन तदीयप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न-सम्बन्धित्वादिति वाच्यं। इष्टत्वात्। नन्वेतावता धूमादिव्यापकतावच्छे-दकवह्नित्वाद्यवच्छिन्नसंयोगिसंयोगित्वादेरेव व्याप्तित्वे पर्य्यवसिते तद्दृशसंयोगित्वस्य समवायसम्बन्धेन रासभादौ व्यभिचारिण्यपि ताद्रासभादौ समवायसम्बन्धेन तद्वत्तापरामर्शाद्धूमव्यापकवह्नि-समानाधिकरणरासभवान् पर्व्वत इत्याकारकादपि वह्न्यनुमित्यापत्तिः नयमये धूमत्वधर्म्मितानवच्छेदककव्याप्यत्वपरामर्शस्यापि अनुमि-तिहेतुत्वात्। न चेष्टापत्तिः, रासभलिङ्गकवह्न्यनुमितेः व्याप्त्यंशे

भ्रमपरामर्शजन्यत्वनियमादिति[१] चेत् । न । तादृशसंयोगित्वादि-रूपव्याप्तेः स्वघटकीभूतधूमत्वादिसम्बन्धेनैव ज्ञानमनुमितिहेतुः न तु समवायादिसाक्षात्सम्बन्धेनेत्यभ्युपगमात्, धूमत्वादेस्तत्सम्बन्धता च तदाश्रयवृत्तित्वसम्बन्धेन, रासभत्वावच्छिन्ने धूमत्वसम्बन्धेन तद्व्याप्त्य-भ्रमादनुमितिरिष्यत एव ।

केचित्तु[२] तादृशसंयोगिवृत्तिधूमत्वादिकमेव व्याप्तिः न तु तादृशसंयोगित्वादिमात्रं, तादृशसंयोगिवृत्तिधूमत्ववद्रासभवान् पर्व्व-तइतिभ्रमपरामर्शादनुमितिरिष्यत एवेत्याहुः । तदसत् । लाघ-वाद्धूमत्वादिसम्बन्धेन तादृशसंयोगित्वादेरेव व्याप्तित्वस्योचितत्वात्[३] ।

ननु तथापि कपिसंयोगि एतत्त्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यके-ऽव्याप्तिस्तदवस्था समवायसम्बन्धावच्छिन्नकपिसंयोगत्वावच्छिन्नप्रति-योगिताया अपि॰ तादृशप्रतियोगितासामान्यान्तर्गतत्वेन तत्र सा-ध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-कपिसंयोगत्वाद्यवच्छेद्यत्वोभयाभाववि-

---

(१) धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणरासभवान् पर्व्वत इति ज्ञानस्य व्या-प्यंशे प्रमात्वेन एतादृशज्ञानात् वह्न्यनुमितिस्वीकारे रासभलिङ्गक-वह्न्यनुमितेर्व्याप्यंशे भ्रमजन्यत्वनियमो न स्यादिति भावः ।

(२) केचित्त्वित्यादिना दीधितिकृन्मतमुत्थापितं तेन एतद्दोषवारणाय सामानाधिकरण्यविशिष्टधूमत्वस्य व्याप्तित्वमङ्गीकृतं तन्मते तादृश-धूमत्वस्य प्रकारविधया भानं, एतद्ग्रन्थकृन्मते तु संसर्गविधया इत्येता-वान् विशेषः ।

(३) धूमत्वस्य प्रकारविधया भाने तस्य संसर्गभानमवश्यमभ्युपेयं संसर्ग-विधया भाने तु संसर्गस्य संसर्गभानानभ्युपगमात् न तदीयसंसर्ग-भानमिति लाघवमनुसन्धेयम् ।

रत्वात् । न च समवायावच्छिन्न-कपिसंयोगत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताया: स्वावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन स्वावच्छेदककपिसंयोगत्वावच्छिन्नसम्बन्धिभिन्नमेव न हेत्वधिकरणमेतद्वृच इति कुतस्तस्या: तादृशप्रतियोगिताश्रगतत्वमिति वाच्यं। कपिसंयोगस्याव्याप्यवृत्तितया तदत्यन्ताभावस्येव तदद्भिन्नत्वस्यापि मूलावच्छेदेन वृचे सत्वात् अव्याप्यवृत्तिमतोऽन्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्वादिति चेत्। न। कपिसंयोगादेरव्याप्यवृत्तित्वेऽपि तत्सम्बन्धिता नाव्याप्यवृत्तिरतः कपिसंयोगत्वावच्छिन्नसम्बन्धिभिन्नत्वं नैतद्वृच इति ग्रन्थकृतोऽभिप्रायात्, अव्याप्यवृत्तेरत्यन्ताभावस्याव्याप्यवृत्तित्वेऽपि तद्वदन्योन्याभावो नाव्याप्यवृत्तिरित्यभिप्रायाद्वा। "न चान्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्वं" इत्यग्रे वक्ष्यमाणत्वात् इति मूलं चतुरस्रं।

स्वतन्त्रास्तु स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसम्बन्धिभिन्नत्वेन हेतुसम्बन्धिनो न विशेषणीयाः, किन्तु निरुक्तहेतुसम्बन्धिनि निरवच्छिन्नवृत्तिमान् योऽभावः तत्प्रतियोगितासामान्ये साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्धर्मपर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वोभयाभावस्तद्धर्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यमेव व्याप्तिर्व्वक्तव्या, इत्यञ्चाव्याप्यवृत्तिसम्बन्धित्वाव्याप्यवृत्तिमदन्योन्याभावयोरव्याप्यवृत्तित्वेऽपि न चतिः। वृत्तिस्वाभावीयविशेषणताविशेषसम्बन्धेन वक्तव्या, तेन सत्तावान् जातेरित्यादौ समवायसम्बन्धावच्छिन्नसत्तासामान्याभावादेर्व्विषयित्वाव्याप्यत्वादिसम्बन्धेन हेत्वधिकरणे ज्ञानादौ वर्त्तमानत्वेऽपि न चतिः। अत्यन्ताभावान्योन्याभावयोरभावस्तु न प्रतियोगि-तत्तावच्छेदकस्वरूपः, किन्त्वतिरिक्तत्वेन घटत्वात्यन्ताभाववान्

घटान्योन्याभाववान् वा द्रव्यत्वादित्यादौ नातिव्याप्तिः। साध्यप्रतियोगिकाभाववृत्तिसाध्यीयप्रतियोगित्व-तदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धेन वा वृत्तिर्व्वक्तव्या, वृत्त्यन्तमन्यतरविशेषणं। न चैवं समवायसम्बन्धावच्छिन्नसत्ताभावादौ साध्ये जातित्वादिहेतावव्याप्तिः तत्र समवायसम्बन्धस्यैव तादृशान्यतरावच्छेदकसम्बन्धतया तेन सम्बन्धेन हेत्वधिकरणवृत्तित्वाप्रसिद्धेरिति वाच्यं। तत्र विशेषणताविशेषसम्बन्धस्यापि कालिकसम्बन्धावच्छिन्नतादृशसत्ताभाव-जातित्वोभयाभावादिरूपसाध्यप्रतियोगिकाभाववृत्तिसाध्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धत्वात्। एतेन केवलान्वयिसाध्याभावाप्रसिद्ध्या तन्निष्ठसाध्यीयप्रतियोगित्वाद्यप्रसिद्धौ अव्याप्तिरित्यपि निरस्तं। तत्रापि कालिकादियत्किञ्चित्सम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभावस्य वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावस्य च प्रसिद्धत्वात्। यद्वा निरुक्तहेतुसम्बन्धिनि स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसम्बन्धिनिरूपितवृत्तिमन्निरूपितप्रतियोगितासामान्ये(१) साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्धर्म्मावच्छेद्यत्वोभयाभावस्तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः स्वपदं प्रतियोगितापरं, प्रथमसप्तम्यन्तं

---

(१) स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धिनिरूपितं सत् हेतुसम्बन्धिनिरूपितं यद्वृत्तित्वं तद्वदभावप्रतियोगितासामान्ये इति फलितार्थः, सत्तावान् जातेरित्यादौ समवायावच्छिन्नसत्ताभावस्य विषयितासम्बन्धेन हेत्वधिकरणे ज्ञानादौ वृत्तित्वेऽपि तादृशवृत्तित्वं न सत्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धिनिरूपितमतो न दोषः।

वृत्तिविशेषणं, इत्यञ्च सम्बन्धविशेषेण वृत्त्यविवक्षणेऽपि न क्षतिरिति प्राहुरिति कृतं पल्लवितेन।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सिद्धान्तलक्षणरहस्यम्।

---

## अथ सामान्याभावः ।

अन्यनिष्ठवह्नेर्धूमवत्पर्व्वतवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽपि तत्प्रतियोगिता न वह्नित्वेनावच्छिद्यते, धूमवति वह्निर्नास्तीत्यप्रतीतेः सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः पृथगेव, अन्यथा सकलप्रसिद्धरूपाभावे प्रसिद्धरूपवदन्यत्वे चावगते वायौ रूपं न वा वायू रूपवान्न वेति संशयो न स्यात् विशेषाभावकूटस्य निश्चितत्वात् ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सामान्याभावः ॥

---

## अथ सामान्याभावरहस्यं ।

वह्निमान् धूमादित्यत्र तत्तद्वह्न्यभावमादाय पूर्व्वपक्षव्याप्तिमुद्धरति, 'अन्यनिष्ठेति, एतेनावच्छेदकानुधावनस्य व्यावृत्तिः फलतो दर्शिता। ननु विशेषाभावानां विशेषधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगितानामवच्छेदकं सामान्यरूपमन्यथा अभावप्रतियोगितावच्छेदकमेव तत्र स्यादभावान्तरे प्रतियोगितान्तरे च मानाभावात्। न चेष्टापत्तिः, वह्निर्नास्तीत्यादिप्रत्ययेन वह्नित्वादेः प्रतियोगितावच्छेदकत्वावगाहनात्, तथाच वह्निमान् धूमादित्यादावव्याप्तिः सुदृढा संयोगसम्बन्धावच्छिन्न-तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तीनामेव तादृशप्रति-

योगितासामान्यान्तर्गतानां साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-वह्नित्वाद्यवच्छेद्यत्वोभयवत्त्वात् । न च वह्नित्वस्यापि तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तीनामवच्छेदकत्वे तत्प्रतियोगिताव्यक्तयो न तादृशप्रतियोगितासामान्यान्तर्गताः हेतुसम्बन्धिनः पर्व्वतादेरात्माकाशादेश्च तदवच्छेदकवह्नित्वावच्छिन्नसम्बन्धित्वादपि तु विषयित्व-काल-दिङ्निरूपितविशेषणत्वादिसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकवह्नि-घटाद्यभावप्रतियोगितैव तादृशप्रतियोगितासामान्यान्तर्गता तत्र च साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-वह्नित्वावच्छेद्यत्वोभयाभावस्य सत्त्वादव्याप्तिरिति वाच्यं । विशेषप्रतियोगितानामेव सामान्यधर्मस्यावच्छेदकत्वे स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकयत्किञ्चिद्धर्म्मावच्छिन्नासम्बन्धित्वमेव हेतुसम्बन्धिनो विशेषणं वक्तव्यमन्यथा धूमवान् वह्नेरित्यादावतिव्याप्तिः संयोगसम्बन्धावच्छिन्न-धूमत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तीनां स्वावच्छेदकसंयोगसम्बन्धेन स्वावच्छेदकद्रव्यत्व-सत्तारूपसामान्यधर्म्मावच्छिन्नसम्बन्ध्येव निखिलहेतुसम्बन्धि किन्तु विषयित्वादिसम्बन्धावच्छिन्नधूम-घटाद्यभावप्रतियोगिताव्यक्तीनामेव स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धि हेतुसम्बन्धि तत्र साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-धूमत्वावच्छेद्यत्वोभयाभावस्य सत्त्वात् । इत्यश्च वह्निमान् धूमादित्यादौ तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तीनामपि तत्तद्वह्नित्वरूपयत्किञ्चित्स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धी भवत्येव धूमसम्बन्धीत्यव्याप्तिर्दुर्व्वारा इत्यत आह, 'धूमवतीति 'पृथगेवेत्यन्तमेको ग्रन्थः, 'इत्यप्रतीतेरिति वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वविशेष्यतावच्छेदकक-धूमवद्वृत्तित्वप्रका-

रकप्रतीतेः धूमवद्वृत्तित्व-वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वोभयांश एव यथार्थत्वाभ्रमत्वयोरापत्तेरित्यर्थः, वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकानां तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नाभावानां सर्व्वेषामेव धूमवद्वृत्तित्वादिति भावः। 'सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकः' वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकः,[१] 'पृथगेव' तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकादतिरिक्त एव। न च तत्प्रतीतौ वह्नेर्यावद्विशेषाभावो विशेष्य इति भ्रमत्वमप्रमात्वञ्चेति वाच्यं। तथापि यावद्रूपं द्रव्यवृत्तीतिप्रतीतिवत् प्रमात्वाभ्रमत्वापत्तेर्दुर्व्वारत्वात्[२]। एतेन स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन वह्नित्वं वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन वह्निर्वा व्यासज्यवृत्ति तच्च तेन सम्बन्धेन विशेषाभावकूट एव पर्य्याप्नोति न तु प्रत्येकाभाव इति तत्प्रतीतेर्भ्रमत्वमप्रमात्वञ्चेत्यपि निरस्तं। तथापि यावत्त्वस्य व्यासज्यवृत्तित्वेऽपि[३] यावद्रूपं द्रव्यवृत्तीतिप्रतीतेः प्रमात्वाभ्रमत्ववत् तत्प्रतीतेः प्रमात्वाभ्रमत्वापत्तेर्दुर्व्वारत्वात्। न च वह्नेर्यावद्विशेषाभावाधिकरणवृत्तित्वविशिष्टाभावस्य तत्र विशेष्यतया भ्रमत्वमप्रमात्वञ्चेति वाच्यं। विशिष्टाभावस्य तथानुल्लेखात् तदुल्लेखेऽपि विशिष्टस्यानतिरिक्ततया गुणे गुण-कर्म्मान्यत्वविशिष्टसत्तेति

---

(१) सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव इति ख०।

(२) यथा यावद्रूपस्य एकस्मिन् द्रव्ये असत्त्वेऽपि यावद्रूपं द्रव्यवृत्तीति प्रतीतेः प्रामाण्यं तथा यावद्वह्निविशेषाभावस्य एकस्मिन् धूमवति असत्त्वेऽपि वह्न्यभावो धूमवद्वृत्तीति प्रतीतेः प्रामाण्यापत्तिर्दुर्वारैवेति भावः।

(३) 'व्यासज्यवृत्तित्वेऽपि' एकत्वानवच्छिन्नपर्य्याप्तिकत्वेऽपीत्यर्थः।

प्रतीतिवत्प्रमात्वाभ्रमत्वापत्तेर्दुर्वारत्वात् । एतेन यथा विशिष्टसत्ता-
याः सत्तानतिरिक्तत्वेऽपि विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाधारता न गुणादौ
तथा तत्तद्व्यभावानामेव वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेऽपि वह्नि-
त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वावच्छिन्नानां तेषामाधारता न धूमवतीति
तत्प्रतीतेः भ्रमत्वमप्रमात्वञ्चेत्यपि निरस्तं । तथापि गुणे गुण-कर्मान्य-
त्वविशिष्टसत्तेति विशिष्टसत्तायां गुणाधेयतावगाहिप्रतीतेः प्रमा-
त्वादिवत् धूमवति वह्निर्नास्तीति धूमवदाधेयतावगाहिप्रतीतेः
प्रमात्वाद्यापत्तेर्दुर्वारत्वात् । न च स्वावच्छिन्न-तत्तत्प्रतियोगिताकत्व-
सम्बन्धेन वह्नित्वं वह्नित्वावच्छिन्नतत्तत्प्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन
वह्निर्वा अव्याप्यवृत्ति तच्च जलह्रदाद्यवच्छेदेनैव विशेषाभावेषु वर्त्तते
न तु धूमाधिकरणावच्छेदेनेति न तत्प्रतीतेः प्रमात्वमिति वाच्यं ।
तावतापि धूमवति वह्नित्वादेरवच्छेदकत्वावगाहिप्रतीतेरप्रमात्वोप-
पादनेऽपि विशेषणताविशेषावच्छिन्नाधेयतासम्बन्धेन धूमवत्प्रकारक-
वह्नित्वावच्छिन्नतत्प्रतियोगिताकाभावविशेष्यकयथोक्तप्रतीतेः प्रमा-
त्वापत्तेर्दुर्वारत्वात् । अन्यथा गुणादेः सत्तानिष्ठद्रव्यवृत्तित्वानवच्छे-
दकतया द्रव्यवृत्तिसत्ता गुणे इति प्रतीतेरपि अप्रमात्वापत्तेः । न च
यथा गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् गुण इतिप्रतीतिर्न प्रमा विशि-
ष्टसत्तायाः सत्तानतिरिक्तत्वेऽपि विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाधारतायाः
गुणादौ विरहात् गुणे गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तेति आधेयतोल्लेखि-
प्रतीतिश्च प्रमैव तथेहापि धूमवान् वह्निसामान्याभाववान् इति
प्रतीतिर्न प्रमा तत्तद्व्यभावानामेव वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक-
त्वेऽपि तेषां तदवच्छिन्नाधारताया धूमवति विरहात् धूमवति वह्नि-

नास्तीत्याधेयतोल्लेखिप्रतीतिः प्रमैव न तु भ्रम इति वाच्यं। अनुभवापलापात्। एवमनुभवापलापे एकस्यैवाभावस्य घट-पट-गोत्वाद्यखिलसकलप्रतियोगिकत्वस्य सुवचतया अभावमात्रभेदविलोपापत्तेः घटवान् घटसामान्याभाववानिति प्रतीतिर्न प्रमा घटवति घटसामान्याभावत्वावच्छिन्नाधारताविरहात् घटवति घटो नास्तीत्याधेयतोल्लेखिप्रतीतिश्च प्रमा भवत्येवेति क्रमेणानुभवापलापस्य सर्व्वत्र सुकरत्वादिति भावः। सामान्याभावस्यातिरिक्तत्वे प्रकृष्टतमां युक्तिमभिधाय युक्त्याभासान्तरमाह, 'अन्यथेति यदि लाघवात् तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव एव वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्तदेत्यर्थः, तुल्ययुक्त्या तत्तद्रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावानामेव रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकतयेति शेषः, 'सकलप्रसिद्धरूपाभाव इति वायुः पृथिवीरूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववान् जलरूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववान् तेजोरूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववांश्चेति सकलप्रसिद्धरूपात्यन्ताभावानां निर्णये, वायुः पृथिवीरूपवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववान् जलरूपवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववान् तेजोरूपवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववांश्चेति सकलप्रसिद्धरूपवदन्योन्याभावानां निर्णये चेत्यर्थः, 'वायाविति, प्रथम्स रूप-तदभावविशेष्यको वायुविशेषणकः, विरुद्धयोरेकधर्म्मिसम्बन्धावगाहिज्ञानस्यैव संशयत्वात् तु विरुद्धोभयप्रकारितापि नियता। द्वितीयस्तु रूपवत्-तदन्योन्याभावकोटिको वायुविशेष्यक इति नाभेदः, 'निश्चितत्वादिति निश्चितत्वेन संशयकोटित्वासंभवादतिरिक्तसामान्याभावस्य चानङ्गीकारादित्यर्थः, तथा-

व्यातिरिक्तसामान्याभावानभ्युपगमे संशयविषयोऽभाव एव दुर्लभ-इति भावः। यद्यपि वायौ रूपं न वेति संशयं प्रति रूपाभावनिश्चयो न विरोधी किन्तु रूप-तदभावान्यतरविशेष्यकाधेयतासम्बन्धा-वच्छिन्नवाय्वभावनिश्चय एव विरोधी, तथाप्यधिकरणे तत्तद्-भावान्यतरनिश्चयोऽपि तत्तदभावोभयविशेष्यकाधिकरणप्रकारक-संशयविरोधी इत्यभिप्रायः, वायूरूपवान् तदभाववान् वेति वायु-विशेष्यकसंशय एव वास्य तात्पर्य्यं। एतच्चापाततः विशेषाभावानां तत्तद्रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वेन निश्चितत्वेऽपि रूपत्वा-वच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वप्रकारेण संशयविषयत्वसम्भवात् तेनापि रूपेण विशेषाभावानां निर्णये तथा संशयस्य सामान्याभावाति-रिक्तत्ववादिनामप्यसिद्धत्वादिति ध्येयं। शेषमस्मत्कृतसिद्धान्तरहस्ये-ऽनुसन्धेयं।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सामान्याभावरहस्यं।

## विशेषव्याप्तिः ।

यद्वा प्रतियोगिव्यधिकरणस्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिना सामानाधिकरण्यं, यत्समानाधि-

---

## अथ विशेषव्याप्तिरहस्यं ।

'यद्वेत्यादि,' 'स्वपदं हेत्वभिमतपरं, कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादावव्याप्तिवारणाय 'प्रतियोगिव्यधिकरणेति स्वपदार्थस्य हेतोर्विशेषणं, तदर्थश्च प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वं। ननु तथापि वह्निमान् धूमात् रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादौ नानाव्यक्तिसाध्यकेऽव्याप्तिः चालनीन्यायेन सर्व्वेषामेव वह्न्यादीनां हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वात्, सत्तावान् द्रव्यत्वादित्याद्येकव्यक्तिसाध्यकेऽप्यव्याप्तिश्च हेतुसमानाधिकरणविशिष्टाभाव-द्वित्वाद्यवच्छिन्नाभावप्रतियोगित्वात् सत्तादेः, गुण-कर्म्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेः भूतत्व-मूर्त्तत्वोभयवान् मूर्त्तत्वादित्यादावतिव्याप्तिवारणाय प्रतियोगिव्यधिकरणपदेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नव्यधिकरणत्वस्यावश्यं विवक्षणीयत्वादिति चेत्। न। अत्राप्रतियोगिपदस्य तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नपरत्वात्। नचैवं पूर्व्वस्मादभेदः, तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नयत्किञ्चिदवह्निसामानाधिकरण्यं वह्निसामान्य-धूमसामान्ययोर्व्याप्तिः, अत एव वह्नित्वरूपेण अयोगोल-

करणान्योन्याभावप्रतियोगि यद्यत् भवति तेन समं तस्य सामानाधिकरण्यं वा, स्वसमानाधिकरणान्योन्या-

---

कीयवह्नेरपि धूमो व्याप्य इत्युक्तं, इदानीन्तु तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नतत्तद्वह्निना समं तत्तद्धूमसामानाधिकरण्यं वह्नित्व-धूमत्वरूपेण तत्तद्वह्नि-तत्तद्धूमयोरेव व्याप्तिः, वह्नित्वरूपेणायोगोलकीयवह्निव्याप्यो न धूम इत्युच्यते इत्येव विशेषादन्यत् सर्व्वं पूर्व्ववदिति दिक्।

नन्वेतल्लक्षणद्वयपक्षे द्रव्यत्वत्वाद्यवच्छिन्नविधेयिका घटो द्रव्यत्ववानित्यादिरूपैवानुमितिः सर्व्वत्र स्यात् न तु कदाचिदपि स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयिका घटो द्रव्यमित्याकारिका एतयोर्द्वयोरेव साध्यतावच्छेदकघटितत्वात्। न च साध्यतावच्छेदकघटितत्वेऽपि एतयोरेव ज्ञानं द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नविधेयकानुमितिवत् स्वरूपतोद्रव्यत्वादिविधेयकानुमितावपि हेतुर्द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तानवच्छिन्नद्रव्यत्वादिविधेयकानुमितित्वस्यैव[१] कार्य्यतावच्छेदकत्वादिति वाच्यं। तथा सति द्रव्यत्वाद्यनु-

---

(१) स्वरूपतः सत्ता-घटत्वादिविधेयताकानुमितिवारणार्थं विधेयतायां द्रव्यत्वादिनिष्ठत्वनिवेशः। अथ तथा सति द्रव्यत्वत्वादिना घटत्वादिविधेयताकानुमितेरसंग्रहः घटत्वादिनिष्ठविधेयतायां द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तधर्म्मानवच्छिन्नत्वेऽपि द्रव्यत्वाद्यवृत्तित्वात् इति चेत्। न। द्रव्यत्वाद्यवृत्तिर्या निरवच्छिन्नविधेयता तद्भिन्नविधेयतायां द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तधर्म्मानवच्छिन्नत्वनिवेशाभिप्रायादिति न कोऽपि दोषः। अथवा निरवच्छिन्नत्वविशिष्टद्रव्यत्ववृत्तित्वाभाववत्त्व-द्रव्यत्वत्वानवच्छिन्नत्वोभयाभाववद्विधेयताकानुमितित्व-मित्यर्थकरणान्न कोऽपि दोषः।

भावाप्रतियोगियद्वत्त्वं वा। अव्याप्यवृत्तिवह्नि-तद्वतोर-व्याप्यवृत्तिधूमवन्निष्ठात्यन्ताभावान्योन्याभावप्रतियोगि-

---

मितेर्नियमतो द्विविधविषयत्वापत्तेः द्रव्यत्वत्वादिघटकतया(१) स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविशिष्टबुद्धेर्जनकीभूतस्य स्वरूपतो द्रव्यत्वादिज्ञानस्यापि सर्व्वत्र सत्त्वादिति चेत्। न। स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानुमितेरसिद्धेः घटो द्रव्यत्ववान् इत्यादिरूपाया एव द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नविधेयकानुमितेः सर्व्वत्राभ्युपगमात्। एतदस्वरसेनैव वा अन्योन्याभावगर्भं लक्षणान्तरमाह, 'यत्समानाधिकरणेति, 'यत्पदं हेत्वभिमतपरं, 'यद्वन्न भवति' यदधिकरणं न भवति, 'यत्पदं साध्यपरं, वह्निमान् धूमात् सत्तावान् द्रव्यत्वात् इत्यादौ व्यतिरेकिसाध्यके साध्यशून्ये सामान्यादौ वर्त्तमानं साध्यवदन्योन्याभावमादायाव्याप्तिवारणाय हेतुसमानाधिकरणत्वं अन्योन्याभावविशेषणं, तच्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन यद्धेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतुसम्बन्धि तत्र वर्त्तमानत्वं, तेन वह्निमान् धूमादित्यादौ हेत्वधिकरणधूमावयवादौ वह्न्यादिमतोऽन्योन्याभावस्य वृत्तावपि नाव्याप्तिः, न वा द्रव्यं गुण-कर्म्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ सत्ताद्यधिकरणगुणादौ द्रव्यत्वादिमतोऽन्योन्याभावस्य सत्त्वेऽपि अव्याप्तिः। तादात्म्यादिवृत्त्यनियामकसम्बन्धेन हेतुतायामव्याप्तिवारणायाधिकरणत्वमपहाय सम्बन्धित्वप्रवेशः। वर्त्तमानत्वञ्च विशेषणता-

---

(१) द्रव्येतरावृत्तित्वविशिष्टसकलद्रव्यवृत्तित्वरूपस्य द्रव्यत्वत्वस्य ज्ञाने इतरत्वप्रतियोग्यंशे द्रव्ये द्रव्यत्वस्य स्वरूपतोभानात् स्वरूपतो द्रव्यत्वज्ञानस्य द्रव्यत्वत्वज्ञाननियतत्वमिति।

त्वाद्यधिकरणवह्नि-धूमयोर्न व्याप्तिः, किन्तु तत्तद्धूमस्य समानाधिकरणतत्तद्वह्निना । नचैवं धूममात्रे न व्याप्ति-

---

विशेषसम्बन्धेन साध्यप्रतियोगिकाभाववृत्तिसाध्यीयप्रतियोगित्व-तद्-वच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धेन वा ग्राह्यं[१] तेन सत्तावान् जाते-रित्यादौ हेत्वधिकरणे ज्ञानादौ विषयित्व-कालिकविशेषणत्वाव्याप्य-त्वादिसम्बन्धेन सत्तादिमदन्योन्याभावस्य च वृत्तावपि नाव्याप्तिः । यदि च वक्ष्यमाणयुक्त्या प्रतियोगिभिन्नत्वं निरुक्तहेतुसम्बन्धिनः प्रतियोग्यनिरूपितत्वं वा तद्वर्त्तमानत्वस्य विशेषणमुपादीयते तदा वर्त्तमानत्वं येन केनापि सम्बन्धेन ग्राह्यं न तु सम्बन्धविशेषो निवे-शनीयः । वह्निमान् धूमादिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ वह्न्यादि-मतः संयोगादिसम्बन्धेनात्यन्ताभावस्य धूमसमानाधिकरणत्वात् असम्भववारणायान्योन्याभावनिरूपितप्रतियोगितालाभार्थं अन्योन्याभा-वपदं[२] यथाश्रुतेऽत्यन्ताभावस्यापि स्वावच्छिन्नभिन्नभेदात्मक-तया अन्योन्याभावत्वेन तद्दोषतादवस्थ्यात् । ननु तथापि वह्नि-

---

(१) घटान्योन्याभाववान् द्रव्यत्वादित्यादौ व्यभिचारिणि घटत्वरूपस्य घटभिन्नभेदस्य विशेषणताविशेषसम्बन्धेनावर्त्तमानत्वेन तत्समानाधि-करणान्योन्याभावपदेन धर्तुमशक्यत्वादतिव्याप्तिवारणाय पूर्व्वकल्पं परित्यज्यैतल्लक्षणानुसरणमिति ।

(२) अन्योन्यपदमिति ख० ग० ।

रिति वाच्यं। सर्व्वधूमव्यक्तेस्तथात्वेन धूममात्रस्य व्या-

मान् धूमादित्यादौ सर्व्वेषामेव साध्यवह्निव्यक्तीनां चालनीन्यायेन निरुक्तहेतुसमानाधिकरणस्य तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताका-न्योन्याभावस्य प्रतियोगित्वात् तादृशव्याप्यवृत्तिधर्म्मावच्छिन्न-प्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य प्रतियोगित्वाद्यासम्भवः। न च निरुक्त-हेतुसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकं यत्साध्यं तेन समं सामानाधिकरण्यं विवक्षितमिति वाच्यम्। तथापि वह्नि-मान् धूमात् सत्तावान् जातिमत्त्वादित्यादौ वह्न्यादेर्निरुक्तहेतुसमा-नाधिकरणस्य तत्तदधिकरणवृत्तित्वविशिष्टवह्न्यादिमत्त्वावच्छिन्न-प्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य वह्नि-घटोभयाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिता-कान्योन्याभावस्य च प्रतियोगितावच्छेदकत्वेनासम्भवतादवस्थ्यात्। अथानवच्छेदकत्वं पर्य्याप्तिसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यत्वं[(१)]। न च तथापि वह्निमान् धूमादित्यादौ चालनीन्यायेन सर्व्वासामेव साध्यव्यक्तीनां साधनसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधि-करणत्वात् अव्याप्तिर्दुर्व्वारेति वाच्यं। जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदा-र्थस्य स्वरूपतोऽभावप्रतियोगितानवच्छेदकतया[(२)] वह्न्यादेरवच्छेदक-तापर्य्याप्त्यधिकरणत्वाभावात् इति चेत्। न। सत्ताव्याप्यजातिमान् जा-तिमत्त्वादित्यादौ तथाप्यव्याप्तेः सर्व्वासामेव सत्ताव्याप्यजातीनां स्वरू-पतः साधनसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकतापर्य्या-

(१) पर्य्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यत्वमिति ख० ग०।

(२) एतच्चावच्छेदकतावच्छेदकसाधारण्यावच्छेदकत्वमभ्युपेत्य।

प्यत्वात्। धूमसम्बन्धिवह्निस्तद्व्याप्य एव, युगपदुत्पन्न-

प्यधिकरणत्वात्। गुण-कर्म्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादावति-व्याप्तेश्च सत्तायाः पर्य्याप्त्याख्यसम्बन्धेन तादृशावच्छेदकताशून्यतया विशिष्टसत्ताया अपि तथात्वात् विशिष्टसत्तायाः सत्तानतिरिक्तत्वात् महानसीयवह्निमान् धूमादित्यादावतिव्याप्तेश्च जात्यखण्डोपाध्यति-रिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽनवच्छेदकतया महानसीयवह्न्यादेरपि पर्य्या-प्त्याख्यसम्बन्धेन तादृशावच्छेदकताशून्यत्वात्। एतेन निरुक्तहेतुसमा-नाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकतायाः पर्य्या-प्त्यनधिकरणं यत् साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यं विव-क्षितमिति नासम्भवः सद्धेतौ वह्नित्वादेः साध्यतावच्छेदकस्य पर्य्या-प्त्याख्यसम्बन्धेन साधनसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छे-दकतावच्छेदकत्ववत्त्वस्य कदाचिदपि असम्भवात् सत्ताव्याप्यजाति-मान् जातिमत्त्वादित्यादौ सर्व्वासामेव सत्ताव्याप्यजातीनां स्वरूपतः साधनसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि साध्य-तावच्छेदकीभूतसत्ताव्याप्यजातित्वरूपेणानवच्छेदकत्वादित्यपि निरस्तं। द्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वात् द्रव्यसमवायित्वादित्यादौ नानाजातिसाध्य-तावच्छेदकस्थलेऽव्याप्तेर्दुर्व्वारत्वात् साध्यतावच्छेदकीभूतानां सर्व्वासा-मेव पृथिवीत्व-जलत्वादिरूपाणां द्रव्यत्वव्याप्यजातीनां चालनीन्यायेन साधनसमानाधिकरणपृथिवी--जलादिमदन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणत्वात्। गुण-कर्म्मान्यत्वविशिष्टस-त्तावान् जातेरित्यादावतिव्याप्तेश्च सत्तात्वस्य पर्य्याप्त्याख्यसम्बन्धेन तादृ-

विनष्टयोश्च व्याप्तिरेव। कर्म्मणि च संयोगाभावः प्रतियोग्यसमानाधिकरणः।

---

प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकत्वशून्यतया साध्यतावच्छेदकस्य विशिष्टसत्तात्वस्य तथात्वात् विशिष्टसत्तात्वस्य सत्तात्वानतिरिक्तत्वात्। महानसीयत्वविशिष्टवह्निमान् धूमादित्यादावतिव्याप्तेश्च वह्नित्वस्य पर्य्याप्त्याख्यसम्बन्धेन तादृशप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकत्वशून्यतया साध्यतावच्छेदकस्य महानसीयत्वविशिष्टवह्नित्वस्यापि तथात्वात् विशिष्टवह्नित्वस्य वह्नित्वानतिरिक्तत्वात्। तद्व्यक्तिमान् दण्डिसंयोगादित्यादावतिव्याप्तेश्च जात्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽनवच्छेदकतया साध्यतावच्छेदकीभूततद्व्यक्तेः पर्य्याप्त्याख्यसम्बन्धेन तादृशप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकत्वशून्यत्वात्। अस्यापि साध्यतावच्छेदकघटितत्वेन स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानुमितेरेतज्ज्ञानादसम्भवापत्तेश्च। मैवं। यत्र हि स्वरूपतोद्रव्यत्वादेः साध्यत्वं न तु साध्यतावच्छेदकं किमप्यस्ति तत्र निरुक्तहेतुसमानाधिकरणीयान्योन्याभावत्वनिरूपितप्रतियोगितासामान्ये यदधिकरणत्वनिष्ठपर्य्याप्त्यवच्छेदकताकत्वाभावस्तत्सामानाधिकरण्यं स्वरूपतस्तस्य व्याप्तिरिति विवक्षणीयं यत्पदं स्वरूपतः साध्यव्यक्तिपरं(१)। वह्निमान् धूमात्

---

(१) जातेः समवायेनेव निरूपितत्वसम्बन्धेनापि स्वरूपतोभानाभ्युपगमात् द्रव्यत्वत्वज्ञानमन्तरेणापि निरूपितत्वसम्बन्धेन स्वरूपतोद्रव्यत्वावगाहिनिरुक्तव्याप्तिज्ञानसम्भवेन स्वरूपतो द्रव्यत्वविधेयकानुमित्युपपत्तिरिति तात्पर्य्यम्।

रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादिकिञ्चिदवच्छिन्नसाध्यकस्थलीयाव्याप्यत्वमेव जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतो व्याप्यत्वनभ्युपगमादिति नाव्याप्तिः। न च तथापि गुण-कर्म्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादावतिव्याप्तिः विशिष्टसत्तायाः सत्तानतिरिक्तत्वेन सत्ताया एव साध्यतया तदधिकरणत्वनिष्ठपर्य्याप्त्यवच्छेदकताकत्वाभावस्य जातिमन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितासामान्ये सत्त्वादिति वाच्यं। जात्यादौ विशिष्टसत्तात्वरूपेण विशिष्टसत्ताया व्याप्यत्वानभ्युपगमेऽपि स्वरूपतो विशिष्टसत्ताव्याप्यत्वस्य सर्व्वसम्मतत्वात्[१]। किञ्चिदवच्छिन्नसाध्यकस्थले तु निरुक्तहेतुसमानाधिकरणान्योन्याभावत्वनिरूपितप्रतियोगितासामान्ये यद्धर्म्मावच्छिन्नाधिकरणत्वनिष्ठपर्य्याप्त्यवच्छेदकताकत्वाभावः तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं तद्धर्म्मावच्छिन्नस्य व्याप्तिरिति विवक्षणीयं, यत्र येन रूपेण यस्य साध्यतावच्छेदकत्वं तत्र तेन रूपेण तदेव यद्धर्म्मपदेन ग्राह्यं इत्यञ्च वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्नित्वादेः स्वरूपत एव साध्यतावच्छेदकतया स्वरूपतो-वह्नित्वादिकमेव यद्धर्म्मपदेन ग्राह्यं, महानसीयत्वविशिष्टवह्निमान् धूमादित्यादौ महानसीयत्वादिविशिष्टत्वेन वह्नित्वादेः साध्यतावच्छेदकतया तद्विशिष्टवह्नित्वादिकमेव यद्धर्म्मपदेन ग्राह्यं, द्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वान् द्रव्यसमवायित्वादित्यादौ पृथिवीत्व-जलत्वादीनां द्रव्यत्वव्याप्यजातीनां द्रव्यत्वव्याप्यजातित्वरूपेणैव साध्यतावच्छेदकतया तादृशजातित्वविशिष्टमेव यद्धर्म्मपदेन ग्राह्यं, न तु स्वरूपतः पृथिवीत्व-जलत्वादिकमित्यादि स्वयमूह्यं।

(१) सर्व्वसिद्धत्वादिति ख० ग०।

अत्राधिकरणत्वांशस्यानतिप्रयोजनकतया तदपहाय लक्षणान्तर-माह, 'स्वसमानाधिकरणेति, 'स्वपदं हेत्वभिमतपरं, यद्वत्त्वमिति यद्वृत्तित्वमित्यर्थः, यस्य तस्य तद्व्याप्यत्वमिति शेषः। तथाच यत्र स्वरूपतो द्रव्यत्वादेः साध्यत्वं तत्र हेतुसमानाधिकरणीयान्योन्या-भावत्वनिरूपितप्रतियोगितासामान्ये यन्निष्ठपर्य्याप्त्यवच्छेदकताकत्वा-भावस्तत्सामानाधिकरण्यं स्वरूपतस्तस्य व्याप्तिरिति वक्तव्यं, 'यत्पदं स्वरूपतः साध्यव्यक्तिपरं। किञ्चिदवच्छिन्नसाध्यकस्थले तु तादृश-प्रतियोगितासामान्ये यद्धर्म्मावच्छिन्ननिष्ठपर्य्याप्त्यवच्छेदकताकत्वाभाव-स्तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं तद्धर्म्मावच्छिन्नस्य व्याप्तिरिति वक्तव्यं। ननु तथापि द्रव्यं पृथिवीत्वात् वह्निमान् धूमादित्यादौ कालिकविशेषणत्व-समवायादिसम्बन्धेन साध्यवतोऽन्योन्याभावस्य हेत्वधिकरणे सत्त्वादसम्भवः। न च प्रतियोगिता साध्यतावच्छेदक-सम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकताकत्वेन विशेषणीया इति वाच्यं। घटवान् कालपरिमाणात् घटवान्नित्यज्ञानत्वादित्यादौ तादृशप्रतियोगित्वा-प्रसिद्धेरिति चेत्। न। साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेनावच्छेद-कताया विशेषणात्, केवलान्वयिनि वाच्यत्वादिपर्य्याप्तस्वरूप-सम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकताकत्वं संयोगादिसम्बन्धेन वाच्यत्वादिमद-त्यन्ताभावप्रतियोगितायामेव प्रसिद्धं। साध्यतावच्छेदकसम्बन्धभेदेन व्याप्तेर्भेदात् यत्र तादात्म्यसम्बन्धेन किञ्चिदवच्छिन्नस्य साध्यत्वं तत्र तादृशान्योन्याभावत्वनिरूपितप्रतियोगितासामान्ये यद्धर्म्मपर्य्याप्त्याव-च्छेदकताकत्वाभावस्तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं वक्तव्यं यद्धर्म्मपदं साध्यतावच्छेदकपरं। अवच्छेदकता च साध्यतावच्छेदकताघटकसम्ब-

च्छावच्छिन्नत्वेन विवक्षणीया[१] सर्व्वमन्यत् अत्यन्ताभावगर्भप्रथमलक्षणवदवसेयमिति संक्षेपः।

ननु अत्यन्ताभावघटितद्वितीयलक्षणपक्षे व्यधिकरणधूमस्य वह्नित्वरूपेण व्यधिकरणवह्निव्याप्यत्वं कथं स्यात् सामानाधिकरण्यविरहात् इत्यत आह, 'अन्येति, 'प्रतियोगित्वादिति, परस्परसामानाधिकरण्यविरहेणेति शेषः। यथाश्रुते नानाव्यक्तिसाध्यकानुरोधेनानवच्छेदकत्वपर्य्यन्तानुधावनस्यावश्यकत्वेन ,तादृशप्रतियोगित्वस्याकिञ्चित्करत्वात्[२], इत्यश्च परस्परसामानाधिकरण्यविरह एव तस्य हेतुत्वात्। न चैवमन्यवृत्तिवह्नेरन्यवृत्तिधूमवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वादित्यस्यैव सम्यक्तया तद्वतोऽन्योन्याभावप्रतियोगित्वादिति व्यर्थमिति वाच्यं। अन्यवृत्तिवह्नेरन्यनिष्ठधूमवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽपि द्रव्यस्याव्याप्यवृत्तितानये सामानाधिकरण्यं सम्भवतीत्यनुशयेन तदुपादानादिति। 'न चैवमिति, 'न व्याप्तिः' नैका व्याप्तिरित्यर्थः, तथाच धूमत्वं व्याप्यतावच्छेदकं न स्यात् व्याप्तेः प्रतिधूमं[३] भिन्नत्वेन धूमत्वस्यातिप्रसक्तत्वादिति भावः। 'तथात्वेन' व्याप्त्याश्रयत्वेन, 'धूममात्रस्येति, तथाच व्याप्तेः प्रतिधूमं भेदेऽपि वह्निव्याप्तित्वावच्छिन्नस्यानतिप्रसक्तत्वात् धूमत्वमवच्छेदकं, यथा प्रतियोगितायाः प्रतिव्यक्तिभिन्नत्वेऽपि तत्तदभावप्रतियोगितात्वावच्छिन्नस्यानतिप्रसक्तत्वात् घट-

(१) साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेन विशेषणीयेति ख० ग०।

(२) व्याप्यत्वाभावे अप्रयोजकत्वादित्यर्थः।

(३) सर्व्वत्र 'प्रतिधूम०' इत्यत्र प्रतिस्वमिति ख० ग०।

त्वादिकमवच्छेदकमिति भावः। ननु सर्व्वस्मिन्नेव लक्षणे धूमसमा-नाधिकरणवह्निरपि धूमव्याप्यः स्यात् एवं युगपदुत्पन्न-विनष्टव्यक्ति-द्वयोरपि कालिकसमव्याप्तिः स्यादित्यत इष्टापत्तिमाह, 'धूमेत्यादि, 'व्याप्तिरेव' कालिकसमव्याप्तिरेव, दैशिकसमव्याप्यतायां समदेशस्यैव तन्त्रत्वात् उत्पाद-विनाशयोर्यौगपद्याभिधानमसङ्गतं स्यात् अतः कालिकत्वानुधावनं, एकस्य कालिकव्याप्यतायां उत्पाद-विनाशयोरन्यतरयौगपद्यस्यैव तन्त्रत्वादुभयोर्यौगपद्याभिधानमसङ्गतं स्यात् अतः समव्याप्यत्वानुधावनं। ननु प्रतियोग्यसमानाधिकरण्यघटितप्रथमलक्षणे संयोगी सत्त्वादित्यादौ यद्यपि नातिव्याप्तिः सत्तायां गुणाद्यवच्छेदेन संयोगसामानाधिकरण्याभावसत्त्वेन प्रतियोग्यसमानाधिकरणसत्तायाः समानाधिकरणाभावः संयोगाभाव एव तत्प्रतियोगितावच्छेदकत्वात् संयोगत्वस्य, तथापि संयोगवान् संयोगाभावादित्यादावतिव्याप्तिः संयोगाभावे हेतौ संयोगसामानाधिकरण्याभावासत्त्वेन प्रतियोग्यसमानाधिकरणहेतोः समानाधिकरणाभावो न संयोगाभावः किन्तु अभावान्तर एव तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकत्वात् संयोगत्वस्य। न च सत्तावत् संयोगाभावे हेतावपि गुणाद्यवच्छेदेन संयोगसामानाधिकरण्याभावोऽस्त्येव इति वाच्यं। तथा सति प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिसामानाधिकरण्याभाववदभावस्यैव व्याप्यवृत्त्यभावतया संयोगाभावस्यापि व्याप्यवृत्त्यभावत्वापत्तेः इत्यत आह, 'कर्म्मणि चेति, 'संयोगाभावः' संयोगवान् तदभावादित्यादौ साधनीभूतः संयोगाभावः, प्रतियोग्यसमानाधिकरणः संयोगरूपप्रतियोगिसामानाधि-

करण्याभावाश्रयः, संयोगाभावे कर्म्मादौ न संयोगसामानाधिकरण्यमितिप्रतीतेः । न चैवं तस्य व्याप्यवृत्त्यभावत्वापत्तिरिति वाच्यं । निरुक्तप्रतियोगिसमानाधिकरणभिन्नाभावस्य विशेषणताविशेषेणाव-च्छिन्नवृत्तिमद्भिन्नाभावस्यैव वा व्याप्यवृत्त्यभावत्वादिति भावः । यद्वा ननु प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वघटितप्रथमलक्षणे संयोगी सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः हेतोः संयोगाभावीयप्रतियोगिसमानाधिकरणतया स्वप्रतियोग्यसमानाधिकरणहेतोः समानाधिकरणो न संयोगाभावः किन्तु अन्यात्यन्ताभाव एव तत्प्रतियोगितावच्छेदकता न संयोगत्वस्येत्यत आह, 'कर्म्मणि चेति, 'संयोगाभावः' संयोगाभावरूपः साध्याभावः, 'प्रतियोग्यसमानाधिकरण इति प्रतियोगिनोऽसमानं प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वशून्यं यत्साधनं तदधिकरणकस्तदधिकरणनिष्ठ इत्यर्थः, तस्याधिकरणं यस्येत्यधिकरणार्थकषष्ठ्यन्तान्यपदार्थव्यधिकरणबहुव्रीहिसमासस्य तदधिकरणमधिकरणं यस्येति मध्यपदलोपिसमासस्य वा आश्रयणात् । सत्तायां कर्म्मणि न संयोगसामानाधिकरण्यमित्यादिप्रतीत्या सामानाधिकरण्यस्याव्याप्यवृत्तित्वेन सत्त्वादावपि कर्म्मावच्छेदेन संयोगसामानाधिकरण्याभाव-सत्त्वादिति भावः[१] ।

ननु सामानाधिकरण्यं नाव्याप्यवृत्ति संयोगिवृत्तित्वाभावो न सत्तावृत्तिरित्यादिप्रतीत्यनुपपत्तेः सत्तायां कर्म्मादौ न संयोगसामानाधिकरण्यमित्यादिप्रतीतेश्च कर्म्मादाववच्छेदकत्वसम्बन्धेन सत्ता-

---

(१) यद्वेत्यादिपाठः ख॰ ग॰ पुस्तकद्वये नास्ति ।

यद्वा प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छेदकावच्छिन्नत्व-मत्यन्ताभावविशेषणं कर्म्मणि च संयोगाभावस्य प्रति-योगिवैयधिकरण्यावच्छेदकावच्छिन्नत्वमेव। न चा-न्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्वम्, अभेदस्याबाधितप्रत्य-

---

निष्ठसामानाधिकरण्याभाव एव विषयः तथाच प्रथमलक्षणे संयोगी सत्त्वात् संयोगवान् तदभावादित्यादावतिव्याप्तिर्दुर्व्वारेत्यस्वरसा-दाह, 'यद्वेति, 'प्रतियोगिवैयधिकरण्येति, 'प्रतियोगिवैयधिकरण्यं' प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वं, 'अवच्छेदकं' विशेषणं यत्र हेतौ तदव-च्छिन्नत्वं सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन तद्विशिष्टत्वं तत्समानाधिकरणत्व-मिति यावत्, प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यमपहाय प्रतियोग्यनधिक-रणवृत्तित्वं हेतुविशेषणं वक्तव्यमिति तु तदर्थः। यद्वा ननु प्रथमलक्षणे प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वस्यात्यन्ताभावविशेषणत्वमेवोपादीयतां किं तस्य हेतुविशेषणत्वेनेत्यत आह, 'कर्म्मणि चेति, तथाचात्यन्ता-भावविशेषणत्वे संयोगी द्रव्यत्वादित्यादावेवाव्याप्तिः विशिष्टस्यान-तिरिक्ततया प्रतियोगिसामानाधिकरण्याभावविशिष्टः' सन् हेत्व-धिकरणवृत्तिर्योऽभाव इति विवक्षायामप्यप्रतीकारादिति भावः। इदमुपलक्षणं द्वितीयलक्षणेऽपि प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्यात्यन्ताभाव-विशेषणत्वे तत्रैवाव्याप्तिः कर्म्मादौ संयोगाभावस्य प्रतियोग्यनधि-करणवृत्तित्वात् विशिष्टस्यानतिरिक्ततया प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्व-विशिष्टः 'सन् हेत्वधिकरणवृत्तिर्योऽभाव इति विवक्षायामप्रती-कारादिति ध्येयं। ननु सामानाधिकरण्यं नाव्याप्यवृत्ति तथाच

अत्यन्ताभावविशेषणत्वेऽपि नाव्याप्तिः, अतिव्याप्तिश्च हेत्वभावयोर्द्वयो-र्विशेषणत्व एव संयोगी सत्त्वादित्यादौ सामानाधिकरण्यस्य व्याप्यवृत्ति-तया सत्तायां संयोगाभावे च संयोगाभावीयप्रतियोग्यसामानाधि-करण्यविरहात् इत्यत आह, 'यद्देति अर्थस्तु पूर्ववत् ।

वस्तुतस्तु 'प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्य प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वस्य, यदवच्छेदकं निरूपकं हेत्वधिकरणं, प्रतियोग्यनधिकरणं हेत्वधि-करणमिति यावत्, तदवच्छिन्नत्वं तद्वृत्तित्वं अत्यन्ताभावविशेषण-मित्येवार्थः ।

केचित्तु प्रतियोगिवैयधिकरण्यं प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वरूपं यदवच्छेदकं विशेषणं तदवच्छिन्नत्वं तद्विशिष्टत्वमत्यन्ताभावविशे-षणमित्यर्थः, प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यं विहाय प्रतियोग्यनधि-करणवृत्तित्वमत्यन्ताभावविशेषणं वक्तव्यमिति भावः । न चैवं कपि-संयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादावव्याप्तिः एतद्वृक्षत्वसमानाधिकरणकपि-संयोगाभावस्यापि प्रतियोग्यनधिकरणगुणादिवृत्तित्वादिति वाच्यं । हेत्वधिकरणे प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वस्य विवक्षणीयत्वात् एत-स्लाभायैव च हेतुसामानाधिकरण्यपदमतो न तद्वैयर्थ्यं, प्रति-योग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टस्वाधिकरणहेत्वधिकरणकाभाव इति वा अभावांशनिष्कर्ष इत्याहुः । तदसत् बहुतरकुसृष्टिकल्पनापत्ते-रिति ध्येयं ।

ननु मूले वृक्षः कपिसंयोगी न इत्यबाधितप्रतीतेः कपिसंयोगा-दिमत्यपि वृक्षे मूलाद्यवच्छेदेन कपिसंयोगादिमतोऽन्योन्याभावस्य सत्त्वात् अन्योन्याभावघटितलक्षणं कपिसंयोगी एतत्त्वादित्याद्य-

ऽव्याप्यवृत्तित्वसाध्यकेऽव्याप्तमित्यत आह, 'न चेति, 'अन्योन्याभावस्य' कपिसंयोगादिमदन्योन्याभावस्य, 'अव्याप्यवृत्तित्वं' कपिसंयोगादिमत्यपि वृक्षे मूलाद्यवच्छेदेन सत्त्वं, 'अभेदस्येति मूले वृक्षः कपिसंयोग्यभिन्न इति मूलावच्छेदेनापि कपिसंयोगिभेदाभावस्य कपिसंयोगिभिन्नभेदस्य च यथार्थप्रतीतेरित्यर्थः। न हि अव्याप्यवृत्तिनोरत्यन्ताभाव-तत्प्रतियोगिनोरन्योन्याभाव-तत्प्रतियोगितावच्छेदकयोरेकावच्छेदेन सत्त्वं, विरोधात्। न च कपिसंयोगिभेदाभावस्य कपिसंयोगिभिन्नभेदस्य च कपिसंयोगरूपतया मूलावच्छेदेन कथं तत्प्रतीतिरिति वाच्यम्। अन्यत्रान्योन्याभावाभावस्यान्योन्याभाववद्भेदस्य च प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपत्वेऽप्यव्याप्यवृत्तिस्थले तद्वदन्योन्याभावात्यन्ताभावस्य तद्वद्भिन्नभेदस्य चातिरिक्तस्य व्याप्यवृत्तिस्वरूपस्योक्तरूपप्रतीत्यन्यथानुपपत्त्याभ्युपगमात्। न चैवं मूले वृक्षः कपिसंयोगी नेत्याबाधितप्रतीतेः का गतिरिति वाच्यं। विशेषणीभूतस्य कपिसंयोगादेरत्यन्ताभावस्यैव तद्विषयत्वात्। न च तत्र कपिसंयोगयन्योन्याभावविषयकत्वमप्यनुभवसिद्धमिति वाच्यं। तथानुव्यवसायस्य भ्रमत्वात्। अथैवं गुणादावपि संयोगवदन्योन्याभावोऽपि अयोगोलकादौ धूमवदन्योन्याभावोऽपि च न सिद्ध्येत् तत्रापि गुणो न संयोगी अयोगोलकं न धूमवत् इत्यादिप्रतीतेर्विशेषणीभूतस्य संयोगधूमादेरत्यन्ताभावविषयतायाः सुवचत्वात् इति चेत्। न। तत्र बाधकाभावेनानुव्यवसायानां भ्रमत्वे मानाभावात्। प्रकृते च यथोक्ताभेदविशिष्टेरेव बाधकतया अनुव्यवसायस्य भ्रमतायाः प्रमाणसिद्धत्वादिति भावः। इदमापाततः मूले वृक्षः कपिसंयोग्यभिन्न इत्यबाधित-

भिन्नानात्। व्याप्य-व्यापकभावाज्ञानेऽपि वस्तुततस्त-त्त्वेनाज्ञायमानस्य सम्बन्धत्वेनैव भातस्य यथार्थत्वं।

---

प्रतीतेरसिद्धेः कपिसंयोगिभेदाभावस्य कपिसंयोगादिमद्भिन्नभेदस्य वातिरिक्तस्य कल्पने गौरवात्। न च कपिसंयोगिभेदाभावः कपि-संयोगिभिन्नभेदस्य न कपिसंयोगरूपो न वातिरिक्तः किन्तु तत्तद्भि-न्नत्वरूपस्तादात्म्यसम्बन्धेन तत्तद्भिन्नरूपो वा इति वाच्यम्। तथापि मूलस्य तदानवच्छेदकत्वात् तत्प्रतीतेः प्रमात्वासम्भवात् तत्प्रतीतेर्यथा-र्थत्वे मानाभावाच्च। न च तथापि वृक्षः कपिसंयोग्यभिन्न इति यथार्थ-प्रतीतिरेवान्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्वे बाधिकेति वाच्यं। वृक्षे कपि-संयोगिभेदस्याव्याप्यवृत्तित्वे तद्भेदात्यन्ताभावस्य तद्भिन्नभेदस्य च सुतरां वृक्षाद्यावच्छेदेन सत्त्वात् तादृशप्रतीतेरनुपपत्तिविरहात्। न च कपि-संयोगिभेदाभावस्य वृक्षावृत्तित्वज्ञानं बाधकमिति वाच्यं। तदसि-द्धेः, प्रत्युत तद्वृत्तित्वस्यैव ग्रहात्। वस्तुतस्तु अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृ-त्तितानियमनयेऽपि कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादौ कपिसंयोगिभे-दस्याव्याप्यवृत्तित्वभ्रमेण हेतुसामानाधिकरण्यभ्रमे नियमतोऽनुमि-त्यनुदयापत्त्या निरवच्छिन्नत्वं स्वप्रतियोग्यनिरूपितत्वं वा हेत्वधि-करणवृत्तित्वस्य स्वप्रतियोगिभिन्नत्वं हेत्वधिकरणस्य वा विशेषणमा-वश्यकं स्वपदमभावपरं, तथाच तत एव कपिसंयोगादिमद्भिन्नत्वस्या-व्याप्यवृत्तित्वेऽपि कपिसंयोगी एतत्त्वादित्यादौ नाव्याप्तिः मूले वृक्षः कपिसंयोगी नेत्यबाधितप्रतीतावपि वृक्षः कपिसंयोग्यन्योन्याभाव-

नचैवमननुगमो दोषाय, कस्य का व्याप्तिरित्यननु-गतस्यैव लक्ष्यत्वात्। अथ धूमवति वह्नि-ह्रदौ न

प्रतियोगी नेत्यप्रत्ययेन[१] स्वप्रतियोगित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद-वत्त्वस्य हेत्वधिकरणे विरहादित्येव तत्त्वं।

केचित्तु कपिसंयोगिभिन्नत्वस्याव्याप्यवृत्तित्वभ्रमे तत्प्रमायां वा हेतुसामानाधिकरण्यग्रहे नियमतोऽनुमित्यनुत्पादवारणाय प्रतियोगिव्यवृत्तित्वेनान्योन्याभावो विशेषणीयः। न चैवं कपिसंयोगी सत्त्वा-दित्यादावतिव्याप्तिरिति वाच्यं। सामानाधिकरण्यस्याव्याप्यवृत्तितया कपिसंयोगवदन्योन्याभावस्यापि गुणादौ प्रतियोग्यवृत्तित्वात्। हेत्व-धिकरणावच्छेदेन प्रतियोग्यवृत्तित्वं विवक्षितं एतल्लाभायैव च हेतु-समानाधिकरणपदं, तेन संयोगी द्रव्यत्वादित्यादौ नाव्याप्तिस्तद-वस्था। हेतुरेव वा प्रतियोग्यवृत्तित्वेन विशेषणीयः इत्याहुः। तदसत् गौरवात् सम्बन्धविशेषेणैव प्रतियोग्यवृत्तित्वस्य वक्तव्यतया[२] स्वप्रति-

(१) अव्याप्यवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्यैवाव्याप्यवृत्तित्वं न तु व्याप्यवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य अतः प्रतियोगित्वस्य व्याप्यवृत्तिधर्म्मतया तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य नाव्याप्यवृत्तित्व-मिति भावः।

(२) प्रतियोग्यवृत्तित्वस्य सम्बन्धविशेषानियन्त्रितत्वे धूमवान् वह्नेरित्यादा-वतिव्याप्तिः तत्र धूमवद्भेदस्य प्रतियोगिनि धूमवति कालिकसम्बन्धेन वर्त्तमानत्वात् प्रतियोग्यवृत्तिभेदो गगनादिभेद एव तस्य प्रतियोगिनि गगनादौ केनापि सम्बन्धेनावर्त्तमानत्वात् तदप्रतियोगित्वात् धूम-वदादेः। सम्बन्धविशेषश्च स्वप्रतियोगितावच्छेदकवत्ताग्रहविरोधिता-घटकसम्बन्धरूपः, स्वपदं अन्योन्याभावपरम्।

स्तः धूमवान् वह्निमद्भिन्नो न भवतीतिप्रतीतेर्व्यासज्य-वृत्तिप्रतियोगिकौ वह्नि-वह्निमतोरत्यन्तान्योन्याभावौ

---

योग्यनिरूपितत्वापेक्षया गुरुत्वात् प्रतियोग्यवृत्तित्वस्याव्याप्यवृत्तित्वे मानाभावाच्चेति दिक् ।

ननु तत्रेत्यादौ सप्तम्याद्युत्तरत्रादिप्रत्ययेन सप्तम्यादेरिव स्वस-मानाधिकरणान्योन्याभावाप्रतियोगियद्वत्कत्वमित्यत्र सम्बन्धिबोधक-बहुव्रीह्युत्तरककारेण मतुप्प्रत्ययादिः स्मर्य्यते तेन च व्याप्यत्व-रूपसम्बन्धाश्रयः साध्यव्याप्यत्वरूपसम्बन्धाश्रयो वा स्मर्य्यते विग्रहवा-क्यस्थषष्ठ्याद्यर्थवतो बहुव्रीह्युत्तरककारस्मारितमतुवाद्यर्थत्वनियमात् तत्र प्रथमे तदेकदेशे व्याप्यत्वे निरूपितत्वसम्बन्धेन यद्वत्पदार्थस्य साध्याधिकरणस्यान्वयः, द्वितीये तदेकदेशे साध्ये आधेयतासम्बन्धेन तदन्वयः, यद्वा यत्पदोत्तरमतुप्प्रत्ययस्यैवाधिकरणव्याप्योऽधिकरण-वृत्तिसाध्यव्याप्यो वा अर्थः विग्रहवाक्यस्थषष्ठ्याद्यर्थवतो बहुव्रीहेरुत्तर-मपदार्थत्वनियमात्, तदेकदेशे चाधिकरणे प्रतियोग्यन्तस्य यत्पदार्थ-साध्यस्य चान्वयः, ककारस्तात्पर्य्यग्राहकः, तथाच स्वसमानाधिकरणा-न्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्याधिकरणव्याप्यत्वं स्वसमानाधिकरणान्यो-न्याभावाप्रतियोगिसाध्याधिकरणवृत्तिसाध्यव्याप्यत्वं वा लक्षणवाक्यार्थः उभयथैव व्याप्यत्वं तद्घटकं तदेव च व्याप्यत्वं न ज्ञायते इत्यत आह, 'व्याप्येति, 'व्याप्य-व्यापकभावाज्ञानेऽपि' साध्यवतो व्याप्यत्वज्ञानं विना-ऽपि, 'सम्बन्धत्वेनैव भातस्य' संयोगत्वादिनैव प्रकृतव्याप्तिज्ञानविषयस्य, 'वस्तुगत: तथात्वेनाज्ञायमानस्य' वस्तुगतोव्याप्तित्वेन प्रकृतव्याप्तिज्ञा-

धूमवति विद्येते इति कथमेते लक्षणे इति चेत्। न। तादृशाभावानभ्युपगमात् अभ्युपगमे वा तत्र तदुभय प्रतियोगि न वह्नि-वह्निमन्तौ।

---

माविषयस्य, 'षष्ठ्यर्थत्वं' विग्रहवाक्यस्थषष्ठ्यर्थत्वमिति योजना, 'वस्तुसतः' वस्तुनि फलीभूतानुमितौ विधेयतासम्बन्धेन सतः साध्यस्येति यावत्, तथाच संयोगत्वादिरूपेण संयोगादिरूपहेतुतावच्छेदकसम्बन्धस्यैव विग्रहवाक्यस्थषष्ठ्यर्थतया ककारस्यारितमतुवादेरपि संयोगत्वादिरूपेण संयोगादिरेवार्थो न तु व्याप्यत्वादिरूपसम्बन्धवानिति भावः। 'न चैवमिति, 'एवं' स्वपदार्थ-यत्पदार्थघटितलक्षणे, 'अननुगतस्यैवेति, लक्ष्यस्यानुगतत्वे लक्षणस्याननुगतत्वएव परस्पराव्याप्तिरूपदोषसम्भवादिति भावः। 'धूमवान् वह्निमद्ध्रदौ न भवतीत्येव पाठः, 'न भवत इति पाठस्तु प्रामादिकः[१]। 'व्यासज्येति व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिकावित्यर्थः, 'धूमवति' वह्नि-ह्रदोभयत्वावच्छिन्नानधिकरणे धूमवति, 'कथमेते लक्षणे इति, 'एते' अत्यन्ताभावान्योन्याभावगर्भलक्षणे, प्रतियोगिव्यधिकरणत्वस्य प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नव्यधिकरणत्वरूपतया वह्नि-ह्रदोभयत्वावच्छिन्नाभावस्यापि तथात्वादिति भावः, 'तादृशाभावेति व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावानभ्युपगमादित्यर्थः। न चैवं वह्नि-ह्रदौ

---

(१) प्रकृतस्य उद्देश्यवाचकपदोत्तरवर्त्तिवचनस्य मातीयवचनकत्वनियमादिति शेषः।

अथवाऽनौपाधिकत्वं व्याप्तिः तच्च यावत्स्वसमाना-धिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं यत्

---

न स इत्यादिप्रतीतेः को विषय इति वाच्यं। ह्रदाधिकरणे तादृश-प्रत्ययस्य वह्निसामान्याभावो विषयः वह्निमति तादृशप्रत्ययस्य ह्रद-सामान्याभावो विषयः तदुभयशून्ये च तादृशप्रत्ययस्य तादृशाभाव-द्वयमेव विषय इत्यभ्युपगमात्। न चैवं द्वित्वस्य प्रतियोगितावच्छेदक-त्वोल्लेखोऽनुपपन्न इति वाच्यं। लाघवात् क्लृप्तप्रकारीभूतवह्नित्व-ह्रद-त्वादिरूपतत्तद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावानामेव द्वित्वावच्छिन्न-प्रतियोगिताकत्वकल्पनात्। अथैवं लक्षणाव्याप्तिस्तदवस्था धूमसमा-नाधिकरणह्रदसामान्याभावस्य ह्रदत्वावच्छिन्नह्रदमात्रवृत्तिप्रतियो-गिताव्यक्तेर्वह्नावसत्त्वेऽपि वह्नि-ह्रदोभयत्वावच्छिन्नतत्प्रतियोगिताव्य-क्तेरुभयसाधारणतया वह्नावपि सत्त्वात् द्रव्यसामान्याभावो वह्नि-प्रतियोगिकः इति वत् ह्रदसामान्याभावो वह्निप्रतियोगिक इत्यपि प्रत्ययापत्तिः ह्रदसामान्याभावो न वह्निप्रतियोगिक इति प्रत्ययानुप-पत्तिश्च ह्रदसामान्याभावस्य द्वित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तेर्वह्निभि-न्नत्वादिति चेत्। न। वह्निसामान्याभाव-ह्रदसामान्याभावादेः वह्नित्व-ह्रदत्वावच्छिन्नवह्नि-ह्रदमात्रवृत्तिप्रतियोगिताव्यक्त्योरेव वह्नि-ह्रदो-भयत्वावच्छिन्नत्वाभ्युपगमात् उभयसाधारणप्रतियोगितान्तरे मानाभावात्। न चैवं पर्वते वह्नि-ह्रदौ न स्त इति प्रतीतेः प्रतियोगिता-कत्वसम्बन्धेनाभावे वह्नि-ह्रदयोरुभयोः प्रकारत्वानुपपत्तिः ह्रदसामा-न्याभावे वह्निनिष्ठप्रतियोगिताकत्वविरहादिति वाच्यं। ह्रदत्वावच्छि-

तत्प्रतियोगिकात्यन्ताभावसमानाधिकरणं यत् तेन समं सामानाधिकरण्यम्। नन्वेवं सोपाधिः, तत्र

---

च हृदमात्रवृत्तिप्रतियोगिताव्यक्तेर्हृदसम्बन्धत्ववद्वह्निसम्बन्धत्वस्याप्यभ्युपगमात्। न च तदसम्बद्धस्य कथं तत्सम्बन्धत्वमिति वाच्यं। तद्वृत्तिधर्मावच्छिन्नत्वसम्बन्धेन तस्यापि तत्सम्बद्धत्वात् तच्च निष्ठतासम्बन्धेन प्रतियोगित्वस्योभयसम्बद्धत्वे मानाभावात्। अथ वह्नि-हृदौ न स्तः घट-पटौ न स्त इत्यादिप्रतीतेः प्रकारीभूततत्तद्धर्मद्वयावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावविषयत्वेनोपपत्तावपि घटौ न स्तः पटौ न स्तः इत्यादि प्रतीतेर्भूतलाभावविषयत्वेनोपपत्तिः घटादिसामान्याभावस्य तद्विषयत्वे एकैकघटादिमति तादृशप्रतीत्यनुपपत्तिः यत्किञ्चिद्घटाद्यभावस्य तद्विषयत्वे घटद्वयादिमत्यपि तादृशप्रतीत्यापत्तिः अतो घटद्वयत्व-पटद्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यातिरिक्तस्यावश्यकत्वमिति चेत्। न। तावता घटौ न स्तः पटौ न स्त इत्यादिप्रतीतिबलाद्घटद्वयत्व-पटद्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यातिरिक्तस्य सिद्धावपि घट-पटोभयत्वावच्छिन्न-वह्नि-हृदोभयत्वावच्छिन्नाभावादेरतिरिक्तत्वे मानाभावात्। यावत्यो घटव्यक्तयः प्रातिस्विकरूपेण तत्तद्घटव्यक्तिभिन्नघटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावेष्वेव प्रत्येकं घटद्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वकल्पनात् यत्किञ्चिद्घटभिन्नघटाभावादेव घटौ न स्त इति प्रतीत्युपपत्तेः घटद्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावेऽपि मानाभावाच्च यत्किञ्चिद्घटद्वयवति घटेतरघटस्यैव सत्त्वात् न तथा धीः। न चानन्ताभावेषु घटद्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धकल्पना-

साधनसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिन आर्द्रे-न्धनवत्त्वादेरुपाधेर्योऽत्यन्ताभावस्तेन समं साध्यस्य

---

मपेक्ष्य लाघवादेक एव तत्सम्बन्धातिरिक्ताभावः सिध्यतीति वाच्यं। अनन्ताधिकरणेषु अतिरिक्ताभावसम्बन्धकल्पनामपेक्ष्य क्लृप्तानन्ता-धिकरणसम्बन्धेष्वेवानन्ताभावेषु घटद्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व-सम्बन्धकल्पनाया एव लघुत्वादिति भावः। एतेन त्रित्वाद्यवच्छिन्ना-भावेऽपि व्याख्यातः। ननु घट-पटौ न स्तः घटौ न स्तः वह्नि-ह्रदौ न स्तः वह्नी न स्त इत्यादिप्रतीतेः अधिकरणभेदेन नानाभावविषयकत्व-मनुभवविरुद्धमेकाभावविषयकत्वस्यानुभवसिद्धत्वात् तादृशानुभवाप-लापे अधिकरणातिरिक्ताभावस्यासिद्ध्यापत्तेः इत्यस्वरसादाह, 'अभ्युप-गमे वेति, 'तदुभयं प्रतियोगि' द्वित्वव्यावर्त्तकं तत्तद्धर्म्मद्वयं द्वित्वञ्च तादृशाभावप्रतियोगितावच्छेदकं, 'न वह्नि-वह्निमन्तौ' न वह्नित्व-वह्निमत्त्वे, तथाच हेतुसमानाधिकरणवह्नि-ह्रदोभयाभावस्य वह्नित्व-ह्रदत्वमुभयत्वं त्रितयं प्रतियोगितावच्छेदकं अवच्छेदकता च व्यासज्य-वृत्तिः न तु वह्नित्वमवच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणं, एवं वह्निमद्-ह्रदोभयान्योन्याभावस्य वह्निमत्त्वं ह्रदत्वमुभयत्वञ्च त्रितयं प्रति-योगितावच्छेदकं अवच्छेदकता च व्यासज्यवृत्तिः न तु वह्निमत्त्वं अवच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणं अतो नाव्याप्तिः प्रागुक्तयुक्त्या सर्व्वेषा-मेव लक्षणानां अवच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणत्वघटितत्वादिति भावः। 'तदुभयं प्रतियोगीत्यादि यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते उभयोः प्रति-योगित्वे एकस्यापि प्रतियोगित्वानपायात्। न च व्यासज्यवृत्तिधर्म्माव-

धूमादेः सामानाधिकरण्याभावात् उपाधेः साध्य-व्यापकत्वात्। एतदेव यावत्स्वव्यभिचारिव्यभिचारि-साध्यसामानाधिकरण्यमनौपाधिकत्वं गीयते ।

---

च्छिन्नाभावस्य प्रतियोगितापि व्यासज्यवृत्तिरिति वाच्यं। घटो घट-पटोभयाभावप्रतियोगीत्यप्रत्ययापत्तेः घटो न घट-पटोभया-भावप्रतियोगीति प्रत्ययापत्तेश्च इति ध्येयं।

केचित्तु 'तदुभयं प्रतियोगि' द्वित्वव्यावर्त्तकतत्तद्धर्मावच्छिन्न-मात्रवृत्तिपर्य्याप्त्यधिकरणत्वसम्बन्धेन तदुभयत्वं तादृशाभावप्रतियो-गितावच्छेदकं, 'न तु वह्नि-वह्निमन्तौ' न वह्नित्व-मह्निमत्त्वे, तथाच वह्नि-ह्रदोभयाभावादेर्वह्नि-ह्रदमात्रवृत्तिपर्य्याप्त्यधिकरणत्वादिसम्ब-न्धेन द्वित्वं प्रतियोगितावच्छेदकं न तु वह्नित्वादि। न चैवं वह्नि-ह्रदौ न स्त इत्यादावन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वव्यु-त्पत्तिभङ्गप्रसङ्गः केवलद्वित्वस्यान्वयितानवच्छेदकत्वादिति वाच्यं। त-द्व्युत्पत्तेरत्र सङ्कोचात् इत्याहुः।

प्राञ्चस्तु घट-पटोभयाभावादेर्घट-पटोभयवृत्तिद्वित्वेन तादृश-द्वित्वमेव प्रतियोगितावच्छेदकं अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगि-ताकत्वव्युत्पत्तेश्चात्र सङ्कोच एव इत्याहुः। तदसत् घट-पटोभयवृत्ति-त्वाद्यनुपस्थितावपि घट-पटौ न स्तः इति प्रत्ययात्। न च तदानीं तादृशप्रत्ययोऽसिद्ध इति वाच्यं। तदानीमपि तादृशप्रत्ययस्यैव दीधितिकृता लिखितत्वादिति दिक्।

यद्वा यावत्समानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगि-

'आचार्य्यलक्षणं परिष्करोति 'अथ वेति, यथाश्रुते प्रकृतसाध्य-व्यापकत्वे सति साधनाव्यापको यस्तदभावव्यापकत्वरूपमनौपाधिकत्वमिति, सद्धेतौ सिद्धसिद्धिव्याघातादाह, 'तच्चेति अनौपाधिकत्वञ्चेत्यर्थः, 'यावदिति, यावन्ति स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकानि तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावसमानाधिकरणं यत् साध्यं तेन समं सामानाधिकरण्यमित्यर्थः, 'स्वपदं हेत्वभिप्रायकं, वह्निमान् धूमादित्यादौ धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकानि यावन्ति जलत्वादीनि तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावसमानाधिकरण एव वह्निः व्याप्यसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिनो व्यापकत्वेति सुतरां अत्यन्ताभावादिति लक्षणसमन्वयः। धूमवान् वह्नेरित्यादौ च वह्निसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकमार्द्रेन्धनत्व-धूमत्वादि तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावसमानाधिकरणश्च न धूमादिः(१) आर्द्रेन्धनादेर्धूमव्यापकत्वादिति नातिव्याप्तिः। वह्निसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकं जलत्वादि तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावसमानाधिकरणो धूम इत्यतिव्याप्तिवारणाय 'यावदिति। ननु सर्वत्र तादृशावच्छेदकैर्घटत्व-पटत्व-गोत्वादिभिर्यावद्भिरवच्छिन्नत्वस्य कुत्राप्यभावादसिद्धिः। न च यावन्ति तादृशावच्छेदकानि तत्प्रत्येकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावेति विव-

(१) तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावासमानाधिकरणश्च धूमादिरिति ख०।

प्रतियोगिकात्यन्ताभावासामानाधिकरण्यं यस्य तस्य तद्देवानौपाधिकत्वं सोपाधौ तु साध्यवन्निष्ठात्यन्ताभा-

---

वितमिति वाच्यं । अवच्छिन्नपदस्याश्रयार्थकतया तत्प्रत्येकाश्रय-प्रतियोगिकाभावाभाव-विशिष्टाभावादिकमादायातिव्याप्त्यापत्तेः । न च [illegible] विशेषणं तथाच तादृशावच्छेदकावच्छिन्नानि [illegible] तत्प्रतियोगिताकाभावेत्यर्थः, अवच्छिन्नपदमाश्रयार्थकमिति [illegible] । तथापि यावत्तावच्छिन्नप्रतियोगिकात्यन्ताभावमादायाति-[illegible]प्तितादवस्थ्यात्प्रतियोगिव्यधिकरणत्वेनाभावविशेषणत्वेऽप्रसिद्धेः । न च तादृशावच्छेदकानि यावन्ति तत्प्रत्येकावच्छिन्नप्रतियोगिका-त्यन्ताभावसमानाधिकरणं यत्साध्यं विवक्षितं इति अवच्छिन्नत्वञ्च स्वरूपसम्बन्धविशेषः, इत्यञ्च विशिष्टाभावोभयाभावमादाय नाति-व्याप्तिरिति वाच्यं। रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादावव्याप्त्यापत्तेः पृथि-वीत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकानि घटत्वत्व-पटत्वत्वादीनि यावन्ति तत्प्रत्येकावच्छिन्नप्रतियोगिकाभावसामा-नाधिकरण्यस्य क्वापि रूपेऽसत्त्वात् घटीयरूपे घटत्वत्वावच्छिन्नप्रति-योगिकात्यन्ताभावसामानाधिकरण्यविरहात् पटीयरूपे पटत्वत्वा-वच्छिन्नप्रतियोगिकात्यन्ताभावसामानाधिकरण्यविरहात् । विशिष्ट-सत्तावान् जातेरित्यादावतिव्याप्त्यापत्तेश्च जातिसमानाधिकरणा-त्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकानि यावन्ति तत्प्रत्येकावच्छिन्नप्रति-योगिताकाभावसामानाधिकरण्यस्यैव विशिष्टसत्त्वे सत्तानतिरिक्ते सत्त्वादिति। नैवं। हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छे-

वाप्रतियोगिन उपाधेर्योऽत्यन्ताभावस्तेन समं हेतोः सामानाधिकरण्यम् उपाधेः साधनाव्यापकत्वात् ।

---

दका यावन्तो धर्म्मा यद्धर्म्मावच्छिन्नसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकास्तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वात् । यद्धर्म्मपदं साध्यतावच्छेदकपरं, अत्र चरमप्रतियोगिता विशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छिन्नत्वेन विशेषणीया, तेन धूमवान् वह्नेरित्यादौ वह्निसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकस्यार्द्रेन्धनत्वादेः सर्व्वस्यैव धूमत्वावच्छिन्नसमानाधिकरणसमवायादिसम्बन्धावच्छिन्नाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि धूमप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वत्वादेः[१] तादृशावच्छेदकयावदन्तर्गतस्य धूमसमानाधिकरणाभावीयविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकत्वविरहान्नातिव्याप्तिः । एवं प्रथमप्रतियोगितापि विशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छिन्नत्वेन विशेषणीया, तेन वह्निमान् धूमादित्यादौ धूमसमानाधिकरण-संयोग-समवायादिसम्बन्धावच्छिन्नाभावप्रतियोगितावच्छेदकस्य वह्निप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वत्वादेर्यावदन्तर्गतस्य वह्निसमानाधिकरणाभावीयविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकत्वविरहेऽपि न क्षतिरिति दिक् । यथा-

---

(१) अयःपिण्डेऽपि धूमप्रकारकभ्रमात्मकज्ञानविशेष्यत्वसत्त्वात् धूमप्रकारकज्ञानविशेष्यत्वत्वादेः वह्निसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वं न सम्भवतीत्यत उक्तं धूमप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वत्वादेरिति ।

यद्वा यत्सम्बन्धितावच्छेदकरूपवत्त्वं यस्य तस्य सा व्याप्तिः। तथाहि धूमस्य वह्निसम्बन्धित्वे धूमत्वम-

---

भुताभिप्रायेणासद्धेतौ लक्षणासत्त्वं प्रतिपादयति, 'न ह्येवमिति, 'अत्यन्ताभावप्रतियोगिनः' प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य, 'उपाधेः' आर्द्रेन्धनवत्त्वाद्युपाधेः[१]। ननु तस्यानौपाधिकत्वरूपत्वे "यावत्स्वव्यभिचारिव्यभिचारिसाध्यसमानाधिकरण्यमनौपाधिकत्वं" इति प्राचीनग्रन्थविरोध इत्यत आह, 'एतदेवेति मया यन्निरुक्तमेतदेवेत्यर्थः, 'अनौपाधिकत्वमित्यनन्तरमिति पूरणीयं, 'गीयते' प्राचीनैरुच्यते, 'स्वव्यभिचारिपदस्य स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नार्थकतया, द्वितीयव्यभिचारिपदस्य च तत्प्रतियोगिताकात्यन्ताभावसमानाधिकरणार्थकतया तस्याप्ययमेवार्थः इति भावः।

प्रकारान्तरेणानौपाधिकत्वं निर्व्वक्ति, 'यद्वेति यावन्तो यत्समानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिनस्तत्प्रतियोगिकात्यन्ताभावासामानाधिकरण्यं यस्य तस्य तत्त्वमेव तदनौपाधिकत्वमित्यर्थः, प्रथमयत्पदं साध्यपरं यस्येत्यत्र यत्पदं हेतुपरं, वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्निसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगिनामिन्धनादीनां सर्व्वेषामेवा-

---

(१) अस्मत्संगृहीतादर्शमूलपुस्तकेषु सर्व्वत्र 'आर्द्रेन्धनवत्त्वादेरुपाधेः' इति पाठो वर्त्तते परन्तु टीकाकारव्याख्यानुसारेण कस्मिंश्चिन्मूलपुस्तके 'आर्द्रेन्धनवत्त्वादेरुपाधेः' इत्यत्र 'उपाधेः' इत्येतावन्मात्रपाठो वर्त्तते इत्यनुमीयते।

वच्छेदकं धूममात्रस्य वह्निसम्बन्धित्वात्, वह्नेस्तु धूम-सम्बन्धे न वह्नित्वमवच्छेदकं धूमासम्बन्धिनि गतत्वात्,

---

भावेन समं धूमस्य न सामानाधिकरण्यं व्यापकव्यापकस्य सुतरां व्याप्यव्यापकत्वादिति लक्षणसमन्वयः, धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूम-समानाधिकरणाभावाप्रतियोगिनामार्द्रेन्धनादीनामेवाभावेन समं वह्न्यादेः सामानाधिकरण्यान्नातिव्याप्तिः । धूमसमानाधिकरणा-भावाप्रतियोगिनो द्रव्यत्वादेरभावेन सममसामानाधिकरण्यस्य वह्नौ सत्त्वादतिव्याप्तिवारणाय 'यावदिति । ननु सर्व्वत्र साध्यसमानाधिक-रणाभावाप्रतियोग्येवाप्रसिद्धं तादृशविशिष्टाभावोभयाभावप्रतियोगि-त्वस्य केवलान्वयित्वात् । न चाप्रतियोगिपदं विशेषणताविशेषा-वच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नपरं व्यधिकरणसम्बन्धावच्छि-न्नतादृशाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वस्य सर्व्वत्र सत्त्वात् तादृशप्रतियो-गितानवच्छेदकस्याप्रसिद्धिरिति विशेषणताविशेषावच्छिन्नेति प्रति-योगिताविशेषणमिति वाच्यं । तथापि वह्निमान् धूमादित्यादा-वसम्भवात् वह्निसमानाधिकरणाभावीयविशेषणताविशेषावच्छिन्न-प्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नयावत्प्रतियोगिकेन यावत्त्वावच्छिन्न-प्रतियोगिकाभावेन समं सामानाधिकरण्यस्य धूमे सत्त्वात् । न च साध्यसमानाधिकरणाभावीयविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगितान-वच्छेदकं यावत् तत्प्रत्येकावच्छिन्नविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियो-गिकाभावेन सममसामानाधिकरण्यं विवक्षितं संयोग-समवायादि-सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिकाभावमादायासम्भववारणाय विशेषणता-

**न ह्यतिप्रसक्तमवच्छेदकं, संयोगादौ तथात्वादर्शनात्। किन्तु वह्न्यावार्द्रेन्धनप्रभववह्नित्वं धूमसम्बन्धितावच्छेदकं, तादृशञ्च व्याप्यमेव।**

---

विशेषावच्छिन्नेति चरमप्रतियोगिताविशेषणमिति वाच्यं। प्रमेयत्वादेरपि तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकयावदन्तर्गततया तदवच्छिन्नविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगिकाभावाप्रसिद्ध्या असम्भवतादवस्थ्यात्। न च व्यतिरेकितावच्छेदकत्वेन[१] तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकं विशेषणीयमिति वाच्यं। तथापि केवलान्वयिन्यव्याप्तेः तत्र तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकव्यतिरेकितावच्छेदकधर्माप्रसिद्धेः द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तेश्च विशिष्टस्यानतिरेकात्। अथ यावत्त्वं द्वितीयात्यन्ताभावविशेषणं, तथाच साध्यसमानाधिकरणाभावीयविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगिकयावदभावासामानाधिकरण्यमित्यर्थः। न चायमात्मा ज्ञानादित्यादौ तादृशयावदभावान्तर्गतानां रूपादिसामान्याभावाभावानां सकलरूपादिव्यक्तीनां अधिकरणाप्रसिद्धिः तादृशयावदभावप्रत्येकासामानाधिकरण्योक्तावपि तादृशयावदभावान्तर्गतस्याकाशादेरधिकरणाप्रसिद्ध्या असम्भवः द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादौ अव्याप्तिश्च विशिष्टसत्त्वानतिरिक्तत्वात् इति वाच्यं। सप्तमीतत्पुरुषाश्रयणात् तादृशयावदभावे असामानाधिकरण्यं यद्धर्मावच्छि-

---

(१) अभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेनेत्यर्थः।

अथवा यत्सामानाधिकरण्यावच्छेदकावच्छिन्नं यस्य

स्य तद्धर्मवत्त्वं तदनौपाधिकत्वमित्यस्य विवक्षितत्वात् आकाशादा-
पि हेतुसामानाधिकरण्याभावसत्त्वात् न दोष इति चेत्। न। द्रव्यं
पृथिवीत्वादित्यादावव्याप्तेः तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकद्रव्यान्यत्व-
विशिष्टसत्त्वाभावत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य सत्त्वादेः पृथिवी-
त्वादिसमानाधिकरणत्वादाकाशाभावादेरभावे, मानाभावेन केवला-
न्वयिस्थलेऽपि तादृशाभावाप्रसिद्धेश्चेति। मैवं। साध्यसमानाधि-
करणाभावीयविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदका या-
वन्तो धर्मा यद्धर्मावच्छिन्नसमानाधिकरणाभावीयविशेषणताविशेषा-
वच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकास्तद्धर्मवत्त्वमनौपाधिकत्वमिति विव-
क्षितत्वादिति दिक्। सोपाधौ यथाश्रुताभिप्रायेण लक्षणाभावं
दर्शयति, 'सोपाधाविति। 'यदेति, 'सा' तत्सम्बन्धिता, सम्बन्धिता च
सामानाधिकरण्यं, तथाच यत्सामानाधिकरण्यावच्छेदकरूपवत्त्वं यस्य
तस्य तत्सामानाधिकरण्यमित्यर्थः, प्रथमयत्पदं साध्यत्वेनाभिमत-
परं। न च द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः सत्ताया द्रव्यत्वसामाना-
धिकरण्यावच्छेदकगुणाद्यन्यत्वविशिष्टसत्त्वत्वावच्छिन्नत्वात् यस्येत्यन्त-
वैयर्थ्यञ्चाव्यावर्त्तकत्वात् इति वाच्यं। यत्सम्बन्धितावच्छेदकं यद्रूपवत्त्वं
यस्य तस्य तत्सामानाधिकरण्यं तद्रूपेण तस्य व्याप्यत्वमित्यभिप्रायात्।
इत्यञ्च वह्नेर्वह्नित्वरूपेण धूमव्याप्यत्ववारणाय यस्येत्यन्तं, तथाच
साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकवत्त्वे सति साध्यसामानाधिकरण्यं
व्याप्तिरिति फलितं। अथ च साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वं न

**स्वरूपं तत्तस्य व्याप्यं वह्निसामानाधिकरण्यं हि धूमे धूमत्वेनावच्छिद्यते सोपाधौ तूपाधिना ।**

---

स्वरूपसम्बन्धविशेषः, लघुसमनियतगुरुरूपेण हेतुतायामव्याप्त्यापत्तेः[१] धूमत्वादेर्वह्निसामानाधिकरण्यस्य स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वे मानाभावाच्च । नापि साध्यसामानाधिकरण्यान्यूनवृत्तित्वं वह्निमान् प्रमेयात् इत्यादावतिव्याप्त्यापत्तेः वह्निमान् धूमादित्यादावव्याप्त्यापत्तेश्च[२] नापि तदन्यूनानतिरिक्तवृत्तित्वं, वह्निमान् धूमादित्यादावेवाव्याप्तेः । नापि तदनतिरिक्तवृत्तित्वं, द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्त्यापत्तेः । किन्तु पारिभाषिकं, तच्च स्वविशिष्टाधिकरणावृत्तियावत्साध्यासमानाधिकरणकत्वं, स्वपदं हेतुतावच्छेदकपरं । न चैवं वह्निमान् नीलधूमादित्यादौ व्यर्थविशेषणेऽतिव्याप्तिः निरुक्तावच्छेदकत्वस्य नीलधूमत्वादावपि सत्त्वादिति वाच्यं । तस्यापि लक्ष्यत्वात् व्यर्थविशेषणोद्भावने वादिनोऽधिकेन निग्रह इत्येव व्यर्थविशेषणताया दूषकताबीजत्वात् । तत्र साध्यासमानाधिकरणत्वं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणे दैशिकविशेषणताविशेषेणावृत्तित्वं, तेन समवायेन वह्न्यादौ साध्ये वह्निमान् धूमादित्यादौ गुणाद्यन्य-

---

(१) सम्भवति लघौ धर्म्मे गुरौ तदभावादिति नियमादिति शेषः ।

(२) अन्यूनवृत्तित्वपदस्य व्यापकत्वार्थकतया प्रमेयत्वस्य वह्निसामानाधिकरण्यव्यापकतया वह्निमान् प्रमेयादित्यादावतिव्याप्तिः । वह्निसामानाधिकरण्यस्य रासभादिसाधारणतया धूमत्वस्य तदव्यापकतया वह्निमान् धूमादित्यादावव्याप्तिश्चेति भावः ।

त्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादौ च नातिव्याप्तिः, न वा गगनादेः कालिकसम्बन्धेनावृत्तित्वमते द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ द्रव्यत्वाधिकरणका-लावृत्तित्वस्यावृत्तिमात्रे सत्त्वेऽपि अतिव्याप्तिः, गगनादेस्तेन सम्बन्धेन वृत्तित्वमते द्रव्यं गुणादित्यादौ द्रव्यत्ववदवृत्तित्वस्याप्रसिद्ध्याव्याप्तिः, स्वविशिष्टाधिकरणावृत्तित्वमपि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन स्वविशि-ष्टाधिकरणे दैशिकविशेषणताविशेषेणावर्त्तमानत्वं, तेन वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्न्यसमानाधिकरणधूमावयवत्वादेर्दैशिकविशेषणता-विशेषेण वह्न्यसमानाधिकरणद्रव्यत्वादेश्च धूमसमानाधिकरणत्वेऽपि नाव्याप्तिरिति संक्षेपः ।

सद्धेतुत्वसद्धेत्वोर्लक्षणसत्त्वासत्त्वमुपपादयति, 'तथाहीति, 'वह्नि-सम्बन्धित्वे' वह्निसामानाधिकरण्ये, एवं सर्वत्र, 'न ह्यतिप्रसक्तमिति न हि साध्यसामानाधिकरण्यातिप्रसक्तं निरुक्तसाध्यसामानाधिकरण्या-वच्छेदकत्ववदित्यर्थः, 'संयोगादौ' संयुक्तत्वादौ, 'आदिना प्रमेयत्वा-दिपरिग्रहः, 'तथात्वादर्शनादिति यथोक्तधूमादिसामानाधिकरण्या-नवच्छेदकत्वादित्यर्थः, साध्यसामानाधिकरण्यातिप्रसक्तस्यापि निरु-क्तसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वाश्रयत्वे संयुक्तत्व-प्रमेयत्वादेरपि तादृशधूमादिसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वापातादिति भावः । अत्र साध्यसामानाधिकरण्यांशस्यातिरिक्तस्य प्रवेशे प्रयोजनविरहात् गौर-वाच्च तत्परित्यज्य लक्षणान्तरमाह, 'अथ वेति 'यत्पदं साध्यपरं, अत्रापि यत्सम्बन्धितावच्छेदकयद्धर्मावच्छिन्नं यत् तत् तद्धर्मरूपेण तस्य व्याप्यमित्यर्थः, अन्यथा द्रव्यं सत्त्वादित्यादावपि सत्ताया द्रव्यत्व-सामानाधिकरण्यावच्छेदकविशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नत्वादतिव्याप्त्यापत्तेः,

तथाच साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकहेतुतावच्छेदकवत्त्वं व्याप्ति-रिति पर्य्यवसितं अन्यत्सर्वं पूर्ववत् ।

सद्धेतुसद्धेत्वोर्लक्षणसत्त्वासत्त्वमुपपादयति, 'वह्निसामानाधिकर-ण्यमित्यादिना, 'सोपाधौ तु उपाधिनेति उपाधिना तु सोपाधा-विति योजना, तथाच 'सोपाधौ' साध्यव्यभिचारित्वविशिष्टसाधने[१], 'उपाधिनैव साध्यसम्बन्धोऽवच्छिद्यत इत्यर्थः, 'तु'शब्दस्य इतरव्यवच्छे-दकत्वात्[२]। न सोपाधेः साधनावृत्तित्वात् कथं साधननिष्ठसाध्यस-म्बन्धितावच्छेदकत्वमिति वाच्यं। सर्वंच साधनसमव्याप्तोपाधेः सामा-नाधिकरण्यसम्बन्धेनैव साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वस-म्भवादिति भावः। यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते साधनतावच्छेदकानव-च्छेदकत्वप्रतिपादनस्यैव[३] प्रकृतोपयोगितया तदलाभात्[४]। यद्यपि धूमवान् वह्नेरित्यादौ आर्द्रेन्धनप्रभववह्नित्वादेरुपाधिभिन्नस्याप्यव-च्छेदकत्वात् अवधारणमनुपपन्नं। न चार्द्रेन्धनप्रभववह्नेरपि संयो-गसम्बन्धेन धूमसम्बन्धितया "सर्व्वे साध्यसमानाधिकरणाः स्युरुपा-धयो हेतोरेकाश्रये येषां स्व-साध्यव्यभिचारिता" इति न्यायेनार्द्रे-न्धनप्रभववह्नित्वादिकमप्युपाधिरिति[५] वाच्यं। एवमपि स्वेहवत्

(१) साध्यव्यभिचारिणीति ख॰। (२) इतरव्यवच्छेदार्थत्वादिति ख॰।

(३) साधनतावच्छेदके साध्यसामानाधिकरण्यानवच्छेदकत्वप्रतिपादनस्यैवे-त्यर्थः।

(४) सोपाधौ उपाधिना तु इति योजनाभावे सा न तावच्छेदके साध्य-सामानाधिकरण्यानवच्छेदकत्वस्य प्रतिपादयितुमशक्यत्वमिति भावः।

(५) स्वाश्रयार्द्रेन्धनप्रभववह्निमत्त्वसम्बन्धेनोपाधिरिति तात्पर्य्यम्।

स्पर्शादित्यत्रानुपाधिनापि शीतत्वेन साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदाद्यवधारणासङ्गतेः । न च स्नेहवत् स्पर्शादित्यादौ शीतत्वादिरपि स्वाश्रयीभूतशीतस्पर्शादिसम्बन्धेन उपाधिरेवेति वाच्यं। तथा सति पदार्थमात्रस्यैव यथाकथञ्चित्सम्बन्धेनोपाधित्वादुपाधिभिन्नस्याप्रसिद्ध्या व्यवच्छेद्याप्रसिद्धेर्धूमवान् वह्नेरित्यादौ साधनतावच्छेदकस्यापि वह्नित्वादेरार्द्रेन्धनप्रभववह्न्यादिसम्बन्धेनोपाधित्वात् साधनतावच्छेदकव्यवच्छेदाप्राप्तेः। न चोपाधिपदं साधनतावच्छेदकभिन्नपरमिति वाच्यं। इदं दधि दध्न इत्यत्र साधनतावच्छेदकदधित्वस्यापि सामानाधिकरण्यसम्बन्धेनावच्छेदकतया नियमासङ्गतितादवस्थ्यात्[1] । तथापि सामान्यत उपाधिभिन्नव्यवच्छेद्यत्वं न नियमव्यवच्छेद्यं, अपि तु साधनतावच्छेदकताघटकसम्बन्धेन साधनतावच्छेदकावच्छिन्नत्वमात्रमिति न कोऽपि दोषः।

पितृचरणास्तु उपाधिपदमुपाधिवृत्तिधर्मपरं तथाचोपाधिवृत्तिधर्मेणैवेत्यर्थः, भवति धूमवान् वह्नेरित्यादौ आर्द्रेन्धनप्रभव-

---

(१) इदं दधि दध्न इत्यत्र दधित्वस्य समवायेन साध्यत्वं दध्नः समवायेन हेतुत्वं, द्रव्यत्वव्याप्यव्याप्यजातेः परमाणुवृत्तित्वानभ्युपगमेन परमाण्वन्तर्भावेन दधित्वसाध्यकदध्यात्मकहेतोर्व्यभिचारित्वं। न च दधित्वस्य समवायेनाप्यवच्छेदकत्वं सम्भवति कथं तत् परित्यज्य सामानाधिकरण्यसम्बन्धानुधावनमिति वाच्यम् । दधित्वसामानाधिकरण्यशून्ये द्व्यणुके समवायेन दधित्वस्य वर्त्तमानत्वेनातिप्रसक्तत्वात्, सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन दधित्वन्तु न द्व्यणुकात्मके दध्नि वर्त्तमानमतोऽनतिप्रसक्तत्वेनावच्छेदकमिति ।

वह्नित्वादिकं साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकमुपाधिवृत्ति, तथा-च यथाश्रुतनियमेऽपि न व्यभिचारः, सर्व्वत्र व्यभिचारिणि किञ्चिद्-विशिष्टसाधनस्योपाधित्वात्। न च तथापि इदं स्नेहाभाववत् स्पर्शा-दित्यादिसाध्याव्यापकसाधनस्थले एव व्यभिचारः शीतान्यस्पर्शरूपो-पाध्यवृत्तिधर्मस्यैव तत्र साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वादिति वाच्यं। शीतान्यस्पर्शादेरपि साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वेनोपाधितया शी-तान्यस्पर्शत्वादेरप्युपाधिवृत्तित्वादित्याहुः। तदसत् तथापि साध-नतावच्छेदकस्यानवच्छेदत्वालाभेन प्रकृतानुपयोगात् व्यभिचारिणि किञ्चिद्विशिष्टसाधनस्यैव उपाधित्वेन साधनतावच्छेदकस्याप्युपाधि-वृत्तित्वादिति ध्येयम्।

## अतएव चतुष्टयं ।

अतएव साधनतावच्छेदकभिन्नेन येन साधनताभिमते साध्यसम्बन्धोऽवच्छिद्यते स एव तत्र साधने विशेषणमुपाधिरिति वदन्ति । अतएव च तत्र साधनाव्यापकत्वे सति साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वं लक्षणं ध्रुवं, व्यभिचारिणि साधने एकत्र साध्य-तदभावयोर्विरोधेनावच्छेदकभेदं विना तदुभयसम्बन्धाभावादवश्यं

---

### अतएव चतुष्टयरहस्यं ।

सोपाधौ साधनतावच्छेदकं न साध्यसम्बन्धितावच्छेदकं इत्यत्र प्राभाकरसम्मतिमाह, 'अत एवेति यत एव सोपाधौ साधनतावच्छेदकं न साध्यसम्बन्धितावच्छेदकं अत एवेत्यर्थः, 'साधनतावच्छेदकभिन्नेनेति साधनतावच्छेदकस्य तत् भिन्नस्येति कर्म्मधारयः, भिन्नपदस्य 'साध्यसम्बन्धितावच्छेदकभिन्नपरं, वैशिष्ट्यस्य तृतीयार्थः, अन्वयश्चास्य 'साधनताभिमत इत्यनेन, तथाच साध्यसम्बन्धितावच्छेदकभिन्नेन साधनतावच्छेदकेन विशिष्टे साधनताभिमते वर्त्तते यः साध्यसम्बन्धः स येन धर्म्मेणावच्छिद्यते 'स एव विशेषणं' स एव धर्मस्तत्र साधने उपाधिरिति नियमं प्राभाकरा वदन्तीत्यर्थः, अन्यथा सोपाधौ साधनतावच्छेदकस्यापि साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वे यत्र

साध्यसम्बन्धितावच्छेदकमस्ति, तदेव च साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकं साधनाव्यापकं तच्चोपाधिः, अतएव व्यभिचारे चावश्यमुपाधिरिति सङ्गच्छते। अन्यथा व्यभिचारादेव तच्चागमकत्वेन व्यभिचारित्वेन न तदनुमानमप्रयोजकत्वात्। अतएव च तस्य साध्यसम्बन्धि-

---

व्यभिचारिणि साधनतावच्छेदकं साध्यसम्बन्धितावच्छेदकं तच्च सोपाधावेव तदुक्ते तन्नियमो व्यभिचारी स्यात् तच्च साधनतावच्छेदकस्य साध्यसम्बन्धितावच्छेदकभिन्नत्वविरहादिति भावः। न चार्द्रेन्धनप्रभववह्न्यादावेव तदुक्ते तन्नियमो व्यभिचारी तस्य साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यव्यधिकरणत्वेन तदनवच्छेदकत्वादिति वाच्यं। सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन अवच्छेदकत्वस्योक्तत्वात्। अवच्छेदकत्वञ्च न स्वरूपसम्बन्धविशेषः, आर्द्रेन्धनीयवह्न्यादेः तादृशावच्छेदकत्वे मानाभावेनाव्याप्त्यापत्तेः। नाप्यनतिरिक्तवृत्तित्वं, धूमवान् वह्नेरित्यादौ आर्द्रेन्धनप्रभववह्निसामानाधिकरण्यस्यापीन्धनादौ वह्निनिष्ठधूमसामानाधिकरण्यातिरिक्तवृत्तित्वादसम्भवापत्तेः, किन्तु अन्यूनवृत्तित्वं व्यापकत्वमिति यावत्, इत्यञ्च साध्यसम्बन्धितानवच्छेदकसाधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितायाः सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन व्यापको यः स एव उपाधिरिति फलितं। प्रत्यक्षं उद्भूतरूपादित्यत्र प्रत्यक्षत्वसामानाधिकरण्यस्य सुखत्व-रूपत्वादौ सत्त्वात् तत्र महत्त्वसामानाधिकरण्याभावात् महत्त्वेऽव्याप्तिवारणाय निष्ठान्तं साध्यसम्बन्धिताविशेषणं, तस्यापि साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वेनोपाधित्वात्। न च

तावच्छेदकरूपलक्षणा व्याप्तिः साधनताभिमते च नास्तीति स्फटिके जवाकुसुमवदुपाधिरसावुच्यते। लक्षणन्तु साध्य-साधनसम्बन्धव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वं, विषमव्याप्तस्तु नोपाधिपदवाच्यः प्रवृत्तिनिमित्ताभावात्। दूषकता च तस्य व्यभिचारोन्नाय-

---

तथापि अयं चाक्षुषो जातिमत्त्वादित्यत्र पक्षधर्मद्रव्यत्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकोपाधावुद्भूतरूपेऽव्याप्त्यापत्तिः विषमव्यापकस्योपाधित्वानभ्युपगमे च महत्त्वेऽव्याप्तिवारणाय निष्ठान्तविशेषणवैयर्थ्यं वक्ष्यमाणलक्षणे धूमवान् वह्नेरित्यादावार्द्रेन्धनादौ द्रव्यं कर्मान्यत्वे सति सत्त्वात् प्रत्यक्षमुद्भूतरूपात् महाननित्यद्रव्यत्वादित्यादौ गुणान्यत्वमहत्त्वानित्यसमवेतत्वादिषु अतिव्याप्त्यापत्तिश्चेति वाच्यं। साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकस्यैव एतन्मते उपाधितया उक्तस्थले उद्भूतरूपस्यानुपाधित्वात्। न च तथापि सत्त्वाद्येकव्यक्तिहेतुके द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ साध्यव्याप्ये[१] घटत्वादावतिव्याप्तिर्दुर्व्वारा सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन तस्यापि साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यव्यापकत्वादिति वाच्यं। परेषामेतदुपाधिलक्षणं अपि तु एतादृशविशिष्टधर्मस्योपाधित्वव्यापकत्वमेव तेषामभिमतं तथाचोपाधिलक्षणातिव्याप्तेः व्यभिचारसंपादकतया[२] दोषत्वेऽपि व्यापकतातिप्रसङ्गस्यादोषतयातिव्याप्तेरदोषत्वात्। न चैतस्य व्यापकधर्मरूपत्वे साध्यसम्बन्धितानवच्छेदकसाधनतावच्छेदका-

---

(१) घटत्वस्य उपाधित्वाभावसूचनार्थं साध्यव्याप्ये इति विशेषणम्।

(२) तथाचासम्भवाव्याप्त्योर्व्यभिचारसम्पादकतयेति ख०, ग०।

कतया। न च व्यभिचारोन्नायकत्वमेवोपाधित्वं अप्रयोजकसाध्यव्यापकव्यभिचरितोरप्युपाधित्वापत्ते-रिति।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे विशेषव्याप्तिः। समाप्तश्च व्याप्तिवादः।

---

वच्छिन्नेतिसाधनविशेषणवैयर्थ्यं व्यापकतातिप्रसङ्गस्यादोषतया साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकेऽतिप्रसङ्गस्याप्यदोषत्वादिति वाच्यं[1]। गुरुधर्म्मवद्विशिष्टधर्म्मस्यापि व्यापकत्वेन व्यापके व्यर्थविशेषणताया अदोषत्वादिति दिक्। नन्वेतादृशधर्म्मस्य[2] गोत्ववान् अश्वत्वादित्यादिविरुद्धस्थलीयसाध्यावत्त्वाद्युपाधावभावात् कथमुपाधित्वमित्यत आह,[3] 'अत एवेति यत एव तन्मते तत्र तस्या नोपाधित्वमत एवेत्यर्थः, 'तत्र' तन्मते, 'साधनावच्छिन्नेति साधनविशिष्टेत्यर्थः, 'ध्रुवं' निर्दोषं, अन्यथा साधनविशिष्टसाध्याप्रसिद्ध्या तत्रैव[4] च लक्षणमव्याप्तं स्यादिति

---

(१) साध्यव्यापकातिव्याप्तेरप्यदोषत्वादितीति ख-चिह्नितपुस्तकपाठः, परन्त्वेतादृशपाठे 'साध्यव्यापकातिव्याप्तेः' इत्यस्य साध्यसामानाधिकरण्यव्यापकातिव्याप्तेरित्येवार्थः, अतोनासङ्गतिः।

(२) 'एतादृशधर्म्मस्य' साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वस्ये-त्यर्थः।

(३) अत्र साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यस्यैवाप्रसिद्धतया सुतरां साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वमप्रसिद्धमिति भावः।

(४) गोत्ववान् अश्वत्वादित्यादौ विरुद्धस्थले एवेत्यर्थः।

श्रवः । अत्र वह्निमान् धूमादित्यादौ साध्यादेरुपाधितावारणाय सत्यन्तं, तत्रैव महानसत्वादिवारणाय विशेष्यदलं। स श्यामोमित्रा-तनयत्वादित्यादौ शाकपाकजत्वादावव्याप्तिवारणाय 'साधनावच्छि-न्नेति । न चायं चाक्षुषः प्रमेयत्वादित्यादौ पक्षधर्मद्रव्यत्वावच्छिन्न-साध्यव्यापके उद्भूतरूपेऽव्याप्तिरिति वाच्यं। साधनावच्छिन्नसाध्य-व्यापकस्यैव तन्मते उपाधितया तस्यालक्ष्यत्वात् । द्रव्यं सत्त्वादि-त्यादौ रूपान्यत्व-गुणान्यत्वादिकञ्च लक्ष्यमेवातो न तत्रातिव्याप्तिः।

केचित्तु साध्याभावविशिष्टसाधनवद्वृत्तेरेव एतन्मते लक्ष्यत्वात् अयं चाक्षुषोमेयत्वादित्यादौ उद्भूतरूपादौ नाव्याप्तिः, एवञ्च द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ रूपान्यत्व-गुणान्यत्वादेरपि अलक्ष्यतया तत्रातिव्याप्ति-वारणाय 'साधनाव्यापकत्वमिह साध्याभावविशिष्टसाधनव्यापकी-भूताभावप्रतियोगित्वं निर्वाच्यं, धूमवान् वह्नेर्द्रव्यं प्रमेयत्वादित्यादौ तत्तदयोगोलकान्यत्व-सत्त्वादिकञ्च न लक्ष्यं अतो न तत्राव्याप्ति-रित्याहुः ।

नन्वेतस्य उपाधिलक्षणत्वे व्यभिचारे चावश्यमुपाधिनियमोऽसङ्गतः यत्र व्यभिचारिणि हेतौ एतादृशधर्मो नास्ति तस्यैव निरुपाधित्वा-दित्यत आह, 'व्यभिचारिणीति, 'सङ्गच्छते' इत्यन्तमेकोग्रन्थः, व्यभिचारित्वञ्च साध्य-तदभावसमानाधिकरणत्वं, 'तदुभयसम्बन्धाभा-वात्' तदुभयसामानाधिकरण्यासम्भवात्, 'साध्यसम्बन्धितावच्छेदक-मस्तीति अधिकरणविधया साध्यसम्बन्धितावच्छेदकमस्तीत्यर्थः, 'तदेव' साधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकमधिकरणमेव, साधन-निष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वरूपेण तादात्म्यसम्बन्धेनेति शेषः ।

'तत्रोपाधिः' अन्यतरत्रोपाधिः, ननु साध्य-तदभावयोर्विरोधेऽपि तदुभयसामानाधिकरण्ययोरविरोधात् कथं तत्रावच्छेदकभेदापेक्षेत्यत आह, 'अन्यथेति साध्य-तदभावसामानाधिकरण्ययोर्विरोधाभाव इत्यर्थः, 'तत्र' व्यभिचारिहेतौ, 'अगमकत्वेन' अव्याप्यत्वसम्भवेन, 'व्यभिचारित्वेनेति अयं हेतुः सोपाधिर्व्यभिचारित्वादिति व्यभिचारित्वेन हेतुना, उपाध्यनुमानं अप्रयोजकं स्यादनुकूलतर्काभावादित्यर्थः, साध्य-तदभावसामानाधिकरण्ययोर्विरोधे तु अवच्छेदकविधया विरोधभञ्जनमेवानुकूलतर्कः, साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकीभूतस्याधिकरणस्यैव तादात्म्यसम्बन्धेन तादृशावच्छेदकत्वरूपेण साध्याधिकरणत्वादिरूपेण वोपाधित्वादिति भावः। सोपाधौ साधनतावच्छेदकस्य न साधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वमित्यत्र प्राभाकरसंवादमुक्त्वा आचार्य्यसंवादमाह, 'अत एवेति यत एव सोपाधौ साधनतावच्छेदकं केवलं न साध्यसम्बन्धितावच्छेदकमत एवेत्यर्थः, 'तस्य' समव्याप्तधर्म्मस्य, 'साधनाभिमते च कास्तीति साधनताभिमतांशे प्रकारीभूते साधनतावच्छेदके तादात्म्यसम्बन्धेन विशेषणीभूय भ्रमविषयोभवतीत्यर्थः, 'इतीति इत्यतो हेतोरित्यर्थः, उप समीपस्थे आदधाति साक्षात्परम्परया वा स्वनिष्ठधर्म्मप्रकारकं भ्रमं जनयतीति उपाधिपदव्युत्पत्त्येति शेषः, 'स्फटिके जवाकुसु-
(२ मादिति यथा जवाकुसुमं स्फटिके स्वनिष्ठलौहित्यभ्रमजनकतया
स्वनिष्ठलौहित्यप्रकारकलोहिताभेदभ्रमजनकतया वा स्फटिके उपा-
(३) धिरित्यर्थः, 'उपाधिरसावुच्यत इति, 'असौ' साध्यसमव्याप्तोधर्मः,
धर्मा
(४) गोत्व साध्यत्वेनाचार्य्यैरुच्यत इत्यर्थः, अन्यथा सोपाधावपि केवल-

साधनतावच्छेदकस्य साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वे तत्र सामिनिष्ठायाः
ाध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपात्मिकाया व्याप्तेस्तादात्म्यसम्बन्धेन साधन-
ावच्छेदके विशेषणीभूय भ्रमविषयत्वनिबन्धनं साध्यसमव्याप्तधर्म्मस्य
पाधिपदवाच्यताभिधानमयुक्तं स्यात् तत्सम्बन्धेन तद्धर्म्मावच्छिन्न-
तियोगिताकाभाववति तत्सम्बन्धेन तद्धर्म्मावच्छिन्नप्रकारकज्ञानस्यैव
ममतया साधनतावच्छेदके तादात्म्यसम्बन्धेन उपाधिनिष्ठसाध्यसम्ब-
न्धितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य भ्रमत्वासम्भवादिति भावः। एतच्च
ाध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वं सर्व्वसाधारणमनुगतं स्वरूपसम्बन्धरूपं
क्षणघटकमित्यभिमानेन, अन्यथा साधानतावच्छेदकस्य साध्यसम्ब-
न्धितावच्छेदकत्वेऽपि साधनतावच्छेदके उपाधिनिष्ठसाध्यसम्बन्धिता-
च्छेदकाभेदबुद्धेर्यथोक्तभ्रमत्वसम्भवात्, अत एव आचार्य्यैरपि व्याप्य-
रमपहाय साध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपवत्त्वलक्षणव्याप्तिसंक्रामकत्वमेव
ोगार्थोऽभिहितः, स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वघटितत्वेन तस्य सर्व्व-
ोलघुत्वमित्यभिमानादिति ध्येयं। नन्वेवमाचार्य्यनये धूमवान् वह्ने-
रित्यादौ महानसत्वादौ उपाधिव्यवहारः स्यात् योगार्थसत्त्वात्।
। च “सर्व्वे साध्यसमानाधिकरणा इति न्यायेन इष्टापत्तिरिति
ाच्यं। आचार्य्यैः साध्यसमव्याप्तस्योपाधित्वाभ्युपगमादित्यत आह,
क्षणान्विति रूढ्यर्थतावच्छेदकम्वित्यर्थः, तथाचोपाधिपदस्य योग-
ढत्वात् महानसत्वादौ योगार्थसत्त्वेऽपि रूढ्यर्थाभावान्नोपाधिपद-
योग(१) इति भावः। ‘साध्य-साधनेति साध्यव्यापकत्वे सतीत्यर्थः, साध्य-

(१) उपाधिव्यवहार इति ख॰, ग॰।

धा गोत्ववान् अश्वत्वादित्यादिविरुद्धस्थले साखावत्त्वादेरुपाधिपदावा-च्यत्वप्रसङ्गात्। न चैवं स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यत्र शाकपाकजत्वा-दावव्याप्तिर्दुर्वारैवेति वाच्यं। आचार्यमते साध्यसमव्याप्तस्योपाधितया तस्यानुपाधित्वात्। ननु तथाप्यत्र विशेष्यदलं व्यर्थं तदसत्त्वेऽपि असद्धेतौ साधनव्यापके साध्यव्याप्यत्वस्य योगलभ्यार्थस्याभावादेवातिप्रसङ्गभङ्गात्। न च सद्धेतौ साध्यसमव्याप्तेऽतिव्याप्तिवारणाय तदावश्यकमिति वाच्यं। तत्र हेतुतावच्छेदकस्यापि साध्यसमन्वितावच्छेदकतया स्वनिष्ठसाध्यसमन्वितावच्छेदकरूपव्याप्तिसंक्रामकत्वस्य स्वनिष्ठतादृश-व्याप्तिप्रकारकहेतुतावच्छेदकभ्रमजनकत्वरूपस्य लघुतयाचार्य्याभिम-तयोगार्थस्याभावादेवातिप्रसङ्गविरहात्। न च तत्र साध्यव्यभिचारि-हेत्वन्तरे स्वनिष्ठतादृशव्याप्तिसंक्रामकत्वसम्भवात् अतिप्रसङ्गसम्भव इति वाच्यं। स्वनिष्ठतादृशव्याप्त्यभिमततया यद्धेतुतावच्छेदकसंक्रामकत्वं तद्धेतुतावच्छेदकावच्छिन्ने स उपाधिरिति विवक्षयैव तदतिप्रसङ्गवा-रणसम्भवादिति। मैवं वह्निमान् धूमादित्यादिसद्धेतौ हेतुतावच्छे-दकसम्बन्धभिन्नसम्बन्धेन साध्यसमव्याप्ये वह्निप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वा-दावव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलस्यावश्यकत्वात् सम्बन्धभेदेन साध्यसम-न्वितत्वस्य विभिन्नतया तदवच्छेदकत्वस्यापि विभिन्नत्वेन तत्र निरुक्तता-दृशव्याप्तिसंक्रामकत्वस्य योगार्थस्य सम्भवात्। न च हेतुतावच्छेद-कसम्बन्धेन या स्वनिष्ठव्याप्तिः तत्संक्रामकत्वविवक्षयैव तत्प्रतीकार इति वाच्यं। धूमवान्वह्नेरित्यादौ धूमप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वादेर-संग्रहापत्तेरिति भावः। नन्वेवं विषमव्याप्तोऽपि तन्मते उपाधिप-दवाच्यः स्यात् रूढ्यर्थस्य सत्त्वादित्यत आह, 'विवक्षेति, 'मद्यत्ति-

निमित्ताभावादिति योगार्थाभावादित्यर्थः, यथा स्थलपद्मं न पङ्कजपदवाच्यमिति भावः। इदमापाततः यौगिकप्रवृत्तिनिमित्ताभावेऽपि केवलरूढ्यर्थमादाय उपाधिपदवाच्यत्वस्य दुर्व्वारत्वात्, न हि योगार्थविशिष्टोरूढ्यर्थः प्रवृत्तिनिमित्तः। न चैवं स्थलपद्मस्यापि पङ्कजपदवाच्यत्वापत्तिरिति वाच्यं। यदि च तद्व्यावर्त्तकं वैजात्यं न रूढ्यर्थतावच्छेदकं तदा तस्यापि दुर्व्वारत्वात्। अतएव प्रामाणिकाः तद्वारत्तं तत्र रूढ्यर्थतावच्छेदकमामनन्ति। नन्वेवं विषमव्याप्तस्योपाधिपदावाच्यत्वे दूषकतापि तस्य न स्यादित्यत आह, 'दूषकता चेति, 'तस्य' विषमव्याप्तस्य, 'व्यभिचारोन्नायकतयेति व्यभिचारित्वसम्बन्धेन तद्वत्तया साध्यव्यभिचारानुमानसम्भवादित्यर्थः, 'उपाधितेति उपाधिपदवाच्यतेत्यर्थः, तादात्म्यसम्बन्धेन तयोरपि साध्यव्यभिचारानुमापकत्वादिति भावः। 'अप्रयोजक-साध्यव्यापकव्यभिचारिणोः' अप्रयोजकत्व-साध्यव्यापकव्यभिचारित्वयोरित्यर्थः, इति केचित्। न च स्वव्यभिचारित्वेन साध्यव्यभिचारानुमापकत्वमेव तथास्तु अप्रयोजकत्वादिकन्तु न तथेति वाच्यं। योगार्थापेक्षया तस्य गुरुत्वादिति दिक्।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये विशेषव्याप्तिरहस्यं, सम्पूर्णञ्च व्याप्तिवादरहस्यं[१]।

---

(१) अतएव चतुष्टयरहस्यस्य विशेषव्याप्तिरहस्यान्तर्गतत्वेन आदर्शपुस्तकेषु पृथङ्निर्देशेऽपि अत्र न पृथङ्निर्देशः अपि तु तदन्तर्गतत्वेनैवेति।

## अथ व्याप्तिग्रहोपायः ।

सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनगम्या दर्शनानां प्रत्येकमहेतुत्वात् आशुविनाशिनां क्रमिकाणां मेलकाभावात् । न च तावद्दर्शनजन्यसंस्कारा इन्द्रियसहकृता व्याप्तिधीहेतवः प्रत्यभिज्ञायामिन्द्रियस्य तथात्व-

---

## अथ व्याप्तिग्रहोपायरहस्यम् ।

व्याप्तिस्वरूपं निरूप्य परमतनिराकरणपूर्व्वकं स्वमतेन तद्ग्रहोपायमभिधातुं प्रथमं प्राभाकरमतमुपदर्शयति, 'सेयमित्यादिना 'नैवमित्यन्तेन, 'सा' अनुमितिकारणीभूतज्ञानविषयीभूता, 'इयं' अनुपदनिरुक्ता, तथाच भूयोदर्शनं न तद्देतद्व्याप्तिप्रत्यक्षे कारणमित्यर्थः, न तु सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषय इत्यर्थः, प्राभाकरनये उपनीतभानस्य विशिष्टबुद्धौ विशेषणज्ञानहेतुत्वस्य चानभ्युपगमेन ज्ञानस्य स्वप्रकाशतया ज्ञानप्रत्यक्षं प्रति ज्ञानत्वेन हेतुत्वानभ्युपगमेन तादृशप्रत्यक्षाप्रसिद्ध्या प्रतियोग्यप्रसिद्धेः, विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानविधया तज्जन्यत्वमादाय प्रसिद्ध्यभिधाने सहचारविशिष्टवैशिष्टबोधात्मकप्रत्यक्षमादाय बाधापत्तेः । न च प्राभाकरनये सकृद्दर्शनस्य व्याप्तिग्राहकतया भूयोदर्शनमपि व्याप्तिग्राहकमेव भूयोदर्शनस्य सकृद्दर्शनानतिरिक्तत्वादिति तवापि बाधो दुर्व्वार इति वाच्यं । प्राभाकरनये सकृद्दर्शनस्यापि व्याप्त्यग्राहकत्व

कल्पनादिति वाच्यं। समानविषये स्मरणे प्रत्यभिज्ञाने च संस्कारो हेतुरतः कथं संस्कारेण व्याप्तिज्ञानं जन्येत, अन्यथातिप्रसङ्गः। किञ्च सम्बन्धभूयोदर्शनं

---

इति। न चैवं "तस्मात् सकृद्दर्शनगम्या सेत्युपसंहारविरोध इति वाच्यं। तत्र हि 'सकृद्दर्शनगम्यत्वं न सकृद्दर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयत्वं अपि तु निखिलसाध्य-साधनसम्बन्धग्रहविषयत्वमिति तत्रैव स्फुटीभविष्यति इति भावः। भूयोदर्शनानां साध्य-साधनसहचारदर्शनत्वेन जनकत्वं, भूयस्त्वविशेषितेन वा, नाद्य इत्याह, 'दर्शनानामिति, 'अहेतुत्वादिति फलानुपधायकत्वादित्यर्थः, तथाचान्वयव्यभिचार इति भावः। नान्त्य इत्याह, 'आशुविनाशिनामिति तृतीयक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगिनामित्यर्थः, 'क्रमिकाणां' विभिन्नसमयोत्पत्तिकानां, 'मेलकाभावादिति एकक्षणवृत्तित्वाभावादित्यर्थः, तथाच व्यतिरेकव्यभिचारः, सर्व्वत्रापेक्षाबुद्ध्यात्मकभूयोदर्शने मानाभावादिति भावः। क्रमिकाणां घट-पटादीनां मिलनमस्तीत्यतः 'आशुविनाशिनामित्युक्तं, आशुविनाशिनामपि युगपदुत्पन्नानां विभिन्नपुरुषीयज्ञानादीनां मिलनमस्तीत्यतः 'क्रमिकाणामित्युक्तं, आशुविनाशिनोः क्रमिकयोरपि ज्ञानद्वयोर्मिलनमस्तीत्यतो बहुवचनं। इत्थञ्च भूयोदर्शनं न व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नताप्रतियोगिककारणताश्रयः तादृशकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वादिति फलितं। विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य कार्य्यता तु तादृशधर्म्मावच्छिन्ना तादृशकार्य्यताप्रतियोगिककारणत्वञ्च विषय-

भूयःसु स्थानेषु भूयसां वा दर्शनं भूयांसि वा दर्श-नानि न यथा एकत्र रूप-रसयोर्द्रव्यत्व-घटत्वयोश्च व्याप्तिग्रहात् एकत्रैव धारावाहिके तद्दोषप्रसङ्गात्

---

विधया व्याप्तावेव प्रसिद्धं। न च साध्याविशेषः कारणतावच्छेदक-धर्म्मवत्त्वस्यैव कारणतारूपत्वादिति वाच्यं। अन्योन्याभावात्यन्ताभाव-भेदेन(१) भेदादिति ध्येयं। अत्र स्वरूपासिद्धिमाशङ्कते, 'न चेति, 'तावद्दर्शनेति भूयसां दर्शनानां जन्या भूयःसंस्कारा इत्यर्थः। तथाच भूयस्त्वविशिष्टसहचारदर्शनत्वमेव जनकतावच्छेदकं संस्कारस्य व्यापार इति भावः। 'तथात्वकल्पनादिति संस्कारसहकारित्वकल्पनादि-त्यर्थः। 'समानविषयइति तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकस्मरणे तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकः संस्कारो हेतुः तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकप्रत्यभिज्ञाने तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकसंस्कारो हेतुरित्यर्थः, यो यत्र विशिष्य-पूर्व्व-मवगतः स एव तत्र संस्कारवशात् प्रत्यभिज्ञाने भासत इति नियमात्, अत एव केवलदण्डादिगोचरसंस्कारादयं दण्डीत्यादि-प्रत्यभिज्ञानं न जायत इति मीमांसकाभिप्रायः, एतच्चोपनीतभान-मभ्युपेत्य। 'व्याप्तिज्ञानमिति, सहचारगोचरसंस्कारस्य धूमादिवि-शेष्यक-स्वव्यापकसाध्यसामानाधिकरण्यात्मकव्याप्तिप्रकारकत्वाभावा-दिति भावः। 'अन्यथेति एकविषयकसंस्कारस्यापि अन्यविषयक-ज्ञानजनकत्वे इत्यर्थः, 'अतिप्रसङ्गः' घटादिगोचरसंस्कारादपि

---

(१) तथाचे साध्यघटकानन्तपदस्य अन्योन्याभावपरत्वं हेतुघटकशून्य-पदस्यात्यन्ताभावपरत्वमतः साध्य-हेत्वोर्वैलक्षण्यं।

भूयस्त्वस्य त्रि-चतुरादित्वेनाननुगमाच्च। अपि च पार्थिवत्व-लोहलेख्यत्वादौ शतशो दर्शनेऽपि व्यभिचार-ग्रहात्, तर्कसहकृतं तथेति चेत्, तर्हि सहचारदर्शन-

---

पटादिगोचरज्ञानजननप्रसङ्ग इत्यर्थः। किं बहुना सम्बन्धभूयो-दर्शनमपि दुर्निरूपमित्यभिप्रायेण पृच्छति, 'किञ्चेति, 'किंशब्दः प्रश्ने, 'चकारो वार्थे, यत्सम्बन्धभूयोदर्शनं संस्कारद्वारा हेतुरुच्यते तदेव सम्बन्धभूयोदर्शनं वा किमित्यर्थः। ननु सम्बन्धभूयोदर्शन-पदेन भूयःसु स्थानेषु साध्य-साधनसम्बन्धभूयोदर्शनं, भूयसां वा साध्य-साधनानां सम्बन्धभूयोदर्शनं, भूयांसि वा साध्य-साधनयोः सम्बन्धदर्शनानीति वक्तव्यमित्याह, 'भूयःस्विति, 'दर्शनं' भूयःसा-ध्य-साधनसहचारदर्शनं, तथाचाधिकरणदर्शनयोरुभयोर्भूयस्त्वमिति भावः। 'भूयसां वेति भूयसां साध्य-साधनानां भूयःसहचारदर्शन-मित्यर्थः, तथाच साध्य-साधन-दर्शनानां त्रयाणां भूयस्त्वमित्यर्थः, 'भूयांसीति, 'दर्शनानि' साध्य-साधनसम्बन्धदर्शनानि, तथाच दर्श-नमात्रस्य भूयस्त्वमित्यर्थः, 'न तथा' न व्याप्तिग्राहकं, आद्ये 'एकेति एकत्रस्थितरूप-रसयोरित्यर्थः, एतद्घटवृत्तिरूपवान् एतद्घटवृत्ति-रसादित्यत्रेति भावः, न ह्येतद्रूपवान् एतद्रसादित्यत्र, तथा सति ीयेऽप्यत्रैव दोषसम्भवे स्थानान्तरानुधावनप्रयासस्य व्यर्थतापत्तेरिति । न च भूयःस्थानेषु व्यतिरेकसहचारदर्शनं तच्चापि सम्भवतीति यं। तदभावेऽपि व्याप्त्यनुभवात्। द्वितीये आह, 'द्रव्यत्वेति, एकत्र

सहकृतः स एव व्याप्तिग्राहकोऽस्तु आवश्यकत्वात् किं भूयोदर्शनेन। न च तेन विना तर्क एव नावतरति, प्रथमदर्शने व्युत्पन्नस्य तर्कसम्भवात्। न चैवमे-

---

घट एव पाकजरूप-रसानां भूयस्त्वादुक्तस्थलमुपेक्षितं। तृतीये त्वाह, 'एकत्रैवेति एकस्मिन्नेव महानसे धारावाहिकसहचारज्ञाने इत्यर्थः, संस्कारद्वारा भूयसां दर्शनानां सत्त्वादिति भावः। कदाचिदिष्टापत्तिसम्भवादाह, 'भूयस्त्वस्येति, 'त्रि-चतुरादित्वेनेति त्रित्व-चतुष्ट्वादिरूपत्वेनेत्यर्थः। ननु बहुत्वमेव भूयस्त्वं त्रित्वमेव वा चतुरादिदर्शनेऽपि त्रिकदर्शनसत्त्वेन व्यभिचाराभावादित्यत आह, 'अपि चेति, तथाचान्वयव्यभिचार इति भावः। "तर्कसहकृतमिति तर्कसहकृतं भूयोदर्शनं संस्कारद्वारा व्यभिचारज्ञानं निवर्त्त्य व्याप्तिधीहेतुरित्यर्थः, 'स एव' तर्क एव, 'भूयोदर्शनेनेति भूयस्त्वघटितकारणतावच्छेदकेनेत्यर्थः। भूयोदर्शनस्य तर्कप्रयोजकत्वमाशङ्क्य निराकरोति, 'न चेति, 'व्युत्पन्नस्येति शब्दादितस्तर्कमूलीभूतापाद्यापादकव्याप्तिज्ञानवत इत्यर्थः। इष्टापत्तिमाशङ्कते, 'न चैवमेवेति व्यभिचारादर्शन-सहचारदर्शनसहकृतः तर्क एव व्याप्तिग्राहकोऽस्त्वित्यर्थः। शङ्कते, 'जातमात्रस्येति स्तनपानं सुखसाधनं तदनन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् यत् यदनन्यथासिद्धान्वय-व्यतिरेकानुविधायि तत् तत्साधनमितीष्टसाधनतानुमितिजनकव्याप्तिज्ञानमित्यर्थः, 'तर्कं विनेवेति 'इवशब्दः सादृश्यार्थः, तथाच तत्तद्व्याप्तिज्ञानं यथा तर्कं विना तथा सर्व्वत्रैव मूलीभूतयत्किञ्चित्तर्कजनकीभूत-

वास्तु, तर्कस्य व्याप्तिग्रहमूलकत्वेनानवस्थानात्। जात-मात्रस्य प्रवृत्ति-निवृत्तिहेत्वनुमितिजनकव्याप्तिज्ञानं तर्कं विनैवातोनानवस्थेति, चेत्,[१] तर्हि व्यभिचारात्

व्याप्तिप्रत्यक्षं तर्कं विनैवातो नानवस्था इत्यर्थः। यथाश्रुते जातमात्र-बालकीयव्याप्तिस्मरणस्य विना तर्कमुत्पादेऽपि तन्मूलभूतजन्मा-न्तरीयव्याप्त्यनुभवस्य तर्कसापेक्षत्वात् अनवस्थातादवस्थ्यात् अत्रानव-स्थापरीहारेऽपि वह्नि-धूमादिव्याप्तिग्रहस्थले[२] अनवस्थातादवस्थ्यात्

(१) 'विनेवेत्यत्र 'विनैवेति कस्यचित् मूलपुस्तकस्य पाठः।

(२) वह्निमान् धूमादित्यादौ व्याप्तिग्रहस्थले इति ख०। 'सेयं व्याप्ति-र्न भूयोदर्शनगम्येत्यादिमूलं मथुरानाथेन यद्व्याख्यातं तच्चेदं विवेचनीयं। सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनगम्या इति भूयोदर्शनं न तदेतद्व्याप्तिप्रत्यक्षे कारणमित्यर्थः, न तु सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषय इत्यर्थः विशे-षणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानविधया तज्जन्यत्वमादाय प्रसिद्ध्यभिधाने सञ्च-चारविशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकप्रत्यक्षमादाय बाधापत्तेरिति मथुरानाथः। ननु भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयो न इत्यत्र विषयत्वपदेन मुख्यविशेष्य-त्वमेव वक्तव्यं तथाच व्याप्तौ धर्म्मिणि तादृशप्रत्यक्षीयमुख्यविशेष्यत्वाभाव-सत्त्वात् कथं बाधापत्तिरित्युक्तं, मुख्यविशेष्यत्वञ्च प्रकारत्वान्यविषयत्वं, तथाच पर्वतादौ तत्प्रसिद्धिः। न च वह्निसमानाधिकरणधूमवान् पर्वतः धूमव्यापकवह्निसामानाधिकरण्यञ्च धूमवृत्ति इति समूहालम्बनतादृश-बोधात्मकप्रत्यक्षमादाय बाधापत्तिसङ्गतिः धूमव्यापकवह्निसामानाधिक-रण्यरूपव्याप्तेर्धूमवृत्तित्वांशे मुख्यविशेष्यविधयैव भानात् इति वाच्यं। भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयो न इत्यनेन भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षीयमुख्यविशे

ष्यतानिरूपितप्रकारत्वाभावस्य विवक्षणीयत्वात् तथाच तादृशसमूहाल-म्बनप्रत्यक्षीयमुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारत्वं धूमनिष्ठं धूमत्वत्वनिष्ठञ्च तदभावस्य व्याप्तौ सत्त्वात् न बाधः। न च तथापि वह्निसमानाधिकरण-धूमवान् पर्वतः धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणश्च धूम इति समूहालम्बन-मादाय धूमनिष्ठमुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारत्वस्य सामानाधिकरण्येऽपि सत्त्वाद्बाधापत्तेर्नासङ्गतिरिति वाच्यं। भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदकीभूतमुख्यवि-शेष्यतानिरूपितप्रकारत्वाभावस्य न भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयत्वमित्यनेन विवक्षितत्वात् तथाच भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदकं वह्निसामानाधिकरण्य-विशिष्टधूमप्रकारकबुद्धित्वं निरूपकत्वसम्बन्धेन सहचारविशिष्टधूमनिष्ठप्र-कारतापि ज्ञानजन्यतावच्छेदिका जन्यतावच्छेदकतायाः पर्य्याप्त्यविवक्षणात्, एवञ्च भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदकमुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारता धूमादे-रेव तदभावस्य व्याप्तौ सत्त्वान्न बाधः इति चेत्। न। सहचारविशिष्टप्रका-रकबुद्धित्वं न सहचारप्रकारकज्ञानजन्यतावच्छेदकं पर्वते धूमः धूमे च वह्निसामानाधिकरण्यमिति विशेष्ये विशेषणमिति रीत्या जायमानस्य वह्निसमानाधिकरणधूमवान् पर्वत इति प्रत्यक्षस्य धूमधर्म्मिकसामानाधि-करण्यप्रकारकज्ञानं विनापि उत्पादेन व्यभिचारापत्तेः, किन्तु वह्निसमाधि-करणधूमवान् पर्वत इति विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धौ धूमविशेषणतापन्नवह्निसामानाधिकरण्यमपि स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकसंयोगवत्तासम्बन्धेन पर्वतांशे भासते उक्तविशेष्ये विशेषणमिति रीत्या बोधे च तादृशसम्बन्धेन सामानाधिकरण्यं न भासते इति धूमविशेषणतापन्नसामानाधिकरण्यनि-ष्ठोक्तपरम्परासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारताकबुद्धित्वमेव जन्यतावच्छेदकं तथाच न व्यभिचारः, एवञ्च भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदिका उक्तपरम्परासम्बन्धावच्छि-न्नधूमनिरूपितविशेषणतापन्नसामानाधिकरण्यनिष्ठप्रकारता सा च पर्वत-निष्ठमुख्यविशेष्यतानिरूपितापि इति तादृशप्रकारत्वाभावस्य व्याप्तावसत्त्वेन बाधः सुस्थिर एव।

इत्यञ्च भूयोदर्शनं न व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नकार्य्यताणि-

रूपितकारणताश्रयः तादृशकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वात् इति फलितं इति मथुरानाथः। न च व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिकार्य्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वात्तादृशकार्य्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वादित्यस्यैव सम्यक्त्वे हेतु-साध्ययोर्धर्म्मावच्छिन्नत्वदलं विफलमिति वाच्यं। सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धित्वावच्छिन्नकार्य्यताया नानात्वे धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणधूमवान् इति सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबोधात्मकव्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिकार्य्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकरूपस्य पक्षावृत्तितया तादृशकार्य्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वस्य पक्षेऽसत्त्वात् स्वरूपासिद्ध्यापत्तेः अतो हेत्वंशे धर्म्मावच्छिन्नत्वदलं सफलं, साध्यांशे च तादृशसहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबोधात्मकव्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिकार्य्यतानिरूपितकारणताश्रयभिन्नत्वस्य पक्षेऽसत्त्वाद्बाधापत्तिरतो धर्म्मावच्छिन्नत्वदलं निवेशनीयं। धर्म्मावच्छिन्नत्वदलनिवेशे तु तादृशधर्म्मपदेन व्याप्तिप्रत्यक्षत्वमेव लभ्यते न .तु सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धित्वं। तस्य व्याप्तिप्रत्यक्षेतरत् यत् वह्निसमानाधिकरणधूमवान् इत्याकारकप्रत्यक्षादिकं तत्र वृत्तित्वात्। न च मात्रपदनिवेशो विफल इति वाच्यं। सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबोधात्मकव्याप्तिप्रत्यक्षावृत्ति यत् सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धित्वं तद्धर्म्मावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वस्य पक्षावृत्तित्वेन स्वरूपासिद्धेस्तादवस्थ्यात् साध्यांशे मात्रपदानिवेशे तु तादृशविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धित्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणताश्रयभिन्नत्वस्य पक्षावृत्तित्वेन बाधापत्तिरत उभयत्रैव मात्रपदमवश्यं निवेशनीयं, तथाच सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धित्वन्तु न तथा तस्य व्याप्तिप्रत्यक्षेतरयत् वह्निसमानाधिकरणधूमवान् इत्यादि प्रत्यक्षादिकं तत्र वृत्तित्वात्। न चैवमपि हेतु-साध्ययोः व्याप्तिपदं व्यर्थमिति वाच्यं। मीमांसकमते ज्ञानस्य स्वप्रकाशतया धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणधूमवान् पर्वतः वह्निसमानाधिकरणत्वेन धूममहं जानामि इत्याकारकसमूहालम्बनप्रत्यक्षमादाय सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबु-

द्वित्वस्य प्रत्यक्षमात्रवृत्तितया तद्धर्म्मावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वस्य पक्षावृत्तित्वेन स्वरूपासिद्ध्यापत्तेः, साध्यांशे तदनिवेशे चोक्तरीत्या तादृशधर्म्मपदेन सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धित्वस्य ग्राह्यतया तद्धर्म्मावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणताश्रयभिन्नत्वस्य पक्षावृत्तितया बाधापत्तिरिति व्याप्तिपदनिवेशः सफल इति ग्रन्थकृतोऽभिप्रायः। अत्रेयमापत्तिः। भूयोदर्शनं न तदेतद्व्याप्तिप्रत्यक्षे कारणमित्युक्तौ यथाश्रुतं कार्य्यतावच्छेदकविधया व्याप्तिप्रत्यक्षत्वमेव भासते तथाच व्याप्तिप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणतानाश्रयत्वस्य साध्यत्वे जरन्नैयायिकमतनिरासासम्भवात् कथं व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नत्वेन कार्य्यता विशेषणीयेति। अत्र केचित् व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नेत्यादिना व्याप्तिप्रत्यक्षवृत्तिवैजात्यावच्छिन्नकार्य्यतायाः परिग्रहः तथाच व्याप्तिप्रत्यक्षवृत्तिवैजात्यावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणतानाश्रयत्वस्यापि संग्रह इति प्राहुः।

अपरे तु व्याप्तिप्रत्यक्षत्वं व्याप्तिविषयकत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वं तथाच व्याप्तिप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणतानाश्रयत्वस्य साध्यत्वे प्रत्यक्षत्वविशिष्टव्याप्तिविषयकत्वावच्छिन्नं प्रति भूयोदर्शनं हेतुरिति जरन्नैयायिकमतस्य निराकरणायोगात्। व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणतानिवेशे तु प्रत्यक्षत्वविशिष्टव्याप्तिविषयकत्वस्यापि प्रत्यक्षमात्रवृत्तितया तदवच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणताश्रयभिन्नत्वमपि लभ्यत इति स्थितं।

नव्यास्तु व्याप्तित्वस्यैकस्याभावात् अत्र सा इत्यनेन व्यापकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तित्वेन निवेशे तस्मात् सकृद्दर्शनगम्या सा इत्युपसंहारेऽपि सा इत्यनेन तस्यैव परामर्शेन तथा ह्युपाध्यभावो व्याप्तिरित्यनेन उपाध्यभावरूपव्याप्तेः सकृद्दर्शनगम्यत्वोपादानविरोधः, उपाध्यभावरूपव्याप्तित्वेन प्रवेशे तच्चानौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञानहेतुरिति मूलविरोधः उपाध्यभावरूपव्याप्तिप्रत्यक्षं प्रति उपाध्यभावज्ञानकारणत्वस्य केनाप्यनङ्गीकारात्,

किन्तु अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणतया व्याप्तेः प्रवेशः, एवं सति उपक्रमोपसंहारस्य एकधर्म्मावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वनियमोऽपि सङ्गच्छते । तथाच तस्मात् सहदर्शनगम्या सा इत्यत्र सा इत्यनेन अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणत्वेन मीमांसकाभिमततायाः उपाध्यभावरूपव्याप्तेः परामर्शात्तयाप्युपाध्यभावो व्याप्तिरिति विवरणमपि सङ्गच्छते, सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनगम्येत्यत्र सा इत्यनेन अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणत्वरूपेण व्यापकसामानाधिकरण्यव्याप्तेः परामर्शात् नन्वनौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञाने हेतुरिति मूलमपि सङ्गच्छते । एवञ्चेहानुमितिजनकतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणविषयकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणतानाश्रयत्वस्य साध्यत्वं वक्तव्यं तच्च न सम्भवति जरन्नैयायिकमतेऽपि व्यापकसामानाधिकरण्यविषयकप्रत्यक्षत्वमेव भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदकं न त्वनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणविषयकप्रत्यक्षत्वं प्रमेयत्वादिना व्याप्तिग्रहे व्यभिचारापत्तेः' भूयोदर्शनपदार्थस्य साध्य-साधनभेदेन भिन्नतया आलोकधर्म्मिकव्याप्तिग्रहस्यापि अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणविषयकतया तत्र वह्नि-धूमसहचारग्रहात्मकभूयोदर्शनविरहेण व्यभिचारापत्तेश्च, तथाच अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणविषयकपत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणताप्रवेशेऽप्रसिद्धिः अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणविषयकप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वप्रवेशे तु व्यापकसामानाधिकरण्यविषयकप्रत्यक्षत्वस्य तादृशप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वान्नाप्रसिद्धिरित्यभिप्रायेणैव मात्रवृत्तीत्युक्तं इति भावः । ननु व्याप्तिप्रत्यक्षत्वं व्याप्तिविषयकत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वं तस्य च प्रत्यक्षत्वानतिरिक्ततया घटप्रत्यक्षेऽपि वृत्तित्वेन व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वाभावादेव व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणत्वाभावसाधने प्रतियोग्यप्रसिद्ध्या इदमसङ्गतं । अत्रेदमुत्तरं । व्याप्तिविषयकत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नभेदव्यापकभेदप्रतियोगितावच्छेदकं व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्म्मपदेन विवक्षितमतो न काप्यनुपपत्तिरिति ।

तादृशकार्य्यतानिरूपितकारणत्वस्य विषयविधया व्याप्तावेव प्रसिद्धमिति मथुरानाथः। इदञ्च विषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्येन व्याप्तिर्हेतुरित्यभिप्रायेण। ननु जरन्नैयायिकमते समवायसम्बन्धेन व्याप्ति-प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति समवायसम्बन्धेन भूयोदर्शनस्य हेतुत्वात् भूयोदर्श-नधर्म्मिकतत्सम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वाभावसाधनद्वारा तन्मतनिरासमिच्छता मीमांसकेन कथं तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नस्य व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्म्मा-वच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणत्वस्य व्याप्तौ प्रसिद्धिः कृता। न चैवं तादा-त्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वाभाव एव साध्य इति वाच्यं। तादात्म्यसम्ब-न्धावच्छिन्नकारणत्वाभावस्य जरन्नैयायिकमतेऽपि भूयोदर्शने सत्त्वात् सिद्ध-साधनापत्तेः। न च व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितका-रणतानाश्रय इत्यनेन सम्बन्धसामान्येन कारणत्वसामान्याभाव एव साध्य-स्तथाच यत्किञ्चित्सम्बन्धेन यत्किञ्चित्कारणताप्रसिद्धिसम्भवात् तत्सम्भवः, नापि सिद्धसाधनावतारः जरन्नैयायिकेन सम्बन्धसामान्येन कारणत्वसामा-न्याभावस्य साधयितुमशक्यत्वात् तन्मते भूयोदर्शने यत्किञ्चित्समवायसम्ब-न्धेन यत्किञ्चित्कारणतायाः सत्त्वात् इति वाच्यं। कारणतायाः कार-णतावच्छेदकसम्बन्धत्वमवश्यं वक्तव्यं अन्यथा हेतु-साध्ययोर्विभिन्नतया साध्या-विशेषभिया अत्यन्ताभावान्योन्याभावभेदेन भिन्नत्वमिति यदुक्तं मथुरानाथेन तद्विफलं स्यात्, तथाच तादृशकारणत्वस्य कार्य्याव्यवहितप्राक्क्षणा-वच्छेदेन कार्य्यतावच्छेदकसम्बन्धेन कार्य्याधिकरणवृत्त्यभावीयकारणतावच्छे-दकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकधर्म्मवत्त्वं तस्य च सम्बन्धभेदेन भिन्नतया विषयतासम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षाधिकरणवृत्तिभेदीयतादात्म्यसम्ब-न्धावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकधर्म्मवत्त्वं जरन्नैयायिकमते तु समवायस-म्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षाधिकरणवृत्त्यत्यन्ताभावीयसमवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रति-योगितानवच्छेदकधर्म्मवत्त्वरूपं तथाचैतदुभयसाधारणानुगतकारणत्वा-त्वाप्रसिद्धिः। अत्रेदमुत्तरं। निरुक्तोभयरूपकारणतायां अन्यतरत्वमनु-गतीकृत्य सम्बन्धसामान्येन अन्यथासिद्धानिरूपकतादृशान्यतरत्वावच्छिन्न-

प्रतियोगिताकान्यतरसामान्याभाव एव साध्यते, तथाचान्यतरस्य यत्-किञ्चित्तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नत्वसम्भवेनापि तत्सम्भव इति, नापि सिद्ध-साधनमिति जरन्नैयायिकेन एतदन्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः साधयितुं न शक्यते भूयोदर्शने तादृशान्यतरीभूतत्वस्य समवायसम्बन्धाव-च्छिन्नकारणत्वादिति ध्येयं।

तादृशकारणत्वञ्च विषयतया व्याप्तावेव प्रसिद्धमिति, इदन्तु विषयता-सम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षं प्रति तादात्म्येन व्याप्तिर्हेतुरित्यभिप्रायेणोक्तं। ननु धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणो धूम इत्याकारकव्याप्तिप्रत्यक्षस्य व्याप्तिघट-कप्रत्येकपदार्थधूमादावपि विषयतासम्बन्धेन जायमानतया तत्र तादात्म्येन व्याप्तेरभावाद्व्यभिचारापत्तिः तस्माद्व्याप्तिनिष्ठविषयतासम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्ष-त्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्येन व्याप्तेर्हेतुत्वं वाच्यं, तथाच तादृशधूमादौ तादृश-सम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षानुत्पादान्न व्यभिचारः, एवं सति कार्य्य-कारणभावे व्याप्तिप्रत्यक्षमित्यत्र व्याप्तिपदं विहाय तादृशसम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्येन हेतुत्वं वक्तव्यं, तथा सति व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्म्मावच्छिन्न-कार्य्यतानिरूपितकारणत्वाभावसाधने प्रतियोग्यप्रसिद्धिस्तदवस्थैवेति तादृ-शसम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वस्य कार्य्यतावच्छेदकतया तस्य व्याप्तिप्रत्यक्षेतरघटादि-प्रत्यक्षवृत्तितया व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वविरहात् व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्ति-धर्म्मावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणत्वाप्रसिद्धेः। अत्रेदं सिद्धान्तितं। विषय-तासम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्येन व्याप्तेर्हेतुत्वं वाच्यं। न च तादृशधूमादौ विषयतया व्याप्तिप्रत्यक्षं जायते येन तत्र तादात्म्येन व्याप्तेर-भावात् व्यभिचारावकाश इति वाच्यं। व्याप्तिप्रत्यक्षत्वस्य व्याप्तिविषयकत्व-विशिष्टप्रत्यक्षत्वात्मकतया विषयतया तद्धर्म्मावच्छिन्नाधिकरणताया अति-रिक्तत्वात् विषयतया तादृशञ्च व्याप्तावेव जायते न तु धूमादाविति स्थितं।

स्तनपानं सुखसाधनं सुखानन्यथासिद्धत्वे सति सुखान्वयव्यतिरेकानुविधा-यित्वात् यद्यदनन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेकानुविधायि तत्तत्साधनमिति व्याप्ते-

24

ध्याने तर्कापेक्षाविरहादनवस्था निरस्ता। अत्र सुखानन्यथासिद्धत्वञ्च न सुखान्यथासिद्धत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदः यावत्सुखान्यथासिद्धसाधारणसुखान्यथासिद्धत्वस्यानुगतस्याभावात्, किन्तु सुखान्वय-व्यतिरेकानुविधायितावच्छेदकीभूतयद्यद्धर्म्मावच्छिन्ने सुखस्याकारणत्वव्यवहारः प्रामाणिकानां तत्तद्धर्म्मावच्छिन्नं यद्यत् तत्तद्व्यक्तिभिन्नत्वं, सुखान्वय-व्यतिरेकाननुविधायिघटादीनां विशेष्यदलेनैव वारणसम्भवात्तेषां तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकानन्तभेदनिवेशेन वारणे गौरवमतो यद्यद्धर्म्मेऽवच्छेदकान्तं। विशेष्यदलार्थस्तु स्वाव्यवहितपूर्वकालवृत्तित्वे सति अवच्छेदकतासम्बन्धेन स्वाधिकरणदेशावच्छेदेन स्वाव्यवहितपूर्वकालावृत्त्यभावप्रतियोगितावच्छेदकधर्म्मवत्त्वं न तु सुखाव्यवहितपूर्वकालवृत्तित्वे सति सुखाधिकरणीभूतदेशावच्छेदेन सुखाव्यवहितपूर्वकालवृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्म्मवत्त्वमर्थः, तथा सति साध्याविशेषापत्तिरिति। स्वपदं सुखपरं, यथाश्रुतसुखान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वस्य स्तनपानेऽसत्त्वात् स्वरूपासिद्ध्यापत्तिः, एवञ्च सत्ताशरीरत्वादिजात्यामपि विशेष्यदलसत्त्वात् तत्र सुखसाधनत्वासत्त्वेन व्यभिचारः अतोऽनन्यथासिद्धत्वान्तं, प्रलयादीनामभावस्य सुखाव्यवहितपूर्वकाले व्याप्यवृत्तितया न सुखाधिकरणदेशः अवच्छेदक इति स्वाधिकरणदेशावच्छेदेन स्वाव्यवहितपूर्वकालवृत्तिर्यस्तदन्यत्वं प्रलयाभावस्याक्षतमिति तत्प्रतियोगितावच्छेदकप्रलयत्वमादाय प्रलये अतिप्रसङ्गः अतो विशेष्यदलघटकीभूतसत्यन्तं, सुखाव्यवहितपूर्वकालवृत्तिघटादिषु व्यभिचारवारणाय विशेष्यदलघटकविशेष्यदलं, तथाच स्वाव्यवहितपूर्वकालेऽवच्छेदकतासम्बन्धेन स्वाधिकरणशरीरावच्छेदेन घटाभावस्य सत्त्वान्न व्यभिचारः। स्तनपानाभावस्यापि स्वाव्यवहितपूर्वकाले देशान्तरावच्छेदेन सत्त्वात् न तत्र विशेष्यदलघटकविशेष्यनिर्वाहः अतः स्वाधिकरणदेशावच्छेदेनेति। स्वाधिकरणत्वञ्च अवच्छेदकतासम्बन्धेन, सुखं प्रति स्तनपानस्य हेतुतायां कार्य्यतावच्छेदकत्वं कारणस्य तु समवायः प्रत्यासत्तिरिति ध्येयं। वस्तुतः तदन-

सोऽपि न व्याप्तिग्रहे हेतुः। न च तद्‌ग्रहावधान्तर-मस्तिरस्ति। सामान्यप्रत्यासत्त्या सर्व्वोपसंहारादविनाभावग्रहः, सामान्यरूपता च सकृद्दर्शनगम्येति भूयोदर्शनापेक्षेति चेत्। न। सामान्यस्य हि प्रत्यासत्तित्वं लाघवात् न तु सामान्यतया ज्ञातस्य तदनभ्युपगमाच्च।

---

'तर्हि व्यभिचारादित्याद्यग्रिमग्रन्थासङ्गतेस्तु व्याप्तिप्रत्यक्षं प्रत्येव तर्कस्य हेतुतया जातमात्रबालकीयव्याप्तिज्ञानस्य स्मरणरूपतया व्यभिचारासम्भवात्। न च 'विनैवेतिपाठेऽपि एवशब्द इवार्थे, तथाच पूर्व्वोक्त एवार्थ इति वाच्यं। एवशब्दस्य इवार्थकत्वे पूर्व्वस्वरविलोपापत्तेः "एवे इवार्थे" इति परिशिष्टानुशासनात्, इवार्थोऽवधारणेतरार्थः, "एवेऽनवधारणे" इति व्याकरणान्तरीयानुशासनैकवाक्यत्वात्। तर्हीति यत्किञ्चित्तर्कजनकीभूतव्याप्तिप्रत्यक्षस्य तर्कं विनाप्युत्पादइत्यर्थः, 'सोऽपि' तर्कोऽपीत्यर्थः, अनादित्वेनैतत्परिहारस्त्वग्रे वक्ष्यते। ननु तर्कजन्यव्याप्तिबुद्धिषु वैजात्यं वर्त्तते तदेव तर्कजन्यतावच्छेदकं। न च चाक्षुषत्वादिना सङ्करः, चाक्षुषत्वादिव्याप्यनानाजातिस्वीकारात् कार्य्यतावच्छेदकस्याननुगमस्यादोषत्वादित्यत आह, 'न चेति,

---

यथासिद्धान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वमित्यस्य स्वान्वयप्रयोजकान्वयप्रतियोगित्वे सति स्वानुत्पादप्रयोजकीभूताभावप्रतियोगित्वमिति समुदायदलस्य निष्कृष्टार्थः। अन्वयप्रयोजकत्वं स्वरूपसम्बन्धविशेषः, तथाच प्रकृते सगुणागमादौ सुखान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वमक्षतमेवेति।

न च काकतालीयत्वादिशङ्काव्युदासार्थं द्वितीयादिदर्शनापेक्षेति वाच्यं। द्वितीयादिदर्शनेऽपि शङ्कातादवस्थ्यात्। नन्वनौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञाने हेतुः तद्देश-काल-तथावस्थितघटादीनां(१) उपाधित्वशङ्कानिरासः कस्यचित् साधनव्यापकत्वज्ञानेन कस्यचित् साध्याव्यापकत्वज्ञानेन स्यात् तच्च भूयोदर्शनं विना नावत-

'तद्बुद्धौ' तज्जन्यव्याप्तिबुद्धौ, 'जातिरस्तीति, मानाभावात् तर्कस्य हेतुत्वासिद्धिरिति भावः। माभूत् भूयोदर्शनं कारणं तथापि क्वचिदुपयुज्यत एवेत्यभिप्रायेण शङ्कते, 'सामान्येति, एवमुत्तरत्र सर्व्वत्रापि, 'सर्व्वोपसंहारादिति सर्व्वेषां साध्यानां साधनानां ज्ञानादित्यर्थः, 'सामान्यरूपतेति, सामान्यलस्यानेकवृत्तित्वरूपत्वादिति भावः। इदञ्च सामान्यत्वेन ज्ञातं प्रत्यासत्तिरित्यभिप्रायेण। न चैतावतापि अनेकव्यक्तीनां धूमादीनां ज्ञानस्यापेक्षा सिद्धा न तु सहचारभूयोदर्शनापेक्षेति वाच्यं। सामान्यतोऽस्यानेकदर्शनमात्रापेक्षाव्यवस्थापकत्वात् एवमुत्तरत्रापि। 'सामान्यस्य' सामान्यज्ञानस्य, 'तदिति सामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्यनभ्युपगमाच्चेत्यर्थः। 'काकतालीयत्वादिशङ्का' साध्य-साधनसहचारस्यैतन्मात्रस्थलीयत्वशङ्का, 'आदिपदात् चिरस्थलीयत्वादिपरिग्रहः। 'अनौपाधिकत्वज्ञानं' उपाध्यभाव-

(१) तद्देश-काल-तथावस्थितघटादीनामित्यत्र तथेतिपदं व्यर्थं, तद्देश-काल-तत्सदवस्थितघटादीनामित्येव समीचीनः पाठो भवितुमर्हति।

रतीति चेत्। न। अयोग्योपाधिव्यतिरेकस्यानुमानाधीनमानत्वेनानवस्थापातात्। अथ साध्य-साधनसहचरितधर्म्मान्तराणामुपाधित्वसंशये न व्याप्तिग्रहः अतस्तेषामनुपाधित्वज्ञानं भूयोदर्शनाधीनसाध्याव्यापकत्वज्ञाने सतीत्येतदर्थं भूयोदर्शनापेक्षा, अत एव

---

निश्चयः, 'तद्वेति साध्यवद्वृत्तौ साध्याव्यापकत्वज्ञानञ्च न तच्छून्यसाध्याधिकरणान्तरज्ञानं विनेत्यर्थः। 'अयोग्येति, तथाच अनौपाधिकत्वज्ञानं न व्याप्तिधीहेतुरिति भावः। ननु माभूत् अनौपाधिकत्वनिश्चयो हेतुः उपाधित्वशङ्काविरहस्य हेतुरेव तावतैव भूयोदर्शनापेक्षा सिद्धेत्याशङ्कते, 'अथेति, 'अत इति, अनुपाधिकत्वज्ञानं विना सन्देहानिवृत्तिरिति भावः। 'यावतेति अनुपाधित्वनिश्चायकदर्शनत्वेन हेतुत्वमिति भावः। ननु उपाधित्वशङ्कायाः प्रतिबन्धकत्वे हि अनुपाधित्वनिश्चयापेक्षा स्यात्तदेव च न विरोध्यविषयकत्वात् इत्याह, 'यद्यपि चेति, 'तदाहितः' तज्जन्यः। यद्यप्येवमपि तत्र स्वतः सिद्ध उपाधिशङ्काविरहस्तत्र भूयोदर्शनस्यापेक्षा वृथैव तथापि स्फुटत्वादिदमुपेक्ष्य दूषणान्तरमाह, 'अयोग्येति, तथाच तत्संशयस्याप्रतिबन्धकत्वमेवावश्यं वाच्यमिति भावः। 'स च नेति, भूयोदर्शनेऽपि अयोग्योपाधिशङ्कातादवस्थ्यादनुमानस्य चानवस्थायस्तत्वादिति भावः। किञ्च भूयोदर्शनजन्यसंस्कारस्य मानसेतरव्याप्तिप्रत्यक्षत्वं कार्य्यतावच्छेदकं सामान्यतो व्याप्तिप्रत्यक्षत्वं वेति

यावता दर्शनेन तन्निश्चयस्तावद्भूयोदर्शनं हेतुरिति न वारसंख्यानियमो न वाननुगमः। यद्यपि चान्यस्य साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वसंशयो नान्यव्याप्ति-ग्रहप्रतिबन्धकस्तथापि तदाहितव्यभिचारसंशयः प्रति-

---

विकल्प्य दूषयति 'अपि चेति, 'न बहिरिन्द्रियसहकारी' न बहिरिन्द्रियमात्रसहकारी, न मानसेतरव्याप्तिप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति जनक इति यावत्। 'तद्व्यापारं विनापीति भूयोदर्शनजन्यसंस्काररूपव्यापारं विनापीत्यर्थः, 'व्याप्तिग्रहात्' मानसव्याप्तिग्रहप्रसङ्गात्। 'नापि', 'मनसः' मनसोऽपि, मानसप्रत्यक्षं प्रत्यपीति यावत्, जनक इत्यनुषज्यते। संस्कारजन्यत्वे व्याप्तिप्रत्यक्षस्य स्मृतित्वापत्तेः संस्कारस्य तत्र न हेतुत्वं किन्तु तज्जन्यस्मरणस्येत्यपि मतं दूषयितुमाह, 'तज्जन्यस्मरणस्य वेति, 'प्रमाणान्तरत्वापत्तेः' यदसाधारणं सहकार्यासाद्य मनोबहिर्गोचरां प्रमां जनयति तस्य प्रमाणान्तरत्वादिति भावः। न च प्रमाणान्तरत्वं प्रत्यक्षादिभिन्नप्रमाणत्वं तच्चाप्रसिद्ध(१)मिति वाच्यं। मानसज्ञानाकरणत्वे सति प्रमाकरणत्वापत्तेरित्यर्थात्। प्राभाकरमतमुपसंहरति, 'तस्मादिति भूयस्त्वविशिष्टसाध्य-साधनसहचारज्ञानत्वस्य व्याप्तिप्रत्यक्षकारणतावच्छेदकत्वादित्यर्थः, 'परिशेषेणेति, 'सा' व्याप्तिः। यद्यपि सकृद्दर्शनजन्यप्रत्यक्ष-

(१) मानसज्ञानकरणत्वातिरिक्तप्रमाकरणत्वापत्तेरिति निष्कृष्टार्थः।

बन्धक इति तद्विधूननमावश्यकमिति चेत्। न। अयोग्योपाधिसंशयाधीनव्यभिचारसंशयस्य तथाप्यनुच्छेदात् स च न भूयोदर्शनाभ्याप्यनुमानादित्युक्तम्। अपि च भूयोदर्शनाहितसंस्कारो न बहिरिन्द्रियसह-

---

विषयत्वरूपस्य सकृद्दर्शनगम्यत्वस्य साध्यत्वे मीमांसकनये बाधः(१) तन्मते साध्य-साधनसम्बन्धज्ञानस्यैव व्याप्तिज्ञानत्वेन तस्य तज्जन्यत्वाभावात्। न च साध्य-साधनसम्बन्धविशिष्टप्रत्यक्षस्य साध्य-साधनसम्बन्धज्ञानजन्यत्वाच्च बाध इति वाच्यं। तन्मते विशिष्टबुद्धौ विशेषणज्ञानस्याहेतुत्वात् नव्यनैयायिकमते सिद्धसाधनाच्च तन्मतेऽपि व्यभिचारज्ञानानवतारे प्रथमदर्शनेनापि व्याप्तिग्रहात्। तथापि साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वं साध्यं(२)। न च न्याय-

---

(१) न च तन्मते भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षाप्रसिद्ध्या भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्ष-विषयत्वाभावसाधने पूर्वं यथा साध्याप्रसिद्धिरुक्ता तथात्रापि सकृद्दर्शन-जन्यप्रत्यक्षाप्रसिद्ध्या साध्याप्रसिद्धिः सम्भवति कथं तन्नोक्त्वा बाध उक्त इति वाच्यम्। पूर्ववदिहापि यदि सकृद्दर्शनं पक्षीकृत्य व्याप्तिप्रत्यक्षकारणत्वं मीमांसकैः साध्यते तदा व्याप्तिप्रत्यक्षकारणत्वस्य [illegible] तथा व्याप्तौ सिद्धिसम्भवात् न साध्याप्रसिद्धिरतो बाधः उक्तः।

(२) विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धिं प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य कारणतावादिनैयायिकमते साध्यसामानाधिकरण्यविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबोधात्मकसकृद्दर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयत्वस्य व्याप्तौ सत्त्वेन बाधाभावेऽपि नव्यनैयायिकमते व्यभिचारज्ञानानवतारे सकृद्दर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयत्वस्य व्याप्तौ सत्त्वात् सिद्धसाधनापत्तेरतः साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्-

मतेऽपि व्याप्तेः साधनतावच्छेदकानतिरेकितया साध्यसामानाधि-
करण्यानतिरेकितया वा सिद्धसाधनमिति वाच्यं। मणिकृतैव

---

कारत्वव्यापकविषयिताकत्वं व्याप्तौ साधितं। यद्यपि साध्य-साधनसम्बन्ध-
साक्षात्कारत्वसमानाधिकरणविषयिताकत्वं व्याप्तौ साध्यते तदा धूमव्या-
पकवह्निसमानाधिकरणो धूम इत्याकारकसाध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्का-
रविषयत्वस्य व्याप्तौ नव्यनैयायिकमते सत्त्वात् सिद्धसाधनतादवस्थ्यमतः
साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वं निवेशितं, तथाच
धूमो वह्निसमानाधिकरण इति साक्षात्कारेऽपि तादृशसाक्षात्कारत्वस्य
सत्त्वात् तत्र विशिष्टवह्निसामानाधिकरण्यरूपनैयायिकमतसिद्धव्याप्तिवि-
षयताया असत्त्वान्न दोषः। ननु व्याप्तिग्रहश्च वक्ष्यते इति प्रतिज्ञा मणिका-
रेण कृता अतो व्याप्तिग्रहस्य कारणकथनमेव प्रकृतोपयुक्तमिति साध्य-
साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वसाधनमर्थान्तरग्रस्तमिति।
यदि च साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वस्य व्याप्तौ
सत्त्वे साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकं यत्तदेव व्याप्तिग्राहकमिति कथ्यते तदा
साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकत्वव्यापकग्राहकताकत्वरूपविशेषहेतोर्व्याप्तौ कथ-
नेन व्याप्तिग्रहोपायः क इति जिज्ञासानिवृत्तेः साध्य-साधनसम्बन्धग्रहत्व-
व्यापकविषयिताकत्वसाधनं निष्फलमिति चेत्। न। सर्व्वमिदं सति व्याप्ति-
निश्चये स एव तु न सम्भवति उपायाभावादित्यादिग्रन्थेन व्याप्तिग्रहकारणा-
भावेन व्याप्तिनिश्चयस्यासम्भवात् अनुमानप्रामाण्यव्यवस्थापनं न सम्भवतीति
चार्व्वाकपूर्व्वपक्षप्रतिपादनात् साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकत्वव्यापकग्राहक-
त्वस्य हेतुत्वकथनेन व्याप्तिग्रहस्य कारणं प्रतिपादितं, नियतसहचारगम-
म्यत्वसाधनेन च साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारस्य व्याप्तिनिश्चयरूपता
प्रतिपादिता, तथाच तस्यैवानुमितिकारणत्वं सम्भवतीति सर्व्वं सुसम-
ञ्जसं।

कारी तद्व्यापारं विनापि च सहचारादिज्ञानवतो व्याप्तिग्रहात्। नापि मनसः इन्द्रियादिवद्भूयोदर्शन-जन्यसंस्कारस्य तज्जन्यस्मरणस्य वा प्रमाणान्तरत्वापत्तेः, तस्मात् परिशेषेण सकृद्दर्शनगम्या सा, तथाह्युपाध्य-भावोव्याप्तिः अभावश्च केवलाधिकरणं तत्कालसम्ब-

---

'किञ्चेत्यादिना अनुपदमेव तद्दोषस्य वक्ष्यमाणत्वात्। परिशेषस्य न स्वप्रत्यक्षाकारणभूयोदर्शनकत्वे सति सहचारदर्शनग्राह्यत्वं स्वरूपा-सिद्ध्यापत्तेः साध्य-साधनसम्बन्धज्ञानस्यैव तन्मते व्याप्तिज्ञानत्वात्। न च सहचारदर्शनग्राह्यत्वं सहचारदर्शनविषयत्वं, समूहालम्बनज्ञा-नमादाय घट-पटादौ व्यभिचारापत्तेः, किन्तु साध्य-साधनसम्ब-न्धग्राहकसामग्रीत्वव्यापकस्वग्राहकसामग्रीत्वकत्वमिति हेतुमुपपाद-यति, 'तथाहीति, 'उपाध्यभाव इति उपाध्यभाववत्त्वे सति साध्य-सामानाधिकरण्यमित्यर्थः, तेन तन्मये विरुद्धहेतावुपाधिविरहेऽपि नातिव्याप्तिः। 'केवलाधिकरणमिति, तच्च साधनं धूमादिरे-वेति भावः। नन्वेवं प्रतियोगिकालेऽपि तदधिकरणमस्त्येव कथं वा अधिकरणाभावयोराधाराधेयभावप्रतीतिरित्यत आह, 'तत्कालेति तत्कालेन प्रतियोग्यनधिकरणकालेनाधिकरणस्य सम्बन्ध इत्यर्थः, तन्मते कालस्य षडिन्द्रियवेद्यत्वादेव तस्य प्रत्यक्षत्वं। सर्व्वेषु हेतुसम्ब-न्धभाने कालभानावश्यम्भावाभावादाह, 'स्वप्रकाशेति, 'तज्ज्ञानमिति अधिकरणज्ञानमित्यर्थः, 'स्वप्रकाश इत्यनेन प्रथमदर्शनगम्यत्वमुप-

न्धीवा स्वप्रकाशरूपं तज्ज्ञानं वा तच्च प्रथमदर्शनेनाव-गतमेव[१] चक्षुरादिना, न चाधिकस्तदभावोऽस्ति, न च प्रतियोगिज्ञानमधिकरणादिज्ञानजनकं येनोपाधिज्ञानं विना तन्न स्यात्, एवमुपाध्यभावे ज्ञाते किञ्चिन्न ज्ञातुमवशिष्यते उपाध्यभावव्यवहारस्तु तद्विषयमपेक्षते दीर्घत्वादिव्यवहार इवावधिज्ञानं। न चैवं रासभसम्ब-

---

पादितं। न च प्रतियोगिसत्त्वकालीनाधिकरणज्ञानस्याभावत्वाभावेन प्रतियोग्यसत्त्वकालीनाधिकरणज्ञानमेवाभावस्तथाच साधनज्ञानमात्रस्योपाध्यभावत्वाभावात् कथं साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वमिति वाच्यं। सद्धेतुस्थले सर्व्वदैव उपाध्यसत्त्वेन साधनज्ञानमात्रस्यैव उपाध्यभावत्वात्। 'तच्चेति, तच्च चक्षुरादिना प्रथमसम्बन्धदर्शनेऽवगतमेव विषयीभूतमेवेत्यन्वयः, 'प्रथमसम्बन्धदर्शनेनेति तृतीयान्तपाठे 'अवगतं' विषयीकृतं। ननु अधिकरणादिभ्योऽतिरिक्त एवाभावः तज्ज्ञानं विनापि च साधनं गृह्यत इत्यत आह, 'न चेति, अतिरिक्ताभावकल्पने गौरवादिति भावः। नन्वेतादृशसहदर्शनगम्यत्वसिद्धावपि भूयोदर्शनापेक्षावश्यकी अभावज्ञानस्य प्रतियोगिज्ञानाधीनत्वेन उपाधिज्ञानार्थं भूयोदर्शनावश्यकत्वात् उपाधित्वस्य साध्यव्यापकत्वादिघटितत्वादित्यत आह, 'न च प्रतियोगीति, 'एवमिति अभावबुद्धौ प्रतियोगिज्ञानस्याहेतुत्वे,

---

(१) प्रथमसम्बन्धदर्शनेऽवगतमेवेति ख०।

न्यतुल्यवह्नि-धूमसम्बन्धज्ञानादेवानुमितिः स्यादिति वाच्यम्। उपाधिस्मरणे सत्युपाधि-तद्व्याप्येतरसकलतदुपलम्भकसमवधाने चोपाध्यनुपलम्भसहितस्य केवलाधिकरणज्ञानस्यानुमितिहेतुत्वात् तद्व्यवहारहेतुत्वाच्च[1]। नन्वेवं प्रथमदर्शनेन व्याप्तिनिश्चयाद्विशेषदर्शने सति रासभादिसंशयवत् तत्संशयो न स्यादिति चेत्, व्याप्तिज्ञानानन्तरं किं विद्यमान एवोपाधिर्मयोपाधित्वेन

---

'उपाध्यभाव इति, घटकत्वं सप्तम्यर्थः, तस्य 'किञ्चिदित्यनेनान्वयः, 'अवग्रिष्यत इति, येन तज्ज्ञानार्थं भूयोदर्शनापेक्षा स्यादिति भावः । नन्वेवं प्रतियोगिज्ञानं विनापि अभावप्रत्यये[2] तद्व्यवहारोऽपि स्यादित्यत आह, 'उपाध्यभावव्यवहारस्त्विति उपाधिर्नास्तीति शब्दप्रयोग इत्यर्थः, तस्योपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानसाध्यत्वादिति भावः । 'दीर्घत्वेति, यथा दीर्घत्वपरिमाणस्य द्रव्यसाक्षात्कारसामग्रीग्राह्यतया दीर्घत्वज्ञाने नावधिज्ञानापेक्षा किन्तु अयमस्माद्दीर्घ इति व्यवहार एवावधिज्ञानापेक्षेति भावः । 'रासभसम्बन्धतुल्येति वह्नि-रासभसम्बन्धतुल्येत्यर्थः, तुल्यता च अनुमित्यजनकतया, तथाच वह्नि-रासभसम्बन्धज्ञानं यथा अनुमित्यजनकं तथा वस्तुगत्या अनुमित्यजनकं यद्वह्नि-धूमसम्बन्धज्ञानं तस्मादेव भवन्मतेऽनुमितिः स्यादित्यर्थः । 'उपाधिस्मरण इति स्मरणत्वमविवक्षितं

---

(१) व्यवहारहेतुत्वाच्चेति क० । (२) अभावप्रत्यय इति ख०, ग० ।

न ज्ञात इति शङ्कया गृहीतव्याप्तावपि संशयः अतस्तत्र भूयोदर्शनेनोपाधिनिरासद्वारा व्याप्त्यभावशङ्कापनीयते। यद्वा ज्ञानप्रामाण्यसंशयाद्व्याप्तिसंशयः यथा घटज्ञानसामग्र्यां सत्यां घटज्ञाने सति तत्प्रामाण्यसंशया-

---

उपाधिज्ञाने सतीत्यर्थः, 'उपाधि-तद्व्याप्येतरेति उपाधिरुपाधिव्याप्योय उपधीन्द्रियसन्निकर्षादिस्तदितरोपाधिविशिष्टप्रत्यक्षजनककारणकलापे सतीत्यर्थः, 'उपाध्यनुपलम्भसहितस्येति उपाधिमत्ताज्ञानाभावसहितस्येत्यर्थः। नन्वेवं धूमे व्यभिचारभ्रमेऽपि ततोऽनुमितिः स्यात् उक्तरूपसकलहेतुसत्त्वात् भ्रमस्तु ज्ञानद्वयमेकज्ञानं वेत्यन्यदेतत्। न च तत्र भ्रमरूपोपाधिविशिष्टबुद्धेरप्युत्पत्तेः उपाध्यनुपलम्भ एव नास्तीति वाच्यं। तैरन्यथाख्यात्यनङ्गीकारात् व्यभिचारज्ञाने उपाधिज्ञानानियमाच्च इति चेत्। न। व्यभिचारज्ञानाभावस्यापि सहकारित्वात्। अथैवमप्यसन्निकृष्टादिहेतुकानुमितिर्न स्यात् उपाधिविशिष्टोपलम्भककारणकलापविरहादिति चेत्। न। उपाध्यनुपलम्भकादिकं नानुमितिहेतुः किन्तु उपाध्यभावत्वेन ज्ञानं, तच्चासन्निकृष्टस्थलेऽपि सम्भवति, 'उपाधिस्मरणे' इत्यादिकन्तु लौकिकप्रत्यक्षात्मकोपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानस्य कारणमात्रप्रदर्शनं इति। न चैवं उपाध्यभावत्वप्रकारकव्याप्तिज्ञानस्य उपाधिज्ञानाद्यधीनत्वेन निरुक्तसहदर्शनगम्यत्व-निरुक्तपरिशेषवत्त्वयोस्तत्र बाध इति वाच्यं। व्याप्तिस्वरूपप्रतीतावितरापेक्षाविरहादेव तयोस्तत्र सम्भवादिति। नन्वेवं केवलाधिकरणज्ञानादनु-

हितस्तत्संशयो न त्वग्निमसंशयानुरोधेन तत्र घट-ज्ञानमेव न इत्तमिति कल्प्यते तथेहाप्युपाध्यभावस्य व्याप्तित्वात् तस्य च केवलाधिकरणरूपस्य प्रथमदर्शने-ऽपि निश्चितत्वात् व्याप्तिग्राहकान्तरस्याभावाच्च परि-

---

मितिर्न भवतु उपाधिज्ञानं विना केवलाधिकरणज्ञानमात्रद्वारा-यामुपाध्यभावव्यवहारस्तु जायतामित्यत आह, 'तद्व्यवहारेति[१] उपाध्यभावव्यवहारहेतुत्वाच्चेत्यर्थः।

केचित्तु नन्वेवमयत्नसिद्धहष्टादिहेतुकानुमितिर्न स्यात्ताद्दृशोपाधि-विशिष्टप्रत्यक्षजनककारणकलापविरहादित्याशङ्कादाह, 'तद्व्यवहा-रेति तस्य व्यवहारो यस्मादिति व्युत्पत्त्या अनुमितेरुपाध्यभावव्यव-हारहेतुहेतुकत्वाच्चेत्यर्थः, 'चकारः वार्थे, उपाध्यभावव्यवहारहेतुश्च परोक्षापरोक्षसाधारणं उपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानमात्रमिति प्राहुः।

'नन्वेवमिति, 'एवं' व्याप्तिग्रहस्य साधनग्राहकातिरिक्तानपे-क्षत्वे[२], 'प्रथमेति प्राथमिकधूमादीन्द्रियसन्निकर्षेत्यर्थः, 'व्याप्ति-निश्चयादिति,' विशेषणज्ञानस्य विशिष्टबुद्धावहेतुत्वेन धूमादौ स्वात्मकव्याप्तिप्रकारकनिश्चये बाधकाभावादिति भावः। 'विशेष-दर्शने सतीति यथा वह्निव्याप्यत्वस्य विशेषदर्शने सति रासभादौ न वह्निव्याप्यत्वसंशयः तथेत्यर्थः, 'तत्संशय इति धूमादौ वह्नि-

---

(१) व्यवहारेतीति ख॰ ग॰।

(२) साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकातिरिक्तानपेक्षत्वे इति क॰।

ग्रहेण सकृद्दर्शनस्य व्याप्तिग्राहकत्वात् तन्निश्चये प्रामाण्यसंशयादेव तत्संशयः। न चैवं रासभेऽपि प्रथमं व्याप्तिपरिच्छेदः[१] स्यादिति वाच्यं। तत्र व्याप्तेरभावात् प्रत्यक्षज्ञाने विषयस्य हेतुत्वात्, क्वचिदसंसर्गाग्रहात् तथा

व्याप्यत्वसंशय इत्यर्थः, तत्र इति शेषः, अत एवाग्रे मयेति सङ्गच्छते, व्याप्तिस्वरूपप्रतीतावपि उपाध्यभावत्वरूपेण उपाध्यभावात्मकव्याप्तिप्रकारकनिश्चयाभावात्तत्प्रकारकसंशयो नानुपपन्नः, यद्वा तन्निश्चये प्रामाण्यसंशयाद्व्याप्तिसंशय इति समाधानद्वयं क्रमेणाह, 'व्याप्तिज्ञानानन्तरमिति धूमादिसन्निकर्षानन्तरमित्यर्थः, ज्ञायते अनेनेति व्युत्पत्तेः[२]। 'किमिति अत्र किंशब्दोऽपिमयेत्यपेक्षया विकल्पे, 'विद्यमानेति, 'विद्यमाने' ज्ञायमाने धूमादौ, उपाधित्वेन उपाधिरेव मया न ज्ञात इत्यर्थः, न तु उपाध्यभावत्वेन उपाध्यभावोऽपि निश्चितइति शेषः, 'इति शङ्कया' अतः शङ्कासामग्रीमत्तया, 'गृहीतव्याप्तावपि गृहीतव्याप्तिस्वरूपेऽपि, 'संशयः' उपाध्यभावत्वप्रकारेण उपाध्यभावात्मकव्याप्तिसंशयः, समानप्रकारकनिश्चयस्यैव विरोधित्वादिति भावः। 'उपाधिनिरासेति उपाध्यभावत्वप्रकारकनिश्चयद्वारेत्यर्थः।

(१) व्याप्तिनिश्चय इति ग०।

(२) व्याप्तिज्ञानपदस्य ज्ञायते अनेनेतिकरणव्युत्पत्त्या व्याप्तिज्ञानजनकधूमादिसन्निकर्षपरत्वमिति भावः।

व्यवहारो[1] दोषमाहात्म्यात् । न चात्रापि तथा, आरोपे सति निमित्तानुसरणं न तु निमित्तमस्तीत्यारोप-इत्यभ्युपगमात् ।

---

ऋजवस्तु पूर्व्वपक्षे तवेति व्याख्यातार्थं, 'व्याप्तिज्ञानानन्तरमिति व्याप्तिनिश्चयानन्तरमित्यर्थः । 'किं विद्यमान इति किमत्र उपाधिरेव विद्यमान वर्त्तमानः मया उपाधित्वेन न ज्ञातइत्यर्थः, किं वा उपाधिरेव न वर्त्तते, 'इति शङ्कया' इति शङ्कावत्तया, गृहीतव्याप्तावपि' निश्चितायां व्याप्तावपि संशय इत्यर्थः। एतादृश-संभावनाविरहविशिष्टव्याप्तिनिश्चयस्यैव प्रतिबन्धकत्वादिति भावः । ननु लाघवाद्व्याप्तिनिश्चयत्वेनैव प्रतिबन्धकत्वात्तादृशसंभावनाया उक्ते-जकत्वे मानाभाव इत्यस्वरसादाह, 'यद्वेति, इति प्राहुः ।

ननु मध्ये प्रामाण्यसंशयकल्पने गौरवान्निश्चय एव व्याप्तेर्न दृत्त-त्वेव कल्पयितुं युक्तमित्यत आह, 'यथेति, 'घटज्ञान इति घट-निश्चय इत्यर्थः । 'न चैवमिति, 'एवं' साधनयाहकातिरिक्तानपेक्षने, रासभेऽपि धूमसमानाधिकरणे रासभेऽपि, 'व्याप्तिनिश्चयः स्यात्'[2] तद्रूपतो व्याप्तिप्रकारकनिश्चयः स्यात्, विशेषणज्ञानस्य तन्मते[3]

---

(१) तद्व्यवहार इति ग० ।

(२) 'व्याप्तिपरिच्छेदः स्यात्' इत्यत्र 'व्याप्तिनिश्चयः स्यात्' इति कस्य-चित् मूलपुस्तकस्य पाठमनुसृतवन्तो टीकाकृतः ।

(३) तवेति ख० ।

केचित्तु साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्य-सामानाधिकरण्यं साधनवन्निष्ठान्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवत्कत्वं वा व्याप्तिस्तदुभयमपि योग्यं[१] प्रत्यक्षेण वह्नि-धूमसम्बन्धानुभवेन प्रथममवगतमेव।

---

विशिष्टबुद्धावहेतुत्वादिति भावः।'विषयस्य' विशेष्य-विशेषणसम्बन्धस्य, विशिष्टप्रत्ययत्वस्य तत्कार्य्यतावच्छेदकतया न प्रमाया गुणजन्यत्वमिति भावः। नन्वेवं कुत्रापि व्याप्यभाववति व्याप्यत्वव्यवहारो न स्यात् तस्य तन्निश्चयाधीनत्वात् इत्यत आह, 'कचिदिति, 'दोषमाहात्म्यादिति, व्याप्तिस्मरणपुरोवर्त्तिज्ञानसहकृततोव्याप्यत्वासंसर्गाग्रहस्त्वात्तद्व्यवहार इत्यन्वयः। 'न चात्रापीति सर्व्वत्र रासभादावित्यर्थः, 'तथेति दोषमाहात्म्याद्व्याप्तिस्मरणपुरोवर्त्तिज्ञानसहितव्याप्यत्वासंसर्गाग्रहोभवत्वित्यर्थः, 'आरोपे' पुरोवर्त्तिताज्ञान-तदष्टहीतासंसर्गकविशेषणज्ञाने, 'सतीति प्रामाणिके इत्यर्थः, 'निमित्तेति, 'निमित्तस्य' दोषस्य, 'अनुसरणं' कल्पनमित्यर्थः, फलबलादिति भावः। 'नत्विति न तु सर्व्वत्रैव दोषाख्यं निमित्तमस्ति, 'इत्यारोपः' येनारोपः येन सर्व्वत्राष्टहीतासंसर्गकव्याप्तिज्ञानमिति यावत्।

तदेवं उपाध्यभावरूपाया व्याप्तेः सकृद्दर्शनगम्यत्वमुपपाद्य मीमांसकः नैयायिकसिद्धाया एव व्याप्तेः तादृप्येण सकृद्दर्शनगम्यत्वं लेकदेशिमतं दूषयितुमुपन्यस्यति, 'केचित्त्विति, 'प्रत्यक्षेण' चक्षुरादिना, 'अवगतं' विषयीकृतं, 'मयाभय इति एतद्भवतीत्यर्थः,

---

(१) योग्यत्वादिति ख०, ग०।

महानसे योऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावो वावगतस्तस्य प्रतियोगी न वह्निर्न वा वह्निमानित्यनुभवात्, रासभे तथावगमेऽप्यग्रे स बाध्यत इति, तन्न, एवं सत् तद्वह्नि-त-

---

'अवगतः' वर्त्तमानः, 'अनुभवादिति प्राथमिकवह्नि-धूमसम्बन्धग्रह-कालेऽनुभवादित्यर्थः। न च पिशाचाद्यतीन्द्रियाभावस्याप्येतद्धूम-समानाधिकरणाभावत्वादिना निविष्टत्वात् कथं साध्य-साधनसम्बन्धानुभवकाले अवश्यं तदनुभव इति वाच्यं। गुरुमते अभावस्याधिकरण-स्वरूपतया पिशाचाभावत्वादिरूपधर्मस्यैवायोग्यत्वात् न तु तदभावस्य, अत्र तु अभावत्वेनैव तद्भानात्। न च तथापि तादृशप्रतियोगित्वाभावत्वेन कथं तादृशप्रतियोगित्वाभावग्रहः महानसवृत्तिपिशाचाद्यभावप्रतियोगित्वस्यातीन्द्रियस्यापि तत्प्रतियोगिकुक्षिनिःक्षिप्तत्वेन तादृशाभावत्वस्यायोग्यत्वादिति वाच्यं। यत्किञ्चित्प्रतियोगियोग्यत्वेनैवाभावस्य योग्यतया तादृशप्रतियोगित्वसामान्याभावत्वस्य योग्यत्वात् अप्रतियोगित्वस्य प्रतियोग्यन्योन्याभावरूपतया प्रतियोगियोग्यत्वस्यातन्त्रत्वाच्चेति भावः[१]। नन्वेवमिन्द्रियसन्निकृष्टे व्यधिकरणरासभेऽपि तादृशप्रतियोगित्वाभावग्रहापत्तिस्तव नये साध्य-साधनसहचारग्रहस्य तादृशप्रतियोगित्वाभावग्रहाहेतुत्वादित्यत आह,

---

(१) अत्यन्ताभावग्रहे प्रतियोगियोग्यत्वस्य तन्त्रत्वेऽपि अन्योन्याभावग्रहे प्रतियोगियोग्यत्वं न तन्त्रं, अन्यथा घटादौ पिशाचाद्यतीन्द्रियपदार्थान्योन्याभावस्याप्रत्यक्षत्वापत्तेरिति भावः।

धूमयोरेव व्याप्तिः स्यात् न तु धूमत्व-वह्नित्वावच्छेदेन। न च तदनुमानोपयोगि, वह्नित्वं वह्निमत्त्वं वा न प्रतियोगितावच्छेदकमिति प्रथमतो ज्ञातुमशक्यमेवेति। मैवं। प्रकृतसाध्यव्यापकसाधनाव्यापको वा साधनत्वा-

---

'रासभ इति सन्निकृष्टे अधिकरणरासभे इत्यर्थः, 'तथावगमेऽपि' प्रथमं तादृशप्रतियोगित्वाभावावगमेऽपि, 'पश्चे' एतद्धूमवति रासभाभावग्रहानन्तरं, 'बाध्यते' अप्रमात्वेन ज्ञायते, 'एवं तदिति लुप्तप्रथमान्तं, सकृद्दर्शनविषयीभूतं तादृशात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वादिकमित्यर्थः, 'स्यात्' भवति, 'न तु धूमत्वेति धूमत्वावच्छिन्ने वह्नित्वावच्छिन्नस्य व्याप्तिरित्यर्थः। 'न च तदिति तद्वह्नि-तद्धूमयोर्व्याप्यत्वं, 'अनुमानोपयोगि' धूमसामान्ये न वह्नि-सामान्यानुमानोपयोगीत्यर्थः। ननु धूमत्वावच्छिन्नसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकवह्नित्वावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं तादृशान्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकवह्निसामानाधिकरण्यं वा धूमसामान्यहेतुकवह्न्यनुमानोपयोगि तदपि सकृद्दर्शनग्राह्यमित्यत आह, 'वह्नित्वमिति, 'न प्रतियोगितावच्छेदकमिति[1] न धूमत्वावच्छिन्नसमानाधिकरणात्यन्ताभावस्य तादृशान्योन्याभावस्य वा प्रतियो-

---

(१) 'प्रतियोगितानवच्छेदकमिति ख०, ग० ।

भिमतेन समं प्रकृतसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकं विशेषणं वोपाधिः उभयथापि तदभावो न व्याप्तिः सिद्धासिद्धिभ्यां तन्निषेधानुपपत्तेः, किन्तु यावत्स्वव्यभिचारिव्यभिचारिसाध्यसामानाधिकरण्यमनौपाधिकत्वं तस्य प्रथमं ज्ञातुमशक्यत्वात्। किञ्च न वस्तुगत्या व्याप्ते-

गिताषामान्यावच्छेदकमित्यर्थः[१], 'ज्ञातुमशक्यमेवेति तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकत्वस्याऽप्यभावदेशविप्रकर्षादिना अनुपलब्धस्य भावनापत्तिगर्भयोग्यानुपलब्धिविरहादिति भावः। यद्यपि तादृशप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावोऽप्यधिकरणादिरूप एवेति तज्ज्ञानमपि प्रथमदर्शने सम्भवत्येव अधिकरणादिज्ञाने योग्यानुपलब्धेरहेतुत्वात्। न च प्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावत्वप्रकारेण ज्ञानं प्रथमतो न सम्भवति तस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वज्ञानाधीनत्वाद्योग्यानुपलब्ध्यधीनत्वाच्चेति वाच्यं। उपाध्यभावरूपव्याप्तिप्रत्यक्षेऽपि उपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानस्य प्रथमतोऽसम्भवात् उपाधिज्ञानाद्यधीनत्वात्। तथाप्युक्तरूपव्याप्तित्वेनोक्तरूपव्याप्तेः सहदर्शनगम्यत्वस्यैकदेश्यभिप्रेतत्वाक्षेनहोषानुपपत्तिरिति ध्येयं।

(१) अत्र सामान्यपदं सर्वाप्तिविशेषाभिप्रायकं तथाच प्रतियोगितानवच्छेदकमित्यस्य प्रतियोगितावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणत्वाभावसमानाधिकरणमित्यर्थः तेन महानसीयवह्न्यभावमादाय वह्नित्वस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि वह्निमान् धूमादित्यादौ नाव्याप्तिः।

ज्ञानं हेतुः किन्तु व्याप्तित्वेन तच्च उपाध्यभावत्वं। न च उपाधेरज्ञाने तदभावत्वेन ज्ञानं सम्भवति, विशेषणज्ञानसाध्यत्वाद्विशिष्टज्ञानस्य। न च नियमतः प्रथममुपाधिधीरस्ति। यथोक्तं प्रतियोगिज्ञानं व्यवहारहेतुः

---

तदेवं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनगम्या किन्तु सकृद्दर्शनगम्यैवेति मीमांसकमते च निरूढे तद्दूषयति[१] 'नैवमिति, 'प्रकृतेति न्यायनये, 'साधनत्वेति मीमांसकनये, साधनत्वाभिमतेन समं या प्रकृतसाध्यसम्बन्धिता तदवच्छेदकत्वे सति यद्विशेषणं तत्त्वमित्यर्थः। अत्रावच्छेदकत्वमन्यूनवृत्तित्वं साधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकीभूताधिकरणनिष्ठाभावाप्रतियोगित्वमिति यावत्। स श्यामो मित्रातनयत्वात् प्रत्यक्षं उद्भूतरूपादित्यादौ शाकपाकजत्व-महत्त्वादावव्याप्तिवारणाय साधननिष्ठेति साध्यसम्बन्धिताविशेषणं, असम्भववारणाय साध्यान्तर्भावः। तथाच साधनविशिष्टसाध्यव्यापकत्वमिति सत्यन्तस्य फलितार्थः[२]। विरुद्धस्य चैतन्नये नोपाधित्वमतो गोत्ववान् अश्वत्वादित्यादौ साधनविशिष्टसाध्याप्रसिद्ध्या साध्यावत्त्वादौ नाव्याप्तिः। न च तथाप्येवं

---

(१) निर्व्यूढं तद्दूषयतीति ख०, ग०।

(२) तथाच स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादौ शाकपाकजत्वोपाधेः श्यामाविच्छिन्नश्यामकाक-कोकिलाद्यन्तर्भावेन एवं प्रत्यक्षं उद्भूतरूपादित्यादौ महत्त्वोपाधेः गुणाद्यन्तर्भावेन साध्यव्यापकत्वभङ्गेऽपि साधनविशिष्टसाध्यव्यापकत्वमक्षतमेवेति भावः।

नाभावज्ञाने इति, अस्तु तावदेवं तथापि तदभावो मा व्यवहारि उपाध्यभावज्ञानाधीनानुमितिः स्यादेव उपाधिज्ञानं विनापि, न चैवं । वस्तुतस्तु विशेषादर्शने

---

चाक्षुषः प्रमेयत्वादित्यादौ पक्षधर्मद्रव्यत्वावच्छिन्नसाध्यव्यापके उद्भूत-रूपादावव्याप्तिरिति वाच्यं । साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकस्यैवेतन्मते उपाधितया तस्यालक्ष्यत्वात् । सद्धेतौ साध्यादेरुपाधितावारणाय विशेषणमिति विशेषणत्वं यत्किञ्चित्साधनाधिकरणाद्यावर्त्तकत्वं साधनाव्यापकत्वमिति यावत् । निःशेषं स्पर्शात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ करकान्यत्व-रूपान्यत्वादिकमपि लक्ष्यमेवेति न तत्रातिव्याप्तिः ।

केचित्तु सद्धेतौ साध्यादेः[१] साध्याभावविशिष्टसाधनवदवृत्तेरेव एतन्मते लक्ष्यतया निःशेषं स्पर्शात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ करकान्यत्व-रूपान्यत्वादेश्चोपाधितावारणाय 'विशेषणमिति, विशेषणत्वञ्च साध्याभावविशिष्टसाधनाधिकरणसामान्याद्यावर्त्तकत्वं साध्याभावविशिष्ट-साधनव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वमिति यावत् । धूमवान् वह्नेः द्रव्यं प्रमेयत्वादित्यादौ तप्तदयोगोलकान्यत्व-सत्तादिकञ्च न लक्ष्यं अतो न तत्राव्याप्तिरित्याहुः ।

'तदभाव इति सम्बन्धसामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकतदभाव-इत्यर्थः, 'सिद्ध्यसिद्धिभ्यामिति प्रतियोगिप्रसिद्ध्यप्रसिद्धिभ्यामित्यर्थः, तन्निषेधानुपपत्तेरिति तदभावस्य सद्धेतावनुपपत्तेरित्यर्थः । 'याव-

---

(१) साध्यादेः उपाधितावारणाय इत्यग्रिमेणान्वयः ।

सहचारादिसाधारणधर्म्मदर्शनाद्व्यभिचारसंशयात् प्रथमदर्शने[१] न व्याप्तिनिश्चयः। अथ व्यभिचारसंशयो नाव्यभिचारनिश्चयप्रतिबन्धकः ग्राह्यसंशयस्य निश्च-

---

त्त्वेति स्वं यावतां व्यभिचारि स्वाव्यापकं यावदिति यावत्, तावतां व्यभिचारि यत्साध्यं तत्सामानाधिकरण्यरूपमनौपाधिकत्वमित्यर्थः, व्याप्तिरित्यनुषज्यते, 'तस्य प्रथममिति तस्य साध्य-साधनसम्बन्धस्या-ज्ञातृकारत्वव्यापकविषयिताकत्वासम्भवादित्यर्थः। ननु उपाध्यभाववतः साध्यस्य सामानाधिकरण्यरूपमनौपाधिकत्वमेव व्याप्तिः उपाध्यभा-वस्य व्याप्यतासम्बन्धेन प्रकृतसाधनाव्यापकाभावः स चाधिकरणी-भूतसाध्यस्वरूपतया सकृद्दर्शनगम्य इत्यस्वरसादाह, 'किञ्चेति, 'उपाध्यभावत्वं' उपाध्यभावत्वघटितं। 'विशेषणज्ञानेति इदं नैयायि-कमतानुसारेण, मीमांसकमते विशेषणज्ञानस्याभयोसाध्यत्वादिति ध्येयं। 'प्रथममिति प्रथमदर्शनकाल इत्यर्थः, तथाच येन रूपेण ज्ञाता व्याप्तिरनुमित्यङ्गं तद्रूपविशिष्टस्य सहचारदर्शनविषयत्वनियमो बाधित एव, व्याप्तिस्वरूपस्य तथात्वन्तु मयापि न निवार्य्यते विशि-ष्टसामानाधिकरण्यस्य सामानाधिकरण्यानतिरेकित्वादिति परिशे-षानुमाने सिद्धसाधनमिति भावः। ननु वस्तुगत्या उपाध्यभावस्य ज्ञानमेव कारणं वक्तव्यं तच तु सोपाधिज्ञानं हेतुः प्रतियोगिज्ञा-नस्य तत्तदभावत्वप्रकारकज्ञानद्वारा तत्तदभावत्वप्रकारकव्यवहारं

---

(१) प्रथमदर्शनेनेति क०।

याप्रतिबन्धकत्वात् अन्यथा संशयोत्तरं क्वापि निश्चयो न स्यादिति चेत्। न। व्यभिचारसंशयः प्रतिबन्धक इति ब्रूमः, किन्तु विशेषादर्शने सति सहचारादिसाधारण-

---

प्रत्येव हेतुत्वादित्यत आह[1], 'यद्वेति, 'प्रथियोगिज्ञानं', 'प्रतियोगिनः' उपाधेः, 'ज्ञानं', 'व्यवहारहेतुः' उपाध्यभावत्वप्रकारकउपाध्यभावव्यवहारप्रयोजकं, 'नाभावज्ञाने' न स्वरूपेणोपाध्यभावज्ञाने, 'तदभाव इति, उपाधिज्ञानं विनेत्यादिः, 'उपाध्यभावज्ञानेति, 'उपाधिज्ञानं विनापि', भवन्मते स्वरूपत उपाध्यभाववत्ताज्ञानसम्भवात् उपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानं प्रत्येव उपाधिस्मरण-योग्यानुपलम्भयोर्हेतुत्वस्य पूर्वमुक्तत्वादिति भावः। 'न चैवमिति च्छेदः, उपाधिज्ञानं विनाप्यनुमितिर्भवतीति न चेत्यर्थः। ननु उपाध्यभावत्वरूपव्याप्तित्वप्रकारेण व्याप्तेः सहचारदर्शनविषयत्वनियमो मास्तु तथापि उपाधिस्मरण-योग्यानुपलब्धिसहकृतं प्रथमदर्शनमेव तद्रूपेण व्याप्तिग्रहे हेतुरस्त्वित्यत आह, 'वस्तुतस्त्विति, 'व्यभिचारसंशयादिति उपाधिसंशयादित्यर्थः। परमते या व्याप्तिस्तदभावस्यैव व्यभिचारत्वात् 'प्रथमदर्शन इति उपाधिस्मरणादिसहकृतप्रथमदर्शनेऽपीत्यर्थः[2], 'न व्याप्तिनिश्चय इति न उपाध्यभावत्वरूपव्याप्ति-

---

(१) हेतुत्वमित्युक्तत्वादित्यत आहेति ख०, ग०।

(२) 'प्रथमदर्शनेनेति उपाधिस्मरणादिसहकृतप्रथमदर्शनेनापीत्यर्थः इति ख०, ग०।

धर्म्मदर्शनात् संशयः स्यात् न तु संशयसामग्रीतोनिश्चयइति। किञ्च यद्वीसामग्री यत्र प्रतिबन्धिका विशेषादर्शने तत्र तद्धीरपीति व्यभिचारसंशयोऽपि प्रति-

त्वप्रकारेण व्याप्तिनिश्चय इत्यर्थः। इदमापाततः कोटिद्वयोपस्थितेरनावश्यकत्वादुपाधिसंशयस्यासार्वत्रिकत्वादिति ध्येयं(१)। 'व्यभिचारसंशयः' उपाधिसंशयः, 'अव्यभिचारनिश्चयेति उपाध्यभावनिश्चयेत्यर्थः। परमते उपाध्यभाव एव व्याप्तिः स एवाव्यभिचार इति भावः। 'क्वापीति, भवति च स्थाणुर्न वेति संशयानन्तरं विशेषदर्शने सति अयं स्थाणुरिति निश्चयः पर्व्वतो वह्निमान्न वेत्यादिसंशयानन्तरं पर्वतो वह्निमानित्याद्यनुमितिः शाब्दादिश्चेति भावः। 'नेति 'भ्रमइत्यनेनान्वयः, 'संशयः स्यादिति उभयकोटिप्रकारकज्ञानसामग्रीसत्त्वादिति भावः। 'संशयसामग्रीत इति संशयसामग्र्यां सत्यामित्यर्थः, 'निश्चय इति एककोटिमात्रप्रकारकज्ञानमित्यर्थः। संशयसामग्र्याः निश्चयप्रतिबन्धकत्वमभ्युपेत्य संशयस्यापि प्रतिबन्धकतां व्यवस्थापयति, 'किञ्चेति, संशयानन्तरं क्वापि निश्चयो न स्यात् प्रतिबन्धकत्वसत्त्वादत उक्तं 'विशेषादर्शने सतीति। ननु अनुमितिसामग्री प्रत्यक्षे प्रतिबन्धिका नानुमितिः प्रत्यक्षप्रतिबन्धिकेति व्यभिचार इति चेत्। न। 'यद्धीत्यनेन विरोधिवगाहिधिय-

(१) इति बोध्यमिति क०।

बन्धकः । एवं भूयोदर्शनमपि संशायकं तर्कस्त्वनवस्था-ग्रस्त एवेति कथं व्याप्तिग्रहः ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे व्याप्तिग्रहोपायपूर्व्वपक्षः ।

---

उक्तत्वात्, तथाच मीमांसकमतं दुष्टं, इदानीं नैयायिकमते मीमांसकः(१) शङ्कते, 'एवमिति, 'संशायकमिति, साधारणधर्मदर्शनादिति भावः । ननु तर्क एव शङ्काविरोधीत्यत आह, 'तर्क इति, 'कथं व्याप्तिग्रह इति भवन्मते कथं व्याप्तिग्रह इत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये व्याप्तिग्रहोपायपूर्व्वपक्षरहस्यं ।

---

(१) तथाचेत्यादिः मीमांसक इत्यन्तः पाठः ख-चिह्नितपुस्तके नास्ति ।

## अथ व्याप्तिग्रहोपायसिद्धान्तः।

उच्यते व्यभिचारज्ञानविरहसहकृतं सहचारदर्शनं व्याप्तिग्राहकं, ज्ञानं निश्चयः, शङ्का च सा च क्वचिदु-

---

## अथ व्याप्तिग्रहोपायसिद्धान्तरहस्यं।

अत्रैव समाधानमाह, 'उच्यत इति, 'व्यभिचारज्ञानविरहेति व्यभिचारज्ञानविरहः सहचारज्ञानस्य व्याप्तिग्रहे हेतुरित्यर्थः। न च व्यभिचारज्ञानाभावस्य कुतो व्याप्तिग्रहे हेतुत्वमिति वाच्यं। तज्ज्ञानस्य तदभावज्ञानप्रतिबन्धकतया सति व्यभिचारज्ञाने अव्यभिचारघटितव्याप्तिग्रहासम्भवेन तदभावहेतुत्वावश्यकत्वादिति भावः। ननु तदभावस्य हेतुत्वेऽपि व्यभिचारज्ञानसत्त्वे व्याप्तिग्रहो दुर्व्वार एव व्यभिचारज्ञानस्याव्याप्यवृत्तितया व्यभिचारज्ञाने सत्यपि घटाद्यवच्छेदेनात्मनि तदभावसत्त्वात्। न च समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकव्यभिचारज्ञानाभावस्यात्मनिष्ठतया न हेतुत्वं अपि तु अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकव्यभिचारज्ञानाभावः शरीरनिष्ठो हेतुः यत्रावच्छेदकतासम्बन्धेन व्याप्तिग्रहस्तत्र विशेषणताविशेषसम्बन्धेनावच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकव्यभिचारज्ञानाभाव इति सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिरिति वाच्यं। पूर्व-

याधिसन्देहात् क्वचिद्विशेषादर्शनसहितसाधारणधर्म्म-
दर्शनात्। तद्विरहश्च क्वचिद्विपक्षबाधकतर्कात् क्वचित्

शरीरावयवावच्छेदेनोत्पद्यमानव्यभिचारज्ञानोत्पत्तिक्षणोत्पत्तिक-खण्डशरीरावच्छेदेन सति व्यभिचारज्ञाने व्याप्तिग्रहस्य दुर्वारत्वात् जन्यं ज्ञानं प्रति चेष्टावत्त्वेनैव शरीरस्य हेतुतया[१] महाशरीरनाशापि-मक्षणे व्यभिचारज्ञानोत्पत्तौ बाधकाभावात् चेष्टावतः शरीरा-वयवस्यैव तत्र सत्त्वादिति चेत्। न। व्यभिचारज्ञानस्याव्याप्यवृत्तित्वे-ऽपि तद्विशिष्टात्मत्वस्य व्याप्यवृत्तितया तदभावस्यैवात्मनिष्ठतया हेतु-त्वात् आत्मत्वन्तु तत्र न निविशते किन्तु समवायसम्बन्धावच्छिन्नव्य-भिचारज्ञानविशिष्टाभावत्वेन हेतुत्वम्। एतेन द्रव्यत्वादिमादाय विनिगमनाविरहोऽपि प्रत्युक्तः[२]। एवं तदत्यन्ताभाव-तदन्योन्या-भाव-तदभावव्याप्यादिनिर्णयस्थले तद्विशिष्टात्मत्वमेव प्रतिबन्धकं तुल्ययुक्तेः[३]।

---

(१) तथाच चेष्टावदन्त्यावयवित्वरूपशरीरत्वघटकान्त्यावयवित्वं प्रयोज-नविरहेण जन्यज्ञानत्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणतावच्छेदककोटौ न निवेशनीयमिति भावः।

(२) व्यभिचारज्ञानविशिष्टात्मत्वाभावस्य हेतुत्वे विनिगमनाविरहेण व्यभिचारज्ञानविशिष्टद्रव्यत्वाभावस्यापि हेतुत्वापत्तिः आत्मत्व-द्रव्यत्वयोर्द्वयो-रेव जातित्वाविशेषादिति समुदिततात्पर्य्यम्।

(३) तद्वत्ताबुद्धिं प्रति तदत्यन्ताभावादिनिश्चयमात्रस्य प्रतिबन्धकत्वे तदत्यन्ताभावादिनिश्चयकालेऽपि घटाद्यवच्छेदेन तादृशनिश्चयाभावसत्त्वात्

स्वतः सिद्ध एव, तर्कस्य व्याप्तिग्रहमूलकत्वेनानवस्थेति चेत्, न, यावदाशङ्कं तर्कानुसरणात्। यत्र च व्याघातेन शङ्कैव नावतरति तत्र तर्कं विनैव व्याप्तिग्रहः।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे व्याप्तिग्रहोपायसिद्धान्तः।

---

केचित्तु तदत्यन्ताभावनिर्णयादिस्थले सर्वत्र प्रतिबन्धकतावच्छेदककोटौ आत्मत्वे तद्देशित्वनिवेशापेक्षया लाघवात् अन्यज्ज्ञानं प्रत्येव चेष्टावदन्त्यावयवित्वेन हेतुत्वमतो महाशरीरनाशाग्रिमक्षणे व्यभिचारादिज्ञानासम्भवान्नोक्तातिप्रसङ्गः। अन्त्यावयवित्वञ्च समवायादिसम्बन्धेन द्रव्यवद्भिन्नत्वं। न च तथापि महाशरीरनाशोत्पत्तिक्षणे व्यभिचारादिज्ञानोत्पत्तौ बाधकाभावेन तदग्रिमक्षणोत्पन्नखण्डशरीरावच्छेदेन सति व्यभिचारादिज्ञाने व्याप्त्यादिग्रहोदुर्वार इति वाच्यम्। तत्र व्याप्त्यादिग्रहस्येष्टत्वात् क्षणैकविलम्बेन तत्र व्याप्त्यादिग्रहस्य तत्रापि सम्मतत्वात्। अस्तु वा शरीरस्य उक्तरूपेण कार्य्यसहवर्त्तितया अन्यज्ञानहेतुत्वं तस्मात् समानावच्छेदकत्वप्रत्यासत्त्यैव व्यभिचारज्ञान-बाधज्ञानादेः प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावः। न चैवं यत्र परपुरप्रवेशाधीनमात्मद्वयोरेकं शरीरं तत्रैकस्मिन्नात्मनि

---

तद्वत्ताबुद्धिप्रसङ्गः अतः तद्वत्ताबुद्धिं प्रति तदत्यन्ताभावादिनिश्चयविशिष्टात्मत्वस्यैव प्रतिबन्धकत्वं न तु तादृशनिश्चयमात्रस्येति भावः।

तच्छरीरावच्छेदेन व्यभिचार-बाधादिज्ञानसत्त्वेऽन्यस्मिन्नात्मन्यपि त-च्छरीरावच्छेदेन व्याप्त्यादिज्ञानं न स्यादिति वाच्यम्। समवाय-घटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावेऽपि यत्र कायव्यूहाधीनं एकस्यैवात्मनो नानाशरीरं तत्र एकशरीरावच्छेदेन तदात्मनि व्यभिचारादिज्ञानेऽन्यशरीरावच्छेदेनापि तदात्मनि व्याप्त्यादिज्ञानं न स्यादित्यस्य दुरुद्धरत्वात् इष्टापत्तेश्चोभयत्र तुल्यत्वादित्याहुः।

नव्यास्तु खण्डशरीरोत्पत्तिकालोत्पत्तिकव्यभिचारादिज्ञानस्यावच्छेदकतासम्बन्धेन खण्डशरीरे वृत्तौ बाधकाभावान्नोक्तापत्तेः प्रसङ्गः(१)। न चावच्छेदकतासम्बन्धेन ज्ञानोत्पत्तौ तादात्म्येन सम्बन्धेन शरीरस्य हेतुत्वात् खण्डशरीरावच्छेदेनाव्यवहितपूर्वकाले तादात्म्यसम्बन्धेन शरीरविरहात् कथं शरीरोत्पत्तिकालोत्पत्तिकव्यभिचारादिज्ञानं खण्डशरीरे स्यादिति वाच्यम्। अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नोत्पत्तेरेव कार्य्यतावच्छेदकसम्बन्धतया समानकालोत्पन्नव्यभिचारादिज्ञानस्य खण्डशरीरेऽवच्छेदकतासम्बन्धेनोत्पत्त्यसम्भवेऽपि तेन सम्बन्धेन स्थितौ बाधकाभावात् दण्डादिशून्यदेशे संयोगेन घटादिसत्त्ववत् परपुरप्रवेशस्थलेऽपीष्टापत्तिरेवेति प्राहुः।

नन्वस्तु व्यभिचारज्ञानाभावस्य हेतुत्वं तथापि सहचारज्ञानस्य हेतुत्वे मानाभावः। न च व्याप्तेः सहचारघटितत्वेन विशेषणज्ञानतया तत् हेतुरिति वाच्यम्। व्याप्तिविशेष्यकव्याप्तिग्रहे सहचारस्य विशेष्य-

---

(१) नोक्तातिप्रसङ्ग इति ख०, ग०।

त्वात्। न च स्वतन्त्रान्वय-व्यतिरेकाभ्यां तदपि स्वातन्त्र्येण हेतुरिति वाच्यं। स्वतन्त्रान्वय-व्यतिरेकानुविधानस्यैवाप्रसिद्धेः। न हि इतरकारणसमवधाने सहचारदर्शनविलम्बेन क्वचिद्व्याप्तिग्रहविलम्बमीक्षामहे। अथ विरुद्धस्थले सहचारभ्रमेण व्यापकत्वभ्रमजननात् सामान्यतः व्यापकताग्रहत्वावच्छिन्नं प्रति सहचारज्ञानस्य हेतुत्वं कल्प्यते लाघवात् अतएव व्याप्तिविशेष्यकग्रहस्थलेऽपि सहचारज्ञानमावश्यकमिति चेत्। न। विरुद्धस्थले सहचारभ्रमस्य व्यापकत्वभ्रमजनकत्वासिद्धेः पौर्व्वापर्य्यभावस्य च सामग्रीपौर्व्वापर्य्याधीनत्वात्। अत एव व्यतिरेकसहचारज्ञानेनान्वयव्याप्तिज्ञानजननात् लाघवात् सामान्यत एव सहचारज्ञानं व्याप्तिज्ञानत्वावच्छिन्नं प्रति हेतुरित्यपि परास्तं तस्यैवासिद्धेः। अन्वय-व्यतिरेकसहचारज्ञाननिष्ठानुगतकारणतावच्छेदकस्य निर्व्वक्तुमशक्यत्वेन सामान्यतः कारणत्वासम्भवाच्चेति। मैवम्। सहचारदर्शनपदस्य दृश्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या सहचारेन्द्रियसन्निकर्षपरत्वात्, तद्धेतुत्वाभिधानस्य व्याप्तिप्रत्यक्षाभिप्रायेण। यद्वा सहचारदर्शनं सहचारज्ञानमेव तद्धेतुत्वाभिधानञ्च व्याप्तेरुपनीतज्ञानाभिप्रायेण(१) तत्र उपनयविधया तस्य हेतुत्वात्। न चैवं व्याप्तिप्रत्यक्षे सहचारेन्द्रियसन्निकर्षादिवद्व्याप्तिघटकपदार्थान्तरेन्द्रियसन्निकर्षादिरपि हेतुः स कथं नोक्त इति वाच्यं। स्वतन्त्रेच्छस्य पर्य्यनुयोगानर्हत्वात्। अन्यथा व्यभिचारज्ञानविरहवद्व्याप्तिघटकपदार्थान्तराभावज्ञानविरहो हेतुः स कथं नोक्त इत्यपि पर्य्यनुयोगापत्तेरिति।

---

(१) व्याप्तेरुपनीतभानाभिप्रायेणेति ख०, ग०।

मश्रास्तु सहचारपदमत्र हेतुभावयोः सहचारपरं, तज्ज्ञानञ्च विशेषणज्ञानविधया व्याप्तिज्ञानमात्रे हेतुरिति प्राहुः।

मिश्रास्तु व्याप्तिग्राहकमित्यस्य व्याप्तिप्रकारकज्ञानजनकमित्यर्थः, तथाच सहचारज्ञानं विशेषणज्ञानविधया हेतुरित्याहुः।

भट्टाचार्य्यास्तु धूमादिव्यापकवह्निसमानाधिकरणवृत्तिधूमत्वादिकं व्याप्तिः तादृशसामानाधिकरण्यमात्रस्य रासभादिसाधारण्यात्। तथाच व्याप्तिग्रहमात्र एव सहचारज्ञानं विशेषणज्ञानविधया हेतुरिति[१] मणिकृतोऽभिप्राय इति प्राहुः।

ननु 'व्यभिचारज्ञानविरहेत्यत्र ज्ञानं निश्चयः शङ्का वा नाद्यः व्यभिचारसन्देहसत्त्वेऽपि व्याप्तिनिश्चयापत्तेः[२], नान्त्यः व्यभिचारनिश्चयसत्त्वे व्याप्तिनिश्चयोत्पत्त्यापत्तेरित्यत आह, 'ज्ञानमिति, तथाच व्यभिचारज्ञानसामान्याभावो हेतुरिति भावः। न च संशयसाधारणव्यभिचारज्ञानाभावस्य हेतुत्वे साध्याभावांशे सन्देहाकारव्यभिचारज्ञानसत्त्वेऽपि व्याप्तिज्ञानं न स्यादिष्टापत्तौ च पक्षे साध्यसन्देहदशायां व्याप्यग्रहापत्तिरिति वाच्यं। साध्याभावांशे निश्चयात्मक-वृत्तित्वांशे सन्देह-निश्चयसाधारणव्यभिचारज्ञानसामान्याभावस्य हेतुत्वात्[३] इदञ्च प्राचीनमतानुसारेण।

---

(१) हेतुव्यापकसाध्यसमानाधिकरणवृत्तिहेतुतावच्छेदकस्य व्याप्तित्वे व्याप्तिविशेष्यकज्ञानेऽपि साध्यसामानाधिकरण्यस्य विशेषणतयैव भानात् सर्वत्र व्याप्तिज्ञाने विशेषणज्ञानविधया सहचारज्ञानं हेतुरिति तात्पर्य्यं।

(२) व्याप्तिनिश्चयानुदयादिति ख०, ग०।

(३) तथाच साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिता या साध्या-

वस्तुतस्तु व्याप्तिसंशयस्याप्रतिबन्धकत्वाद्व्यभिचारनिर्णयाभाव एव हेतुः । न चैवं व्यभिचारसन्देहसत्त्वेऽपि व्याप्तिग्रहापत्तिरिति वाच्यं। सन्देहात्मकव्याप्तिग्रहे इष्टापत्तेः सन्देहस्यैवोभयकोट्युपस्थितिरूपतया उभयकोटिविशिष्टबुद्धिसामग्रीसत्त्वेन तदभावाप्रकारकतत्प्रकारकज्ञानरूपस्य तन्निश्चयस्यानुत्पत्तेः। न च यत्र व्यभिचारसंशयोत्पत्तिक्षणे तद्द्वितीयक्षणे वा दोषनाशस्तत्र व्यभिचारसंशयसत्त्वेऽपि व्याप्तिनिश्चयापत्तिः दोषाभावेनोभयकोटिविशिष्टधीसामग्रीविरहादिति वाच्यम्। तादृशस्थले मानाभावात्, विषयान्तरसञ्चारादेर्विशेषदर्शनादेश्च विरहे सन्देहोत्तरं धारावाहिकसन्देहनियमस्य सर्व्वैरेव स्वीकारादिति तत्त्वं। 'सा च शङ्का च,' 'साधारणधर्म्मेति उभयकोटिसहचरितधर्म्मेत्यर्थः। 'तद्विरहस्येति शङ्काया अनुत्पत्तिस्येत्यर्थः, उत्पन्नशङ्कायाः स्वोत्तरोत्पन्नगुणादेव नाशसम्भवेन तत्र तर्कस्यापेक्षाभावात्। 'विपक्षेति, 'विपक्षे' व्यभिचारग्रहे, 'बाधकात्' प्रतिबन्धकात्तर्कादित्यर्थः। स च धूमो यदि वह्निव्यभिचारी स्याद्वह्निजन्यो न स्यात् इत्यादिरूपः, प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावस्य फलबलादिरोधिविषयत्वासम्भवेनापि तदापादककापत्तित्वेन तद्विशिष्टबुद्धित्वेन, तदापादककापत्तित्वन्तु धूमजिज्ञकत्वादिवक्ष्यमाणमिति

---

भावत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यता तदभिन्ना या निरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारता तन्निरूपिता या हेतुतात्वावच्छिन्नविशेष्यता तदभिन्नप्रकारतानिरूपिता या हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यता तद्विशिष्टज्ञानाभावस्य हेतुत्वमिति भावः ।

बोध्यं। 'स्वतः सिद्ध इति तर्कं विना अन्येन प्रयुक्त इत्यर्थः, अन्यच्च संशयजनकदोषाभावसत्कर्तातिरिक्तो वक्ष्यमाणप्रतिबन्धकस्येत्यन्यदेतत्।

केचित्तु 'स्वतः सिद्ध इति कोटिद्वयोपस्थित्यभावप्रयुक्त इत्यर्थः। न च व्याप्तिग्रहसमये व्यभिचार-तदभावोभयकोट्युपस्थितिरावश्यकी अव्यभिचारस्य विशेषणत्वेन तज्ज्ञानस्यावश्यकतया तस्यैवोभयकोटिज्ञानत्वादभावबुद्धेः प्रतियोगिविषयकत्वात् स्वतन्त्रविशेषणज्ञानकारणत्वस्य दूर एव निराशादिति[1] वाच्यं। प्राचीननये साधारणधर्मादिदर्शनजन्यकोट्युपस्थितेरेव संशयजनकत्वात् न तु कोट्युपस्थितिमात्रस्येत्याहुः।

ननु यत्र तर्केण शङ्कानिवृत्तिः तत्रानवस्था तर्कमूलीभूतव्याप्तिज्ञाने शङ्कानिवृत्तये तर्कान्तरस्य एवं तन्मूलभूतव्याप्तिज्ञानेऽप्यपरस्य[2] अपेक्षणीयत्वादित्याशङ्कते, 'तर्कस्येति, 'व्याप्तिग्रहमूलकत्वेन' व्याप्तिग्रहजन्यत्वेन, 'यावदाशङ्कमिति तर्काभावेतरसकलशङ्काकारणं यावत्तावत्कालं, 'तर्कानुसरणात्' यत्तर्कपूर्वं तद्विघटकशङ्कायास्तर्काभावेतरसकलकारणसम्पत्तिस्तत्तर्कपूर्वमेव तर्कान्तराभ्युपगमादिति यावत्। 'यत्र चेति यस्य च तर्कस्य चेत्यर्थः, पूर्वमिति शेषः, 'व्याघातेन' व्याघातादेव तर्काभावातिरिक्तकारणप्रतियोगिकाभा-

---

(१) निराकृतत्वादितीति ख०, ग०, घ०।

(२) तर्कं प्रति आपाद्यव्याप्यापादकवत्तानिश्चयत्वेन कारणत्वात् आपादके आपाद्यव्याप्तिसंशयनिरासार्थं तर्कान्तरं अपेक्षणीयं एवं तत्र तत्रापीत्यनवस्थेति भावः।

वादेवेति[१] यावत्, तर्कातिरिक्तं संशयजनकदोषो वक्ष्यमाणप्रतिबन्धकाद्यभावश्च, 'ग्रहैव नावतरति' तद्विघटकशङ्कामात्रं नावतरति, यत्तर्कपूर्वं तद्विघटकशङ्कासामान्याभावस्तर्काभावातिरिक्तकारणप्रतियोगिकाभावप्रयुक्तो न तु तर्कप्रयुक्त इति तु समुदितार्थः, 'तच्च' तर्के, 'तर्कं विनैव व्याप्तिग्रह इति, जनक इति शेषः, तर्कं विनैव व्याप्तिग्रहस्तत्तर्कजनक इत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये व्याप्तिग्रहोपायरहस्यं ॥०॥

---

(१) तर्काभावातिरिक्तं यत् संशयजनकं तदभावादेवेत्यर्थः ।

## अथ तर्कः।

तथाहि धूमो यदि वह्न्यसमवहितासजन्यत्वे सति वह्निसमवहितासजन्यः स्यान्नोत्पन्नः स्यादित्यच किं

## अथ तर्करहस्यं।

यत्तर्के विघटकशङ्कासामान्यं तर्काभावातिरिक्तप्रतियोगिकाभावादेव पूर्वं नावतरति तं तर्कमाह, 'तथाहीति, 'धूम इति धूमो यदि वह्न्यसमवहितजन्यभिन्नत्वविशिष्ट-वह्निसमवहितजन्यभिन्नत्ववान् स्यात् उत्पन्नत्वाभाववान् स्यादित्यर्थः, विशिष्टान्तं द्वितीयभिन्नत्वविशेषणं। जन्यं हि जगति वस्तुद्वयं वह्न्यसमवहितजन्यं तत्समवहितजन्यं च तथायद्येतदुभयजन्य एव न स्यात्तदा जन्य एव न स्यादिति भावः०।

ननु नायं वह्नि-धूमव्याप्तिग्रहोपयोगी वह्निव्यभिचारित्वापादकतर्कस्यैव तथात्वात्। न चातथात्वेऽपि क्षतिविरह इति वाच्यं। तादृशवह्नि-धूमव्याप्तिग्राहकतर्क एव अनवस्थाप्रदर्शनादिति(१) चेत्। न। तथापि परम्परया वह्नि-धूमव्याप्तिग्रहोपयोगित्वात्, तथाहि

(१) अनवस्थाशङ्कानिरासाविति ग०।

धूमोऽवह्नेरेव भविष्यति क्वचिद्वह्निं विनापि भवि-

---

धूमो यदि वह्निव्यभिचारी स्यात् वह्निजन्यो न स्यादिति वह्नि-धूमव्याप्तिग्राहकस्तर्कस्तत्र च वह्निजन्यत्वरूपाद्यव्यतिरेकनिश्चयः[१] हेतुः बाधबुद्धेस्तार्किकबुद्धौ[२] हेतुत्वात् तस्मिंश्चान्वय-व्यतिरेकाभ्यां प्रत्यक्षतो वह्निजन्यत्वनिर्णये वह्निजन्यत्वशङ्का विरोधिनी संशय-सामग्रीसम्पादकत्वात्[३] तच्छङ्काविरोधी चायं तर्क इति, अत्र च वह्निशून्यत्वदशायां वह्निमद्देशोत्पन्ने घटादौ मूलशैथिल्यवारणाय[४] विशिष्टान्तं द्वितीयभिन्नत्वविशेषणं, तत्प्रतियोगिविशेषणत्वे तद्दोष-तादवस्थ्यात्, वह्निं विनानुत्पद्यमानत्वं तदर्थः,[५] स्वसमानाधिकरण-वह्निमदन्यस्वाव्यवहितपूर्वक्षणकं यद्यत्तदन्यत्वमिति तु निष्कर्षः, स्वपदमन्यत्वप्रतियोगिपरं, अन्यथा[६] इदानीन्तनघटादेः सामग्री-

---

(१) वह्निजन्यत्वाभावरूपासाध्याभावस्य वह्निजन्यत्वात्मकस्य निश्चय इत्यर्थः।

(२) तार्किकबुद्धौ तर्कात्मकबुद्धौ इत्यर्थः।

(३) ननु संशयनाशोत्तरं वह्निजन्यत्वनिश्चय इत्यत आह संशयसामग्रीति संशयस्य संशयसामग्रीसम्पादकत्वादिति तदर्थः तथाच यावत् तर्का-दिरूपप्रतिबन्धकसमवधानं न भवति तावत् संशयधारैव उत्पद्यत इति भावः।

(४) 'मूलं' व्याप्तिः, तस्याः 'शैथिल्यं' व्यभिचारः, तद्वारणायेत्यर्थः।

(५) 'तदर्थः' तत्पदार्थ इत्यर्थः।

(६) 'अन्यथा' सामानाधिकरण्यानिवेशे।

व्यति अहेतुक एव वोत्पत्स्यत इति शङ्का स्यात् सर्व्वच

कालेऽपि कुत्रचित् देशे वह्निसत्त्वेन मूलशैथिल्यतादवस्थ्यात् महाप्रलये मानाभावात्(१) खण्डप्रलयेऽपि ब्रह्माण्डान्तरे वह्नि-सत्त्वात् सामग्रीमात्रस्यैव वह्न्यधिकरणक्षणवृत्तित्वेनाप्रसिद्धिप्रसङ्गाच्च। न तु वह्न्यघटितसामग्र्यजन्यत्वं तत् धूमे प्राक् तदनिश्चयात् आपाद्याभावेनापादकाभावसाधने विशेष्यविरहप्रकारकसिद्ध्यर्थं तन्निश्चयस्यापेक्षितत्वात्। वह्न्यसमवहिताजन्ये वह्निजन्यालोकादौ मूलशैथिल्यवारणाय विशेष्यदलं। न च चरमसमवहितपदं व्यर्थं वह्निजन्यत्वाभावस्यैव सम्यक्त्वादिति वाच्यं। वह्न्यजन्ये वह्निसमवधाननियतोत्पत्तिके घटादिविशेषे मूलशैथिल्यापत्तेः। वह्निसमवहितजन्यत्वञ्च वह्निकालीनसामग्रीजन्यत्वं स्वसमानाधिकरणवह्निमत्त्वाव्यवहितपूर्वक्षणकत्वं इति तु निष्कर्षः। अन्यथा इदानीन्तनजन्यमात्रस्यैव वह्न्यधिकरणक्षणवृत्तिसामग्रीजन्यतया पक्षीभूतधूमेऽपि(२) तादृशसामग्रीजन्यत्वनिश्चयसत्त्वेन तर्कवैफल्यापत्तेः। न तु वह्निघटितसामग्रीजन्यत्वं तत् तथा सति वह्न्यजन्ये वह्निसमवधाननियतोत्पत्तिकघटादिविशेषे मूलशैथिल्यापत्तेः। वह्निसमानाधिकरणत्वे सतीत्यनेन चापाद्यप्रतियोगि विशेषणीयत्वेन वह्निव्यधि-

(१) महाप्रलयाङ्गीकारे तु चरमध्वंसे तादृशाभावप्रतियोगित्वं सम्भवतीति भावः।

(२) धूमे तादृशसामग्रीजन्यत्वं वह्निजन्यत्वसत्त्वमेवेत्यभिप्रायः।

स्वक्रियाव्याघातः स्यात्, यदि हि गृहीतान्वय-व्यति-

करणे वह्निजन्यरूपादौ वह्निव्यधिकरणे घटादौ च मूलशै-
थिल्यं। न च पक्षतावच्छेदकविशिष्टे आपाद्याभावेनापादका-
भावसाधने नियमतो यद्धर्मावच्छिन्नं सिद्ध्यति तद्धर्मावच्छिन्ना-
भावकोटिकसंशयं प्रत्येव तर्को विरोधीति नियमः प्रकृते तु
धूमे उत्पन्नत्वाभावाभावेनोत्पन्नत्वेन वह्न्यसमवहितजन्यभिन्नत्ववि-
शिष्टवह्निसमवहितजन्यभिन्नत्वस्यापादकीभूतस्याभावसाधने वह्निज-
न्यभिन्नत्वाभावरूपस्य विशेष्याभावस्य न सिद्धिः[१] विशिष्टाभावस्या-
तिरिक्तस्यैव सिद्धिः तथाच कथमस्य वह्निजन्यत्वाभावकोटिकसंशय-
विरोधित्वमिति वाच्यं। विशिष्टाभावस्य विशेषण-विशेष्याभावान-
तिरिक्ततया वह्निजन्यभिन्नत्वाभावरूपस्य विशेष्याभावस्य सिद्धिः।
अथ तथापि न वह्निजन्यभिन्नत्वाभावत्वरूपेण वह्निजन्यत्वस्य
सिद्धिरनुमितेर्व्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्वनियमेन विशिष्टाभावत्वेनैव
तत्सिद्धिः। न च विशेषणाभावबाधनिश्चयसहकाराद्व्यापकतानवच्छेद-
केनापि विशेष्याभावत्वेन तत्सिद्धिरिति वाच्यं। तथापि पक्षे विप-
र्ययानुमाने[२] पूर्वं विशेषणाभावबाधप्रतिसन्धानानावश्यकतया निय-
मतस्तेन रूपेणासिद्धेरिति चेत्। न। वह्न्यसमवहिताजन्यत्वेन पक्षस्यापि

(१) वह्निजन्यभिन्नत्वाभावत्वावच्छिन्नवह्निजन्यत्वस्य न सिद्धिरिति ख०, ग०, घ०।

(२) आपाद्याभावेनापादकाभावानुमाने इत्यर्थः।

रेकं हेतुं विना कार्य्योत्पत्तिं शङ्केत तदा स्वयमेव

---

विशेषणीयत्वात् तथाच पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने विपर्य्ययानुमाने पूर्वं विशेषणाभावबाधप्रतिसन्धानस्यावश्यकतया नियमतो वह्नि-जन्यभिन्नत्वाभावत्वरूपेण वह्निजन्यत्वसिद्धिरप्रत्यूहेति सम्प्रदायविदः । तदसत् वह्निसमवहितजन्यभिन्नत्वस्यैव विशेष्यतया बाधसहकारेण तदभावत्वेन तदभावस्य वह्निसमवहितजन्यत्वरूपस्य सिद्धावपि वह्नि-जन्यभिन्नत्वाभावत्वरूपेण वह्निजन्यभिन्नत्वाभावस्य वह्निजन्यत्वरूप-स्यासिद्धेर्वह्न्यजन्यस्यापि वह्निनान्तरीयकस्य(१) घटादेः वह्निसम-वहितजन्यतया वह्निसमवहितजन्यत्व-वह्निजन्यत्वयोरत्यन्तं भेदात् वह्निजन्यत्वासिद्धौ च कुतोऽस्य वह्निजन्यत्वसंशयप्रतिबन्धकत्वं । न च धूमो यदि संयोगसम्बन्धावच्छिन्नोत्पत्तिसम्बन्धेन . वह्निव्यभिचारी स्यात् वह्निसमवहितजन्यो न स्यादिति तर्को वह्नि-धूमव्याप्तिग्रहो-पयोगी तत्र च बाधनिश्चयविधया वह्निसमवहितजन्यत्वनिश्चयो हेतुस्तन्निश्चयविरोधिनो वह्निसमवहितजन्यत्वसंशयस्य निवर्त्तकतयै-वास्य वह्नि-धूमव्याप्तिग्रहोपयोगित्वसम्भवेन वह्निजन्यत्वसंशयाप्रतिब-न्धकत्वेऽपि न क्षतिरिति वाच्यं । स्वसमानाधिकरणवह्निमत्त्वाव्यव-हितपूर्वक्षणकत्वरूपस्य वह्निसमवहितजन्यत्वस्य धूमे निश्चितत्वेन तत्संशयनिवृत्त्यर्थं तर्कवैफल्यात् धूमे तन्निश्चयासत्त्वे तु वह्न्यन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वनिश्चयस्य सत्यन्तदलसंशयप्रतिबन्धकत्वस्य वक्ष्य-माणस्यासङ्गतत्वापत्तेः निरुक्तवह्निसमवहितजन्यत्वस्यैव वह्न्यन्वय-व्यति-

---

(१) वह्निसमवधाननियतोत्पत्तिकस्येत्यर्थः ।

धूमार्थं वह्नेः तृप्त्यर्थं भोजनस्य परप्रतिपत्त्यर्थं शब्दस्य चोपादानं नियमतः कथं कुर्य्यात् ।

---

रेकानुविधायित्वरूपत्वात् । किञ्च पक्षतावच्छेदकविशिष्टे आपाद्या-भावेनापादकाभावसाधने यद्धर्म्मावच्छिन्नविधेयतावच्छेदककसिद्धिर्भवति तद्धर्मावच्छिन्नाभावकोटिकसंशयं प्रत्येव तर्को विरोधीत्येव नियमः, अन्यथा महत्त्व-दीर्घत्वेतरपरिमाणाभाववान् घटोयदि परिमाणवान् स्यात् द्रव्यं न स्यादित्यस्यापि घटो महान् वेत्यादिसंशयप्रतिबन्धक-त्वापत्तिः । बाधसहकारेण विपर्य्ययानुमाने महत्त्वत्वावच्छिन्नस्य दीर्घत्वत्वावच्छिन्नस्य च सिद्धेः, तथाच प्रकृते बाधसहकारेण व्यापक-तानवच्छेदकीभूतेन विशेष्याभावत्वेन सिद्धावपि न तन्मात्रप्रका-रेण सिद्धिः व्यापकतावच्छेदकीभूतेन विशिष्टाभावत्वेनापि विशेष-णाभाव-विशेष्याभावयोः सिद्धौ बाधकाभावादिति वह्निसमवहित-जन्यत्वसंशयं प्रत्येव कुतोऽस्य प्रतिबन्धकत्वं ।

नव्यास्तु वह्निसमवहिताजन्यः स्यादित्यत्र वह्निसमवहितजन्यत्वं वह्निजन्यत्वमेव वक्तव्यं, सत्यन्तन्तु आपाद्यकोटिप्रतियोगिविशेषणं वक्तव्यं, तथाच धूमो यदि वह्निजन्यत्वाभाववान् स्यात् वह्न्यसमवहि-ताजन्यत्वविशिष्टस्योत्पन्नत्वस्याभाववान् स्यादित्याकारकस्तर्कः, अत्र घटादौ मूलशैथिल्यवारणायापाद्ये विशिष्टान्तं प्रतियोगिविशेषणं न त्वभावविशेषणं घटादौ मूलशैथिल्यतादवस्थ्यापत्तेः[१] तदर्थञ्च

---

(१) आपादके आपाद्याभाववद्वृत्तित्वरूपस्य व्यभिचारस्य तादवस्थ्यापत्ते-रित्यर्थः ।

उक्त एव, न तु वह्निमद्भिन्नदेशोत्पत्तिकान्यत्वं तत्[१] वह्निमति वह्नेः पूर्वमुत्पन्ने रासभादौ व्यभिचारापत्तेः। अजन्ये मूलशैथिल्यवारणाय विशेष्यं[२]। न च वह्न्यजन्ये वह्निसमवधाननियतोत्पत्तिके घटादिविशेषे मूलशैथिल्यमिति वाच्यं। उत्पन्नत्वं हि वह्न्यसमवहितवह्नि-तत्संयोगेतरयावत्कारणाधिकरणक्षणकत्वं, नान्तरीयके उक्तमूलशैथिल्यवारणाय वह्न्यसमवहितेति क्षणविशेषणं स्वसमानाधिकरणवह्निमदन्यत्वं तदर्थः, वह्निनान्तरीयकस्य यावत्कारणाधिकरणक्षणस्तु न वह्निमदन्यः तथा सति वह्निं विनापि तदुत्पत्त्यापत्तेः, न हि यावत्कारणसत्त्वे कार्य्यविलम्बः, पचीभूते धूमे दृष्टापत्तेः महाप्रलये मानाभावात् खण्डप्रलयेऽपि ब्रह्माण्डान्तरे वह्निसत्त्वादसिद्धेर्वारणाय स्वसमानाधिकरणेति वह्निविशेषणं, वह्न्यसमवहिताजन्यत्वविशिष्टस्य वह्न्यसमवहितयावत्कारणाधिकरणक्षणकत्वस्याप्रसिद्धत्वाद्वह्नि-तत्संयोगेतरेति यावत्कारणविशेषणं, इत्थञ्च धूमे एव प्रसिद्धिः, दण्डादियत्किञ्चित्कारणाधिकरणक्षणस्य वह्न्यसमवहितत्वान्नान्तरीयकघटविशेषादौ मूलशैथिल्यतादवस्थ्यात् यावदिति। न च वह्न्यजन्ये वह्न्यभिघातजाततण्डुलादिकर्मणि पाकजरूपादिनाशे च व्यभिचार इति वाच्यं। संयोगेन स्वसमानाधिकरणस्य उत्पन्नत्वघटकवह्न्यसमवहितत्वघटकतया भेदकूटस्यापाद्यस्य

---

(१) वह्न्यसमवहिताजन्यत्वमित्यर्थः।

(२) उत्पन्नत्वमिति तदर्थः, वह्न्यसमवहितजन्यभिन्नत्वविशिष्टाभावनिवेशे तादृशभिन्नत्वविशिष्टगगनत्वादिकमादाय व्यभिचारः स्यादत उत्पन्नत्वपदमिति भावः।

तथापि सत्त्वात्। ननु तथापि आपाद्यप्रतियोगिनो विशिष्टस्या-प्रसिद्धिः धूमावयव-तदुभयसंयोग-धूमप्रागभावघटिततद्धूमीययावत्-कारणस्य धूमोत्पत्त्यव्यवहितप्राक्क्षण एव सत्त्वेन तदानीं वह्नेरपि कारणतया आवश्यकत्वेन धूमीयवह्नि-तत्संयोगेतरयावत्कारणा-धिकरणक्षणस्यापि वह्न्यसमवहितत्वाभावाद्धूमेऽपि विशिष्टप्रसिद्ध्य-सम्भवात्[१]। न च वह्निविरहेऽपि तदुत्पन्नधूमद्व्यणुकानामेव परस्प-रसंयोगक्रमेण धूमोत्पादसम्भवात् न तदानीं वह्नेरावश्यकत्वं धूमनिष्ठजातिविशेषस्यैव वह्नि-तत्संयोगजन्यतावच्छेदकतया धूमं प्रति तयोर्व्यभिचाराभावात्तथाच तादृशधूम एव प्रसिद्धिरिति वाच्यं। तादृशधूमस्य घटादितुल्यतया तत्र सत्यन्तदलाभावेनैव विशिष्टप्रसिद्ध्यसम्भवात्। न च यावत्कारणपदेन संयोगसम्बन्धाव-च्छिन्नत्वनिष्ठजन्यताप्रतियोगिककारणताश्रयो यावान् विवक्षणीयः भेदकूटस्यापाद्यं तथाच धूमे एव प्रसिद्धिरिति वाच्यं। यस्य नान्तरीयकस्य घटविशेषादेः संयोगसम्बन्धावच्छिन्नजन्यताप्रतियो-गिककारणताश्रयो दण्डादिर्यावान् वह्न्यनधिकरणकाले वर्त्तते केव-लमवयवसंयोगमात्रं वह्न्यधिकरण एव काले जातं तादृशनान्तरीयके व्यभिचारापत्तिरिति। मैवं। यत्र धूमावयवद्वयोत्पत्तिर्वह्नेर्नाशस्ते-ष्वेकः कालः ततो धूमावयवद्वयसंयोगः तदनन्तरं न वह्निजन्य-तावच्छेदकाक्रान्तधूमोत्पत्तिः तत्र वह्नि-तत्संयोगयोः साक्षात् हेतुत्वेन तद्विरहात् अपि तु वह्न्यन्तरोत्पत्तिस्ततस्तत्संयोगोत्पत्ति-

---

(१) विशिष्टस्याप्रसिद्धिरिति ग०।

स्तात्  पूर्व्वोत्पन्नधूमावयवद्वयसंयोगाद्वह्निजन्यविलक्षणधूमोत्पत्तिक्षणे चैव धूमव्यक्तिविशेषे विशिष्टप्रसिद्धिसम्भवात् धूमावयवद्वयसंयोगोत्पत्तिक्षणस्यैव तदीयतादृशयावत्कारणाधिकरणत्वेन तदानीं वह्न्यभावस्य सत्त्वात् उत्पत्तिप्राकक्षणे च वह्नेः सत्त्वात्। न च तत्रैव विशिष्टप्रसिद्धौ धूममात्रस्य पक्षत्वात् धूमान्तरे अंशत इष्टापत्तिरिति वाच्यं। पक्षतावच्छेदकावच्छेदेनापत्तेरुद्देश्यत्वादिति प्राञ्चरिति संक्षेपः।

'अवह्नेरेवेति न विद्यते वह्निर्यत्रेति व्युत्पत्त्या स्वसमानाधिकरणवह्निमद्भिन्नात् क्षणादेवेत्यर्थः, अव्यवहितोत्तरत्वं पञ्चम्यर्थः, 'क्वचिद्वह्निं विनापीति किं धूमः क्वचिद्व्यवहितपूर्वं स्वसमानाधिकरणवह्निं विनापि भविष्यतीत्यर्थः, 'अहेतुक इति किं धूमो निर्हेतुक एवोत्पत्स्यते इत्यर्थः, 'इति शङ्का स्यादिति इति शङ्का विरोधिनी स्यादित्यर्थः। आद्यशङ्काद्वयस्य सम्प्रदायमते निरुक्तवह्न्यसमवहिताजन्यत्वरूपपक्षविशेषणाभावविषयकतया तर्कजनकपरामर्शविघटकत्वेन तर्कविरोधित्वात् पक्षतावच्छेदकांशेऽनाहार्य्यपरामर्शस्यैव तर्कजनकत्वात्। नव्यमते तु निरुक्तवह्न्यसमवहिताजन्यत्वरूपापाद्यप्रतियोगिविशेषणाभावविषयकतया तर्कजनकापाद्यव्यतिरेकनिर्णयविघटकत्वेन तर्कविरोधित्वात्। तृतीयायास्तु सम्प्रदायमते व्याप्यसंशयविधया आपाद्याभाववत्तया निश्चिते पक्षे आपादकसंशयात्मकानाहार्य्यव्यभिचारसंशयाधायकतया तर्कविरोधित्वात्। नव्यमते आश्रये च पक्षे आपाद्यप्रतियोगिकोटिविशेष्यविरोधित्वेन तर्कजनकापाद्यव्यतिरेकनिश्चयविघटकतया तर्कविरोधित्वादिति भावः।

न चानयोः शङ्कयोरभेद इति वाच्यं। प्रथमा धूमत्वावच्छेदेन, द्वितीया धूमत्वसामानाधिकरण्येनेति भेदात्। न चैवं धूमत्वसामानाधिकरण्येन वह्न्यसमवहितताजन्यत्वसत्त्वेऽपि धूमत्वसामानाधिकरण्येन वह्न्यसमवहितताजन्यत्वनिश्चये बाधकाभावात् द्वितीयसंशयस्य कुतस्तर्कविरोधित्वमिति वाच्यं। विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन बाधनिश्चयस्य विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन विशिष्टबुद्ध्यप्रतिबन्धकत्वेऽपि[१] विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन बाधसंशयस्य संशयसामग्रीसम्पादकतया विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन विशिष्टनिश्चयं प्रत्यपि प्रतिबन्धकत्वात्। 'सर्व्वंचेति षष्ठ्यर्थे सप्तमी सर्व्वस्याः शङ्काया इत्यर्थः, 'स्वक्रियाव्याघात इति, 'स्वं' तर्कप्रयोक्ता पुरुषः[२] तस्य या 'क्रिया' वह्न्यन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानं, क्रियते प्रवर्त्ततेऽनेनेति व्युत्पत्तेः, तेन 'व्याघातः' तत्प्रयुक्तोऽनुत्पाद इत्यर्थः, अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां प्रत्यक्षतो वह्निजन्यत्वनिश्चय एवैतत्तर्कस्य सहकारितया वह्न्यन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानस्य अवश्यं पूर्व्वं सत्त्वादिति भावः। अन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानस्य तादृशशङ्कानुत्पादप्रयोजकत्वे मानमाह, 'यदि होति, 'गृहीतान्वयेति तदन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानसत्त्वेऽपि तदसमवहितजन्यत्वं सामान्यतोऽहेतुकत्वं वा शङ्केतेत्यर्थः, 'परप्रतिपत्त्यर्थं' परकी-

---

(१) अवच्छेदावच्छेदेन विशिष्टबुद्धिं प्रति सामानाधिकरण्येन बाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वमिति भावः

(२) तर्कवत्पुरुष इति क०।

तेन विनापि तत्सम्भवात् तस्मात्तत्तदुपादानमेव ताद्द-

यग्राह्यबोधार्थं, 'उपादानं' प्रयत्नः, 'नियमतः' अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां प्रत्यक्षेण धूमादिरूपेष्टसाधनतानिश्चयतः, न हि धूमादौ वह्न्याद्य-समवहितोत्पत्तिकत्वस्याहेतुकत्वस्य वा ग्रहस्य सामग्र्यां सत्यां वह्न्यादौ धूमादिरूपेष्टसाधनतानिश्चयः सम्भवतीत्याह, 'तेनेति तादृग्ग्रहसामग्रीसमवधानेनेत्यर्थः, 'विनापि' विनैव, 'तत्सम्भवात्' वह्न्यादौ धूमादिरूपेष्टसाधनतानिर्णयसम्भवात्। ननु कार्य्यानुत्पादस्य कारणविरहमात्रप्रयुक्तत्वात् कथं तादृग्ग्रहानुत्पादस्य स्वक्रिया-प्रयुक्तत्वमत-आह, 'तस्मादिति, प्रयत्नान्यथानुपपत्त्येति शेषः, 'तदुपादानमेवेति वह्न्युपादानमित्यर्थः, उपादानञ्च(१) उपादत्ते प्रवर्त्ततेऽनेनेति करणव्युत्पत्त्या प्रवृत्तिप्रयोजकीभूतान्वय-व्यतिरे-कानुविधायित्वज्ञानपरं।

यत्तु भावव्युत्पत्त्या उपादानं प्रवृत्तिः पूर्व्वमपि स्वक्रियापदं तत्परमिति। तन्न। प्रवृत्तेः शङ्काप्रतिबन्धकत्वे मानाभावात् प्रवृत्तेः कारणताग्रहोत्तरकालीनत्वेन तत्पूर्व्ववर्त्तिशङ्काप्रतिबन्धकत्वासम्भ-वाच्च।

केचित्तु करणव्युत्पत्त्या उपादानपदं धूमादिसाधनतानिश्चयपरं पूर्व्वमपि स्वक्रियापदं तत्परमित्याहुः। तदसत्। धूमादिसा-

(१) उपादानञ्च उपादानपदञ्चेत्यर्थः।

शशङ्काप्रतिबन्धकं शङ्कायां न नियतोपादानं निय-

धनतानिश्चयस्य तर्कान्तरकालीनत्वेन तत्पूर्व्ववर्त्तिशङ्काप्रतिबन्धकत्वा-भावात्।

तस्य शङ्काप्रतिबन्धकतायामन्वय-व्यतिरेकौ दर्शयति, 'शङ्का-यामिति, यतः इत्यादि, यतः शङ्कायामुत्पद्यमानायां 'न निय-तोपादानं' नान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानं, 'नियतोपादाने च' अन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञाने च, 'न शङ्का' इत्यर्थः, नियतमु-पादानं यस्येति व्युत्पत्त्या नियतोपदानपदस्यान्वय-व्यतिरेकानुविधा-यित्वज्ञानपरत्वात्। न च वह्न्यन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वस्य वह्नि-सत्त्वे उत्पद्यमानत्वे सति वह्निं विनानुत्पाद्यमानत्वरूपतया निरुक्त-वह्न्यसमवहितजन्यत्वाभावघटितत्वेन तन्निश्चयस्य बाधनिश्चयतया प्रथमसंशयप्रतिबन्धकत्वसम्भवेऽपि विरोध्यविषयकतया कथं तृतीय-शङ्काप्रतिबन्धकत्वं कथं वा द्वितीयशङ्काप्रतिबन्धकत्वमपि अंशतो बाधनिश्चयस्य विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन संशयाप्रतिब-न्धकतया बाधनिश्चयविधया द्वितीयशङ्काप्रतिबन्धकत्वासम्भवादिति वाच्यं। वह्न्यन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वावच्छेदेन वह्निजन्यालोकादौ नान्तरीयवह्निके घटादौ च वह्न्यसमवहिताजन्यत्व-सहेतुकत्वनिश्च-याद्व्यावर्त्तकधर्मदर्शनविधयैव तस्य तादृशशङ्कायामपि प्रतिबन्धकत्वात्। न चांशतोबाधनिश्चयवदंशतो व्यावर्त्तकधर्मदर्शनमपि न विशे-ष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन संशयनिवर्त्तकमिति वाच्यं। बाध-निश्चयस्थले तथा नियमेऽपि व्यावर्त्तकधर्मदर्शनादिस्थले तथा

तोपादाने च न शङ्का, तदिदमुक्तं "तदेव ह्याशङ्क्यते",

नियमविरहात्। न चैवं वह्न्यन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानं व्यावर्त्तकधर्म्मदर्शनविधया वह्निजन्यत्वसंशयं प्रत्येव प्रतिबन्धकमस्तु किमुक्ततर्केणेति वाच्यं। अनन्यथासिद्धत्वाविशेषितस्य वह्न्यन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वस्य नान्तरीयकवह्निके घटादौ वह्निजन्यत्वव्यभिचारितया[१] वह्निजन्यत्वाभावव्यावर्त्तकत्वाभावात् तद्विशेषितस्य[२] वह्न्यन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वस्य च वह्निजन्यत्वानतिरिक्तत्वात् उपायान्तरस्योपायान्तरादूषकत्वाच्च। न च सर्व्वत्र धूमे वह्न्यन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानविरहाद्यत्र तादृशज्ञानं तत्र वह्न्यसमवहितजन्यत्वादिसंशयासम्भवेऽपि धूमान्तरे तत्संशये किं बाधकमिति वाच्यं। समानधर्म्मितावच्छेदककव्यावर्त्तकधर्म्मदर्शनस्यैव प्रतिबन्धकतया धूमत्वरूपेण यत्किञ्चिद्धूमे वह्न्यन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानसत्त्वे धूमान्तरेऽपि तेन रूपेण वह्न्यसमवहितजन्यत्वसंशयायोगात् गृहीतान्वय-व्यतिरेकधूमव्यक्तिविशेषस्यैव वा धूमत्वरूपेण तर्के पक्षतया धूमान्तरे तत्संशयेऽपि क्षतिविरहात्। न चैतावता वह्न्यसमवहितजन्यत्वादिसंशयस्य तर्केतरप्रतिबन्धकवशान्निवृत्तावपि व्यभिचारसंशयनिवृत्त्यर्थमवश्यं तर्कान्तरापेक्षा पक्षभिन्ने आपाद्याभावविरहेऽपि आपाद्याभावांशे भ्रमात्मकस्य पक्षभिन्ने

(१) सर्व्वत्र तदव्यभिचरितधर्म्मस्यैव तदभावव्यावर्त्तकत्वमिति भावः।

(२) अनन्यथासिद्धत्वविशेषितस्येत्यर्थः।

यस्मिन्नाशङ्क्यमाने स्वक्रियाव्याघातो न भवतीति। न हि सम्भवति स्वयं वह्न्यादिकं धूमादिकार्य्यार्थं नियमत उपादत्ते तत्कारणं तन्नेत्याशङ्कते चेति। एतेन व्याघातो विरोधः स च सहानवस्थाननियम इति तत्राप्यनवस्थेति निरस्तं। स्वक्रियाया एव शङ्काप्रतिबन्धकत्वात्।

---

व्यभिचारसंशयस्य सम्भवादिति वाच्यं। अनायत्या व्यभिचारसंशयं प्रत्यपि तत्तदन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानव्यक्तेर्विरोध्यविषयकत्वेऽपि प्रतिबन्धकत्वोपगमात् एवं क्रमेण वह्निजन्यत्वादिसंशयं प्रत्येव तस्य प्रतिबन्धकत्वसम्भवेऽप्युपायान्तरस्योपायान्तरादूषकत्वान्न तर्कवैयर्थ्यमिति भावः। स्वोक्ते प्राचां संवादमाह, 'तदिदमुक्तमिति, 'तदेवेत्यादि 'आशङ्कते चेत्यन्तं प्राचीनग्रन्थः, 'आशङ्कते' प्रवृत्तिपूर्वं शङ्काविषयो भवति, 'आशङ्क्यमाने' प्रवृत्तिपूर्वं सन्देहविषये सति, 'स्वक्रियेति, 'स्वक्रियायाः' स्वप्रवृत्तेः, 'व्याघातो न भवति' इत्यर्थः। ननु धूमोऽवह्नेरेव भविष्यतीत्यादिसंशयेऽपि प्रवृत्तिर्नानुपपन्नेत्यत आह, 'न हीति, 'नियमतः' धूमादिरूपेष्टसाधनतानिर्णयतः, 'उपादत्ते' प्रयत्नविषयं कुरुते, 'तत्कारणमिति तदव्यवहितपूर्ववर्त्ति तन्नेत्यर्थः, धूमोऽवह्नेरेव भविष्यतीत्यादिसंशयस्यैव प्रतिबन्धकत्वात्[१]। 'एतेनेति 'निरस्तमित्यनेनान्वयः, 'तत्रापि' तज्ज्ञानेऽपि, स्वक्रियायाः

---

(१) प्रकृतत्वादिति ख०, ग०, घ०।

अत एव "व्याघातो यदि शङ्कास्ति न चेच्छङ्का ततस्तराम् । व्याघातावधिराशङ्का तर्कः शङ्कावधिः कुतः" ॥ इतिखण्डनकारमतमप्यपास्तम् । न हि व्याघातः शङ्काश्रितः, किन्तु स्वक्रियैव शङ्काप्रतिबन्धिकेति, न वा विशेषदर्शनात् क्वचित् शङ्कानिवृत्तिरेवं स्यात् । न चैतादृशतर्कावतारो भूयोदर्शनं विनेति भूयोदर्शनादरः, न तु स स्वतएव प्रयोजकः । अत एव तदाहितसंस्कारो न मानान्तरं तर्कस्याप्रमात्वात्, तच्च

व्याघातज्ञानं प्रतिबन्धकमुक्तं, व्याघातश्च विरोधः, विरोधश्च स्वक्रियायास्तादृशसंशयेन सहानवस्थाननियमः[१], नियमश्च व्याप्तिरेवेति, तज्ज्ञानेऽपि व्यभिचारशङ्का विरोधिनी, तन्निवृत्तिश्च तर्कान्तरादित्यनवस्थेत्यर्थः । 'स्वक्रियाया इति स्वस्य क्रिया प्रवृत्तिर्यस्या इति व्युत्पत्त्या स्वक्रियाप्रयोजकीभूतनियतान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वबुद्धेरित्यर्थः । 'व्याघातोयदीति व्याघातो यद्यस्ति तदा शङ्काप्यवश्यमस्तीत्यर्थः, स्वक्रियाप्रवृत्तिशङ्काप्रतियोगिकविरोधरूपस्य व्याघातस्य प्रतियोगिनीं शङ्कां विना स्थातुमशक्यत्वादित्यभिमानः । 'न चेदिति न चेद्व्याघातस्तदा, 'ततः' प्रतिबन्धकाभावतः, 'तरां' सुतरां शङ्केत्यर्थः, 'व्याघातावधिरिति, तथाचेत्यादि, 'व्याघातावधिः' व्याघातनिवृत्त्या व्याघातप्रतिबध्या, 'आशङ्का', 'तर्कस्य,

(१) नियतसहानवस्थानमिति ख०, ग० ।

प्रत्यक्षव्याप्तिज्ञाने हेतुः तदभावेऽपि शब्दानुमानाभ्यां तद्ग्रहात्। ननु सहचारदर्शन-व्यभिचारादर्शनव्यभिचारशङ्काविरहानुकूलतर्कयोर्ज्ञानं व्यभिचारिसाधारणमिति न ततोऽपि व्याप्तिनिश्चय इति चेत्। न। स्वरूपसतोरेव तयोर्व्याप्तिग्राहकत्वात्। सत्तर्काद्व्याप्तिप्रमा तदाभासात्तदप्रमा विशेषदर्शनसत्यत्वासत्यत्वाभ्यां पुरुषज्ञानमिव।

---

'शङ्कावधिः' शङ्कानिवर्त्तकः कुत इत्यर्थः, व्याघातसत्त्वे शङ्कायाः आवश्यकत्वेन व्याघातस्य शङ्कानिवर्त्तकत्वासम्भवात्, व्याघातस्य शङ्कानिवर्तकत्वाभावे शङ्कया तर्कस्यैवानवतारेण तर्कस्यापि शङ्कानिवर्त्तकत्वाभावादिति भावः। 'इत्यपास्तमिति खण्डनकारमतमपास्तं, क्वचित्तथैव पाठः। 'शङ्काश्रितः' शङ्काप्रतियोगिकः, प्रतिबन्धक इति शेषः। 'स्वक्रियैवेति स्वस्य क्रिया प्रवृत्तिर्यस्या इति व्युत्पत्त्या स्वक्रियाप्रयोजकीभूतनियतान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वधीरेवेत्यर्थः। शङ्काप्रतियोगिकविरोधस्य प्रतिबन्धकत्वेऽपि न क्षतिरित्यभिप्रायेणाह, 'न वेति, 'विशेषदर्शनात्' विरोधिभूतादर्शनात्, या शङ्कानिवृत्तिः साप्येवं न स्यात् विरोधप्रतियोगिनीं शङ्कां विना तद्विरोधाश्रयदर्शनस्य स्यातुमशक्यत्वादित्यर्थः। यदि च विरोधप्रतियोगिनो यदाकदाचित् यत्र कुत्रचित्[१]

---

(१) 'यत्र कुत्रचित्' इति पाठः घ० पुस्तके नास्ति।

अपरे तु यत्र तर्के व्याप्त्यनुभवो मूलं तत्र तर्कान्तरापेक्षा, यत्र तु व्याप्तिस्मरणं हेतुः तत्र न तर्कान्तरापेक्षेति नानवस्था, अस्ति च जातमात्राणामिष्टानिष्टसाधनतानुमितिहेतुव्याप्तिस्मरणं, तदानीं व्याप्त्यनुभावकाभावात्, तन्मूलानुभवमूला चाग्रेऽपि व्याप्तिस्मरणपरम्परेति ।

---

सत्त्वमात्रमपेक्षितं न तु तदा तत्र तदुत्तरं तत्सत्त्वमिति[१] विभाव्यते तदा तुल्यं प्रकृतेऽपीति भावः । नन्वेवं व्याप्तिज्ञानं भूयोदर्शनादिति सिद्धान्तः कथं सङ्गच्छते[२] इत्यपेक्षायामाह, 'न चेति, वह्नि-धूमयोर्भूयःसहचारनिश्चयं विना धूमे वह्न्यसमवहितसामग्र्यजन्यत्वनिश्चयासम्भवात् अयमेव धूमोवह्निपूर्वक एतदन्यस्तु न, एवं एतद्धूमद्वयमेव वह्निपूर्वकं न त्वेतदन्य इत्यादिशङ्कासम्भवादिति भावः । 'भूयोदर्शनादरः' कदाचित् कुत्रचित्तदुपयोगः, 'न त्विति, 'सः' भूयःसहचारग्रहः, 'स्वत एव' साक्षादेव, 'प्रयोजक इति व्याप्तिग्रहप्रयोजक इत्यर्थः । भूयोदर्शनस्य संस्कारद्वारा व्याप्तिग्राहकत्वे तदाहितसंस्कारस्य मानान्तरत्वापत्तिः यदसाधारणं सहकार्य्यासाद्य मनोवह्निर्गोचरां प्रमां जनयति तदेव प्रमाणान्तरमिति पूर्व्वपक्षोक्तं दूषयति, 'अत एवेति यत एव भूयोदर्शनजन्यसंस्कारस्तर्क एव

---

(१) न तु तदुत्तरं तत्र सत्त्वमितीति ग०, घ० ।

(२) संगच्छतामिति ग०, घ० ।

'यत्त्वनादिसिद्धकार्य्य-कारणभावविरोधादिमूलाः केचित्तर्का इति। तन्न। तत्र प्रमाणानुयोगेऽनुमान एव पर्य्यवसानात्। न च व्याप्तिग्रहान्यथानुपपत्त्यैव तर्कस्यानादिसिद्धव्याप्तिकत्वज्ञानमिति वाच्यम्। अनुपपत्तेरप्यनुमानत्वात्।

---

प्रयोजकः न तु व्याप्तिग्रहे अत एवेत्यर्थः, 'अप्रमात्वादिति, इदमापाततः तर्कस्याप्यंशतः प्रमात्वात्। वस्तुतस्तर्कस्य प्रामात्वेऽपि तं प्रति संस्कारो न जनकः किन्तु प्रयोजक एवेति न प्रमाणान्तरत्वमित्येव तत्त्वं। 'तच्चेति व्यभिचारसन्देहाभाववत्त्वञ्चेत्यर्थः, 'तदभावेऽपि' व्यभिचारसन्देहाभावाभावेऽपि व्यभिचारसन्देहेऽपीति यावत्, व्यभिचारसन्देहस्य योग्यतादिसन्देहरूपतया शब्दादिनार्थनिर्णयेऽविरोधित्वादिति भावः। भ्रान्तोदेशयति, 'नन्विति, 'व्यभिचारादर्शनवदिति व्यभिचारनिर्णयाभाववदित्यर्थः[१], यथा व्यभिचारनिश्चयाभाव-सहचारदर्शनं न व्याप्तिग्राहकं अन्यथा यत्र व्यभिचारसंशयो वर्त्तते तत्र व्याप्तिग्रहापत्तेः तत्रापि व्यभिचारनिश्चयाभाव-सहचारदर्शनयोः सत्त्वात्तथा व्यभिचारसंशयाभाव-तर्कयोर्ज्ञानं न व्याप्तिग्राहकं शङ्कासत्त्वदशायामपि व्यभिचारशङ्काविरहानुकूलतर्कयोर्ज्ञानसम्भवात् तत्र व्याप्तिग्रहापत्तेरिति[२]। 'व्यभिचारीति

---

(१) व्यभिचारानिश्चयवदित्यर्थ इति ग०, घ०।

(२) यथेत्यादिः व्याप्तिग्रहापत्तेरितीत्यन्तः पाठः ग० पुस्तके नास्ति।

अन्ये तु विपक्षबाधकतर्कादनौपाधिकत्वग्रह एव तदधीनो व्याप्तिग्रह इति, तदपि न, तर्कस्याप्रमाणत्वात्। व्यभिचारादिशङ्कानिरासद्वारा प्रत्यक्षादिसहकारी स इति चेत्। न। अनवस्थाभयेन तर्कं विना

सन्दिग्धव्यभिचारीत्यर्थः। 'व्याप्तिग्राहकत्वात्' व्याप्तिग्रहे प्रयोजकत्वात्। ननु तथापि व्यभिचारज्ञानविरहानुकूलतर्कयोर्व्यभिचारिण्यपि सत्त्वात् कथं प्रमा-भ्रमविभाग इत्यत आह, 'सत्तर्कादिति, यद्यपि तर्कस्य सत्त्वं मूलशैथिल्यादिदोषरहितत्वं, तद्विशिष्टत्वमेव[१] आभासत्वं तच्च न प्रामाण्याप्रामाण्यप्रयोजकं वस्तुगत्या व्याप्तिसत्त्वे तादृशदोषविशिष्टाद्धूमो यदि वह्निव्यभिचारी स्यात् पृथिवी न स्यादित्यादितर्कादपि प्रमा-भ्रमयोरुत्पादानुत्पादाभ्यां व्यभिचारात्। एवं विशेषदर्शने सत्यत्वासत्यत्वमपि न प्रामाण्यादिप्रयोजकं विषयस्याबाधितत्वेऽसत्यादपि विशेषदर्शनात् प्रमा-भ्रमयोरुत्पादानुत्पादाभ्यां व्यभिचारात्। न च तर्कस्य सत्त्वं वस्तुगत्या व्याप्तिमद्विषयकत्वं, आभासत्वञ्च वस्तुगत्या व्याप्यभाववद्विषयकत्वं, एवं विशेषदर्शनस्य सत्यत्वं वस्तुगत्या पुरुषत्ववद्विषयकत्वं, वस्तुगत्या तदभाववद्विषयकत्वञ्चासत्यत्वमिति वाच्यं। तथापि स्वतःसिद्धशङ्काविरहस्थले तर्कं विनैव व्याप्तिग्रहेण व्यभिचारात्तस्य प्रमा-भ्रमप्रयोजकत्वासम्भवात्। तथापि 'सत्तर्कात्' सत्यव्याप्तिज्ञानात्,

(१) मूलशैथिल्यादिदोषविशिष्टत्वमेवेत्यर्थः।

व्याघातात् यत्र शङ्काविरहस्तत्र व्याप्तिग्रहे तर्कस्य व्यभिचारात्।

यत्तु योग्यानामुपाधीनां योग्यानुपलब्ध्याभावग्रहः अयोग्यानान्तु साध्याव्यापकत्व-साधनव्यापकत्वसाध-

---

'तदाभासात्' तदभावात्, तथाच व्याप्तिप्रमात्वावच्छिन्नं प्रति व्याप्तिप्रमात्वेन हेतुत्वं समानविशेष्यत्वं प्रत्यासत्तिः। व्याप्तिभ्रमत्वावच्छिन्नं प्रति विशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्नव्याप्तिप्रमाविरहत्वेन हेतुत्वं विशेषणताविशेष-विशेष्यताभ्यां सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः। सर्व्वत्रान्ततोभगवद्व्याप्तिप्रमैव पूर्व्वं सुलभेति भावः। 'विशेषदर्शनसत्यत्वासत्यत्वाभ्यां' सत्यविशेषणज्ञान-तद्विरहाभ्यां, पुरुषत्वप्रमा-तद्विरहाभ्यामिति यावत्, 'पुरुषज्ञानमिव' पुरुषत्वप्रमा-भ्रम इव, तर्कस्य शङ्कामात्रनिवर्त्तकत्वाद्यत्र स्वतः सिद्धः शङ्काविरहस्तत्र तर्कं विनैव व्याप्तिग्रहः इति नानवस्थेति स्वयमुक्तं।

प्राञ्चस्तु तर्कस्य व्याप्तिग्राहकत्वमभ्युपेत्य प्रकारान्तरेणानवस्थां परिहरन्ति तदेवाह, 'अपरे त्विति, 'यत्र तु व्याप्तिस्मरणमिति, व्याप्त्यनुभवं प्रत्येव तर्कस्य हेतुत्वादिति भावः। व्याप्तिस्मरणे तर्कापेक्षा नास्तीत्यत्र हेतुमाह, 'अस्ति चेति भवति चेत्यर्थः, 'चः' हेतौ, 'व्याप्तिस्मरणमिति, तर्कं विनैवेति शेषः, 'व्याप्त्यनुभावकाभावादिति तर्काभावादित्यर्थः, यद्वा ननु जातमात्रस्य व्याप्तिज्ञानं स्मरणमेव न किन्तु अनुभवरूपमित्यत आह, 'तदानीमिति। ननु तथापि विनानुभवं स्मरणायोगात् जन्मान्तरीणो व्याप्त्यनुभवो हेतुर्व्वाच्यस्तत्र

नादभावग्रह इत्यनौपाधिकत्वं सुग्रहमिति। तत्तुच्छम्। अनुमानेन तत्साधनेऽनवस्थानात् प्रमाणान्तरस्याभावात्।

---

च तर्को हेतुस्तत्र च तर्के व्याप्त्यनुभवान्तरं हेतुरिति क्रमेणानवस्था तदवस्थैवेत्यत आह, 'तन्मूलेति व्याप्तिस्मरणमूलकोयः प्रागभवीयो व्याप्त्यनुभवस्तन्मूलिका, 'अग्रे' भाविजन्मनि, व्याप्तिस्मरणपरम्परेत्यर्थः, तथाच जन्मान्तरीयव्याप्तिस्मरणमूलीभूतव्याप्त्यनुभवमूलीभूततर्के व्याप्त्यनुभवो न हेतुः किन्तु व्याप्तिस्मरणमिति नानवस्था कदाचित् अन्तरान्तरा व्याप्तिस्मरणेन विच्छेदात् तर्कधाराया अविरलसन्तताभावादिति प्राचामाशयः। अत्रेदमस्वरसवीजं, न हि कदाचिदन्तरान्तराविच्छेद एवानवस्थापरिहारः, किन्तु आत्यन्तिकविच्छेद एवेति सकलसम्प्रदायसिद्धमिति।

कार्य्य-कारणभावविरोधादीनामनादिप्रसिद्धिविषयत्वनिश्चय एव कुत्रचित्तर्के संशयनिवर्त्तक इति केचिद्वदन्ति तन्मतमाशङ्क्य निराकरोति, 'यत्त्विति, 'अनादिसिद्धेति कार्य्यकारणभावविरोधादीनां विशेषणं, तथाच 'अनादित्वेन अनादिप्रसिद्धिविषयत्वेन, 'सिद्धाः' निश्चिताः, कार्य्य-कारणभावादयः क्वचित्तर्के संशयनिवर्त्तका इति नानवस्थेत्यर्थः, यथाश्रुते कार्य्य-कारणभावे विरोधे चानादित्वस्य दुर्व्वचत्वात्, 'आदिना व्याप्तिपरिग्रहः। 'तत्रेति कार्य्य-कारणभावादीनामनादिप्रसिद्धविषयत्वे इत्यर्थः, 'प्रमाणानुयोगे' प्रमा-

ये चानुकूलतर्कं विनैव सहचारादिदर्शनमात्रेण व्याप्तिग्रहं वदन्ति, तेषां पक्षेतरत्वस्य साध्यव्यापकत्व-

---

प्रसङ्गे[१], 'अनुमान एवेति प्रत्यक्षस्य तत्रासम्भवादित्यर्थः, तथाच तत्राप्यनुमाने तर्कापेक्षावश्यकीत्यनवस्था तदवस्थेति भावः। व्याप्ति-ग्राहकतर्कमूलभूतव्याप्तिग्रहो न तर्कान्तरादपि तु व्याप्तिग्रहान्यथा-नुपपत्तिग्रहादेव इत्याह, 'न चेति, 'अनुमानत्वात्' व्याप्तिनिश्चया-धीनप्रवृत्तिकत्वात्, यथाश्रुतासङ्गतेः परैरर्थापत्तेरनुमानत्वानभ्युप-गमात्, तथाच तत्रापि तर्कापेक्षावश्यकीत्यनवस्था तदवस्थैवेति भावः।

तदेवं व्यभिचारादर्शनसहकृतं सहचारज्ञानं व्याप्तिग्राहकं तर्कः शङ्कानुत्पत्तौ प्रयोजक इति व्यवस्थाप्य तर्कादनौपाधिकत्वग्रहस्त-दुभाभ्यां मिलित्वा व्याप्तिग्रह इत्येकदेशिमतमाशङ्क्य दूषयति, 'अन्ये त्वेति, 'तदधीन इति तयोरधीन इत्यर्थः। अनौपाधिकत्वग्रहे व्याप्तिग्रहे च तर्कः स्वतन्त्रो हेतुः, प्रमाणसहकारी वा, नाद्य-इत्याह, 'तर्कस्येति तथाच प्रमाणस्य स्वतन्त्रतया जनकत्वनियमेन तर्कस्य प्रमाणत्वासम्भवात् जनकत्वाभाव इत्यर्थः, द्वितीयमाशङ्कते, 'व्यभिचारादीति, आदिपदादुपाधिपरिग्रहः। 'व्याघातात्' तर्का-भावातिरिक्तकारणान्तराभावात्, 'विरहः' अनुत्पादः। 'व्याप्तिग्रहे' अनौपाधिकत्वग्रहे।

---

(१) 'प्रमाणानुयोगे' प्रमाणप्रश्ने, इत्ययं पाठः ख०, ग०, घ० पुस्तकेषु नास्ति।

ग्रहेऽनुमानमात्रमुच्छिद्येत, अनुमानमात्रोच्छेदकत्वादेव पक्षेतरो नोपाधिरिति चेत्, भ्रान्तोऽसि, न हि वयमुपाधित्वेन तस्य दोषत्वमाचक्ष्महे, साध्यव्यापकत्वेन तद्व्यतिरेकात् पक्षे साध्यव्यावर्त्तकतया व्यापकव्यतिरेके व्याप्यव्यतिरेकस्य वज्रलेपात्। अपि च कर-वह्निसंयोगः शक्त्यतिरिक्तातीन्द्रियधर्म्मसमवायी जनकत्वा-

---

अनौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिधीजनकं तन्मतमाशङ्क्य निराकरोति, 'यत्त्विति, 'साधनादिति अनुमानादित्यर्थः, 'अनौपाधिकत्वं सुग्रहमिति, तथाच तर्काहेतुकमेवानौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिधीहेतुरिति भावः। 'अनवस्थानादिति तदनुमानमूलीभूतव्याप्तिज्ञानेऽप्यनौपाधिकत्वनिश्चयस्य हेतुत्वादिति भावः।

व्याप्तिग्रहे परम्परयापि कुत्रचिन्न तर्कोपयोग इति मीमांसकैकदेशिमतं निराचष्टे, 'ये चेति, व्यभिचारसंशयस्य तत्सामग्र्याश्चा-प्रतिबन्धकत्वादिति शेषः। 'अनुकूलेति व्यभिचारशङ्कानुत्पादानुकूलेत्यर्थः, 'सहचारादीत्यादिना सम्बन्धिनः साध्यादेः परिग्रहः, 'व्याप्तिग्रहं' सर्व्वत्र व्याप्तिनिश्चयं, 'साध्यव्यापकत्वग्रहे' साध्यव्यापकत्वनिश्चये, 'अनुमानमात्रमिति सन्दिग्धसाध्यपक्षकानुमानमात्रमुच्छिद्येतेत्यर्थः, यथाश्रुते निर्णीतसाध्यके व्यभिचारनिश्चयसत्त्वेन पक्षेतरत्वस्य साध्यव्यापकत्वनिश्चयासम्भवादनुमानमात्रोच्छेदाभावात्। अस्माकन्तु पक्षे साध्यस्य संशयसत्त्वे साध्ये पक्षेतरत्वव्यभिचारसंशयसत्त्वादनुकूलतर्कं विना न साध्यव्यापकत्वनिश्चयसम्भव इति भावः। 'अनुमान-

दित्यस्याप्रयोजकत्वान्न साधकं तच व्याप्तस्य पक्षधर्म्मत्व किमप्रयोजकं नाम तस्माद्विपक्षबाधकतर्काभावान्न तच व्याप्तिग्रह इत्यप्रयोजकत्वमिति ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे तर्कनिरूपणं।

---

मात्रेति तादृशानुमानमात्रोच्छेदकत्वज्ञानलक्षणप्रतिकूलतर्कादित्यर्थः, 'सोपाधिः' न स्वव्यभिचारेण साध्यव्यभिचारोन्नायकः, 'उपाधित्वेनेति व्यभिचारोन्नायकत्वेनेत्यर्थः । 'साध्यव्यापकत्वेन' तन्निश्चयेन, 'व्यापकव्यतिरेके' व्यापकव्यतिरेकज्ञाने, 'व्याप्यव्यतिरेकस्य' व्याप्यव्यतिरेकज्ञानस्य । ननु तादृशानुमानमात्रोच्छेदकत्वज्ञानमेव तच साध्यव्यापकताज्ञानविरोधीत्यस्वरसादाह, 'अपि चेति, 'ग्रन्थतिरिक्तेति । न चास्मन्मते साध्याप्रसिद्धिः, परकीयत्वेव परं प्रत्यभिधानात्, स्वमते तु ग्रन्थतिरिक्तत्ववह्निर्भावेन साध्यं बोध्यं, 'न साधकं' न लिङ्गं, 'व्याप्तस्य' व्याप्यत्वेन निश्चितस्य, 'पक्षधर्मत्वे' पक्षधर्मत्वनिर्णये, 'न तचेति व्यभिचारसंशयसामग्रीसत्त्वेन न तच व्याप्तिनिश्चय इत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये तर्करहस्यं ।

---

## अथ व्याप्त्यनुगमः ।

उक्तव्याप्तिप्रकारेष्वन्योन्याभावगर्भैव व्याप्तिरनुमितिहेतुर्लाघवात् । अतो नाननुगमः ।

---

## अथ व्याप्त्यनुगमरहस्यं ।

ननूक्तव्याप्तीनां ज्ञानसमुच्चयो न हेतुरसम्भवात् न प्रत्येकं अननुगमात् कस्यचिदेव ज्ञानं तथेत्यत्र तु विनिगमकाभाव इत्यत आह, 'उक्तेति, 'अनुमितिहेतुरिति ज्ञानविषयतयाऽनुमितिहेतुतावच्छेदिका इत्यर्थः, 'लाघवादिति प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकसम्बन्धेन यत्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन तद्भिन्नत्वस्य हेत्वधिकरणाविशेषणत्वेनात्यन्ताभावगर्भमपेक्ष्यापि लाघवादित्यर्थः। अथ अन्योन्याभावगर्भलक्षणेऽपि प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगिमद्भिन्नत्वं हेत्वधिकरणविशेषणमावश्यकमन्यथा संयोगादिमदन्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तितानये संयोगी द्रव्यत्वादित्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकेऽव्याप्तेः, अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तितानियमनयेऽपि संयोगादिमद्भेदस्याव्याप्यवृत्तिताभ्रमेण हेतुसामानाधिकरण्यभ्रमेण तत्रानुमित्यनुत्पादापत्तेः, तथाच क्व लाघवं। न चान्योन्याभावगर्भलक्षणे हेत्वधिकरणवृत्तित्वमेव निरवच्छिन्नत्वेन विशेषणीयं न

तु यथोक्तप्रतियोगिमद्भिन्नत्वेन हेत्वधिकरणमतो लाघवमिति वाच्यं। तथा सत्यत्यन्ताभावगर्भलक्षणेऽपि तथैव सुवचतया तत्रापि गौरवाभावादिति चेत्। न। अन्योन्याभावगर्भलक्षणे तादृशप्रतियोगिमद्भिन्नत्वेन हेत्वधिकरणविशेषणेऽपि प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकसम्बन्ध-प्रतियोगितावच्छेदकयोरप्रवेशादेव लाघवात्। वस्तुतोऽन्योन्याभावगर्भलक्षणे प्रतियोगिभिन्नत्वं हेत्वधिकरणस्य प्रतियोग्यनिरूपितत्वं वा हेत्वधिकरणवृत्तित्वस्य विशेषणं न तु यथोक्तं गौरवात्तथाचात्यन्ताभावगर्भमपेक्ष्यातीव लाघवमिति भावः।

अत्र नव्याः अन्योन्याभावगर्भव्यापकताघटितव्याप्तिज्ञानमपि नानुमितिहेतुः, किन्तु साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानमेवानुमितिहेतुरिति लाघवात्(१)। तत्परिष्कारस्तु प्रागेवाभिहितः,(२) केवलान्वयिनि भ्रमरूपव्याप्तिज्ञानादेव सर्व्वदानुमितिः, सद्धेतौ भ्रमभिन्नव्याप्तिज्ञानादेवानुमितिरिति नियमे च मानाभावः, भ्रमजनकदोषरहितस्य केवलान्वय्यनुमितिरप्रसिद्धैव। एवं द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादावपि भ्रमरूपव्याप्तिज्ञानादेवानुमितिः(३)। न च

---

(१) 'लाघवात्' साधनभेदेन कार्य्य-कारणभावभेदाकल्पनरूपलाघवादित्यर्थः।

(२) व्याप्तिपञ्चकरहस्येऽभिहित इत्यर्थः।

(३) विशिष्टसत्त्वस्य सत्त्वानतिरिक्ततया विशिष्टसत्त्वे द्रव्यत्वाभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्त्यभावात् तत्र तादृशव्याप्तिज्ञानं भ्रमरूपमेवेति। न च साध्याभावाधिकरणावृत्तितानवच्छेदकहेतुतावच्छेदकवत्त्वमेव व्याप्तिः तथाच विशिष्टसत्त्वे द्रव्यत्वाभावाधिकरणावृत्तित्वेऽपि विशिष्ट-

साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैव सर्व्वत्रानुमितिहेतुत्वे पृथिव्यामितर-भेदः ह्रदे धूमाभाव इत्याद्यप्रसिद्धसाध्यकानुमितिर्न स्यात् साध्यस्याप्रसिद्धा तदभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यासम्भवादिति वाच्यं। तत्र पृथिवीतरत्व-धूमादेरेव साध्याभावतया पृथिवीतरत्ववदवृत्तित्व-धूमवदवृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वात् अन्यथा तवापि साध्यस्याप्रसिद्धा साध्याभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपव्यतिरेकव्याप्त्यादिज्ञानस्य तत्रासम्भवात्। ननु साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वे वाच्यत्वादौ वह्न्यादौ वा केवलान्वयित्वग्रहदशायामनुमितिर्न स्यात् विशेषदर्शनसत्त्वेन अभावे साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन साध्यवत्त्वज्ञानासम्भवात् व्यापकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिज्ञानस्य हेतुत्वे तु तदानीमप्यनुमित्युत्पादात्। न च केवलान्वयित्वग्रहो न तावत् साध्याभाववानभाव इत्याकारकोऽभावत्वावच्छेदेन साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नस्य साध्याभावस्य निश्चयः तादृशनिश्चयस्य निर्वह्निः पर्व्वतोवह्निमान् इत्यादिज्ञानवदाहार्य्यभ्रमरूपत्वेनाप्रतिबन्धकत्वात्[१]। नापि तादृशकारकोऽभावत्वसामानाधिकरण्येन

सत्त्वात्वे द्रव्यत्वाभावाधिकरणावृत्तित्वानवच्छेदकत्वस्य सत्त्वेन तत्र तादृशव्याप्तिज्ञानस्य कथं भ्रमत्वमिति वाच्यं। व्याप्तेः हेतुतावच्छेदकघटितत्वे साधनभेदेन कार्य्य-कारणभावभेदाकल्पनरूपलाघवासम्भवादिति हृदयं।

(१) अभावः साध्याभाववान् इत्याकारकाभावत्वावच्छेदेन साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववत्ताग्राहिज्ञाने

साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावे साध्यतावच्छेद-कावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभावस्य निश्चयः, त-सत्त्वेऽपि अभावत्वसामानाधिकरण्येनाभावे साध्यतावच्छेदकसम्बन्धा-वच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन साध्यप्र-कारकस्य साध्याभाववद्वृत्तित्वज्ञानस्योत्पत्तौ बाधकाभावात् अंशतो बाधस्य विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन विशेषणसिद्ध्यविरो-धित्वादिति वाच्यम्। साध्यात्यन्ताभाववानभाव इत्याकारक-स्याभावत्वावच्छेदेनाभावे तादृशसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यात्यन्ताभावनि-श्चयरूपस्य साध्यवद्भिन्नोऽभाव इत्याकारकस्याभावत्वावच्छेदेनाभावे साध्यवदन्योन्याभावनिश्चयरूपस्य वा केवलान्वयित्वग्रहस्याऽनाहार्य्य-स्यापि सम्भवात्[१] अत्यन्ताभावत्वान्योन्याभावत्वादेरखण्डधर्म्मविशेष-रूपत्वेनाभावत्वाघटितत्वात्[२] वाच्यत्वाभाववान् अभाव इत्यकारक-स्याभावत्वावच्छेदेन वाच्यत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छि-न्न-प्रतियोगिताकवाच्यत्वाभाववत्त्वज्ञानस्याऽनाहार्य्यस्यासम्भवेऽपि तादृ-शाकारकस्याभावत्वावच्छेदेन स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व-

---

विशेषणीभूतसाध्याभावकोटौ अभावांशे साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्र तियोगिताकत्वसम्बन्धेन साध्यस्य नियमतोभानात् तादृशज्ञानस्य विरुद्धोभयप्रकारकत्वरूपमाहार्य्यत्वमिति तात्पर्य्यं।

(१) समानधर्म्मितावच्छेदककज्ञानस्यैव विरोधित्वादिति भावः।

(२) अन्यथा अत्यन्ताभावत्वस्य सदातनसंसर्गाभावत्वरूपत्वे अन्योन्याभावत्व स्य तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वरूपत्वे अभावत्व घटितत्वेन पुनस्तद्दोषतादवस्थ्यं स्यादिति भावः।

न्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकवाच्यत्वाभाववत्त्वाज्ञानस्यानाहार्य्यस्यापि[१] सम्भवाच्चेति चेत्। न। तादृशकेवलान्वयित्वग्रहदशायामनुमितेर-प्रसिद्धेः अन्योन्याभावत्वावच्छेदेन, हेतुसामानाधिकरण्याभावग्रहदशायामनुमित्यनुत्पादस्य तथापि वाच्यत्वेन कस्यचित् फलस्यापलापस्याविशेषात्। वस्तुतस्तु साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानहेतुतायामभावत्वं न निविशते गौरवात् प्रयोजनाभावाच्च किन्तु साध्यीयवदवृत्तित्वज्ञानमेव हेतुः, तच्च यथोक्तकेवलान्वयित्वग्रहदशायामपि सम्भवति साध्यांशे निर्धर्म्मितावच्छेदकत्वात्।

ननु तथापि साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वे घटो-द्रव्यमित्यादिरूपा स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानुमितिः कदाचिदपि न स्यात् साध्याभाववदवृत्तित्वस्य द्रव्यत्वत्वादिरूपसाध्यतावच्छेदकघटितत्वेन द्रव्यत्वत्वाद्यवच्छिन्नविधेयकानुमितित्वस्यैव तद्बुद्धेः कार्य्यतावच्छेदकत्वात्, अन्यथातिप्रसङ्गात्, द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तानवच्छिन्नद्रव्यत्वादिविधेयताकानुमितित्वस्य कार्य्यतावच्छेदकत्वे द्रव्यत्वाद्यनुमितेर्नियमतो द्विविधविषयताकत्वप्रसङ्गात्[२]। न च यच्च

---

(१) तथाच व्याप्तिबुद्धौ स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिकत्वविशिष्ट-वाच्यत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्याप्रसिद्ध्या स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न-प्रतियोगिताकत्वेन वाच्यत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन च सम्बन्धेना-भावांशे वाच्यत्वस्य प्रकारत्वात् एतादृशकेवलान्वयित्वग्रहस्य प्रति-बन्धकत्वमिति भावः।

(२) साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वे द्रव्यं पृथिवीत्वादित्या-दौ स्वरूपतो घटोद्रव्यं इत्याकारकानुमितेरनुपपत्तिः व्याप्तिबुद्धौ

साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिग्रहे साध्यतावच्छेदकद्रव्यत्वत्वाद्यवच्छि-न्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन साध्यस्य द्रव्यत्वादेः स्वरूपतोऽभावे प्रका-रकत्वं तत्र स्वरूपतोद्रव्यत्वादिविधेयकानुमितिर्यत्र च तद्ग्रहे तादृशसम्बन्धेन द्रव्यत्वत्वादिरूपेण साध्यस्य द्रव्यत्वादेः प्रकारकत्वं तत्र द्रव्यत्वत्वाद्यवच्छिन्नविधेयिकेति कार्य्य-कारणभावभेदात् न नियमतो द्विविधविषयकत्वमिति वाच्यम्। अभावप्रत्ययो हि प्रतियोगिनि तद्धर्म्मवैशिष्ट्यमवगाहमान एव तद्धर्म्मस्यावच्छेदकत्वमव-

---

यद्रूपेण साध्यमभावे भासते तद्रूपेण साध्यानुमितिरिति नियमात्, अन्यथा अभावांशे द्रव्यत्वत्वेन द्रव्यत्वावगाहिव्याप्तिबुद्धेः घटोजातिमा-नित्याकारकजातित्वप्रकारकद्रव्यत्वानुमित्यापत्तिः इत्याशङ्क्य समाधत्ते द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तेत्यादिना। तथाच द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तधर्म्मानव-च्छिन्नद्रव्यत्वादिनिष्ठविधेयताकानुमितित्वं तत्साध्यतावच्छेदकमिति समाधानं। अत्र तादृशविधेयतायामनवच्छिन्नान्तविशेषणानुपादाने जातित्वेन द्रव्यत्वानुमित्यापत्तिः। एवं द्रव्यत्वनिष्ठत्वानुपादाने सत्ता-साध्यकघटः सन् इत्याकारकानुमित्यापत्तिरतस्तत्र उभयोपादानं। अत्रेयमनुपपत्तिः, तथा हि द्रव्यत्वत्वेन घटत्वाद्यनुमित्यसम्भवः तादृ-शभ्रमानुमितेः द्रव्यत्वनिष्ठविधेयताकत्वासम्भवात्। अत्रेदं समाधानं द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तधर्म्मानवच्छिन्नद्रव्यत्वादिनिष्ठविधेयताकानुमिति-त्वपदेन किञ्चिद्धर्म्मानवच्छिन्नद्रव्यत्वावृत्तिविधेयताभिन्नद्रव्यत्वत्वाद्यति-रिक्तधर्म्मानवच्छिन्नद्रव्यत्वादिनिष्ठविधेयताकानुमितित्वस्य विवक्षितत्वे अथ वा निरवच्छिन्नत्वविशिष्टद्रव्यत्वावृत्तित्व-द्रव्यत्वत्वानवच्छिन्नत्वो-भयाभाववद्विधेयताकानुमितित्वस्य विवक्षितत्वे न काप्यनुपपत्तिरिति विभावनीयं।

अनौपाधिकत्वन्तु तल्लक्षणं। नन्वेवमुपाधिरसिद्ध्युपजीव्यत्वेन व्यभिचारवत् हेत्वाभासान्तरं स्यात् न तु व्याप्यभावत्वेनासिद्धिरिति चेत्, तज्ज्ञानमुपजीव्यमपि

गाहते न तु तदनवगाह्येति नियमात् द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन स्वरूपतो द्रव्यत्वादेरभावे प्रकारत्वासम्भवादिति चेत्। न। स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानुमितेरसिद्धेः अभावप्रत्ययोक्तीत्यादिनियमस्यैव वा असिद्धेश्च। यदि च तादृशानुमितिरपि प्रामाणिकी तन्नियमोऽपि च प्रामाणिकः तदान्यच्च साध्याभाववद्वृत्तित्वज्ञानमेव हेतुस्तादृशानुमितौ च द्रव्यान्यावृत्तित्वादिरूपव्याप्तिज्ञानं हेतुरिति[१] प्राहुः।

ननु अन्योन्याभावगर्भव्याप्तिज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वेऽनौपाधिकत्वज्ञानं अनुमितिजनकं इति प्रामाणिकप्रवादः कथमत आह,[२] 'अनौपाधिकन्त्विति, 'तल्लक्षणमिति लिङ्गविधया अन्योन्याभावगर्भव्याप्तिज्ञापकमित्यर्थः, तथाच प्रामाणिकप्रवादे जनकपदं[३] प्रयोजकपरमिति भावः।

(१) तथाच अभावांशे द्रव्यत्वत्वेन द्रव्यत्वावगाहिद्रव्यत्वाभाववद्वृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानस्य कार्य्यतावच्छेदकं द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वं, भेदांशे स्वरूपतो द्रव्यत्वेन द्रव्यावगाहिद्रव्यान्यावृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानस्य कार्य्यतावच्छेदकं स्वरूपतो द्रव्यत्वविधेयताकानुमितित्वमिति न नियमतोऽनुमितेर्द्विविधविषयकत्वमिति तात्पर्य्यं।

(२) अनुमितिहेतुरिति प्रामाणिकप्रवादविरोध इत्यत आहेति ग०।

(३) हेतुपदमिति ग०।

न स्वतोदूषकं। नह्यन्यस्य साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वज्ञानमन्यस्य साध्यव्याप्यत्वज्ञाने प्रतिबन्धकमतिप्रसक्तेः, व्यभिचारज्ञानस्य तद्धेतुत्वात्, तद्वीस्तथा। न

---

ननु यद्यप्यनौपाधिकत्वं व्याप्तिज्ञानविषयतया अनुमितिकारणतावच्छेदकं स्यात्तदा तदभाव उपाधिरसिद्धावेव प्रविशेत् अनुमितिजनकतावच्छेदकव्याप्तेरभावस्यैव व्याप्यत्वासिद्धत्वात्, यदि नैवं तदा उपाधिर्हेत्वाभासान्तरं स्यादित्याशङ्कते(१), 'नन्वेवमिति, 'एवं' अनौपाधिकत्वरूपव्याप्तिज्ञानस्यानुमितेरहेतुत्वे, 'असिद्ध्युपजीव्यत्वेनेति व्याप्तिनिश्चयप्रयोजकज्ञानविषयत्वेनेत्यर्थः, इदञ्च हेत्वाभासत्वे हेतुर्न तु हेत्वाभासान्तरत्वे, 'हेत्वाभासान्तरं स्यात्' व्याप्यत्वासिद्धिभिन्नहेत्वाभासः स्यात्, 'व्याप्त्यभावत्वेन' अनुमितिहेतुज्ञानविषयतावच्छेदकव्याप्त्यभावत्वेन,(२) 'असिद्धिः' व्याप्यत्वासिद्धिः, 'उपजीव्यमपीति

---

(१) ननु यद्यप्यनौपाधिकत्वं लिङ्गविषयतया अनुमितिकारणतावच्छेदकं स्यात् तदा तदभाव उपाधिर्व्याप्यत्वासिद्धिभिन्नहेत्वाभासः स्यात् अनुमितिजनकतावच्छेदकव्याप्तिनिश्चयप्रयोजकज्ञानविषयत्वेन व्यभिचारवत् हेत्वाभासत्वस्यावश्यकत्वात् अनुमितिजनकतावच्छेदकव्याप्त्यभावत्वाभावेन व्याप्यत्वासिद्धित्वासम्भवात् अनुमितिजनकतावच्छेदकव्याप्तेरभावस्य व्याप्यत्वासिद्धित्वनियमात् इत्याशङ्कते, 'नन्वेवमिति, इति पाठान्तरम्।

(२) व्याप्त्यभावत्वेनेत्यत्र वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः, तथाच व्याप्त्यभावत्वविशिष्टासिद्धिरित्यर्थः।

चानौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञानहेतुरित्युक्तम्। तथाच व्यभिचारज्ञानद्वारा स दूषकः, एवञ्च परमुखनिरीक्षकतया सिद्धसाधनवन्न पृथक्। न चैवमव्यभिचारस्य व्याप्तित्वे व्यभिचारस्तदभावत्वेनासिद्धिः स्यादिति

---

परम्परया व्याप्यनिर्णयोपजीव्यमपीत्यर्थः, 'स्वतो दूषकमिति अनुमिति-तत्कारणपरामर्शान्यतरं प्रति साक्षात् प्रतिबन्धकमित्यर्थः, तयोरन्यतरं प्रति साक्षात्प्रतिबन्धकं यज्ज्ञानं तद्विषय एव हेत्वाभास इति भावः। एतदेव स्पष्टयति, 'न ह्यन्यस्येति, 'तद्धेतुत्वात्' व्याप्तिधीहेतुत्वात्, 'तद्धीः' व्यभिचारधीः, 'तथा' स्वतः प्रतिबन्धिका।

नव्यास्तु नन्वेवमपि व्यभिचारस्य कथं हेत्वाभासत्वमत आह, 'व्यभिचाराज्ञानस्येति समानधर्म्मिकव्यभिचारज्ञानाभावस्येत्यर्थः, 'तद्धेतुत्वात्' व्याप्तिधीहेतुत्वात्, व्यभिचारधीः साक्षात् प्रतिबन्धिकेति समुदितार्थः इत्याहुः(१)।

'अनौपाधिकत्वज्ञानमिति उपाधिमत्त्वज्ञानाभाव इत्यर्थः, येन उपाधिज्ञानं व्यभिचारज्ञानवत्स्वतः प्रतिबन्धकं स्यादिति भावः। तत् किमुपाधिर्दूषणमेव न इत्यत आह, 'तथाचेति, उपसंहरति, 'एवञ्चेति, 'परमुखनिरीक्षकतयेति अनुमिति-तत्कारणपरामर्शान्यतरप्रतिबन्धकज्ञानाविषयतयेत्यर्थः, 'सिद्धसाधनवदिति पक्षविशे-

---

(१) नव्यास्त्वित्यादिः आहुरित्यन्तः पाठः क० पुस्तके नास्ति।

प्यम्। साध्याभाववद्वृत्तित्वं हि व्यभिचारः तदभावश्च नाव्यभिचारः केवलान्वयिन्यभावात्। किन्तु स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिसामानाधिकरण्यं। न चानयोः परस्परविरहत्वमिति।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे व्याप्त्यनुगमरहस्यं, समाप्तश्च व्याप्तिग्रहोपायः॥

---

व्यक-साध्यनिश्चयवदित्यर्थः, हेत्वाभासत्वाभावेनेति शेषः, 'न पृथक्' न पृथक्हेत्वाभासः, अन्यथा अनौपाधिकत्वज्ञानस्यानुमितिहेतुत्वपक्षेऽप्युपाधेर्हेत्वाभासान्तरत्वस्य दुर्व्वारत्वात्, अनौपाधिकत्वस्य पारिभाषिकस्यैव निर्व्वचनात् उपाधेस्तदभावत्वाभावेन व्याप्यत्वासिद्धावन्तर्भावासम्भवादिति भावः। 'सिद्धसाधनवदिति च हेत्वाभासत्वाभावमात्रे दृष्टान्तः, न तु परमुखनिरीक्षकतायां, तत्र यथोक्तपरमुखनिरीक्षकत्वादिति ध्येयं। 'किन्त्विति, अत्राव्यभिचार इत्यनुषज्यते, 'अनयोरिति साध्याभाववद्वृत्तित्व-स्वसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरण्ययोरित्यर्थः।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये व्याप्त्यनुगमरहस्यं, समाप्तञ्च व्याप्तिग्रहोपायरहस्यं।

## अथ सामान्यलक्षणा ।

'व्याप्तिग्रहस्य सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्त्या सकलधूमा-

---

## अथ सामान्यलक्षणारहस्यं ।

प्रसङ्गसङ्गत्या[१] सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वं व्यवस्थापयितु-माह, 'व्याप्तिग्रहस्येति महानसादौ जायमानो धूमत्वरूपेण सन्निकृ-ष्टधूमे वह्नित्वरूपेण सन्निकृष्टवह्नेर्व्याप्तिसाक्षात्कारस्येत्यर्थः । 'सामा-न्यलक्षणप्रत्यासत्त्येति धूमत्व-वह्नित्व-सामानाधिकरण्यत्वरूपसामान्य-लक्षणप्रत्यासत्त्येत्यर्थः, 'सकलधूमादीति, 'आदिपदात् सकलवह्नि-धूमवृत्तिसकलतत्सामानाधिकरण्यपरिग्रहः, 'कथमन्यथेति, 'अन्यथा' तस्य सकलधूमाद्यविषयकत्वे, 'पर्व्वतीयधूम इति पर्व्वते धूमत्वरूपेण पर्व्वतीयधूमवत्तानिश्चयस्य पर्व्वतीयधूमे व्याप्तिप्रकारकत्वासम्भवेनेत्य-र्थः, विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धौ विशेषणतावच्छेदकप्रकारकविशेषणनिश्चयस्य हेतुतया व्याप्तिप्रकारेण पर्व्वतीयधूमज्ञानं विना पर्व्वते व्याप्तिवि-

---

(१) केचित्तु समानाधिकरणयोरेव व्याप्तिरिति पक्षे पर्व्वतीयधूमे वह्नि-व्याप्तिविशिष्टधीर्न पर्व्वतीयवह्निव्याप्तिग्रहं विना स च न सामान्य-लक्षणां विनेति कथितव्याप्तिविशिष्टेत्यादिलक्षणोपोद्घातोऽपीत्याहु-रिति दीधितिकृतः ।

द्विषयकः, कथमन्यथा पर्व्वतीयधूमे व्याप्तिग्रहे तस्मा-

---

द्विशिष्टपर्व्वतीयधूमवैशिष्ट्यज्ञानासम्भवादिति भावः। 'तस्मादनुमिति-रिति पर्व्वते धूमत्वरूपेण तद्वत्त्वनिश्चयादनुमितिरित्यर्थः, व्याप्तिवि-शिष्टवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयस्यैव लाघवादनुमितिहेतुत्वादिति भावः। ननु सा किं संयोगादिलक्षणषोढ़ाप्रत्यासत्त्यन्तर्गता तदतिरिक्ता वेत्यत आह, 'सा चेति, 'इन्द्रियसम्बद्धेति स्वजन्यज्ञानप्रकारत्वरूपे-न्द्रियसम्बन्धाश्रयस्य सामान्यस्य व्यक्तिषु धर्म्मिताख्यस्वरूपसम्बन्धरू-पेत्यर्थः, स्वमिन्द्रियं, तथाच सामान्यं लक्षणं निरूपकं यस्या इति व्युत्पत्त्या चक्षुरादिजन्यज्ञानप्रकारीभूतधूमत्वादिसामान्यनिरूपिता धर्म्मिताख्यविशेषणतैव सामान्यलक्षणा, सा चाभावादिग्राहकचक्षुः-संयुक्तविशेषणतादिवद्विशेषणताप्रत्यासत्त्यन्तर्गतैव। न चैवं धूम-त्वादिप्रकारकशाब्दबोध-स्मृत्यादितः सकलधूमादिगोचरो मानसो बोधो न स्यान्मनोजन्यज्ञानविरहादिति वाच्यं। शाब्दादेरपि मनोजन्यत्वात्। न च तथापि धूमत्वादिप्रकारकशाब्दबोधादितो निखिलधूमगोचरचाक्षुषादिर्न्न स्यादिति वाच्यं। इष्टत्वात् प्राचीनैस्त-त्प्रकारकचाक्षुषादित एव सकलतदाश्रयचाक्षुषाद्युपगमात् इति भावः। अत्र धूमत्वादिसामान्यनिरूपितधर्म्मितामात्रस्य प्रत्यासत्तित्वे धूमत्वादेरज्ञानदशायां निर्व्विकल्पकतज्ज्ञानदशायां विशेष्यतया तज्ज्ञानदशायाञ्च[१] तत्प्रकारेण तदाश्रयसकलप्रत्यक्षापत्तिः समवा-याद्येकसम्बन्धेन धूमत्वादिप्रकारकज्ञानदशायां कालिकादिसम्बन्धेन

---

(१) प्रमेयमित्याकारकधूमत्वविषयकज्ञानदशायामित्यर्थः।

दनुमितिः, सा चेन्द्रियसम्बन्धविशेषणता अतिरिक्तैव वा,

सकलतदाश्रयसाक्षात्कारापत्तिस्तातो भूतान्तं सामान्यविशेषणं, एवञ्च यत्सम्बन्धेन तस्य ज्ञाने प्रकारत्वं तत्सम्बन्धावच्छिन्ना तदीया धर्म्मिता तत्सम्बन्धेन तदाश्रयस्य प्रत्यक्षे हेतुरिति नोक्तातिप्रसङ्गः। एतेन इन्द्रियलौकिकसन्निकर्षाश्रयवृत्तित्वमेवेन्द्रियसम्बन्धोऽभिधीयतां इत्यपि निरस्तं। यथोक्तातिप्रसङ्गानां दुर्व्वारतापत्तेः धूमादौ धूमत्वादिप्रकारकशाब्दादिज्ञानानन्तरं सकलधूमादिगोचरमानसप्रत्यक्षानुदयापत्तेश्च धूमत्वादेर्मनोलौकिकसन्निकृष्टावृत्तित्वात् चक्षुरादिसन्निकृष्टधूलीपटले धूमत्वभ्रमेण सकलधूमसाक्षात्कारानुदयापत्तेश्च धूमत्वस्येन्द्रियसन्निकृष्टावृत्तित्वात्। धूमत्वादिप्रकारकस्मरणादितोऽपि चक्षुरादिवहिरिन्द्रियजन्यसकलतदाश्रयसाक्षात्कारवारणाय तादृशपरम्पराया इन्द्रियसम्बन्धत्वसम्पादनाय च(१) चक्षुरादिजन्येति ज्ञानविशेषणं, तच्च न कार्य्य-कारणभावप्रविष्टं चक्षुरादिवहिरिन्द्रियस्थले चक्षुरादिजन्यत्वनियतचाक्षुषत्वादिजातेर्मनःस्थले तु जन्यज्ञानमात्रस्य मनोजन्यतया ज्ञानत्वमात्रस्य कारणतावच्छेदकघटकत्वात् लाघवात्, तथाच वहिरिन्द्रियस्थले तत्पुरुषीयचाक्षुषविशिष्टधूमत्वविशिष्टधर्म्मितात्वेन कारणता तत्पुरुषीयधूमत्वप्रकारकधूमत्वाश्रयमुख्यविशेष्यकचाक्षुषत्वेन कार्य्यता इत्यादिक्रमेण, मनःस्थले तु तत्पुरुषीयज्ञानविशिष्टधूमत्वविशिष्टधर्म्मितात्वेन कारणता तत्पुरुषी-

(१) उक्तपरम्पराया इन्द्रियाघटितत्वे इन्द्रियसम्बन्धत्वं न सम्भवतीति भावः।

तद्विशेष्यकप्रत्यक्षे तदिन्द्रियसन्निकर्षस्य हेतुत्वेनानाग-

---

तधूमत्वप्रकारकधूमत्वाश्रयमुख्यविशेष्यकमानसत्वेन कार्य्यतेत्यादिक्रमेण कार्य्य-कारणभावः, प्रथमवैशिष्ट्यं प्रकारतासम्बन्धेन, द्वितीयवैशिष्ट्यञ्च निरूपितत्वसम्बन्धेन, विशिष्टपूर्व्वसत्त्वस्यापेक्षिततया च न कालान्तरीयचाक्षुषादिमादायातिप्रसङ्गः, कालिकसामानाधिकरण्यमात्रञ्च प्रत्यासत्तिर्न तु विशेष्यत्वाश्रयत्वघटितदैशिकसामानाधिकरण्यमपि धूमत्वादिप्रकारकज्ञानानन्तरं निरुक्तधर्म्मिताक्रूपसामान्यलक्षणाप्रत्यासत्त्यातीतानागतधूमादौ कदाचित् समूहालम्बनविधया धूलीपटलादौ च धूमत्वादिप्रत्यक्षोदयात्तत्र च तदानीं तादृशधर्म्मिताविरहाद्व्यभिचारापत्तेः। न च यावत्तस्य कार्य्यतावच्छेदकाघटकतया तादृशधर्म्मिताक्रूपसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या कुतोऽतीतानागतसकलधूमत्वाश्रयप्रत्यक्षमिति वाच्यं। यावत्तस्य कार्य्यतावच्छेदकाघटकत्वेऽपि विनिगमनाविरहेण सकलधूमत्वाश्रयभानादिति निगर्भः[1]।

न च यत्र विनश्यदवस्थचक्षुःसंयोगेन यत्किञ्चिद्व्यक्तौ धूमत्वप्रकारकचाक्षुषोत्पत्तिकाल एव चक्षुषोर्निमीलनं तत्र तदनन्तरं निमीलितनयनस्यापि तादृशधर्म्मिताप्रत्यासत्त्या धूमत्वप्रकारकनिखिलधूमत्वाश्रयचाक्षुषापत्तिः विनश्यदवस्थालोकसमवधानजन्यधूमत्वप्रकारकयत्किञ्चिद्धूमचाक्षुषादन्धतमसेऽपि तादृशधर्म्मिताप्रत्यासत्त्या

---

(१) सर्व्वत्र 'निगर्भः' इत्यत्र 'निगर्वः' इति ग० पुस्तकपाठः।

धूमत्वप्रकारकनिखिलधूमचाक्षुषापत्तिः, एवं यत्र धूमत्वप्रकारकयत्किञ्चिद्धूमव्यक्तिचाक्षुषोत्पत्तिकाले धूमत्वप्रकारकलौकिकचाक्षुषप्रतिबन्धकदोषोत्पत्तिस्तत्र तदनन्तरं दोषसत्त्वेऽपि तादृशधर्मितासन्निकर्षेण धूमत्वप्रकारकनिखिलधूमत्वाश्रयचाक्षुषापत्तिरिति वाच्यं। वहिरिन्द्रियजनितसामान्यलक्षणाजन्यसाक्षात्कारस्य सामान्यांशे विशेष्यीभूतयत्किञ्चिद्व्यक्त्यंशे च लौकिकत्वनियमाद्वहिरिन्द्रियेण तादृशसाक्षात्कारजनने सामान्याश्रये तदनाश्रये वा यत्किञ्चिद्धर्मिणि लौकिकविशेष्यतया सामान्यप्रकारकतदिन्द्रियकरणकप्रत्यक्षोत्पत्तिसामग्र्या अपि सहकारित्वस्य नव्यानव्यसकलतान्त्रिकसिद्धत्वात्। अन्यथा वक्ष्यमाणकल्पेऽप्यनिस्ताराादिति निगर्भः।

नन्वेवं ज्ञानप्रकारीभूततन्निरूपितधर्मितायास्तत्प्रकारकतदाश्रयप्रत्यक्ष एव हेतुतया घटत्वरूपेण एकघटव्यक्तिमात्रप्रकारकज्ञानानन्तरं घटत्वावच्छिन्नप्रकारेण घटान्तराश्रयप्रत्यक्षं न स्याद्घटान्तराश्रयस्य ज्ञानप्रकारीभूतघटव्यक्तेराश्रयत्वाभावात्। न च सामान्यतस्तत्पुरुषीयचाक्षुषादिविशिष्टघटविशिष्टधर्मितात्वेन तत्पुरुषीयघटप्रकारकघटाश्रयमुख्यविशेष्यकचाक्षुषत्वेन कालिकसामानाधिकरण्यमात्रप्रत्यासत्त्या कार्य्य-कारणभावात् ज्ञानप्रकारीभूतयत्किञ्चिद्घटव्यक्तिनिरूपितधर्मितैव स्वानधिकरणीभूतघटान्तराश्रयप्रत्यक्षेऽपि हेतुरिति वाच्यं। तथा सति तद्व्यक्तित्वरूपेणैव तद्घटमात्रप्रकारकज्ञानत्वदशायामपि[१] घटान्तराश्रयप्रत्यक्षापत्तिरिति। मैवं। घटत्वावच्छिन्नघटप्रकारकतत्पुरुषीयघटाश्रयमुख्यविशेष्यकचाक्षुषं प्रति घटत्वावच्छिन्नप्रका-

(१) तद्व्यक्तित्वरूपेणैकव्यक्तिघटमात्रप्रकारकज्ञानानन्तरमपीति ख०, ग०।

रतासम्बन्धेन तत्पुरुषीयघटाश्रयचाक्षुषविशिष्टेन यत्किञ्चिद्घटेन विशिष्टाया धर्म्मिताया एव हेतुत्वात् तद्व्यक्तित्वरूपेण तद्व्यक्तिप्रकारकज्ञानस्य तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नतद्व्यक्तिप्रकारक-तत्तद्व्यक्त्याश्रयप्रत्यक्षं प्रत्येव हेतुत्वात् एवमेव सर्व्वत्र सखण्डसामान्यस्थले बोध्यं सामान्यभेदेन कार्य्य-कारणभावभेदादिति निगर्भः[१]।

नन्वच धर्म्मिताप्रवेशोव्यर्थस्तादृशविशिष्टधूमत्वत्वादिनैव हेतुत्वस्य सुवचत्वात्, किञ्चैवं यत्रातीतमनागतं वा सामान्यं तत्र तन्निरूपितधर्म्मिताया अप्यतीतानागततया तत्सामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरं तत्सामान्यप्रकारकनिखिलतत्सामान्याश्रयसाक्षात्कारो न स्यात् ज्ञानप्रकारीभूतस्य तत्सामान्यस्य तन्निरूपितधर्म्मितायाश्च अव्यवहितपूर्व्वमभावात्। अथातीतानागतसामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरं तादृशसामान्यप्रकारकतादृशसामान्याश्रयसाक्षात्कारोऽसिद्धः यथोक्तकार्य्य-कारणभावस्य व्यभिचारापत्त्या तथैव कल्पनात्, किन्तु तत्र अतीतानागतसामान्यप्रकारकज्ञाने भासमानं साक्षात्परम्परया वा तत्सामान्यनिष्ठमवश्यं नित्यधर्मान्तरमप्यस्ति परम्परासम्बन्धेनावच्छिन्नतादृशनित्यधर्मनिरूपितधर्मिताप्रत्यासत्त्या परम्परासम्बन्धेन तादृशनित्यधर्मप्रकारकमेव तत्सामान्याश्रयप्रत्यक्षं जायते। न च तादृशनित्यधर्मस्य परम्परासम्बन्धेन ज्ञानाप्रकारतया कथं तन्निरूपितधर्मिताप्रत्यासत्त्या परम्परासम्बन्धेन तादृशनित्यधर्मप्रकारकमेव तत्सामान्याश्रयप्रत्यक्षमिति वाच्यं। यत्किञ्चिद्विशेष्येऽतीताना-

(१) न च यत्र विनश्यदवस्थचक्षुःसंयोगेनेत्यादिः निगर्भ इत्यन्तः पाठः क्वोड़पत्रस्थ इति।

गतसामान्यप्रकारकज्ञानदशायामन्ततो निर्धर्मितावच्छेदकस्यापि तस्मिन् विशेष्ये परम्परासम्बन्धेन तत्सामान्यवृत्तितादृशनित्यधर्म-प्रकारकप्रत्यक्षस्य सम्भवात्, यत्र च शाब्दबोधादिरूपमतीतानागत-सामान्यप्रकारकं ज्ञानं तत्रापि तदुत्तरं परम्परासम्बन्धेन तद्वृत्ति-तादृशधर्मप्रकारकमानसबोधकल्पनादिति चेत्। न । अनुभवापलापा-पादतीतानागतसामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरमतीतानागतसामान्यप्र - कारकस्यापि निखिलतदाश्रयसाक्षात्कारस्य सकलनैयायिकानुभव-सिद्धत्वात् परम्परासम्बन्धेनातीतानागतसामान्यवृत्तितादृशधर्मप्रका-रकज्ञानं विनाप्यतीतानागतसामान्यप्रकारकशाब्दादितः सकलतदा-श्रयसाक्षात्कारस्य सकलनैयायिकानुभवसिद्धत्वाच्च। अन्यथा अतीता-नागतसामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरं निखिलतदाश्रयसाक्षात्कार एवाप-लप्यतां किमेतावत्कुसृष्ट्या । अपिच चक्षुरादिजन्यज्ञानप्रकारी-भूतसामान्यनिरूपितधर्मितायास्तादृशसामान्यस्य वा प्रत्यासत्तित्वे च इन्द्रियभेदेन पुरुषभेदेन च कार्य्य-कारणभावभेदादनन्तकार्य्य-का-रणभावप्रसङ्गः कारणतावच्छेदकशरीरगौरवञ्चेत्यस्वरसादाह, 'अति-रिक्तैव वेति संयोगादिलक्षणप्रत्यासत्तिघटकादतिरिक्तैव वेत्यर्थः, सातिरिक्तं धूमत्वादिरूपसामान्यप्रकारकज्ञानमात्रं, षोढ़ा परिग-णनन्तु लौकिकसन्निकर्षाभिप्रायं, सामान्यलक्षणापदस्य च सामान्यं लक्षणं विषयतया निरूपकं यस्याः सा सामान्यलक्षणेति व्युत्पत्तिः, धूमत्वादिप्रकारकशाब्द-स्मृत्यादितोऽपि मानससकलधूमादिसाक्षा-त्कारवच्चक्षुरादिवहिरिन्द्रियजन्यनिखिलधूमादिसाक्षात्कारोऽपीष्यत-एव नातोवहिरिन्द्रियस्थलेऽपि चक्षुरादिभेदेन कार्य्य-कारणभाव-

भेदः, समवायसम्बन्धेनात्मनिष्ठतया हेतुतया च न पुरुषभेदेन कार्य्य-कारणभावभेद इति भावः। अत्र सामान्यमात्रस्य प्रत्यासत्तित्वेऽतीतानागतसामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरं तत्प्रकारकनिखिलतदाश्रयसाक्षात्कारानुपपत्तिः कारणत्वेनाभिमतस्य सामान्यस्याव्यवस्थितपूर्व्वमभावादतोज्ञानप्रवेशः। नन्वेतावता अनित्यसामान्यस्थले घटत्वादिनित्यसामान्यस्थले च सामान्यज्ञानं प्रत्यासत्तिरस्तु घटत्वत्वादिना कारणत्वकल्पनामपेक्ष्य घटत्वादिज्ञानत्वेन हेतुताया लघुत्वात्, परममहत्त्वादिनित्यगुणाद्यात्मकसामान्यस्थले घटात्यन्ताभावादिनित्याभावात्मकसामान्यस्थले च कथं ज्ञानान्तर्भावः सामान्यभेदेन कार्य्य-कारणभावभेदात्तत्र स्वरूपसतः परममहत्त्वादेरेव लाघवेन प्रत्यासत्तित्वौचित्यात्। न चैवं परममहत्त्वाद्यज्ञानदशायामपि तत्प्रत्यासत्त्या निखिलतदाश्रयसाक्षात्कारापत्तिरिति वाच्यं। परममहत्त्वादिप्रकारकपरममहत्त्वाश्रयप्रत्यक्षत्वस्य कार्य्यतावच्छेदकतया विशेषणज्ञानरूपविशिष्टबुद्धिसामान्यकारणाभावादेव[१] तत्र कार्य्याभावादिति चेत्। न। परममहत्त्वत्वादिनिर्व्विकल्पकानन्तरमाद्यविशिष्टज्ञानोत्पत्तिसमय एव परममहत्त्वादिप्रकारेण निखिलतदाश्रयसाक्षात्कारापत्तेः[२] परममहत्त्वादिविशेष्यकज्ञानादपि[३] सकलतदाश्रय-

(१) विशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रति विशेषणज्ञानस्य स्वातन्त्र्येण कारणत्वमिति भावः।

(२) निर्व्विकल्पकटतीयक्षण एव सामान्यलक्षणासन्निकर्षजन्यप्रत्यक्षस्य सर्व्वानुभवसिद्धतया निर्व्विकल्पकद्वितीयक्षणे तादृशप्रत्यक्षापत्तिरिति समुदिततात्पर्य्यं।

(३) विशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रति विशेषणज्ञानस्य विशेषणविषयकत्वेनैव कारणत्वमिति विशेषणविशेष्यकज्ञानस्यापि तत्कारणत्वं सुवचमिति।

साक्षात्कारापत्तेश्च। न चेष्टापत्तिः, अनुभवविरोधात्। एवं समवायादि-यत्किञ्चित्सम्बन्धेन परममहत्त्वादिप्रकारकज्ञाने तत्प्रत्यासत्त्या जगत-एव प्रत्यक्षापत्तिः जगत एव येन केनचित् सम्बन्धेन परममहत्त्वा-द्याश्रयत्वात्, विना कारणतावच्छेदकप्रकारताप्रवेशं सम्बन्धभेदोपा-दानस्याशक्यत्वात्। न चेष्टापत्तिः, अनुभवविरोधात् परममहत्त्वादे-र्नित्यतया तदभावेन कार्य्याभावस्य वाच्यभावात् स्वरूपसत्तस्य कार-णत्वे मानाभावाच्च। न च तथापि लाघवादिच्छादिसाधारण-सामान्यप्रकारकमेव प्रत्यासत्तिरस्तु किं ज्ञानान्तर्भावेनेति वाच्यं। घटत्वादिनिर्व्विकल्पकात्मकस्य घटत्वादिविशेष्यकज्ञानात्मकस्य वा विशेषणज्ञानस्य सत्त्वे[१] घटत्वादिप्रकारकेच्छादितो घटत्वादिप्रका-रकानुद्बुद्धसंस्कारादितश्च निखिलघटत्वाद्याश्रयसाक्षात्कारापत्तेः। न च सामान्यप्रकारकज्ञानस्यैव सामान्यलक्षणात्वे ज्ञानलक्षणा-सामा-न्यलक्षणयोः कार्य्य-कारणभावे को भेद इति वाच्यं। कारणताव-च्छेदकभेदेन कार्य्यतावच्छेदकभेदेन च भेदात्, सामान्यलक्षणायाः कार्य्य-कारणभावस्तु तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्न-घटत्वादिप्रकारताशालि-ज्ञानत्वेन स्वरूपतस्तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नघटत्वादिप्रकारिताक-तत्तत्सम्ब-न्धावच्छिन्न-घटत्वाद्याश्रयताशालिमुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षत्वेन, यावत्तस्य कार्य्यतावच्छेदकाघटकत्वेऽपि विनिगमनाविरहेण सकलघटज्ञानं[२]।

(१) एतेन विशिष्टबुद्धिसामान्यकारणस्य विशेषणज्ञानस्य सत्त्वं सूचित-मिति।

(२) सामान्यलक्षणाया हि तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नघटत्वादिप्रकारिताशा-लिज्ञानत्वं कारणतावच्छेदकं, घटत्वादिप्रकारकतत्तत्सम्बन्धावच्छिन्न-घटत्वाद्याश्रयताशालिमुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षत्वञ्च कार्य्यतावच्छेदकं, एकसम्बन्धेन घटत्वादिप्रकारकज्ञाने सम्बन्धान्तरेण घटत्वाद्याश्रयस्य प्रत्यक्षानुदयात् तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नेति इति ग०।

समवायसम्बन्धेन घटत्वप्रकारकज्ञानानन्तरं कालिकादिसम्बन्धेन घटत्वप्रकारकनिखिलघटविषयकप्रत्यक्षस्य समवायसम्बन्धेन घटत्वप्रकारेण घटत्ववतः कालादेः प्रत्यक्षस्य च वारणाय सम्बन्धान्तर्भावः। घटत्वादिप्रकारकज्ञानं विनापि द्रव्यत्वादिसामान्यलक्षणया जायमाने द्रव्यत्वादिप्रकारकघटादिमुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षे व्यभिचारवारणाय कार्य्यतावच्छेदके घटत्वप्रकारिताकेति । प्रकारित्वञ्चालौकिकं ग्राह्यं[1] तेन घटत्वप्रकारकज्ञानं विनापि द्रव्यत्वादिविशिष्टबुद्ध्यात्मक-

(१) अथ प्रकारतायामलौकिकत्वनिवेशनं व्यर्थं घटत्वाद्याश्रयताशालिनिष्ठमुख्यविशेष्यताया अपि अलौकिकत्वस्याग्रे निवेशनीयतया तादृशविशेष्यतायां घटत्वप्रकारतानिरूपितत्वनिवेशेनैव निरुक्तव्यभिचारवारणसम्भवात् तथाहि निरुक्तज्ञानस्य सन्निकृष्टघटविशेष्यकघटत्वप्रकारकस्य घटत्वप्रकारतानिरूपिता घटनिष्ठलौकिकमुख्यविशेष्यता या तु अलौकिकविशेष्यता सा न घटत्वप्रकारतानिरूपिता किन्तु द्रव्यत्वप्रकारतानिरूपितेति, आवश्यकञ्च विशेष्यतायां प्रकारतानिरूपितत्वनिवेशनं अन्यथा कालिकसम्बन्धावच्छिन्नघटत्वप्रकारताकसमवायसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यत्वप्रकारताकज्ञानानन्तरं घटांशे लौकिकसन्निकर्षानन्तरञ्च जायमाने द्रव्यत्वप्रकारतानिरूपितघटनिष्ठालौकिकविशेष्यताक-घटत्वनिष्ठलौकिकालौकिकोभयप्रकारतानिरूपितलौकिकविशेष्यताकप्रत्यक्षे व्यभिचारापत्तेः। न च तादृशप्रत्यक्षं नेष्यत एवेति वाच्यं। कार्य्य-कारणभावस्य लाघवसत्त्वे उभयत्रालौकिकत्वनिवेशेन गौरवस्यान्याय्यतया फलापलापस्यान्याय्यत्वात् इति चेत् । न । तत्रापि यथा लौकिकसन्निकर्षमर्य्यादया सन्निकृष्टघटे घटत्वस्य भानं तथा असन्निकृष्टघटेऽपि । न चासन्निकृष्टघटे सन्निकर्षाभावात् कथं तस्य भानमिति वाच्यं। असन्निकृष्टघटे द्रव्य-

त्वसामान्यलक्षणया यथा द्रव्यत्वं भासते तथा घटत्वमपि, लौकिक-सन्निकृष्टघटत्वस्य द्रव्यत्वसामान्यलक्षणयासन्निकृष्टघटे भानस्य केनाप्यनिराकरणीयत्वात् तथाच उपदर्शितज्ञाने द्रव्यत्वप्रकारतानिरूपिता यावद्‌द्रव्यनिष्ठालौकिकविशेष्यता एका, अन्या च घटत्वप्रकारतानिरूपिता घटनिष्ठालौकिकी विशेष्यता, अपरा च घटत्वप्रकारतानिरूपिता सन्निकृष्टघटनिष्ठा लौकिकी विशेष्यता इति भवत्येव घटत्वप्रकारकज्ञानस्य कार्य्यतावच्छेदकावच्छिन्नं तादृशज्ञानं तस्य घटत्वप्रकारतानिरूपितघटत्वाश्रयताशालिनिष्ठालौकिकमुख्यविशेष्यताकत्वादिति सर्व्वं सुसमञ्जसमित्यस्मद्‌गुरुचरणाः।

केचित्तु तत्प्रकारतानिरूपितविशेष्यताकत्व-विशेष्यतानिरूपित-तत्प्रकारताकत्वयोर्द्वयोर्विनिगमनाविरहेण निवेशे कार्य्य-कारणभाव-द्वयापत्तिरिति लाघवेन तत्प्रकारताकत्व-तद्विशेष्यकत्वयोर्द्वयोरेकत्र द्वयमिति रीत्या निवेशे न कार्य्यकारणभावद्वयापत्तिर्न वा निरुक्तस्थले फलापलाप इति न व्यभिचारः इति। न च व्यासज्यवृत्तिकार्य्यतावच्छेदकत्वस्यापसिद्धान्ततया तत्प्रकारकत्वविशिष्टतद्विशेष्यकत्व-तद्विशेष्यकत्वविशिष्टतत्प्रकारकत्वद्वयोः परस्परं विनिगमनाभावेन कार्य्य-कारणभावद्वयापत्तिर्भवतामपीति वाच्यं। व्यासज्यवृत्तिकार्य्यतावच्छेदकत्वमत एव तद्‌ग्रन्थनिर्व्वचनात्। वस्तुतस्तु उक्तस्थले फलापलापस्यान्याय्यतया विशेष्यतायां तत्प्रकारतानिरूपितं निवेश्यं अलौकिकत्वं प्रकारतायां न देयं भट्टाचार्य्येणापि तथैव लिखितमिति अन्तर्थं। यदि चालौकिकमुख्यविशेष्यतायां लौकिकप्रकारतानिरूपितत्वस्वीकारे तु प्रकारतायामलौकिकत्वं अवश्यं देयं, अन्यथा घटत्वनिर्व्विकल्पकात्मकसमवायावच्छिन्नद्रव्यत्वप्रकारकज्ञानोत्तरं जायमाने एकत्र द्वयमिति रीत्या घटोद्रव्यमित्याकारकज्ञाने व्यभिचारः। न चालौकिकविशेष्यतायां लौकिकप्रकारतानिरूपितत्वस्वीकारे मानाभाव इति वाच्यं। मुख्यविशेष्यतायां अलौकिकत्वनिवेशना-

घटत्वनिर्विकल्पकोत्तरं द्रव्यत्वसामान्यलक्षणया जायमाने यावद्घट-मुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षे लौकिकसन्निकर्षमर्य्यादया घटत्वप्रकारके न व्यभिचारः। न च तथापि कालिकादिसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वादि-प्रकारकबुद्ध्यात्मकगवादिविशेष्यकसमवायसंसर्गकद्रव्यत्वप्रकारकस्मर-णोत्तरं द्रव्यत्वसामान्यलक्षणया जायमाने यावद्घटमुख्यविशेष्यक-प्रत्यक्षे उपनयमर्य्यादया समवायसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वप्रकारके व्यभिचार इति वाच्यं। यथोक्तकार्य्य-कारणभावस्यैव बाधकत्वेन तत्र समवायसम्बन्धेन घटत्वस्याप्रकारत्वात्। अत्र घटत्वप्रकारकज्ञानं विनापि जातित्वरूपेण गोत्वादिजात्यन्तरप्रकारकज्ञानाज्जायमाने जातित्वरूपेण घटत्वादिनिखिलजातिप्रकारकनिखिलजात्याश्रयप्रत्यक्षे व्यभिचारवारणाय स्वरूपत इति घटत्वादिप्रकारिताविशेषणं, यथोक्त-कार्य्य-कारणभावस्यैव बाधकत्वेन तत्र स्वरूपतो घटत्वादेरप्रकारत्वात्। अत्र घटत्वादिविशेष्यकस्मरणादितो जायमाने विशेष्ये विशेषणमिति रीत्या समवायसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वादिप्रकारक-घटवदिदमित्या-द्युपनीतभाने व्यभिचारवारणाय मुख्यविशेष्यत्वप्रवेशः, उपनीतभाने च

---

यालौकिकप्रकारतानिरूपितत्वस्यालौकिकविशेष्यतायां मथुरानाथेन स्वीकृततया तुल्ययुक्त्या लौकिकप्रकारतानिरूपितत्वस्यालौकिक-विशेष्यतायां स्वीकारस्य न्याय्यत्वादित्युच्यते, तदा न कोऽपि दोषः। न च कालिकादिसम्बन्धेन द्रव्यमित्याकारकज्ञानोत्तरं एकत्र द्वयमिति रीत्या जायमाने समवायसम्बन्धेन घटत्वप्रकारक-घटोद्रव्यमित्याका-रकज्ञाने व्यभिचार इति वाच्यं। एतादृशकार्य्य-कारणभावबाधक-बलादेव तादृशज्ञानस्यैवासम्भवात् इति निगर्भः।

घटो न मुख्यविशेष्यः वहिरिन्द्रियस्थले उपनीतं विशेषणतयैव भासते, इति नियमात्। मुख्यविशेष्यत्वमप्यलौकिकरूपं ग्राह्यं तेन कालिकादिसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वस्मरण-लौकिकसन्निकर्षाभ्यां जायमाने लौकिकालौकिकोभयघटत्वप्रकारिताशालिनि अयं घट इति मुख्यविशेष्यकलौकिकप्रत्यक्षे न व्यभिचारः। अथ तथापि कालिकादिसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वप्रकारक-घटविशेष्यकस्मरणाज्जायमाने समवायसम्बन्धेन घटत्वप्रकारक-घटमुख्यविशेष्यकमानसोपनीतभाने व्यभिचारः मानसे उपनीतं विशेषणतयैव भासते इति नियमाभावात्, तत्र कालिकादिसम्बन्धेनैव घटत्वप्रकारकघटप्रत्यक्षं न तु समवायसम्बन्धेनेत्युक्तावपि घटवदितिघटत्वादिस्मरणोत्तरं जायमाने परम्परासम्बन्धेन घटप्रकारकमानसोपनीतभाने व्यभिचारो दुर्व्वारः तदनभ्युपगमे तादृशस्मरणोत्तरं निखिलघटाश्रयसाक्षात्कारानुपपत्तेः द्रव्यप्रकारकज्ञानस्याप्रत्यासत्तित्वादिति चेत्। न। लाघवाद्यथोक्तरूपेण सामान्यलक्षणायाः कार्य्य-कारणभावकल्पने यथोक्तमानसे घटादिर्न मुख्यविशेष्यः किन्तु चक्रव्यूहवत् घटत्वपुटितो भवन्नेव भासते इत्येव कल्प्यते यथोक्तकार्य्य-कारणभावस्यैव बाधकत्वात् तत्तदन्तोपनीतभानान्यत्वप्रवेशे गौरवात् सर्व्वत्रैव मानसोपनीतभाने च उपनीतमवश्यं मुख्यविशेष्यतया भासत इति नियमे मानाभावात्, असति बाधक एव मानसोपनीतभाने उपनीतस्य प्रकारत्व-मुख्यविशेष्यत्वलक्षणद्विविधविषयत्वाभ्युपगमात्, एवं स्वण्डशो दण्ड-पुरुषोभयविषयकसमूहालम्बनस्मरणोत्तरं जायमाने दण्डप्रकारकदण्डाश्रयपुरुषप्रत्यक्षेऽपि पुरुषो न दण्डांशे मुख्यविशेष्यतया भासते अपि तु चक्र-

व्यूहवत् दण्डपुटितः पुरुषः पुरुषपुटितश्च दण्डो भासते इति कल्प्यते। न च तथापि योगजविशिष्टज्ञाने विशेषणज्ञानस्याहेतुत्वनये सामान्यज्ञानं विनापि जायमाने सामान्यप्रकारकसामान्याश्रयमुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षे व्यभिचारः, योगजविशिष्टज्ञानं प्रत्यपि विशेषणज्ञानस्य हेतुत्वनयेऽपि योगजधर्मेण सामान्य-तदाश्रयोभयनिर्व्विकल्पकं जनयित्वा जनिते सामान्यप्रकारक-सामान्याश्रयमुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षे व्यभिचार इति वाच्यं। योगजधर्मजन्यतावच्छेदकतत्तज्जात्यवच्छिन्नान्यत्वेन प्रत्यक्षविशेषणात् तादृशयोगजधर्मज्ञानेऽपि सामान्याश्रयमुख्यविशेष्यतया भाने मानाभावाच्च। अपि तु चक्रव्यूहवत् स्वप्रकारीभूते सामान्ये प्रकारीभूयैव भासते लाघवात् तथैव कल्पनात्, अत एव कालिकादिसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वादिप्रकारकस्मरणोत्तरं विशेष्ये विशेषणमिति रीत्या कालिकादिसम्बन्धेनैव घटत्वादिप्रकारकं घटवदिदमित्युपनीतभानं जायते न तु समवायसम्बन्धेन घटत्वप्रकारकमित्युक्तावेव व्यभिचारवारणसम्भवात् किं जात्यादिसामान्यलक्षणायाः कार्य्यतावच्छेदके स्वरूपतः प्रकारताघटितमुख्यविशेष्यत्वप्रवेशेन। न च तथाप्यत्र घटत्वमिति समवायसम्बन्धेन घटत्वविशेष्यकस्मरणोत्तरं जायमाने विशेष्ये विशेषणमिति रीत्या घटत्वप्रकारके घटवदिदमित्याद्युपनीतभाने व्यभिचारवारणाय तदवश्यं निवेशनीयमिति वाच्यं। स्वरूपतो घटत्वविशिष्टबुद्धिं प्रति स्वरूपतो विशेषणीभूतघटत्वविषयकज्ञानस्य हेतुतया तादृशस्मरणोत्तरं तादृशोपनीतभानासम्भवात् घटत्वत्वघटकतयैव स्वरूपतो घटत्वज्ञानाभ्युपगमे[1]

(१) घटत्वत्वस्य घटेतरावृत्तित्वविशिष्टसकलघटवृत्तित्वरूपतया घटत्व-

व्यभिचारस्यापि विरहादित्यग्रपूर्व्वपचोऽपि निरस्तः घटश्चदिति स्मरणोत्तरं जायमाने परम्परासम्बन्धेन घटत्वप्रकारकमानसोपनीतभाने यथोक्तरीत्या योगजधर्म्मजन्ये घटत्वप्रकारकघटविशेष्यकप्रत्यचे च व्यभिचारवारणाय तत्प्रवेशस्यावश्यकत्वात्। एतेनाभावत्वाद्यखण्डोपाधिरूपसामान्यलक्षणायाः कार्य्य-कारणभावो व्याख्यातः, जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थज्ञानञ्च प्रत्यासत्तिरेव नेति सामान्यपदार्थनिर्व्वचन एव प्रतिपादितं। नन्वेवंरूपेण कार्य्य-कारणभावे जातित्वरूपेणैव जातिव्यक्तिमात्रप्रकारकज्ञानानन्तरं जातित्वावच्छिन्नजातिमत्त्वप्रकारेण निखिलजात्याश्रयप्रत्यचं कथं स्यात् जात्यन्तराश्रयस्य ज्ञानप्रकारीभूतजातिव्यक्तेराश्रयत्वाभावात् स्वरूपतो घटत्वादिप्रकारकत्वस्य कार्य्यतावच्छेदकत्वाच्चेति चेत्। न। जातित्वरूपेण जातिप्रकारकलौकिकप्रत्यचदशायामन्ततो निरुक्तनिष्ठतावच्छेदकस्यापि परम्परासम्बन्धेन जातित्वघटकनित्यत्वादिघटकीभूतध्वंसत्वाद्यखण्डोपाधिप्रकारकज्ञानस्यावश्यकतया[१] तत एव सामान्यज्ञानाज्जातित्वावच्छिन्नजातिमत्त्वरूपेण निखिलजात्याश्रयस्य साचात्कारात् जात्यन्तराश्रयस्यापि परम्परासम्बन्धेन तदाश्रयत्वात्।

---

त्वज्ञानस्य इतरत्वप्रतियोग्यंशे स्वरूपतो घटत्वावगाहित्वनियमइति भावः।

(१) जातित्वस्य नित्यानेकसमवेतत्वरूपस्य घटकीभूतनित्यत्वस्य प्रागभावाप्रतियोगित्वविशिष्टध्वंसाप्रतियोगित्वरूपतया नित्यत्वस्य जातित्वघटकत्वं ध्वंसत्वस्य नित्यत्वघटकत्वञ्चेति भावः।

यच्च जातित्वरूपेण यत्किञ्चिज्जातिमात्रप्रकारकशाब्द-स्मृत्यादिधी-स्तत्रापि मध्ये परम्परासम्बन्धेन ध्वंसत्वादिप्रकारकमानसोपनीतभाना-न्तरमेव, जातिमतः सर्व्वस्य प्रत्यक्षाभ्युपगमात् क्षणविलम्बे क्षतिविर-हात्। न च परम्परासम्बन्धेन ध्वंसत्वप्रकारकज्ञानस्यैव तत्र प्रत्या-सत्तित्वे ध्वंस इत्यादिरेव तत्फलं स्यात्(१) न तु जातिमदिति सामा न्यप्रकारकज्ञानस्य मुख्यविशेष्ये सामान्यप्रकारकज्ञानजनकत्वनियमा-दिति वाच्यं। विशेषणज्ञानार्थं जातित्वसामान्यलक्षणया मध्ये सकल-जातिमुख्यविशेष्यकज्ञानस्यावश्यकत्वात् ज्ञानलक्षणयैव जातिमदिति फलस्यापि सम्भवात् द्विविधविषयत्वस्येष्टत्वात्, एवं तद्व्यक्तित्वरूपेण घटत्वादिप्रकारकज्ञानानन्तरं जायमाने तद्व्यक्तित्वरूपेण घटत्वादिप्र-कारक-तदाश्रयप्रत्यक्षेऽपि परम्परासम्बन्धेन तत्तद्व्यक्तित्वप्रकारकज्ञान-मेव प्रत्यासत्तिरतोऽपि घटत्वादिसामान्यलक्षणायाः कार्य्यदिशि तदसंग्रहोऽपि न दोषायेति भट्टाचार्य्यानुयायिनः।

सम्प्रदायविदस्तु स्वरूपतोघटत्वादिप्रकारकनिखिलघटत्वाद्या-श्रयप्रत्यक्षं प्रति घटत्वादिसामान्यलक्षणाया यथोक्तरूपेणैव कार्य्य-कारणभावः जातित्वादिरूपेण घटत्वादिप्रकारकनिखिलघटत्वा-श्रयप्रत्यक्षं प्रति तु जातित्वरूपेण यत्किञ्चिज्जातिप्रकारकज्ञानमेव हेतुः किं परम्परासम्बन्धेन जातित्वादिघटकध्वंसत्वादिप्रकारकज्ञा-नकल्पनया फलीभूतसाक्षात्कारस्य द्विविधविषयत्वकल्पनया वा। ज्ञानलक्षणायाः कारणतावच्छेदकन्तु सामान्यतः संसर्गावच्छिन्नघट-त्वादिविषयताशालिज्ञानत्वं घटत्वादिप्रकारकज्ञानादिव घटत्वादि-

(१) ध्वंसत्ववदित्यादिरेव तत्र भानं स्यादिति घ०।

विशेष्यकज्ञानादपि घटत्वादिप्रकारकोपनीतभानोदयात् विनश्यद्वस्त्वलौकिकसन्निकर्षजन्यघटत्वादिनिर्विकल्पकानन्तरमपि घटत्वादिप्रकारकप्रत्यक्षापत्तिवारणाय संसर्गावच्छिन्नेति विषयताविशेषणं।

केचित्तु[१] ज्ञानलक्षणायाः सप्रकारकघटत्वादिज्ञानत्वं कारणतावच्छेदकं। न चैवं विनश्यद्वस्त्वलौकिकसन्निकर्षजन्यद्रव्यत्वादिविशिष्टबुद्ध्यात्मक-घट-घटत्वादिनिर्व्विकल्पादपि घटत्वादिप्रत्यक्षापत्तिरिति वाच्यं। इष्टत्वात् सर्व्वांशे निर्व्विकल्पकस्य प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगमादित्याहुः। तदसत्[२] तथा सति सर्व्वांशे निर्व्विकल्पकादपि इष्टापत्तेः सुकरतया सप्रकारत्वोपादानस्यापि कारणतावच्छेदके व्यर्थत्वापत्तेः सविशेष्यकत्वसांसर्गिकविषयताशालित्वमादाय विनिगमनाविरहेण कार्य्य-कारणभावद्वयापत्तेश्च। ज्ञानलक्षणायाः कार्य्यतावच्छेदकञ्च घटत्वादिप्रकारकप्रत्यक्षत्वं, घटत्वादिज्ञानं विनापि जायमाने प्रमेयत्वादिसामान्यलक्षणाजन्यघटत्वादिमुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षे व्यभिचारवारणाय विषयित्वमपहाय प्रकारिताप्रवेशः, प्रकारिता अलौकिकी ग्राह्या तेन निर्व्विकल्पकजन्यप्राथमिकतद्विशिष्टलौकिकप्रत्यक्षे न व्यभिचारः। न चैवं यत्र ज्ञानलक्षणासन्निकर्षालौकिकसन्निकर्षस्य द्वयमेव वर्त्तते तत्र कीदृक्ज्ञानं स्यादिति वाच्यं। तत्र लौकिकालौकिकोभयप्रकारिताकस्यैकस्यैव प्रत्यक्षस्यैवोत्पत्तेः विषयतायाः साङ्कर्य्यस्यादोषत्वात्[३]। न च तत्प्रकारकज्ञानं विनापि

(१) उच्छृङ्खलास्त्विति घ०। (२) तत्तुच्छमिति घ०।

(३) लौकिकालौकिकविषयत्वयोर्मिथः सामानाधिकरण्यस्यादोषत्वादित्यर्थः।

जायमाने योगजधर्म्मजन्यतत्प्रकारकप्रत्यक्षे व्यभिचार इति वाच्यं। योगजधर्म्मजन्यतावच्छेदकतत्तज्ज्ञात्यवच्छिन्नान्यत्वेन प्रत्यक्षादिविशेषणात्। न चैवं तत्प्रकारकप्रत्यक्ष एव तज्ज्ञानस्य हेतुतया इदं रजतमिति शुक्तिमुख्यविशेष्यकमानसभ्रमे शुक्तिज्ञानस्याहेतुतया शुक्तिज्ञानं विनापि तादृशभ्रमापत्तिरिति वाच्यं। इदं रजतमिति शुक्तिमुख्यविशेष्यकमानसभ्रमस्यापि शुक्तिज्ञानात्मकशुक्तिविशिष्टधीकारणत्वेन यत्र कुत्रचित् धर्म्मिणि शुक्तिप्रकारकत्वनियमात् शुक्तिज्ञानविरहस्थले शुक्तिप्रकारकज्ञानसामान्यकारणविरहादेव तदभावात् विशेषसामग्रीसहिताया एव सामान्यसामग्र्याः फलोपधायकत्वात्। न चेदं रजतमिति शुक्तिमुख्यविशेष्यकमानसभ्रमस्य न शुक्तिप्रकारकत्वनियमः शुक्तिप्रकारकज्ञानप्रतिबन्धकदोषसत्त्वे तत्र तस्याप्रकारत्वादिति वाच्यं। शुक्तिमुख्यविशेष्यकतादृशमानसभ्रमस्थले तादृशदोषे मानाभावात् लाघवात् यथोक्तरूपेण ज्ञानलक्षणायाः कार्य्य-कारणभावकल्पने फलबलेन तथैव कल्पनात्। न चैवं मानसोपनीतभाने उपनीतस्य मुख्यविशेष्यतया भाने मानाभावः मुख्यविशेष्यत्वस्य कार्य्यतानवच्छेदकतया सामग्र्यास्तत्रानियमकत्वात्तादृशमानसत्वासम्भवादिति वाच्यं। मुख्यविशेष्यकत्वस्य इतरकारणानियम्यतया बाधकासत्त्व एव मुख्यविशेष्यतया भानावश्यकत्वात्। न चैवं मानसोपनीतवद्बहिरिन्द्रियजोपनीतभानेऽप्युपनीतस्य प्रकारत्व-मुख्यविशेष्यत्वलक्षणद्विविधविषयतापत्तिरिति वाच्यं। सामान्यलक्षणा-लौकिकसन्निकर्षजन्यातिरिक्तस्य बहिरिन्द्रियजतत्तमुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षस्यानुभवासिद्धत्वेनालीकतया यावद्विशेषसामग्री-

तादौ संयोगादेरभावादिति वदन्ति, तदपरे न मन्यन्ते, तथाहि धूमत्वावच्छिन्ना व्याप्तिः सन्निकृष्टधूमविषये धूमत्वेन प्रत्यक्षेण ज्ञायते ततः स्मृता सा तृतीयलिङ्ग-परामर्शे पक्षनिष्ठधूमवृत्तितया ज्ञायते ततोऽनुमितिः तदनभ्युपगमेऽपि सन्निकृष्टधूमविषये धूमत्वेन धूमो-

---

बाधादेव तद्बाधात्, मानसस्य तु तदतिरिक्तस्यापि इदं रजतमित्या-द्युपनीतविशेष्यकभ्रमस्य उपनीतशुक्त्यादिमुख्यविशेष्यत्वमनुभवसिद्ध-मतो नालीकत्वं। न च तथापि घट-घटत्वनिर्व्विकल्पकोत्तरं जाय-मानेऽयं घट इत्यादिविशिष्टप्रत्यक्षे घटत्वादेर्मुख्यविशेष्यत्वापत्तिः लौकिकसन्निकर्षरूपविशेषसामग्रीसत्त्वादिति वाच्यं। तत्राप्यसति बाधके घटाद्यंशे घटत्वादेः प्रकारत्ववन्मुख्यविशेष्यत्वस्यापीष्टत्वात् इति।

केचित्तु संसर्गावच्छिन्न-तद्विषयताशालिज्ञानत्वेन कारणता योगजधर्म्माजन्यसामान्यप्रत्यासत्त्यजन्यतद्विषयकप्रत्यक्षत्वेन कार्य्यता, तद्विषयिता चालौकिकी ग्राह्या, तेन तल्लौकिकप्रत्यक्षे न व्यभि-चारः, एवञ्च[१] तद्विषयकप्रत्यक्षत्वमात्रस्य कार्य्यतावच्छेदकतया इदं रजतमिति शुक्तिविशेष्यकमानसभ्रमोऽपि न शुक्तिज्ञानं विना[२] इत्याहुरिति संक्षेपः। विस्तरस्तु अस्मत्कृतसिद्धान्तरहस्येऽनुसन्धेयः।

---

(१) तथाचेति ग०, घ०।

(२) अत्र "बहिरिन्द्रियजोपनीतभाने उपनीतस्य मुख्यविशेष्यत्वनिरासस्य उक्तक्रमेण" इत्यधिकः पाठः घ०चिह्नितपुस्तके वर्तते।

ननु महानसादौ वह्नि-धूमव्याप्तिप्रत्यक्षदशायां महानसीयधूमादिनिष्ठलौकिकसन्निकर्षादेव पर्व्वतीयधूमांशेऽपि लौकिकसाक्षात्कारात्मकोव्याप्तिग्रहः स्यात् किं सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वेन इत्यत आह, 'तद्विशेषकप्रत्यक्ष इति तल्लौकिकप्रत्यक्ष इत्यर्थः, 'तदिन्द्रियसन्निकर्षस्येति तन्निष्ठलौकिकसन्निकर्षस्येत्यर्थः, 'अनागतादाविति अनागतादिरूपे पर्व्वतीयधूम इत्यर्थः, 'आदिपदात् व्यवहितातीतपरिग्रहः, 'संयोगादेः' महानसीयधूमादिनिष्ठचक्षुःसंयोगादेः, 'आदिपदात् संयुक्तसमवायादेः परिग्रहः, 'अभावात्' लौकिकप्रत्यक्षजनकत्वासम्भवात्, तथाच लौकिकसन्निकर्षस्य विषयघटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या हेतुतया[१] अन्यनिष्ठलौकिकसन्निकर्षतो न पर्व्वतीयधूमलौकिकप्रत्यक्षसम्भव इति भावः। 'इति वदन्ति' इति नैयायिका वदन्तीत्यर्थः। 'तत्' नैयायिकवचनं, "अपरे' मीमांसकाः, 'न मन्यन्ते' न प्रमाणत्वेन मन्यन्ते, 'तथाहीति तन्मते हीत्यर्थः, 'धूमत्वावच्छिन्ना' सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन धूमत्वविशिष्टा धूमनिष्ठेति यावत्, 'व्याप्तिः' वह्निव्याप्तिः, रूपादिनिष्ठवह्निव्याप्तेः सन्निकृष्टधूमे प्रत्यक्षाभ्युपगमेऽन्यथाख्यात्यापत्तिरतस्तद्व्यवच्छेदाय धूमनिष्ठेत्युक्तं, 'सन्निकृष्टधूमविषय इति सन्निकृष्टधूमरूप एव विशेष्ये इत्यर्थः, 'धूमत्वेन' धूमत्वप्रकारेण, 'ततः' तदनन्तरं, 'स्मृता सेति धूमत्वरूपेण सन्निकृष्टधूम एव स्मृता सेत्यर्थः,

---

(१) 'विषयघटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या' विषयान्तर्भाविना सामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्येत्यर्थः तथाच विषयतासंसर्गेण लौकिकप्रत्यक्षं प्रति यथायथं समवायादिसंसर्गेण सन्निकर्षस्य हेतुत्वमिति भावः।

वह्निव्याप्य इत्यनुभवस्तथैव व्याप्तिस्मरणं ततोधूमवान-यमिति व्याप्तिस्मृतिप्रकारेण धूमत्वेन पक्षवृत्तिधूम-ज्ञानादनुमितिः व्याप्त्यनुभव-तत्स्मरण-पक्षधर्मताज्ञा-

---

'तृतीयलिङ्गपरामर्श इति पक्षविशेष्यकव्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि-प्रत्यक्ष इत्यर्थः, तस्य सन्निकृष्टधूमविशेष्यकव्याप्तिप्रत्यक्षापेक्षया तृतीयत्वात्, 'पक्षनिष्ठधूमवृत्तितया ज्ञायत इति लौकिकसन्निक-र्षमर्य्यादया पक्षविशेषणत्वेन भासमानस्य पक्षनिष्ठधूमस्य विशेषणतया भासत इत्यर्थः, विशेषणतावच्छेदकांशे सधर्म्मितावच्छेदककविशिष्ट-वैशिष्ट्यबोधं प्रति तद्धर्म्मितावच्छेदकप्रकारेण यत्किञ्चिद्धर्म्मिणि विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चय एव हेतुर्न तु तद्धर्म्मितावच्छेदक-प्रकारेण विशेषणीभूतव्यक्तौ विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चय एव सर्व्वत्र हेतुर्गौरवादिति भावः। यद्यप्येवमपि व्याप्तेः सामानाधिकर-ण्यरूपतया तस्य च प्रतिव्यक्तिभिन्नतया सन्निकृष्टधूमे साक्षात्ज्ञातव्याप्तेः कथं पक्षवृत्तिधूमे भानं तस्यास्तत्र बाधितत्वात् अन्यथाख्यातिप्र-सङ्गाच्च। तथापि व्याप्तेः सामानाधिकरण्यरूपत्वेऽपि सिद्धान्तलक्ष-णोक्तयुक्त्या व्याप्यतावच्छेदकीभूतधूमत्वादिसम्बन्धेनैव हेतौ तत्प्र-कारकं ज्ञानमनुमितिहेतुर्न तु साक्षात्सम्बन्धेन, तथाच महान-सीयधूमवृत्तिसामानाधिकरण्यस्यापि धूमत्वसम्बन्धेन पक्षनिष्ठधूमे सत्त्वात् न बाध इत्यभिप्रायः, लाघवात् साध्यवदन्यावृत्तित्वमेव व्याप्तिः सा च पर्व्वतीयधूमसाधारणी एकैवेत्यभिप्रायो वा। ननु

नानामेकप्रकारकत्वेनानुमितिहेतुत्वात्। गवादिपदे-ष्वपि शक्त्यनुभव-तत्स्मरण-वाक्यार्थानुभवानामेकप्रका-रकत्वेन हेतु-हेतुमद्भाव इत्यपूर्व्वे वक्ष्यते, तच्च योग्य-

---

मीमांसकैरुपनीतभानानभ्युपगमादुक्तरूपेण तन्मये प्रत्यक्षतो वि-शिष्टपरामर्शासम्भव इत्यत आह, "'तदनभ्युपगमेऽपीति उक्तरूपेण प्रत्यक्षतो विशिष्टपरामर्शानभ्युपगमेऽपीत्यर्थः, 'तथैव' धूमत्वरूपेण सन्निकृष्टधूम एव, पक्षवृत्तिधूमज्ञानात् पक्षविशेष्यकधूमज्ञानात्। ननु व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वात् कथं तादृशज्ञानद्वयादनुमितिरित्यत आह, 'व्याप्त्यनुभव-तत्स्मरणेति स्मरणानुभवसाधारणव्याप्तिज्ञानसामान्येत्यर्थः, यथाश्रुते स्मृतिज-नकीभूतव्याप्त्यनुभवस्य पृथगहेतुतया पृथक् तदुत्कीर्त्तनानौचि-त्यादिति ध्येयं। 'एकप्रकारकत्वेनेति यद्धर्म्मावच्छिन्नविशेष्यताक-व्याप्तिज्ञानं तद्धर्मप्रकारेण हेतोः पक्षधर्मताज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वा-दित्यर्थः, न तु नियमतो व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानमेव का-रणमिति भावः। ननु सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगमे गोत्वरूपेण सन्निकृष्टगोव्यक्तिं पक्षयित्वा व्यवहारविषयत्वेन हेतुना शक्तिसम्बन्धेन गोपदवत्त्वासाधने व्यक्त्यन्तरेषु सन्निकर्षाभावेन परा-मर्शाभावादनुमित्यनुत्पादाद्गोपदश्रवणानन्तरं व्यक्त्यन्तरान्वयबोधो न स्यात् तत्र शक्तिसम्बन्धेन गोपदवत्त्वाज्ञानाभावात्। न च परा-मर्शानुमित्योः समानप्रकारकत्वेनैव कार्य्य-कारणभावात् गोत्वरूपेण

त्वादिबलादपूर्व्वव्यक्तिलाभोऽनुमाने तु पक्षधर्म्मताबलात्[१] धूमोवह्निव्याप्य इत्यनुभवो न तु सर्व्वोधूमोवह्निव्याप्य इति येन सर्व्वभानार्थं तत्स्वीकारः ।

---

सन्निकृष्टगोव्यक्तिविशेष्यकपरामर्शादेव व्यक्त्यन्तरेष्वपि अनुमितिरिति वाच्यं । तथा सति द्रव्यत्वरूपेण पर्व्वते वह्निव्याप्यवत्ताज्ञानात् जलेऽपि वह्न्यनुमित्यापत्त्यान्यथाख्यात्यापत्तेः । किञ्च सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगमे यस्य पुरुषस्यानुमानादिना गोत्वादिना सकलगवाननुभवः तत्पुरुषस्य गोपदश्रवणानन्तरं द्वीपान्तरीयगवादेरन्वयबोधो न स्यात् तद्गोचरसंस्काराभावेन गोपदात् तस्य स्मरणासम्भवात्, सामान्यलक्षणाभ्युपगमे तु सन्निकृष्टगोव्यक्तिषु द्वितीयादिविशिष्टप्रत्यक्षदशायामेव गोत्वसामान्यलक्षणाप्रत्यासत्त्या सकलगवानुभवेन सकलगोगोचरसंस्कारसम्भव इत्यत आह;'गवादिपदेष्वपीति गवादिपदोच्चारणेष्वपीत्यर्थः, जायमानानामिति शेषः, 'शक्त्यनुभवेति शक्तिज्ञानेत्यर्थः, 'तत्स्मरणेति तस्मात् स्मरणमिति व्युत्पत्त्या तज्जन्यपदार्थस्मरणेत्यर्थः, यथाश्रुते शक्त्यनुभव-शक्तिस्मरणयोः पृथगहेतुतया पृथक् तदुत्कीर्त्तनस्यासङ्गतत्वापत्तेः स्मरणानुभवयोरपि समानप्रकारकत्वेनैव हेतु-हेतुमद्भावे स्मृतेरगृहीतग्राहित्वेन प्रामाण्यापत्तेश्च । 'एकप्रकारकत्वेनेति गवादिपदस्य जातावेव शक्ततया गोपदविशेष्यकशक्तिसंसर्गक-गोत्वप्रकारकज्ञानं गोत्वप्रकारक-गोविशेष्यकसमवायसंसर्गकस्मरणे हेतुः समवायसंसर्गक-

---

(१) पक्षधर्म्मतावशादिति ख० ।

अथ वह्निमानयमित्यनुमितिर्विशेषणज्ञानसाध्या विशिष्टज्ञानत्वादिति पर्व्वतीयवह्निभानार्थं तत्कल्पने धूमेऽपि तथा क्वचिद्धूमस्यापि व्यापकत्वादिति चेत्।

---

गोत्वप्रकारकस्मरणं समवायसंसर्गक-गोत्वप्रकारकगोशाब्दबोधे हेतुरिति क्रमेण हेतु-हेतुमद्भावो न तु गोत्वप्रकारक-तद्व्यक्तिविशेष्यक-गोपदशक्तिज्ञानं गोत्वप्रकारक-तद्व्यक्तिविशेष्यकस्मरणे हेतुः गोत्वप्रकारक-तद्व्यक्तिविशेष्यकस्मरणं गोत्वप्रकारक-तद्व्यक्तिविशेष्यकशाब्दबोधे हेतुरिति समानविशेष्यकत्व-समानप्रकारकत्वोभयान्तर्भावेण कार्य्य-कारणभाव इत्यर्थः, तथाच व्यक्त्यन्तरे गोपदशक्त्यनुमित्यभावेऽपि गोपदविशेष्यकगोत्वशक्तिज्ञानादेव सन्निकृष्टव्यक्तिवद्व्यक्त्यन्तरस्यापि शाब्दबोधः, एवं द्वीपान्तरीयगवादेः संस्काराभावेन स्मरणासम्भवेऽपि गोत्वप्रकारेण सन्निकृष्टगोव्यक्तीनां स्मरणादेव द्वीपान्तरीयगवादीनामपि शाब्दबोधः इति भावः। 'इत्यपूर्व्वे वक्ष्यत इति इत्यत्र विनिगमकमपूर्व्ववादे वक्ष्यत इत्यर्थः। लाघवात् समानप्रकारकत्वस्यावश्यकत्वाच्चेति भावः। इदमुपलक्षणं गवादिपदस्य गोत्वादिजातावेव शक्ततया व्यक्तौ शक्तिविरहेण शक्तिज्ञानस्य समानविशेष्यकत्वेन हेतुत्वासम्भवाच्च।

केचित्तु 'एकप्रकारकत्वेन हेतु-हेतुमद्भाव इत्यस्य गोत्वावच्छिन्नविशेष्यकशक्तिज्ञानं गोत्वप्रकारक-गोविशेष्यक-समवायसंसर्गकस्मरणे हेतुः समवायसंसर्गक-गोत्वप्रकारकस्मरणं समवायसंसर्गक-गोत्वप्रकारकगोशाब्दबोधे हेतुरिति क्रमेण हेतु-हेतुमद्भावो न तु

न। विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञाने विशेषणतावच्छेदकप्रकारक-ज्ञानस्यावश्यकत्वेन हेतुत्वात्, तच्च इत्तमेव न तु विशेषणज्ञानमपि तथा गौरवात्। गौरवमिति विशिष्ट-

---

यथोक्तक्रमेण समानविशेष्यकत्वस्याप्यन्तर्भाव इत्याहुः। तदसत्। परनये व्यक्तौ शक्त्यभ्युपगमे जातिशक्तिवादविरोधः तदनभ्युपगमे चान्यथाख्यात्यापत्त्या गोत्वावच्छिन्नविशेष्यकशक्तिज्ञानस्यैवासम्भवात् कथं तादृशशक्तिज्ञानस्य हेतुत्वाभ्युपगम इत्युभयथैवासङ्गतत्वापत्तेः। न च परनयेऽपि जातौ व्यक्तौ च शक्तिः परन्तु गोत्वजातिप्रकारेण यत्किञ्चिद्गोव्यक्तिनिष्ठशक्तिज्ञानादेव व्यक्त्यन्तरस्यापि स्मरणमनुभवश्चेत्येव जातिशक्तिवादार्थ इति वाच्यं। लाघवात् गवादिपदस्य गोत्वादिजातावेव निरवच्छिन्नशक्तिः शक्तिशब्देन स्वरूपतो गोत्वादिजातिप्रकारक-गोपदादिविशेष्यकज्ञानमेव गोत्वादिजातिप्रकारकव्यक्तिस्मरणे तादृशव्यक्त्यनुभवे च हेतुरित्यस्यैव जातिशक्तिवादार्थत्वेन शब्दपरिच्छेदेऽभिधानादिति।

ननु पदानुपस्थितस्य अर्थस्य न शाब्दबोधविषयत्वमिति नियमादस्तत्व्यक्तेः कथं शाब्दबोधे भानमित्यत आह, 'तच्चेति गवादिपदजन्यशाब्दबोधइत्यर्थः, 'योग्यतादिवशादिति[1] 'आदि-पदात् तात्पर्य्यपरिग्रहः, 'अपूर्व्वव्यक्तीति पदात् पूर्व्वानुपस्थि-

---

(१) 'योग्यतादिवशादित्यपि कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठः।

ज्ञाने युगपद्विशेष्ये विशेषणे सन्निकर्ष एव कारणं न तु निर्व्विकल्पकं मानाभावात्। विशिष्टज्ञानत्वमेव मानमिति चेत्। न। दृष्टान्ताभावात् दण्डी पुरुष इत्यच

---

ताया अपि व्यक्तेर्भानमित्यर्थः। 'अनुमाने त्विति, 'तुः' इवार्थे, यथा व्यापकतावच्छेदकत्वेनागृहीतस्य धर्म्मस्य नानुमितिविधेयतावच्छेदकत्वमिति नियमं परिभूय बाधसहकारात्[(१)] व्यापकतावच्छेदकत्वेनागृहीतस्यानुमितौ विधेयतावच्छेदकत्वं तथेहापि यथोक्तनियमं परिभूय पदानुपस्थितस्यापि शाब्दबोधविषयत्वमित्यर्थः। ननु महानसादौ वह्नि-धूमव्याप्तिप्रत्यक्षदशायां सर्व्वो धूमो वह्निव्याप्य इत्यनुभवो जायतेऽतः सर्व्वधूमभानार्थमवश्यं धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वं स्वीकरणीयमित्यत आह,'धूम इति, 'सर्व्वभानार्थं' सर्व्वधूमभानार्थं, 'तत्स्वीकारः' धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वस्वीकारः।

धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वे मानमाशङ्कते, 'वह्निमानयमितीति, 'विशेषणज्ञानसाध्या' पर्व्वतीयवह्निज्ञानसाध्या, यथाश्रुते पक्षतावच्छेदक-साध्यतावच्छेदकज्ञानजन्यतया सिद्धसाधनापत्तेः, मध्यत्वञ्च अव्यवहितोत्तरवर्त्तित्वं तेन ज्ञानत्वादिना कार्य्यत्वावच्छिन्नं प्रति स्वरूपयोग्यत्वमादाय नार्थान्तरं, पर्व्वतीयवह्निज्ञानत्वावच्छिन्न-

---

(१) इतरबाधसहकारादिति ख०।

विशेषणधीजन्यत्वानभ्युपगमात् विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञान-त्वात्। 'अपि च प्रमेयत्वेन व्याप्तिं परिच्छिन्दन् सर्व्वज्ञः स्यात्, तथाच परकीयज्ञानविषये घटत्वं न वेति

---

कारणकत्वस्य साध्यत्वेऽप्रसिद्ध्यापत्तेः, पर्व्वतीयवह्निलिङ्गकानुमितिं प्रत्यपि पर्व्वतीयवह्निविषयकव्याप्तिज्ञानत्वेन ज्ञानत्वेनैव वा हेतुत्वा-दिति ध्येयं। 'विशिष्टज्ञानत्वात्' पर्व्वतीयवह्निविशिष्टज्ञानत्वात्, पर्व्वतीयवह्निमान् इत्यनुमितिर्दृष्टान्तः, 'तत्कल्पन इति वह्नित्व-ज्ञानस्य सामान्यतः सामान्यलक्षणात्वेन प्रत्यासत्तित्वकल्पने इत्यर्थः, 'तथा' धूमत्वज्ञानस्य प्रत्यासत्तित्वं बोध्यं, सामान्यतः सामान्यप्र-कारकज्ञानत्वेन कारणत्वं सामान्याश्रयमुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति, तथाच धूमत्वादिप्रकारकज्ञानस्यापि प्रत्यासत्तित्वमायातमिति भावः। ननु तथापि सामान्यलक्षणात्वं न प्रत्यासत्तित्वावच्छेदकं सामान्याश्रयत्वस्य केवलान्वयितया एकस्य सामान्यस्य ज्ञाने जगत एव प्रत्यक्षापत्तेः अतो विशिष्यैव सा वाच्या तथाच वह्नित्वसामान्य-लक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वसिद्धावपि धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यास-त्तित्वे मानाभावः इत्यरुचेराह, 'क्वचिदिति, 'व्यापकत्वात्' साध्यत्वात्, तथाच पर्व्वतो धूमवानित्यसन्निकृष्टधूमसाध्यकानुमितेर्विशेषणज्ञान-जन्यत्वानुरोधेन धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वमावश्यकमिति भावः। ननूक्तानुमाने नियमग्राहकानुकूलतर्कस्तावद्विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानं प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारकविशेषणज्ञानत्वेन हेतुताग्रह एव

संशयो न स्यात् प्रमेयत्वेन तदन्यतरनिश्चयात्। प्रमेयत्वेन घटं जानात्येव घटत्वं तस्य न जानाति इति चेत्। न। तत् किं घटत्वं न प्रमेयं येन तन्न जानीयात् सकलघटवृत्तिधर्मस्य प्रमेयत्वेन तदज्ञानासम्भवात्।

---

वाच्यः स एव नास्तीत्याह, 'विशिष्टवैशिष्ट्येति वह्नित्व-धूमत्वविशिष्टवैशिष्ट्यज्ञाने वह्नित्व-धूमत्वप्रकारकज्ञानस्यैवेत्यर्थः, 'विशेषणज्ञानमपि' पर्व्वतीयवह्नि-पर्व्वतीयधूमज्ञानमपि, 'तथा' पर्व्वतीयवह्नि-पर्व्वतीयधूमविशिष्टबुद्धौ हेतुः, 'गौरवादिति, तथाचोक्तानुमानमप्रयोजकमिति भावः। ननु गौरवात् पर्व्वतो वह्निमान् इत्याद्यनुमितेः पर्व्वतीयवह्निज्ञानजन्यत्वानभ्युपगमे गौरयमिति विशिष्टप्रत्यये ऽपि गोत्वज्ञानस्याहेतुत्वापत्तिस्तथाच नायातं निर्व्विकल्पकेन तत्रेष्टापत्तिमाह, 'गौरयमितीति, 'मानाभावात्' मध्ये निर्व्विकल्पके मानाभावात्, क्षणविलम्बस्य शपथनिर्णेयत्वादिति भावः। पूर्वोक्तगौरवमश्रुत्वैव तटस्थः शङ्कते, 'विशिष्टज्ञानत्वमेवेति गोत्वविशिष्टज्ञानत्वमेवेत्यर्थः, 'मानं' निर्विकल्पके मानं, गौरयमिति प्राथमिकविशिष्टधीः गोत्वज्ञानत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिनी गोत्वविशिष्टज्ञानत्वादित्यनुमानात् प्राथमिकविशिष्टज्ञानात् पूर्वं गोत्वज्ञानं सिद्धं पक्षधर्मताबलात् निर्विकल्पकरूपमेव सिद्ध्यति तत्पूर्वमपि विशेषणज्ञानाभावेन विशिष्टबुद्ध्यात्मकस्य तस्यासम्भवादिति भावः। 'दृष्टान्ताभावादिति, द्वितीयविशिष्टज्ञानेऽपि

उक्तज्ञानस्य हेतुत्वासिद्धेः गोत्वविशिष्ट-गोत्वसाध्यकानुमितावपि गोत्वविषयकव्याप्तिज्ञानत्वेन ज्ञानत्वेनैव वा कारणतया[१] उभयथापि[२] गोत्वज्ञानत्वेन हेतुत्वासिद्धेश्च, तथाच साध्याप्रसिद्धिरिति भावः। ननु यत् यद्विशिष्टज्ञानं तत् तज्ज्ञानत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगीति सामान्यतो दण्डी पुरुष इति ज्ञानं दृष्टान्तः स्यादित्यत आह, 'दण्डी पुरुष इति, 'विशेषणधीति दण्ड-दण्डत्वादिज्ञानत्वेन कारणतानभ्युपगमादित्यर्थः, 'विशिष्टवैशिष्ट्येति दण्डत्वविशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानत्वादित्यर्थः[३]। न च गोत्वसामान्यवहितोत्तरवर्त्तित्वमेव साध्यं तथाच गोत्वसाध्यकानुमितिरेव दृष्टान्त इति वाच्यं। तथाप्यप्रयोजकत्वात् गोत्वविशिष्टबुद्धौ गोत्वज्ञानत्वेन हेतुत्वस्य गौरवेण मानाभावेन चासिद्धत्वादिति भावः। सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वे साधकाभावमुक्त्वा बाधकमप्याह, 'अपिचेति, 'प्रमेयत्वेनेति संयोगादिसम्बन्धेन प्रमेयहेतुके पर्व्वतः कपिसंयोगाभाववान् प्रमेयादित्यादौ महानसादिषु सन्निकृष्टप्रमेये प्रमेयत्वरूपेण व्याप्तिप्रत्यक्षदशायां प्रमेयत्वसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या यावद्वृत्तिप्रमेयेऽपि व्याप्तिं गृह्णन् पुरुष इत्यर्थः, 'सर्वज्ञः स्यादिति

---

(१) परामर्शस्य कारणतयैव व्याप्तिज्ञानासत्त्वे अनुमित्यापत्तिवारणसम्भवे परामर्शस्य व्यापारतारक्षार्थं व्याप्तिज्ञानस्य ज्ञानत्वेनैव कारणत्वं न तु तत्र व्याप्तिविषयकत्वं कारणतावच्छेदकमिति भावः।

(२) तथापीति ख०, ग०।

(३) तथाच विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धौ विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानमेव हेतुरित्यभिप्रायः।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सामान्यलक्षणापूर्व्वपक्षः ।

---

स्वस्ववृत्तिसकलधर्म्मप्रकारेण सर्वेषां पदार्थानां ज्ञानवान् स्यादित्यर्थः, प्रमेयत्वसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या पक्षवृत्तिप्रमेये व्याप्तिप्रत्यक्षदशायां तया प्रत्यासत्त्या प्रमेयमात्रस्यैव ज्ञानात्तदनन्तरं प्रमेयं प्रमेयवदित्याकारकसकलपदार्थविशेष्यक-स्वस्ववृत्तिसकलधर्म्मप्रकारकोपनीतभाने बाधकाभावादिति भावः। नन्वस्तु सर्वज्ञत्वं किं नश्छिन्नमित्यत आह, 'तथाचेति, 'परकीयज्ञानविषये' विशिष्य स्वज्ञानाविषये, स्वस्य स्वरूपतो घटत्वप्रकारकेदन्त्वधर्मितावच्छेदकज्ञानाविषय इति यावत्, 'तस्य' पुरुषस्य(१), 'तदन्यतरेति घटत्व-तदभावयोरन्यतरनिश्चयादित्यर्थः, एतच्च समानविषयकनिर्णयमात्रस्यैव विरोधित्वमित्यभिमानेन । प्रकृते, 'प्रमेयत्वेनेति, 'तदज्ञानेति घटत्वाज्ञानेत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सामान्यलक्षणापूर्वपक्षरहस्यं ।

---

(१) "तथाच परकीयज्ञानविषये घटत्वं वर्त्तते न वेति तस्य संशयो न स्यात्" इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठमनुसृत्य 'तस्येति मूलपाठो धृतो व्याख्यातश्च रहस्यकृतेति ।

## अथ सामान्यलक्षणासिद्धान्तः।

उच्यते यदि सामान्यलक्षणा नास्ति तदानुकूल-तर्कादिकं विना धूमादौ व्यभिचारसंशयो न स्यात्

## अथ सामान्यलक्षणासिद्धान्तरहस्यं।

'यदीति, 'सामान्यलक्षणा नास्तीति सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तिता नास्तीत्यर्थः, 'अनुकूलतर्कादिकं विनेति व्यभिचारज्ञानप्रतिबन्धकतर्काद्यभावदशायामित्यर्थः, 'व्यभिचारसंशयः' धूमो वह्निव्यभिचारी न वेत्यादिव्यभिचारसंशयः, 'प्रसिद्धधूमे' सकललौकिकसन्निकृष्टधूमे, वह्निसम्बन्धज्ञानात्' (१)वह्निव्याप्यत्वनिश्चयात्, 'मानाभावेन' सन्निकर्षाभावेन, 'अज्ञानादिति संशये विशेष्यतया भानासम्भवादित्यर्थः, परनये नव्यनैयायिकनये च धर्म्मिज्ञानस्य संशयाहेतुत्वेऽपि संशयस्य धर्म्यंशे प्रत्यक्षरूपतया धर्मीन्द्रियसन्निकर्षस्यावश्यं हेतुत्वादिति भावः। 'सामान्येन तु' धूमत्वसामान्यलक्षणसन्निकर्षेण तु, 'सकलधूमोपस्थितौ' सकलधूमप्रत्यक्षस्वीकारे, 'धूमान्तरे' कालान्तरीय-देशान्तरीय-

(१) 'वह्निसम्बन्धज्ञानात्' इति टीकाकारस्य पाठधारणेन कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य 'वह्निसम्बन्धाज्ञानात्' इत्यत्र 'वह्निसम्बन्धज्ञानादिति पाठोऽनुमीयते।

'प्रसिद्धधूमे वह्निसम्बन्धावगमात् कालान्तरीय-देशान्तरीयधूमस्य मानाभावेनाज्ञानात् सामान्येन तु सकलधूमोपस्थितौ धूमान्तरे विशेषादर्शनेन संशयो युज्यते।

धूमे, 'विशेषादर्शनेन' व्याप्यत्वानिश्चयेन। एतच्चापाततः प्रसिद्धधूमे धूमत्वेन व्याप्तिनिश्चयः तद्धूमत्वेन वा आद्ये सामान्यलक्षणास्वीकारेऽपि संशयोऽसिद्ध एव समानधर्मितावच्छेदककभिन्नधर्मिकनिश्चयस्यापि प्रतिबन्धकत्वात्। द्वितीये धूमत्वप्रकारेण तत्रैव संशयः स्यात् समानप्रकारकनिश्चयस्यैव विरोधात्[१]। न च मास्तु संशयान्यथानुपपत्त्या सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वस्वीकारः तथापि यत्किञ्चिद्धूमादौ धूमत्वादिप्रकारकज्ञानानन्तरं धूमत्वप्रकारेण सकलधूमविषयकप्रत्यक्षमनुभवसिद्धमिति तदनुरोधादवश्यं सामान्यलक्षणा स्वीकरणीयेति वाच्यं। तादृशानुभवस्यैवासिद्धेः तादृशानुभवस्य प्रामाणिकत्वे विवादस्यैवापर्य्याप्तेः[२] इति संक्षेपः। विस्तरस्तु अस्मत्कृतसिद्धान्तरहस्येऽनुसन्धेयः।

लीलावतीकारमतमाशङ्कते, 'यत्त्विति, सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगम इति शेषः, 'पाकादौ चिकीर्षेति पाकादिविशेष्यकवर्त्तमानकृतिसाध्यत्वप्रकारकेच्छेत्यर्थः, 'सुखादाविच्छेति सुखादिविशेष्यक-सुखत्वादिप्रकारकेच्छेत्यर्थः, 'इच्छाविर-

(१) विरोधित्वादिति ख०। संशयविरोधित्वादिति ग०।

(२) विवादस्यैवाप्रसक्तेरित्यर्थः, क्वचित्तथैव पाठः।

यत्तु पाकादौ चिकीर्षा सुखादौ इच्छा न स्यात् सिद्धे इच्छाविरहात् असिद्धस्याज्ञानात् तस्मात् सुखत्वादिना

---

हात्' इच्छोत्पादासम्भवात्, 'असिद्धस्याज्ञानादिति, तद्विषयकेच्छायां तद्विषयकज्ञानस्य हेतुतया ज्ञानं विना इच्छाया असम्भवादिति भावः। 'सुखत्वादिना' सुखत्वादिज्ञानस्वरूपसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या। 'इच्छा-प्रवृत्त्यभावाद्यादिति इच्छात्व-प्रवृत्तित्वावच्छिन्नं प्रति सामान्यतोज्ञानत्वेनैव कारणत्वादित्यर्थः। 'अतिप्रसङ्ग इति घटत्वप्रकारकघटज्ञानात् पटत्वप्रकारकपटेच्छा-प्रवृत्तिप्रसङ्ग इत्यर्थः, 'समानप्रकारकत्वेन' समानप्रकारकत्वसम्बन्धेन। ननु समानप्रकारकत्वं सम्बन्धः समानविशेष्यकत्वं वा इत्यत्र विनिगमकाभावेन द्वयोरेवसम्बन्धत्वादसिद्धस्याज्ञाने कथमसिद्धे इच्छेत्यत आह,·'न तु समानविषयत्वेनापीति न तु समानविशेष्यकत्वसम्बन्धेनापीत्यर्थः। नन्वन्यथाकल्पनेऽपि सुखत्वादिप्रकारकसुखादिज्ञानात् सुखत्वादिप्रकारक-सुखादीच्छोत्पत्तिस्थल एव विनिगमकाभावात्तस्य सम्बन्धत्वं कल्पनीयं इत्यत आह, 'समानविषयत्वे सत्यपीति, 'इच्छाकृत्योरभावादिति गुणत्वादिप्रकारक-सुखादिज्ञानात् सुखत्वादिप्रकारकसुखादिगोचरेच्छा-कृत्योरभावादित्यर्थः। न च घटत्वप्रकारक-यत्किञ्चिद्घटज्ञानाद्घटत्वप्रकारेण घटान्तरे इच्छोत्पादवारणाय समानविषयकत्वमप्यावश्यकमिति वाच्यं। प्रकृतवत्तस्यापीष्टत्वात्। न च तथापि पाकत्वप्रकारक-सिद्धपाकज्ञानात् कथमसिद्धे पाके चिकीर्षा वर्त्तमानकृतिसाध्यत्वस्य सिद्धपाके बाधितत्वेनान्यथा-

ज्ञातेषु सर्व्वेषु सिद्धं विहायासिद्धे इच्छा भवतीत्यभ्युपेयं। तन्न। असिद्धस्याज्ञानेऽपि सिद्धगोचरज्ञानादेव इच्छा-प्रवृत्तिस्वाभाव्यादसिद्धे तयोरुत्पत्तेः[१]। न चातिप्रसङ्गः,

---

व्याप्त्यापत्त्या तत्र तत्प्रकारकज्ञानासम्भवादसिद्धपाके च सन्निकर्षाभावेन तत्प्रकारकज्ञानासम्भवादिति वाच्यं। पाकादौ वर्त्तमानस्वकृतिसाध्यता-प्रकारकज्ञानं हि नेन्द्रियेण तस्यातीन्द्रियत्वात् किन्तु अनुमानेन, तथाच पाकत्वप्रकारक-सिद्धपाकज्ञानादेव पाकत्वप्रकारेणासिद्धपाके यथाकथञ्चित्प्रसिद्धस्य वर्त्तमानस्वकृतिसाध्यत्वस्यानुमानं पक्षधर्मताज्ञा-नानुमित्योरपि समानप्रकारकत्वेनैव कार्य्य-कारणभावात्। न च वर्त्तमानस्वकृतिव्यतिरेकप्रयुक्तव्यतिरेकप्रतियोगित्वादिरूपस्य वर्त्त-मानस्वकृतिसाध्यत्वानुमापकलिङ्गस्य सिद्धपाके बाधादसिद्धपाके च विना सामान्यलक्षणां ज्ञातुमशक्यत्वात् परामर्शासम्भवेन कथमनु-मितिरपीति वाच्यं। स्वाश्रयवृत्तिपाकत्ववत्तात्मकपरम्परासम्बन्धेन पाकत्वप्रकारेण सिद्धपाक एव तादृशलिङ्गवत्तापरामर्शसम्भवात् परामर्शानुमित्योरपि समानविशेष्यतावच्छेदकत्वेनैव कार्य्य-कारण-भावात्, येन सम्बन्धेन व्याप्यताग्रहः तेनैव सम्बन्धेन हेतुमत्ता-ज्ञानमनुमितिहेतुरिति नियमस्य परेषामसिद्धेः किन्तु येन सम्बन्धेन व्याप्यताग्रहस्तेन सम्बन्धेन हेतुमत्ताज्ञानमिव येन सम्बन्धेन व्याप्यता-ग्रहस्तेन सम्बन्धेन यत्त्वाधिकरणं तद्वृत्तिपक्षतावच्छेदकवत्त्वसम्बन्धेन

---

(१) तयोरुपपत्तेरिति ख०, ग०।

समानप्रकारकत्वेन ज्ञानेच्छा-कृतीनां कार्य्य-कारण-भावात् न तु समानविषयत्वेनापि क्वचिदप्यकल्पनात्

हेतुमत्ताज्ञानमपि अनुमितिहेतुः खपदं हेतुपरं। न चैवं संयोगादि-सम्बन्धेन वह्न्यादिव्याप्यतया गृहीतस्य धूमादेः स्वाश्रयवृत्तिद्रव्यत्व-सम्बन्धेन द्रव्यत्वरूपेण ह्रदादौ परामर्शात् तादृशधूमादेः संयोगसम्बन्धेन द्रव्यत्वरूपेण पर्व्वते परामर्शाच्च द्रव्यत्वरूपेण ह्रदादौ वह्न्याद्यनुमित्या-पत्त्यान्यथाख्यात्यापत्तिः परामर्शानुमित्योः समानविशेष्यतावच्छेदकत्वे-नैव कार्य्य-कारणभावादिति वाच्यं। न्यायनये प्रमासामान्यं प्रति जन-कस्य विषयाबाधस्य परनये लाघवाद्विशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रत्येव जनक-तया ह्रदादौ वह्न्याद्यनुमित्यनुत्पादात्। अतएव परनये साध्यताव-च्छेदकरूपेण यत्किञ्चित्साध्यव्याप्तिज्ञानादेव साध्यतावच्छेदकरूपेणा-प्रसिद्धसाध्यस्यापि भानाभ्युपगमेऽपि वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इति परामर्शान्न वह्नित्वरूपेण पर्व्वते महानसीयवह्न्यादेर्भानं, कार्य-कारण-भावस्तु मतद्वय एव ज्ञानत्वेन तद्बाधाभावत्वेन, न्यायनये यत्र तन्निष्ठ-विशेष्यतासम्बन्धेन ज्ञानोत्पत्तिस्तत्र विशेषणताविशेषसम्बन्धेन तद्बाधा-भाव इति विशेष्यघटितसामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः, परनये च यत्र तन्निष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतासम्बन्धेन ज्ञानोत्पत्तिस्तत्र विशेषणताविशेषसम्बन्धेन तद्बाधाभाव इति विशेष्याघटितसामाना-धिकरण्यमेव प्रत्यासत्तिर्लाघवात् भ्रमानुपगमेन व्यभिचारविरहात्, नातो विषयाबाधस्य परनयेऽपि गुणत्वं तन्निष्ठविशेष्यतासम्बन्धावच्छि-न्नकार्य्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वस्यैव गुणत्वरूपत्वात्। न च न्याय-

समानविषयकत्वे सत्यपि समानप्रकारकज्ञानाभावेनेच्छा-कृत्योरभावात् तस्यावश्यकत्वेन गौरवाच्चेति पर-

नये परनये वा कथं विषयबाधाभावस्य विषयरूपस्य निरुक्तविशेष्यत्वघटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या जनकत्वं पाकरक्तघटादौ श्यामादिप्रमायामुपनीतभानानुमित्यादिरूपायां व्यभिचारादिति वाच्यं। विषयबाधस्य हि निरवच्छिन्नाधारतासम्बन्धेनाभावः(१) न विषयरूपः किन्त्वतिरिक्तः विषयस्यातीतत्वादिदशायामपि विषयवति तत्सत्त्वात्। न च तथापि केवलान्वयिधर्मप्रमायां विषयबाधस्याप्रसिद्धतया तदभावस्य जनकत्वासम्भव इति वाच्यं। तत्र तस्याजनकत्वेऽपि क्षतिविरहात् तदभाववतोऽप्रसिद्धत्वेनापत्तिविरहात्। अस्तु वा विषयाबाधस्य विषयबाधाभावत्वेन न जनकत्वमपि तु सामान्यतोऽभावत्वेन, यत्र तद्वन्निष्ठविशेष्यतासम्बन्धेन तन्निष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतासम्बन्धेन वा ज्ञानोत्पत्तिः तत्र तद्वन्निष्ठविशेषणतासम्बन्धेनाभाव इति सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः। न च भावत्वमादाय विनिगमनाविरहः, भावत्वस्याभावभिन्नत्वादिरूपतया गुरुत्वात्। न च संयोग-समवायादिसम्बन्धेन घटादिप्रमायां द्रव्यत्वगुणत्वादिमादाय विनिगमनाविरह इति वाच्यं। अतीतानागताधिकरणेषु संयोगादिसम्बन्धेन घटादिप्रमायां व्यभिचारात् अतीतत्वादिदशायां अतीताद्यधिकरणे द्रव्यादिमत्त्वविरहात् अभाववत्त्वस्य

(१) निरवच्छिन्नविशेष्यतासम्बन्धेनाभाव इति ग०।

तु तदानीमपि तत्र सत्त्वात् । अतएव न्यायनये भ्रमं प्रत्यपि विषयबाधस्य न विषयबाधत्वेन जनकत्वं अतीताद्यधिकरणे घटाभावादिभ्रमे व्यभिचारात् किन्त्वभावत्वेन, यत्र विशेष्यतासम्बन्धेन तद्भ्रमस्तत्र तद्वद्वृत्तिविशेषणतासम्बन्धेनाभाव इति सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः । न च तथाप्यधिकरणतात्व-प्रतियोगितात्वादेरखण्डातिरिक्तपदार्थत्वनये तमादाय विनिगमनाविरह इति वाच्यं । तस्याखण्डातिरिक्तपदार्थत्वनये तेनापि रूपेण कारणत्वस्येष्टत्वात् धर्मत्रय-चतुष्टयानामेव तादृशानां सम्भवेनानन्तकार्य्य-कारणभावाभावात् । वस्तुतस्तु न्यायनये प्रमासामान्यं प्रति ज्ञानसामान्यमेव गुणः तद्वन्निष्ठविषयतासम्बन्धेन सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः, वस्तुपदादिजन्यवस्तुमात्रविषयकशाब्दबोध-वस्तुत्वादिप्रकारकवस्तुमात्रविषयकानुमिति-वस्तुत्वादिप्रकारकवस्तुमात्रविषयकस्मरणादिरूपस्य यत्किञ्चिज्ज्ञानस्यानन्तसंसारेऽवश्यं कस्यचित् पुरुषस्य सर्व्वत्र सर्व्वदा विषयतासम्बन्धेन सत्त्वेन अन्ततो भगवज्ज्ञानस्यैव तेन सम्बन्धेन सर्व्वत्र सर्व्वदा सत्त्वेन च व्यभिचाराभावात् तदेव च लाघवात्, परनयेऽपि तया प्रत्यासत्त्या विशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रति हेतुः यत्र तन्निष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतासम्बन्धेन ज्ञानोत्पत्तिः तत्र तद्वन्निष्ठविशेष्यतासम्बन्धेन ज्ञानमिति सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः भ्रमानभ्युपगमेन तत्र व्यभिचारविरहात् । भगवदनभ्युपगमेऽपि संसारस्यानादितया सर्व्वदैव सर्वत्र विशेष्यतासम्बन्धेनावश्यं कस्यचित् पुरुषस्य वस्तुपदादिजन्यवस्तुत्वादिप्रकारकवस्तुमात्रविषयकशाब्दबोधादिसत्त्वेनाद्यप्रमायामपि व्यभिचारविरहाच्च । नतु तथापि परनये समानप्रकारकत्वेन

सिद्धान्तात्। न च सर्व्वज्ञत्वे संशयो न स्यादिति दोषः, घटः स इति घटत्वप्रकारकं हि ज्ञानं संशयविरोधि

ज्ञानेच्छयोः कार्य्य-कारणभावे सुखत्वादिप्रकारक-सिद्धसुखादि-ज्ञानादनुपस्थितासिद्धसुखादाविवानुपस्थिते पदार्थान्तरेऽपि सुखत्वादिप्रकारकेच्छापत्तिः। न च पदार्थान्तरे सुखत्वाद्यसंसर्गाग्रहासत्त्वान्न तत्रेच्छेति वाच्यं। अनुपस्थितेऽसंसर्गाग्रहस्य सुतरां सत्त्वात्। न च तत्प्रकारकज्ञानत्वेन तत्प्रकारकतदाश्रयविषयकेच्छात्वेन कार्य्य-कारणभावो न तु समानप्रकारकत्वं प्रत्यासत्तिरिति वाच्यं। रजतत्वादिप्रकारकज्ञानाद्भ्रमस्थले शुक्त्यादौ रजतत्वादिप्रकारकेच्छानुपपत्तेः। न च परस्य तत्रेच्छानुपपत्तिः, शुक्तौ रजतार्थिप्रवृत्त्यनुरोधेन तेनापि तदङ्गीकारात् तस्मादनुपस्थिते उपस्थितेष्टभेदाग्रहादिच्छेति परेणाभ्युपेयं। अतएव इदन्त्वादिना उपस्थिते शुक्त्यादौ रजतत्वेनेच्छा तथाच भाविनि विषये ज्ञात एवेच्छेति तदर्थमवश्यं सामान्यलक्षणा स्वीकरणीयेति चेत्। न। समानप्रकारकत्वप्रत्यासत्त्या ज्ञानत्वेनेच्छात्वेन समवायघटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या तत्प्रकारकज्ञानत्वेन तत्प्रकारकेच्छात्वेनैव सामान्यकार्य्य-कारणभावः, विशेषतस्तु रजते रजतत्वप्रकारकेच्छायां दोषाभावः, अरजते रजतत्वप्रकारकेच्छायाञ्च रजतेन सममगृहीतभेदस्यारजतस्य ज्ञानं हेतुरिति[१] परसिद्धान्तात्। न च तथापि परसिद्धान्तो यथा

(१) रजतेन समं भेदाग्रह एव हेतुरितीति ख०।

तच्च न युक्तं स्वसामग्रीविरहात्, अतो घटत्वादिसकल-विशेषज्ञानेऽपि स घटो न वेति संशय इति ।

---

तथास्तु स्वमते भेदाग्रहमपेक्ष्य लाघवात्तद्विशेष्यक-तत्प्रकारक-ज्ञानस्य तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकेच्छां प्रति हेतुतया सुखत्वादि-रूपेणासिद्धसुखादाविच्छानुरोधेन सामान्यलक्षणावश्यकीति वाच्यं । स्वमतेऽपि सुखत्वादिरूपेण सिद्धसुखादावेवेच्छोत्पद्यते असिद्धसुखे इच्छानुत्पादेऽपि क्षतिविरहात् । एवं चिकीर्षापि पाकत्वादिरूपेण वर्त्तमानस्वकृतिसाध्यत्वभ्रमात् सिद्धपाकादावेवोत्पद्यते नासिद्धपाके चिकीर्षाया अयथार्थत्वेऽपि[1] क्षतिविरहात् तत्तत्पाकत्वरूपेणैव विशेषदर्शनसत्त्वेन भ्रमोत्पत्तावपि बाधकाभावाच्चेत्यस्य सुवचत्वात् । न च तत्र सिद्धत्वज्ञानं विरोधीति वाच्यं। तदवच्छेदेनासिद्धत्वज्ञानस्यैव तत्प्रकारकेच्छां प्रति विरोधित्वात् । न च सुखत्वाद्यवच्छेदेन सिद्धत्व-ज्ञानं, प्रकृते तत्सत्त्वे इच्छोत्पत्तेः केनाप्यनङ्गीकारात् । वस्तुतस्तु सामा-न्यलक्षणां विनापि अयं कालः सुखोत्पादकालीनध्वंसप्रतियोगी अयं कालः पाकोत्पादकालीनध्वंसप्रतियोगी सृष्टिकालत्वादित्याद्य-नुमानात् पक्षधर्मताबलेनासिद्धसुखादेरसिद्धपाकादेश्च ज्ञानसम्भवः सामान्यलक्षणानभ्युपगमे विशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रति विशेषणज्ञानस्या-पि हेतुत्वानभ्युपगमेन पक्षधर्मताबललभ्यासिद्धसुखादेर्ज्ञानविरहेऽपि क्षतिविरहात् ज्ञाते च सिद्धपाके ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्त्यैव तत्र स्वमते

---

(१) अनुत्पादेऽपीति क० ।

मनसा वर्त्तमानस्वकृतिसाध्यत्वज्ञानसम्भवेन चिकीर्षासम्भवात् सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगमेऽपि ज्ञानलक्षणायाः स्वमते प्रत्यासत्तित्वावश्यकत्वादित्यास्तां विस्तरः। 'न वेति, सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वस्वीकार इति शेषः, 'संशयविरोधीति घटो न वेति संशयविरोधीत्यर्थः, समानाकारो हि निश्चयः संशयविरोधी अत एव जातिमानित्यादिनिश्चयेऽपि घटो न वेति संशयः, प्रकृते तु घटो न वेति संशयः कोटितावच्छेदकघटत्वांशे निष्प्रकारकः, प्रमेयवत्त्वमिति सामान्यलक्षणाजन्यप्रत्ययस्तु न तथेति भावः। 'स्वसामग्रीविरहादिति, घटत्वांशे, निष्प्रकारकं(१) घटत्वविशिष्टज्ञानं प्रति घटत्वांशे निष्प्रकारकं(२) ज्ञानमेव हेतुः अन्यथा जातित्वादिरूपेण घटत्वप्रकारकघटज्ञानेऽपि भूतलं घटवदिति घटत्वांशे अन्याप्रकारकघटत्वप्रकारकघटत्वविशिष्टबुद्ध्यापत्तेः जातित्वरूपेण घटत्वज्ञानेऽप्ययं घट इति विशिष्टबुद्ध्यापत्तेश्च तादृशविलक्षणविषयताया भूतलं घटाभाववदिति बाधनिश्चयाभावस्यायं न घट इति भेदग्रहाभावस्य च कार्य्यतावच्छेदकत्वेन सामान्यसामग्रीमर्य्यादयैव तदवच्छिन्नापादनसम्भवात्। न च तदानीं घटत्वांशे जातित्वप्रकारकज्ञानस्यापि सामग्रीसत्त्वान्न घट इति घटत्वांशे निष्प्रकारकं(३) ज्ञानमिति वाच्यं। जातित्वादिप्रकारकज्ञानसामग्र्यास्तादृशविलक्षणविषयताशालिज्ञानं प्रत्यप्रतिबन्धकत्वेन तदुत्पत्तावपि बाधकाभावात्, अन्यथा

(१) निर्विकल्पकात्मक० इति ग० घ०।

(२) निर्विकल्पकात्मकमिति ग० घ०। (३) निर्विकल्पकमिति घ०।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सामान्यलक्षणासिद्धान्तः।

---

जातिमान् घट इति द्विविधविषयताशालिज्ञानानुपपत्तेः तदानीं जातित्वप्रकारेण ज्ञानसामग्र्या आवश्यकत्वात्, एवञ्च प्रकृते प्रमेयत्व-सामान्यलक्षणाजन्यघटत्वज्ञानस्य घटत्वांशे प्रमेयत्वप्रकारकत्वनियमाच्च ततो घटः स इति धीसम्भव इति दिक्(१)।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये(२) सामान्यलक्षणारहस्यं।

---

(१) इति भावः इति दिगिति ग०, घ०।

(२) महामहोपाध्यायश्रीलश्रीमथुरानाथतर्कवागीशभट्टाचार्य्यविरचितमनुमानरहस्ये सामान्यलक्षणारहस्यं सम्पूर्णमिति क०। सामान्यलक्षणारहस्यं इति ग०। इति महामहोपाध्यायश्रीमथुरानाथतर्कवागीशभट्टाचार्य्यविरचितानुमानान्तर्गतसामान्यलक्षणाटिप्पनी समाप्तेति घ०।

## अथोपाधिवादः ।

उपाधिज्ञानाद्व्यभिचारज्ञाने सति न व्याप्तिनिश्चय इत्युपाधिर्निरूप्यते ।

तत्रोपाधिः साध्यत्वाभिमतव्यापकत्वे सति साध-

---

## अथोपाधिवादरहस्यं ।

प्रसङ्गसङ्गत्या उपाधिं निरूपयितुं निरूपणप्रयोजनं दर्शयन् शिष्यावधानाय प्रतिजानीते[१] 'उपाधीति, तथाच परस्थापनायां[२] व्याप्तिनिश्चयप्रतिबन्धाय उपाधिरुद्भाव्यः स्वस्थापनायां व्याप्तिनिश्चयाय उपाधिर्निरस्यः स च उपाधिज्ञानं विना न सम्भवतीति तन्निरूपणमिति भावः ।

पितृचरणास्तु व्याप्तिग्रहोपायनिरूपणानन्तरं उपाधिं निरूपयितुं व्याप्तिग्रहोपायेन सहैककार्य्यानुकूलत्वसङ्गतिं दर्शयन् शिष्यावधानाय प्रतिजानीते 'उपाधिज्ञानादिति परप्रयुक्तहेतावुपाध्युद्भावने उपाधि-

---

(१) अत्र प्रतिज्ञा अव्यवहितोत्तरकालकर्त्तव्यत्वप्रकारकबोधानुकूलो व्यापारः, स च 'उपाधिज्ञानादित्यादिः 'निरूप्यते' इत्यन्तो मूलग्रन्थः, निरूप्यत इत्यत्र वर्त्तमानसामीप्यार्थकलट्प्रत्ययेन निरूपणस्य वर्त्तमानकालाव्यवहितोत्तरकालीनत्वेन प्रतीयमानत्वादिति भावः ।

(२) परकीयहेताविति ग० ।

**नत्वाभिमताव्यापकः, अनौपाधिकत्वज्ञानञ्च न व्याप्तिज्ञाने हेतुरतो व्यापकत्वादिज्ञाने नान्योन्याश्रयः।**

---

ज्ञानादित्यर्थः, तथाच यथा स्वीयहेतौ व्याप्तिग्रहोपायसत्त्वे व्याप्तिनिश्चयाद्विजयः, तथा परप्रयुक्तहेतावुपाध्युद्भावनेऽपि उपाधिज्ञानाद्विजय इति विजयलक्षणैककार्य्यानुकूलत्वमेव सङ्गतिरिति भाव इति प्राहुः।

मिश्रास्तु व्याप्तिग्रहोपायोपपादकत्वलक्षणोपोद्घात एव व्याप्तिग्रहोपायनिरूपणानन्तरं उपाधिनिरूपणे सङ्गतिः, उपाधेर्ज्ञाने तदभावज्ञानं तदभावज्ञाने च तद्व्याप्यस्य व्यभिचारस्याभावज्ञानं तज्ज्ञाने च प्रतिबन्धकसत्त्वान्न व्यभिचारज्ञानमिति क्रमेणोपाधेर्व्याप्तिग्रहोपायव्यभिचारज्ञानविरहं प्रत्युपपादकत्वात्, तथाच मूले उपाधिज्ञानान्न व्यभिचारज्ञाने व्याप्तिनिश्चय इति योजना, 'न व्यभिचारज्ञान इत्यस्य व्यभिचारज्ञानाभावे सतीत्यर्थः। न च नञर्थे अभावे प्रतियोगितया प्रथमेतरविभक्त्यन्तार्थस्य नान्वय इति व्युत्पत्त्या सप्तम्यन्तार्थस्य व्यभिचारज्ञानस्य कथं नञर्थेऽन्वय इति वाच्यं। तादृशव्युत्पत्तौ मानाभावात्, "तेषां मोहः पापीयान्नामूढस्येतरोत्पत्तेरिति न्यायसूत्रे पञ्चम्यन्तार्थस्याप्युत्पादस्य नञर्थेऽन्वयदर्शनात्, 'तेषां' राग-द्वेष-मोहानां त्रयाणां मध्ये, 'मोहः पापीयान्' मोहः श्रेष्ठतमोदोषः, 'अमूढस्य' मोहरहितस्य पुरुषस्य, 'इतरयोः रागद्वेषयोरुत्पत्तेरभावादिति तदर्थादिति प्राहुः।

'तच' करणीये निरूपणे, विषयत्वं सप्तम्यर्थः, तथाच निरूपण-

यद्वा व्यापकत्वं तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं, तत्प्रतियोगित्वञ्चाव्यापकत्वं, प्रतियोगित्वञ्च तदधिकर-

---

विषयीभूत उपाधिरीदृशो धर्म्म इत्यन्वयः। 'साध्यत्वाभिमतेति अत्र सत्यन्तदलानुपादाने वह्निमान् धूमादित्यादौ पर्व्वतत्वादावतिव्याप्तिरिति तदुपादानं, तन्मात्रोपादाने च द्रव्यत्वादावतिप्रसङ्ग इति विशेष्यदलं, साध्यत्व-साधनत्वे व्यापकत्व-व्याप्यत्वे सोपाधौ वस्तुतो न स्त इत्युभयत्राभिमतपदं। ननु साध्यव्यापकत्वं साध्यनिष्ठव्याप्तिनिरूपकत्वं तच्च साध्ये उपाधिव्याप्तौ गृहीतायामेव ग्राह्यं सा चानौपाधिकत्वज्ञानादेव ग्राह्या अनौपाधिकत्वञ्च प्रकृते साध्यस्य यावदुपाधिव्यापकव्यापकत्वं उपाधिव्यापकेषु यावत्सु साध्यनिष्ठव्याप्तिनिरूपकत्वं पर्य्यवसितं तथाच साध्ये उपाधिव्याप्तौ गृहीतायामेव उपाधौ साध्यनिष्ठव्याप्तिनिरूपकत्वज्ञानं उपाधिव्यापकयावदन्तर्गते उपाधौ साध्यनिष्ठव्याप्तिनिरूपकत्वज्ञाने च साध्ये उपाधिव्याप्तिज्ञानं तस्यानौपाधिकत्वघटकत्वादित्यन्योन्याश्रयः। न च साध्योपाध्योरन्योन्याभावाद्येकतरगर्भव्याप्तिज्ञानं प्रति अत्यन्ताभावाद्येकतरगर्भव्याप्तिघटितानौपाधिकत्वज्ञानं कारणमतो नान्योन्याश्रय इति वाच्यं। तथासत्यनवस्थापत्त्या तथा वक्तुमशक्यत्वादित्यत आह, 'अनौपाधिकत्वेति, 'व्यापकत्वादीत्यादिपदेन साधननिष्ठव्याप्तिनिरूपकत्वाभावरूपसाधनाव्यापकत्वपरिग्रहः।

व्याप्तिनिरूपकत्वापेक्षया लाघवादाह, "यद्वेति, तथाच साध्यवन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वे सति साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रति-

योगित्वमुपाधित्वमिति फलितं[१] । नन्वेवं धूमवान् वह्नेरित्यादावार्द्रेन्धनादावव्याप्तिः तादृशाप्रतियोगित्वस्यैवासिद्धेः । न च तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकधर्म्मवत्त्वे सतीति सत्यन्तार्थ इति वाच्यं । वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्निसामग्रीन्धनादौ तादृशप्रमेयत्वादिमत्त्वेन मन्नानसत्वादौ चातिव्याप्तेरिति चेत् । न । साध्यवन्निष्ठाभावप्रतियोगितानवच्छेदकः सन् यः साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदको धर्म्मस्तद्वत्त्वं तेन रूपेण उपाधित्वमित्युक्तत्वात् । एवं प्रतियोगितयोः उपाधितावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वमपि बोध्यं तेन धूमवान् वह्नेरित्यादावार्द्रेन्धनत्वादेः समवायादिना धूमवन्निष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि न क्षतिः न वा वह्निमान् धूमादित्यादौ साध्यव्यापकतावच्छेदकस्य वह्नित्व-वह्निसामग्रीत्वादेः समवायादिना साधनवन्निष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽप्यतिव्याप्तिः । नन्वेवं द्रव्यं सत्त्वादित्यादावव्याप्यवृत्तिसंयोगाद्युपाधावव्याप्तिः तस्य यथोक्तसाध्यव्यापकत्वविरहात्, एवं गुणः सत्त्वादित्यादौ संयोगाभावादावतिव्याप्तिस्तस्यापि यथोक्तसाधनाव्यापकत्वात् इत्यत आह, 'प्रतियोगित्वस्येति प्रतियोगित्वस्य प्रतियोगिनोः निष्ठताप्रतियोगिनोः साध्यवत्-साधनवतोर्धर्म्मस्य साध्यवत्-साधनवतोर्विशेषणस्येति यावत्, 'तदधिकरणेति, 'तदधिकरणं प्रतियोगितावच्छेदकस्याधिकरणं प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नमिति यावत्, तदनधिकरणत्वमित्यर्थः, पूर्व्वमप्रसिद्ध्यादिवारणाय प्रतियोगित्वपदस्य प्रतियोगितावच्छेदकपरत्वावश्यकतया तच्छब्देन तस्यैव परामर्शात् । प्रतियोगितावच्छेद-

(१) निर्व्यूढमिति ग० ।

कावच्छिन्नेत्युपादनात्. द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ विशिष्टसत्त्वे नाव्याप्तिः नवा सत्तावान् जातेरित्यादौ विशिष्टसत्त्वे अतिव्याप्तिरिति भावः। वस्तुतस्तु ननु वस्तुमात्रस्यैव वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नाभावस्य साध्यवति सत्त्वेन तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वस्याप्रसिद्धत्वात् कथं तस्य साध्यव्यापकत्वरूपत्वमिति यथाश्रुतलक्षणोपरि शङ्कायामाह, 'प्रतियोगित्वञ्चेति' तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वञ्चेत्यर्थः, 'तदधिकरणानधिकरणत्वं' तदधिकरणानधिकरणकत्वं स्वानधिकरणतदधिकरणकत्वमिति यावत्, 'तत्पदं साध्यपरं, तथाच स्वानधिकरणसाध्याधिकरणकं यद्यत्तदन्यत्वं साध्यव्यापकत्वमिति फलितं, एवं साधनवन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वमपि स्वानधिकरणसाधनाधिकरणकत्वं वक्तव्यं, अन्यथा वह्निमान् धूमादित्यादावपि साध्यव्यापकस्य द्रव्यत्वादेर्धूमवन्निष्ठोभयाभाव-वैशिष्ट्याद्यवच्छिन्नाभावप्रतियोगित्वादुपाधितापत्तेः। न चैवं धूमवान् वह्नेरित्यादावयोगोलकभेदादिरूपैकव्यक्त्युपाधौ लक्षणसमन्वयेऽप्यार्द्रेन्धनादिरूपनानाव्यक्त्युपाधावव्याप्तिः। चालनीन्यायेन सर्व्वासामेवार्द्रेन्धनव्यक्तीनां स्वानधिकरणसाध्याधिकरणकतया साध्यव्यापकत्वविरहादिति वाच्यं। स्वावच्छिन्नानधिकरणसाध्याधिकरणकं यद्यत्तदन्यत्वे सति स्वावच्छिन्नानधिकरणसाधनाधिकरणको यो धर्म्मस्तद्वत्त्वं तेन रूपेण उपाधित्वमिति विवक्षितत्वात्, प्रथमस्वपदं अन्यत्वप्रतियोगिपरं, द्वितीयञ्चोपाधितावच्छेदकपरं, अतएव द्रव्यं सत्त्वात् गुणः सत्त्वादित्यादौ संयोगतदभावयोरपि नाव्याप्त्यतिव्याप्त्यवकाश इत्येव तत्त्वं।

प्राञ्चस्तु 'तदधिकरणानधिकरणत्वमित्यत्र 'तत्पदं अभावपरं,

णानधिकरणत्वमिति वदन्ति। तन्न। साधन-पक्षधर्म्मा-वच्छिन्नसाध्यव्यापकोपाध्यव्याप्तेः। न च तयोरनुपा-

---

तथाचाच प्रतियोगित्वं न स्वरूपसम्बन्धविशेषः किन्तु अभावाधि-करणावृत्तित्वं, अतो न द्रव्यं सत्वात् गुणः सत्त्वादित्यादौ संयोग-तदभावयोरव्याप्त्यतिव्याप्त्यवकाश इति भाव इत्याहुः। तदसत्। तादृशप्रतियोगित्वं व्यापकतादलमाचे विवक्ष्यते साधनाव्यापकत्वदल-माचे वा उभयदल एव वा, आद्ये साध्यवन्निष्ठाभावाधिकरणावृत्तिभि-न्नत्वं साध्यव्यापकत्वं फलितं तथाच वह्निमान् धूमादित्यादिसद्धेता-वपि साधनाव्यापके घटादावतिव्याप्तिः तस्यापि साध्यवन्निष्ठजलत्वाद्य-भावाधिकरणावृत्तितया साध्यव्यापकत्वात्, द्वितीये साधनवन्निष्ठा-भावाधिकरणावृत्तित्वं साधनाव्यापकत्वं फलितं तथाचासम्भवः धूमवान् वह्नेरित्यादावयोगोलकान्यत्वादेरपि साधनवन्निष्ठजलत्वाद्यभावाधि-करणवृत्तितया साधनाव्यापकत्वविरहात्, अतएव न तृतीयोऽपि। न च साध्यवन्निष्ठस्वाभावाधिकरणावृत्तियद्यत्तदन्यत्वं साध्यव्यापकत्वं विवक्षितमिति वाच्यं। अव्यापकत्वदले प्रतियोगित्वस्य स्वरूपसम्बन्ध-विशेषरूपत्वे द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ संयोगादौ अतिव्याप्तिः, यदि च साधनाव्यापकत्वमपि साधनवन्निष्ठस्वाभावाधिकरणावृत्तित्वं तदा द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ संयोगादौ अव्याप्तिः तस्य सत्त्वावन्निष्ठस्वा-भावाधिकरणद्रव्यवृत्तितया साधनाव्यापकत्वविरहात्। न च साध्यव्या-पकत्वं साध्यवन्निष्ठस्वाभावाधिकरणावृत्तिभिन्नत्वं, साधनाव्यापकत्वञ्च साधनवन्निष्ठयत्किञ्चिदभावाधिकरणावृत्तित्वं अतो न द्रव्यं सत्त्वा-

धित्वं, दूषकताबीजसाम्यात्। मित्रातनयत्वेन श्याम-त्वसाधने शाकपाकजत्वस्य प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वेन वायोः प्रत्यक्षत्वे साध्ये उद्भूतरूपवत्त्वस्य च शास्त्रे प्रयोजकत्वे-

---

दित्यादौ संयोगादावव्याप्तिः द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ संयोगादा-वतिव्याप्तिर्वा इति वाच्यं। तथापि द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ त-त्तत्संयोगव्यक्तावतिव्याप्तेर्दुर्व्वारत्वादिति दिक्।

'साधन-पक्षधर्म्मेति वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षविषयाश्रयत्वादित्यादौ पक्षधर्म्मवहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वव्यापके उद्भूतरूपवत्त्वे काकः श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादौ साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापके शाकपाकजत्वे चाव्याप्तिरित्यर्थः, तयोः साध्यवन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्वाभावादिति भावः। 'तयोः' पक्षधर्म्म-साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकयोः, 'दूषकतेति, वक्ष्यमाणरीत्या उभयत्रैव व्यभिचारोन्नायकत्वसत्त्वादिति भावः। तयोरुपाधित्वानङ्गीकारे सिद्धान्तविरोधमप्याह, 'मित्रेति, काका-देरित्यादि, 'प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वेनेति प्रत्यक्षस्य स्पर्शः विषयतारूपः सम्बन्धः यत्रेति व्युत्पत्त्या प्रत्यक्षविषयाश्रयत्वेनेत्यर्थः, तथाचाद्ये साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वं द्वितीये पक्षधर्म्मावच्छिन्नसाध्यव्यापक-त्वमिति भेदेनोदाहरणद्वयमिति ध्येयं(१)। 'प्रयोजकत्वेन' व्यभि-चारानुमानप्रयोजकत्वेन, 'पक्षेतर इति पर्व्वतो धूमवान् वह्नेरि-त्यादौ पर्व्वतेतरादावित्यर्थः। न च पक्षेतरस्य प्रमेयत्वादेः सर्व्वत्र सत्त्वेन साधनव्यापकतया कथमतिव्याप्तिरिति वाच्यं। तादात्म्य-

---

(१) इति भाव इति ख०, ग०।

सोपाधित्वस्वीकाराच्च पक्षेतरेऽतिव्याप्तेश्च। न च व्यति-रेके पर्व्वतेतरान्यत्वादित्यत्र इतरान्यत्वस्यासिद्धिवार-

सम्बन्धेन तस्य साधनाव्यापकत्वात्। न च तथापि पक्षे तादात्म्यसम्बन्धेन साध्याव्यापकतया कथमतिव्याप्तिरिति वाच्यं। 'अतिव्याप्तेरित्यस्य उक्तदूषणौपयिकत्वरूपज्ञानस्य अतिप्रसक्तेरित्यर्थात् पक्षातिरिक्त एव साध्यव्यापकत्वस्य ग्राह्यत्वादन्यथा साध्यसन्देहदशायामुपाधित्वग्रहः कुत्रापि न स्यादिति भावः। न चेतरशब्दस्य सर्व्वनामतया सर्व्व-नामकार्य्यापत्तिरिति वाच्यं। पक्ष इतरो यस्मादिति बहुव्रीहि-समासात् "न बहुव्रीहावित्यनेन सर्व्वनामकार्य्यनिषेधात्। 'व्यतिरेक-इति साध्यव्यतिरेके साध्य इत्यर्थः, 'इत्यत्र' हेतौ, 'इतरान्यत्वस्येति, वस्तुमात्रस्यैव किञ्चिदपेक्षया इतरत्वादिति भावः। 'व्यतिरेके व्यर्थविशेषणत्वादिति स्वव्यतिरेकेण साध्यव्यतिरेके साध्ये व्यभिचारा-वारकविशेषणत्वादित्यर्थः, 'न स इति, तथाच येन रूपेण साध्य-व्यापकता तद्रूपावच्छिन्नस्याभावेन साध्याभावसाधने व्यभिचारा-वारकविशेषणशून्यत्वे सतीति विशेषणं देयमिति भावः। 'बाधोन्नीतस्येति बाधोन्नीतत्वं 'बाधेन पक्षे साध्यबाधेन, साध्य-व्यापकतया प्रमितत्वं, वह्निरनुष्णः कृतकत्वादित्यादौ वह्नीतरत्व-स्येत्यर्थः, 'न चेष्टापत्तिरिति, व्यभिचारावारकविशेषणत्वेन व्यर्थ-विशेषणतया सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वस्योपाधेर्दूषकताबीजस्य तत्राभावा-दिति भावः। 'विशेषणं विनेति वह्न्यादिविशेषणं विनेत्यर्थः, 'व्याप्यग्रहेणेति व्याप्तिग्रहासम्भवेनेत्यर्थः, 'तस्यार्थकत्वादिति वह्न्या-

णार्थं पर्व्वतपदं विशेषणमिति व्यतिरेके व्यर्थविशेषण-
त्वान्न स उपाधिः, बाधोन्नीतस्याप्यनुपाधितापत्तेः।

---

दिविशेषणे दूषणावहस्य व्याप्तिग्रहानुपयुक्तत्वरूपवैयर्थ्यस्याभावादि-
त्यर्थः, तथाच उपाधिलक्षणघटकतया त्वदभिमतस्य वैयर्थ्याभावस्य
तत्रासत्त्वेऽपि दूषणावहस्य वैयर्थ्यस्याभावात् सत्प्रतिपक्षोन्नयनसम्भवेन
तस्यानुपाधित्वे इष्टापत्त्यसम्भव इति भावः। आशयमविदित्वा शङ्कते,
'वस्तुगत्येति, पर्व्वतो धूमवान् वह्नेरित्यादौ पर्व्वतेतरस्य न तथेति
भावः। भावमुद्घाटयति, 'पक्षातिरिक्त इति, सहचारज्ञानेनेति
शेषः, 'तच्च' तादृशसाध्यव्यापकताज्ञानञ्च, 'तत्रापीति बाधानुन्नीत-
पक्षेतरत्वेऽपीत्यर्थः, इति साम्प्रदायिकाः।

नव्यास्तु अत्र साध्यव्यापकत्वं पक्षेतरीयत्वावच्छिन्नसाध्यनिरूपित-
मुक्तं साध्यसामान्यनिरूपितं वा, आद्ये आह, 'पक्षेतर इति, इद-
मुपलक्षणं पक्षमात्रवृत्तिसाध्यकेऽव्याप्तेरित्यपि द्रष्टव्यं, अन्त्यमाशङ्कते,
'वस्तुगत्येति, इति ग्रन्थं योजयन्ति।

ननु पक्षे साध्यसन्देहसत्त्वे व्यभिचारसंशयसत्त्वात् पक्षातिरिक्त-
स्थले सहचारज्ञानमात्रात् साध्यव्यापकत्वग्रहः तत्र कथं स्यादित्यत-
आह, 'अन्यथेति, 'अनुपाधित्व इति साध्यव्यापकताया अनिश्चय-
इत्यर्थः, 'उपाधिमात्रमिति पक्षे साध्यसन्देहदशायां पक्षावृत्तित्वेन
गृहीतस्य उपाधिमात्रस्य साध्यव्यापकत्वनिश्चय उच्छिद्येतेत्यर्थः,
यथाश्रुते पक्षवृत्तित्वेन निश्चितानामेवोपाधीनां पक्षे साध्यसन्देह-

न चेष्टापत्तिः, इतरान्यत्वस्याप्रसिद्ध्या विशेषणं विना व्याप्यग्रहेण तत्सार्थकत्वात्। 'वस्तुगत्या साध्यव्यापकः पक्षेतर उपाधिरिति चेत्, अस्तु तथा, तथापि पक्षा-

---

सत्त्वेऽपि साध्यव्यापकत्वनिश्चयसम्भवात् असङ्गतेः। तथाच पक्षे साध्यसन्देहस्तदाहितव्यभिचारसंशयो वा न साध्यव्यापकतानिश्चय-परिपन्थीति त्वयाप्येष्टव्यमिति भावः। 'विपक्षाव्यावर्त्तकेति 'वि-पक्षः' साध्याभाववान्, तद्व्यावर्त्तकं तन्निष्ठाभावप्रतियोगिताव-च्छेदकत्वासम्पादकं यद्विशेषणं सम्बन्धसामान्येन तच्छून्यत्वं साध्य-व्यापकत्वं साधनाव्यापकतावच्छेदके विशेषणमित्यर्थः। तथाच विप-क्षनिष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वासम्पादकविशेषणशून्यसाध्यव्याप-कतावच्छेदकसाधनाव्यापकतावच्छेदकधर्म्मवत्त्वमुपाधित्वमिति भावः। सम्पादकत्वञ्चास्येतन्निष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वमेतदधीनमिति प्रतीतिसिद्धः स्वरूपसम्बन्धविशेषः, विपक्षव्यावर्त्तकविशेषणवद्यत्सा-ध्यव्यापकतावच्छेदकं साधनाव्यापकतावच्छेदकं तद्वत्त्वमित्युक्तौ ह्र-देतरत्वविशिष्टपर्व्वतेतरत्व-पर्व्वतेतरत्वविशिष्टह्रदेतरत्वादावतिप्रसङ्ग-इत्यतो निषेधद्वयगर्भता, 'बाधोन्नीतेति वह्निरनुष्णः कृतकत्वादि-त्यत्र वह्नीतरत्वस्य परिग्रह इत्यर्थः, 'पक्षस्यैव विपक्षत्वादिति, पक्षस्यैव विपक्षतया वह्निविशेषणस्येतरत्वनिष्ठविपक्षनिष्ठाभावप्रतियो-गितावच्छेदकत्वसम्पादकत्वादिति भावः। 'न तु पर्व्वतेतरत्वादेरिति न तु पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ पर्व्वतेतरत्वादेः परिग्रह इत्यर्थः, तत्र पर्व्वतविशेषणस्येतरत्वे पर्व्वतनिष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वस-

तिरिक्ते साध्यव्यापकताग्रहादुपाधेर्दूषकत्वं, तच्च तथाप्यस्ति, अन्यथा पक्षे साध्यसन्देहादनुपाधित्वे उपाधिमात्रमुच्छिद्येत। विपक्षाव्यावर्त्तकविशेषणशून्यत्वं

---

म्पादकत्वेन विपक्षनिष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वासम्पादकत्वादिति भावः। आदिपदात् पर्व्वतावयववृत्त्यन्यत्व-पर्व्वतेतरद्रव्यत्व-ह्रद-पर्व्वत-संयोगानाधारत्व-ह्रदेतरत्वविशिष्टपर्व्वतेतरत्व-पर्व्वतेतरत्वविशिष्टह्रदेतरत्वादेः परिग्रहः। 'न हीति, 'वस्त्विति प्रथमान्तं 'शून्यमित्यन्वयि, 'तच्च' विपक्षाव्यावर्त्तकविशेषणे, 'उपात्तेतीति स्वघटकीभूतविशेषणे इत्यर्थः, स्वपदं उपाधितावच्छेदकपरं, तथाच स्वघटकीभूत विपक्षाव्यावर्त्तकविशेषणशून्यं यत्साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वावच्छेदकं तद्वत्त्वमुपाधित्वमिति फलितमिति भावः। 'सिद्धासिद्धेति स्वघटकीभूततादृशविशेषणं प्रसिद्धमप्रसिद्धं वा उभयथापि तादृशविशेषणशून्यत्वस्योपाधितावच्छेदके व्याघात इत्यर्थः। ननु तादृशविशेषणाघटितं यत्साध्यव्यापकतावच्छेदक-साधनाव्यापतावच्छेदकं तद्वत्त्वं तादृशविशेषणानवच्छिन्नसाधनसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिताया-अवच्छेदकं यत्साध्यसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिताया अनवच्छेदकं तद्वत्त्वं वा उपाधित्वं विवक्षितमित्यस्वरसाद्दूषणान्तरमाह, 'तथापि चेति, साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्व इति साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वज्ञाने इत्यर्थः, 'तच्च' पक्षेतरत्वे, 'तद्व्यावृत्त्या' तद्व्यावृत्तिज्ञानेन, 'पक्षे' हेतुमति पक्षे, 'साध्यव्यावृत्तिः' साध्यव्यावृत्तिनिश्चयः, 'व्यभिचारएवेति व्यभिचारज्ञानमेवेत्यर्थः, 'व्यभिचारे चेति व्यभिचारज्ञाने

विशेषणं तेन बाधोन्नीतपक्षेतरस्य परिग्रहः, तस्य पक्ष-स्यैव विपक्षत्वात्, न तु पर्व्वतेतरत्वादेरिति चेत्। न। न हि वस्तु विपक्षाव्यावर्त्तकविशेषणशून्यं, सर्व्वत्र प्रमेयत्वादेः सत्त्वात्। तत्रोपात्तेतिविशेषणे सिद्धासिद्धिव्याघातः। तथापि च साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वे तत्र स्त इति तद्व्यावृत्त्या पक्षे साध्यव्यावृत्तिरतो हेतोर्व्यभिचार एव व्यभिचारे चावश्यमुपाधिरिति पक्षेतर एव तत्रोपाधिः स्यात् तावन्मात्रस्यैव दूषक-

---

चेत्यर्थः, 'अवश्यमुपाधिरिति अवश्यं पचेतर उपाधिः, व्यभिचारो-न्नायकत्वस्य उपाधेर्दूषकताबीजस्य सत्त्वादित्यर्थः, तथाच त्वया पचेतरो नोपाधिरभ्युपेयत इति मयातिव्याप्तिरापादिता। वस्तुतो दूषकताबीजसत्त्वेन तदुपाधिर्भवत्येवेति भवतस्तत्रानुपाधिताभ्युपगमोऽयुक्त इति भावः। किञ्च विशेषणमपि व्यर्थमित्याह, 'पचेतर एवेति पचेतरस्तत्रोपाधिः स्यादेवेत्यर्थः, अत इति शेषः, 'तावन्मात्रस्येति साध्यव्यापकतामात्रस्येत्यर्थः, मात्रपदादुक्तविशेषणव्यवच्छेदः, 'दूषकत्वाच्चेति दोषोन्नयनोपयोगित्वाच्चेत्यर्थः, 'चकारः 'व्यर्थं विशेषण-मित्यनन्तरं योज्यः। न च न देयमेव विशेषणमिति वाच्यं। भवत-स्तस्यानुपाधिताभ्युपगमेन विशेषणादाने अतिव्याप्त्यापत्तेरिति भावः। 'अनुमानमात्रेति अनिश्चितसाध्यकानुमानमात्रोच्छेदकतयेत्यर्थः, 'जातित्वादिति जात्युत्तरकत्वादित्यर्थः, उपाधिव्यभिचारेण साध्य-

त्वाच व्यर्थं विशेषणम्। अतएवानुमानमात्रोच्छेदकतया जातित्वान्न पक्षेतर उपाधिरित्यपास्तं दूषणसमर्थत्वेन जातित्वाभावात्। एतेन पक्षेतरव्यावृत्त्यर्थं प्रकारान्तरमपि निरस्तम् उपाधित्वाभावेऽपि दूषणसमर्थत्वात्। 'अथोपाधिः स्वव्यतिरेकेण सत्प्रतिपक्षतया दूषणं पक्षेतरत्वव्यतिरेकस्य न साध्याभावसाध-

---

व्यभिचारानुमाने कर्त्तव्येऽपि पक्षेतरस्योपाधित्वेनोद्भावनीयतया "स्वव्याघातकमुत्तरं जातिरिति जातिलक्षणसत्त्वादिति भावः। 'न पक्षेतर इति, तथाच विशेषणं सार्थकमेवेति भावः। 'दूषणसमर्थेति दूषणासमर्थमुत्तरं जातिरित्यस्यैव जातिलक्षणत्वात्, पक्षेतरस्तु व्यभिचारोन्नयनसमर्थ एवेति भावः। 'प्रकारान्तरमिति बाधानुन्नीतपक्षेतरभिन्नत्वादिकमित्यर्थः, 'उपाधित्वाभावेऽपीति त्वया उपाधित्वानङ्गीकारेऽपीत्यर्थः, तथाच व्यर्थविशेषणमिति भावः। दूषकताबीजसत्त्वे एव तस्यानुपाधित्वाभ्युपगमस्तद्वारणाय विशेषणप्रक्षेपस्यानुचितस्तदेव च नास्तीत्यभिप्रायेण आशङ्कते, 'अथेति, 'सत्प्रतिपक्षतया' साध्याभावसाधकतया, 'असाधारणत्वादिति सपक्षविपक्षव्यावृत्तत्वादित्यर्थः। ननु व्यभिचारानुमापकतया उपाधिर्दोषः तच्च च नासाधारणमित्याशङ्क्य निराकरोति, 'न त्विति, 'उपाध्यव्याप्यतयेति उपाधिव्यभिचारितयेत्यर्थः, 'साध्याव्याप्यत्वं' साध्यव्यभिचारित्वं, अनुमेयमिति शेषः, 'न साध्यव्यापकत्वमिति साध्यव्यापकत्वाभावोऽपि सिद्धोदित्यर्थः, हेतावुपाधिव्यभिचारित्वे ज्ञायमाने उपाधावपि

कोऽसाधारणत्वात्, 'न तु व्यभिचरोन्नायकतया दूषणं यथाहि साध्यव्यापकोपाध्यव्याप्यतया हेतोः साध्याव्याप्यत्वं तथा साध्यव्याप्यहेतुत्वव्यापकतयोपाधेर्न साध्यव्यापकत्वमपि सिध्येत् व्याप्तिग्राहकस्योभयत्रापि साम्येन विनिगमकविरहात्। 'तस्माद्यथा साध्यव्याप्येन हेतुना साध्यं साधनीयं तथा साध्यव्यापकोपाधिव्यावृत्त्या साध्याभावोऽपि साधनीयो व्याप्तिग्रहतौल्यादिति दूषकतावीजं। सोऽयं सत्प्रतिपक्षएवेति

---

हेतुव्यापकत्वज्ञानस्यावश्यकत्वात् समानसंवित्संवेद्यत्वादिति भावः। ननु हेतावुपाधिव्यभिचारित्वग्रहदशायां उपाधावपि हेतुव्यापकत्वज्ञानस्यावश्यकत्वेऽपि हेतौ साध्यव्याप्तिनिश्चयाभावान्न तद्व्यापकत्वेन साध्यव्यापकत्वज्ञानं, उपाधौ तु साध्यव्यापकतानिश्चयसत्त्वेन तद्व्यभिचारित्वेन साध्यव्यभिचारित्वग्रह इत्यत आह, 'व्याप्तीति यथा साध्यस्य उपाधिव्याप्यताग्राहकव्यभिचारादर्शन-सहचारदर्शने स्तः तथा हेतावपि साध्यव्याप्यताग्राहके ते स्त इत्यर्थः, न हि तदानीं हेतौ साध्यव्यभिचारज्ञानमप्यस्ति, स्फुटे व्यभिचारे उपाध्युपन्यासस्य वैयर्थ्यादिति भावः। इदमापाततः यदा उपाधौ साध्यव्यापकताग्रहेऽनुकूलतर्कावतारादुपाधौ साध्यव्यापकतानिश्चयो जातः हेतौ तु साध्यव्याप्यताग्रहे अनुकूलतर्कानवतारान्तत्र साध्यव्याप्यतानिश्चयो न जातः तदैव व्यभिचारानुमानसम्भवात्। 'तस्मादिति। न च साध्यव्याप्यहेतुव्यापकतयोपाधेः साध्याव्यापकत्वज्ञानात् कथं तद्व्यतिरेकेण सत्प्रतिपक्षस्यैव

चेत्। नैवं। एवं हि सत्प्रतिपक्षे उपाध्युद्भावनं न स्यात् सत्प्रतिपक्षान्तरवत्। किञ्चैवं बाधोन्नीतोऽपि पक्षेतरो नोपाधिः स्यात् व्यतिरेकेऽसाधारण्यात्। ननु बाधे नोपाधिनियमः धूमेन ह्रदे वह्निसाधने तदभावात् न तु हेतुमति पक्षे बाधे पक्षेतरोपाधिनियमः प्रत्यक्षे

---

सम्भव इति वाच्यं। सत्प्रतिपक्षोन्नायकतया दूषकत्वपक्षे हेतौ उपाधिव्यभिचारित्वज्ञानस्यानपेक्षितत्वेन तुल्यवित्तिवेद्यतया उपाधौ साधनाव्यापकत्वज्ञानस्याप्यनावश्यकत्वात्, यदा उपाधौ हेत्वव्यापकताज्ञानं नास्ति तदैव सत्प्रतिपक्षसम्भवादिति भावः। 'सत्प्रतिपक्षान्तरवदिति, यथा सत्प्रतिपक्षे सत्प्रतिपक्षान्तरं नोद्भाव्यते तत्र एकेनापि भूयसां प्रतिबन्धात् सत्प्रतिपक्षवाहुल्यस्याप्रयोजकत्वात् तथा सत्प्रतिपक्षे उपाध्युद्भावनमपि न स्यात् भवन्मते उपाधिमुद्भाव्य सत्प्रतिपक्षान्तरस्यैव करणीयत्वात् तस्य चाप्रयोजकत्वादिति भावः। दूषणान्तरमाह, 'किञ्चेति, 'एवं' सत्प्रतिपक्षोन्नायकतया दोषत्वे, 'बाधोन्नीतोऽपीति वह्निरनुष्णः कृतकत्वादित्यत्र वह्नीतरोऽपीत्यर्थः, 'व्यतिरेकेऽसाधारण्यादिति साध्याभावसाधने तद्व्यतिरेकस्यासाधारणत्वादित्यर्थः, पक्षमात्रवृत्तिहेतुरसाधारण इत्यभिमानेनेदं। ननु मास्तु बाधोन्नीतपक्षेतरोऽप्युपाधिरित्याशयेनाशङ्कते, 'नन्विति, 'नोपाधिनियम इति न पक्षेतरोपाधिनियम इत्यर्थः, यथाश्रुते तादृशसामान्यनियमसत्त्वेऽपि पक्षेतरस्योपाधित्वानावश्यकत्वात् तन्निराकरणस्यानुपयुक्तत्व-

वह्नौ कृतकत्वेनानुष्णत्वे साध्येऽतेजस्त्वादेरुपाधित्वसम्भवादिति चेत्। न। तेजोमात्रपक्षत्वेऽतेजस्त्वं विना-

---

प्रसङ्गात्। अत एवाये 'पक्षेतरोपाधिनियम इत्यपि सङ्गच्छते। 'हेतुमतीति साध्यसमानाधिकरणहेतुमतीत्यर्थः, तेन समवायादिसम्बन्धेन घटो गगनवान्द्रव्यत्वादित्यादौ न व्यभिचारः। न चाव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतौ व्यभिचार इति वाच्यं। निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वस्य बाधपदार्थत्वात्। न च तथाप्येतद्गन्धप्रागभावकालीनैतद्घटोगन्धवान् पृथिवीत्वादित्यादावसङ्कीर्णबाधस्थले व्यभिचारस्तत्र पक्षतावच्छेदके एतद्गन्धप्रागभावकालावच्छिन्नत्वविशिष्टसमवायावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावस्य निरवच्छिन्नाधिकरणत्वस्यापि पक्षे सत्त्वादिति वाच्यं। तेन सम्बन्धेन साध्यत्वे तत्रापि पक्षेतरस्योपाधित्वादिति भावः। तादृशनियममभ्युपेत्यैवाह, 'अत्यत्र इति, 'अतेजस्त्वादेरिति धर्म्मिपरो निर्द्देशः तेजःसामान्येतरादिरूपस्यैव पक्षेतरस्येत्यर्थः, तद्व्यतिरेकस्य साध्याभावसाधनेऽसाधारण्याभावात् सपक्षे सौरालोकादावपि वृत्तेरिति भावः। तथाच वह्नीतरत्वेन वह्नीतरस्यानुपाधित्वेऽपि तादृशनियमो नानुपपन्न इति हृदयं, हेतुमतीत्यादिनियमाभ्युपगमेनैव दूषयति, 'तेजोमात्रेति तेजोऽनुष्णं कृतकत्वादित्यत्रेत्यर्थः, 'अतेजस्त्वं विनेति धर्म्मिपरो निर्द्देशः तेजःसामान्येतरादिकं विनेत्यर्थः, आदिना भास्वररूपवदितरवह्नीतरादेः परिग्रहः, 'अन्यस्येति, पक्षेतरस्येति शेषः, तेजःसामान्येतरादिव्यतिरेकस्य साध्याभावसाधनेऽसाधारणं द्रव्येतरादिकञ्च न साध्यव्यापकमिति भावः। 'अन्यस्योपाधेरभावादिति यथाश्रुतन्तु न सङ्ग-

न्यस्य उपाधेरभावात्। किञ्च पर्व्वतावयववृत्त्यन्यत्वं पर्व्वतेतरद्रव्यत्वं ह्रद-पर्व्वतसंयोगानाधारत्वं ह्रद-पर्व्वतान्यत्वादिकमुपाधिः स्यादेव व्यतिरेकेऽसाधारण्याभावात् व्यतिरेकिणा सत्प्रतिपक्षसम्भवाच्च। न चासा-

---

च्छते व्यतिरेकेऽसारण्याभाववतोऽपि गुरुत्वादेरूपवत्त्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकतयोपाधित्वात्।

भट्टाचार्य्यास्तु 'अतेजस्त्वं विना' अतेजस्त्वसमनियतं विना, असाधारणव्यतिरेकप्रतियोगिनं विनेति यावत्, तेन भास्वररूपवदितरवह्नीतरादेः परिग्रहः, 'अन्यस्योपाधेरभावादिति अन्यस्य शुद्धसाध्यव्यापकस्योपाधेरभावादित्यर्थः, तेन विशिष्टसाध्यव्यापकस्योपाधेः सत्त्वेऽपि न क्षतिरित्याहुः।

ननु पक्षमात्रवृत्तित्वं नासाधारण्यं किन्तु यावत्सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वं तेजःसामान्येतरादिव्यतिरेकस्यानुष्णत्वाभावे साध्ये न तथा पक्षे साध्यासिद्धौ सपक्षाभावात् साध्यसिद्धौ तु तत्रैव पक्षे वर्त्तमानत्वादित्यस्वरसादाह, 'किञ्चेति, 'ह्रदेति, ह्रदसंयोगिपर्व्वते यत्र वह्निः साध्यते तत्रायमुपाधिर्बोध्यः अन्यथा साधनव्यापकत्वादनुपाधितापत्तेः। 'ह्रद-पर्व्वतान्यत्वेति ह्रदेतरत्वविशिष्टपर्व्वतेतरत्वादिकमित्यर्थः, 'व्यतिरेक इति, उक्तोपाधीनां व्यतिरेकस्य पर्व्वतावयववृत्तिगुणादौ द्रव्यान्यपदार्थमात्रे ह्रदे च विपक्षे यथाक्रमं वृत्तेः तथाच बाधानुन्नीतपक्षेतरवारणाय विपक्षाव्यावर्त्तकेत्यादिविशेषणदाने तत्रैवाव्याप्तिरिति भावः। हेतोः सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वम-

धारण्यं, तस्यापि सत्प्रतिपक्षोत्थापकतया दोष-त्वात्। तस्मादुभयोरपि व्याप्तिग्राहकसाम्ये विरोधान्न व्याप्तिनिश्चयः, किन्तूभयत्र व्यभिचारसंशयः, तथाच

---

साधारण्यं तत्र सपक्षव्यावृत्तत्वांशज्ञानं हेतौ साध्याभावव्यतिरेक-सहचारज्ञानरूपतया हेतौ साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूप-साध्याभावव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजनकं, विपक्षव्यावृत्तत्वांशज्ञानजनकञ्च हेतौ साध्यव्यतिरेकसहचारज्ञानरूपतया हेतौ साध्याभावव्यापकी-भूताभावप्रतियोगित्वरूपसाध्यव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजनकं, तथाचा-साधारण्यज्ञानं साध्य-तदभावोभयव्याप्यप्रकृतहेतुमत्तापरामर्शरूप-सत्प्रतिपक्षद्वारानुमितावेव प्रतिबन्धकमिति स्वमतेन दूषणान्तर-माह, 'व्यतिरेकिणेति, 'व्यतिरेकिणा' पर्व्वतेतरादिनिष्ठव्यतिरेक-प्रतियोगिनापि, पर्व्वतेतरान्यत्वादिनेति शेषः। 'न चासाधा-रण्यमिति, सत्प्रतिपक्षे प्रतिबन्धकमिति शेषः। 'तस्यापि' सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वरूपासाधारण्यज्ञानस्यापि, 'सत्प्रतिपक्षोत्थापकतयेति साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपसाध्याभावव्यतिरेकव्याप्ति-सा-ध्याभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपसाध्यव्यतिरेकव्याप्त्योर्ग्रहद्वारा साध्य-तदभावोभयव्याप्यप्रकृतहेतु मत्तापरामर्शरूपसत्प्रतिपक्षजनकत-येत्यर्थः, 'दोषत्वादिति अनुमितावेव प्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, तथा-चासाधारण्येऽपि सत्प्रतिपक्षसम्भवात् पक्षेतरोऽप्युपाधिरेवेति तस्या-नुपाधितानभ्युपगमः वारणाय तस्य विशेषणोपादानञ्च द्वयमप्ययुक्त-मिति भावः।

व्यभिचारसंशयाधायकत्वेनोपाधेर्दूषकत्वं, तच्च पक्षेतरे-ऽप्यस्ति, तदुक्तमुपाधेरेव व्यभिचारशङ्केति। 'भवतु वोक्तन्यायेन सकलानुमानभङ्गभिया पक्षेतरोऽनुपाधिः, तथापि लक्षणमतिव्यापकम्। 'नापि साध्यसमव्याप्तत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधित्वं, दूषकताबीजस्य व्य-

---

केचित्तु 'व्यतिरेकिणा, व्यतिरेकव्याप्त्या, पर्व्वतेतरान्यत्वादिनापीति शेषः। 'न चासाधारण्यमिति, व्यतिरेकव्याप्त्या सत्प्रतिपक्षेऽपि प्रतिबन्धकमिति शेषः। 'तस्यापि, असाधारण्यज्ञानस्यापि, 'सत्प्रतिपक्षोत्थापकतयेति अन्वयसहचारग्रहप्रतिबन्धकतया वेति शेषः। 'दोषत्वादिति अनुमितावन्वयव्याप्तिग्रहे वा प्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, यदि सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वं असाधारण्यं तदा तज्ज्ञानमुक्तक्रमेण सत्प्रतिपक्षजनकतयानुमितावेव प्रतिबन्धकं, यदि च हेतोः साध्यवदवृत्तित्वमसाधारण्यं तदा तज्ज्ञानं अन्वयसहचारग्रहप्रतिबन्धकद्वारा अन्वयव्याप्तिग्रह एव प्रतिबन्धकं न तु कदाचिदपि व्यतिरेकव्याप्त्या सत्प्रतिपक्षे प्रतिबन्धकमिति भाव इति व्याचक्षुः।

ननु व्यभिचारोन्नायकतया दूषकत्वं मया प्रागेव दूषितं यदि सत्प्रतिपक्षतया दोषत्वमपि त्वया दूषितं तदा यत्र हेतूपाध्योर्व्याप्तिग्राहकसाम्यं तत्र कथमुपाधिर्दोष इत्यत आह, 'तस्मादिति, 'उभयोः' साध्य-साधनयोः साध्योपाध्योः, 'विरोधादिति विरोधः साध्यव्याप्यत्व-साध्यव्यापकाव्याप्यत्वयोः साध्यव्यापकत्व-साध्यव्याप्याव्या-

भिचारोन्नयनस्य सत्प्रतिपक्षस्य वा साम्येन विषम-
व्याप्तस्याप्युपाधित्वात् तथा दूषकतायां साध्यव्याप्यत्व-
स्याप्रयोजकत्वाच्च । अथ साध्यप्रयोजको धर्म्म उपाधिः
प्रयोजकत्वञ्च न न्यूनाधिकदेशवृत्तेः तस्मिन् सत्य-
भवतस्तेन विनापि भवतस्तदप्रयोकजत्वात्, अन्यथा

---

पकत्वयोश्चेत्यर्थः । उपाधेर्व्यभिचारशङ्काधायकत्वेन दोषत्वे आचार्य्य-
संवादमाह, 'तदुक्तमिति, 'उपाधेरेवेति, एवकारः भिन्नक्रमे
उपाधेर्व्यभिचारशङ्कैवेत्यर्थः, यत्तोभयव्याप्तिग्राहकसाम्यं तत्रेत्यादि-
सकलानुमानोच्छेदापत्तिभयेन पक्षेतरस्योपाधित्वं परैर्निरस्यते
तदभ्युपेत्य पूर्व्वपक्षमाह, 'भवतु वेति, 'तथापीति । न च
विपक्षाव्यावर्त्तकविशेषणानवच्छिन्नेतिविशेषणदानादेव नातिव्याप्ति-
रिति वाच्यं । तथापि जन्याणवः सकर्तृकाः कार्य्यत्वादित्या-
दावणुभिन्नादौ पक्षेतरेऽतिव्याप्तेः तत्राणुविशेषणेन विपक्षस्य
परमाणोरपि व्यावर्त्तनादिति भावः । आचार्य्यलक्षणं दूषयति,
'नापीति, 'पक्षेतरस्तु साध्यविषमव्यापकत्वान्नोपाधिरिति भावः ।
अवच्छिन्नसाध्यव्यापकोपाधावव्याप्तौ सत्यामेव दूषणान्तरमाह,
'दूषकतेति, 'विषमव्याप्तस्यापीति, तथाच तत्राव्याप्तिरिति भावः ।
'तथा दूषकतायामिति स्वव्यभिचारेण साध्यव्यभिचारोन्नायक-
तया स्वव्यतिरेकेण साध्यव्यतिरेकोन्नायकतया वा दूषकतायामित्यर्थः,
साध्यव्यापकतादृशत्वानुकूलतर्कविधयैवोपयोगादिति भावः । अथा-

पक्षेतरस्याप्युपाधित्वप्रसङ्ग इति चेत्। न। दूषणौपयिकं हि प्रयोजकत्वमिह विवक्षितं तच्च साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमेवेति, तदेव प्रयोजकं न त्वधिकं व्यर्थत्वात्। 'ननूपाधिः[1] स उच्यते यद्धर्मोऽन्यथ प्रति-

प्तिनिरासाय विषमव्याप्तस्यालक्ष्यत्वे विनिगमकमाह, 'अथेति, 'साध्य-प्रयोजको धर्म्मः' साध्यप्रयोजकीभूतधर्म्म एव, 'उपाधिः' शास्त्रीयो-पाधिव्यवहारविषयः, साध्यप्रयोजकधर्म्मत्वं शास्त्रीयोपाधिव्यवहार-विषयत्वव्यापकं इति यावत्[2] लक्षणपक्षे सद्धेतावपि साध्यसमव्याप्तेऽ-तिव्याप्त्यापत्तेः, 'प्रयोजकत्वञ्चेति, साध्यान्वय-व्यतिरेकोन्नायकान्वय-व्यतिरेकप्रतियोगित्वस्य प्रयोजकतारूपत्वादिति भावः। 'अभवतः' असतः, 'भवतः' सतः, 'तदप्रयोज्यत्वादिति[3] तदन्वय-व्यतिरेकोन्ना-यकान्वय-व्यतिरेकाप्रतियोगित्वादित्यर्थः, तथाच विषमव्याप्तेर्दूषकता-वीजसत्त्वेऽपि शास्त्रीयोपाधिव्यवहाराभावान्न लक्ष्यत्वमिति भावः। 'अन्यथेति न्यूनाधिकदेशवृत्तेरपि प्रयोजकत्वे इत्यर्थः, 'उपाधित्व-प्रसङ्गः' शास्त्रे उपाधिव्यवहारप्रसङ्ग इत्यर्थः[4], 'इह' उपाधिव्यव-

(१) अथोपाधिरिति क०।

(२) इति भाव इति ख०।

(३) 'तदप्रयोज्यत्वात्' इत्यत्र 'तदयोजकत्वात्' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठः परन्तु तादृशपाठस्यापि रहस्यकृद्व्याख्यातार्थ एवार्थ इति।

(४) शास्त्रे उपाधिव्यवहारविषयत्वप्रसङ्ग इति ग०।

बिम्बते यथा जवाकुसुमं स्फटिकलौहित्य उपाधिः, तथाचोपाधिवृत्तिव्याप्यत्वं हेतुत्वाभिमते चकास्ति तेनासावुपाधिः। न च व्याप्यत्वमात्रेण दूषकत्वमिति, साध्यव्यापकतापीष्यते, तथाच समव्याप्त एवोपाधि-

---

हारविषयताव्यापकीभूतधर्म्मे, 'तच्च' दूषणौपयिकञ्च, 'प्रयोजकं' प्रयोजकत्वं, 'न त्वधिकं' न तु व्याप्यत्वपर्य्यन्तं, 'व्यर्थत्वादिति। न चैवं पक्षेतरेऽतिप्रसङ्गः, तत्रापि पक्षेतरत्वविशिष्टसाध्यवत्त्वादाववति-प्रसङ्गादिति भावः। विषमव्याप्तस्यासङ्ग्रहे विनिगमकान्तरमाशङ्कते, 'नन्विति, 'प्रतिबिम्बते' भ्रमविषयो भवति, उप समीपे आद-धाति स्वनिष्ठधर्म्मं संक्रामयतीत्युपाधिपदावयवव्युत्पत्तेरिति भावः। 'स्फटिकलौहित्य इति लौहित्यभ्रमविषयीभूतस्फटिक इत्यर्थः, 'व्याप्यत्वं' साध्यव्याप्यत्वं, 'चकास्ति' भ्रमविषयो भवति, 'असा-वुपाधिः' असावेव उपाधिपदवाच्यः, साध्यव्याप्य एव उपाधिपद-वाच्य इति यावत्। नन्वेवं धूमवान् वह्नेरित्यादौ महानसत्वादेर-प्युपाधिपदवाच्यत्वापत्तिरित्यत आह, 'न चेति, 'इष्यत इति रूढ्यर्थतया इष्यत इत्यर्थः, 'समव्याप्त एवोपाधिरिति समव्याप्त एव उपाधिपदवाच्य इत्यर्थः, उपाधिपदस्य योगरूढतया विषमव्याप्ते रूढ्यर्थसत्त्वेऽपि योगार्थाभावादिति भावः। यद्यप्यन्यनिष्ठभ्रमविषयी-भूतधर्म्माश्रयत्वमात्रमुपाधिपदप्रवृत्तिनिमित्तं न तु व्याप्तिरूपधर्म्म-संक्रामकत्वं जवाकुसुमादावभावात् तच्च विषमव्याप्तेऽपि सम्भवति

रिति चेत्, तत् किं विषमव्याप्तस्य दूषकताबीजा-
भावान्नोपाधिशब्दवाच्यत्वं तथात्वेऽप्युपाधिपदप्रवृत्ति-
निमित्ताभावाद्वा, नाद्यः तस्यापि व्यभिचाराद्युन्नाय-
कत्वात्, नापरः न हि लोके समव्याप्त एवान्यत्र स्वधर्म-
प्रतिबिम्बजनक एवोपाधिपदप्रयोगः, लाभाद्युपाधिना

---

स्वनिष्ठसाध्यव्याप्यत्वासंक्रामकत्वेऽपि दोषवशात् स्वनिष्ठधर्मान्तरसं-
क्रामकत्वसम्भवात् तथापि उपाधिपदस्य सामान्यतोऽन्यनिष्ठभ्रमवि-
षयीभूतधर्माश्रयत्वरूपं नैकं प्रवृत्तिनिमित्तं तादृूप्येणाप्रत्यायनात्,
परन्तु विशिष्य स्फटिकनिष्ठभ्रमविषयीभूतलौहित्याश्रयत्व-साधन-
निष्ठभ्रमविषयीभूतसाध्यव्याप्याश्रयत्वादिरूपं नानैव प्रवृत्तिनिमित्तं,
यद्धर्मवाचकसप्तम्यन्तपदसमभिव्याहारविशेषेणोपाधिपदं प्रयुज्यते त-
द्धर्मसंक्रामकत्वमेव बोधयतीति समभिव्याहारविशेषस्य प्रतीतौ
नियामकः, अत एव स्फटिकलौहित्ये जवाकुसुममुपाधिरिति-
वाक्यात् लौहित्यरूपधर्मसंक्रामकत्वमेव प्रतीयते, एवं साधनस्य
साध्यव्याप्यत्वेऽयमुपाधिरित्यत्रापि स्वनिष्ठव्याप्तिरूपधर्मसंक्रामकत्वमेव
लभ्यत इति, तथाच विषमव्याप्तस्य स्वनिष्ठधर्मान्तरसंक्रामकत्वेऽपि
तादृशधर्मान्तरसंक्रामकत्वमादाय कुत्राप्युपाधिपदाप्रयोगात् तादृश-
धर्मान्तरसंक्रामकत्वस्य उपाधिपदाप्रवृत्तिनिमित्तत्वात् विषमव्याप्तो
नोपाधिपदवाच्य इत्याचार्य्याणामाशयः। 'प्रवृत्तिनिमित्ताभावाद्वेति
यौगिकप्रवृत्तिनिमित्ताभावाद्वेत्यर्थः। 'समव्याप्त इति स्वनिष्ठसाध्य-

ह्रतमित्यादौ लाभादावप्युपाधिपदप्रयोगात्। किञ्च न शास्त्रे लौकिकव्यवहारार्थमुपाधिपदव्युत्पादनं किन्त्वनुमानदूषणार्थं, तच्च साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमात्रमिति शास्त्रे तथैव(१) उपाधिपदप्रयोगः।

अन्ये तु यदभावो व्यभिचारविरोधी स उपाधिः। न च विषमव्याप्तस्याभावो व्यभिचारं विरुणद्धि, तस्या-

---

व्याप्तिसंक्रामक इत्यर्थः, 'स्वधर्मप्रतिविम्बेति स्वनिष्ठधर्मान्तरप्रतिविम्बजनक एवेत्यर्थः, 'लाभादावपीति तत्रोपाधिपदस्य प्रयोजनार्थकत्वादित्यर्थः, तथा च तत्र यथा योगार्थेनैवापेक्षणापि उपाधिपदवाच्यत्वं तथा विषमव्यापकेऽपि केवलरूढ्यर्थमादायैव उपाधिपदवाच्यत्वसम्भवः, न हि योगार्थविशिष्टो रूढ्यर्थः प्रवृत्तिनिमित्तः, इति हृदयं। लौकिकव्यवहारार्थमिति लोकानामुपाधिस्वरूपज्ञानार्थमित्यर्थः, 'उपाधिपदव्युत्पादनमिति परोक्तानुमानदूषणप्रस्तावे अत्रायमुपाधिरिति उपाधिपदप्रयोग इत्यर्थः, 'अनुमानदूषणार्थमिति उपाधित्वेन उपाधिज्ञानद्वारा वा व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धार्थमित्यर्थः, 'तच्चेति अनुमानदूषणौपयिकरूपञ्चेत्यर्थः, 'तथैव' साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वमात्रेणैव।

विषमव्याप्तस्यात्वस्यत्वे विनिगमकान्तरमाशङ्कते, 'अन्ये त्विति, 'यदभावः' यद्धर्मावच्छिन्नाव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोयद-

---

(१) तत्रैवेति क०, ख०।

भावेऽपि व्यभिचारात्। अस्ति ह्यनित्यत्वव्यापकं प्रमेयत्वं तद्व्याप्यञ्च गुणत्वं। न चानित्यत्व-गुणत्वयोर्व्याप्ति-

---

भावः, 'साध्यव्यभिचारविरोधी'(१) साध्यव्यभिचाराभावसमनियतः, साध्यव्यभिचार्य्यवृत्तित्वे सति साध्यव्यभिचाराभावव्यापक इति यावत्, 'स उपाधिः' तद्धर्मवत्त्वेन स उपाधिरित्यर्थः(२), भवति चार्द्रेन्धनप्रभववह्नेः साध्यसमव्याप्तत्वाव्याप्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः आर्द्रेन्धनप्रभववह्न्यादिव्याप्यमात्रनिष्ठतया धूमादिव्यभिचाराभावसमनियतः, आर्द्रेन्धनादेः साध्यविषमव्याप्तत्वाव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्तु न तथा तस्यार्द्रेन्धनादावपि सत्त्वेन तत्र साध्यव्यभिचाराभावासत्त्वादिति भावः। अत्र यदभावपदस्य उपाधितावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नयदभावपरत्वे आर्द्रेन्धनप्रभववह्न्यादावव्याप्तिः, सामान्यतो यदभावपरत्वे द्रव्यं पृथिवीत्वात् सत्त्वाद्वा इत्यादौ स्वरूपसम्बन्धेन साध्यव्यभिचारित्वादेरप्युपाधितापत्तिः स्वरूपसम्बन्धेन तदभावस्यापि साध्यव्यभिचारविरोधित्वादतः प्रतियोगिताकान्तमभावविशेषणं। न चैवमव्याप्यत्वसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकत्वेनाभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वादसम्भव इति वाच्यं। इह हेतावुपाधिर्नास्तीतिप्रतीतिबलात् वृत्त्यनियामकत्वेऽपि तस्य प्रतियोगिताव-

---

(१) 'व्यभिचारविरोधी' इत्यत्र 'साध्यव्यभिचारविरोधी' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठः तमनुसृत्य रहस्यकृता तादृशपाठो धृतः।

(२) तद्धर्मव्यापक उपाधिरित्यर्थ इति ग०।

रत्ति, समव्याप्तिकस्य च व्यतिरेकस्तथा, न हि साध्य-व्यापकव्याप्यीभूतस्य व्याप्यं यत्तत् साध्यं व्यभिचरति;

च्छेदकत्वात्(१) इह हेतावुपाधिरिति प्रतीतेर्वृत्तिनियामकत्वस्यापि तत्र सत्त्वाच्च। साध्यव्यभिचारविरोधित्वपदेन च साध्यव्यभिचार्य्यवृत्तित्वमात्रोक्तौ वह्निमान् धूमादित्यादौ महानसत्वादावतिव्याप्तिः अव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नमहानसत्वाभावस्य महानसत्वव्याप्यमात्रनिष्ठस्य वह्निव्यभिचार्य्यवृत्तित्वात्, साध्यव्यभिचाराभावव्यापकत्वमात्रोक्तौ धूमवान् वह्नेरित्यादौ विषमव्यापके आर्द्रेन्धनादावतिव्याप्तिः, साध्यव्यभिचाराभाववद्वृत्तित्वोक्तावपि तथा वह्निमान् धूमादित्यादौ महानसत्वादावतिव्याप्तिश्च अतः साध्यव्यभिचाराभावसमनियतत्वपर्य्यन्तं। यद्धर्म्मावच्छिन्नस्याव्याप्यत्वं साध्यव्यभिचारित्वञ्च विशेषणताविशेषसम्बन्धेन बोध्यं तच्च विशेषणताविशेषसम्बन्धेन तद्धर्म्मावच्छिन्नवदन्यवृत्तित्वं साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्याभाववति विशेषणताविशेषेण वर्त्तमानत्वञ्च, न तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वक्तव्यं धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूमवत्सामान्यान्यतरत्वादौ विषमव्यापके अतिव्याप्त्यापत्तेः धूमवत्सामान्यान्यतरान्यासंयुक्तत्वस्यापि असंयुक्त-धूम-

---

(१) ननु इह हेतावुपाधिर्नास्तीतिप्रतीतिरुपाधौ अव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नहेतुवृत्तित्वाभावं अवगाहते न तु हेतौ अव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोपाध्यभावं, अतः कथं वृत्त्यनियामकस्याव्याप्यत्वसम्बन्धस्य अभावप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धत्वे तादृशप्रतीतेर्बलत्वमित्यत आह इह हेतावुपाधिरितीति।

व्यभिचारे चान्ततः साध्यमेवोपाधिः, अभेदेऽपि व्याप्य-व्यापकत्वात् साधनाव्यापकत्वाच्चेति स्वीचक्रुः। तन्न।

वन्याद्यसंयुक्तोभयमात्रनिष्ठतया धूमाभाववत्संयुक्तत्वाभावसमनियतत्वात्। ननु तथापि वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्निसामग्र्यादौ साधनव्यापकेऽतिव्याप्तिः अव्याप्यत्वसम्बन्धेन तदभावस्यापि वह्निव्यभिचाराभावसमनियतत्वात्। न च साधनावृत्तित्वेन यदभावो विशेषणीय इति वाच्यं। धूमवान् वह्नेरित्यादौ आर्द्रेन्धनप्रभववह्न्यादावव्याप्त्यापत्तेः विशेषणताविशेषसम्बन्धेन आर्द्रेन्धनप्रभववह्निमदन्यवृत्तित्वरूपस्यार्द्रेन्धनप्रभववह्न्यव्याप्यत्वस्य वह्नावसत्त्वेन तत्सम्बन्धावच्छिन्नार्द्रेन्धनप्रभववह्न्यभावस्य साधनीभूतवह्निवृत्तित्वात्। यदि चाव्याप्यत्वं व्याप्यत्वाभावः व्याप्यत्वञ्च विशेषणताविशेषसम्बन्धेन तद्वदन्यावृत्तित्वे सति विशेषणताविशेषेण तद्वृत्तित्वं तत्सम्बन्धावच्छिन्नार्द्रेन्धनप्रभववह्न्यभावस्य न वह्निवृत्तिरित्युच्यते, तदा वह्निसामग्र्यादावप्यतिव्याप्तिर्दुर्वारा तादृशाव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नवह्निसामग्र्यभावस्यापि साधनीभूतधूमावृत्तित्वादिति चेत्। न। साधनाधिकरणवृत्तित्वेन यदभावविशेषणात्।

भट्टाचार्य्यास्तु वह्नौ साध्ये वह्निसामग्र्यपि उपाधिर्भवत्येव(१) कृतं विशेषणप्रक्षेपेण। न चैवं वह्नौ साध्ये धूमे हेतौ वह्निसामग्र्युपाधिरित्यपि व्यवहारापत्तिरिति वाच्यं। अव्याप्यत्वसम्बन्धेन तद्वृत्तित्वस्यैव तत्र हेतावुपाधित्वव्यवहारनियामकत्वात् अत एव वह्नौ

(१) वह्न्यादौ साध्ये वह्निसामग्र्या अप्युपाधिर्भवत्येवेति ग०, घ०।

तत्रापि स्वव्यभिचारे साध्यव्याप्यव्याप्यत्वं तन्त्रमावश्य-कत्वाल्लाघवाच्च न साध्यव्यापकव्याप्यत्वमपि भवत्येव व्यभिचारस्य दर्शितत्वात्। न च साध्यव्याप्यव्याप्यत्वमेवानौपाधिकत्वं, साध्यव्याप्यमित्यत्रापि स्वनौपाधिकत्वं

---

साध्ये धूमः सोपाधिरित्यपि न व्यवहारः अव्याप्यत्वसम्बन्धेन यथोक्त-धर्मवत्त्वस्यैव तादृशव्यवहारनियामकत्वादिति प्राहुरिति संक्षेपः।

'अभावः' अव्याप्यतासम्बन्धावच्छिन्नाभावः, 'तस्याभावेऽपीति अव्याप्यतासम्बन्धेनाभावसत्त्वेपीत्यर्थः, 'व्यभिचारात्' साध्यव्यभिचार-सत्त्वात्, एतदेव शब्दोऽनित्योगुणत्वादित्यत्र विषमव्यापके प्रमेयत्वे ग्राहयति, 'अस्ति ह्यीति भवति ह्यीत्यर्थः, 'अनित्यत्वव्यापकं' अनित्यत्वविषमव्यापकं, 'प्रमेयत्वं' अनित्य-गुणावितिप्रमाविशेष्यत्वं, 'तद्व्याप्यश्चेति अव्याप्यतासम्बन्धेन तदभाववच्चेत्यर्थः। 'न चानित्यत्व-गुणत्वयोरिति न च गुणत्वेऽनित्यत्वव्यभिचाराभावोऽस्तीत्यर्थः, 'प्रमे-यत्वमितियथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते तदन्यवृत्तित्वरूपाव्याप्यत्वस्यैव लाघवादनुगतत्वाच्चात्र घटकतया केवलान्वयिनः प्रमेयत्वस्य तद-प्रसिद्धेः। न च तथापि 'न च गुणत्वेऽनित्यत्वव्यभिचाराभावो-ऽस्तीत्यसंगतं विशेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्यव्यभिचारित्वस्यैव लक्षण-घटकतया गुणत्वजातौ तादृशानित्यत्वव्यभिचाराभावस्य सत्त्वादिति वाच्यं। 'गुणत्वपदस्य गुणपदवाच्यत्वपरत्वादिति ध्येयं। 'व्यतिरेकः' अव्याप्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकव्यतिरेकः, 'तथा' साध्य-

तदेव वाच्यं तथाचानवस्थेति, अनौपाधिकत्वे च व्याप्तिलक्षणे यावदिति पदं साध्यव्यापकत्वे[१] विशेषणं दत्तमेव। किञ्च यस्मिन् सत्यनुमितिर्न भवति तदेव तत्र दूषणं न तु यद्व्यतिरेके भवत्येवेत्येतन्मते विरुद्धत्वा-

---

व्यभिचाराभावसमनियतः, 'साध्यव्यापकेति साध्यव्यापकं सत् यत्साध्यव्याप्यीभूतं तस्य साध्यसमव्याप्तस्येति यावत्, 'व्याप्यं' अव्याप्यतासम्बन्धेनाभाववत्। ननु यदि समव्याप्त एव उपाधिस्तदा 'व्यभिचारे चावश्यमुपाधिरिति नियमो भज्येत, न हि सर्व्वत्र व्यभिचारिणि साध्यसमव्याप्तेन स्थातव्यं, इत्यत आह, 'व्यभिचारे चेति, 'अन्तत' इत्यनेन साध्यसामग्र्यादीनां बहूनामेव उपाधित्वं सम्भवतीति सूचितं। ननु स्वस्मिन् स्वसमव्याप्यत्वाभावात् कथं साध्यस्य उपाधित्वमित्यत आह, 'अभेदेऽपीति। ननु तथापि कथं तद्धेतौ सोपाधित्वव्यवहारः व्यभिचारितासम्बन्धेन उपाधिमत्त्वस्यैव तन्नियामकत्वादित्यत-आह, 'साधनाव्यापकत्वाच्चेति। साध्यव्यभिचारविरोधित्वं साध्यव्यभिचाराभावव्याप्यत्वमात्रमिति यथाश्रुताभिप्रायेण साध्यव्यापके महानसत्वादावतिव्याप्तिमाह, 'तत्रापीति, 'अव्यभिचारे' साध्यव्यभिचाराभावे, षष्ठ्यर्थे सप्तमी, 'साध्यव्याप्यव्याप्यत्वमिति साध्यव्याप्यस्य महानसत्वादेरव्याप्यतासम्बन्धेनाभावोऽपीत्यर्थः, 'तन्त्रं' व्याप्यं, 'आवश्यकत्वादिति साध्यव्याप्यमहानसत्वादेरव्याप्यतासम्बन्धेनाभाव-

---

(१) साध्यव्यापक इति ख०।

देरप्यदोषत्वापत्तेः। नापि पक्षधर्म्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधित्वं साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकोपाध्यव्यापनात्। शब्दोऽभिधेयः प्रमेयत्वादित्यत्राश्रावणत्वस्योपाधित्वापत्तेश्च शब्दधर्म्मगुणत्वाव-

---

वति साध्यव्यभिचाराभावस्यावश्यकत्वादित्यर्थः, 'लाघवाच्चेति व्यर्थविशेषणत्वादिरहितत्वाच्चेत्यर्थः, इदञ्च व्यर्थविशेषणतास्थले व्याप्तिरेव न तिष्ठतीतिप्राचीनमतानुरोधेन, 'साध्यव्यापकव्याप्यत्वमपीति अव्याप्यतासम्बन्धेन साध्यव्यापकत्वस्याभाव एवेत्यर्थः, 'दर्शितत्वादिति 'अस्ति हीत्यादिना दर्शितत्वादित्यर्थः,(१) 'भवन्मते विषमव्यापकेऽतिव्याप्तेश्चेत्यपि बोध्यं। ननु भवतु साध्यव्यापकोऽपि महानसत्वादिरुपाधिः को दोषः तर्हि सद्धेतावपि सोपाधितापत्तिरिति चेत्, न हि यत्किञ्चिदुपाधिसत्त्वेनैव सोपाधिता, किन्तु यत्किञ्चित्साध्यव्याप्यव्याप्यत्वमेवानौपाधिकत्वमिति साध्यव्याप्यव्याप्यत्वसामान्याभाव एव सोपाधित्वमित्यत आह, 'न चेति, 'साध्यव्याप्यव्याप्यत्वं', तथाच यद्युक्तस्वरूपमनौपाधिकत्वं तदा उक्तस्वरूपं सोपाधित्वं स्यात् न चैवमिति भावः। 'साध्यव्याप्यमित्यत्रापि हीति, साध्यव्याप्यत्वग्राहकमिति शेषः। नन्वेवमनौपाधिकत्वं व्याप्तिग्राहके तन्त्रमेव न स्यात्, न हि साध्यव्यापकव्यापकत्वं तत् अतिप्रसङ्गादित्यत आह, 'अनौपाधिकत्व इति, 'व्याप्तिलक्षणे' व्याप्तिग्राहके, 'साध्यव्यापकत्वे' साध्य-

---

(१) दर्शितत्वादिति भाव इति ग०।

ध्यव्यभिचारः केवलसाध्यव्यतिरेको वा साधनीयस्तथा चार्थान्तरं केवलसाध्ये हि विवादो न तु विशिष्टे। अथ प्रकृतसाध्यव्यभिचारसिद्ध्यर्थं विशिष्टसाध्यव्यभिचारः साध्य इति चेत्। न। अप्राप्तकालत्वात्।

---

काभाववद्वृत्तित्वं वह्न्यवच्छिन्नधूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकरूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववद्वृत्तित्वमिति यावत्, तत्र वह्न्यवच्छिन्नधूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाव-धूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावयोर्भेदाभावेन(१) वह्न्यवच्छिन्नेत्यस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गात्। ननु तादृशाभावयोर्भेदाभावेऽपि यथासन्निवेशे(२) न वैयर्थ्यं अन्यथा तवापि साध्यव्यापकव्यभिचारित्वादित्यत्र साध्यव्यापकेति व्यर्थं साध्यव्यभिचारित्वादित्येतस्यैव सम्यक्त्वात् साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यापि साध्यव्यापकतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिता-

---

(१) धूममात्रस्य वह्निशून्यदेशवृत्तित्वविरहात् वह्न्यवच्छिन्नधूमस्य शुद्धधूमस्य च समदेशवृत्तित्वात् वह्न्यवच्छिन्नधूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाव-धूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावयोः समनियतत्वेनाभेद इति भावः।

(२) तादृशाभावयोरभेदेऽपि अवच्छेदकताभेदात् वह्न्यवच्छिन्नत्वघटितयावद्धर्मनिष्ठावच्छेदकताकप्रतियोगिताकाभावविषयकप्रतीतौ वह्न्यवच्छिन्नत्वाघटितयावद्धर्मनिष्ठावच्छेदकताकप्रतियोगिताकाभावस्याविषयीकरणात् यथासन्निवेशे न वैयर्थ्यमिति भावः।

प्रथमं साध्यव्यभिचार एवोद्भाव्यस्तत्रासिद्धावुपा-

काभावतया तत्रापि साध्यव्यापकव्यभिचारित्वघटकत्वात् । वस्तुतस्तु आर्द्रेन्धनाव्याप्यत्वादित्यादिप्रातिस्विकरूपेणैवासाधकत्वं साध्यते न तु सामान्यतः साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकव्यभिचारित्वेनेति क्व वैयर्थ्य-सम्भावनेत्यस्वरसादाह, 'किञ्चेति, 'पक्षद्वयेऽपीति लक्षणद्वयेऽपीत्यर्थः, 'असाध्येति उपाधिव्यभिचारेण उपाधिव्यतिरेकेण वा असाध्येत्यर्थः, 'साधनीय इति विशेषणाव्यभिचारित्वे सति विशिष्टसाध्यव्यभिचा-रित्वेन विशेषणवति विशिष्टसाध्याभाववत्त्वेन वा हेतुना साधनीय-इत्यर्थः, उपाधेः शुद्धसाध्यव्यापकताज्ञानाभावेन तद्व्यभिचारेण तद्व्यतिरेकेण वा शुद्धसाध्यव्यभिचारस्य शुद्धसाध्यव्यतिरेकस्य वा साधनासम्भवात् अनुकूलतर्काभावादिति भावः । परम्परया प्रकृतोपयोगात्कार्यान्तरमित्याशङ्कते, 'अथेति, 'अप्राप्तकालत्वा-दिति, प्रथमं विशिष्टसाध्यव्यभिचारस्यानाकाङ्क्षितस्याभिधानादिति भावः(१) ।

प्राभाकरोपाध्यायमतमाशङ्कते, 'प्रथमेति, 'उद्भाव्यः' विशेष-णाव्यभिचारित्वे सति विशिष्टसाध्यव्यभिचारेण साधनीयः, 'तत्रा-सिद्धाविति तत्र विशिष्टसाध्यव्यभिचारे असिद्धावुद्भावितायां तत्सिद्धये उपाधिः उद्भाव्य इत्यर्थः, 'प्रकृतेति, प्रकृतानुमानवि-रोधिशुद्धसाध्यव्यभिचारासाधकत्वादिति भावः । ननु विशिष्टसा-ध्यव्यापकत्वज्ञानेनापि विशेषणवति उपाधिव्यभिचारित्वेन हेतुना

(१) इत्यर्थ इति ग०, घ० ।

धिरिति चेत्, तर्हि प्रकृतानुमाने नोपाधिर्दूषणं स्यात्। किञ्च साध्यव्यभिचारहेतुत्वेन पक्षधर्म्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकव्यभिचार एवोपन्यसनीयो नोपाधिः।

---

शुद्धसाध्यव्यभिचारानुमानं सम्भवति विशेषणवति विशिष्टव्यापकव्यभिचारित्वे विशेष्यव्यभिचारित्वस्यावश्यकत्वादित्यत आह, 'किञ्चेति, 'पक्षधर्म्मेति साधनस्याप्युपलक्षकं पक्षधर्म्मसाधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकस्योपाधेर्व्यभिचार एव उपन्यसितुमुचित इत्यर्थः, 'नोपाधिः' न केवलोपाधिः, न चेष्टापत्तिः, कथकसम्प्रदायविरोधात्, इह हेतावुपाधिः अयं हेतुः सोपाधिः इत्येव सकलकथकैरुद्भावनादिति भावः। इदञ्च दूषणं सर्व्वत्र बोध्यं न केवलमिह। यद्यपि व्यभिचारित्वादिसम्बन्धेन उपाधिरपि साक्षाद्धेतुः सम्भवति तथाप्यस्य समाधानस्य 'यद्वेति कृत्वा ग्रन्थकृतैवाग्रे स्वयं वक्ष्यमाणत्वान्नासंगतिः। व्यभिचारित्वादिसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकतया न व्याप्यतावच्छेदकत्वप्रसव इत्यभिमानेन इदमित्यपि केचित्।

रत्नकोषकारमतमाशङ्कते[१], 'स्यादेतदिति, एतल्लक्षणपक्षे सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वं दूषकताबीजमेव साधनाव्यापकत्वविशिष्टं सत्त्वव्याप्यतानियामकं न तु व्यभिचारोन्नायकत्वं पक्षधर्म्मतावललभ्यसाध्यव्यभिचारज्ञानस्य प्रकृतानुमानमूलभूतसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यव्याप्तिज्ञानाविरोधितया अकिञ्चित्करत्वादिति ध्येयम्। 'अनित्यत्वातिरिक्तेति अनित्यत्वातिरिक्तो यः शब्दधर्म्मस्तदतिरिक्तो यो-

---

(१) रत्नकोषकारमतमाशङ्कत इति ग०, घ०।

स्यादेतत्पर्य्यवसितसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकउपाधिः, पर्य्यवसितं साध्यं पक्षधर्म्मताबललभ्यं यथा शब्दोऽनित्यत्वातिरिक्तशब्दधर्म्मातिरिक्तधर्म्मवान् मेयत्वादित्यत्र पर्य्यवसितं यत्साध्यम् अनित्यत्वं तस्य

---

धर्म्मस्तद्वानित्यर्थः,'पर्य्यवसितं यत्साध्यमनित्यत्वमिति, नित्यत्वातिरिक्तो यः शब्दधर्मस्तदतिरिक्तं विशिष्टाभावत्वादुभयं शब्दधर्मातिरिक्तं घटत्वादिकमनित्यत्वञ्च तत्रादौ बाधादनित्यत्वस्यैव पक्षधर्मताबलेन सिद्धत्वादिति भावः। 'तस्य व्यापकमिति शुद्धसाध्यस्य केवलान्वयितया तद्व्यापकत्वासम्भवादिति भावः। न चेदं सदनुमानमेवेति कथमत्रोपाधिरिति वाच्यं। मीमांसकमतेनाभिधानात् तैः शब्दस्य नित्यत्वाङ्गीकारात्। यद्वा शब्दपदद्वयं शब्दत्वपरं तथाच शब्दत्वं अनित्यत्वातिरिक्तशब्दत्वधर्मातिरिक्तधर्मवत् मेयत्वादित्यत्रेत्यर्थः, उदाहरणान्तरमाह, 'यदि चेति, 'तथैवेति शब्दत्वं कृतकत्वातिरिक्तशब्दत्वधर्मातिरिक्तधर्मवत् मेयत्वादितिक्रमेणेत्यर्थः, 'तदा अनित्यत्वमिति, पक्षधर्मताबललभ्यस्य कृतकत्वस्य व्यापकत्वादिति भावः। न चैवं पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ पर्व्वतीयवह्निव्यापकत्वात् पर्वतत्व-पाषाणमयत्वाद्यवतिव्याप्तिरिति वाच्यं। पक्षावृत्तित्वेन विशेषणीयत्वादिति[१] हृदयं। पक्षधर्मताबललभ्यसाध्यव्यापकस्य उपाधित्वे प्राचां संवादमाह, 'तदुक्तमिति, 'वायुक्तसाध्येति वायुक्तं साध्यं

---

(१) पक्षावृत्तित्वे सतीत्यनेन विशेषणीयत्वादितीति ग०, घ०।

व्यापकं कृतकत्वमुपाधिः। यदि च तथैव कृतकत्वमपि शब्दे साध्यते तदा अनित्यत्वमुपाधिः। तदुक्तं "वायुक्तसाध्यनियमच्युतोऽपि कथकैरुपाधिरुद्भाव्यः पर्य्यवसितं नियमयन् दूषकताबीजसाम्राज्यात्" इति।

---

साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नं साध्यमेव, तन्नियमच्युतोऽपि तद्व्यापकतारहितोऽपि[१] 'पर्य्यवसितं नियमयन्' उपाधिः पक्षधर्मताबलभ्यं व्याप्यं कुर्व्वन्, उपाधिः कथकैरुद्भाव्य इत्यर्थः, उद्भावने हेतुमाह, 'दूषकतेति सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वस्य दूषकताबीजस्य तत्र सत्त्वादित्यर्थः। 'एवं हीत्यादि, पक्षधर्मताबलेन नित्यद्रव्यसमवेतत्वसिद्धये असमवेतत्व-द्रव्यासमवेतत्वयोर्बाधस्फोरणाय 'सावयवत्व इति द्रव्यसमवायिकारणकत्वे सिद्धे इत्यर्थः, 'जन्यमहत्त्वेति अत्र द्रव्यत्वमात्रस्य हेतुत्वे घटादौ व्यभिचार इत्यनधिकरणान्तं, तावन्मात्रस्य रूपादौ व्यभिचार इति द्रव्यत्वोपादानं, जन्यानधिकरणद्रव्यत्वस्याप्रसिद्धत्वात्[२] महत्त्वेति, परमाणुसिद्धिदशायां आकाशादावन्वयव्याप्तिग्रहाय 'अन्येति, अखण्डाभावत्वाच्च वैयर्थ्यमिति ध्येयं, 'उपाधिः स्यात्' उपाधित्वेन ज्ञातः स्यादित्यर्थः, पक्षे पर्य्यवसितसाध्याव्याप-

---

(१) वायुक्तसाध्ये नियमः च्युतोयस्येति बहुव्रीहिणा साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यव्यापकताराहित्यरूपपर्य्यवसितार्थलाभः।

(२) जन्यस्य संयोगादेः सर्व्वत्र द्रव्ये सत्त्वादप्रसिद्धिरिति भावः।

अनेन पक्षधर्म्मसाधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकोपाधिः सं-गृह्यते तादृशसाध्यस्य पर्य्यवसितत्वादिति, तन्न, एवं हि द्व्यणुकस्य सावयवत्वे सिद्धे द्व्यणुकमनित्यद्रव्यासम-

---

वेतत्वेन वस्त्वतिव्याप्तेरभावात् अत्र समवेतत्वमात्रस्य पक्षावृत्तित्वाभावात् 'नित्यपदं द्रव्येति, पर्य्यवसितसाध्यसमव्याप्त एव उपाधिरिति यदि परो ब्रूयात्तदाप्यतिव्याप्तिरिति दर्शनाय 'द्रव्येति, 'तस्य व्यापक-मिति पक्षातिरिक्ते तस्य व्यापकतया गृहीतमित्यर्थः[१]। न च प्रकृते नित्यद्रव्यसमवेतत्वं पक्षधर्मतावलभ्यमेव न भवति अभावमात्रगते-नानित्यद्रव्यसमवेतत्वाभाववत्त्वेन व्यापकतावच्छेदकेनानाक्रान्तत्वात् बा-धसहकारात् व्यापकतावच्छेदकप्रकारेण व्यापकतावच्छेदकाश्रयस्ये-वानुमितिनियमादिति वाच्यं। तादृशनियमे मानाभावात्। न चैवं घटेतरवह्न्यभाववानितिबाधसहकारेण वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत-इति परामर्शाद् घटादेरप्यनुमित्यापत्तिरिति वाच्यं। बाधभेदेन कार्य्य-कारणभावभेदात् तादृशबाधस्याहेतुत्वात् अनुभवानुरोधि-त्वात्कल्पनायाः। न च तथापि घटेतरद्रव्याभाववानित्यादिबा-धसहकारेण वह्निव्याप्यवत्तापरामर्शाद् घटादेरनुमित्यापत्तिर्दुर्वारा तादृशबाधदशायां द्रव्यादिव्याप्यवत्तापरामर्शाद् घटानुमित्युत्पत्त्या तादृशबाधस्य घटानुमितौ हेतुत्वादिति वाच्यं। द्रव्यादिव्याप्यवत्ताप-रामर्शजन्यातिरिक्तायास्तादृशबाधजन्यघटानुमितेरलीकतया द्रव्या-

---

(१) द्रव्यातिरिक्ते व्यापकतया सिद्धमित्यर्थः इति क०।

वेतं जन्यमहत्त्वानधिकरणद्रव्यत्वादित्यत्र नित्यस्पर्शद्रव्य-समवेतत्वमुपाधिः स्यात्, भवति हि नित्यद्रव्यसमवेतत्वं पर्य्यवसितं साध्यं तस्य व्यापकं साधनाव्यापकञ्च। किञ्च पक्षधर्म्मताबललभ्यसाध्यसिद्धौ निष्फल उपाधिः

---

दिव्याप्यवत्तापरामर्शविरहादेव तादृशबाधसत्त्वेऽपि वह्निव्याप्यवत्ता-परामर्शात्तदनुत्पत्तेः अन्यथा उक्तनियमाभ्युपगमेऽपि उक्तापत्तेर्दुर्वारत्वात्। न हि नियमव्यभिचारभिया सामग्री कार्य्यं नार्ज्जयति, इति भावः। एतदस्वरसेनैवाह, 'किञ्चेति, इत्यपि केचित्। वस्तुतस्तु ननु भवन्मतेऽपि स्पर्शवदसमवेतत्वस्य उपाधित्वेन ज्ञानापत्तिः पक्षातिरिक्ते शुद्धसाध्यव्यापकताज्ञानसम्भवात् पक्षे साधनाव्यापकत्वज्ञानसम्भवाच्च, यदि यावदवानवस्थाप्रसङ्गरूपविपक्षबाधकतर्केण कस्यचिन्निरवयवस्य स्पर्शवतः सिद्धौ तत्समवेतद्रव्ये साध्याव्यापकत्वज्ञानान्न तथा तदा ममापि तुल्यमित्यस्वरसादाह, 'किञ्चेति, 'पक्षधर्मताबललभ्येति पक्षधर्मताबललभ्यायाः साध्यव्यक्तेः सिद्धावित्यर्थः, 'निष्फल उपाधिरिति निष्फलमुपाधित्वेन ज्ञानमित्यर्थः, 'कस्य व्यापक इति कस्य व्यापकत्वेन ग्रह इत्यर्थः, तज्ज्ञानं विना तद्व्यापकत्वग्रहायोगादिति भावः। ननु प्रकृतानुमानेन तत् गृहीत्वा उपाधौ तद्व्यापकत्वग्रहो यदि तदैव सिद्ध्यसिद्धिव्याघातः किन्तु अनुमानान्तरात् प्रमाणान्तरेण वा तद्गृहीत्वा उपाधौ तद्व्यापकत्वग्रहः स्यादित्यत आह, 'न हीति न वेत्यर्थः, 'सोपाधौ' सोपाधितया ज्ञाते, 'यस्य व्यापक इति, तथाच सोपाधौ साध्यस्य पक्षधर्मताबललभ्यत्वमेवासिद्धमिति भावः।

तृदसिद्धौ च कस्य व्यापकः, न हि सोपाधौ पक्षधर्म्म-
तावलात् साध्यं सिध्यति यस्य व्यापक उपाधिः
स्यादिति ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिवादपूर्व्वपक्षः ।

---

इदमुपलक्षणं वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादित्यादावुद्भूतरूप-
वत्त्वादावव्याप्तिः, न हि तत्र वहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वादिकं पक्ष-
धर्मताबललभ्यं, न च पक्षधर्मताबललभ्यत्वं यदा कदाचिद्यस्य कस्य-
चित् पक्षधर्मताबललभ्यत्वं अत एवोद्भूतरूपवत्त्वादावपि नाव्याप्तिः
विशिष्टे लाघवज्ञानादिसहकारेण वहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वादा-
वपि कदाचित् पक्षधर्मताबललभ्यत्वादिति वाच्यं । प्रसिद्धानुमाने
महानसत्वादेरप्युपाधितापत्तेः महानसीयवह्न्यादेरपि कदाचित्
पक्षधर्मताबललभ्यत्वेन तद्व्यापकत्वादित्यास्तां विस्तरः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिवादपूर्वपक्षरहस्यं ।

## अथोपाधिवादसिद्धान्तः।

अथोच्यते यद्व्यभिचारित्वेन साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वं स उपाधिः, लक्षणन्तु पर्य्यवसितसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वं, यद्धर्म्मावच्छेदेन साध्यं प्रसिद्धं

---

## अथोपाधिवादसिद्धान्तरहस्यं।

प्रथमतो लक्ष्यतानियामकं लक्ष्यतावच्छेदकं निर्वक्ति, 'यदिति, अस्य लक्षणरूपत्वे 'लक्षणन्त्वि'त्यग्रिमग्रन्थासङ्गतेः। 'यद्व्यभिचारित्वेनेत्यत्र वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः, अन्वयश्चास्य साध्यव्यभिचारित्वेन, तथाच यद्व्यभिचारित्वविशिष्टं साध्यव्यभिचारित्वं 'साधनस्य' साधनवृत्तेः, स उपाधिरिति यथाश्रुतोऽर्थः, वैशिष्ट्यञ्च विशेषणताविशेषसम्बन्धेनैकाधिकरणवृत्तित्वं, वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वात् प्रमेयत्वादेत्यादौ विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधीनां उद्भूतरूपवत्त्वादीनां व्यभिचारित्वेन विशिष्टं साध्यव्यभिचारित्वमपि साधनवृत्ति भवत्येवेति न तत्राव्याप्तिः, वह्निमान् धूमात् द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादिसद्धेतौ साध्यव्यापके वह्निसामग्रीमत्त्व-गुणवत्त्वादावतिव्याप्तिवारणाय साधनवृत्तित्वप्रवेशः, साधनपदञ्च साधनतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणत्वपरं, तेन न द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादौ विशिष्टस्यानतिरिक्तत्वेऽपि गुणवत्त्वादावतिव्याप्तिः, वह्निमान् धूमात् द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादिसद्धेतौ साध्यव्याप्यस्य महानसत्व-घटत्वादेर्वारणाय 'साध्यव्यभिचा-

रित्वप्रवेशः। यत्सामानाधिकरण्यविशिष्टं साध्यव्यभिचारित्वमित्युक्तौ धूमवान् वह्नेः रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ साधनव्यापके वह्निसामग्रीमत्त्व-द्रव्यत्वादावतिव्याप्तिरतो 'यद्व्यभिचारित्वविशिष्टमिति, यद्व्यभिचारित्वं साध्यव्यभिचारित्वञ्च साधनतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणतावृत्तीत्युक्तौ पर्व्वतो धूमवान् वह्नेरित्यादौ पर्वतेतरत्व-महानसेतरत्वादेरिदं गुरु रूपादित्यादौ पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावादेश्चोपाधितापत्तिः अतो विशिष्टत्वप्रवेशः, तेषां व्यभिचारित्वविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वञ्च न कुत्रापि हेतुव्यक्तौ तदधिकरणताव्यक्तौ वेति तद्व्युदासः क्लृप्ततत्तद्वह्नित्व-तत्तद्रूपत्वाद्यवच्छिन्नाधिकरणतयैव वह्नित्व-रूपत्वाद्यवच्छिन्नाधिकरणताबुद्ध्युपपत्तौ सकलवह्न्यधिकरणरूपाधिकरणसाधारणातिरिक्तैकतदवच्छिन्नाधिकरणत्वकल्पने गौरवान्मानाभावाच्च। अत एव रूपवान् द्रव्यत्वात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादावपि पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावादौ नातिव्याप्तिः हेतौ पृथिवीत्वाभावादिव्यभिचारित्वविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वसत्त्वेऽपि कुत्रापि हेत्वधिकरणताव्यक्तौ तद्विशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वविरहात् अवश्यक्लृप्तपृथिवीत्व-जलत्वादिविशिष्टद्रव्यत्वत्व-सत्तात्वावच्छिन्नाधिकरणतयैव द्रव्यत्वत्व-सत्तात्वाद्यवच्छिन्नाधिकरणताबुद्ध्युपपत्तौ पृथिव्यादिनवकसाधारणातिरिक्तैकद्रव्यत्वत्वावच्छिन्नाधिकरणतायाः गुणादित्रयसाधारणातिरिक्तैकसत्तात्वाद्यवच्छिन्नाधिकरणतायाः कल्पने गौरवात् मानाभावाच्च। जलत्वविशिष्टद्रव्यत्वाधिकरणत्वं न पृथिवीवृत्तीतिप्रत्ययवत् द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वं न पृथिवीवृत्तीति प्रत्ययस्यापि यत्किञ्चिदधिकरणताव्यक्तिमादाय प्रमात्वस्य दृष्टत्वात्, अन्यथा तत्तदधि-

करणताव्यक्तीनां द्रव्यत्वत्वानवच्छिन्नत्वेन पृथिवीवृत्तिद्रव्यत्वाधिकरणत्वं न द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नमितिप्रतीतेरपि यत्किञ्चिदधिकरणताव्यक्तिमादाय प्रमात्वापत्तेः। अस्तु वा अवच्छेदकतासम्बन्धेन एकाधिकरणवृत्तित्वरूपं वैशिष्ट्यमेव तृतीयार्थः, तथाच वह्नित्व-रूपत्व-द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्य सकलतदवच्छिन्नाधिकरणनिष्ठत्वैकत्वेऽपि न क्षतिः पर्वतेतरत्वादिव्यभिचारित्वस्य साध्यव्यभिचारित्वे तादृशवैशिष्ट्यस्याप्रसिद्धत्वादेवातिव्याप्तिविरहात्। इत्यञ्च यद्धर्मावच्छिन्नव्यभिचारित्वविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वाधिकरणं साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनाधिकरणत्वं साध्यसमानाधिकरणवृत्ति तद्धर्मवत्त्वमुपाधित्वमिति निष्कर्षः, तेन धूमवान् वह्नेरित्यादावार्द्रेन्धनं न द्रव्यत्वादिरूपेणोपाधिः। धूमवान् वह्नेरित्यादौ विरुद्धस्य जलत्वादेरुपाधितावारणाय वृत्त्यन्तं तद्धर्मविशेषणं, साध्याधिकरणनिष्ठाधारतानिरूपिताधेयतावच्छेदकं तदर्थः, तेन द्रव्यं प्रमेयत्वादित्यत्र द्रव्यान्यत्वविशिष्टसत्त्वं द्रव्यं सत्त्वादित्यत्र द्रव्यभेदविशिष्टगुणभेदश्च नोपाधिः, यद्धर्मावच्छिन्नव्यभिचारित्वञ्च यद्धर्मावच्छिन्नवदन्यवृत्तित्वं यद्धर्मावच्छिन्नाभावीयनिरवच्छिन्नाधिकरणतावद्वृत्तित्वं वा तेन गन्धवान् द्रव्यत्वादित्यादौ साधनव्यापके संयोगादौ नातिव्याप्तिः द्रव्यत्वाभाववान् सत्त्वादित्यत्र स्वाभाववद्वृत्तित्वरूपस्वव्यभिचारित्वेन हेतौ साध्यव्यभिचारानुमानसमर्थोऽपि संयोगाभावादिर्न संग्राह्यः वक्ष्यमाणलक्षणानाक्रान्तत्वादतो न तत्राव्याप्तिः। न च तथापि धूमवान् वह्नेरित्यादौ साध्यव्याप्यमहानसत्वादावतिव्याप्तिः तद्व्यभिचारित्वविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वस्यापि हे-

त्वधिकरणतावृत्तित्वादिति वाच्यं। तत्र तस्य लक्ष्यत्वात् महान-सायोगोलकान्यतरत्वावच्छिन्नधूमव्यापकत्वे सति तदवच्छिन्नवह्निव्यापकत्वेन वक्ष्यमाणलक्षणाक्रान्तत्वात् "सर्व्वे साध्यसमानाधिकरणाः सदुपाधयः हेतावेकाश्रये येषां स्व-साध्यव्यभिचारिता" इति सिद्धान्ताच्च, येषां स्वव्यभिचारिता साध्यव्यभिचारिता च एकाश्रये एकस्मिन्नधिकरणे हेताविति तदुत्तरार्द्धार्थः, एकस्मिन्नधिकरणे इत्युपादानात् पर्व्वतो धूमवान् वह्नेरित्यादौ पर्वतेतरत्व-महानसेतरत्वादेः इदं गुरु रूपादित्यादौ पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावादेश्च न संग्रहः। न च तत्र तेषामपि संग्राह्यत्वमस्त्विति वाच्यं। व्याप्ति-पक्षधर्मतयोरेकतरभङ्गस्यावश्यकतया तत्र तद्व्यभिचारित्वेनाविशेषितेन विशेषितेन वा साध्यव्यभिचारित्वानुमानासम्भवात् रूपवान् द्रव्यत्वात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादावपि पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावादिर्न संग्राह्यः जलसमवेतनित्यत्वादिविशेषितेन तत्तद्व्यभिचारित्वेन तत्र साध्यव्यभिचारानुमानसम्भवेऽपि तद्व्यभिचारित्व-साध्यव्यभिचारित्वयोरेकस्मिन्नधिकरणे हेतावसम्भवात् तत्र तदनुपाधित्वस्य उपाध्यायादिसकलतान्त्रिकसम्मतत्वादिति सर्व्वं चतुरस्रम्।

केचित्तु हेतावेकाश्रये हेतुरूपे एकस्मिन्नधिकरणे एकस्यां हेतुव्यक्ताविति यावत्, तेन रूपवान् द्रव्यत्वात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावादिरपि संग्राह्यः, इदं गुरु रूपादित्यादौ तु स न संग्राह्यः एकस्या एव वह्निव्यक्तेरयोगोलक-पर्वताद्युभयवृत्तित्वासम्भवे धूमवान् वह्नेरित्यत्र पर्वतेतरत्व-महानसेतरत्वादेरपि संग्रहः। न च तत्र तत्र तेषां संग्राह्यत्वेन वक्ष्यमाणलक्षणस्य तत्राव्याप्त्यापत्तिरिति वाच्यं।

तल्लक्षणस्यापि तत्साधारणतया अग्रे व्याख्यास्यमानत्वात्। न च तत्र तेषां संख्यात्वे आधेयव्यक्तेरेकत्वेऽप्युक्तयुक्त्या अधिकरणव्यक्तिभेदेन अधिकरणताव्यक्तिभेदात् प्रकृतलक्ष्यतावच्छेदकस्य तत्राव्याप्त्यापत्तिः उक्तयुक्त्यनादरे रूपत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्याप्यविशेषेण सकलरूपाधिकरणसाधारणस्यैकस्य सुवचत्वात् इदं गुरु रूपादित्यादौ पृथिवीत्वाभावादावतिव्याप्तिः तत्र तदलक्ष्यतायाः सर्वसम्मतत्वादिति वाच्यं। यद्व्यभिचारित्वेन यन्निष्ठाव्यापकताकत्वेन विशिष्टं साध्यव्यभिचारित्वं साध्यनिष्ठाव्यापकताकत्वं साधनस्य साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनवृत्ति स उपाधिरित्यर्थात्। तथाच साधनतावच्छेदकावच्छिन्नयत्साधनव्यक्त्यव्यापकतावच्छेदकं साध्यतावच्छेदकं साधनतावच्छेदकावच्छिन्नतत्साधनव्यक्त्यव्यापकतावच्छेदको यो धर्मः साध्यसमानाधिकरणवृत्तितद्धर्मवत्त्वमुपाधित्वमिति फलितमिति न कोऽपि दोष इत्याहुः। तदसत् रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ पृथिवीत्वादेरुपाधित्वस्य उपाध्यायादिसकलतान्त्रिकासम्मतत्वात्।

अन्ये तु यद्धर्मावच्छिन्नवदन्यत्वेन विशिष्टसाधनाधिकरणे साध्यवदन्यत्वं वर्त्तते तद्धर्मावच्छिन्नत्वमुपाधित्वमिति लक्ष्यतावच्छेदकं लाघवात्, तथाच द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्य सकलाधिकरणसाधारणस्य एकत्वमतेऽपि रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ पृथिवीत्वाभावादौ नातिव्याप्तिः। न वा रूपत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्यैकत्वेऽपि इदं गुरु रूपादित्यादौ तत्रातिव्याप्तिः, इत्यत्र यद्व्यभिचारित्वेन यद्धर्मावच्छिन्नवदन्यत्वेन साधनस्य साधनाधिकरणस्य साध्यव्यभिचारित्वं साध्यवद्भिन्नत्वं स उपाधिः तद्धर्मावच्छिन्नमुपाधिरित्यर्थः, तृतीयार्थस्य

तदवच्छिन्नं पर्य्यवसितं साध्यं, स च धर्म्मः क्वचित् साधनमेव, क्वचिद्‌द्रव्यत्वादि, क्वचिन्महानसत्वादि,

---

वैशिष्ट्यस्य साधनाधिकरणेऽन्वयः, निरुक्तसाध्यसमानाधिकरणत्वेन च तद्धर्म्मो विशेषणीयः तेन साध्यविरुद्धधर्मे नातिव्याप्तिरिति लक्ष्यतावच्छेदकं परिष्कुर्वन्ति । तदसत् उदचरत्वादिति समासः ।

अत्र लक्ष्यतावच्छेदकस्यैव लक्षणत्वसम्भवेऽपि येन रूपेण ज्ञातस्य उपाधेर्दोषत्वं तादृशं लक्षणमाह, 'लक्षणन्त्वित्यादिना, पर्य्यवसितपदार्थमाह, 'यद्धर्मेति, 'यद्धर्मावच्छेदेन' यद्धर्मवति, 'साध्यं प्रसिद्धं' साध्यं वर्त्तमानं, 'तदवच्छिन्नं' सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन तादृशयत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टमित्यर्थः, यथाश्रुतेऽवच्छेदकत्वं नाचान्यूनवृत्तित्वं न वानतिरिक्तवृत्तित्वं मित्रातनयत्वादीनां तदसम्भवात् न वा स्वरूपसम्बन्धविशेषः मित्रातनयत्वादीनां तथात्वे मानाभावादित्यसङ्गतत्वापत्तेः। अत्र व्यधिकरणयत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टस्य साध्यस्य पर्य्यवसितपदार्थत्वे अप्रसिद्ध्यापत्तिरतो धर्मविशेषपरिचयाय प्रसिद्धान्तं न तु लक्षणघटकं, 'लक्षणन्तु सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन यत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमेव ।

केचित्तु 'प्रसिद्धं' निश्चितं, एतच्च पर्य्यवसितपदार्थतया स्वरूपकथनमित्याहुः ।

'क्वचित् साधनमेवेति काकः श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादावित्यर्थः, 'क्वचित् द्रव्यत्वादीति वायुर्वहिरिन्द्रियप्रत्यक्षः प्रमेयत्वादित्यादावित्यर्थः, 'क्वचिन्महानसत्वादीति धूमवान् वह्नेरित्यादा-

वित्यर्थः। न च तत्रार्द्रेन्धनादेः शुद्धसाध्यव्यापकत्वस्यैव सम्भवात् अव-च्छिन्नसाध्यव्यापकत्वं अतोऽभ्युपेयमिति वाच्यं। शुद्धसाध्यव्यापकत्वेऽपि विशिष्टसाध्यव्यापकत्वानपायात्, परन्तु व्यर्थविशेषणतया विशिष्टं व्याप्यतावच्छेदकं भवतु न वेत्यन्यदेतत्। ननु सामानाधिकरण्यसंसर्गेण यत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टस्य साध्यस्य व्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वस्य लक्षणत्वे वह्निमान् धूमादित्यादिसद्धेतावपि सपक्षैकदेशवृत्तिधर्मस्य व्यञ्जनवत्त्वादेरुपाधिताप्रसङ्गः महानसत्वाद्यवच्छिन्नवह्न्यादिव्यापकत्वादिति चेद्वोपाध्यायाः यद्धर्मविशिष्टसाध्यव्यापकत्वं तद्धर्मविशिष्टसाधनाव्यापकत्वस्यैव विवक्षितत्वात्। न चैवं 'क्वचिन्महानसत्वादीति मूलमसङ्गतं तद्विशिष्टसाधनाव्यापकत्वस्य आर्द्रेन्धनादावभावादिति वाच्यं। धूमानधिकरणवह्न्यधिकरणस्यापि महानसस्य सत्त्वात्। तद्विशिष्टत्वञ्च सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन तेन रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादौ तद्घटोत्पत्तिकालीनत्वविशिष्टरूपव्यापकस्य तद्घटे तद्विशिष्टपृथिवीत्वाव्यापकस्य तद्घटान्यत्वस्य नोपाधित्वप्रसङ्गः, साध्यपदञ्च साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यपरं, तेन गुण-कर्मान्यत्वादिविशिष्टसत्तावान् प्रमेयत्वादित्यादौ द्रव्य-कर्मान्यत्वादि-विशिष्टसत्ताव्यापके तादृशप्रमेयत्वाव्यापके च गुणत्वादौ नातिव्याप्तिः। साधनपदमपि साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनपरं, तेन द्रव्यं गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ द्रव्य-गुणान्यतरत्वविशिष्टद्रव्यत्वव्यापके तादृशशुद्धसत्ताया अव्यापके च गुणान्यत्वे नातिव्याप्तिः, इदं गुरु रूपादित्यादौ पृथिवीत्वाभावादिरिव रूपवान् द्रव्यत्वात् महा-कालान्यो घटादित्यादावपि पृथिवीत्वाद्यभाव-खण्डकालभेदादिर्न

लक्ष्य इति न तत्राव्याप्तिरिति भावः। रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ पृथिवीत्वाभावादेर्लक्ष्यतापत्ते तु 'यद्धर्मावच्छेदे' इति सप्तमी यद्धर्म-विशिष्ट इत्यर्थः, साधनाधिकरण इति शेषः, 'नञ्शब्दस्य निषेधार्थकः, 'प्रसिद्धं' वर्त्तमानं, तथाच साध्यानधिकरणसाधनाधिकरणवृत्ति-धर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकतावच्छेदकत्वे सति साधनाव्यापकतावच्छेदको यो धर्मस्तद्वत्त्वमुपाधित्वमिति फलितं, विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधा-वव्याप्तिवारणायावच्छिन्नान्तं साध्यविशेषणं, रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ साध्यानधिकरणं साधनाधिकरणं वाय्वादि तद्वृत्तिधर्मो वायु-जलान्यतरत्वादिस्तद्धर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापक एव पृथिवीत्वाभावादि-रिति तत्रापि लक्षणसमन्वयः। यत्किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नसाध्यव्याप-कत्वस्य साधनाधिकरणवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वस्य वाभि-धाने वह्निमान् धूमादित्यादिसद्धेतावपि साध्यव्याप्यमहानसत्व-व्यञ्जनवत्त्वादेरप्युपाधितापत्तिरिति साध्यानधिकरणसाधनाधिक-रणवृत्तित्वं धर्मविशेषणं, साध्यानधिकरणसाधनाधिकरणस्य सद्धेता-वप्रसिद्धमतो न तद्दोषतादवस्थ्यम्। महानसत्वव्यञ्जनवत्त्वादेरपि महानस-जलह्रदान्यतरत्वादिविशिष्टसाध्यव्यापकतया तद्दोषतादव-स्थ्यवारणाय साधनाधिकरणप्रवेशः, साधनाधिकरणत्वञ्च साधन-तावच्छेदकविशिष्टाधिकरणत्वं, तेन द्रव्यं गुण-कर्मान्यत्वविशिष्ट-सत्त्वादित्यत्र साध्यानधिकरणसाधनाधिकरणवृत्तिरूप-घटान्यतर-त्वावच्छिन्नसाध्यव्यापके(१) पृथिवीत्वादौ नातिव्याप्तिः। साध्या-

(१) साध्यानधिकरणसत्ताधिकरणवृत्तिरूप-घटान्यतरत्वावच्छिन्नसाध्य-व्यापक इति ख०, ग०।

नधिकरणसाधनतावच्छेदकविशिष्टसाधनाधिकरणाप्रसिद्धेः साध्या-नधिकरणत्वमपि साध्यतावच्छेदकविशिष्टानधिकरणत्वं, तेन गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यत्र सत्तानधिकरणजात्यधिकरणा-प्रसिद्धावपि द्रव्यत्वादौ नाव्याप्तिः। न चैवमुपाधिशरीरभान एव साध्यव्यभिचारभानादुपाधिव्यभिचारेण पुनर्व्यभिचारानुमानमफलं स्यादिति वाच्यं। हेतुविशेष्यकसाध्यव्यभिचारप्रकारकज्ञानार्थं तदनुमानस्यावश्यकत्वात् तादृशज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्वात् यत्रोपा-धित्वज्ञानात् पूर्व्वं साधनाधिकरणस्य न साध्यानधिकरणत्वज्ञानं तत्र निश्चितोपाधित्वाभावस्यापीष्टत्वात्। साध्यव्यापकत्वमपि साध्यता-वच्छेदकविशिष्टसाध्यव्यापकत्वं बोध्यं, अन्यथा गुण-कर्मान्यत्वविशिष्ट-सत्तावान् जातेरित्यत्र द्रव्यत्वादावव्याप्त्यापत्तेः तत्र द्रव्य-गुणान्य-तरत्व-द्रव्य-कर्मान्यतरत्वादिरूपतादृशधर्मावच्छिन्नविशिष्टसत्ताव्याप-कत्वेऽपि तादृशशुद्धसत्ताव्यापकत्वविरहात्। न च निरुक्तसाध्यानधि-करणनिरुक्तसाधनाधिकरणवृत्तिधर्मावच्छिन्ननिरुक्तसाध्यसमानाधि-करणवृत्तित्वे सतीत्येवास्तु किं व्यापकतावच्छेदकत्वपर्य्यन्तानुस-रणेन तादृशसाध्यसमानाधिकरणवृत्तित्वञ्च तादृशसाध्याधिकरणनि-रूपिताधेयतावच्छेदकत्वं तेन द्रव्यं सत्त्वादित्यत्र द्रव्यान्यत्वविशिष्टसत्त्वे नातिव्याप्तिरिति वाच्यं। व्यापकत्वाप्रवेशे उपाधिशरीरभानस्य उपाधिव्यभिचारित्वनिष्ठसाध्यव्यभिचारित्वव्याप्तिग्रहोपयोगित्वासम्भ-वात् यथासन्निवेशे वैयर्थ्याभावात्। धूमवान् वह्नेरित्यादौ साध-नव्यापकस्य प्रमेयत्वादेर्व्वारणाय साधनाव्यापकतावच्छेदकत्वप्रवेशः, साधनपदञ्च साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनपरं, तेन द्रव्यं गुणान्य-

तथाहि समव्याप्तस्य विषमव्याप्तस्य वा साध्यव्यापकस्य व्यभिचारेण साधनस्य साध्यव्यभिचारः स्फुट एव व्यापकव्यभिचारिणस्तद्वाप्यव्यभिचारनियमात्, साधनावच्छिन्न-पक्षधर्म्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकयोर्व्यभिचारि-

---

त्वविशिष्टसत्त्वादित्यत्र द्रव्य-कर्म्मान्यतरत्वादिरूपतादृशधर्म्मावच्छिन्न-साध्यव्यापके गुणान्यत्वे नातिव्याप्तिः। न चैवं इदं गुरु रूपादित्यादावपि जल-तेजोन्यतरत्वादिरूपतादृशधर्मविशिष्टसाध्यव्यापकतया पृथिवीवृत्तिरूपाव्यापकतया च पृथिवीत्वाभावादेरुपाधितापत्तिः पृथिवीत्वाभावव्यभिचारिरूपव्यक्तेः पृथिवीमात्रनिष्ठतया साध्यव्यभिचारित्वाभावात्तत्र तदनुपाधित्वस्य सर्व्वसम्मतत्वादिति वाच्यं। पूर्व्वदलप्रविष्टा या साधनव्यक्तिः साधनतावच्छेदकविशिष्टतत्साधन-व्यक्त्यव्यापकत्वस्य विवक्षितत्वात्, द्रव्यत्वाभाववान् सत्त्वादित्यत्र स्वाभाववद्वृत्तित्वरूपस्वव्यभिचारित्वेन साध्यव्यभिचारानुमानसमर्थोऽपि संयोगाभावादिर्न संग्राह्यः, तेन उपाध्यायमतेऽत्र मते च न तत्राव्याप्तिरिति समासः।

इदानीं प्रसङ्गादुपाधिव्यभिचारेण साध्यव्यभिचारानुमितेः प्रकारं व्युत्पादयति, 'तथा हीति, 'समव्याप्तस्य' साध्यव्याप्यस्य, 'विषमव्याप्तस्य' साध्याव्याप्यस्य, यथाश्रुतेऽग्रे 'साध्यव्यापकस्येत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः, 'साध्यव्यभिचारः' साध्यव्यभिचारग्रहः, 'स्फुट एव' स्फुटतरं सम्भवत्येव, 'व्यभिचारित्वेन' व्यभिचारित्वेनापि, 'साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वमेव' साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वग्रहः सम्भवत्येव, ननु

त्वेन साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वमेव, यथा ध्वंसस्या-नित्यत्वे साध्ये भावत्वस्य, वायोः प्रत्यक्षत्वे साध्ये उद्भूत-रूपवत्त्वस्य च, विशेषणाव्यभिचारिणि साधने विशिष्ट-

---

विशिष्टसाध्यव्यापकव्यभिचारित्वेन विशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वग्रह एव सम्भवति न तु शुद्धसाध्यव्यभिचारग्रह इत्यत आह, 'विशेषणेति, 'विशेष्येति विशेष्यव्यभिचारित्वरूपतानियमादित्यर्थः। न च विशिष्टाभाव-विशेष्याभावयोर्भेदेन व्यभिचारभेदात् कथं विशिष्टव्यभिचारो विशेष्यव्यभिचारात्मक एवेति वाच्यं। विशिष्टाभावो विशेष्य-विशेषणाभावाभ्यां नातिरिच्यत इत्यभिप्रायात्,(१) विशिष्टाभावस्या-तिरिक्तत्वेऽपि विशेष्याभावाधिकरणस्य विशिष्टाभावाधिकरणत्व-नियमेन विशेष्याभावाधिकरणवृत्तित्वस्य विशिष्टाभावाधिकरण-वृत्तित्वरूपत्वाच्च। 'अतएवेति यतएव विशेषणाव्यभिचारिणि साधने विशिष्टसाध्यव्यभिचारो विशेष्यीभूतशुद्धसाध्यव्यभिचारस्वरूपोऽतएवे-त्यर्थः, 'नार्थान्तरमिति वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादित्यादावुद्भूत-रूपवत्त्वव्यभिचारित्वेन विशिष्टसाध्यव्यभिचारसाधने नार्थान्तरमित्यर्थः, 'विशेषणेति, यत इत्यादिः, 'पक्षधर्मताबलादिति विशेष्यव्यभिचारित्वे-तरविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वस्य बाधग्रहसहकारादित्यर्थः, विशेषणा-व्यभिचारिसाधने विशिष्टसाध्यव्यभिचारस्य विशेष्यीभूतशुद्धसाध्यव्य-भिचारस्वरूपत्वेन विशेष्यीभूतशुद्धसाध्यव्यभिचारस्यापि व्यापकतावच्छे-

---

(१) तथाच विशेषणवति विशिष्टाभावो विशेष्याभावरूपः, विशेष्य-वति विशेषणाभावरूपश्चेति भावः।

व्यभिचारस्य विशेष्यव्यभिचारित्वनियमात्। अतएव नार्थान्तरं विषयाव्यभिचारित्वेन ज्ञाते साधने विशिष्टव्यभिचारः सिध्यन् विशेष्यसाध्याव्यभिचारमादायैव

---

दकावच्छिन्नत्वादिति भावः। न च तस्य व्यापकतावच्छेदकावच्छिन्नत्वेऽप्यनुमितेर्व्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्वनियमाद्विशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वप्रकारिकैव धीः स्यात् तथाचार्थान्तरमेव शुद्धसाध्यव्यभिचारित्वप्रकारकबुद्धेरेव कारणीभूतव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकत्वेनोद्देश्यत्वादिति वाच्यं। इतरकोटिबाधसहकारेण व्यापकतानवच्छेदकरूपेणापि व्यापकतावच्छेदकावच्छिन्नानुमितिस्वीकारात्। 'अन्यथा' विशेष्यव्यभिचारित्वाविषयकत्वे, 'अपर्य्यवसानात्' अपर्य्यवसानप्रसङ्गात् [illegible]प्रसङ्गादिति यावत्, विशेषणव्यभिचारित्वस्य तत्र बाधितत्वादिति भावः। ननु तथापि अनुमितेर्व्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्वनियमे पक्षधर्मताबलादपि शुद्धसाध्यव्यभिचारित्वप्रकारिका धीर्न सम्भवतीत्यस्वरसादाह, 'यद्वेति, 'द्रव्यप्रत्यक्षत्वेति द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वेत्यर्थः, 'महत्त्ववत्' चक्षुरादिनिष्ठमहत्त्ववत्, तेन घटादिवृत्तिमहत्त्वस्य साध्य-साधनविकलत्वेऽपि न क्षतिः। इदञ्चानुमानं प्रत्यक्षपरिमाणवत्त्वाद्युपाध्यभिप्रायेण न तु उद्भूतरूपवत्त्वोपाध्यभिप्रायेण तस्यात्मनि व्यभिचारेण द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वाव्यापकत्वात्, तद्व्यभिचारित्वस्य सुखादौ प्रत्यक्षत्वव्यभिचारित्वव्यभिचाराच्च इत्यपि द्रष्टव्यं। न च 'द्रव्यप्रत्यक्षत्वव्यापकेत्यत्र द्रव्यपदवैयर्थ्यमिति वाच्यं। प्रत्यक्षपरिमाणवत्त्वादिव्यभिचारित्वस्यैव

सिध्यति पक्षधर्म्मताबलात् अन्यथा प्रतीतेरपर्य्यवसानात्। न च पक्षधर्म्मताबलात् प्रकृतसिद्धावर्थान्तरम्। यद्वा प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वं प्रत्यक्षत्वव्यभिचारि द्रव्यत्वाव्य-

---

हेतुत्वात्, द्रव्यप्रत्यक्षत्वव्यापकत्वोपन्यासस्तु तर्कप्रदर्शनायेति,(१) 'श्याममित्रातनयत्वेति मित्रातनयत्वावच्छिन्नश्यामत्वेत्यर्थः, अत्रापि शाकपाकजत्वव्यभिचारित्वादित्येव हेतुः, व्यापकत्वोपन्यासस्तु तर्कप्रदर्शनायेति ध्येयं। 'अघटत्ववदिति, ननु अघटत्वं घटभेदः स च नान्वयेन दृष्टान्तः अत्यन्तविशेषणाभावेन साधनविकलत्वात्, नापि व्यतिरेकेण, साध्यस्य तत्र सत्त्वादिति चेत् अत्रास्मद्गुरुचरणाः(२) यथाहि धूमत्वविशिष्टप्रमेयत्वं वह्न्यव्यभिचारि तथा मित्रातनयत्वादिविशिष्टं सद्घटत्वमपि मित्रातनयत्वाव्यभिचार्य्येवेति भावः। ननु मित्रातनयत्वाव्यभिचारित्वं मित्रातनयत्वाभाववदवृत्तित्वं तच्च मित्रातनयत्वविशिष्टेऽघटत्वेऽपि नास्ति विशिष्टस्यानतिरिक्ततया गुणाद्यन्यत्वविशिष्टसत्ताया गुणादिवृत्तित्ववन्मित्रातनयत्वादिविशिष्टाघटत्वस्यापि मित्रातनयभिन्ने सत्त्वाद्वह्न्यभाववदवृत्तित्वरूपवह्न्यव्यभिचारित्वमपि न धूमत्वविशिष्टप्रमेयत्वे तथाच

---

(१) अत्र "यो यद्व्यापकव्यभिचारी स्यात् स तद्व्यभिचारी स्यादिति व्यापकव्यभिचारिणो व्यभिचारित्वनियमादस्याप्रयोजकत्वशङ्काव्युदासकतर्कस्थापनायेत्यर्थः, तर्कस्तु यदि साध्यव्यापकव्यभिचारः साध्यव्यभिचारव्याप्यो न स्यात् तदा साधनवृत्तिर्न स्यात्" इत्यधिकः पाठः ख-चिह्नितपुस्तके वर्त्तते।

(२) अत्रास्मत्पितृचरणाः इति ख०, ग०।

भिचारित्वे सति द्रव्यप्रत्यक्षत्वव्यापकव्यभिचारित्वाम्म-हत्त्ववत्, तथा मित्रातनयत्वं श्यामत्वव्यभिचारि मित्रा-

---

साधनविकलो दृष्टान्तः इत्यतोव्यापकत्वरूपमव्यभिचारं निर्व्वक्ति, 'अव्य-भिचारस्येति, 'तत्समानाधिकरणेति तत् मित्रातनयत्वं समानाधिकर-णात्यन्ताभावाप्रतियोगि यस्येति बहुव्रीहिः, स्वसमानाधिकरणात्य-न्ताभावाप्रतियोगिमित्रातनयत्वकत्वमित्यर्थः । यथाश्रुते मित्रातनयत्व-व्यापकत्वस्यैव फलतो मित्रातनयत्वाव्यभिचारित्वरूपतया शाकपाकजत्व-व्यभिचारित्वरूपस्य विशेष्यदलस्य वैयर्थ्यापत्तेः। न च भिन्नधर्म्मिकत्वान्न वैयर्थ्यमिति(१)वाच्यं। तथापि शाकपाकजत्वव्यभिचारित्वस्य शाकपाक-जत्वाभाववति वर्त्तमानत्वरूपतया शाकपाकजत्वाभाववदंशवैयर्थ्यापत्ते-र्दुर्व्वारत्वात् मित्रातनयत्वव्यापकत्वे सति वर्त्तमानत्वस्यैव सम्यक्त्वात् । 'अभेदेऽपीति विशिष्टस्य केवलादनतिरिक्तत्वेऽपीत्यर्थः, विशिष्टस्यान-तिरिक्तत्वेऽपि तन्निरूपिताधारताया मित्रातनयभिन्नेऽभावादिति भावः । यद्यप्येवं श्यामत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वादावेव व्यभिचारः तस्यापि मित्रातनयत्वादिविशिष्टीभूय मित्रातनयत्वाव्यभिचारित्वात् शाकपाकजत्वाभाववद्वृत्तित्वरूपशाकपाकजत्वव्यभिचारित्वाच्च, तथापि शाकपाकजत्वव्यभिचारित्वमपि स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियो-गिशाकपाकजत्वकत्वं तथाच स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियो-

---

(१) तथाच स्वसमानाधिकरणव्याप्यतावच्छेदकधर्म्मान्तरघटितत्वस्यैव व्यर्थविशेषणघटितत्वरूपतया भिन्नधर्म्मिकत्वे स्वसमानाधिकरणत्वविरहा-देव न व्यर्थविशेषणघटितत्वसम्भव इति भावः ।

तनयत्वाव्यभिचारित्वे सति श्यामभिचातनयत्वव्यापकव्यभिचारित्वात् अघटत्ववत्, अव्यभिचारश्च तत्स-

---

गिमित्रातनयत्वकत्वे सति स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिशाकपाकजत्वकत्वादिति फलितं, स्वपदद्वयञ्च एकधर्मावच्छिन्नबोधकमतो न कोऽपि दोष इत्याहुः।

नव्यास्तु अघटत्वं व्यतिरेकेणैव दृष्टान्तः, मित्रातनयत्वस्य मित्राजन्यत्वविशिष्टपुंस्त्वाख्यावयवविशेषरूपस्य समवेतत्वसम्बन्धेनैव स्थापनानुमाने हेतुतया समवेतत्वसम्बन्धेन श्यामत्वव्यभिचारस्यैवाच साध्यत्वेन साध्याभावस्यापि तत्र सत्त्वात्। यदि च मित्रातनयत्वं प्रकृते मित्राजन्यतावच्छेदकधर्मवत्त्वमात्रमधिकस्य व्यर्थत्वात्, तथापि तादृशधर्मस्य जातिविशेषरूपतया समवायसम्बन्धेन श्यामत्वव्यभिचारस्यैवाच साध्यत्वेन साध्याभावस्य सुतरां तत्र सत्त्वादिति भावः। ननु मित्रातनयत्वाव्यभिचारित्वं कुतो मित्रातनयत्वेऽभिचारस्य भेदगर्भत्वादतो हेतुः स्वरूपासिद्ध इत्यत आह, 'अव्यभिचारश्चेति, 'तत्समानाधिकरणेति पूर्व्ववदुक्तरीतिः, तथाच मित्रातनयत्वाभाववदवृत्तित्वं फलितं, यथाश्रुते हेतावुक्तरीत्या विशेष्यदलघटकशाकपाकजत्वाभाववदंशवैयर्थ्यापत्तेः, 'तत्राभेदेपीति, तस्य भेदागर्भत्वादिति भाव इति प्राहुः।

मिश्रास्तु अघट इति गौरमित्रातनयसंज्ञाभेदः, तथाच गौरमित्रातनयवृत्तिधर्मान्वयेनैव दृष्टान्त इत्याहुः, तन्मते 'अव्यभिचारश्चेत्यादिग्रन्थस्तु नव्यमतवद्योजनीयः।

भट्टाचार्य्यास्तु ननु अघटत्वं घटभेदः स चान्वयेन न दृष्टान्तः साध-

मानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं तच्चाभेदेऽपि।
यद्वा यः साधनव्यभिचारी साध्यव्यभिचारोन्नायकः

नविकल्पत्वात् अधिकरणभेदेन घटभेदस्य भेदाभावात्। नापि व्यतिरेकेण, मित्रातनयत्वं न मित्राजन्यतावच्छेदकधर्मवत्त्वमात्रं तस्य तनयत्वाखरूपत्वात्, अत एव न मित्राजन्यत्वविशिष्टपुंस्त्वाख्यावयवविशेषः प्राचां नये वृत्त्यनियामकसम्बन्धस्य शक्यतावच्छेदकतानवच्छेदकतया तस्यापि तनयत्वाखरूपत्वात्, अपि तु मित्राजन्यत्वविशिष्टपुंस्त्वाख्यावयवविशेषसमवेतत्वं, छिन्नलिङ्गखण्डशरीरं तु नपुंसकवन्न पुत्रः, तथाच खरूपसम्बन्धेनैव तस्य स्थापनानुमाने हेतुतया खरूपसम्बन्धेन श्यामत्वव्यभिचारस्यैवात्र साध्यत्वेनाघटत्वे साध्याभावविरहादित्याशङ्कायामाह, 'अव्यभिचारस्येति, 'तत्समानाधिकरणेति' मित्रातनयत्वाधिकरणीभूतयत्किञ्चिद्व्यक्तिनिष्ठेत्यर्थः, तेन मित्रातनयत्वसमानाधिकरणत्वं फलितं, यथाश्रुते हेतावुक्तरीत्या व्यर्थविशेषणत्वापत्तेः, 'तच्चेति, 'अभेदेऽपि' घटभेदस्याधिकरणभेदेन भेदाभावेऽपि, तच्चास्तीति शेषः। न चैवं श्यामत्वादावेव व्यभिचारः तस्यापि मित्रातनयत्वसमानाधिकरणत्वात् शाकपाकजत्वव्यभिचारित्वाच्च इति वाच्यं। यस्मिन्नधिकरणे मित्रातनयत्वसामानाधिकरण्यं तत्र शाकपाकजत्वव्यभिचारित्वस्य विवक्षितत्वात् मित्रातनये शाकपाकजत्वव्यभिचारित्वादिति तु फलितार्थ इत्याहुः।

नन्वेवं साध्यव्यभिचारानुमापकत्वेनोपाधिव्यभिचारस्यैव दोषतया स एव उपन्यसितुमुचितो नोपाधिरिति प्रागुक्तदोषो दुर्वार

स उपाधिः तत्त्वञ्च साक्षात् परम्परया वेति नार्था-
न्तरम्। किञ्च अर्थान्तरस्य पुरुषदोषत्वादाभासान्त-

स्वरसादाह, 'यदेति, 'यः साधनव्यभिचारीति यः साधनव्यभिचारी स उपाधिः साध्यव्यभिचारोन्नायकः स स्वयमेव साधने साध्यव्यभिचारोन्नायकः इति योजना, स्वरूपसम्बन्धेन तद्व्यभिचारस्येव तस्यापि व्यभिचारितासम्बन्धेन साधनवृत्तित्वात् साध्यव्यभि[illegible]त्, तथाच वह्निर्धूमव्यभिचारी आर्द्रेन्धनवत्त्वादित्यादिरेव [illegible]-नुमानप्रयोगः। न च व्यभिचारितादिसम्बन्धस्य वृत्त्य[illegible] न व्याप्यतावच्छेदकत्वसम्भव इति वाच्यं। वृत्त्यनियामक[illegible] भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वानभ्युपगमात् व्यापकतावच्छेद[illegible] ऽपि(१) व्याप्यतावच्छेदकत्वे बाधकाभावादिह हेतावु[illegible] प्रतीत्या व्यभिचारितासम्बन्धस्यापि वृत्तिनियमकत्वाच्चेति [illegible] करका पृथिवी कठिनसंयोगवत्त्वादित्यादौ साधनव्यापक[illegible] शीतस्पर्शवत्त्वाद्युपाधेर्विशेषदर्शिनां साधने साध्यव्यभिचारानुमा[illegible] सम्भवात् व्यभिचार्य्यन्तमुपाधिविशेषणं, साधनं व्यभिचारि [illegible] व्युत्पत्त्या साधनाव्यापकत्वं तदर्थः, 'तत्त्वञ्चेति विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधेस्तत्त्वञ्चेत्यर्थः,'साक्षात्' प्रागुक्तरीत्या विशेषणाव्यभिचारित्वादिविशेषणसहकारेण साक्षात्, 'परम्परया वा' पूर्व्वपक्षग्रन्थोक्तक्रमेण शुद्धसाध्यव्यभिचारानुमापकविशिष्टसाध्यव्यभिचारानुमितिद्वारा वा, 'नार्था-

(१) व्यापकत्वान्तर्गतप्रतियोगित्वघटकप्रतियोगित्वस्य व्यापकताघटक-[illegible]वच्छिन्नत्वेन विशेषितत्वादिति भावः।

रस्य तथाभावादुपाधिरेव भावत्वादिकं दोषः। न चैवं शब्दोऽभिधेयः प्रमेयत्वादित्यत्राश्रावणत्वं जलं प्रमेयं रसवत्त्वादित्यत्र पृथिवीत्वमुपाधिः स्यात्[१], केवलान्वयि-

न्तरमिति ध्वंसो विनाशी जन्यत्वादित्यादौ विशिष्टसाध्यव्यापक-भावत्वाद्युद्भावने नार्थान्तरमित्यर्थः। न च तस्यापि 'परम्परया वेति पक्षे प्रथमं तदुद्भावनेऽप्राप्तकालत्वमस्त्येव अन्यथा उपाधिसाधक-तत्साधकादिपरम्परया अप्युद्भावनेऽप्राप्तकालत्वं न स्यादिति वाच्यं। प्रथमं शुद्धसाध्यव्यभिचार एव उद्भाव्यः, तत्र कथन्तायां तद्धेतुत्वेन विशेषणाव्यभिचारित्वे सति विशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वमुद्भाव्यं, तत्र विशेषकथन्तायां तद्धेतुत्वेन विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधिरुद्भाव्यः, इत्य-प्राप्तकालत्वविरहात्। न च तथापि साक्षात् शुद्धसाध्यव्यभिचा-रानुमापकत्वात् विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधेर्दोषत्वं न स्यादिति वाच्यं। साक्षात्परम्परासाधारणव्यभिचारानुमापकत्वस्यैव दोषतायां तन्त्रत्वा-दिति भावः।

केचित्तु प्रकारान्तरेण लक्ष्यतावच्छेदकं निर्व्वक्ति, 'यद्वेति, 'यः साधनव्यभिचारी' साधननिष्ठो यद्व्यभिचारः, 'साध्यव्यभिचारो-न्नायकः' साध्यव्यभिचारानुमितिस्वरूपयोग्यः, साध्यव्यभिचारसमा-नाधिकरण इति यावत्, स उपाधिरित्यर्थः, द्रव्यं पृथिवीत्वादि-त्यादिसद्धेतौ साध्यव्यापकस्य गुणवत्त्वादेः साध्यव्याप्यस्य घटत्वादेश्चोपा-

(१) पृथिवीत्वमुपाधिः स्यादिति वाच्यं इति ख०।

त्वसाधकप्रमाणेन तत्र साध्यसिद्धेरुपाधेर्विशिष्टाव्याप-कत्वात् । न च पक्षेतरे स्वव्याघातकत्वेनानुपाधावति-

---

धितावारणाय निष्ठान्तं व्यभिचारविशेषणं, तथाच साधनतावच्छेद-कावच्छिन्नसाधनाधिकरणत्ववृत्तित्वविशिष्टयद्धर्म्मावच्छिन्नव्यभिचारि-त्वनिरूपिताधिकरणत्वं साध्यव्यभिचारसमानाधिकरणं तद्धर्मवत्त्व-मुपाधिरिति फलितं। द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादौ विशिष्टस्यान-तिरिक्तत्वेऽपि गुणवत्त्वादौ नातिव्याप्तिः, न वा आश्रयभेदेऽपि एकधर्म्मावच्छिन्नव्यभिचारस्यैकत्वनये द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ घट-त्वादावतिव्याप्तिस्तदवस्था पृथिवीत्वाधिकरणत्वनिष्ठघटत्वव्यभिचारस्य सत्ताद्यधिकरणत्ववृत्तित्वेऽपि पृथिवीत्वाधिकरणत्ववृत्तित्वविशिष्टघ-टत्वव्यभिचारित्वनिरूपिताधिकरणत्वस्य पृथिवीत्वाधिकरणत्व एव सत्त्वात्तत्र साध्यव्यभिचारित्वविरहात्। न च तद्वारणाय व्याप्यत्वमेव स्वरूपयोग्यत्वं विवक्ष्यतामिति वाच्यं। विशिष्टव्यापकोपाधावव्या-प्त्यापत्तेः तद्व्यभिचारस्य साधनाधिकरणत्वनिष्ठत्वेऽपि साध्यव्यभिचा-राव्याप्यत्वात् आश्रयभेदेन व्यभिचारभेदाभावात् पूर्व्ववन्निरुक्तसाध्य-समानाधिकरणवृत्तित्वेनापि तद्धर्मो विशेषणीयः तेन धूमवान् वह्नेरित्यादौ साध्यविरुद्धे जलत्वादौ नातिव्याप्तिः उक्तिवैचित्र्याच्च पूर्व्वस्मात् भेदः। रूपवान् द्रव्यत्वादिदं गुरु रूपादित्यादौ पृथि-वीत्वाभाव-घटत्वाभावादावतिव्याप्तिवारणन्तु पूर्व्ववत्। 'तत्त्वञ्चेति व्यभिचारानुमित्युपाधायकत्वञ्चेत्यर्थः, 'साक्षात्परम्परया वेति शुद्ध-साध्यव्यापकस्थले साक्षात्, विशिष्टसाध्यव्यापकस्थले च पूर्व्वपक्षोक्त-

व्याप्तिः तथानुकूलतर्काभावेन साध्यव्यापकत्वानिश्चयात् सहचारदर्शनादेस्तेन विना संशायकत्वादित्युक्तं । बाधोन्नीते चानुकूलतर्कोऽस्त्येवेति, एवं पर्व्वतावयवत्त्व्यन्यत्वादेरपि नोपाधित्वं पक्षमात्रव्यावर्त्तकविशेष-

---

क्रमेण शुद्धसाध्यव्यभिचारानुमापकविशिष्टसाध्यव्यभिचारानुमिति-द्वारा इत्यर्थः, 'नार्थान्तरमिति ध्वंसोविनाशी जन्यत्वादित्यादौ विशिष्टसाध्यव्यापकभावत्वाद्युद्भावने नार्थान्तरमित्यर्थः, एतच्च प्रसङ्गात् स्वरूपकथनं, न तु लक्षणतावच्छेदकघटकतयैव तदभिधानं तत्र स्वरूपयोग्यताया एव घटकत्वादित्याहुः ।

अभ्युपगमवादेनाह, 'किञ्चेति, 'पुरुषदोषत्वादिति उद्भावकस्य पुरुषस्य निग्रहस्थानमात्रत्वादित्यर्थः, मात्रपदादुपाधिलिङ्गकव्यभिचारानुमितिप्रतिबन्धकत्वव्यवच्छेदः,'आभासान्तरस्य' व्यभिचारानुमिति-प्रतिबन्धकान्तरस्य, 'तत्र' व्यभिचारानुमितिपूर्वदशायां, 'उपाधिरेवेति तत्र ध्वंसो विनाशी जन्यत्वादित्यादौ भावत्वादिकमुपाधिर्दोष एवेति योजना, तेनापि परम्परया व्यभिचारानुमितिनिर्व्वाहेण परोक्षसाध्य-सिद्धिप्रतिबन्धस्य उद्देश्यस्य निर्व्वाहादिति भावः । 'न चैवमिति, 'एवं' अवच्छिन्नसाध्यव्यापकस्यापि दोषताप्रयोजकत्वे, 'अश्रावणत्वमिति, तत्र पक्षधर्म्मगुणत्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वाज्ञानसम्भवादिति भावः । 'पृथिवीत्वमिति, तत्र पक्षधर्म्मवत्त्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वज्ञानसम्भ-वादिति भावः । 'उपाधिः स्यात्' दोषः स्यात्, 'तत्र' प्रश्न-जलयोः 'विशिष्टाव्यापकत्वादिति पक्षधर्म्मगुणत्वाद्यवच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वानिश्च-

णवत्त्वात्। अतएव धूमे आर्द्रेन्धनप्रभववह्निमत्त्वं,

---

यादित्यर्थः। केवलान्वयित्वसाधकमानाभावे तु(१) तस्य तथाबुद्धिरपि दोषो भवत्येवेति भावः। 'स्वव्याघातकत्वेनेति उपाधिमात्रस्य दूषकत्वव्याघातकत्वेनेत्यर्थः, पक्षेतरस्योपाधित्वे सर्व्वत्रैव तादृशोपाधिसम्भवेनानुमानमात्रोच्छेदे व्यभिचारानुमानाधीनस्योपाधेर्दूषकत्वस्यासम्भवादिति भावः। 'अतिव्याप्तिः' उक्तरूपस्यानस्यदोषत्वापत्तिः, द्रव्यत्वाद्यवच्छिन्नसाध्यव्यापकत्व-तदवच्छिन्नसाधनाव्यापकत्वज्ञानस्य तत्रापि सम्भवादिति भावः। 'साध्यव्यापकत्वानिश्चयादिति यद्धर्म्मावच्छिन्नसाधनाव्यापकत्वं तद्धर्म्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वानिश्चयादित्यर्थः, यदा तु तन्निश्चयो भवति तदा बाधोन्नीतपक्षेतरे—तन्निश्चयएव तन्निष्ठतन्निश्चयोऽपि भवत्येव दोष इति भावः। 'संशायकत्वात्' व्यभिचारसन्देहाधायकत्वात्। 'अनुकूलतर्कोऽस्त्येवेति उपाध्यभाववति पक्षे साध्याभावनिश्चयस्यैव व्यभिचारसंशयप्रतिबन्धकत्वेनानुकूलतर्कत्वादिति भावः। 'नोपाधित्वं' नोपाधित्वनिश्चयः, 'पक्षमात्रेति, यद्यपि पर्व्वतावयवरूपादेरपि व्यावर्त्तनात्र पक्षमात्रव्यावर्त्तकविशेषणवत्त्वं उपाधित्वानिश्चये प्रयोजकं तथापि तुल्यार्थकवतिप्रत्ययोत्तरत्वप्रत्ययात्पक्षमात्रव्यावर्त्तकं विशेषणं यत्र पक्षेतरे तत्तुल्यत्वादित्यर्थः, तथाच तत्र यथानुकूलतर्काभावेन न तादृशसाध्यव्यापकतानिश्चयः तथात्रापीति भावः। 'अतएवेति व्यापकताग्राहकानुकूलतर्कसत्त्वादेवेत्यर्थः, 'उपाधिः' उपाधित्वेन

---

(१) केवलान्वयित्वसाधकमानाभाववारे त्विति ख॰ ग॰।

द्रव्यवहिरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वे उद्भूतरूपवत्त्वं, मित्रातनयश्यामत्वे शाकपाकजत्वं, जन्यानित्यत्वे भावत्वमुपाधिः, तदुत्कर्षेण साध्योत्कर्षात्, अनन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेकतो वैद्यकात् कारणतावगमेन घटोन्मज्जनप्रसङ्गेन साध्यव्यापकतानिश्चयात्, तत् किं कार्य्य-कारणयोरेव व्याप्तिः तथाच बहु व्याकुली स्यादिति[१] चेत् । न ।

---

निश्चितः, यथासंख्यमनुकूलतर्कमाह, 'तदुत्कर्षेणेति आर्द्रेन्धनप्रभववह्न्युत्कर्षेण धूमोत्कर्षादित्यर्थः, द्वितीये तर्कमाह, 'अनन्यथेति द्रव्यवहिरिन्द्रियप्रत्यक्षं प्रति उद्भूतरूपस्यानन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेकादित्यर्थः[२], तृतीये तर्कमाह, 'वैद्यकादिति, वैद्यकेन नरीयश्यामत्वं प्रति शाकपाकस्य जनकत्वकथनादिति भावः । 'कारणतावगमेनेति आर्द्रेन्धनप्रभववह्न्यादीनां धूमादिकं प्रति कारणतानिश्चयेनेत्यर्थः, चतुर्थे तर्कमाह, 'घटोन्मज्जनेति ध्वंसस्यापि ध्वंसप्रतियोगित्वे ध्वंसप्रतियोगिनो घटस्य पुनः परावृत्तिप्रसङ्गेनेत्यर्थः, ध्वंस-प्रागभावानधिकरणकालस्य प्रतियोग्यधिकरणत्वनियमादिति भावः । इदमापाततः प्रतियोगिनो ध्वंसेऽपि यथा प्रागभावध्वंसस्तथा ध्वंसस्य ध्वंसोऽपि प्रतियोगिनो ध्वंस इत्युक्तावेव घटोन्मज्जनप्रसङ्गवारणसम्भवात् । वस्तुतस्तु अप्रामाणिकानन्तध्वंसप्रतियोगिनिष्ठतत्कारणत्वकल्पनामपेक्ष्य ध्वंसानन्तत्वकल्पनैव लघीयसीति लाघवमेवानुकू-

---

(१) बहुधा व्याकुली स्यादिति क०, ख० ।

(२) वायोः स्पार्शनप्रत्यक्षमपि न भवतीतिमतेनेदं ।

तदुपजीव्यान्यथामप्यनुकूलतर्कैर्व्याप्तिग्रहात्, यत्र च साध्योपाध्योर्हेतु-साध्ययोर्वा व्याप्तिग्राहकसाम्यात्रैकत्र व्याप्तिनिश्चयस्तत्र सन्दिग्धोपाधित्वं व्यभिचारसंशयोपधायकत्वात्। यदा च तादृश्येकत्रानुकूलतर्कावतारस्तदा हेतुत्वमुपाधित्वं वा निश्चितं पक्षेतरस्य स्वव्याघातकत्वेन न हेतुव्यभिचारसंशायकत्वमतो न सन्दिग्धोपाधिरपि सः।

---

त्तर्क इति तत्त्वं। 'कार्य्य-कारणयोः' कार्य्य-कारणभावग्राहक-प्रमाणविषयीभूतयोः, यथाश्रुते प्रकारणीभूतस्यापि शाकपाकज-त्वादेर्व्याप्यत्वकथनादाशङ्कानुत्थितेः। "वह्नि व्याकुलीति जलत्वादिना द्रव्यत्वाद्यनुमानं न स्यादित्यर्थः। "तदुपजीव्येति 'तत्' कार्य्य-कारण-भावज्ञानं, तदुपजीव्येत्यर्थः, द्रव्यत्व-जलत्वादिस्थलेऽपि जलत्वं यदि द्रव्यत्वव्यभिचारि स्यात् तदा संयोगव्यभिचारि स्यात् संयोगत्वाव-च्छिन्नं प्रति द्रव्यत्वेन समवायिकारणत्वादिति परम्परया संयोग-त्वावच्छिन्न-द्रव्यत्वावच्छिन्नकार्य्य-कारणभावग्रहोपजीवी तर्क एव व्याप्तिग्राहक इति भावः। नन्वेवं हेतु-साध्ययोः साध्योपाध्योश्च सहचारदर्शन-व्यभिचारानिश्चयमात्रं व्याप्तिग्राहकं वर्त्तते नानुकूल-तर्कः तत्रोपाधौ साध्यव्यापकत्वानिश्चयादुपाधित्वज्ञानं दोषो न स्यादित्यत आह, 'यत्र चेति, 'तत्र सन्दिग्धोपाधित्वमिति तत्रो-पाधिसन्देहो दोष इत्यर्थः। 'तदा हेतुत्वमिति तदा 'हेतुत्वं' हेतौ

यत्तु पक्षेतरस्य यथा साध्यव्यापकत्वं तथा साध्याभावव्यापकत्वमपि ग्राहकसाम्यात्, तथाचोभयव्यापकनिवृत्त्या साध्य-तदभावाभ्यां पक्षे निवर्त्तितव्यम् नचैवं,

---

साध्यव्याप्यत्वं, 'उपाधित्वं' उपाधौ साध्यव्यापकत्वमित्यर्थः, यदा हेतौ तर्कावतारस्तदा हेतौ साध्यव्याप्यत्वनिश्चयः, यदा साध्ये तर्कावतारस्तदा उपाधौ साध्यव्यापकत्वनिश्चय इति भावः । नन्वेवं पक्षेतरस्य उपाधित्वनिश्चयाभावेऽप्युपाधित्वसन्देहोऽस्त्वित्यत आह, 'पक्षेतरस्येति, 'स्वव्याघातकत्वेन' उपाधिमात्रस्य दूषकत्वव्याघातप्रसङ्गेन, 'सन्दिग्धोपाधिरपि सः, तस्योपाधित्वसन्देहोऽपि न दोषः । इदमापाततः उपाध्यन्तरस्य उपाधित्वसन्देहवत्पक्षेतरस्योपाधित्वसन्देहेनापि व्यभिचारसंशयजनने बाधकाभावात्, न हि प्रयोजनक्षतिभिया सामग्री कार्य्यं नार्जयति, न वा प्रयोजनक्षतिः यदा यथाकथञ्चिदनुकूलतर्केण पक्षेतरे साध्यव्यापकत्वं निश्चित्य तदनुकूलतर्कात् पक्षेतरत्वव्यभिचारित्वे साध्यव्यभिचारित्वव्याप्यत्वनिश्चयो जातस्तदैव व्यभिचारानुमाने पक्षेतरान्तरस्य उपाधित्वसंशयासम्भवेन व्यभिचारानुमानसम्भवात् । न च पक्षेतरस्योपाधित्वसन्देहाहितव्यभिचारशङ्का पक्षीयव्यभिचारसंशयवत्न प्रतिबन्धिकेति वाच्यं । न हि व्यभिचारज्ञानत्वेन प्रतिबन्धकतामते पक्षेतरत्वनिष्ठोपाधित्वज्ञानाजन्यत्वं पक्षीयव्यभिचारसंशयान्यत्वं वा प्रतिबन्धकतावच्छेदकेऽनुप्रवेश्यं, गौरवान्मानाभावाच्च । वस्तुतस्तु विशेषादर्शनदशायां उपाध्यन्तरस्योपाधित्वसन्देहवत् यदा पक्षेतर-

तथाच पक्षेतरः साध्यव्यापकतासंशयेन सन्दिग्धः कथं परं दूषयेदिति[१], तन्न, तथाहि साध्यव्यापकतापक्ष-मालम्ब्य हेतुव्यभिचारसंशयाधायकत्वेन दूषणं स्या-देव। ननु यत्रोपाधिस्तत्रानुकूलतर्कोयदि नास्ति तदा तदभावेनैव व्याप्तेरग्रहः, अथास्ति तदा साध्यव्याप्या-

स्योपाधित्वसन्देहस्तदापि व्याप्तिग्रहो न भवत्येव परन्तु कथक-सम्प्रदायानुरोधात् कथायां सन्दिग्धोपाधित्वेन पक्षेतरो नोद्भाव्यते इत्येव तत्त्वं।

'यत्त्विति, 'यथाशब्दो यदेत्यर्थकः' 'साध्यव्यापकत्वं' साध्यव्याप-कत्वनिश्चयः, 'तथा' तदा, 'साध्याभावव्यापकत्वमपीति, निश्चिनुया-दिति शेषः, 'ग्राहकसाम्यादिति पक्षातिरिक्ते सहचारज्ञानव्यभिचा-रज्ञानरूपयोर्ग्राहकयोः साम्यादित्यर्थः, 'उभयव्यापकनिवृत्त्येति उभ-यव्यापकत्वेन निश्चितस्य तस्य निवृत्त्या हेतुनेत्यर्थः, 'पक्षे निवर्त्तितव्यं' पक्षविशेष्यकानुमितिस्वरूपयोग्यनिवृत्ति-प्रतियोगिभ्यां भूयेत, तद्धे-तुकानुमितिस्वरूपयोग्यत्वञ्च तद्व्यापकतानिश्चयत्वं, तथाच साध्य-तदभावयोरुभयत्रैव पक्षेतरत्वाभावव्यापकतानिश्चयः स्यादिति फलितं, 'न चैवमिति च्छेदः, न च साध्य-तदभावयोर्विरुद्धयोरेकधर्म्मव्याप-कतानिश्चयइत्यर्थः, सत्प्रतिपक्षस्थले च हेतुभेदेनैव तदभ्युपगमात् अतएवासाधारणस्य व्यापकताग्रहप्रतिबन्ध एव दूषकतावीजमिति भावः। 'साध्यव्यापकतासंशयेनेति साध्यव्यापकतासंशयस्यैव विषय-

(१) तथापि चेति क॰ । तथापीति ग॰ ।

व्यापकत्वेनोपाधिः साध्याव्यापकत्वनिश्चयान्नोपाधि-रित्युभयथापि नोपाधिर्दूषणं। न च व्याप्त्यभावव्याप्य-मुभयमत उपाधिरपि तदभावोन्नयनेन दोष इति

---

त्वेनेत्यर्थः, 'सन्दिग्धः' साध्यव्यभिचारव्याप्यत्वेन सन्दिग्धः, 'परं' हेतुनिष्ठव्याप्तिग्रहं, 'दूषयेत्' विघटयेत्। 'साध्यव्यापकतापक्षमालम्ब्य' साध्यव्यापकताकोटिमालम्ब्य साध्यव्यापकताकोटिसन्देहविषयीभूयेति यावत्, 'दूषणं स्यादेवेति, यदि मदुक्तगतिर्नानुसरणीयेति भावः।

'यत्रोपाधिः' यत्रोपाधिलक्षणं दोषः, 'साध्यव्याप्येति साध्यव्याप्याव्यापकलक्षणेनेत्यर्थः, अनुकूलतर्केण हेतौ साध्यव्याप्यत्वनिश्चयादिति भावः। 'नोपाधिः' नोपाधिलक्षणं, 'नोपाधिर्दूषणं' नोपाधिलक्षणं दूषणं। प्रकृते, 'व्याप्त्यभावेति, 'उभयमिति उपाधिरनुकूलतर्काभावश्चेत्यर्थः, 'तदभावोन्नयनेन' व्याप्त्यभावोन्नयनेन, 'आत्मलाभार्थमिति साध्यव्यापकताज्ञानलाभार्थमित्यर्थः, हेतौ साध्यव्याप्तिग्राहकानुकूलतर्कसत्त्वे तत्र साध्यव्याप्यत्वनिश्चयात् तदव्यापकलक्षणेन साध्यव्यापकलक्षणं न स्यादिति भावः। 'सोपाधाविति साध्य-तदभावसहचरिते सोपाधावित्यर्थः, 'एकत्रेति, अवच्छेदकभेदं विना इति शेषः, 'उपाधिरवश्यं वाच्य इति[१]

---

(१) 'उपाधिरावश्यकः' इत्यत्र 'उपाधिरवश्यं वाच्यः' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठमनुसृत्य 'उपाधिरवश्यं वाच्यः' इति पाठोऽतोमथुरानाथेनेति सम्भाव्यते।

वाच्यं। उपाधेरात्मलाभार्थमनुकूलतर्काभावोपजीवकत्वेन तस्यैव दोषत्वादिति चेत्। न। सोपाधावेकत्र साध्य-तदभावसम्बन्धस्य विरुद्धत्वादवच्छेदभेदेन तदु-

---

सामानाधिकरण्यसंसर्गेण उपाधिरवश्यं वाच्यः इत्यर्थः, एकव्यक्तिकव्यभिचारिहेतुकस्थले सामानाधिकरण्यसंसर्गेण उपाधेरवच्छेदकत्वं विनान्यस्यावच्छेदकताया दुर्व्वचत्वात् धूमवान् वह्नेरित्यादौ च नैकव्यक्तिः साध्य-तदभावसमानाधिकरणा। न च द्रव्यं सत्त्वादित्यादावपि गुणान्यत्वविशिष्टसत्त्वत्व-द्रव्यवृत्तित्वादिकमेवावच्छेदकं भविष्यतीति वाच्यं। सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन गुणान्यत्व-द्रव्यत्वाद्यपेक्षया तस्य गुरुत्वात्। न च घटत्वादिकं सामानाधिकरण्यसंसर्गेणावच्छेदकं भविष्यतीति वाच्यं। सामानाधिकरण्यसंसर्गेण तद्विशिष्टस्य साधनस्य साध्यन्यूनवृत्तित्वादिति भावः[१]। 'आवश्यक इति, तं विना साध्यव्यापकत्वज्ञानासम्भवात् इति भावः। 'विनिगमकाभावादिति, इदमापाततः साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वेन उपाधिस्वरूपस्यावश्यकत्वेऽपि तस्य उपाधित्वज्ञानं कथं दोषः स्यात् उपजीव्यत्वेनानुकूलतर्काभावस्यैव दोषत्वसम्भवात्। वस्तुतस्तु उपाधित्वज्ञानानुकूलतर्काभावयोरुपजीव्योजीवकभावो न कार्य्य-कारणभावः असम्भवात्, न वा व्याप्य-व्यापकभावः तस्य प्रतिबन्धकतायामविनिगमकत्वात् तद्धेतोरेवेत्यादिनियमस्य कारणतायामेव विनिग-

---

(१) अतिप्रसक्तस्यैव न्यूनवृत्तेरपि नावच्छेदकत्वमिति भावः।

भयसम्बन्धो वाच्यः, तथाच साधने साध्यसम्बन्धितावच्छेदकं रूपं उपाधिरावश्यकः(१) तथानुकूलतर्का-

मकत्वात्, अतएव परम्परया यथाकथञ्चिदुपयोगित्वमपि न तथा। न च उपजीव्योपजीवकभावविरहेऽपि अनुकूलतर्कस्यावश्यं व्याप्तिग्राहकत्वात् तदभावादेव व्याप्तेरग्रहोपपत्तौ किमुपाधित्वज्ञानस्य दोषत्वेनेति वाच्यं। अनुकूलतर्कस्य व्याप्तिग्रहं प्रत्यहेतुत्वेन यदानुकूलतर्कस्फुर्त्तिर्नास्ति प्रकारान्तरेण च व्यभिचारग्रहोऽपि नास्ति अथच उपाधित्वज्ञानं वर्त्तते तदापि व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धेन तद्दोषताया आवश्यकत्वादित्येव तत्त्वं।

'यद्व्यावृत्त्येति, वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः, 'साधनस्येत्यनन्तरं अधिकरण-इति पूरणीयं, तथाच यद्व्यावृत्तिविशिष्टस्य यद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावविशिष्टस्य यस्य साधनस्याधिकरणे 'साध्यं निवर्त्तते' साध्याभावो वर्त्तते तद्धर्मावच्छिन्नत्वं तत्र हेतावुपाधित्वमित्यर्थः, उद्भूतरूपवत्त्वाद्यभावविशिष्टस्य साधनस्याधिकरणे वाय्वादौ प्रत्यक्षत्वाद्यभावस्य सत्त्वान्न विशिष्टसाध्यव्यापकेऽव्याप्तिः, एवञ्च यद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावाधिकरणीभूतं साधनतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणं साध्याभावाधिकरणं तद्धर्मावच्छिन्नत्वमुपाधित्वमिति फलितं, तेन द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादौ विशिष्टस्यानतिरिक्तत्वे-

(१) साधने साध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपमनुकूलतर्काभावोपजीवनमन्तरेणोपाधिरावश्यक इति मुद्रितपुस्तकपाठः परन्त्वयं न समीचीनः।

भावोऽव्यापकश्च इति उभयोरपि विनिगमकाभावो-
दूषकत्वात् ।

---

ऽपि गुणवत्त्वादौ नातिव्याप्तिः, रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ पृथिवी-
त्व-घटत्वाद्यभावस्तु न लक्ष्यः, तथा महाकालान्यो घटादित्यादौ
खण्डकालभेदादिरपि न लक्ष्यः, वह्निमान् धूमादित्यादौ महा-
नसत्वाद्यभावाधिकरणस्य जलह्रदादेः साध्याभावाधिकरणत्वेऽपि तद-
धिकरणीभूतस्य(१) साधनाधिकरणस्य साध्याभावानधिकरणत्वाच्च
महानसत्वादावतिव्याप्तिः । न चैवं द्रव्यत्वाभाववान्प्रमेयत्वादित्यादौ
साधनव्यापकसंयोगाभावादावतिव्याप्तिः संयोगाभावाभावस्य संयोग-
स्याधिकरणे साधनवति द्रव्ये द्रव्यत्वाभावाभावस्य सत्त्वादिति वाच्यं ।
अधिकरणपदेन निरवच्छिन्नाधिकरणताश्रयस्य विवक्षितत्वात् ।
अत्रापि साध्यसमानाधिकरणवृत्तित्वेन तद्धर्मो विशेषणीयः तेन
धूमवान् वह्नेरित्यादौ ह्रदत्वाद्यभावाधिकरणेऽयोगोलकादौ धूमा-
द्यभावसत्त्वेऽपि ह्रदत्वादौ नातिव्याप्तिरिति सङ्क्षेपः ।

अन्यथैवं व्यभिचारोन्नायकत्वेन दूषकतापक्षे लक्ष्यतावच्छेदकमुक्त्वा
सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वेन दूषकत्वनये लक्ष्यतावच्छेदकमाह, 'स चेति
स चेत्यर्थः, 'धर्म इत्यनन्तरं 'उपाधिरित्यनुषज्यते, 'यस्याभावादिति

---

(१) 'तदधिकरणीभूतस्य' महानसत्वाद्यभावाधिकरणीभूतस्येत्यर्थः, 'तद-
भावाधिकरणीभूतस्य' इति क्वाचित्कः पाठः, तादृशपाठे तत्पदेन
महानसत्वादेः परामर्शः ।

'अन्ये तु यद्व्याप्त्या यस्य साधनस्य साध्यं निवर्त्तते स धर्मस्तत्र हेतावुपाधिः, स च धर्मो यस्याभावात्

---

पक्षे यस्याभावात्पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन वर्त्तमानात् यस्याभावात्, 'साध्य-साधनसम्बन्धाभाव इति योजना, प्रयोजकत्वं पञ्चम्यर्थः तच्च व्यापकत्वमेव, तथाच पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन वर्त्तमानस्य यदभावस्य व्यापकः साधनविशिष्टस्य साध्यस्याभाव इत्यर्थः, 'साधनपदं पक्षवृत्तिधर्मपरन्तेनाश्वो गौरश्वत्वादित्यादिविरुद्धस्थलीयसास्नावत्त्वाद्युपाधौ वायुः प्रत्यक्षः प्रमेयत्वादित्यादौ पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्य-व्यापके उद्भूतरूपादौ च नाव्याप्तिः तदभावस्यापि द्रव्यत्व-वह्नि-र्द्रव्यत्वादिरूपयत्किञ्चित्पक्षवृत्तिधर्मविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वात् पक्ष-तावच्छेदकावच्छेदेन वर्त्तमानत्वाच्च । एवमग्रेऽपि सर्व्वत्र साधनपदं पक्षधर्मपरं, एवञ्च यद्धर्मावच्छिन्नाभावः पक्षवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्या-भावव्याप्यः पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन वर्त्तमानश्च तद्धर्मावच्छिन्नत्वमु-पाधित्वमिति फलितं, वायुः प्रत्यक्षः प्रमेयत्वात् गौरमित्रातनयः श्यामः मित्रातनयत्वादित्यादौ शुद्धसाध्याव्यापके उद्भूतरूपवत्त्व-शाक-पाकजत्वादावव्याप्तिवारणायावच्छिन्नान्तं साध्यविशेषणं, पर्व्वतो वह्निमान् धूमात्पर्व्वतो धूमवान् वह्नेरित्यादौ महानसत्वादावति-व्याप्त्यापत्त्या यत्किञ्चिद्धर्मेति विहाय पक्षवृत्तिधर्मेत्यभिहितं, पक्षवृ-त्तिधर्मत्वञ्च पक्षतावच्छेदकव्यापकधर्मत्वं तेन न पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ निर्व्वह्निपर्व्वत-महानसाद्यन्यतरत्वादिविशिष्टवह्निव्या-पके महानसत्वादावतिव्याप्तिः । न च तथाप्ययोगोलकं धूमवत्

पक्षे साध्य-साधनसम्बन्धाभावः यथा आर्द्रेन्धनवत्त्वं, व्यावर्त्तते हि तद्व्यावृत्त्या धूमवत्त्वमयोगोलके। अतएव

---

वह्नेरित्यादौ महानसत्वादावतिव्याप्तिः तदभावस्यापि महानसायो-गोलकान्यतरत्वादिरूपपक्षधर्मावच्छिन्नसाध्याभावव्याप्यत्वादिति वाच्यं। तत्र तस्य लक्ष्यत्वात् महानसायोगोलकान्यतरत्वादिरूपपक्षवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति पक्षावृत्तितया वक्ष्यमाणलक्षणाक्रान्तत्वात् "सर्व्वे साध्यसमानाधिकरणाः सदुपाधयः। पक्षे सर्वाश्रये येषां स्व-साध्यव्यतिरेकिता"॥ इति सिद्धान्ताच्च 'पक्षे सर्वाश्रये' पक्षरूपसर्वाश्रये सर्वस्मिन् पक्षतावच्छेदकाश्रये इति यावत्, पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन वर्त्तमानत्वोपपादनात् पर्वतो वह्निमान् धूमात् द्रव्यं वह्निमद्धूमादित्यादौ वह्निसामग्र्यादेर्व्युदासः। ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्निसामग्र्यादिस्तु संग्राह्य एव सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वेन दूषकतामते साधनव्यापकस्यापि पक्षावृत्तेरुपाधित्वात्, अबाधितसाध्यकस्थलीय उपाधिस्तु न संग्राह्य इति पर्वतो धूमवान् वह्नेरित्यादौ आर्द्रेन्धनादौ नाव्याप्तिरिति भावः। न चैवं यद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावविशिष्टसाध्याभावः सकलपक्षवृत्तिस्तद्धर्मावच्छिन्नत्वमुपाधित्वमित्येव लक्ष्यतावच्छेदकमस्तु लाघवादिति वाच्यं। तस्यापि लक्ष्यतावच्छेदकान्तरत्वात् लक्ष्यतावच्छेदकान्तरसम्भवस्य लक्ष्यतावच्छेदकादोषत्वात् लक्ष्यतावच्छेदकगौरवस्याकिञ्चित्करत्वात्। एतदेव लक्ष्यतावच्छेदकद्वयं अयोगोलकं धूमवद्वह्नेरित्यत्र शुद्धसाध्यव्यापकार्द्रेन्धने क्रमेण सङ्गमयति, 'यथेति, 'व्यावर्त्तते हीति, धूमवत्त्वं

**तत्र साध्य-साधनसम्बन्धाभावः पक्षे एवं भावत्वव्यावृत्त्या ध्वंसे जन्यत्वानित्यत्वयोः सम्बन्धोनिवर्त्तमानः पक्षधर्म्मताबलादनित्यत्वाभावमादाय सिध्यति, तथा**

तद्व्यावृत्त्यायोगोलके इति योजना, 'तद्व्यावृत्त्येत्यत्रापि वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः, तथाच 'हि' यस्मात्, 'तद्व्यावृत्तिविशिष्टे 'अयोगोलके' साधनाधिकरणे, 'धूमवत्त्वं व्यावर्त्तते' धूमस्याभावो वर्त्तत इत्यर्थः, एतेन प्रथमलक्षणतावच्छेदकमुपपादितं। ननु तथापि व्याप्यत्वगर्भं द्वितीयलक्षणतावच्छेदकं तत्रार्द्रेन्धनेऽव्याप्तमेव तदभावाधिकरणे पक्षीभूतेऽयोगोलके शुद्धसाध्याभावसत्त्वेऽपि पक्षवृत्तिधर्म्मस्य विशेषणस्य सत्त्वेन तद्विशिष्टसाध्याभावासत्त्वादित्यत आह, 'अत एवेति साध्याभावसत्त्वादेवेत्यर्थः, 'तत्रेति, 'साध्य-साधनसम्बन्धाभावस्तत्र पक्ष इति योजना, 'साध्य-साधनसम्बन्धाभावः' साधनविशिष्टसाध्याभावः महानसायोगोलकान्यतरत्वादिरूपपक्षवृत्तिधर्म्मविशिष्टसाध्याभाव इति यावत्, 'तत्र पक्षे' अयोगोलकरूपपक्षे, तत्र शुद्धसाध्याभावसत्त्वे विशेषणसत्त्वेऽपि विशेष्याभावकृतस्य विशिष्टसाध्याभावस्यावश्यकत्वादिति भावः(१)। ननु तथापि ध्वंसो न नित्यो जन्यत्वादित्यत्र(२)

(१) अयोगोलकरूपपक्षे महानसायोगोलकान्यतरत्वरूपविशेषणस्य सत्त्वेऽपि विशेष्यीभूतस्य धूमस्याभावात् विशिष्टसाध्याभावः विशेषणाभावस्येव विशेष्याभावस्य विशिष्टाभावप्रयोजकत्वादिति भावः।

(२) न नित्य इत्यत्र नित्यत्वं ध्वंसाप्रतियोगित्वविशिष्टप्रागभावाप्रतियोगित्वं, जन्यत्वादित्यत्र जन्यत्वं प्रागभावप्रतियोगित्वमात्रं न तु नित्यत्वाभावः अतो न साध्याविशेषः।

वायावुद्भूतरूपवत्त्वं निवर्त्तमानं बहिर्द्रव्यत्वे सति प्रत्यक्षत्वं निवर्त्तयत् प्रत्यक्षत्वाभावमादाय सिद्ध्यति तथाचोभयथापि पक्षे साध्याभावसिद्ध्या साध्य-साधन-सम्बन्धाभावोऽस्तीति। अतएव बाधानुन्नीतपक्षेतर-

---

जन्यत्वरूपसाधनावच्छिन्नसाध्यव्यापके भावत्वे प्रथमलक्षणतावच्छेदकस्याव्याप्तिः तत्र साधनाधिकरणे ध्वंसे जन्यत्वरूपपक्षधर्मविशिष्टानित्यत्वाभावस्य ध्वंसो न जन्यत्वे सत्यनित्यः भावत्वाभावादित्यनुमानसिद्धत्वेऽप्यनित्यत्वसामान्याभावरूपस्य शुद्धसाध्याभावस्य साधनाधिकरणे सत्त्वे मानाभावादेवं वायुर्बहिरिन्द्रियप्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादित्यत्र द्रव्यत्वरूपपक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापके उद्भूतरूपवत्त्वे तस्याव्याप्तिः तत्रापि साधनाधिकरणे वाय्वादौ द्रव्यत्वरूपपक्षधर्मविशिष्टबहिरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वाभावस्य वायुर्न द्रव्यत्वे सति बहिरिन्द्रियप्रत्यक्ष उद्भूतरूपवत्त्वाभावादित्यनुमानसिद्धत्वेऽपि बहिरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षत्वाभावरूपस्य शुद्धसाध्याभावस्य साधनाधिकरणे सत्त्वे मानाभावादित्यत आह, 'एवमिति, 'ध्वंसे' पक्षीभूते ध्वंसे, 'जन्यत्वानित्यत्वयोः', 'सम्बन्धः' जन्यत्वरूपपक्षधर्मविशिष्टो नित्यत्वाभावः, 'निवर्त्तमानः' निवृत्तिप्रतियोगित्वेन सिद्धिविषयो भवन्, 'पक्षधर्मताबलादिति जन्यत्वरूपस्य विशेषणस्य पक्षवृत्तित्वनिश्चयसहकारादित्यर्थः, 'अनित्यत्वाभावं' अनित्यत्वाभावरूपं शुद्धसाध्याभावं, 'तथेति, 'निवर्त्तमानं' निवृत्तिप्रतियोगित्वेन ज्ञायमानं, 'द्रव्यत्वे सतीति द्रव्यत्वविशिष्टबहिरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वमित्यर्थः, 'निव-

स्यानुपाधित्वं स्वव्याघातकत्वेन तद्व्यतिरेकस्य साध्या-
व्यावर्त्तकत्वादिति।

यत्तूपाधिमात्रस्य लक्षणं व्यतिरेकिधर्म्मत्वं पक्षेतरो-
ऽपि क्वचिदुपाधिः, तत्तदुपाधेस्तु तत्तत्साध्यव्यापकत्वे

---

र्त्तयत्' निवृत्तिप्रतियोगित्वेनानुमापयत्, 'प्रत्यक्षाभावमादायेति वह्निरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षत्वाभावरूपं शुद्धसाध्याभावमादायेत्यर्थः, 'सिद्ध्यति' द्रव्यत्वविशिष्टवह्निरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षत्वनिवृत्तिः सिद्ध्यति, 'तथाचेति, 'साध्याभावसिद्धा' शुद्धसाध्याभावसिद्धा, 'साध्य-साधनसम्बन्धाभावोऽस्तीति साधनाधिकरणे शुद्धसाध्याभावोऽस्तीत्यर्थः, प्रकृते पक्षस्यैव साधनाधिकरणत्वादिति भावः। 'स्वव्याघातकत्वेन' 'स्वं' साध्याभावः, तद्व्याघातकत्वेन तदभावसाधकत्वेन साध्याभावाभावव्याप्यत्वेनेति यावत्, 'साध्याव्यावर्त्तकत्वादिति साधनाधिकरणे साध्याभावासमानाधिकरणत्वादित्यर्थः, पक्षवृत्तिधर्मविशिष्टसाध्याभावाव्याप्यत्वाच्चेत्यपि बोध्यं, अयोगोलकं धूमवद्वह्नेरित्यत्र पक्षेतरत्वस्योपाधित्वमस्त्येवेति भावः।

साम्प्रदायिकास्तु 'अचोच्यत इति कृत्वा व्यभिचारोन्नायकत्वेन दूषकतापक्षे लक्ष्यतावच्छेदकमुक्त्वा सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वेन उपाधेर्दूषकत्वं ये वर्णयन्ति(१) तन्मते लक्ष्यतावच्छेदकमाह, 'अन्ये त्विति, 'यद्व्यावृत्त्येति यस्य साधनस्य यद्व्यावृत्त्येति योजना, सर्व्वस्मिन् पक्ष इति शेषः, 'यस्य साधनस्येत्यत्र येन केनचित् सम्बन्धेन सम्बन्धित्वं

---

(१) वदन्तीति ख० ग०।

सति तत्तत्साधनाव्यापकत्वं। नच धूम-वह्निसम्बन्धो-पाधिः पक्षेतरत्वं स्यादिति वाच्यम्। आपाद्याप्रसिद्धे-

---

षष्ठ्यर्थः, अन्वयश्चास्य ‘यदित्यत्र, तृतीया च सहार्थे, तथाच येन केनापि सम्बन्धेन यत्साधनसम्बन्धिनो यस्य व्यावृत्त्या सह सर्व्वस्मिन् पक्षे साध्यं निवर्त्तते साध्याभावो वर्त्तते स तत्र हेतावुपाधिरित्यर्थः, उद्भूतरूपाद्यभावेन सहापि प्रत्यक्षत्वाद्यभावः सर्व्वस्मिन् पक्षे वर्त्तत-एवेति न विशिष्टसाध्यव्यापकेऽव्याप्तिः। येन केनापि सम्बन्धेन यथोक्तधर्मसम्बन्धित्वमेव सोपाधित्वव्यवहारप्रयोजकमिति बोधनाय ‘सम्बन्धिन इत्यन्तं ‘यस्येत्यस्य विशेषणं न तु तल्लक्षणघटकं, परन्तु यद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावविशिष्टस्य साध्याभावस्याधिकरणं सकलपक्षतावच्छेदकाधिकरणं तद्धर्मवत्त्वमुपाधित्वमित्येव लक्षणं, पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ महानसत्वाद्यभावविशिष्टस्य साध्या-भावस्याधिकरणं न पक्ष इति न तत्रातिव्याप्तिः, अयोगोलकं धूम-वद्वह्नेरित्यत्र महानसत्वादिकस्य लक्ष्यमेव, द्रव्यं वह्निमद्धूमादित्यादौ वह्निसामग्र्याद्यभावविशिष्टस्य साध्याभावस्य पक्षवृत्तित्वेऽपि न सकल-पक्षवृत्तित्वं अतो न तत्रातिव्याप्तिः, सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वेन दूषक-तापक्षे साधनव्यापकस्यापि पक्षवृत्तेरुपाधित्वात् साध्यव्यापक-साध-नाव्यापकस्यापि पक्षवृत्तेरनुपाधित्वाच्च जलह्रदो वह्निमान् धूमादि-त्यादौ वह्निसामग्र्यादावतिव्याप्तिः, पर्व्वतो धूमवान् वह्नेरित्याद्य-बाधितस्थले आर्द्रेन्धनादावव्याप्तिर्वा, साध्यसमानाधिकरणवृत्तित्वेन च तद्धर्मो विशेषणीयः तेनायोगोलकं धूमवद्वह्नेरित्यादौ साध्यविरुद्धे

रिति। तन्न। अनुमितिप्रतिबन्धकज्ञानविषयतावच्छे

---

अकत्वादौ नातिव्याप्तिरिति न कोपि दोषः। लक्ष्यतावच्छेदकमुक्का लक्षणमाह, 'स च धर्म इति, 'यस्याभावादिति पूर्ववद्व्याख्येयं। लक्ष्यतावच्छेदकं लक्षणञ्च अयोगोलकं धूमवदह्नेरित्यत्र आर्द्रेन्धने योजयति, 'यथेति, 'व्यावर्त्तते हीति, 'हि' यस्मात्, तद्व्यावृत्त्या सह पक्षीभूतेऽयोगोलके साधनाधिकरणे धूमवत्त्वं व्यावर्त्तते धूमाभावो वर्त्तते इति योजना, तेन लक्ष्यतावच्छेदकं योजितं। ननु तथापि व्याप्यत्वगर्भतया लक्षणं तत्राव्याप्तमेव तदभावाधिकरणे पक्षीभूतेऽयोगोलके पक्षवृत्तिधर्मस्य विशेषणस्य सत्त्वेन तद्विशिष्टसाध्याभावासत्त्वादित्यत आह, 'अतएवेति, अर्थस्तु पूर्ववत्। ननु तथापि ध्वंसो न नित्यो जन्यत्वादित्यत्र साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापके भावत्वे वायुर्बहिरिन्द्रियप्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादित्यत्र द्रव्यत्वस्वरूपपक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापके उद्भूतरूपवत्त्वे च लक्ष्यतावच्छेदकस्याव्याप्तिः तदुभयत्र पक्षे शुद्धसाध्याभावसत्त्वे मानाभावादित्यत आह, 'एवमिति, अर्थस्तु पूर्ववत्। 'तथाचेति, 'साध्याभावसिद्धेति सहार्थे तृतीया, 'साध्यसाधनेति साधनविशिष्टसाध्याभावग्रहो भवतीत्यर्थः, अतो लक्ष्यतावच्छेदकस्य न तत्राव्याप्तिरिति शेषः। 'साध्याव्यावर्त्तकत्वादिति पक्षे साध्याभावासमानाधिकरणत्वादित्यर्थः, 'स्वव्याघातकत्वञ्च पूर्वनिरुक्तमेवेत्याहुः।

अन्ये तु 'यद्व्यावृत्त्येत्यत्र पूरणं विनैव सर्वं ग्रन्थं सम्यक् योजयन्ति, तथाहि यस्य हेतोर्यद्व्यावृत्त्या हेतुना 'साधनस्य साध्यं निवर्त्तते'

साधनसम्बन्धिसाध्याभावः साधयितुं शक्यते साधनविशिष्टसाध्याभावः साधयितुं शक्यते इति यावत्, 'यस्य हेतोरित्यत्र येन केनचित् सम्बन्धेन सम्बन्धित्वं षष्ठ्यर्थः, अन्वयश्चास्य 'यदित्यत्र तथाच येन केनापि सम्बन्धेन यद्धेतुसम्बन्धिनो यस्य धर्मस्य व्यावृत्त्या हेतुना साधनविशिष्टसाध्याभावः साधयितुं शक्यते स धर्मस्तत्र हेतावुपाधिरित्यर्थः, 'सम्बन्धिन इत्यस्य प्रयोजनं पूर्ववत् न तु तल्लक्षणघटकं, परन्तु यद्धर्मव्यावृत्तिः साधनविशिष्टसाध्याभावसिद्धिस्वरूपयोग्या स धर्म उपाधिरिति लक्षणं, वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वात् गौरं मित्रातनयः श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादौ शुद्धसाध्याव्यापके उद्भूतरूपवत्त्व-शाकपाकजत्वादावव्याप्तिवारणाय(१) साधनविशिष्टत्वं साध्यविशेषणं, साधनपदञ्च पक्षवृत्तिधर्मपरं, तेन विरुद्धस्थलीयोपाधौ वायुः प्रत्यक्षः प्रमेयत्वादित्यादौ उद्भूतरूपवत्त्वादौ च नाव्याप्तिः। नन्वेवं पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादावपि वह्निसामग्र्यादेरुपाधित्वापत्तिः तदभावस्यापि ह्रदादौ तादृशसाध्याभावसिद्धिस्वरूपयोग्यत्वादित्यतः स्वरूपयोग्यत्वमेव कुतो निर्व्वक्ति, 'स चेति, 'यस्याभावादिति पूर्ववद्व्याख्येयं, तथाच साधनविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वे सति पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन वर्त्तमानत्वमेव स्वरूपयोग्यत्वमिति भावः। साधनपदं पक्षवृत्तिधर्मपरं, लक्षणनिष्कर्षस्तु(२) पूर्व्ववत्। अयोगोलकं

(१) प्रत्यक्षत्वस्य गुणादौ श्यामत्वस्य काक-कोकिलादौ वर्त्तमानत्वेन तत्र उद्भूतरूपवत्त्वस्य शाकपाकजत्वस्य चावर्त्तमानत्वात् शुद्धसाध्याव्यापकत्वमिति भावः।

(२) सर्व्वत्र लक्षणनिष्कर्षस्त्विति ख०। एवं सर्व्वत्र लक्षणनिष्कर्षस्त्विति

धूमवद्वह्नेरित्यत्राऽऽर्द्रेन्धनेलक्षणं योजयति, 'यथेति । नन्वार्द्रेन्धनाभावस्य कथं साधनविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वमित्यत आह, 'व्यावर्त्तते हीति, 'हि' यस्मात्, 'व्यावर्त्तते' व्यावृत्तिप्रतियोगित्वेनानुमीयते, 'अयोगोलके' पक्षीभूते अयोगोलके। नन्वेतावता तदभावस्य शुद्धधूमाभावव्याप्यत्वेऽपि पक्षवृत्तिधर्मविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वं न सम्भवति तदभाववति पक्षे शुद्धसाध्याभावसत्त्वेऽपि विशेषणासत्त्वेन तादृशविशिष्टसाध्याभावासत्त्वादित्यत आह, 'अतएवेति, अर्थस्तु पूर्ववत्। ननु ध्वंसो न नित्यो जन्यत्वात् वायुर्वह्निरिन्द्रियप्रत्यक्षः प्रमेयत्वादित्यादौ भावत्वोद्भूतरूपवत्त्वाद्युपाधेरभावस्य जन्यत्व-द्रव्यत्वादिरूपपक्षधर्मविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वज्ञानात्तदभावेन हेतुना तादृशविशिष्टसाध्याभावानुमितिर्भवतु शुद्धसाध्याभावानुमितिश्च कथं स्यात् । न च तदनुमितिविरहेऽपि न क्षतिरिति वाच्यं। निरुक्तोपाधित्वज्ञानस्य पक्षे शुद्धसाध्याभावानुमितिद्वारैव दूषकत्वस्याभ्युपेयत्वात् विशिष्टसाध्याभावानुमितेः शुद्धसाध्यानुमितावप्रतिबन्धकत्वादित्यत आह, 'एवमिति, 'एवं' निरुक्तस्योपाधित्वरूपत्वे इत्यर्थः, तज्ज्ञानादिति शेषः। यद्वा 'एवमित्यस्य यथायोगोलकं धूमवद्वह्नेरित्यत्राऽऽर्द्रेन्धनाभावस्य द्रव्यत्वादिरूपपक्षधर्मविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वज्ञानानन्तरं तदभावेन हेतुना पक्षे तादृशविशिष्टसाध्याभावः सिध्यति न द्रव्यत्वादेः पक्षवृत्तित्वनिश्चयबलात् शुद्धसाध्याभावः सिध्यति तथेत्यर्थः, अन्यथा तत्राप्येतदाशङ्कासम्भवादिति भावः। 'भावत्वव्यावृत्त्येत्यस्य जन्यत्वविशिष्टनित्यत्वाभावाभावव्याप्यत्वज्ञानानन्तरमित्यादि, अग्रेऽपि 'तथेत्यस्य द्रव्यत्वविशिष्टवह्निरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वाभावव्याप्यत्वज्ञानानन्तरमिति शेषः, 'तथा-

दकमुपाधित्वमिह निरूप्यं तच्च न व्यतिरेकित्वमतिप्रसङ्गात् विशेषलक्षणे वह्नि-धूमसम्बन्धे पक्षेतरस्योपाधित्वप्रसङ्गाच्च।

---

चेत्यादिग्रन्थस्तु साम्प्रदायिकवद्योजनीयः। 'साध्यव्यावर्त्तकत्वादित्यस्य तु निरुक्तसाध्याभावसिद्धिस्वरूपयोग्यत्वाभावादित्यर्थः, इति कृतं पल्लवितेन।

'व्यतिरेकधर्मत्वमिति, केवलान्वयिनः प्रमेयत्वादेः स्वरूपसम्बन्धेन कुत्रापि नोपाधित्वमिति व्यतिरेकित्वोपादानं, तथाच तत्सम्बन्धेन स्वप्रतियोग्यनधिकरणे वर्त्तमानस्याभावस्य प्रतियोगितावच्छेदको यो धर्मस्तद्वत्त्वं तेन रूपेण तत्सम्बन्धेनोपाधित्वमिति फलितं, तेन प्रमेयत्वादेः समवायसम्बन्धेनाभावप्रतियोगित्वेऽपि न स्वरूपसम्बन्धेनोपाधित्वं, न वा स्वरूपसम्बन्धेन संयोगाभावादेरुपाधित्वं तेन सम्बन्धेन तदनधिकरणाप्रसिद्धेः(१) सम्बन्धविशेषलाभायैव धर्मपदमिति भावः। 'तत्तदुपाधेरिति तत्तत्साध्यक-तत्तद्धेतुकोपाधेरित्यर्थः, लक्षणमित्यनुषज्यते, 'धूम-वह्निसम्बन्धोपाधिरिति धूमाव्यापकत्वे सति वह्निव्यापकत्वरूपधूम-वह्निसम्बन्धावच्छिन्नत्वेनाभिमतोपाधिपदवाच्यताश्रय इत्यर्थः, व्यतिरेकिधर्मत्वावच्छिन्नोपाधिपदवाच्यत्वाश्रयवारणायाभिमतान्तं वाच्यताविशेषणं। यद्यपि धूमाव्यापकत्वे सति

---

(१) स्वरूपसम्बन्धेन संयोगाभावाभावस्य संयोगस्य वृक्षादौ सत्त्वेऽपि
" संयोगरूपाभावप्रतियोगिनः संयोगाभावस्यानधिकरणत्वं न वृक्षादेरतो न संयोगाभावादेरुपाधित्वमिति भावः।

'केचित्तु साधनव्यापकोऽप्युपाधिः क्वचिद्यत्र पक्षावृत्तिर्हेतुः यथा करका पृथिवी कठिनसंयोगात् इत्यत्रानुष्णाशीतस्पर्शवत्त्वं। नच तत्र स्वरूपासिद्धिरेव दोषः, सर्व्वत्रोपाधेर्दूषणान्तरसङ्करादित्याहुः।

---

वह्निव्यापकत्वं यदि उपाधिपदवाच्यतावच्छेदकं स्यात् तदा तदवच्छिन्नोपाधिपदवाच्यताश्रयः पक्षेतरः स्यादित्यापादने वैयधिकरण्यं, तथापि उपाधिपदवाच्यतावच्छेदकत्वं यदि धूमाव्यापकत्वे सति वह्निव्यापकतासामान्यनिष्ठं स्यात्तदा पक्षेतरनिष्ठधूमाव्यापकत्वविशिष्टवह्निव्यापकतानिष्ठमपि स्यादित्यापादने तात्पर्य्यं। 'आपाद्येति धूमाव्यापकत्वविशिष्टवह्निव्यापकत्वाप्रसिद्ध्या तद्घटितापाद्याप्रसिद्धेरित्यर्थः, तद्घटितापादकाप्रसिद्धेश्चेत्यपि बोध्यं। ननु सामान्यलक्षणमितरभेदकं तत्तत्साध्यक-तत्तद्धेतुकोपाधिलक्षणन्तु दूषणौपयिकं तच्च यत्किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नतत्तत्साध्यव्यापकत्वे सति तत्तत्साधनाव्यापकत्वं तेन विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधौ नाव्याप्तिरित्यत आह, 'विशेषलक्षण इति यत्किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नतत्तत्साध्यव्यापकत्वे सति तत्तत्साधनाव्यापकत्वरूपे तत्तत्साध्यक-तत्तद्धेतुकोपाधिलक्षण इत्यर्थः, दूषणौपयिक इति शेषः। 'वह्नि-धूमसम्बन्धे' वह्नि-धूमसम्बन्धज्ञाने वह्नि-धूमव्याप्तिज्ञान इति यावत्, 'पक्षेतरस्येति पक्षेतरनिष्ठतद्रूपज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वप्रसङ्ग इत्यर्थः, न चेष्टापत्तिः, पक्षेतरत्वादिनिष्ठसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वज्ञानस्य प्रतिबन्धकतायाः सर्व्व-

साध्यञ्च नोपाधिः व्यभिचारसाधने साध्याविशिष्टत्वात् अनुमितिमात्रोच्छेदप्रसङ्गाच्च ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिसामान्यलक्षणं ।

---

सिद्धत्वेऽपि तन्निष्ठयत्किञ्चिद्धर्म्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकताज्ञानस्य प्रतिबन्धकतायाः केनाप्यनभ्युपगमादिति भावः ।

ननु स्वव्यतिरेकेण पक्षे साध्याभावोन्नायकत्वस्य लक्ष्यतानियामकत्वमते ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादौ साधनव्यापकस्यापि वह्निसामग्र्यादेरुपाधित्वापत्तिरित्याशङ्कायामिष्टापत्तिमाह, 'केचित्त्विति स्वव्यतिरेके पक्षे साध्यव्यतिरेकोन्नायकत्वस्य लक्ष्यतानियामकत्ववादिनस्त्वित्यर्थः, 'यत्रेति, साधनस्य पक्षवृत्तित्वे तद्व्यापकधर्म्मस्यापि पक्षवृत्तित्वावश्यकतया तस्योपाधित्वासम्भवात् यथोक्तस्य लक्ष्यतानियामकत्वमते पक्षवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति पक्षावृत्तित्वस्य उपाधिलक्षणत्वादिति भावः। अत्र दृष्टान्तमाह, 'यथेति, 'तत्रेति पक्षावृत्तिहेतावित्यर्थः ।

ननु उपाधेर्यथोक्तलक्षणस्य साध्येऽपि सत्त्वात् परार्थस्थले साध्यस्यापि साध्यतावच्छेदकरूपेण उपाधितयोद्भावनापत्तिरित्यत आह, 'साध्यञ्चेति, 'नोपाधिः' साध्यतावच्छेदकरूपेण उपाधितया नोद्भाव्यः, 'व्यभिचारसाधने' तद्व्यभिचारादिरूपसाधने, आदिपदात् तदभावपरिग्रहः, 'साध्याविशिष्टत्वादिति साध्यव्यभिचारादिरूपस्य साध्यस्या-

विशेषादित्यर्थः, तथाच साधनादिरूपे पक्षे तद्व्यभिचारादेरनिश्चये निश्चये चोभयथैव तद्व्यभिचारादिना हेतुना साध्यव्यभिचारानुमित्यसम्भवात् न तस्योपाधित्वेन उद्भावनमिति भावः। ननु तथापि सन्दिग्धोपाधित्वेन तस्योद्भावनापत्तिरित्यत आह, 'अनुमितिमात्रेति परार्थानुमितिमात्रेत्यर्थः, एतच्चापाततः यत्र न तदुद्भावनं तत्रैव परार्थानुमितिसम्भवात्, परन्तु कथकसम्प्रदायनिषिद्धत्वान्न तदुद्भावनमित्येव तत्त्वं।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिसामान्यलक्षणरहस्यं।

## अथोपाधिविभागः।

स चायं द्विविधः निश्चितः सन्दिग्धश्च, साध्यव्यापकत्वेन साधनाव्यापकत्वेन च निश्चितोव्यभिचारनिश्चयाधायकत्वेन निश्चितोपाधिः यथा वह्निमत्त्वेन धूमवत्त्वे साध्ये आर्द्रेन्धनप्रभववह्निमत्त्वं, यत्र साधनाव्यापकत्वसन्देहः साध्यव्यापकत्वसंशयो वा तदुभयसन्देहो वा तत्र हेतुव्यभिचारसंशायकत्वेन संदिग्धो-

## उपाधिविभागरहस्यं।

उपाधिलक्षणं लक्षयित्वा विशेषलक्षणार्थं विभजते, 'स चेति, 'हेतुव्यभिचारसंशायकत्वेनेति[1] साधनाव्यापकत्वसन्देहे साधने साध्यव्यापकव्यभिचारस्य साध्यव्यभिचारव्याप्यस्य सन्देहात् साध्यव्यभिचारसन्देहः, साध्यव्यापकत्वसन्देहे तु साधनाव्यापकव्याप्यत्वस्य साधनाव्यापकत्वव्याप्यस्य सन्देहात् साध्ये साधनाव्यापकत्वसन्देहः व्याप्यसंशयस्य व्यापकसंशयहेतुत्वादिति भावः। 'सन्दिग्धोपाधिः' सन्दिग्धोपाधित्वं, तेन 'तत्रेत्यत्र सप्तम्यर्थस्य नानन्वयः। प्रथमस्योदाहरणमाह, 'यथेति, 'शाकाद्याहारपरिणतिजत्वमिति शाकादिसंयोगघटितशाकपाकज-

(१) हेतुव्यभिचारसंशयाधायकत्वेनेतीति क०।

पाधिः यथा मित्रातनयत्वेन श्यामत्वे साध्ये शाका-द्याहारपरिणतिजत्वं। न च तेनैव हेतुना शाकपाकज-त्वमपि साध्यं, तत्र श्यामत्वस्योपाधित्वादुभयस्यापि साधने अर्थान्तरं श्यामत्वमात्रे हि विवादो न तूभ-यत्र। न चैवं धूमाद्वह्न्यनुमानेऽपि वह्निसामग्र्युपाधिः स्यात्, तत्र वह्निनेव तत्सामग्र्यापि समं धूमस्यानौ-

---

श्यामसामग्रीमत्त्वमित्यर्थः, तेन नाग्निमयन्यासङ्गतिः। परार्थस्थलाभि-प्रायेण शङ्कते, 'न चेति, 'तेनैव' मित्रातनयत्वेनैव, 'तदपि'(१) तादृश-सामग्रीमत्त्वमपि, 'साध्यमिति पक्षसत्त्वशङ्काधीनसाधनाव्यापकत्वसन्दे-हनिरासाय वादिना साधनीयमित्यर्थः, 'उपाधित्वात्' सन्दिग्धो-पाधित्वेन उद्भाव्यत्वादित्यर्थः। ननु मित्रातनयत्वेन हेतुना युगप-देवोभयं साधनीयं तत्र च श्यामत्वादेर्नोपाधित्वेनोद्भावनसम्भवः साध्य-स्योपाधित्वेनानुद्भाव्यत्वनियमादित्यत आह, 'उभयस्यापीति, 'श्याम-त्वमात्रे हीति, इदमुपलक्षणं युगपदुभयस्य साधनेऽप्येकांशेऽपरस्यो-पाधित्वेनोद्भावने बाधकाभावात् व्यभिचाराद्यनुमाने साध्याविशि-ष्टतया स्वस्मिन् साध्य एव स्वस्योपाधित्वेनानुद्भाव्यत्वनियमादिति ध्येयं। 'न चैवमिति, 'एवं' साध्यसामग्र्या अप्युपाधित्वग्रहविषयत्वे, 'वह्न्यनु-मानेऽपि' वह्न्यनुमित्युपधानस्थलेऽपि, 'उपाधिः स्यात्' उपाधिग्रह-

---

(१) 'शाकपाकजत्वमपि' इत्यत्र 'तदपि' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठः तमनुसृत्य तादृशपाठोऽयमिति टीकाकृतेति सम्भाव्यते।

पाधिकत्वनिश्चयात्, अत्र तु मित्रातनयत्वव्याप्यश्या-
मसामग्र्या स्यातव्यमित्यत्र कार्य्य-कारणभावादीनां
व्याप्तिग्राहकाणामभावात्। अत एव साध्यसामग्र्या
सह हेतोरपि यत्र व्याप्तिग्राहकमस्ति तत्र सामग्री
नोपाधिः, यत्र तु तन्नास्ति तत्र साप्युपाधिरित्यभि-
सन्धाय सामग्री च क्वचिन्नोपाधिर्न तु सर्व्वत्र इत्युक्तं,

---

विषयः स्यात्, इष्टापत्तौ चानुमित्यसम्भवादिति भावः। 'अनौपा-
धिकत्वनिश्चयादिति व्याप्यत्वनिश्चयादित्यर्थः, साध्यसामग्र्या अप्युपा-
धिग्रहविषयत्वे आचार्य्यसंवादमाह, 'अत एवेति साध्यसामग्र्या अप्यु-
पाधित्वग्रहविषयत्वादेवेत्यर्थः, 'नोपाधिः' नोपाधित्वग्रहविषयः,
'उपाधिः' उपाधित्वग्रहविषयः, 'क्वचिन्नोपाधिः' नोपाधित्वग्रह-
विषयः, 'न तु सर्व्वत्रेति, नोपाधित्वग्रहविषय इति शेषः। द्वितीयमु-
दाहरति, 'यथेति, 'तुल्येति साधनीभूतकार्य्यत्वनिष्ठसाध्यीभूतसकर्तृ-
कत्वव्याप्यताग्राहकसहचारग्रह-साधनीभूतकार्य्यताव्यापकशरीरजन्य-
त्वादिनिष्ठसाध्यीभूतसकर्तृकत्वव्यापकताग्राहकसहचारग्रहरूपयोर्योग-
क्षेमयोरनुकूलतर्कासमवहितत्वेन तुल्ययोः सतोरित्यर्थः, 'उपाधेरिति
कार्य्यत्वरूपसाधनाव्यापकीभूतशरीरजन्यत्वादेः साध्यव्यापकतासन्देह
इत्यर्थः, तथाच क्षितिः सकर्तृका कार्य्यत्वादित्यत्र यदा साधने
साध्यव्याप्यतानिश्चायकः साधनाव्यापकशरीरजन्यत्वादौ साध्यव्यापक-
तानिश्चायकश्च तर्को नावतीर्णः तदा शरीरजन्यत्वादिकं साध्य-

यथा तुल्ययोगक्षेमयोरुपाधेर्व्यापकतासन्देहे ईश्वरानुमाने शरीरजन्यत्वाणुत्वादिः, यथा च शाकपाकजत्वस्य साध्यव्यापकतासन्देहे मित्रातनयत्वे।

यत्तु उपाधिसन्देहो नोपाधिर्न वा हेत्वाभासान्तरमिति तदुद्भावने निरनुयोज्यानुयोग इति। तन्न।

---

व्यापकतासन्देहात् सन्दिग्धोपाधिरित्यर्थः। न च तस्य सद्धेतुतया कथं तत्रोपाधिरिति वाच्यं। सद्धेतोरपि दशाविशेषे सन्दिग्धोपाधिकत्वे बाधकाभावादिति भावः। तृतीयमुदाहरति, 'यथा चेति, 'शाकपाकजत्वस्येति साधनाव्यापकतया सन्दिग्धस्य शाकपाकजत्वस्येत्यर्थः, 'मित्रातनयत्वे' मित्रातनयत्वे हेतौ, शाकपाकजत्वमिति शेषः।

'न वा हेत्वाभासान्तरं' न वा हेत्वाभासः, 'निरनुयोज्येति, तथाच परार्थानुमान एव उपाधिसन्देहो दूषणं न तु स्वार्थानुमानेऽपीति भावः। 'सन्दिग्धानैकान्तिकवदिति अनैकान्तिकत्वसन्देहवदित्यर्थः, एतच्च दूषकत्वमात्रे दृष्टान्तः, तेन व्यभिचारसंशयाधायकत्वाभावेऽप्यस्य न क्षतिः। 'दूषकत्वात्' उपाधिसन्देहस्य दूषकत्वात्, 'उपाधेरिव' उपाधित्वनिश्चयस्येव, 'निश्चयाधायकतया' व्यभिचारनिश्चयाधायकतया[१]। न च तथापि उपाधित्वसन्देहः स्वरूपसन्नेव

---

(१) 'व्यभिचारनिश्चयाधायकतया' इत्यत्र 'निश्चयाधायकतया' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठो वर्त्तते तमनुसृत्यैव व्यभिचारनिश्चयाधायकतया इति व्याख्यातं मथुरानाथेनेत्यनुमीयते।

सन्दिग्धानैकान्तिकवद्व्यभिचारसंशयाधायकत्वेन दूषकत्वादुपाधेरिव व्यभिचारनिश्चयाधायकतया ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिविभागः ।

---

व्यभिचारसंशयद्वारा दूषको न तु तज्ज्ञानमिति तज्ज्ञानार्थं तदुद्भावनमफलं अर्थान्तरापादकश्चेति वाच्यं । तथासत्यनैकान्तिकत्वसन्देहोपाधित्वनिश्चययोरप्युद्भावनस्य तथात्वापत्तेः । यदि चानैकान्तिकत्वसन्देहादिना मम व्याप्तिग्रहो मा भूत् इतिज्ञापनाय तदुद्भावनं कथकसम्प्रदायसिद्धं, तदा उपाधित्वसन्देहान्मम व्याप्तिग्रहो मा भूदितिज्ञापनाय उपाधित्वसन्देहोद्भावनमपि कथकसम्प्रदायसिद्धमिति तुल्यत्वादिति भावः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिविभागरहस्यं ।

# अथोपाधेर्दूषकताबीजपूर्व्वपक्षः ।

इदानीमुपाधेर्दूषकताबीजं चिन्त्यते[(१)] ।
नाप्यस्य स्वव्यतिरेकद्वारा सत्प्रतिपक्षत्वेन दूषकत्वं,

---

## अथोपाधेर्दूषकताबीजपूर्वपक्षरहस्यं ।

प्रसङ्गादुपाधेर्दूषकताबीजं निरूपयितुं शिष्यावधानाय प्रतिजानीते, 'इदानीमिति उपाधिविभागानन्तरमित्यर्थः, 'दूषकताबीजं' दोषप्रयोजकतास्वरूपं, अनुमिति-तत्प्रयोजकान्यतरप्रतिबन्धकज्ञानं दोषः, 'चिन्त्यते' ज्ञाप्यते ।

केचित्तु 'दूषकताबीजं' दूषकव्यवहारविषयतावच्छेदकं, दूषकशब्दोपाधिशब्दयोः पर्य्यायतापत्त्या दूषकशब्दस्य पारिभाषिकतापत्त्या च यथोक्तलक्षणस्य तद्विषयतावच्छेदकत्वासम्भवादिति भावः इत्याहुः । तदसत् । 'सत्प्रतिपक्षे उपाध्युद्भावनं न स्यादित्याद्यग्रिमग्रन्थासङ्गतेः ।

'स्वव्यतिरेकेति लिङ्गतावच्छेदकविधया स्वव्यतिरेकलिङ्गकपक्षविशेष्यकसाध्याभावानुमितिप्रयोजकतयेत्यर्थः, तृतीयार्थोऽभेदः, तथाच तादृशानुमितिप्रयोजकत्वं नास्य दूषकमिति फलितं । 'सत्प्र-

---

(१) निरूप्यते इति क० ।

तदा हि सत्प्रतिपक्षे सत्प्रतिपक्षान्तरवदुपाधेरुद्भावनं न स्यात्। न च प्रतिपक्षबाहुल्येनाधिकबलार्थमुद्भावनं,

---

तिपक्षे' स्वयं साध्यसाधकहेतोरुपन्यासानन्तरं वादिना साध्याभाव-साधकहेतावुपन्यस्ते, 'सत्प्रतिपक्षान्तरवदिति साध्यसाधकहेत्वन्तरस्य यथा नोद्भावनं तथा उपाधेरप्युद्भावनं न स्यादित्यर्थः, साध्याभावसा-धकहेतुमत्ताज्ञानात्मकप्रतिबन्धकसद्भावादुपाधेस्तत्र यथोक्तदूषकत्वा-सम्भवेन व्यर्थत्वादिति भावः। 'सत्प्रतिपक्षबाहुल्येनेति साध्यसा-धकानेकहेतुज्ञानसत्त्वेनेत्यर्थः, साध्याभावसाधकहेतुमत्ताज्ञानसत्त्वेऽपि साध्यानुमितेरुत्पादादिति शेषः, 'अधिकबलार्थमिति साध्याभावसा-धकानुमितिप्रतिबन्धकसाध्यानुमित्यर्थमेवेत्यर्थः। न चैवं सत्प्रति-पक्षान्तरस्याप्युद्भावनापत्तिः, इष्टत्वादिति भावः। 'शतमपीति, 'न्यायात्' तान्त्रिकप्रवादात्, तथाच साध्याभावसाधकहेतुज्ञानसत्त्वे साध्यसाधकानेकहेतुज्ञानात् साध्यानुमित्युत्पादे प्रवादव्याघातः, 'अन्धानां' साध्याभावसाधकहेतुमत्ताज्ञाननिष्ठाप्रामाण्यज्ञानाद्यभाव-विशिष्टज्ञानविषयाणां साध्यसाधकहेतूनां, 'शतमपि', 'न पश्यति' न साध्याभावसाधकैकहेतुमत्ताज्ञानसत्त्वे साध्यानुमितिं जनयतीति तदर्थादिति भावः। ननु तन्न्यायोऽप्रमाणं इत्यत आह, 'एकेनापीति तदभावसाधकैकहेतुमत्ताज्ञानेनापि, 'बहूनां' तत्साधकानेकहेतुम-त्ताज्ञानानां, 'फलप्रतिबन्धात्[१]' फलप्रतिबन्धस्यानुभवसिद्धत्वाच्चे-

---

(१) एतेन 'प्रतिबन्धादित्यत्र 'फलप्रतिबन्धादिति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठोऽनुमीयते।

शतमप्यन्धानां न पश्यतीति न्यायात् एकेनापि बहूनां प्रतिबन्धाच्च, व्याप्ति-पक्षधर्म्मते हि बलं तच्च तुल्यमेव, न

---

त्यर्थः। नन्विदमसम्भवि तद्वत्ताज्ञानं प्रति तदभावव्याप्यभूयोधर्मवत्ताज्ञानत्वेनैव प्रतिबन्धकत्वादित्यत आह, 'व्याप्तीति, 'बलं' ज्ञानविषयतया प्रतिबन्धकतावच्छेदकं, 'तच्च' तादृशप्रतिबन्धकतावच्छेदकञ्च, 'तुल्यमेवेति तदभावव्याप्यभूयोधर्मवत्ताज्ञान इव तदभावव्याप्यैकधर्मवत्ताज्ञानेऽप्यविशिष्टमेवेत्यर्थः, 'न तु भूयस्त्वमपि' न तु व्याप्यनिष्ठभूयस्त्वमपीत्यर्थः, 'बलमित्यनुषज्यते, प्रतिबन्धकतावच्छेदकमिति तदर्थः, अत्र हेतुमाह, 'एकस्मादपीति यत्र तत्तदभावयोरुभयोरेकधर्मिण्येकस्यैव व्याप्यधर्मस्य ज्ञानं[१] तत्रैकव्याप्यधर्मवत्ताज्ञानादपीत्यर्थः, 'अन्वमितेरिति सवकारः पाठः[२] 'अनु' पश्चात्, 'अमितेः' विशिष्टमितिविरहात् इत्यर्थः, 'अनुमितेरित्युकारसम्बलितपाठेऽपि 'अनु' पश्चात्, 'मितेः' विशिष्टबुद्ध्यभावस्य प्रमितेरित्यर्थः। ननु सत्प्रतिपक्षे नानुमानदूषणार्थमुपाध्युद्भावनमपि तु बहुषु व्याप्तिपक्षधर्मतान्यतरभङ्गकल्पनमपेक्ष्य एकत्र तत्कल्पनैव लघीयसीति लाघवतर्कसहकृतप्रमाणात् प्रतिपक्षहेतुमत्तापरामर्शेऽप्रामाण्यग्रहार्थमेव तदुद्भावनं, अत एवास्माकं न्यायाः सम्यञ्चो बहवस्त्वेति प्रमाणटीकापि, किञ्च यत्र वादि-प्रतिवादिभ्यां साध्यसाधक-तद-

---

(१) यत्र तत्तदभावयोरुभयोरेव धर्मिण्येकैकस्यैव व्याप्यधर्मस्यैव ज्ञानमिति ग०।

(२) 'सवत्त्वः पाठः' इति आदर्शपुस्तकेषु वर्त्तते परन्त्वयं न समीचीनः।

तु भूयस्त्वमपि, एकस्मादप्यन्वमितेः[१] सन्दिग्धोपाधे-रदूषकतापाताच्च तद्व्यतिरेकस्य सन्दिग्धत्वात्[२]। अपि

---

भावसाधकन्यायमात्रं प्रयुक्तं मध्यस्थस्य चैकत्रापि हेतावनुकूलतर्का-स्फूर्त्त्या व्याप्तिनिश्चयो न जातस्तत्रैवोपाध्युद्भावनमफलमन्यत्र च तदु-द्भावनं निष्फलमेव अन्यथा व्यभिचाराद्युत्थापकतया दूषकतावादि-नामप्येतद्दोषस्य दुरुद्धरत्वात् व्याप्तिनिश्चयसत्त्वेन व्यभिचारादिज्ञान-स्याप्यसम्भवादित्यस्वरसादाह, 'सन्दिग्धोपाधेरिति उपाधित्वसन्देह-दशायामुपाधेरदूषकतापत्तेश्चेत्यर्थः, 'तद्व्यतिरेकस्य सन्दिग्धत्वादिति पाठः तद्व्यतिरेकस्य तदानीं साध्याभावव्याप्यतया सन्दिग्धत्वादि-त्यर्थः, क्वचित्तु 'तद्व्यतिरेकस्य पक्षे सन्दिग्धत्वादिति पाठः, तत्र 'सन्दिग्धोपाधेरित्यस्य पक्षवृत्तितासन्देहदशायामुपाधेरित्यर्थः, अग्रे 'पक्षवृत्तिरित्यस्य पक्षवृत्तितया निश्चितस्येत्यर्थः। ननु सत्प्रतिपक्ष-तया उपाधेर्दूषकत्ववादिनये उपाधित्वादिसन्देहदशायां उपाधेर-दूषकत्वे इष्टापत्तिरेवेत्यत आह, 'अपि चेति, 'उपाधित्वं न स्यात्' उपाधेर्दूषकत्वं न स्यात्, 'व्यतिरेक इति तद्व्यतिरेकस्यासा-धारणत्वादित्यर्थः, पक्षमात्रवृत्तित्वस्यासाधारण्यरूपत्वादिति भावः।

---

(१) 'अनुमितिदर्शनात्' इति पाठः बहुषु आदर्शपुस्तकेषु वर्त्तते पर-न्त्वयं न समीचीनः, 'अनुमितिदर्शनात्' इत्यत्र 'अन्वमितेः' अथवा 'अनुमितेः' इति पाठद्वयमेव पूर्वापरग्रन्थपर्यालोचने समीचीनत्वेन प्रतिभातं रहस्यकृता व्याख्यातञ्च।

(२) तद्व्यतिरेकस्य पक्षे सन्दिग्धत्वादिति पा०।

नैवं 'बाधोन्नीतपक्षेतरस्योपाधित्वं न स्यात् व्यतिरेकेऽसाधारण्यात् पक्षवृत्तिश्च[1] उपाधिर्न स्यात् यथा घटोऽनित्यो द्रव्यत्वादित्यत्र कार्य्यत्वं अन्धकारो द्रव्यं

---

ननु पक्षमात्रवृत्तित्वरूपासाधारण्यज्ञानं नानुमितिविरोधि किन्तु यावत्सपक्षव्यावृत्तत्वरूपतज्ज्ञानमेव तथा तच्च तत्र नास्ति पक्षस्यैव सपक्षत्वादित्यत आह, 'पक्षवृत्तिश्चेति पक्षवृत्तिताज्ञानदशायां उपाधिर्दूषको न स्यादित्यर्थः, 'स्वातन्त्र्येणेति स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कारविषयान्यत्वे सति लौकिकसाक्षात्कारविषयत्वादित्यर्थः, त्रसरेणुरात्मा चात्र दृष्टान्तः व्यभिचारश्च गन्धादौ[2], 'अश्रावणत्व-

---

(१) पक्षधर्म्मश्चेति क० ग०।

(२) त्रसरेणोराश्रयस्य द्व्यणुकस्य महत्त्वाभावात् आत्मनस्त्वाश्रयाप्रसिद्धा त्रसरेणोरात्मनि च स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कारविषयान्यत्वं उपपद्यते। न च स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कार एवाप्रसिद्धः कथं तद्विषयान्यत्वं सम्भवति इति वाच्यम्। स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कारविषयान्यत्वपदेन स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कारविषयो यो यस्तदन्यत्वस्य विवक्षितत्वात्। अन्धकारप्रत्यक्षे आलोकसंयोगनिरपेक्षचक्षुषः कारणत्वेऽपि तदाश्रयप्रत्यक्षे आलोकसंयोगसापेक्षस्यैव चक्षुषः कारणत्वात् अन्धकारस्य स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कारविषयान्यत्वं। गन्धाश्रयस्य घ्राणेनाग्रहणात् गन्धे स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कारविषयान्यत्वविशिष्टलौकिकसाक्षात्कारविषयत्वं वर्त्तते किन्तु द्रव्यत्वं न वर्त्तते इति व्यभिचारः स्फुट एवेति समुदितवाक्यार्थः।

स्वातन्त्र्येण प्रतीयमानत्वादित्यत्राश्रावणत्वं तद्व्यतिरेकस्य पक्षावृत्तित्वात्, न च नायमुपाधिः, तल्लक्षणसत्त्वात् अन्यथा दूषकत्वसम्भवाच्च।

किञ्च साध्यव्याप्याव्यापकत्वेनोपाधेः[(१)] साध्याव्यापकत्वे तद्व्यतिरेकेण कथं सत्प्रतिपक्षः, न ह्यव्यापक-

---

मिति, शब्दे चास्य साधनाव्यापकत्वं, 'पक्षावृत्तित्वादिति पक्षवृत्ति-त्वाभावादित्यर्थः। 'तल्लक्षणेति साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्व-रूपस्य उपाधिलक्षणस्य सत्त्वादित्यर्थः, 'अन्यथापीति पक्षवृत्तित्वं विनापीत्यर्थः, पक्षवृत्तिताभ्रमेणेति शेषः, 'दूषकत्वसम्भवादिति कदाचिद्दूषकत्वसम्भवात्, दूषकतातिप्रसङ्गस्यादोषत्वादिति भावः।

केचित्तु ननु तल्लोपाधिलक्षणं अपि तु पक्षवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति पक्षावृत्तित्वमेव लक्षणं तच्च तत्र नास्ति यथोक्तस्य दूषकतारूपत्वान्यथानुपपत्त्या तथैव कल्पनादित्यत आह, 'अन्यथापीति यथोक्तरूपभिन्नस्यापि दूषकत्वसम्भवाच्चेत्यर्थः, तथाच किं सकलप्रामाणिकोपाधिव्यवहारविषयस्य तस्यानुपाधित्वाभ्युपगमेनेति भावः इत्याहुः।

ननु सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वेन दूषकतावादिनो मम पक्षवृत्तित्व-ग्रहदशायां उपाधेरदूषकत्वे इष्टापत्तिरेवेत्यत आह, 'किञ्चेति, 'साध्यव्याप्येति साध्यव्याप्यतया निश्चितस्य साधनस्याव्यापकताज्ञाने-

---

(१) साध्यव्यापकव्याप्यत्वेनोपाधेरिति क-चिह्नितपुस्तकपाठः परन्त्वयं न समीचीनः।

व्यतिरेकाद्व्याप्यव्यतिरेकः। नापि व्याप्तिविरहरूपतया, असिद्धत्वेनानौपाधिकत्वस्य व्याप्तित्वनिरासात्। नाप्यनौपाधित्वज्ञानस्य व्याप्तिधीहेतुत्वस्य तत्त्वेन व्याप्तिज्ञानकारणविघटकतया व्याप्यत्वासिद्धेरन्तर्भावः, न ह्यन्यस्य साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वज्ञानं अन्यस्य व्याप्तिज्ञाने स्वतः प्रतिबन्धकमित्युक्तम्। न च साध्य-

नोपाधेः साध्याव्यापकत्वज्ञाने इत्यर्थः, 'सत्प्रतिपक्षः' साध्याभावग्रहः, 'अव्यापकव्यतिरेकादिति अव्यापकतया गृहीतस्य व्यतिरेकाद्व्याप्यतया गृहीतस्य व्यतिरेकग्रह इत्यर्थः। 'असिद्धत्वेनेति हेतुविशेष्यकव्याप्यभावप्रकारकज्ञानस्यानुमितिकारणीभूतव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकस्य विशेषणविधया प्रयोजकत्वेनेत्यर्थः, 'दूषकत्वमित्यनुषज्यते, तृतीयार्थस्य पूर्ववत्, उपाध्यभावस्य व्याप्तित्वे हि उपाधिर्व्याप्यभावरूपतया दूषकः स्यात्तदेव च सिद्ध्यसिद्धिव्याघातान्निराकृतमित्याह, 'अनौपाधिकत्वेति। उपाधिर्न दूषकः किन्तु व्याप्यत्वासिद्धिरूपहेत्वाभासान्तर्गतएव स इति कस्यचिन्मतं दूषयति, 'नापीति, 'अनौपाधिकत्वज्ञानस्य' उपाधित्वप्रकारकोपाधिज्ञानाभावस्य,'व्याप्तिज्ञानकारणविघटकतयेति[१] व्याप्तिज्ञानकारणीभूताभावप्रतियोगिज्ञानविषयतयेत्यर्थः, 'व्याप्यत्वासिद्धेः' व्याप्यत्वासिद्धौ, साधारणादिभिन्नव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकज्ञानविषयस्यैव व्याप्यत्वासिद्धित्वादिति

(१) व्याप्तिज्ञानकारणेतीति क० ख०।

व्यापकाव्याप्यत्वज्ञाने विद्यमाने साधनस्य साध्यव्याप्यत्वज्ञानं नोत्पत्तुमर्हतीति वाच्यं। न हि साध्यव्यापकव्याप्यत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञानकारणं येन तत्प्रतिबन्धकं स्यात्, किन्तु साध्यव्यापकव्यभिचारित्वेन साध्यव्यभि-

---

भावः। दूषयति, 'न हीति, 'अन्यस्य' साधनभिन्नस्य, 'अन्यस्य व्याप्तिज्ञाने' साधनभिन्नान्यस्य व्याप्तिज्ञाने, साधनस्य व्याप्तिज्ञान इति यावत्, 'अतः प्रतिबन्धकमिति साक्षात्प्रतिबन्धकमित्यर्थः, भिन्नधर्मिकत्वादिति भावः। तथाचानुमिति-तत्कारणान्यतरं प्रति साक्षात्प्रतिबन्धकज्ञानविषयस्यैव हेत्वाभासतया कथमस्य हेत्वाभासेऽन्तर्भाव इति हृदयं। भिन्नधर्मिकत्वं परिहरन्नाह, 'न चेति, 'साध्यव्यापकेति अव्याप्यतासम्बन्धेन साध्यव्यापकवत्ताज्ञान इत्यर्थः, तथाच तद्विषयतयैव उपाधिर्व्याप्यत्वासिद्ध्यन्तर्गत इति भावः। 'साध्यव्यापकेति अव्याप्यतासम्बन्धेन साध्यव्यापकाभाववत्ताज्ञानमित्यर्थः, 'येनेति, जनकीभूतं ज्ञानं विघटयत एव ग्राह्याभावावगाहिनो ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वनियमादिति भावः। तत्किमव्याप्यतासम्बन्धेन उपाधिमत्ताज्ञानं व्याप्तिज्ञानविघटकमेव न भवतीत्यत आह, 'किन्त्विति, 'साध्यव्यापकेति अव्याप्यतासम्बन्धेन साध्यव्यापकोपाधिमत्ताज्ञानेनेत्यर्थः, 'साध्यव्यभिचारित्वेति, व्याप्तिज्ञानं विघटयत इति शेषः, एतच्च समाधिसौकर्य्यादुक्तं, वस्तुतोऽव्याप्यतासम्बन्धेन हेतावुपाधिमत्तानिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वेऽप्युपाधेर्न व्याप्यत्वा-

चारित्वग्रानद्वारा। नापि व्यभिचारोन्नायकत्वेन, यथा हि साध्यव्यापकव्यभिचारितया साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वमनुमेयं तथा साध्यव्याप्यव्यभिचारित्वेन साध्यव्यभिचारित्वमुपाधेरप्यनुमेयं व्याप्तिग्राहकसाम्यात्[१]।

---

सिद्धिलसम्भवः उपाधिविशिष्टहेतुनिरूपितविषयित्वस्यैव व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकतानियततया[२] तद्विशिष्टहेतोरेव तथात्वसम्भवादन्यथा व्याप्यत्वासिद्ध्यन्तर्गतसाध्यादेरपि प्रत्येकं व्याप्यत्वासिद्धित्वापत्तेरिति हेत्वाभासे सुव्यक्तं। ननूपाधिर्दूषक एव दूषकत्वन्तु तस्य स्वव्यभिचारलिङ्गक-साधनपक्षक-साध्यव्यभिचारानुमितिप्रयोजकत्वेनेति मतं दूषयति, 'नापीति, दूषकत्वमित्यनुषज्यते, तृतीयार्थस्तु पूर्ब्बवत्,'साध्यव्यापकव्यभिचारित्वेनेति साध्यव्यापकोपाधिव्यभिचारित्वेन इत्यर्थः, 'तथेति, तत्पूर्वमिति शेषः। 'साध्यव्याप्येति साध्यव्याप्यसाधनाव्यापकत्वेनेत्यर्थः, 'साध्यव्यभिचारित्वं' साध्यव्यापकत्वं, 'व्याप्तिग्राहकेति उपाधिनिष्ठसाध्यव्यापकताग्राहकसहचारादिग्रह-हेतुनिष्ठसाध्यव्याप्तिग्राहकसहचारादिग्रहयोस्तुल्यत्वादित्यर्थः। 'साध्यव्यापकाव्याप्यत्वेनेति साध्यव्यापकाव्याप्यत्वलिङ्गेनेत्यर्थः, 'व्याप्तिविरहेति साधनपक्षकसाध्यव्याप्तिविरहानुमितिप्रयोजकतयेत्यर्थः, 'दूषकत्वमित्यनुषज्यते,'साध्यव्याप्येति साध्यव्याप्यसाधनेत्यर्थः, 'उपाधिर्हेत्वाभासान्तरमिति आभा-

---

(१) व्याप्तिग्राहकतौल्यादिति ग०।

(२) व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तितयेत्यर्थः।

नापि साध्यव्यापकाव्याप्यत्वेन व्याप्तिविरहोन्नायकतया, साध्यव्याप्याव्यापकत्वेनोपाधेरेव साध्याव्यापकत्वसाधनात्, तस्मादुपाधिर्हेत्वाभासान्तरमिति ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिदूषकतावीजपूर्व्वपक्षः ।

---

यस्य दोषस्य यो हेतुः प्रयोजकः तस्मादन्तरमिति व्युत्पत्त्या उपाधिरदूषक इत्यर्थः, राजदन्तादित्वात् षष्ठीतत्पुरुषसमासेऽपि हेतुशब्दस्य पूर्वनिपातः ।

केचित्तु 'हेत्वाभासान्तरमिति बाध-सत्प्रतिपक्षातिरिक्तानुमितिसाक्षात्प्रतिबन्धकज्ञानविषयो हेत्वाभास इत्याहुः । तदसत् । जनकज्ञानविघटकतया ग्राह्याभावाद्यनवगाहितया चानुमितिं प्रत्यपि साक्षात्प्रतिबन्धकत्वासम्भवादिति ध्येयं ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिदूषकतावीजपूर्व्वपक्षरहस्यं ।

## अथोपाधिदूषकताबीजसिद्धान्तः।

उच्यते आर्द्रेन्धनवत्त्वादेस्तर्कादिना साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वे निश्चिते दूषकताबीजचिन्तनं। यदि च साध्य-साधनसहचारदर्शनेनोपाधौ साध्यव्यापकतानिश्चय एव नास्ति तदोपाधित्वनिश्चयाभावात् दूष-

---

## अथोपाधिदूषकताबीजसिद्धान्तरहस्यं।

'तर्कादिने'ति साध्यव्यापकत्वादिनिश्चयसामग्र्यादिनेत्यर्थः, 'आदि-पदात् तत्संशयसामग्रीपरिग्रहः, 'निश्चिते' ज्ञाते, 'दूषकताबीजचिन्तनं' दूषकत्वस्य धर्मिणः सत्त्वं, 'यदि चेति यदा चेत्यर्थः, 'साध्य-साधनसहचारदर्शनेन' साध्य-साधनयोर्नियतसहचारदर्शनेन, साध्य-साधनयोर्व्याप्यत्वनिश्चयेनेति यावत्, साध्यव्याप्यसाधनाव्यापकतया साध्याव्यापकत्वनिश्चयादिति[1] शेषः। 'निश्चय एव' ज्ञानमेव, 'उपाधित्व-निश्चयाभावात्' उपाधित्वज्ञानाभावात्, 'दूषकतैव' दूषकताधर्म एव, 'क्व वह्निर्भावेति कुतस्तत्कालीनदूषकतायां अनुमितिकारणप्रतिब-

---

(१) साध्यव्यापकत्वानिश्चयादितीति क०।

क्तैव नास्तीति क्व वहिर्भावान्तर्भावचिन्ता। किञ्च 'सत्प्रतिपक्षतया 'व्याप्यत्वासिद्धतया 'स्वातन्त्र्येण वा यदि दोषत्वं सर्व्वथा साध्यव्यापकतानिश्चयोवक्तव्यः तेन विना तेषामभावात्। 'तस्मादुपाधिनिश्चयाद्व्यभिचा-

---

न्धकज्ञानप्रयोजकताद्रूपत्व-साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकज्ञानप्रयोजकता-रूपत्वचिन्तनमित्यर्थः। 'किञ्चेति यत इत्यर्थे, 'सत्प्रतिपक्षतयेति स्वव्यतिरेकलिङ्गकसाध्याभावानुमितिप्रयोजकतयेत्यर्थः, 'व्याप्यत्वासि-द्धतयेति व्याप्तिविरहरूपत्वेन विशेषणविधया हेतुविशेष्यकव्याप्त्य-भावप्रकारकज्ञानप्रयोजकतयेत्यर्थः, 'स्वातन्त्र्येण वेति तदितररूपेण वेत्यर्थः, तच्च रूपं स्वाव्याप्यत्वलिङ्गक-हेतुपक्षक-साध्यव्याप्तिविरहा-नुमितिप्रयोजकत्वं वक्ष्यमाणव्यभिचारज्ञानप्रयोजकत्वञ्चेति भावः। 'साध्यव्यापकतानिश्चयः' तद्ग्रहः, 'वक्तव्यः' अपेक्षणीयः, 'व्यभिचा-रज्ञानद्वारेति मानसव्यभिचारप्रत्यक्षप्रयोजकतयेत्यर्थः, अतो नाग्रि-मेण पौनरुक्त्यं, मानसव्यभिचारनिश्चये उपाधिज्ञानस्य विशेषद-र्शनतया उपयोगित्वेन तद्विषयतया उपाधेरपि तत्र प्रयोजकत्वादिति भावः। 'साध्यव्यापकाव्याप्यत्वेनेति स्वनिष्ठसाध्यव्यापकतावच्छेदकरूपा-वच्छिन्नाव्याप्यत्वेन हेतुना हेतौ साध्यव्याप्तिविरहानुमितिप्रयोजक-तया वेत्यर्थः, एतच्च उपाधित्वनिश्चयमधिकृत्य, उपाधित्वसंशयस्य तु साध्यव्यभिचारवत्साध्यव्याप्तिविरहस्यापि संशयं प्रत्येव क्वचित् प्रयोज-कत्वं।' अत्र साध्यव्याप्तिविरहपदं साध्यवदन्यावृत्तित्वविशिष्टसाध्य-

निश्चयः तत्संशयात्तत्संशय इति व्यभिचारज्ञान-द्वारा साध्यव्यापकाव्याप्यत्वेन व्याप्तिविरहोन्नायकतया उपाधेर्दूषकत्वम्।

यद्वा साध्यव्यापकाभाववद्वृत्तितया साध्यव्यभिचा-

---

वद्वृत्तित्वरूपव्याप्तिविरहपरं, न तु स्वव्यापकसाध्यसामानाधिकरण्य-रूपव्याप्तिपरं, स्वत्वस्यानुगतस्याभावेन पक्षीभूतसाध्यव्यक्तिपर्य्यवसन्नतया साध्याप्रसिद्धेः। एतेन स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिसाध्य-कत्वं साध्यव्याप्तिविरह इत्यपि निरस्तं, स्वत्वस्यानुगतस्याभावेन पक्षीभूतसाधनव्यक्तिपर्य्यवसाने साध्यप्रसिद्धिमात्रेणैव कृतार्थतया हेतौ तदनुमानवैफल्यापत्तेरिति ध्येयं।

कालभेदेन व्यवस्थितविकल्पमाह, 'यद्वेति, 'साध्यव्यापकेति साध्यव्यापकोपाध्यभाववद्वृत्तित्वेनेत्यर्थः, 'उन्नेयं' हेतावनुमेयं, तथाच क्वचित्साध्यव्यभिचारानुमितिप्रयोजकतयाप्युपाधेर्दूषकत्वमिति भावः। एतदपि निश्चयदशामधिकृत्य, इदञ्च पर्य्यवसितसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वरूपोपाधित्वज्ञानस्य दूषकताबीजमुक्तं, पक्षवृत्तिध-र्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति पक्षावृत्तित्वरूपोपाधित्वज्ञानस्य तु सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वं क्वचित् बाधोन्नायकत्वञ्च दूषकताबीजं बोध्यं, सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वञ्च पक्षे साध्याभावव्याप्योपाध्यभाववत्तानिश्चय-प्रयोजकत्वं, बाधोन्नायकत्वञ्च पक्षे साध्याभावानुमितिप्रयोजकत्वं, तच्च पक्षे तुल्यबलसाध्यव्याप्यहेतुमत्तानिश्चयविरहदशायां पक्षे साध्याभा-

रित्यनुमेयं । न च साधनाभाववद्वृत्तित्वमुपाधिरिति वाच्यम् । उपाधिमात्रोच्छेदप्रसङ्गात् सत्प्रतिपक्षे पूर्व्व-साधनव्यतिरेकवत् अवृत्तिगगनादौ साध्याव्यापकत्वात् संयोगादौ हेतौ साधनव्यापकत्वाच्च ।

---

व्याप्योपाध्यभाववत्तानिश्चयद्वारावसेयं । व्याप्तिविरहानुमाने व्यभि-चारानुमाने च उपाधिमाशङ्कते, 'न चेति पक्षीभूतसाधनाभाववद्-वृत्तित्वमित्यर्थः, व्यभिचारास्फुटतादशायामेव उपाधिना व्याप्तिवि-रहाद्यनुमानात् यत्राधिकरणे हेतोः साध्यव्यभिचारित्वं तदीयध-र्म्मस्य साध्याव्यापकत्वग्रह इति भावः । 'उपाधिमात्रेति व्यतिरे-किसाधनकोपाधिव्यभिचारमात्रस्य तादृशोपाध्यव्याप्यत्वमात्रस्य च निरुपाधित्वोच्छेदप्रसङ्गादित्यर्थः । केवलान्वयिनि साधने पक्षीभूते पक्षीभूतसाधनाभावस्याप्रसिद्ध्या तद्वद्वृत्तित्वस्य उपाधित्वासम्भवेऽपि तदतिरिक्ते पक्षीभूते सर्व्वत्रैव तदुपाधितायाः सुवचत्वादिति भावः । 'सत्प्रतिपक्ष इति यथा सत्प्रतिपक्षे पूर्व्वसाधनव्यतिरेकस्य उपाधित्व-नियमे सत्प्रतिपक्षमात्रस्य निरुपाधित्वोच्छेदप्रसङ्ग इत्यर्थः, 'अवृ-त्तीति, व्याप्तिविरहसाधनाभिप्रायेणेदं, साधनाव्याप्यत्वस्य तत्रोपा-धित्वाभिधाने तु नैतद्दोष इति ध्येयं । 'संयोगादाविति, एतच्च साधनाभाववद्वृत्तित्वं यथाश्रुतमभिप्रेत्य, साधनाभावीयनिर-वच्छिन्नाधिकरणतावद्वृत्तित्वस्योपाधित्वाभिधाने तु नायं दोष-इति ध्येयं ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तः।

---

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तरहस्यं।

## अथोपाध्याभासनिरूपणं।

अथोपाध्याभासाः। असाधारणविपर्य्ययः, यथा-न्वयव्यतिरेकिणि साध्ये बाधोन्नीतान्यपक्षेतरत्वम्। अप्रसिद्धसाध्यविपर्य्ययः, यथा केवलान्वयिनि साध्ये पक्षेतरत्वादिः। बाधितसाध्यविपर्य्ययः, यथा वह्निर-

---

### अथोपाध्याभासनिरूपणरहस्यं।

उपाधिं निरूप्य तदाभासान् गणयितुं शिष्यावधानाय प्रतिजानीते, 'अथेति उपाधिनिरूपणानन्तरमित्यर्थः, 'उपाध्याभासा इति, निरूप्यन्ते इति शेषः। 'असाधारणविपर्य्यय इति असाधारणः विपर्य्ययो व्यतिरेको यस्येति बहुव्रीहिः, साध्याभावे साध्य इति चादौ पूरणीयं, तथाच यदभावः साध्याभावे साध्येऽसाधारणो भवति स उपाध्याभास इत्यर्थः, असाधारण्यमिह सर्व्वसपक्षव्यावृत्तत्वमात्रं साध्याभावरूपसाध्यवदवृत्तित्वमिति यावत् तथाच यदभावः साध्याभाववदवृत्तिः स उपाध्याभास इति फलितं, तस्य साध्यव्यापकत्वाभावेनासदुपाधित्वादिति भावः। तस्य उदाहरणमाह, 'यथेति, केवलान्वयिसाध्ये साध्याभावस्याप्रसिद्ध्या 'अन्वयव्यतिरेकिणीत्युक्तं, 'अन्वयः' साध्यतावच्छेदकसम्बन्धः, तदवच्छिन्न-

ष्यास्तेजस्त्वादित्यत्राकृतकत्वम्। पक्षाव्यापकविपर्य्ययः, यथा क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्य्यत्वादित्यत्राणुव्यतिरिक्तत्वम्। अत्राणुव्यतिरिक्तत्वव्यतिरेकस्य क्षित्यादेरेकदेशवृत्त्या भागासिद्धेः। पूर्व्वसाधनव्यतिरेकः, यथा

---

प्रतियोगिताकव्यतिरेकप्रतियोगिनीत्यर्थः, जलहृदो वह्निमान् द्रव्यत्वादित्यादौ हृदेतरत्वादेर्व्यतिरेकस्य साध्याभाववद्वृत्तित्वविरहात् 'बाधोन्नीतान्येति पक्षविशेषणं साध्याभाववत्तया प्रमितान्येत्यर्थः, तथाच पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ पर्व्वतेतरत्वादिकमिति भावः।

प्राञ्चस्तु साध्याभावे साध्य इत्यादौ न पूरणीयं, असाधारणत्वञ्च सर्व्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वं, प्रकृतसाध्यवत्तया निश्चितत्वमेव सपक्षत्वं, तदभाववत्तया निश्चितत्वञ्च विपक्षत्वं, तथाच यदभावः सकलसाध्यवत्तानिश्चितव्यावृत्तत्वे सति सकलसाध्याभाववत्तानिश्चितव्यावृत्तः स उपाध्याभास इत्यर्थः, अतएव उदाहरणे केवलव्यतिरेकिणि सपक्षस्य केवलान्वयिनि च विपक्षस्याप्रसिद्धा तत्रत्यपक्षेतरत्ववारणाय 'अन्वयव्यतिरेकिणीत्युक्तं, वह्निरनुष्णः कृतकत्वादित्यादौ पक्षस्यैव विपक्षतया वह्नीतरत्वस्य तद्व्यावृत्तत्वाभावात् तद्वारणाय 'बाधोन्नीतान्ये-त्युक्तं साध्याभाववत्तया निश्चितान्येति तदर्थः। इदमुपलक्षणं भूर्नित्या गन्धवत्वात् भूरनित्या भूभिन्नभिन्नत्वादित्यादौ च केवलव्यतिरेकिण्यपि पक्षेतरत्वं उदाहरणं बोध्यं तत्र सपक्षस्य प्रसिद्धत्वा-

शर्करारसोऽनित्योऽनित्यवृत्तिगुणत्वात्। स नित्यः(१) रसनेन्द्रियजन्यनिर्विकल्पकविषयत्वात् रसत्ववदित्यादौ। पूर्वसाधनतायाः प्रयोगानुरोधित्वेनाव्यवस्थितत्वात् कदाचिन्नित्यत्वसाधनव्यतिरेकस्योपाधित्वं कदाचिदनित्यत्वसाधानव्यतिरेकित्वस्येति वस्तुव्यवस्था

---

दित्याहुः। तदसत्। वह्निरनुष्णः कृतकत्वादित्यादौ बाधोन्नीतपक्षेतरत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय विपक्षव्यावृत्तत्वदलस्यावश्यकत्वेऽपि सपक्षव्यावृत्तत्वदलस्य व्यर्थत्वात्, पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते द्रव्यत्वादित्यादौ केवलव्यतिरेकिण्यपि पक्षेतरत्वस्योपाध्याभासतया तद्वारणस्यायुक्तत्वात्। किञ्चैवं वह्निरनुष्णः कृतकत्वादित्यादौ बाधिते यदा सौरालोकादावेव साध्याभावनिश्चयो न तु पक्षे तदा पक्षेतरत्वस्य उपाध्याभासत्वापत्तिः, एवं धूमवान् वह्नेरित्यादावपि यदा आर्द्रेन्धनाद्यधिकरण एव साध्य-तदभावयोर्निश्चयो न तु तदनधिकरणे तदा तत्राप्यार्द्रेन्धनादेरुपाध्याभासतापत्तिः। न चेष्टापत्तिः, साध्यव्यापकत्वादेस्तदानीमपि सत्त्वेनाभासतायां वीजाभावात्। न च यन्मते उपाधित्वज्ञानस्य पक्षे साध्याभावव्याप्योपाध्यभाववत्ताज्ञानद्वारा अनुमितिप्रतिबन्धकत्वं तन्मते तदानीं तेषामभावे साध्याभावव्याप्यत्वज्ञानासम्भव एव उपाध्याभासत्वे वीजमिति वाच्यं। असाधारणज्ञानस्यानुमितिं प्रत्येव प्रतिबन्धकतया तत्सत्त्वेऽपि साध्याभावव्या-

---

(१) रसो नित्य इति क०, ख०।

न स्यात् उपाधेर्नित्यदोषत्वात्। न हि यद्येन सोपाधिसम्बद्धं तत्तेनानुपाधित्वसम्बद्धं सम्भवति, न तु सत्प्रतिपक्षोच्छेदः पूर्व्वसाधनव्यतिरेकस्यानुपाधित्वे वीजं, स्थापनाया यत्राभासत्वं तत्र पूर्व्वसाधनव्यतिरेकस्य

---

प्यत्वज्ञाने बाधकाभावात् असाधारण्यज्ञानस्योभयसहचारग्रहप्रतिबन्धकतया व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकत्वपक्षेऽप्यन्वयव्याप्तिज्ञानं प्रत्येव प्रतिबन्धकतया तत्सत्त्वेऽपि साध्याभावव्यतिरेकव्याप्तिज्ञाने बाधकाभावाच्चेति ध्येयं।

'अप्रसिद्धसाध्यविपर्य्ययः' यद्वृत्तिसाध्यस्य साध्यतावच्छेदकरूपेणाभावोऽलीकः अत्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्याश्रय इति यावत्, 'पक्षेतरत्वादि'रिति, 'आदिपदात्पक्षेतरत्वातिरिक्तवस्तुमात्रपरिग्रहः, केवलान्वयिसाध्ये कुत्रचित्साध्यव्यापकत्वस्य कुत्रचित्साधनाव्यापकत्वस्य विरहात् वस्तुमात्रस्यैव उपाध्याभासत्वादिति भावः। 'बाधितेति अव्याप्यतासम्बन्धेन बाधितः साध्यविपर्य्ययो यत्रेति व्युत्पत्त्या साध्याभावव्याप्य इत्यर्थः, 'अकृतकत्वमिति न विद्यते कृतकं कार्य्यं यत्रेति व्युत्पत्त्या जन्यधर्म्मानाश्रयत्वमित्यर्थः, 'पक्षाव्यापकेति, 'पक्षः' साधनवान्, तद्वृत्तिविपर्य्ययक इत्यर्थः, क्वचित्तु 'पक्षव्यावर्त्तकेति पाठः तत्राप्ययमेवार्थः, 'क्षित्यादिकमिति पृथिव्यादिकमित्यर्थः, 'अणुव्यतिरिक्तत्वं' परमाणुभिन्नत्वं, अस्योपाध्याभासत्वे वीजमाह, 'अत्रेति परमाणुव्यतिरिक्तत्व इत्यर्थः, 'अणुव्यति-

साध्याव्यापकत्वेनानुपाधित्वात्। न च पूर्व्वहेतोरस्तत्त्वासाधकत्वात् सत्प्रतिपक्षवैयर्थ्यं तत्रेति वाच्यम्। अगृह्यमाणविशेषदशायां सत्प्रतिपक्षसम्भवात्। पूर्व्व-

---

रिक्तत्वव्यतिरेकस्य' परमाणुव्यतिरिक्तत्वव्यतिरेकस्य, 'एकदेशवृत्त्या' एकदेश एव वृत्त्या नित्यपृथिव्यादावेव वृत्त्येति यावत्, 'भागासिद्धे-रिति उपाधिलक्षणान्तर्गतस्य साधनाव्यापकत्वभागस्यासिद्धेरित्यर्थः।

केचित्तु सर्व्वमतसाधारण्येन उपाध्याभासान् गणयित्वा पक्षवृत्ति-धर्म्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति पक्षावृत्तिरेवोपाधिरिति मते उपाध्याभासान् गणयति, 'बाधितेति यत्समानाधिकरणसाध्यस्य साध्यतावच्छेदकरूपेणाभावः पक्षे बाधित इत्यर्थः, 'अकृतकत्वं' अकार्य्यत्वं, तच्च पक्षवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नसाध्यस्य पक्षेऽपि सत्त्वेन तादृ-शसाध्यव्यापकत्वविरहादिति भावः। इदमुपलक्षणं पर्व्वतो धूमवान् वह्नेरित्यादावार्द्रेन्धनादिकमपि बोध्यं। 'पक्षाव्यापकेति[१], पक्षैकदे-शावृत्तीत्यर्थः, 'क्षित्यादिकं' पार्थिवद्व्यणुकादिकं, अणुव्यतिरिक्तत्वस्य पक्षाव्यापकविपर्य्ययकत्वमुपपादयति[२], 'अत्रेति क्षित्यादिकं सक-र्तृकं कार्य्यत्वादित्यत्रेत्यर्थः, 'एकदेशवृत्त्या' एकदेशद्व्यणुक एव वृत्त्या, 'भागासिद्धेः' पक्षैकदेशावृत्तेः। यद्वा अणुव्यतिरिक्तत्वस्य उपाध्याभासत्वे वीजमाह, 'अत्रेति अणुव्यतिरिक्तत्व इत्यर्थः, 'भागा-

---

(१) पक्षव्याववर्त्तकेतीति ग०।

(२) पक्षव्यावर्त्तकविपर्य्ययकत्वमुपपादयतीति ग०।

साधनव्याप्यव्यतिरेकः, यथा अकर्तृकत्वानुमाने नित्य-
त्वादिः । पक्ष-विपक्षान्यतराख्यः, यथा प्रसिद्धानुमाने

---

सिद्धेरिति उपाधिलक्षणान्तर्गतस्य पक्षावृत्तित्वभागस्यासिद्धेरित्यर्थः, इत्याहुः ।

सत्प्रतिपक्षे सर्वत्रैव पूर्वसाधनव्यतिरेकः सदुपाधिरिति मतं स्वमते[१] निराकर्त्तुमाह, 'पूर्वसाधनव्यतिरेक इति पूर्वसाधनव्यतिरेकोऽपीत्यर्थः, क्वचिदुपाध्याभास इति शेषः । एतेन पूर्वसाधनव्यतिरेकित्वस्य उपाध्याभासत्वनियतत्वे आर्द्रेन्धनाभावेन धूमाभावस्य साधनायां प्रतिहेतौ वह्न्यावार्द्रेन्धनस्य उपाधित्वं न स्यादिति पूर्वपक्षो निरस्तः । 'रसनेन्द्रियजन्येति गुणान्यत्वे सति रसनेन्द्रियजन्यनिर्विकल्पकविषयत्वादित्यर्थः, यथाश्रुते घटादिवृत्तिरसे व्यभिचारापत्तेः पूर्वसाधनव्यतिरेकस्यासदुपाधितया उदाहरणत्वासङ्गतेश्च । शर्करायां रस इत्युपनीतभानविषये शर्करायां व्यभिचारवारणाय निर्विकल्पकत्वेन उपादानं, निर्विकल्पकत्वं सप्रकारकभिन्नत्वं तेनांशिकनिर्विकल्पकत्वमादाय न तद्दोषतादवस्थ्यं । पूर्वसाधनव्यतिरेकस्य सदुपाधित्वनियमे बाधकमाह, 'पूर्वसाधनताया इति, पूर्वसाधनव्यतिरेकस्य सदुपाधित्वनियमे इत्यादिः, 'अव्यवस्थितत्वादिति क्वचिन्नित्यत्वसाधकोक्तहेतौ क्वचिदनित्यत्वसाधकोक्तहेतौ च सत्त्वादित्यर्थः, 'कदाचिदिति शर्करीयरसो नित्यः गुणान्यत्वे सति रसनेन्द्रियजन्य-

---

(१) स्वमत इति ग० । मतम इति घ० ।

पर्व्वत-जलह्रदान्यतरान्यत्वम् । पक्षेतरसाध्याभावः, यथाचैव पर्व्वतेतराग्निमत्त्वं । न चात्र व्यर्थविशेषणत्वं

---

निर्विकल्पकविषयत्वादिति नित्यत्वसाधकहेतोः पूर्वं प्रयोगदशाया-मित्यर्थः, 'नित्यत्वसाधनेति नित्यत्वसाध्यक-गुणाप्यत्वे सतीति हेतौ नित्यत्वसाधकहेतोरभावस्येत्यर्थः, 'उपाधित्वं' सदुपाधित्वं स्यादि-त्यर्थः, 'कदाचिदिति शर्करारसोऽनित्यः अनित्यवृत्तिगुणत्वादित्य-नित्यत्वसाधकहेतोः पूर्वं प्रयोगदशायामित्यर्थः, 'अनित्यत्वसाधनेति अनित्यत्वसाधकानित्यवृत्तिगुणत्वरूपहेतोरभावस्येत्यर्थः, उपाधित्वं स्यादिति शेषः, 'वस्तुव्यवस्थेति तदुभयहेतौ वस्तुगत्या साध्यव्या-प्यत्वस्यावस्थानं न स्यादित्यर्थः, व्याप्तेर्निरुपाधित्वनियतत्वादिति भावः । ननु दशाविशेषे निरुपाधित्वं तत्रास्त्येवेत्यत आह, 'उपाधेरिति, 'नित्यदोषत्वात्' सदातनदोषत्वात् व्याप्यवृत्तित्वादिति यावत् । 'यद्येन सोपाधिसम्बद्धमिति यत्साध्यकसोपाधित्वसम्बद्ध-मित्यर्थः, तत्तेनानुपाधित्वसम्बद्धमिति तत्साध्यकानुपाधित्वसम्बद्धमि-त्यर्थः, पूर्वसाधनव्यतिरेकस्य सदुपाधित्वानियमे केनचिदुक्तं वीजमा-शङ्क्य निराकरोति, 'न त्विति, 'अनुपाधित्वे' सदुपाधित्वानियमे, पूर्वसाधनव्यतिरेकस्य सदुपाधित्वनियमेऽपि तस्योपाधित्वाप्रतिसन्धान-दशायां सत्प्रतिपक्षसम्भवादिति भावः । स्थानान्तरे पूर्वसाधनव्यति-रेकस्य उपाध्याभासत्वं दर्शयति, 'स्थापनाया इति तत्साध्यकस्थाप-नायाः, 'पक्षाभासत्वं' व्यभिचारित्वमित्यर्थः, 'तच्च' तथापि, 'साध्या-

दूषणं, तत्त्वेऽप्युपाधेराभासत्वात्। तत्तुल्यस्य, यथात्रैव पर्व्वतेतरेन्धनवत्त्वम्। एवं वह्निसामग्र्यादिकमूह्यम्।

---

व्यापकत्वेनेति तदभावसाधनप्रतिस्थापनायाः साध्यस्याव्यापकत्वेनेत्यर्थः, 'अनुपाधित्वात्' उपाध्याभासत्वात्, 'ततएवेति व्यभिचारित्वादेवेत्यर्थः। 'अगृह्यमाणेति स्थापनाया व्यभिचाराग्रहदशाया-मित्यर्थः, 'पूर्वसाधनव्याप्यव्यतिरेक इति, उपाध्याभास इति शेषः। 'यथेति, कादाचित्कत्वेन सकर्त्तृकत्वस्य स्थापनायामिति शेषः, 'अकर्त्तृकत्वानुमान इति अकर्त्तृकत्वसाधके प्रतिहेतावजन्यत्व इत्यर्थः, 'नित्यत्वादीति, ध्वंसाप्रतियोगित्वरूपस्य नित्यत्वस्य प्रागभावे साध्यव्यापकत्वाद्धेतौ साध्यव्यभिचारविरहाच्चायमुपाध्याभास इति भावः। 'पक्षेति भावप्रधानो निर्द्देशः पक्ष-विपक्षान्यतरान्यत्वमित्यर्थः, क्वचिदुपाध्याभास इति शेषः, तेनायोगोलकं धूमवद्वह्नेरित्यादावयोगोलकहृदान्यतरान्यत्वस्य सदुपाधित्वेऽपि न क्षतिः, 'पक्षेतरेति पक्षेतरत्वविशिष्टसाध्याधारत्वमित्यर्थः, क्वचिदुपाध्याभास इति शेषः, तेनायोगोलकं धूमवद्वह्नेरित्यादावयोगोलकेतरत्वविशिष्टधूमवत्त्वादेः सदुपाधित्वेऽपि न क्षतिः। 'अत्रैव' प्रसिद्धानुमान एव, 'आभासत्वात्' आभासत्वानपायात्, 'तत्तुल्यस्येति पक्षेतरत्वघटितत्वेन तत्तुल्योधर्म्मान्तरोऽपीत्यर्थः, क्वचिदुपाध्याभास इति शेषः। 'अत्रैव' प्रसिद्धानुमान एव, 'ऊह्यमिति पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादावुपाध्याभासत्वेनोह्यमित्यर्थः।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाध्याभासनिरूपणं, समाप्तोऽयमुपाधिवादः।

---

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाध्याभासनिरूपणरहस्यं, समाप्तमिदं उपाधिवादरहस्यं।

## अथ पक्षतापूर्वपक्षः ।

व्याप्त्यनन्तरं पक्षधर्म्मता निरूप्यते ।

तत्र न तावत् सन्दिग्धसाध्यधर्म्मत्वं पक्षत्वम्, सन्देहो

---

## अथ पक्षतापूर्वपक्षरहस्यं ।

उपाधिं निरूप्य पक्षधर्मतां निरूपयितुं शिष्यावधानाय प्रतिजानीते, 'व्याप्त्यनन्तरमिति व्याप्तिनिरूपणानन्तरमित्यर्थः, क्वचित्तथैव पाठः, 'पक्षधर्मता' पक्षधर्मः पक्षपदस्य शास्त्रकारीयपरिभाषाविषयतावच्छेदकोऽनुमितिजनको धर्म इति यावत्, भावार्थस्याविवक्षितत्वात्, एतेन व्याप्ति-पक्षधर्मतयोरनुमित्यात्मकैककार्य्यानुकूलत्वमेव सङ्गतिरिति सूचितं[१]। अनुकूलत्वञ्च कारण-कारणतावच्छेदकसाधारणं प्रयोजकत्वं, तच्च कारणतावच्छेदकव्यावृत्तान्यथासिद्धिचतुष्टयरहितत्वे[२]

---

(१) तथाचात्र व्याप्तिज्ञानजन्याया अनुमितेः किमन्यत् कारणमिति जिज्ञासामादाय एककार्य्यानुकूलत्वस्य सङ्गतित्वमिति भावः ।

(२) न चात्र कारणतावच्छेदकव्यावृत्तान्यथासिद्धिसामान्याभावनिवेशेनैव सामञ्जस्ये चतुष्टयपदं व्यर्थमिति वाच्यं । अन्यथासिद्धित्वस्यानुगतस्याभावात् तत्तदन्यथासिद्ध्यभावकूटनिवेशस्यावश्यकतया कूटवाघवार्थमेव तदुपादानात् । एतेन तादृशान्यथासिद्धिराहित्यमात्रकथनेनैव सामञ्जस्ये नियतपूर्ववर्त्तित्वरूपविशेष्यदलं व्यर्थमिति पूर्वपक्षोऽपि निरस्तः, अनियतपूर्ववर्त्तिगतान्यथासिद्ध्यभावघटितकूटनिवेशे कूटस्य गुरुशरीरतया महागौरवापत्तेरिति ।

हि न विशेषणं परामर्शपूर्व्वं लिङ्गदर्शन-व्याप्तिस्मरणादिना तस्य नाशात्। नोपलक्षणम् अव्यावर्त्तकतापत्तेः।

---

प्रति नियतपूर्ववर्त्तित्वं, तेन व्याप्तेः अनुमित्यजनकत्वेऽपि न क्षतिः, व्याप्तेर्विषयतासम्बन्धेन परामर्शनिष्ठकारणतावच्छेदकतया यथोक्तप्रयोजकत्वस्य तत्र सत्त्वात्। न चातीतानागतव्याप्तेः परामर्शादप्यनुमित्युदयात् नियतपूर्ववर्त्तित्वघटितयथोक्तप्रयोजकत्वमपि तत्र नास्तीति वाच्यं। व्याप्तिसामान्ये तादृशप्रयोजकत्वस्यासत्त्वेऽपि सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादौ नित्यसम्बन्धघटितव्याप्तिषु तत्सम्भवात्। न हि निखिलव्याप्त्या समं सङ्गतिरपेक्षिता। वस्तुतस्तु व्याप्तिप्रयोज्यानुमितिजनकत्वमेव पक्षतायां व्याप्तेः सङ्गतिः, व्याप्तिप्रयोज्यत्वञ्च व्याप्यवच्छिन्नकारणताप्रतियोगिक-कार्य्यताश्रयत्वं(१)। उपाधि-पक्षतयोरप्युद्भावनद्वारा(२) विजयत्वावच्छिन्नैककार्य्यानुकूलत्वमेव सङ्गतिः, यथा परकीयहेतावुपाध्युद्भावने विजयस्तथा स्वीयहेतौ पक्षतोद्भावनेऽपि विजयादिति भावः। 'तत्रेति, तच्छब्दो निरूपणपरः, विषयत्वं सप्तम्यर्थः, अन्वयस्तस्य पक्षत्वमित्यनेन,

---

(१) तथाच निखिलव्याप्त्या समं सङ्गतेरपेक्षितत्वेऽपि न क्षतिरिति भावः।

(२) पक्षतानिरूपणे व्याप्तिनिरूपणानन्तर्य्यमिव उपाधिनिरूपणानन्तर्य्यमपि वर्त्तते, अतः पक्षतायां व्याप्तिनिरूपितसङ्गतिरिव उपाधिनिरूपितसङ्गतिरपि सम्भवत्येव तदप्रदर्शनेन मणिकारस्य न्यूनतां परिजिहीर्षुः मथुरानाथः 'उपाधिं निरूपयितुं' इत्यभिहितवान्, इदानीं पक्षतायां व्याप्तिनिरूपितसङ्गतिं सङ्क्रमय्य उपाधिनिरूपितसङ्गतिं सङ्क्रमयति, 'उपाधि-पक्षतयोरप्युद्भावनद्वारेति।

तथाच निरूपणविषयीभूतं पक्षत्वमिदं नेत्यर्थः[१] पक्षत्वं पक्षपदपरिभाषाविषयतावच्छेदकोऽनुमितिजनको धर्मः, एवं सर्वत्र। 'सन्दिग्धसाध्यधर्मत्वमिति सन्दिग्धं साध्यं येन रूपेण तत्सन्दिग्धसाध्यं सन्देहविशेष्यतावच्छेदकमिति यावत्, तादृशधर्मत्वमित्यर्थः, तथाच विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन साध्यसन्देहवत्त्वं पक्षत्वमिति फलितं[२]। न चैवं

---

(१) पक्षत्वमिदं नेत्यन्वय इति ग०।

(२) अत्र पर्व्वतो वह्निमान्न वा भूतलं घटवन्न वेति क्रमिकसंशयोत्तरं पर्व्वतो वह्निमान् भूतलं घटवदिति समूहालम्बनानुमितेर्विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन भूतलत्वे सत्त्वेन व्यभिचारवारणाय साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्न्यनुमितिं प्रति वह्नित्वावच्छिन्नकोटिताख्यप्रकारतानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्निसंशयस्य कारणत्वं, अथवा वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकत्वविशिष्टवह्न्यनुमितिं प्रति समानविशेष्यतावच्छेदकताप्रत्यासत्त्या कारणत्वं वाच्यं। अथ सामाधिकरण्येन वह्निसाध्यकस्थले सामानाधिकरण्येन वह्न्यभावकोटिकावच्छेदावच्छेदे[illegible] वह्निकोटिकसंशयस्य पक्षतात्वापत्तिरिति चेत्। न। सामान[illegible] करण्येन वह्न्यनुमितिं प्रति वह्न्यभावत्वावच्छिन्नप्रका[illegible] सांसर्गिकविषयतानिरूपित-निरूपकत्वविषयतानि[illegible] त्वविषयतानिरूपित-वह्न्यभावविषयतानिरूपि[illegible] पित-प्रतियोगित्वविषयतानिरूपिताभावि[illegible] विषयतानिरूपिताधिकरणविषयतानि[illegible] कनिष्ठविषयता सामानाधिकरण्य[illegible] वच्छेदकता तत्सम्बन्धेन पक्षत[illegible]

पक्षतायाः पक्षतावच्छेदकनिष्ठत्वमेव युक्तं न तु पक्षनिष्ठत्वमिति वाच्यं। अनुमितिकारणीभूतपक्षपदपरिभाषाविषयतावच्छेदकधर्मस्यास्य पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वाभावेन पक्षतावच्छेदक-पक्षयोः सत्त्वासत्त्वेऽपि क्षतिविरहात्, अनुमित्युद्देश्यत्वस्यैव पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वात्। न च तथापि समानविशेष्यतावच्छेदकत्वप्रत्यासत्त्या साध्यसन्देहवत्त्वस्यानुमितिहेतुत्वे साध्यं पक्षे न वेति साध्यविशेष्यकसन्देहस्यासङ्ग्रह इति वाच्यं। प्रसिद्धसाध्यकानुमितेः पक्षविशेष्यकत्वनियमेनानुमितिसमानविशेष्यतावच्छेदकतया पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यकसाध्यसन्देहवत्त्वस्यैव तत्रानुमितिहेतुत्वेन तादृशसन्देहस्यासङ्ग्रहस्यैवोचितत्वात्। न चैवं केवलान्वयिसाध्यके साध्याभावाप्रसिद्ध्या पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यकसाध्यसन्देहासम्भवात् अनुमितिर्न स्यादिति वाच्यं। तत्रापि खण्डशः प्रसिद्ध्या अभावान्तरे प्रतियोगितासम्बन्धेन साध्यप्रकारकस्य साध्यसन्देहस्य पक्षे सम्भवात्। न च तथापि पृथिव्यामितरभेद-

---

थापि पर्व्वतो वह्निमान् इत्यनुमितौ जातिमान् वह्निमान्न वेति
ष्य पक्षतात्वापत्तिर्विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्व्वतत्वेऽपि
स्य सत्त्वादिति चेत्। न। विशेष्यतावच्छेदकतापर्य्याप्त्य-
देकत्वसम्बन्धेनानुमितिं प्रति तादृशावच्छेदकत्वपर्य्या-
कत्वसम्बन्धेन कारणत्वस्य विवक्षितत्वात्। न च
न वेति संशयसत्त्वे दण्डरक्तवान् वह्निमानि-
बुद्धिविषयत्वरूपस्यैव समुदायत्वस्यानु-
बुद्धिभेदेन भिन्नत्वान्नानुपपत्तिरिति

इत्याद्यप्रसिद्धसाध्यविशेष्यकानुमितिस्थले पक्षविशेष्यकसाध्यसन्देहा-सम्भवः इतरत् पृथिवीनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगि न वेति सन्देहस्य पक्षविशेष्यकसाध्यसन्देहत्वाभावादिति वाच्यं। साध्यविशेष्यकानुमितौ साध्यज्ञानाभावस्यैव पक्षतात्वात्, अत एव उत्कृष्टत्वसाध्यज्ञान-सत्त्वेऽपि न साध्यविशेष्यकानुमितिः किन्तु साध्यप्रकारिकैवेति न काप्यनुपपत्तिः।

भट्टाचार्य्यास्तु सन्दिग्धः साध्यरूपो धर्मो यस्य पुरुषस्य तत्त्व-मिति बहुव्रीहिः, धर्मपदञ्च स्वरूपकथनं, तथाच समवाय-सम्बन्धेन साध्यसन्देहवत्त्वं पक्षत्वमित्यर्थः, अनुमितिजनकस्यास्य पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वाभावेन पक्षानिष्ठत्वेऽपि क्षतिविरहात्, साध्य-सन्देहपदञ्च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यक-साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध-संसर्गक-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारकनिर्णयनिवर्त्तनीयसंशयपरं, तेन पक्षः साध्यवान्न वा, साध्यं पक्षे न वा, साध्यं पक्षवृत्ति न [illegible] साध्यं पक्षनिष्ठाभावप्रतियोगि न वेत्यादीनां सर्वेषां सन्देहा[illegible] प्रसिद्धसाध्यकस्थले इतरत् पृथिवीनिष्ठान्योन्याभावप्रतियो[illegible] वेत्यादिसाध्यप्रतियोगिविशेष्यकसन्देहानाञ्च सङ्ग्रहः, [illegible] तावादिनामेतदन्यतमसन्देहादेवानुमितिस्वीकारात्। [illegible] पक्षे न वेत्यादिसंशयो न तादृशनिर्णयनिव[illegible] निर्णयस्यैव प्रतिबन्धकत्वादिति कुतस्तेषां सङ्ग्[illegible] हपक्षतावादिनां प्राचां भिन्नप्रकारकनिर्[illegible] साध्यतावच्छेदकसम्बन्धसंसर्गकेत्युपादा[illegible] निर्णयदशायां सम्बन्धान्तरेण स[illegible]

निवर्त्तनीयत्वञ्च तादृशनिर्णयत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिबध्यत्वं, तेन पर्वतो वह्निमान् घटवांश्चेति निर्णयनिवर्त्यस्य पर्वतो घटवान्न वेति संशयस्य, पर्वतो वह्निमान् वह्नीरूपवांश्चेति समूहालम्बननिर्णयनिवर्त्त्यस्य वह्नीरूपवान्न वेति सन्देहस्य वा(१) पर्वतो वह्निमान् इत्याद्यनुमितौ न पक्षतात्वं, प्रतिबध्यत्वञ्च पक्षतावच्छेदकाघटकतया या साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयिता तद्व्याप्यं ग्राह्यं, तेन पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्न्यभावव्याप्यजलत्ववान् इत्याद्यनुमितौ पर्वतो वह्निमान्न वेति संशयस्य न पक्षतात्वं, वह्निव्याप्यधूमकालीनः पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् इत्यनुमितौ वह्निव्याप्यधूमकालीनः पर्वतो वह्निमान्न वेति संशयस्य पक्षतात्ववारणाय पक्षतावच्छेदकाघटकतयेति विषयिताविशेषणं(२), संशयत्वेनोपादानञ्च बाधनिश्चयस्यापि पक्षविशेष्यकसा-

---

य १

तादृशनिर्णयनिवर्त्यत्वे सति साध्यविषयकसंशयत्वं पक्षतात्वमित्युक्तौ पर्व्वतो वह्निमानित्यनुमितौ पर्व्वतो घटवान्न वेति संशयस्य पक्ष-
...त्ववारणासम्भवात् स्थलान्तरानुसरणमिति तात्पर्य्यं।

...रत् पृथिवीनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगि न वेति संशयस्या-
...नत्प्रतिबध्यतायाः साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयिताव्याप्यत्व-
... चेतरभेदादिसाध्यकपक्षतालक्षणे तन्न निवेश्यमिति
...व्यापकाभाव इत्यनुमितौ ह्रदो धूमवान्न वेति संश-
...एतद्दोषवारणाय धूमव्यापकाभावरूपाप्रसिद्ध-
...यविषयिताव्याप्यत्वनिवेशे धूमव्यापकं ह्रद-
...संशयस्यासंग्रहापत्तेः इति चेत्। न।
...ावच्छेदकविशिष्टविषयिताव्याप्यत्व-

द्गतेन बाधनिश्चयप्रतिबध्यतावच्छेदकविषयिताश्रयत्वस्य विवक्ष-णात्। न च संशयमात्रस्यासंग्रहः तादृशप्रतिबध्यत्वस्य बाधनिश्च-येऽपि सत्त्वात् तत्र बाधनिश्चयप्रतिबध्यतावच्छेदकविषयिताविरहा-दिति वाच्यं। विरोधिविषयकनिश्चयान्यज्ञानवृत्तित्वविशिष्टप्रति-बध्यतायां व्याप्यत्वनिवेशात्। न च तथपि धूमाभावादिसाध्यक-स्थले तादृशज्ञानवृत्तित्वविशिष्टप्रतिबध्यत्वस्य महानसीयधूमवान्न वेति संशयसाधारणत्वात् तत्र बाधनिश्चयप्रतिबध्यतावच्छेदकविषयिताविरहादसंग्रह इति वाच्यं। विरोधिविषयकनिश्चयभेदकूटरूपविरोधि-विषयकनिश्चयान्यत्वशरीरे धूमसामान्याभावाप्रकारकत्वे सति धूम-त्वनिष्ठावच्छेदकताकप्रकारतानिरूपकत्वरूपनिश्चयत्वनिवेशात् तादृ-शनिश्चयत्वावच्छिन्नभेदस्य तत्रासत्त्वात्। नव्यास्तु साध्यविषयतापदेन साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयताया विवक्षणात् वैशिष्ट्यञ्च स्वावच्छि-न्नत्व-स्वाश्रयीभूताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नत्वान्यतरसम्बन्धेन, तथाच न इतरत् पृथिवीनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगि न वेत्यादि-संशयासङ्ग्रहः उक्तसंशयीयेतरत्वावच्छिन्नविषयताया उक्तान्यतर[illegible] न्धेन साध्यतावच्छेदकविशिष्टत्वात् साध्यतावच्छेदकविशिष्ट[illegible] व्याप्यत्वस्य प्रतिबध्यतायां क्षतेः इत्याहुः।

अथ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित[illegible] कावच्छिन्नप्रकारत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपित[illegible] संशयत्वनिवेशेनैव सामञ्जस्ये प्रतिबन्धकताया[illegible] त्वनिवेशः पर्व्वतो वह्निमानित्यनुमितौ[illegible] संशयवारणन्तु प्रकारतावच्छेदकता[illegible] वह्निमत्पर्व्वतवन्न वेति संशयस्य[illegible] शेष्यतानिवेशेनैव तद्वारणात्[illegible] संशयस्य संग्रहापत्तिरि[illegible]

निवेशात् इति चेत्। न। पर्व्वतो वह्निमानित्यनुमितौ
वह्नि-घटोभयवान् न वेति संशयस्य पक्षतात्वापत्तेः पर्व्वतो वह्नि
भयाभाववानिति बुद्धिं प्रति पर्व्वतो वह्नि-घटोभयवानिति ज्ञ
एकत्र द्वयमिति रीत्या पर्व्वतो वह्नि-घटवान् इति ज्ञानस्यापि
बन्धकत्वं तत्र च तादृशबुद्धित्वावच्छिन्नं प्रति तादृशज्ञानद्वयस्य
वात् वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपित-पर्व्वतत्वावच्छिन्नविषय
रूपित-घटत्वावच्छिन्नप्रकारताशालिनिश्चयत्वेनैकरूपेण प्रति
बन्धकत्वकल्पनात्। न च साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपि
विशेष्यतायां निवेश्यं इति वाच्यं। महागौरवापत्तेरिति ध्येयम्।

अत्र पक्षतावच्छेदकाघटकत्वं पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नमुख्यविशे
त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदप्रतियोगितानवच्छेदकत्वरूपं, अव
कत्वञ्च निरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्नं ग्राह्यं अतो न प्रमेयपक्षक
तादृशभेदाप्रसिद्धिः, मुख्यविशेष्यतानिवेशनन्तु वह्निर्वह्निमानित्य
मितौ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयिताकभेदप्रतियोगितानवच्छेदक
साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नविषयत्वाप्रसिद्ध्या वह्निर्वह्निमान्न वेति संश
यस्य पक्षतात्वानुपपत्तिवारणाय इति यदि वाच्यं तदा वह्निव्याप्ये
ह्निव्याप्यवानित्यनुमितौ वह्न्यभावः वह्निव्याप्ये न वेति संशयस्य
पत्तिः, अतः पक्षतावच्छेदकविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धित्वाव-
निरूपित-जनकतावच्छेदकप्रकारताभिन्नत्वरूपं। न च
प्यो वह्निव्याप्यवानित्यनुमितौ वह्निव्याप्यो वह्निमान्न
ग्रहापत्तिः वह्निव्याप्यत्वावच्छिन्नविशेष्यतायाः
ति वाच्यं। स्वभिन्नत्व-स्वसामानाधिकर-
वच्छिन्नविषयताविशिष्टं यत् साध्य-
त्वस्यैव प्रकृते निवेशात्। न च
व[illegible] वेति संशयस्या-

संग्रहापत्तिः एककल्पावच्छिन्नप्रतिबध्यत्वस्य प्रतिबध्यभेदेऽप्यैक्यमते भूतलं वह्न्यभाववद्वह्निमन्न वेति ज्ञानेऽपि तत्प्रतिबध्यतासत्त्वेन तत्र पक्षतावच्छेदकाघटकसाध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयिताया असत्त्वेन व्याप्यत्वविरहादिति वाच्यं। स्वावच्छिन्नत्व-स्वसामानाधिकरण्योभय-सम्बन्धेन मुख्यविशेष्यताविशिष्टं यत्प्रतिबध्यत्वं तत्रैव व्याप्यत्वनिवेशात् अत्र तु विशिष्टाधिकरणतानभ्युपगमादित्यवधेयं। एतेन साध्यतावच्छेदकविषयिताया व्याप्यत्वं कथं न निवेशनीयं इति पूर्व्वपक्षोऽपि निरस्तः। वह्निर्वह्निमानित्यनुमितौ वह्निर्वह्निमान्न वेति संशयस्यासंग्रहापत्तेः तदीयसाध्यतावच्छेदकविषयतायाः पक्षतावच्छेदकघटकत्वादिति। वस्तुतस्तु साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयित्वपदेनात्र साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकावच्छिन्नविषयित्व-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नविषयित्वान्यतरमेव विवक्षणीयं अन्यथा दण्डिमान् दण्डिसंयोगादित्यत्र दण्डिमान्न वेति संशयस्यासंग्रहापत्तिः तत्प्रतिबध्यत्वस्य दण्डत्वेन घटाद्यवगाहिदण्डाभाववानिति ज्ञानसाधारणतया तत्र च साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयिताया असत्त्वेन व्याप्यत्वविरहात्, साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयितापदस्य तत्रैव तात्पर्यमिति।

अत्र साध्यविषयित्वावच्छिन्नत्वमनिवेश्य साध्यविष[...]
निवेशनन्तु वह्निव्याप्यसाध्यकस्थले वह्निमान्न वेति सं[...]
वारणाय, तथाहि वह्निव्याप्यवत्तानिश्चयस्य व[...]
त्वेन प्रतिबध्यत्वं वह्न्यभावप्रकारकयावज्ज्ञा[...]
वात् न तु प्रतिबध्यभेदेन प्रतिबध्यताया [...]
त्मकवह्न्यभाववान् इति ज्ञाने व[...]
साध्यविषयित्वावच्छिन्नत्वादतिव्या[...]
यिताया एव वह्निव्याप्यत्वाव[...]

ध्यनिर्णयप्रतिबध्यत्वात्तस्य पक्षतात्ववारणाय। न च बाधनिर्णयस्य तात्त्वेऽपि सामान्यतोविशिष्टबुद्धिमात्रं प्रति बाधनिश्चयस्य प्रतिब त्वादेव तत्सत्त्वेऽप्यनुमित्यभावोपपत्तिरिति वाच्यं। बाधनिश्चये ताव्यवहाराभावात् सन्दिग्धाप्रामाण्यकबाधनिश्चयसत्त्वे सिद्धा परामर्शादनुमित्यापत्तेश्च। अगृहीताप्रामाण्यकत्वेन तादृशवि निवर्त्त्यविशेषणे सन्दिग्धाप्रामाण्यकसाध्यसन्देहादनुमित्यनुत्पादा न च सामान्यतः संशयत्वेनोपादानेऽपि वह्न्यभाववान् पर्वतो घट वेति घटादिसन्देहात्मकबाधनिश्चयस्य पर्वतो वह्निमानित्यनु पक्षतात्वापत्तिः साध्यसन्देहत्वेनोपादाने च नोक्तसंशयानां स इति वाच्यं। संशयपदेन पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षविशेष्यक-स तावच्छेदकविशिष्टसाध्यवत्त्वग्रहत्वावच्छिन्नविरोधिविषयकनिश्चयान् ज्ञानस्य विवक्षितत्वात्[१]। न चैवं तादृशनिर्णयप्रतिबध्यताया अ-

---

भाववानिति ज्ञानेऽपि प्रतिबध्यतायाः सत्त्वात् तत्र साध्यविषयित विरहेण नोक्तातिव्याप्तिः। केचित्तु यत्र क्षेत्रविशेषस्य अङ्कुरविशेष न्यस्य पक्षत्वं अङ्कुरविशेषस्य साध्यत्वं तदङ्कुराभाववत् तत्क्षेत्रमिति पि भ्रमेण जातः तत्र विषयितासम्बन्धेन तदङ्कुराभाववत्तत् ष्टज्ञानत्वेनैव प्रतिबध्यत्वात् तत्र साध्यविषयित्वावच्छिन्न सिद्धा तत्क्षेत्रं तदङ्कुरवन्न वेति संशये अव्याप्तिः, अस्म- विषयिताव्याप्यत्वसत्त्वान्नाव्याप्तिः। अतएव जग- क्तत्वैव साध्यविषयित्वावच्छिन्नत्वं प्रतिबध्यतायां यं।

त्वं पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षविशेष्य- त्ताग्रहत्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरू-

पितप्रतिबन्धकतावच्छेदकविषयितावित्रिष्टान्यज्ञानत्वं, वैशिष्ट्यञ्च स्वावच्छिन्नप्रतिबन्धतानिरूपितप्रतिबध्यतावच्छेदकविषयिताशून्यत्व-स्वनिरूपकत्वोभयसम्बन्धेन। न चैवं अवच्छेदावच्छेदेन वह्नेः साध्यत्वे सामानाधिकरण्येन सन्दिग्धाप्रामाण्यकबाधनिश्चयात्मकस्य सामानाधिकरण्येन वह्निकोटिकस्य अवच्छेदावच्छेदेन वह्न्यभावकोटिकस्य संशयस्यासंग्रहः निरुक्तोभयसम्बन्धेन वह्निमत्त्वग्रहप्रतिबन्धकतावच्छेदकं यत् सामानाधिकरण्येन वह्न्यभावविषयित्वं तद्वत्त्वस्य सत्त्वादिति वाच्यं। स्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदक-विषयित्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिबध्यतावच्छेदकविषयिताशून्यत्व-स्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकविषयितावत्त्वोभयसम्बन्धेन साध्यवत्त्वग्रहत्ववत्त्वस्यैव तादृशग्रहविरोधिविषयकनिश्चयत्वपदेन विवक्षणीयत्वात् उक्तसंशये अवच्छेदावच्छेदेन वह्न्यभावविषयित्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिबध्यतावच्छेदकविषयित्वस्यैव सत्त्वेन साध्यवत्त्वग्रहत्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरूपित-प्रतिबन्धकतावच्छेदकविषयित्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिबध्यतावच्छेदकविषयिताशून्यत्वविरहान्न तत्राव्याप्तिः। न च पर्व्वते वह्निमानित्यत्र वह्न्यभाववत्पर्व्वतवान् न वेति संशयस्य पक्षता[...] तादृशसंशयस्य साध्यवत्त्वग्रहप्रतिबन्धकतावच्छेदको[...] वत्पर्व्वताभावत्वावच्छिन्नविषयतान्तःपातिवह्न्यभावत्वा[...] त्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपित-वह्न्यभाववत्पर्[...] च्छिन्नप्रतिबध्यतायाः सत्त्वेन यथोक्तविरो[...] [...]तेरिति वाच्यं। तादृशग्रहत्वावच्छि[...]

[...]तानिरूपित-प्रकारतात्वावच्छि[...]

न्यत्वस्य विवक्षणीयत्वात् वैशि[...]

तात्वावच्छिन्नावच्छेदकतानि[...]

वच्छेदकविषयिताशून्यत्वोभयसम्बन्धेन, तथाच वह्न्यभाववत्पर्व्वता वत्वावच्छिन्नविषयतान्तःपातिवह्न्यभावत्वावच्छिन्नविषयतायाः स वत्पत्तग्रहप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वेऽपि तादृशावच्छेदकत्वं न प्रक तात्वावच्छिन्नमपि तु अवच्छेदकतात्वावच्छिन्नमेवेति नोक्तसंश पक्षतात्वापत्तिः। न च अवच्छेदावच्छेदेन वह्निसाध्यकस्थले अ प्यवृत्तित्वज्ञानकाले अनाहार्य्यस्य सामानाधिकरण्येन वह्न्यवग वच्छेदावच्छेदेन वह्न्यभावावगाहिसमुच्चये अतिव्याप्तिरिति व साध्य-तदभावान्यतरधर्म्मिकाव्याप्यवृत्तित्वज्ञानविशिष्टान्यत्वस्य तन्नेण विशेषणात् उक्तसमुच्चयस्य वारणासम्भवात्, अव्याप्यव त्वज्ञानवैशिष्ट्यञ्च स्वविशिष्टक्षणोत्पत्तिकत्व-स्वसामानाधिकरण्यो सम्बन्धेन स्ववैशिष्ट्यञ्च स्वाव्यवहितोत्तरत्व-स्वाश्रयत्वान्यतरसम्बं संशय-समुच्चययोर्वैलक्षण्याय संशये संसर्गांशे विरोधभानस्य भ चार्य्यसम्मतत्वात् अव्याप्यवृत्तित्वज्ञानकाले संशयोत्पादासम्भव संशयस्याव्याप्यवृत्तित्वज्ञानविशिष्टान्यत्वं न तु समुच्चयस्येति न को दोष इति सुधीभिर्विभावनीयं। विरोधिविषयताशून्यत्वमात्र वेशे भट्टाचार्य्यमते संशयासंग्रहः स्यादतो विरोधिविषयकनिश्च न्यत्वपर्य्यन्तानुसरणं। पक्षविशेष्यक-साध्यप्रकारकनिश्चयो भव णेच्छायाः पक्षतात्ववारणाय चरमं ज्ञानपदमिति।

एवञ्च निश्चयधर्म्मिकाप्रामाण्यसंशयाभावव्यक्तीनां कारणताव वश्यं निवेशनैव सन्दिग्धाप्रामाण्यकबाधनिश्चयवारणसम्भवात रध्यकनिश्चयान्यत्वनिवेशेनेति चेत्। न। यद्यदप्रामा साध्यवत्तानिश्चयनिवर्त्तनीयसंशयसत्त्वे नानुमिति नेदानां पक्षताघटकतया बाधनिश्चयधर्म्मिका- पाप्पक्षताघटत्वमपेक्ष्य लाघवात् निरुक्तवि- यत्वेनैवौचित्यात् इति विभावनीयं।

त्सिद्धेरपि पक्षतापत्तिरिति वाच्यं। सन्देहपक्षतावादिनामनु-
मानौ सिद्धेरप्रतिबन्धकत्वात् यथोक्तनिश्चयान्यप्रत्ययं वा संशयपदेन
ग्रहणीयमतो न काप्यनुपपत्तिरित्याहुः।

—केचित्तु सन्दिग्धं साध्यं येन रूपेण इत्युक्तव्युत्पत्त्या यत्साध्यसन्देहवि-
षयं तावच्छेदकं तदेव धर्मो यस्य इति बहुव्रीहिणा साध्यसन्देहविशेष्य-
विवच्छेदकधर्मवत्त्वमित्यर्थः, यद्वा सन्दिग्धं साध्यं धर्मो यस्येति व्युत्प-
त्त्यान् सन्दिग्धसाध्यवत्त्वमित्यर्थः, इत्थञ्च पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वेऽपि
त्वात न पक्षतावच्छेदक-पक्षयोरतिप्रसक्त्यप्रसक्ती इत्याहुः। तदसत् आद्ये
नेस्रतत्वादिरूपेण यत्र महानसादेः पक्षत्वं तत्राव्याप्त्यापत्तेः, पक्षताया-
।,संद्भमितिजनकत्वेनातीतादौ पक्षे[१] अनुमित्यभावापत्तेश्च। द्वितीये
र्म्वदो वह्निमान् धूमादित्यादौ बाधितेऽव्याप्त्यापत्तेः अतीतादौ साध्ये
व ुमित्यभावापत्तेश्च।

वा अन्ये तु सन्दिग्धः साध्यरूपोधर्मो यत्र तत्त्वमित्यर्थः, यद्वा
सन्दिग्धं साध्यं यत्र तादृशधर्मत्वमित्यर्थः, मतद्वय एव धर्म
स्वरूपकथनं न तु विवक्षितं प्रयोजनाभावात् आकाशादेः
पक्षत्वे चाव्याप्त्यापत्तेश्च, तथाच विशेष्यतासम्बन्धेन सा
पक्षत्वमिति तु फलितमित्याहुः। तदसत् विशेष्य
सन्देहस्यानुमितिहेतुत्वे पर्वतत्वरूपेण यत्कि
तेन रूपेण पर्वतान्तरेऽनुमित्यनुदयापत्ते
निर्णीतरूपेणाप्यनुमित्यापत्तेश्च। ए
साध्यसन्देहानन्तरं स्मरणादि

(१) अतीतादौ पक्षताव

नापि साधक-बाधकप्रमाणाभावः, उभयाभावस्य प्रत

पत्तिः, मननादिस्थले साध्यनिश्चयदशायां सिषाधयिषयाप्यनुमित

नुदयापत्तिश्च, तथापि तदुपेक्ष्य स्फुटतरं दोषमाह, 'सन्दे

हीति, 'न विशेषणमिति न तत्तत्पुरुषीयत्वविशेषितः सन् समा

विशेष्यतावच्छेदकताप्रत्यासत्त्या अनुमितिकारणमित्यर्थः, भट्टाचा

मते 'न विशेषणं' न समवायघटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या

रणमित्यर्थः, 'परामर्शपूर्वमिति, लिङ्गविशेष्यकव्याप्तिप्रकारकज्ञा

त्पत्तिसमय इति शेषः, 'लिङ्गदर्शनेति लिङ्गेन्द्रियसन्निकर्षेणेत्य

'आदिपदात् तत्समानकालोत्पन्नसंशयजन्यकोटितावच्छेदकप्रका

कसंस्कारादिपरिग्रहः, 'तस्य नाशादिति तस्य कचिन्नाशादि

तेन यत्र संशयाव्यवहितोत्तरमेव स्मरणाद्यात्मकोविशिष्टपरामर्शस्

परामर्शक्षणे सन्देहसत्त्वसम्भवेऽपि नासङ्गतिः। न च परामर्शक्ष

सन्देहस्यासत्त्वेऽनुमितिरपि नोत्पद्यत इति वाच्यं। अनुभवविरो

धादिति भावः। 'नोपलक्षणमिति न तु तत्पुरुषीयत्वाद्यविशेषि

पक्षत्व तिरूकप्रत्यासत्त्या अनुमितिजनकमित्यर्थः, भट्टाचार्य्यमते च 'नो

...कालिकसामानाधिकरण्यमात्रप्रत्यासत्त्या कारणमित्यर्थः

...त्तेरिति पक्षे साध्यनिश्चयदशायामनुमितेरव्यावर्त्त

तिवद्ध्य ...दानीमपि पुरुषान्तरीयसाध्यसन्देहसम्भवादिति

रेतरा... परासन्दिग्धसाध्यकस्थले परामर्शपूर्व्वं तदुत्प-

प्रकार... नुमित्यनुदयापत्तिश्च तत्र पुरुषान्तरीय-

नद्दोष... 'विषयि...ष्यं।

संशयस्थले पक्षे साध्यनिश्चयः बाधकप्र-

सत्त्वेऽपि सत्त्वात्। नाप्यभावद्वयं तथा, बाधकप्रमा-
ाभावस्य व्यर्थत्वात् ह्रदादेः पक्षत्वेऽपि बाध-हेत्व-
ज्ञादेरावश्यकत्वेनानुमित्यनुत्पादात्। नापि साध-

---

णं पक्षे साध्याभावनिश्चयः तदभाव इत्यर्थः, न तु वुण्प्रत्यया-
विवक्षितः, तथा सति सर्व्वत्रानुमित्यात्मकसाध्यनिश्चयजनकप्रमा-
त्यानुमानस्य साध्य-तद्बाधनिश्चयजनकप्रमाणस्यात्ममनःसंयोगादेश्च
वात् अनुमित्यनुत्पादापत्तेः। न च केवलान्वयिनि साध्याभाव-
निश्चयाप्रसिद्धा तदभावस्य हेतुत्वासम्भव इति वाच्यं। खण्डशः
सेद्धा अभावान्तरे साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व-
म्बन्धेन साध्यभ्रमरूपस्य साध्याभावनिश्चयस्य तत्रापि सम्भवात्। न
च तथापि बाधकप्रमाणपदस्य पक्षविशेष्यकसाध्याभावनिश्चयरूप-
बाधनिश्चयपरत्वे साध्यं पक्षनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगीति बाध-
निश्चयस्यासंग्रह इति वाच्यं। तस्य भिन्नप्रकारकतया अनुमित्य-
प्रतिबन्धकत्वात् असंग्रहस्यैवोचितत्वात्, तत्सत्त्वे क्वचिदनुमित्यु-
दस्य तदुत्तरं पक्षविशेष्यक-साध्याभावनिश्चयस्याप्युत्पाद-
वात् भिन्नप्रकारकस्य तस्य प्रतिबन्धकत्वनयेऽपि स-
त्त्वादिनिश्चयवत्तदसंग्रहे क्षतिविरहाच्च। न हि
भावः पक्षतायां निवेशनीयः।

केचित्तु 'बाधकप्रमाणपदं यथोक्त-
प्रतिबन्धकाभावकूटस्य हेतुत्वेन
क्षतावच्छेदकविशिष्टविशेष्य-

कप्रमाणाभावः, "श्रोतव्यो मन्तव्य इतिश्रुत्या[१] सम
नविषयकश्रवणानन्तरं मननबोधनात् प्रत्यक्षदृष्टेऽप्यनु
नुमानदर्शनात् एकलिङ्गावगतेऽपि लिङ्गान्तरेण तद

---

रोधिनिश्चयत्वेन वा अनुगमनीयं बाधनिश्चयाभाववत् साध्याभा
व्याप्यवत्तादिनिश्चयाभावस्यापि पक्षतायान्निवेशे क्षतिविरहात्, तद्व
वृत्त्या वा विरोधिता निवेशनीया इत्याहुः।

'साधक-बाधक-मानाभावपदेन तदुभयत्वावच्छिन्नप्रतियोगित
काभावो विवक्षितः, प्रत्येकधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावद्वयं वा
विवक्षितं, तत्र नाद्य इत्याह, 'तदुभयेति, तथाच केवलसिद्धिसत्त्वेऽ
बाधकाभावमादाय पक्षतासत्त्वादनुमित्यापत्तेरिति भावः। नान्त्य
इत्याह, 'नापीति, 'व्यर्थत्वादिति अनुमितित्वावच्छिन्नं प्रति जन
कताकल्पनाया व्यर्थत्वादित्यर्थः। ननु ह्रदो वह्निमान् धूमादि
त्यादावनुमितिवारणायानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति तज्जनकत्वमावश्यक-
न आह, 'ह्रदादेः पक्षत्वेऽपीति ह्रदादेर्यत्र पक्षत्वं तत्रापीत्यर्थः,
गादिति साध्य-हेत्वादिविशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रति अवश्य-
ए

---

ध्य यते, आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्या-
व्यः। अस्या अर्थः मुमुक्षुणा आत्मा मुमुक्षोरात्म-
ति यावत्, आत्मदर्शनोपायः क इत्याह, श्रोतव्य-
शाब्दज्ञानमस्यक्तो भवति अग्निहोत्रं जुहोति
गाच श्रवण-मनन-निदिध्यासनानि तत्त्व-
मं मतं।

मानाच्च मन्तव्यश्चोपपत्तिभिरिति स्मरणात्[१]। अथ सिषाधयिषितसाध्यधर्म्मा धर्म्मी पक्षः तथाहि मुमुक्षोः शब्द ...त्मावगमेऽपि मननस्य मोक्षोपायत्वेन सिद्धि-

---

...प्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, 'हेत्वसिद्ध्यादेरित्यादिपदात् धूमवान् वह्ने-रित्यादौ व्यभिचार-व्याप्यत्वासिद्ध्यादेः परिग्रहः, 'नापीति, 'साधक-माणं' पक्षे साध्यनिश्चयः, प्रागुक्तयुक्तेः, 'समानविषयकेति आत्म-...श्यकात्मेतरभेदप्रकारकशाब्दबोध...आनन्तरमित्यर्थः, ...

...आत्म...साध्यकानुमितिबोधनादित्यर्थः। दू-...न्तरमाह[२], 'प्रत्यक्षदृष्टेऽपीति प्रत्यक्षतो निश्चितेऽपीत्यर्थः, 'अ...नदर्शनात्' अनुमित्सया अनुमितिदर्शनात्, 'तदनुमानाच्चेति ...धयिषया तदनुमानाच्चेत्यर्थः। नन्वेकलिङ्गावगतस्य लिङ्गान्तरे...मितिरसिद्धेत्यत आह, 'मन्तव्यश्चेति आत्मन्यात्मेतरभेदोऽनु...व्यश्चेत्यर्थः, 'उपपत्तिभिः' बहुभिर्हेतुभिरित्यर्थः, अन्यथा बहु...नुपपत्तेरिति भावः। 'सिषाधयिषितेति सिषाधयिषित... धर्म्मो यस्य पुरुषस्य स सिषाधयिषितसाध्यधर्म्मा ... धर्म्मन्निति धर्म्मशब्दस्य धर्म्मन्नादेशात् एवम्भूतः '... पक्षतावान् इत्यर्थः, धर्म्मपदञ्च स्वरूपकथ...

---

(१) श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्य...
एते दर्शनहेतवः॥ इति स्म...

(२) प्रात्यक्षिकसिद्ध्यभावम...

विशेषानुमितीच्छया ... नुमानम्, अत एव प्रत्यक्षपरि-
... मप्यर्थमनुमानेन बुभुत्सन्ते तर्करसिकाः, न ...

... पदप्रवृत्तिनिमित्ताभावे ... पक्षासिद्धत्वेऽपि क्षतिविरह ..., तत्त्...
... तत्पुरुषीयानुमितिगोचरेच्छा तत्पुरुषीय ...
... साधकानुमितौ पक्षतः तेनान्यसाधकानुमितौच्छामा...
... नातिप्रसङ्गः, तत्पुरुषीयत्वेनानुमितिविशे...
अन्यपुरुषीयतादृशानुमितिविषयकेतत्पुरुषीयेच्छामादाय नातिप्र...
धिकरणतादृशेच्छामादाय नातिप्रसङ्गः।

प्राञ्चस्तु सिषाधयिषितं साध्यं धर्म्मो यस्य एवम्भूतो धर्म्मी पक्ष इत्यर्थः,
... च सिषाधयिषितसाध्यवत्त्वं पक्षत्वमिति फलितं, अत्र पक्षपदप्र-
वृत्तिनिमित्तत्वेऽपि अस्य न क्षतिरित्याहुः। तदसत्सपक्षेऽतिव्याप्तेः
...धितसाध्यकेऽव्याप्तेश्च पक्षताया अनुमितिकारणत्वेन अतीतादौ
...ऽनुमितेरभावापत्तेश्च।

... पूर्वोक्ताव्याप्तिं निरस्यति, 'तथा हीति तथाचेत्यर्थः,
... आत्मन्यात्मेतरभेदनिश्चयेऽपि, 'मननस्य' आत्म-
...भेदज्ञानस्य, 'मोक्षोपायत्वेन' मोक्षोपायत्वज्ञा-
... सम्पादितं, 'सिद्धिविशेषेति अनुमितिवि-
... आत्मनि आत्मेतरभेदानुमानं, 'अत एवेति
... एव वाचस्पतिवचनयोरविरोध इत्य-

... इत्यर्थः।

...ष्टे चौत्कारेण तमनुमिमतेऽनुमातार इति

...न्ते' जानन्ति, सन्प्रत्ययार्थस्याविवक्षितत्वात् तदर्थस्य ...विरोधासम्भवात्[१]। 'तं' करिणं, 'अविरोध इति, अन्यथा ...क्कलितमित्यनेन प्रत्यक्षकलितस्यापर्थस्यानुमितिरित्युक्तं, 'न हि

वचनगतविरोधस्तु विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वं, अत्र वाचस्पतिवचनयोः प्रत्यक्षविषयत्वविशिष्टरूपैकधर्म्मिणि अनुमितिविषयत्व-अनुमितिवि-... रूपयोर्विरुद्धयोरर्थयोः प्रतिपादकत्वेनैव विरुद्धत्वं सङ्ग-...त, सन्प्रत्ययार्थस्य विवक्षितत्वे सनः स्वतन्त्रकर्म्मतावादिमते बुभुत्सन्त इत्यनेन अनुमितीच्छावन्त इत्यर्थः, 'अनुमिमत इत्यने-नानुमितिमन्त इत्यर्थो लभ्यते तथाच प्रत्यक्षविषयत्वविशिष्टे अनुमितीच्छाविषयत्व-अनुमितिविषयत्वाभावरूपयोरविरुद्धार्थ-प्रतिपादनेन विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वरूपो विरोधो न घटते अ... स्वतन्त्रकर्म्मतावादिमतमनुसृत्य मथुरानाथेन सन्प्रत्ययार्थ... वक्षितत्वमुक्तं। जगदीशेन तु सनो न स्वतन्त्रकर्म्मत्वं अपि... धातोः कर्म्मत्वमेव सनः कर्म्मत्वं इति वादिमतमनुसृत्य सन्... विवक्षितः, तन्मते सनः स्वतन्त्रकर्म्मत्वाभावेन अनुमिति... नुमित्साविषयत्वं तथाच प्रत्यक्षविषयत्ववि... अनुमितिविषयत्वाभावरूपयोर्विरुद्धार्थयो... र्थस्य विवक्षितत्वेऽपि न विरोधस्या... दिभिः गगनं दिदृक्षते घटं... तु मूलधातोः कर्म्मत्वमेव ... न्तनीयं।

वाचस्पतिवचनयोरविरोधः अनुमित्सा-
दुपपत्तेरिति चेत्। न। सन्देहवत्परामर्श

करिणि दृष्टे इत्यनेन प्रत्यक्षकलितस्यार्थस्य नानुमितिः, तथा
वचनद्वयस्य विरोधः स्यादिति भावः। अविरोधमुपपादय
'अनुमित्सेति, 'तद्विरहः' सिषाधयिषाविरहः, 'तदुपपत्ते
वचनयोरुपपत्तेरित्यर्थः, अनुमित्सासत्त्वदशायां 'प्रत्यक्षकलितमित्
अनुमित्साविरहदशायां 'न हि कारणेत्युक्तमिति विशेषादि
भावः। "सिषाधयिषाया इति सिषाधयिषाया
भावादित्यर्थः, यत्रादौ सिषाधयिषा ततो व्याप्तिस्मरणादि
ततो व्याप्तिप्रकारकलिङ्गज्ञानं ततः परामर्शः ततोऽनुमितिस्तत्रेति
वः। ननु सिषाधयिषायोग्यता पक्षता वाच्या सा च सिषाधयिषा-
पस्तीत्यत आह, 'योग्यताया इति, 'अनिरूपणात्' निरूपयितु-
ऽनुमितेरभा। ननु तत्रापि परामर्शोत्तरमनुमितीष्टसाधनताज्ञा-
मित्सा ततः परामर्शान्तरं ततोऽनुमितिः, अथ वा पराम-
णात्मकानुमितीष्टसाधनताविषयकपरामर्शान्तरं ततोऽनु-
नुमितिरिति फलबलात्कल्पनीयमित्यत आह, 'सिषाध-
सम्भकपरामर्शस्तस्य कारणं यो व्याप्तिस्मरणादिस्तद-
त्मनि आ अबुभुत्सितशत्रुसम्पदादेरित्यर्थः, तथा
एव वाचस्पत्याः कारणत्वसम्भवः, न च स्व

इत्यर्थः।

ठः ख० ग० पुस्तके

... कथमभावात् ... योग्यताया ...

... ऽपि घनगर्जितेन मेघानुमानात्

---

...पक्षक-तत्साध्यक-तल्लिङ्गक-तत्पुरुषीयानुमितीच्छाभाव

...भावादृशानुमितौ पक्षता वाच्या, तथाच भगवदिच्छामादायैव

...मितिरिति वाच्यं। तथा सति भगवदिच्छाया नित्यत्वेन

...स्यामपि पक्षताप्रसङ्गात्। ननु सिद्ध्युत्तरानुमितित्वमच्छा:

...च्छेदकमतो नोक्तस्थले व्यतिरेकव्यभिचार: तत्र सिद्धिरि-

..., सिद्ध्युत्तरानुमितित्वञ्च स्वसमानाधिकरणत्वे सति ...

...त्वसम्बन्धेन सिद्धिमदनुमितित्वं, स्वाव्यवहितो... ...

...धारणं, तत्र आधिकरणक्षणवृत्तित्वे सति स्ववृत्तिप्रागभावप्रति-

...योगित्वं अधिकरणत्वं वृत्तित्वद्वयञ्च कालिकविशेषणतया बोध्यं तेन

...सिद्ध्युत्पत्तिक्षणोत्पन्नानुमितेरपि संग्रह:. ...

...तिक्षण... कुत्रचित्सुखोत्पादात् ... क्षणद्वयमात्रस्थायितया

... सिद्धि... ...रनुमितेर्न संग्रह:, न च तथापि सिषाधयि-

...षाया अननुगततया न कारणत्वसम्भव:, यादृशयादृशेच्छासत्त्वे सि...

...सत्त्वेऽनुमितिस्तत्तदिच्छाभावकूटत्वावच्छिन्नाभावत्वेन का...

...वेवं सिषाधयिषासत्त्वे सिद्धिसत्त्वेऽपि सिद्ध्युत्तरानुमित्य...

...योसत्त्वादिति वाच्यं। सिद्ध्युत्तरानुमिति ...

---

(१) अथात्र सिषाधयिषाया: सत्त्वे...

...नुमितिरापादिता तत्रा...

...वच्छिन्नाभाव ...

...कारणाधीनतृतीयलिङ्गपरामर्शबलेनानपेक्षित... मानदर्शनाच्च ।

वस्तुतस्तु सिद्ध्युत्तरानुमितित्वं न कार्य्यतावच्छेदकं अपि तु तत्त-दिच्छाभावकूटत्वावच्छिन्नाभावोत्तरानुमितित्वमेव कार्य्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नञ्च तत्र जायत एव इति नापत्तिः । न च तथापि यत्र सिषाधयिषा नास्ति सिद्धिश्च वर्त्तते तत्र सिषाधयिषाभावकूट-त्वावच्छिन्नाभावोत्तरानुमितेरनुत्पादेऽपि अनुमितिसामान्यापत्तिर्दु-र्वारा सामान्यसामग्रीसत्त्वात् तदनुत्तरानुमितौ सामग्र्यन्तराकल्पना-दिति वाच्यं । तदनुत्तरानुमितावपि सिद्ध्यभावस्य हेतुत्वकल्पनादि-ति[1] । सैवं । गुरुतरकार्य्य-कारणभावद्वयप्रसङ्गात् सुख-दुःखेच्छा-द्वेष-

---

एकविधानुमितिद्वयेवानुमितिर्जायते वच तदिच्छात्वघटितत्वेन इच्छायाः प्रवेशादननुगततया तादृशेच्छात्वेनैव हेतुतया तत्रैव सिद्धिसत्त्वदशायां सिद्ध्युत्तरानुमितिरापादिता । वस्तुतस्तु यत्रादौ वह्निव्याप्यवान् वह्नि-व्याप्यव्याप्यवांश्चेत्याकारकः परामर्शः ततोऽनुमितिद ... यतनभि-लीच्छा ततो वह्न्यनुमित्यात्मकवह्निव्याप्यानुमितिः त ... ह्न्यनुमित्य-त्मकं तत्र प्रथमानुमितिसमये सिद्ध्युत्तरानुमित्यापा ः सिद्धिसत्त्वे ... यानुमितिजननात् तदिच्छाव्यक्तेः कारणत्वस्याऽश्यं वाच्य-ति ।

... मितौ सिषाधयिषया:, सिद्ध्यनुत्तरानुमितौ सिद्ध्यभावस्य

... ानुमितिभिन्नत्वे सति सिद्ध्यनुत्तरानुमितिभिन्नाया

एद

... स्थकार्य्यतानिरूपितकारणतावच्छेदिका या-

... दु ... न्नत्वस्य सोत्पत्तौ नियामकत्वाच्च ...

... तिसामान्यापत्तिरिति विभावनीयं ।

[illegible]रणां सत्तानामेव अणद्वयमात्रावस्थायितया वि-
[illegible] णानामेवोत्तरत्वानुत्तरत्वघटकत्वेन चतुर्दशकार्य-
[illegible] । न च स्वध्वंसाधिकरणसमयध्वंसानधिकरणत्वं(२)

---

[illegible] करणसमयध्वंसानधिकरणत्वे सति स्वाधिकरणसमय-
[illegible] त्पत्तिकत्वमेवाव्यवहितोत्तरत्वं तेन [illegible]
[illegible] न-सिद्धिनाश [illegible] त्पन्नानुमित्योः यथाश्रुततावृत्त [illegible]
[illegible] सति निरुक्तध्वंसाधिकरणत्वस्याव्यवहितोत्तर [illegible]
[illegible] न क्षतिः । अथात्र ध्वंसादिघटितमुत्तरत्वमनुत्त [illegible]
[illegible] गौरवं [illegible] कारणाभावा [illegible] पादयितुं [illegible] चेत् [illegible]
[illegible] कारणाभावा इति चेत् । न । अव्यवहितोत्तर [illegible]
[illegible] ग्राह्यस्य कार्य्यतावच्छेदकतापत्ते स्वध्वंसादिघटिताव्यवहि [illegible]
[illegible] सुखादिघटिताव्यवहितोत्तरत्वापेक्षया गुरुत्वं तस्य [illegible]
[illegible] । तथाव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धेन सिद्धिसामान्यस्य का [illegible]
[illegible] दकतायां कथं तन्निरास इति वाच्यं । सिद्धिमद्भेदत्वस्य [illegible]
[illegible] गुरुत्वेन कार्य्यतावच्छेदकतया तत्प्रतियोगितावच्छेदक [illegible]
[illegible] कल्पकत्वात् । सिद्धिवैशिष्ट्यस्य नानात्वात् [illegible]
[illegible] वच्छेदकत्वस्य कल्पकत्वादिति । वस्तुतस्तु गुरु [illegible]
[illegible] वच्छेदकतावटकत्वं स्वीक्रियते, कार्य [illegible]
[illegible] पि सङ्गच्छते, अभावप्रतियोगितावच्छेदक [illegible]
[illegible] न स्वीक्रियते तथाच [illegible] मादिशा [illegible]
[illegible] सिद्धिमद्भेदप्रतियोगितावच्छेदकत [illegible]
[illegible] दिघटिताव्यवहितोत्तरत्व [illegible]
[illegible] त्वसम्बन्धेन सिद्धिमद् [illegible]
[illegible] इति ध्येयं [illegible]

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते [illegible]
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे पक्षतापूर्व[illegible]

---

मति स्वाधिकरणसमयध्वंसाधिकरणत्वमेवाव्यवहितोत्तरत्वं वक्तव्यं
न तु सुखाद्यघटितमिति वाच्यं। तथापि प्रत्यक्षसुखादिघटित
[illegible]समादाय विनिगमकाभावेन पञ्चकार्य्यकार[illegible]
[illegible]रत्वात् शरीरगौरवस्याधिकत्वादिति निगर्वः।

[illegible] श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते [illegible] तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अद्वि[illegible] तीयखण्डे [illegible] पूर्वपक्षरहस्यं।

---

कार्य्यत्वे सति स्वध्वंसाधिकरणसमयाव्यवहितोत्तरत्व [illegible] विवक्षणीये
सामञ्जस्ये स्वाधिकरणसमयध्वंसाधिकरणत्वपर्यन्तमि[illegible] [illegible] इति
चेत्। न। [illegible]नुमितौ सिद्धमानस्य [illegible]। [illegible]
[illegible]तावच्छेदकसिद्ध्यनुत्तरत्व [illegible]व्यवहितोत्तरत्व [illegible]
[illegible] सिसाधयिषा[illegible]
[illegible]ान्[illegible] तत्रानुमितिनं स्यात्। तदनुमिते
[illegible]त्तरत्वसम्बन्धेन [illegible]विशिष्टान्यत्वेन [illegible]सिद्ध्यभाव[illegible]
[illegible]त्वात्, [illegible]मते तु उक्तानुमिति[illegible] [illegible]
[illegible]नुमितित्वघटिताव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धेन सिद्धि[illegible]
[illegible]काकान्तत्वमिति [illegible]प्रतिः।
[illegible]र्थताऽवच्छेदकसिद्ध्यनुत्तरत्व [illegible]
[illegible]त्वघटितत्वेऽपि [illegible]

## अथ पक्षतासिद्धान्तः ।

उच्यते सिषाधयिषाविरहसहकृतसाधकप्रमाणाभावो यत्रास्ति स पक्षः, तेन सिषाधयिषाविरहसहकृतं साधकप्रमाणं यत्रास्ति स न पक्षः, यत्र साधकप्रमा...

---

### अथ पक्षतासिद्धान्तरहस्यम् ।

'सिषाध' यतीति. 'सिषाधयिषाविरहसहकृत' [illegible] ...त् साधक [illegible] साध्यनिश्चयः [illegible] ... पक्षः पक्षपद [illegible] विषयतावच्छेदकान्तभि... [illegible]

तथाच वि[illegible]षणता[illegible]सम्बन्धेन समवायसम्बन्धावच्छिन्न... [illegible]

...ताकनिरूपकसाध्यनिश्चयाभाववत्त्वं अनुमितिजनकं पक्षत्वमिति [illegible] ... अनुमितिजनकसाध्य पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तलाभाचेन आत्मनिष्ठत्वे... ...तिविरहात्, पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वसत्त्वेऽपि स्वरूपसम्बन्धेन ... वृत्तिनिमित्ताभावात्स्वरूपसम्बन्धेन आत्मनिष्ठत्वेऽपि ...

---

आर्थ्य[illegible]वच्छेदकत्वि[illegible] नविवेशो यथः ...

साम[illegible]स्यात् इति [illegible]। तथा [illegible] ...

धिक [illegible]घटितसिद्धान्तत्वात् ...

कस कारणभेदात् स्वमते तु ...

सि[illegible]त्वावच्छिन्नानुमिति...

विशावनी[illegible]

सत्यसति वा सिषाधयिषा यत्र कोम[illegible]
विशिष्टाभावात् पक्षत्वं । यद्यपि पक्षत्वस्य [illegible]
यित्वात् नास्य भेदकत्वं, तथापि पक्षपदप्र[illegible]
मित्तमुक्तम् ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
[illegible] द्वितीयखण्डे पक्षतासिद्धान्तः ।

---

[illegible]टीभविष्यति । आत्मनिष्ठत्वाभिमानेन [illegible]
[illegible]वद्भिन्न[illegible] करणप्रत्यासत्त्या हेतुत्वबोधे [illegible]
[illegible] यथा [illegible] तथा सति साधकमानस्य [illegible]
[illegible]मनुमितेः पूर्वं [illegible] इच्छा [illegible]
[illegible] स्यात् । न [illegible] जनकाभावे [illegible]
[illegible]मित्यनन्तरमपि पक्षतापातात् । न च साधकमान[illegible]
[illegible]निश्चयसाद[illegible] संशयोत्तरं व्याप्तिदर्शनात् [illegible]
त[illegible] [illegible]निश्चयाभावादिति वाच्यं । दृष्टत्वात्, [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]कतया अनु[illegible]
[illegible] विना प्रत्यक्षं व्याप्तिदर्शनादनौ [illegible]
एवं [illegible] प्रति अनुमितिसामग्र्याः [illegible]
[illegible] संशयोत्तरं व्याप्तिदर्शना[illegible]
[illegible] स्थाणुत्वादिमत्य[illegible]
[illegible] पक्षतायाः [illegible]

अदर्शनस्य संशयोत्तरप्रत्यक्षनिश्चयहेतुताया बहुधा निराकृतत्वात् इत्येव सत्यं। वैशिष्ट्यञ्च एककालावच्छेदेन एकात्मवृत्तित्वं, विशिष्टाभावश्चात्माश्रितपूर्वसत्तायाः अपेक्षितत्वेन कालान्तरीयसिषाधयिषाविरहमादाय सिषाधयिषासत्त्वेऽपि सिद्धिसत्त्वे नानुमित्यनुदयप्रसङ्गः। अथञ्च विशिष्टाभावो मननस्थले सिषाधयिषाविरहरूपविशेषणाभावात् घनगर्जितेन मेघानुमानादौ साध्यनिश्चयरूपविशेष्याभावादेवेति नाव्याप्तिः। यत्रानुमित्यानन्तरं साध्यनिर्णयात्मकः परामर्शस्ततोऽनुमितिः तत्र पक्षतासम्पत्तये विशिष्टान्तं साधकमानविशेषणं, घनगर्जितादौ पक्षतासम्पत्तये विशेष्यदलं। सिषाधयिषा च तत्साध्यविशिष्टतत्पक्षविषयकत्वप्रकारिकानुमितिविषयिनीच्छा ग्राह्या यत्किञ्चिद्धेतुकप्रत्यक्षज्ञानं जायतामितीच्छायामपि(१) सिद्धिसत्त्वेऽनुमित्यनुत्पादात्। अनुमितित्वाप्रकारिकायामपि प्रत्यक्षाद्यतिरिक्तं पर्वते वह्निज्ञानं जायतामितीच्छायां सिद्धिसत्त्वेऽनुमित्युत्पादाच्च। एवं

---

(१) तदैक्येन द्रव्यगोचरज्ञानं जायतामितीच्छायामपीत्यर्थः, तेन ज्ञानं जायतामितीच्छोत्तरं सिद्ध्युत्पादे स्वविषयसिद्ध्यनुपहितत्वविशेषणस्य प्रवेशं निवेशनीयत्वादेव तदिच्छावारणं सिद्ध्युत्तरन्तु तादृशेच्छा न सम्भवति ज्ञानमात्रस्यैव ज्ञानत्वप्रकारकेच्छाविरोधित्वादिति नाशङ्कः। न च ज्ञानं जायतामितीच्छैव कथमुत्पद्यते इच्छां प्रति इष्टसाधनताज्ञानस्य कारणत्वेन इच्छायाः पूर्वं इष्टसाधनताज्ञानस्य अवश्यापेक्षणीयत्वेन ज्ञानत्वप्रकारकेच्छाप्रतिबन्धकसद्भावादिति वाच्यं। सद्धर्म्मिकेष्टसाधनताज्ञानादिव तदभावधर्म्मिकद्वेषादपि तदिच्छोत्पादस्य सर्व्वानुभवसिद्धतया ज्ञानाभावधर्म्मिकद्वेषात् ज्ञानत्वप्रकारकेच्छोत्पादसम्भवादिति।

यादृशयादृशेच्छासत्त्वे सिद्धौ सत्यामनुमितिस्तत्तदिच्छाभावसमुदाय-एवावच्छेदकः(१)। साध्यनिश्चयस्यानुमितिसमानाकारो ग्राह्यः तेन पाषाणमयत्वादिना पर्वते तेजस्त्वादिना च वह्नेः सिद्धावपि पर्वतत्वेन पर्वते वह्नित्वादिना वह्न्याद्यनुमितिरिति भावः। अत्र च सिषा-धयिषाविरहकूटादीनां परस्परं विशेषण-विशेष्यभावे विनिगमका-भाव[illegible]र्य्य-कारणभावापत्तिः तद्विपरीतज्ञानादेः प्रतिबन्धक-[illegible]प्रसमत्वातसिद्धान्तरहस्योक्तदिशा निराकरणीया(२)।

---

[illegible]च्छायां सिद्धिधर्म्मिकयद्यदप्रामाण्यज्ञानसत्त्वे सिद्धिदशा-[illegible]नुमितिस्तत्तदप्रामाण्यज्ञानाभावसमुदायस्यापि सिद्धौ विशेषणत्वं [illegible]ध्यं तेनाप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितसिद्धिसत्त्वे नानुमित्यनुदयप्रसङ्गः। एवं यादृशयादृशेच्छासत्त्वे इत्यत्र यद्यदिच्छासत्त्वे इत्येव वक्तव्यं, अन्यथा यादृशयादृशीत्यनेनानुगतरूपेणेच्छाया उत्तेजकत्वे यत्र सिद्धा-त्मको वह्निमात्रपरामर्शः तत्रानुमितिर्जायतामितीच्छायामपि वह्न्य-नुमित्युत्पादात् अनुमितित्वप्रकारकेच्छात्वेन उत्तेजकतया यत्र सिद्धा-त्मको वह्निसाध्यकपरामर्श एव द्रव्यत्वादिसाध्यकसिद्ध्यनात्मकपरा-मर्शरूपस्तत्राप्यनुमितिर्जायतामितीच्छायां वह्न्यनुमित्यापत्तिः प्रका-रान्तरेणासम्भवत्स्वविषयसिद्धिकानुमित्साया एव निश्चितार्थगोचर-ज्ञानजनकत्वनियमात् तत्र वह्न्यनुमित्युत्पादस्य सर्व्वानुभवविरुद्ध-त्वादिति।

(२) तथाच खले कपोतन्यायेन तत्तदिच्छाविरहव्यक्तीनां युगपदेव सिद्धि-विशेषणत्वात् नेच्छाविरहव्यक्तीनां विशेष्य-विशेषणभावे विनिगम-नाविरहादनन्तकार्य्य-कारणभावः, खले कपोतन्यायस्तु "वृद्धा युवानः शिशवः कपोताः खले यथामी युगपत्पतन्ति। तथा तथामी युगपत् पदार्थाः परस्परेणान्वयिनो भवन्ति"॥ इति।

नन्वस्य विशिष्टाभावस्यानुमितिजनकत्वे किम्मानमित्यतोऽन्वय-व्यतिरेकौ तत्र प्रमाणयति, 'तेनेति अस्यानुमितिजनकत्वेनेत्यर्थः, 'स न पक्षः' स न पक्षपदपरिभाषाविषयतावच्छेदकानुमितिजनकधर्म्मवानित्यर्थः। व्यतिरेकं दर्शयित्वान्वयं दर्शयति, 'यत्रेति, 'साधकप्रमाणे' साध्यनिश्चये, 'उभयाभावः' सिषाधयिषा-साध्यनिश्चययोरभावः, 'यत्रेति, प्रथमे केवलविशेषणाभाववत्तो द्वितीये विशेषण-विशेष्योभयाभाववत्तस्तृतीये च केवलविशेष्याभाववत्तो विशिष्टाभाव इति भावः। 'पक्षत्वं' अनुमितिमत्त्वं, 'पक्षत्वस्य' पक्षपदवाच्यत्वस्य, 'भेदकत्वं' पक्षपदवाच्येतरभेदसाधकत्वं, तदितराप्रसिद्धेरिति भावः। 'पक्षपद-प्रवृत्तिरिति पक्षपदप्रवृत्तेरनुमित्युत्पत्तेर्निमित्तं कारणमित्यर्थः। यद्वा पक्षपदस्य प्रवृत्तिः शक्तिर्येन रूपेण इति व्युत्पत्त्या 'पक्षपद-प्रवृत्तिः' पक्षपदशक्यतावच्छेदिकानुमितिः, उद्देश्यतासम्बन्धेनानुमितिमत्त्वमेव पक्षपदशक्यतावच्छेदकं, तच्च निमित्तं कारणमित्यर्थः, तथाच नेदमितरभेदसाधकं अपि तु अनुमितिकारणमिति भावः। अथ वा पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तं शास्त्रकारीयपक्षपदपरिभाषाविषय-तावच्छेदको धर्म्म इत्यर्थः।

प्राञ्चस्तु 'पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तं' पक्षपदशक्यतावच्छेदकमित्यर्थः, पक्षपदस्य नानार्थतया साध्य-पक्षभेदेन सिषाधयिषा-साध्यनिश्चययोर्भेदादपि न क्षतिः। न चैवं पर्व्वतो वह्निमानित्यनुमितौ घटादेरपि पक्षव्यवहारप्रसङ्ग इति वाच्यं। निश्चयनिष्ठविशेष्यतासम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकत्वस्य शक्यतावच्छेदकतानियामकसम्बन्धत्वेनातिप्रसङ्गविरहादित्याहुः।

अत्र प्राभाकराः प्रत्यक्षादिवदनुमितावपि पक्षता न हेतुः गौरवान्मानाभावाच्च विषयान्तरसञ्चारादिविरहे परामर्शादिसत्त्वे च धारावाहिकप्रत्यक्षवदनुमितिधारायुत्पद्यत एव किन्तु परार्थानुमान एव सिद्धसाधनमर्थान्तरविधया दूषणं। न चैवं लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवयेऽनुमित्यनुव्यवसायानुपपत्तिः अनुमितिसामग्र्या बलवत्त्वेन(१) अनुमितिधाराया एव उत्पद्यमानत्वात् इति वाच्यं। लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानस्य मानाभावेन सुदूरपराहतत्वात्। अथ तथापि सिद्धेरप्रतिबन्धकत्वेऽविनश्यद्वस्थतत्तत्परामर्शादुत्पन्नानुमितिव्यक्तयः पुनः कथं नोत्पद्यन्ते(२)। न च तत्तदनुमितिव्यक्तिं प्रति तत्तत्प्रागभावव्यक्तीनां विशिष्य हेतुतया तत्तदनुमितिव्यक्तीनां विशिष्य प्रतिबन्धकतया वा उत्पन्नानां न तासां पुनरुत्पाद इति वाच्यं। अनन्तकार्य्यकारणभावकल्पनामपेक्ष्य लाघवात् सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वस्यैव युक्तत्वात्। न च सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वेऽपि सिषाधयिषाविरहवैशिष्ट्यस्य तत्र विशेषणत्वावश्यकतया यत्र सिषाधयिषा ततोऽनुमित्यात्मकसिद्धात्मकः परामर्शस्तत्र तदनुमितिव्यक्तेः पुनरुत्पादप्रसङ्गो दुर्व्वार इति वाच्यं। सिषाधयिषा-परामर्शोभयकालीनानुमितिव्यक्तिषु तत्तत्प्राग-

---

(१) भिन्नविषये अनुमितिसामग्र्याः प्रत्यक्षसामग्रीतो बलवत्त्वमिति भावः।

(२) तथाच यो यत्सामग्रीमान् क्षणः स तदुत्पत्तिक्षणोत्पत्तिकध्वंसप्रतियोगी इति नियमात् तत्तदनुमित्युत्पत्तिक्षणो यदि तत्तदनुमितिसामग्रीमान् स्यात् तदा तत्तदनुमित्युत्पत्तिक्षणोत्पत्तिकध्वंसप्रतियोगी स्यादित्यापत्तिरिति समुदिततात्पर्य्यं।

भावव्यक्तीनां विशिष्य हेतुत्वस्य तत्तदनुमितिव्यक्तीनां विशिष्य प्रतिबन्धकत्वस्य वास्माभिरभ्युपगमात्[१]। न चैवं सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वे किं

---

(१) न चात्र तदिच्छाव्यक्तेरुत्तेजकत्वाकल्पनादेव न तस्याः पुनरुत्पादप्रसङ्ग इति वाच्यं। तदिच्छाव्यक्तेरनुत्तेजकत्वे अनुमित्यात्मकपरामर्शस्यैवानुत्पादप्रसङ्गात् तत्कारणीभूतस्य परामर्शस्य सिद्ध्यात्मकत्वात् तस्य सिद्ध्यनात्मकत्वे सिषाधयिषाकाले तदनुमितेरुत्पादप्रसङ्गात्। न च तथापि पूर्व्वोत्पन्नपरामर्शविशिष्टतदिच्छाव्यक्तेः उत्तेजकत्वं कल्प्यमिति वाच्यं। अनुमितिद्वयं जायतामितीच्छाव्यक्तेः ताद्रूप्येण उत्तेजकत्वासम्भवात्। एतेनात्र स्वविषयसिद्ध्यनुपहितत्वविशिष्टतादृशेच्छाविरहविशिष्टसिद्धेः सत्त्वात् न तत्र पुनरुत्पादप्रसङ्ग इत्यपि निरस्तं। अथात्र अनुमित्यात्मकपरामर्शव्यक्तेः साध्यस्य साध्यव्याप्यस्य चानुमितिरूपतया तत्कारणीभूतस्य साध्यव्याप्यवत्त्वनिश्चयरूपपरामर्शस्य विरहादेव न तदनुमितेः पुनरुत्पादप्रसङ्ग इति। न च सिषाधयिषापूर्व्वोत्पन्नपरामर्श एवापेक्षाबुद्धिरूपः तत्र तत्परामर्शस्य क्षणत्रयस्थायितया अनुमित्यात्मकपरामर्शोत्पत्तिसमयेऽपि सत्त्वेन अनुमितेः पुनरुत्पादप्रसङ्ग इति वाच्यं। उक्तस्थले तादृशपरामर्शचतुर्थक्षणे अनुमितेरुत्पादेन तादृशपरामर्शस्यापेक्षाबुद्धिरूपत्वे मानाभावात् चतुर्थक्षणे द्वित्वादिप्रत्यक्षानुरोधेनैव क्षणत्रयस्थायित्वरूपापेक्षात्वस्वीकारात्, एवं तादृशबुद्धेरपेक्षाबुद्धिरूपत्वे अनुमितेः परामर्शत्वोत्कीर्त्तनवैफल्यापत्तेः। एतेन ज्ञानेच्छयोर्यौगपद्यस्वीकारे यत्र सिषाधयिषोत्पत्तिक्षणोत्पन्नपरामर्शादनुमित्यात्मकसिद्ध्यात्मकपरामर्शः तत्रैव तदनुमितेः पुनरुत्पादापत्तेरित्यपि निरस्तं। इति चेदत्राहुः यत्रादौ वह्निव्याप्येतरवह्न्यभाववान् पर्व्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् इत्याकारकः परामर्शः ततः सिषाधयिषा ततो वह्निव्याप्ये-

लाघवमिति वाच्यं। सिषाधयिषाविरहकालीनाविनश्यदवस्थपरामर्श-जन्यानुमितिव्यक्तिषु तत्प्रागभावव्यक्तीनां कारणत्वाद्यकल्पनादेव महा-लाघवादिति चेत्। न। सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वाभ्युपगमेऽपि स्व-स्वानधिकरणेषु आत्मसु तत्तदनुमितिव्यक्तीनां उत्पादवारणाय पूर्व्व-पूर्व्वानुमितिव्यक्त्युत्पत्तिसमकालं भाव्यनुमितिव्यक्तीनां उत्तरोत्तरानुमितिव्यक्त्युत्पत्तिसमकालञ्च अतीतानुमितिव्यक्तीनां उत्पादवारणाय च तत्तदनुमितिव्यक्तिषु पूर्व्व-पूर्व्वोत्पन्नतत्तत्परामर्शव्यक्तीनां विशिष्य हेतुत्वावश्यकतया तस्या एव उत्पत्तिसम्बन्धेन कारणत्वाभ्युपगमादेव उत्पन्नपुनरुत्पादवारणसम्भवात्। अथ तथापि यद्विषयविशेषपञ्चक-यद्विषयविशेषसाध्यिका एकैकानुमितिरेव एकैकपुरुषस्य जाता न तु तत्पूर्व्वं तत्परतो वा तत्पञ्चक-तत्साध्यकः परामर्शः अविनश्यदवस्थपरामर्शजन्यतत्पञ्चक-तत्साध्यकानुमितिव्यक्तीनां उत्पन्नपुनरुत्पादवारणाय लाघवात् तत्पञ्चक-तत्साध्यकानुमितिं प्रति तादृशसिद्धेः प्रतिबन्धकत्वमेव कल्पयितुं युक्तं तत्रापि तत्तदनुमितिव्यक्तिं प्रत्युत्पत्तिसम्बन्धेन तत्तत्परामर्शादिव्यक्तेर्विशिष्य हेतुत्वकल्पनेऽनन्त-कार्य्य-कारणभावप्रसङ्गादिति। न च स्व-स्वानधिकरणेषु आत्मसु तत्तदनुमितिव्यक्तीनां उत्पादवारणाय तत्रापि तत्तत्परामर्शव्यक्तीनां विशिष्य हेतुत्वमावश्यकमिति वाच्यं। क्रिया-संयोगकार्य्य-कारणभा-

---

तरवह्न्यभाववान् पर्व्वतो वह्निव्याप्यवह्निमान् इत्याकारानुमितिः तस्याः परामर्शरूपतया तदनन्तरं तस्याः पुनरुत्पादप्रसङ्गसम्भव- इति परिचिन्तनीयं।

वीशयुक्त्या[1] समवायिकारणव्यक्तीनां स्वस्वसमवेतसामान्यं प्रति तत्तद्व्यक्तित्वेन हेतुत्वावश्यकत्वादेव स्व-स्वानधिकरणेषु आत्मसु तत्तद्व्यक्तीनां उत्पादासम्भवादिति चेत्। न। तादृशविषयविशेषे मानाभावात् अन्यथा यद्विषयविशेषविशेष्यक-यद्विषयविशेषप्रकारिका एकैकप्रत्यक्षव्यक्तिरेव एकैकपुरुषस्य जाता न तु तत्पूर्व्वं तत्परतो वा तद्विषयविशेषयोः सन्निकर्षादिः तद्विषयविशेष्यक-तद्विषयप्रकारकप्रत्यक्षव्यक्तीनां उत्पन्नपुनरुत्पादवारणाय तत्तद्विशेष्यक-तत्तत्प्रकारकप्रत्यक्षं प्रत्यपि तत्तद्विशेष्यक-तत्तत्प्रकारकसिद्धेः सामान्यतः प्रतिबन्धकत्वप्रसङ्गात् तत्रेष्टापत्तौ अत्रापि इष्टापत्तेः सम्भवात्, तादृशविषयविशेषानुमितौ पक्षताया हेतुत्वसिद्धावप्यन्यत्र तस्यास्तदसिद्धेश्च। वस्तुतस्तु प्रत्यक्षादीनामप्युत्पन्नपुनरुत्पादवारणाय सामान्यतस्तादात्म्यसम्बन्धेन कार्य्यत्वावच्छिन्नोत्पत्तिं प्रति सत्तावच्छिन्नोत्पत्तिं प्रत्येव वा विशेषणताविशेषसम्बन्धेन कार्य्यसत्त्ववर्त्तितया समयसम्बन्धनाशत्वेन नाशत्वेनैव वा प्रतिबन्धकत्वं क्लृप्तं ज्ञानादिनाशस्य विषयवृत्तित्वे मानाभावात् अधिकरणस्याविद्यमानतादशायामपि तत्र विशेषणताविशेषसम्बन्धेन तदभावो वर्त्तत एवेति न तद्दोषतादवस्थ्यं तथाच तत-

---

(१) सर्व्वत्र कारणत्वं यदि कार्य्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्य्याधिकरणवृत्त्यभावाप्रतियोगित्वरूपं तदा श्येन-शैलसंयोगरूपकार्य्याधिकरणे शैले क्रियाया अभावात् क्रिया-संयोगकार्य्य-कारणभावे व्यभिचारः अतः यथा तत्र कार्य्यतावच्छेदकावच्छिन्ना यावत्यः व्यक्तयः तत्प्रत्येकाधिकरणयत्किञ्चिद्व्यक्तिवृत्त्यभावाप्रतियोगित्वरूपं कारणत्वं विवक्षणीयं तथा अत्रापीति न कुत्रापि व्यभिचार इति ध्येयं।

एव उत्पन्नानुमितेरपि पुनरुत्पादासम्भवः। एतेन तत्परामर्शादिध्व-ंसेरनन्तकार्य्य-कारणभावेषु उत्पत्तेः सम्बन्धत्वकल्पनामपेक्ष्य सिद्धेर-तिरिक्तैकप्रतिबन्धकत्वकल्पनैव लघीयसीत्यग्रिमोक्तं प्रत्युक्तमित्याहुः। तदसत् सिद्धेरप्रतिबन्धकत्वे परामर्शनिष्ठाप्रामाण्यग्रहाभावस्य पृथग-नुमितिहेतुत्वमते सिद्ध्यात्मकपरामर्शनिष्ठतत्तज्ज्ञानत्वधर्म्मितावच्छेद-काप्रामाण्यग्रहाभावानामपि पृथक् हेतुत्वावश्यकत्वेन महागौरवा-पत्तेः। अन्यथा इदं ज्ञानं व्याप्यत्वाद्यंशेऽप्रमेत्यप्रामाण्यग्रहात्मक-सिद्ध्या-त्मकपरामर्शादनुमित्यापत्तेः। न च तथापि यत्साध्यसिद्धिकालीन-परामर्शेषु न तत्तज्ज्ञानत्वधर्म्मितावच्छेदककाप्रामाण्यज्ञानं तत्र सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वे मानाभाव इति वाच्यं। तत्रापि सिद्धेरप्रतिबन्धकत्वे विनाप्यनुमित्यां स्मरणादिरूपसिद्ध्यात्मकपरामर्शानन्तरमनुमित्या-पत्तेः। न चेष्टापत्तिः, अनुव्यवसायविरहात् अनुव्यवसायस्यापि स्वीकारे अनुभवापलापात् अन्यथा शाब्दबोधादिकं प्रति आकाङ्क्षादिज्ञानस्य अनुमितिं प्रति परामर्शादेश्च गौरवादकारणत्वप्रसङ्गात् निराकाङ्क्षा-दिस्थलेऽपि शाब्दबोधादौ तदनुव्यवसाये च इष्टापत्तेः सुवचत्वात् विशिष्टज्ञानं प्रत्यपि बाधादेः प्रतिबन्धकत्वविलोपप्रसङ्गाच्च। न च वह्निव्याप्यधूमवान् वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवान् वह्निव्याप्यधूमव्याप्यव्याप्य-वान् इति समूहालम्बनपरामर्शानन्तरं परामर्शानुमितिप्रवाहस्य प्राभाकरनये अनुभवसाचिकत्वात् भवन्मतेऽपि कुत्रचिदनुभवापला-पस्तुल्य एव गौरवं पुनरतिरिच्यते इति वाच्यं। तत्र स्थलविशेषे-ऽनुमितिधारायाः प्रामाणिकत्वे सिषाधयिषावत् तत्तत्परामर्शव्य-क्तीनां उत्तेजकमध्ये प्रवेशे क्षतिविरहात्। किञ्च सिद्ध्यात्मकपरामर्श-

स्थलेऽविनश्यद्वस्थपरामर्शजन्यानुमितिस्थले चाप्रामाणिकानन्तानु-मिति-तत्प्रागभाव-तद्ध्वंसानां कार्य्य-कारणभावकल्पनामपेक्ष्य लाघवात् पक्षताया एव हेतुत्वं कल्प्यते, प्रत्यक्षादिस्थले च धारावाहिकसाक्षात्कारादीनां प्रमाणसिद्धत्वात् गौरवमप्यास्थीयते। न च विषयान्तरसञ्चारादिविरहे[१] भवन्मतेऽपि अनुमित्यनन्तरमनुमिति-समानाकारमानसोपनीतभानोत्पत्तौ बाधकाभावान्नातिरिक्तव्यक्ति-कल्पना ममापि अनुमितेस्तत्स्थलाभिषिक्तत्वादिविषयान्तरसञ्चारादि-सत्त्वे च तत एव ममाप्यनुमित्यनुत्पत्तेरिति वाच्यं। अनुमित्युत्तर-मनुमितिनिर्व्विकल्पकव्यक्तेस्तदनुव्यवसायव्यक्तेरेव वोपनीतभानात्मिकाया उत्पत्तेरतिरिक्तकल्पनाभावात् निर्व्विकल्पकादिव्यक्तेर्भव-तापि स्वीकारादित्यास्तां विस्तरः।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये पक्षतासिद्धान्तरहस्यं, समाप्तमिदं पक्षतारहस्यं।

---

(१) मनसः मानसप्रतिबन्धकीभूतज्ञानादिसामग्रीसमवधितत्वविरह इत्यर्थः।

## अथ परामर्शपूर्वपक्षरहस्यं।

पक्षधर्म्मस्य व्याप्तिविशिष्टज्ञानमनुमितिहेतुः। ननु व्याप्यत्वावच्छेदकप्रकारेण व्याप्तिस्मरणं पक्षधर्म्मताज्ञानं तथा लाघवात् परामर्शहेतुत्वेनावश्यकत्वाच्च एवञ्च धूमो वह्निव्याप्यो धूमवांश्चायमिति ज्ञानद्वयादेवानुमितिरस्तु। न चानुमितिं प्रति व्याप्यत्वज्ञानमेव हेतुर्लाघवात् उपजीव्यत्वाच्चेति वाच्यं। तस्यानुमितेः पूर्व्वमसिद्धौ युगपदुपस्थित्यभावात्।

---

## अथ परामर्शपूर्व्वपक्षरहस्यं।

अनुमितिलक्षणैककार्य्यानुकूलत्वसङ्गत्या(१) पक्षधर्मतानिरूपणानन्तरं अनुमितिहेतुत्वेन परामर्शं निरूपयति, 'पक्षधर्म्मस्येति, 'पक्षधर्म्मस्य' पक्षसम्बन्धस्य, 'व्याप्तिविशिष्टज्ञानं' व्याप्तिविशिष्टे ज्ञानं पक्षव्याप्तिविशिष्टोभयवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानमिति यावत्, तदेवानुमितिहेतुरित्यर्थः, तेन पक्षविशेष्यकपरामर्श-लिङ्गविशेष्यकपरामर्शयोरुभयोरेवोपसंग्रहः, वह्निव्याप्यो धूमः धूमवांश्च पर्व्वत इति ज्ञानस्य मीमांसकनये अनुमितिजनकस्यासंग्रहश्च। पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयतानिरूपितसाध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयताशालिज्ञानमेवानुमि-

---

(१) अनुमितिरूपैककार्य्यकारित्वसङ्गत्येति ख॰ ग॰।

तिहेतुरिति तु समुदायार्थनिष्कर्षः[1], तथाच तादृशविषयताशालि-

---

(१) पर्वतधर्म्मिकवह्न्यनुमितिं प्रति वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति पर्वतविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमप्रकारकनिश्चयः वह्निव्याप्यो धूमः पर्वते इति आधेयत्वसम्बन्धेन पर्वतप्रकारक-वह्निव्याप्यधूमविशेष्यकनिश्चयश्च हेतुः तयोर्यदि पर्वतविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमप्रकारकनिश्चयत्वेन वह्निव्याप्यधूमविशेष्यकाधेयतासम्बन्धावच्छिन्न-पर्वतप्रकारकनिश्चयत्वेन च पृथक् पृथक् कारणत्वं तदा लिङ्गविशेष्यकपरामर्शाव्यवहितोत्तरानुमितौ पक्षविशेष्यक-व्याप्यप्रकारकनिश्चयस्यापि कारणत्वेन व्यभिचारः, एवं पक्षविशेष्यक-व्याप्यप्रकारकपरामर्शजन्यानुमितौ लिङ्गविशेष्यकपरामर्शस्यापि कारणत्वेन व्यभिचारश्च अतः पक्षविशेष्यक-साध्यव्याप्यप्रकारकनिश्चयोत्तरानुमितिं प्रति तादृशपरामर्शत्वेन कारणत्वं, एवं व्याप्यविशेष्यक-पक्षप्रकारकनिश्चयोत्तरानुमितिं प्रति व्याप्यविशेष्यक-पक्षप्रकारकनिश्चयत्वेन कारणत्वञ्च वक्तव्यं, तथाच कार्य्यतावच्छेदककोटौ कारणतावच्छेदककोटौ च व्याप्यप्रकारतानिरूपितपक्षविषयतायाः पक्षप्रकारतानिरूपितव्याप्यविषयतायाश्च सान्निध्येन प्रवेश इति गौरवमतो व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयोत्तरानुमितिं प्रति व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वेन एकरूपेणानुमितिहेतुत्वं, अत एव व्याप्य-पक्षोभयवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिककार्य्यताघटितमेवानुमितिलक्षणं दीधितिकृता स्वीकृतं। न च संयोगसम्बन्धावच्छिन्नवह्निव्याप्यत्वेन गृहीतधूमस्य समवायेन धूमावयवे परामर्शात् संयोगेन धूमावयवे वह्नेरनुमित्यनुत्पादात् तत्सम्बन्धावच्छिन्नं यत् वह्निव्याप्यत्वं तदवच्छिन्नतत्सम्बन्धावच्छिन्नविषयतानिरूपित-पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालि-निश्चयत्वेन कारणत्वमवश्यं वक्तव्यं, तथाच वह्निव्याप्यधूमः पर्वते इति परामर्शीय-

वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नविशेष्यताया व्याप्यतावच्छेदकीभूतसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्वविरहात् कथं पक्षविशेष्यकपरामर्श-लिङ्गविशेष्यकपरामर्शयोरेकरूपेण हेतुत्वमिति वाच्यम्। हेतुतावच्छेदकसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारताभिन्ना या व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयता तन्निरूपिता या हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारताभिन्नपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयता तादृशविषयताशालिनिश्चयत्वेन अनुमितिं प्रति हेतुत्वात् नोक्तदोषावसरः। वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति ज्ञानीयकालिकसम्बन्धावच्छिन्नधूमप्रकारताया हेतुतावच्छेदकसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारतात्वेन वह्निव्याप्यधूमः पर्वतवान् इति ज्ञानीयकालिकसम्बन्धावच्छिन्नपर्वतप्रकारतायाः संयोगसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारतात्वेन निरुक्तज्ञानयोः तादृशानुगतधर्मानाक्रान्तत्वेन न तादृशज्ञानद्वयादनुमित्यापत्तिः संयोगसम्बन्धेन वह्निव्याप्यधूमप्रकारक-पर्वतविशेष्यकज्ञानीयपर्वतनिष्ठविशेष्यतायाः हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नत्वेऽपि प्रकारतात्वविरहेण हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारताभिन्नत्वमक्षतमेव, एवं वह्निव्याप्यधूमः पर्वते इति ज्ञानीयधूमनिष्ठविशेष्यतायाः हेतुतावच्छेदकसम्बन्धानवच्छिन्नत्वेऽपि प्रकारतात्वविरहात् पक्षविशेष्यकपरामर्श-लिङ्गविशेष्यकपरामर्शयोः सङ्ग्रहः। न चैवमपि वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतवान् देश इति ज्ञानीयपर्वतनिष्ठप्रकारत्व-विशेष्यत्वयोरैक्येन हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारतात्वस्य तादृशज्ञानीयपर्वतनिष्ठविशेष्यतायां सत्त्वात् तादृशज्ञानस्यानुगमानाक्रान्तत्वेन तादृशज्ञानादनुमित्यनुपपत्तिरिति वाच्यं। अन्तरा भासमानपदार्थनिष्ठप्रकारता-विशेष्यतयोरैक्ये वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतवान् इति ज्ञानीयवह्निव्याप्यधूम-पर्वतत्वैतदुभयधर्मावच्छिन्नपर्वतनिष्ठप्रकारताया एव वह्निव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपितविशेष्यतात्वेन पर्वतत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितत्वेन च पर्वतत्वप्रकारतानिरूपितवह्निव्याप्यधूमावच्छिन्नविशेष्यतात्वापत्तिः, एवं पर्वतत्वप्रकारतानिरू-

पितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतात्वापत्तिः वह्निव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपितवह्निव्याप्यधूमावच्छिन्नविशेष्यतात्वापत्तिश्च, अतः अवच्छेदकतानात्मकवह्निव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपिता पर्व्वतत्वावच्छिन्ना एका विशेष्यता अपरा च तादृशविशेष्यत्वावच्छिन्ना वह्निव्याप्यधूम-पर्व्वतत्वोभयधर्म्मावच्छिन्ना प्रकारता स्वीकर्त्तव्येति तज्ज्ञानीयपर्व्वतनिष्ठविशेष्यतायाः हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारताभिन्नत्वेन तादृशज्ञानादनुमितिर्निष्प्रत्यूहैव। वस्तुतः पक्षमुख्यविशेष्यकपरामर्शादेवानुमितिः न तु व्याप्यविशेष्यक-पक्षप्रकारकादिति मताभिप्रायेणेदं। एतेन वह्निव्याप्यधूमवत्पर्व्वतवान् देश इति ज्ञानीयपर्व्वतनिष्ठविषयतायां वह्निव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपितत्वेनैव पर्व्वतत्वावच्छिन्नत्वं न तु वह्निव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपितविशेष्यतात्वेन वह्निव्याप्यधूमावच्छिन्नत्वं किन्तु प्रकारतात्वेनैव उभयधर्म्मावच्छिन्नत्वमिति मतानुसारेण प्रकारता-विशेष्यतयोरैक्येऽपि न स्वस्य स्वधर्म्मितावच्छेदकत्वापत्तिनिबन्धनदोष इति निरुक्तानुगमे तादृशज्ञानस्यासंग्रहो दुर्व्वार एवेति प्रत्युक्तम्।

केचित्तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नव्याप्यप्रकारत्वानिरूपिता या हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्ना प्रकारता तदन्यत्वस्य पक्षविषयतायां निवेशात् वह्निव्याप्यधूमवत्पर्व्वतवान् देश इति ज्ञानस्यान्तराभासमानपदार्थनिष्ठप्रकारता-विशेष्यतयोरैक्येऽपि नासंग्रहः तदीयपर्व्वतनिष्ठप्रकारतायाः संयोगसम्बन्धावच्छिन्नव्याप्यप्रकारतानिरूपितत्वेन हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नव्याप्यप्रकारत्वानिरूपिता या प्रकारता तदन्यत्वस्य तत्राक्षतत्वात्, एवं व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतायामपि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धावच्छिन्नपक्षप्रकारत्वानिरूपिता या हेतुतावच्छेदकसम्बन्धानवच्छिन्ना प्रकारता तदन्यत्वं निवेशनीयं अन्यथा संयोगसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धेन व्याप्यांशे पक्षप्रकारकस्य पक्षवद्व्याप्यवान् काल इति ज्ञानस्य नासंग्रहः इत्याहुः।

ननु पर्व्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्न वेति संशयात् अनुमितिवारणाय पर्व्वतत्वावच्छेदेन वह्निव्याप्यधूमाभावाप्रकारकत्वे सति पर्वतधर्म्मिकवह्निव्याप्यधूमप्रकारकत्वरूपं निश्चयत्वं अनुमितिजनकतावच्छेदकं वाच्यं, एवं वह्निव्याप्यो धूमः पर्वते न वा इति संशयादनुमितिवारणाय व्याप्यधर्म्मिकपक्षाभावाप्रकारकत्वे सति व्याप्यधर्म्मिकपक्षप्रकारकत्वमनुमितिजनकतावच्छेदकं वक्तव्यं तथाच कथं पक्षविशेष्यक-लिङ्गविशेष्यकपरामर्शयोरेकरूपेण हेतुत्वं। न च पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन व्याप्याभावाप्रकारकत्वविशिष्टं सत् व्याप्यविशेष्यकाधेयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकपक्षाभावाप्रकारकं यद्व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालि ज्ञानं तत्त्वेन हेतुत्वान्नोक्तसंशयादनुमित्यापत्तिरिति वाच्यं। एवमपि पर्वतत्वसामाधिकरण्येन वह्निव्याप्यधूमाभाववगाहिनः पर्वतत्वावच्छेदेन वह्निव्याप्यधूमावगाहिनश्च पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्न वेति संशयादनुमित्यापत्तिः तादृशसंशयस्यापि पर्वतत्वावच्छेदेन वह्निव्याप्यधूमाभावाप्रकारकत्वात्। न च पर्वतधर्मिकवह्निव्याप्यधूमाभावाप्रकारकत्वमेव ज्ञाने निवेशनीयं तथाच पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निव्याप्यधूमावगाहिनि पर्वतत्वावच्छेदेन वह्निव्याप्यधूमावगाहिनि च संशये पर्वतधर्मिकवह्निव्याप्यधूमाभावाप्रकारकत्वविरहात् न तादृशसंशयादनुमित्यापत्तिरिति वाच्यं। एवं सति पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निव्याप्यधूमावगाहिनः पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निव्याप्यधूमाभावावगाहिनिश्चयादनुमित्यनुपपत्तिः तस्य पर्वतधर्मिकवह्निव्याप्यधूमाभावाप्रकारकत्वविरहात् इति चेदत्रोच्यते पर्वतत्वावच्छेदेन वह्न्यनुमितिं प्रति पर्वतत्वावच्छेदेनैव वह्निव्याप्यधूमवत्तानिश्चयः कारणं पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निव्याप्यधूमपरामर्शात् पर्वतत्वावच्छेदेन वह्न्यनुमितेरस्वीकारात् पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्न्यनुमितिं प्रति तु पर्व्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निव्याप्यधूमवत्तानिश्चयः कारणं, एवञ्च पर्वतत्वावच्छेदेन वह्न्यनुमितिं प्रति पर्वतत्वव्यापक-वह्निव्याप्यधूमप्रतियोगिक-संयोगसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारताभिन्न-

व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपर्वतत्वव्यापकवह्निव्याप्यधूमप्रतियोगिक-संयोगसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारताभिन्नपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयनिष्ठकारणतायां पर्वतत्वावच्छेदेन वह्निव्याप्यधूमाभावाप्रकारकत्वं अवच्छेदकं, एवं वह्निव्याप्यत्वावच्छेदेन तादृशाधेयतासम्बन्धाच्छिन्नपर्वताभावाप्रकारकत्वमप्यवच्छेदकं, पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्न्यनुमितिं प्रति पर्व्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निव्याप्यधूमवत्ताज्ञानकारणतायान्तु पर्वतत्वावच्छेदेन वह्निव्याप्यधूमाभावाप्रकारकत्वमवच्छेदकं इति न पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निव्याप्यधूम-तदभाववगाहिनिश्चयादनुमित्यनुपपत्तिः। न च वह्निव्याप्यो धूमः पर्वते वह्निव्याप्यधूमाभाववांश्च पर्वत-इति समूहालम्बनज्ञानस्य पर्वतत्वावच्छेदेन वह्निव्याप्यधूमाभावप्रकारकत्वेन निश्चयत्वानुपपत्तिरिति तादृशपरामर्शदशायां अनुमित्यनुपपत्तिरिति वाच्यं। प्राचीनमते पर्वतत्वावच्छेदेन वह्निव्याप्यधूमाभाववत्ताबुद्धिं प्रति वह्निव्याप्यधर्मिकस्य संयोगसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धेन पर्वतप्रकारकनिश्चयस्यापि कार्य्यसहभावेन प्रतिबन्धकतया तादृशज्ञानस्याहार्य्यत्वेन अनुमितिजनकतावच्छेदकीभूतानाहार्य्यत्वानाक्रान्ततया तादृशज्ञानादनुमित्यनुपपत्तिविरहात् इति।

केचित्तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकपक्षाभावप्रकारत्वानिरूपिता या व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयता तन्निरूपिता या हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नव्याप्याभावप्रकारत्वानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयता तच्छालिज्ञानत्वेन कारणत्वं संशये प्रकारताद्वयनिरूपिता एकैव विशेष्यता तथाच पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्न वेति संशये या पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयता सा न व्याप्याभावप्रकारत्वानिरूपिता, वह्निव्याप्यधूमः पक्षे नवेति संशये च या तादृशधूमत्वावच्छिन्नविषयता सा न पक्षाभावप्रकारत्वानिरूपितेति तादृशसंशययोर्न निश्चयत्वं इत्याहुः।

ननु पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् इदं ज्ञानं वह्निव्याप्यधूमाभाववति वह्निव्याप्यधूमप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितपरामर्शात् पर्वते वह्न्यनुमितिवारणाय एवं वह्निव्याप्यो धूमः पर्वते इदं ज्ञानं आधेयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्वताभाववति तेन सम्बन्धेन पर्वतप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितव्याप्यविशेष्यकपरामर्शादनुमितिवारणाय च तादृशाप्रामाण्यज्ञानाभावद्वयं व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयनिष्ठकारणतायां अवच्छेदकं अवश्यं वक्तव्यं, तथाच तयोर्विशेष्यविशेषणभावेन विनिगमनाविरहात् गुरुतरकार्य्य-कारणभावद्वयमावश्यकं, एवं पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानिदं ज्ञानं आधेयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्वताभाववति तेन सम्बन्धेन पर्वतप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितपरामर्शात् वह्निव्याप्योधूमः पर्वते इदं ज्ञानं वह्निव्याप्याभाववति वह्निव्याप्यप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितपरामर्शाच्च सर्वानुभवसिद्धाया अनुमितेरपलापप्रसङ्गः। न च यद्यदप्रामाण्यज्ञानसत्त्वे पर्वतधर्मिकवह्न्यनुमितेरनुत्पादः तत्तदप्रामाण्यज्ञानाभावानामेव कारणतावच्छेदकतया निरुक्ताप्रामाण्यज्ञानाभावानां कारणतावच्छेदककोटौ अप्रविष्टत्वान्न तत्रानुपपत्तिः इति वाच्यं। यत्र वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इदं ज्ञानं आधेयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्वताभाववति तेन सम्बन्धेन पर्वतप्रकारकं भाविज्ञानञ्च तादृशं एवं भाविज्ञानञ्च वह्न्यभाववति वह्निप्रकारकत्वव्याप्यवदिदं ज्ञानञ्च वह्निव्याप्यधूमाभाववति वह्निव्याप्यधूमप्रकारकत्वव्याप्यवत् वह्निव्याप्यधूमश्च पर्वतव्याप्यवानिति समूहालम्बनपरामर्शः तदुत्तरं पर्वतो वह्निमान् वह्निव्याप्यो धूमश्च पर्वते तज्ज्ञानञ्च वह्निव्याप्यधूमाभाववति धूमप्रकारकं वह्न्यभाववति वह्निप्रकारकं इति समूहालम्बनानुमितिः तदुत्तरं पुनर्वह्न्यनुमितिप्रसङ्गः एतादृशस्थलीयपूर्वपरामर्शधर्मिकाप्रामाण्यज्ञानस्य उत्तेजकत्वे अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितवह्न्यनुमित्यनुपपत्तिः अतस्तस्यानुत्तेजकत्वमवश्यं वक्तव्यं इत्यग्रिमक्षणे वह्न्यनुमितेरापत्तिर्निष्प्रत्यूहैव। न च पर्वतधर्मिक-

कानुमितिं प्रति सिद्धेः प्रतिबन्धकतायां सिद्धिस्वरूपानुमितिधर्मिकतदप्रामाण्यज्ञानप्रतिबध्यत्वेनकत्वास्वीकारात् सिद्धिरूपप्रतिबन्धकवशादेव नोक्तस्थलेऽनुमित्यापत्तिरिति वाच्यं। एवं सति वह्निव्याप्यधूमधर्मिकपर्वतप्रकारकपरामर्शधर्मिकतादृशपरामर्शपूर्वोत्पन्नाप्रामाण्यज्ञानवशात् तादृशपरामर्शजन्यतीयस्थलेऽनुमितिर्न स्यात् इति चेत्। न। वह्निव्याप्याभाववद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नवह्निव्याप्यप्रकारकत्वप्रकारतानिरूपितोभयाद्वृत्तिधर्मावच्छिन्नज्ञाननिष्ठविशेष्यताकज्ञानाभावविशिष्टव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपिता या पक्षाभाववद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नपक्षप्रकारताकत्वप्रकारतानिरूपितोभयावृत्तिधर्मावच्छिन्न-ज्ञाननिष्ठविशेष्यताक-ज्ञानाभावविशिष्टपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयता तादृशविषयताशालिज्ञानत्वेन हेतुत्वस्योक्तत्वात्, व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतायां तादृशाभावस्य स्वविशेष्यताश्रयनिरूपितत्वं स्वीयविशेष्यतानिरूपितप्रकारताकत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपित-व्याप्तित्वावच्छिन्नविषयतानिरूपित-विषयतावच्छेदकवह्नित्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितव्याप्तित्वावच्छिन्नविषयतानिरूपिता सती या पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताप्रकारता तत्त्वञ्च एतदुभयसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकः, एवं पक्षविशेष्यतायां तादृशज्ञानाभावः स्वीयविशेष्यताश्रयनिरूपितत्वं स्वीयप्रकारकत्वत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितविषयतावच्छेदकं यत्पक्षतावच्छेदकं तदवच्छिन्नत्वे सति साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितप्रकारतात्वञ्च एतदुभयसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकः, एवञ्च वह्निव्याप्योधूमः पर्व्वते इदं ज्ञानं वह्निव्याप्याभाववति वह्निव्याप्यप्रकारकं इत्यप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितपरामर्शादनुमितिः निर्व्वहति तथाहि तादृशाप्रामाण्यज्ञानस्य विशेष्यीभूतं यद्वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वते इत्याकारकज्ञानं तन्निरूपितत्वस्य तज्ज्ञानीयव्याप्यत्वावच्छिन्नविशेष्यतायां सत्त्वेऽपि तादृशाप्रामाण्यज्ञानीयप्रकारकत्वत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपित-व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितव्याप्तित्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितविषय-

तावच्छेदकीभूतवह्नित्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितव्याप्तित्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितप्रकारतात्वस्य तत्र विरहात् निरुक्तोभयसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकनिरुक्ताप्रामाण्यज्ञानाभाववत्त्वं तत्राक्षतमेव, ज्ञानभेदेन च विषयताभेदमते अयं परिष्कारः न तु समानाकारकज्ञानस्यैकविषयतावादिमते; तथा सति वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इदं ज्ञानं वह्निव्याप्यधूमाभाववति वह्निव्याप्यधूमप्रकारकं इत्यप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितपरामर्शीया या विषयता तस्या एव अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दिततादृशपरामर्शीयतया अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितज्ञानीयव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतायामपि निरुक्ताप्रामाण्यज्ञानविशेष्यीभूतपरामर्शनिरूपितत्वघटितोभयसम्बन्धेन अप्रामाण्यज्ञानसत्त्वात् अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितपरामर्शादनुमित्यभावापत्तेः एवं प्रकारेण इदं ज्ञानं पक्षाभाववति पक्षप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितवह्निव्याप्यधूमप्रकारक-पर्व्वतविशेष्यकपरामर्शात् अनुमितिनिर्व्वाहः। न च स्वविशेष्यीभूतज्ञाननिरूपितत्व-स्वीयप्रकारत्वत्वावच्छिन्नविषयताश्रयीभूतप्रकारतानिरूपकत्वैतदुभयसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाप्रमाण्यज्ञानाभाववैशिष्ट्यमेव व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतायां निवेश्यतां किं गुरुतरोक्तसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावनिवेशेनेति वाच्यं। एवं सति वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इदं ज्ञानं वह्निव्याप्यधूमाभाववति वह्निव्याप्यधूमप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानमेव वह्निव्याप्यत्वावच्छिन्ननिरूपितप्रकारितात्वेन ज्ञानान्तरीयप्रकारितामवगाह्य इत्तं तादृशाप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितपरामर्शात् सर्व्वानुभवसिद्धानुमित्यनुत्पादस्यापत्तप्रसङ्गात् तादृशज्ञानीयप्रकारितात्वावच्छिन्नप्रकारिताश्रयीभूतज्ञानान्तरीयप्रकारितानिरूपकत्वस्य तादृशपरामर्शीयविषयतायां विरहात्। एवमिदं ज्ञानं पक्षाभाववति पक्षप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानाभावस्यापि उक्तगुरुतरसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वव्यावृत्तिः स्वयमूहनीया। अत्रेदमवधेयं वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपर्व्वतत्वावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयोत्तरपर्व्वतधर्म्मिकव-

वह्न्यनुमितिं प्रति तादृशनिश्चयत्वेन हेतुत्वे वह्निव्याप्यधूमप्रकारकपर्व्वतवि-
शेष्यकनिश्चयोत्तरानुमितिर्जायतामितीच्छातः पर्व्वते वह्नेः सिद्धिसत्त्वे
तादृशपरामर्शादेव पर्व्वते वह्न्यनुमितिर्जायते न तु वह्निव्याप्यविशेष्यकप-
र्व्वतप्रकारकनिश्चयादिति नियमानुपपत्तिः, तथाहि तादृशेच्छाविरहवि-
शिष्टसिद्ध्यभावस्य कार्य्यतावच्छेदकं यदि पर्व्वतधर्म्मिकवह्निव्याप्यधूमप्रका-
रकनिश्चयोत्तरानुमितित्वं तदा यदा वह्निव्याप्यधूमः पर्व्वते इति निश्च-
योऽस्ति निरुक्तसिद्ध्यभावश्च वर्त्तते न पुनर्वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इति
परामर्शः तदापि पर्व्वतधर्म्मिकवह्निव्याप्यधूमवत्तानिश्चयोत्तरानुमिति-
त्वावच्छिन्नस्य निरुक्तसिद्ध्यभावात्मकपक्षताप्रकारणबलात् आपत्तिर्दुर्व्वा-
रैव, यदि च पर्व्वतधर्म्मिकवह्निव्याप्यधूमवत्तानिश्चयोत्तरपर्व्वतधर्म्मिक-
वह्न्यनुमितित्वावच्छिन्नं प्रति पर्व्वतधर्म्मिकवह्निव्याप्यधूमवत्तानिश्चयोत्तरानु-
मितिर्जायतामित्याकारकेच्छाविरहविशिष्टपर्व्वतधर्म्मिकवह्निमत्त्वनिश्चया-
भावत्वेन कारणत्वं वह्निव्याप्यधर्म्मिकाधेयतासम्बन्धेन पर्व्वतप्रकारक-
निश्चयोत्तरपर्व्वतधर्म्मिकवह्न्यनुमितिं प्रति तादृशनिश्चयोत्तरानुमितित्व-
प्रकारकेच्छाविरहविशिष्टसिद्ध्यभावत्वेन कारणत्वं तदा यदा केवलं वह्नि-
व्याप्यधूमवान् पर्व्वत इति परामर्शो वर्त्तते सिद्धिश्च नास्ति तदोक्त-
पक्षताद्वयसत्त्वात् पक्षताकार्य्यतावच्छेदकीभूतवह्निव्याप्यधूमवत्तानिश्चयो-
त्तरानुमितित्वावच्छिन्नस्येव व्याप्यधर्म्मिकपक्षप्रकारकनिश्चयोत्तरानुमिति-
त्वावच्छिन्नस्याप्यापत्तिः दुर्व्वारैव तादृशपक्षताद्वयस्य सत्त्वात् तत्कार्य्यता-
वच्छेदकावच्छिन्नापादनस्य सुघटत्वात् । अतएव सिद्ध्युत्तरानुमितिं प्रति
सिषाधयिषायाः कारणत्वे यत्र सिषाधयिषा वर्त्तते सिद्धिर्नास्ति तत्र
सिषाधयिषारूपकारणबलात् सिद्ध्युत्तरानुमितित्वावच्छिन्नापत्तिः मथुरा-
नाथेन पक्षताग्रन्थे दत्ता सिद्ध्युत्तरानुमितिं प्रति सिद्धेरपि हेतुत्वमुक्त्वा
तादृशापत्तिर्वारिता, एवञ्च पक्षताया इव परामर्शस्यापि पर्व्वतधर्म्मि-
कवह्निव्याप्यधूमवत्तानिश्चयोत्तरानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति तादृशनिश्चयत्वेन

एकं हेतुत्वं व्याप्यधर्म्मिकपक्षप्रकारकनिश्चयोत्तरानुमितिं प्रति तादृशज्ञाने निश्चयत्वेनापरं हेतुत्वं, एवञ्चैकविधपरामर्शसत्त्वे अन्यपक्षतावलात् नान्यविधानुमितित्वावच्छिन्नापत्तिः एकविधपक्षतायाः अन्यविधपरामर्शस्यासहकारित्वात्, एवञ्च मथुरानाथेन यद्व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयोत्तरानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति तादृशनिश्चयत्वेनैकरूपेण कारणत्वमुक्तं तत्पक्षता गुरूणामिव नव्यानामपि मते नानुमितिहेतुरिति केवलान्वयिग्रन्थोक्तलिखनानुसारेणेति ।

नैयायिकमते व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वेन कारणत्वं मीमांसकमते तु हेतुतावच्छेदकावच्छेदेन व्याप्तिनिश्चयत्वं हेतुतावच्छेदकरूपेण पक्षधर्मतानिश्चयत्वञ्च दण्डत्व-चक्रत्वादिवत् कारणतावच्छेदकं, एतन्मते कारणतावच्छेदकलाघवासम्भवेऽपि यत्र वह्निव्याप्यो धूमः धूमवान् पर्वतः इति ज्ञानं तदुत्तरक्षणे सिद्ध्यादिप्रतिबन्धकवशात् न पर्वतो वह्निमानित्यनुमितिः किन्तु वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्शः तत्र मीमांसकमतसिद्धकारणतावच्छेदकद्वयस्य स्वप्रकाशवादिगुरुमते प्रथमोपस्थितत्वरूपलाघवसम्भवात् इति मथुरानाथेनोक्तं, अत्रेदं चिन्त्यते स्वप्रकाशवादिगुरुमते वह्निव्याप्योधूम इति ज्ञानकाले धूमे वह्निव्याप्तिं जानामि इत्यनुव्यवसायो नियमतोजायते विषयग्राहकसामग्र्याः विषयपुरस्कारेण ज्ञानग्राहकत्वनियमात् न तु तादृशज्ञानकाले धूमे वह्निं निश्चिनोमीत्याकारकानुव्यवसायः व्याप्यभावाप्रकारकत्वविशिष्टव्याप्तिप्रकारकज्ञानत्वपर्य्यवसन्नस्य व्याप्तिनिश्चयत्वस्य ज्ञाने व्याप्तिप्रकारकत्वे व्याप्यभावाप्रकारकत्ववैशिष्ट्यग्राहकसामग्र्या अतिरिक्ताया अपेक्षणीयत्वात्, तथाच यत्र व्याप्यभावाप्रकारकत्ववैशिष्ट्यग्राहकसामग्री नास्ति किन्तु व्याप्याभावाप्रकारकत्ववैशिष्ट्यग्राहकसामग्री वर्त्तते तत्र वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति ज्ञानकाले पर्व्वते वह्निव्याप्यं निश्चिनोमि इत्येवानुव्यवसायो जायते न तु धूमे वह्निव्याप्तिं निश्चिनोमीत्यनुव्यवसायः,

श्रयत्वमेवानुमितिकारणतावच्छेदकमिति भावः। यद्वा 'पक्षध-र्म्मस्य' पक्षतावच्छेदकस्य, 'व्याप्तिविशिष्टज्ञानं' व्याप्यवच्छिन्नविषय-ताशालिज्ञानं, पक्षतावच्छेदकस्येत्यच स्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितत्वं षष्ठ्यर्थः, तस्य च व्याप्यवच्छिन्नविषयतायामन्वयः, तथाच पक्षता-वच्छेदकावच्छिन्नविषयतानिरूपित-व्याप्यवच्छिन्नविषयताशालिज्ञा-नमेवानुमितिहेतुरिति पूर्व्वोक्त एव शब्दार्थः।

यत्तु 'पक्षधर्मस्य' पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नस्य, सप्तम्यर्थे षष्ठी, 'व्याप्तिविशिष्टज्ञानं' व्याप्तिविशिष्टप्रकारकज्ञानं, पक्षतावच्छेदकाव-च्छिन्ने व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानमिति यावत्, तदेवानुमि-तिहेतुरित्यर्थः, नव्यनये पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यकव्याप्ति-विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वादिति वदन्ति। तद-सत्। अग्रे व्याप्यविशेष्यकपरामर्शस्यापि हेतुत्वेन वक्तव्यत्वात्तदसङ्ग-त्यापत्तेः।

भट्टाचार्य्यास्तु ननु प्राचां नये पक्ष-व्याप्तिविशिष्टोभयवैशिष्ट्या-वगाहिनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिक-कार्य्यताघटितमनुमि-तिलक्षणं प्रागुक्तं तच्चासम्भवि वह्निव्याप्यो धूमः धूमवान् पर्व्वत इति ज्ञानादप्यनुमित्युत्पत्तेः तेन रूपेणानुमित्यहेतुत्वादित्यत आह, 'पक्षधर्म्मस्येति, अर्थस्तु पूर्व्ववत्, इत्यनुमितिलक्षणोपोद्घातसङ्गत्या प्रकृतग्रन्थमवतारयन्ति।

गुरुः प्रत्यवतिष्ठते, 'नन्विति, 'व्याप्यतावच्छेदकप्रकारेण'

---

तथाच गुरुमतेऽपि नैयायिकमतसिद्धकारणतावच्छेदकस्य प्रथमोपस्थि-तत्वरूपलाघवं सम्भवतीति।

धूमत्वादिप्रकारेण, 'व्याप्तिस्मरणं' व्याप्तिनिश्चयत्वं, व्याप्तिस्मरणत्व- प्रवेशे व्याप्त्यनुभवादनुमित्यनुत्पादापत्तेः, 'पक्षधर्मताज्ञानं' व्याप्यता- वच्छेदकप्रकारेण पक्षधर्मतानिश्चयत्वं, धूमत्वाद्यवच्छिन्नविषयतानि- रूपित-पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वमिति यावत्, 'तथा' धूमत्वाद्यवच्छिन्नलिङ्गकानुमितिं प्रति कारणतावच्छेदकं, तथाच धूमत्वाद्यवच्छिन्नलिङ्गकानुमितिं प्रति धूमत्वावच्छिन्नविशेष्य- ताकव्याप्तिनिश्चयत्वं धूमत्वाद्यवच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेद- कावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वञ्च द्वयं दण्डत्व-चक्रत्ववत्कारणताव- च्छेदकं, लिङ्गविशेषणकं व्याप्तिज्ञानञ्च[1] नानुमितिहेतुः, नव्यैरपि तस्मादनुमित्यनभ्युपगमात् इति भावः। 'लाघवादिति नैयायिका- भिमतनिरुक्तविषयताशालिनिश्चयत्वरूपकारणतावच्छेदकमपेक्ष्यास्म- दुक्तैतत्कारणतावच्छेदकद्वयस्य कुत्रचित् प्राथमिकप्रत्यक्षोपस्थितत्वरू- पलाघवादित्यर्थः, यत्र प्रथमं वह्निव्याप्योधूमः धूमवान् पर्वत इति ज्ञानं ततः सिद्ध्यादिप्रतिबन्धकवशेन नानुमितिः सामग्रीविरहात् किन्तु वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इति विशिष्टपरामर्शस्तत्रैव[2] स्वप्रकाशवादिनां गुरूणां मते तदभिमतस्य कारणतावच्छेद- कद्वयस्य नैयायिकाभिमतकारणतावच्छेदकमपेक्ष्य प्रथमं साक्षात्- कृतत्वात् तदाश्रयात्मकस्य[3] तत्प्रत्यक्षस्यैव प्रथममुत्पन्नत्वात्। न चैवं यत्र प्रथमत एव वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इति स्मरणा-

---

(१) व्याप्तिर्धूमे इत्याकारकज्ञानञ्चेत्यर्थः।

(२) सिद्ध्यादिप्रतिबन्धकवशेनानुमितिसामग्रीविरहात् वह्निव्याप्यधूम- वान् पर्व्वत इति विशिष्टपरामर्शस्तत्रैवेति क० ख०।

(३) कारणतावच्छेदकाश्रयात्मकस्येत्यर्थः।

ध्यात्मको विशिष्टपरामर्शस्तत्र नैयायिकसिद्धकारणतावच्छेदकस्यापि स्वप्रकाशवादिनां गुरूणां नये प्राथमिकप्रत्यक्षविषयत्वमिति वाच्यं। न्यायमतसिद्धकारणतावच्छेदकस्य गुरुमतसिद्धकारणतावच्छेदकद्वय-व्याप्यतया स्वप्रकाशमर्य्यादया तत्प्रत्यक्षदशायां गुरुमतसिद्धकारण-तावच्छेदकद्वयस्यावश्यं प्रत्यक्षोत्पत्तेरित्यभिमानः[१], यदा कदाचि-त्प्राथमिकप्रत्यक्षविषयत्वस्य कारणतावच्छेदकतायामविनिगमकत्वात् कल्पनालाघवं विनिगमकमाह, 'परामर्शहेतुत्वेनेति न्यायनये वह्नि-व्याप्यधूमवान् पर्व्वत इत्यादिविशिष्टपरामर्शस्यानुमितिहेतुत्वेनेत्यर्थः, 'आवश्यकत्वादिति अस्मदुक्तकारणतावच्छेदकद्वयस्य अनुमित्यव्य-वहितपूर्व्ववर्त्तितावच्छेदकत्वेन उभयवादिसिद्धानुमितिनियतपूर्व्वव-र्त्तितावच्छेदकताकत्वादित्यर्थः, नैयायिकसिद्धयथोक्तविशिष्टपराम-र्शस्याप्यस्मदुक्तकारणतावच्छेदकद्वयाक्रान्तत्वात्, तथाच नैयायिकसिद्धे कारणतावच्छेदके अन्यथासिद्धनिरूपकत्व-नियतपूर्व्ववर्त्तितावच्छेद-कत्वयोर्द्वयोः कल्पनामपेक्ष्य नियतपूर्व्ववर्त्तितावच्छेदकत्वेनोभयवादि-सिद्धस्यास्मदुक्तकारणतावच्छेदकद्वयस्य अन्यथासिद्धनिरूपकत्वमात्र-कल्पनालाघवादिति भावः। यद्यपि न्यायनये वह्निव्याप्यवानयं इति वह्निव्याप्यतावच्छेदकाप्रकारकपरामर्शाद्यत्रानुमितिस्तत्र व्याप्यता-वच्छेदकप्रकारकव्याप्तिनिश्चयाद्यभावेन मीमांसकाभिमतकारणता-वच्छेदकद्वयस्याप्युभयवादिसिद्धनियतपूर्व्ववर्त्तितावच्छेदकतया द्वयोः कल्पनमविशिष्टं तथाप्यस्य दोषस्य ग्रन्थकृतैवाग्रे वक्ष्यमाणत्वान्नासङ्गतिः।

---

(१) धूमत्वस्याभावानाधिकरण्येन वह्निव्याप्यवगाहिनि वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इति ज्ञान एव व्यभिचारान्न व्याप्यत्वमित्याशयेनोक्तं अभिमान इति ।

प्राञ्चस्तु 'परामर्शहेतुत्वेनेति व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्तिनिश्चय-व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकपक्षधर्मतानिश्चययोः वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इत्यादिनैयायिकाभिमतानुमितिकारणीभूतविशिष्टपरामर्शं प्रति जनकत्वेनेत्यर्थः, 'आवश्यकत्वादिति अस्मदुक्तकारणतावच्छेदकद्वयस्य उभयवादिसिद्धानुमितिनियतपूर्व्ववर्त्तितावच्छेदकताकत्वादित्यर्थः[1]। न च वह्निव्याप्योधूम इत्यादिव्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्तिनिश्चयस्य विशेषणतावच्छेदकादिप्रकारकज्ञानविधया विशिष्टपरामर्शजनकत्वेऽपि[2] धूमवान् पर्व्वत इत्यादिव्याप्यतावच्छेदकप्रकारकपक्षधर्मतानिश्चयस्य न विशिष्टपरामर्शजनकत्वमिति वाच्यं। तस्यापि पक्षतावच्छेदकादिप्रकारकज्ञानविधया विशिष्टपरामर्शजनकत्वादिति[3] व्याचक्षुः। तदसत्। तथापि पक्षे लिङ्गवैशिष्ट्यविषयत्वान्तर्भावेणाजनकतया तदवच्छिन्नस्य नियतपूर्व्ववर्त्तित्वासिद्धेः वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वतश्च इत्यादिकेवलपर्व्वतत्वादिप्रकारकज्ञानादपि वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इत्यादिविशिष्टपरामर्शसम्भ-

---

(१) उभयवाद्यसिद्धनियतपूर्व्ववर्त्तितानवच्छेदकतयेति क०।

(२) परामर्शस्य साध्यव्याप्तिविशिष्टहेतुवैशिष्ट्यावगाहित्वनियमेन परामर्शं प्रति हेतुविशेष्यक-साध्यव्याप्तिप्रकारकनिश्चयस्य विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चयविधया जनकत्वात् तादृशनिश्चयस्य अनुमितिनियतपूर्व्ववर्त्तित्वावश्यकत्वेऽपि पक्षविशेष्यकहेतुप्रकारकनिश्चयस्यानावश्यकत्वेन अनुमितिनियतपूर्व्ववर्त्तित्वमसिद्धमिति भावः।

(३) विशिष्टबुद्धिं प्रति विशेषणज्ञानस्य सामान्यतो हेतुत्वेन हेतुमान् पक्ष इत्याकारकज्ञानस्यापि पक्षतावच्छेदकादिविशिष्टबुद्ध्यात्मकपरामर्शं प्रति विशेषणज्ञानविधया जनकत्वमिति भावः।

वादिति ध्येयं। नन्वस्तु तदुभयरूपेण कारणत्वं किमवच्छिन्नमित्यत आह, 'एवञ्चेति, 'ज्ञानद्वयादेवेत्येवकारोऽप्यर्थे, नैयायिकसिद्धविशिष्टपरामर्शस्य धूमो वह्निव्याप्यो धूमवांश्च पर्व्वत इति समूहालम्बनज्ञानस्य च यथोक्तकारणतावच्छेदकद्वयाक्रान्ततयावधारणासङ्गतेः, अत्र यथोक्तव्याप्य-पक्षोभयवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयत्वमनुमितिजनकतावच्छेदकं न वा तादृशनिश्चयासमानकालीनं वह्निव्याप्यो धूमो धूमवान् पर्व्वत इति ज्ञानमनुमित्युपधायकं न वेत्यादयो विप्रतिपत्तयः, व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयस्यैवानुमितिजनकत्वमिति नये[१] व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयत्वं अनुमितिजनकतावच्छेदकञ्च वा इत्यपि विप्रतिपत्तिः सम्भवति, वह्निव्याप्यधूमवानयं इति ज्ञानं अनुमित्युपधायकञ्च वेति न विप्रतिपत्तिः परनयेऽपि तादृशज्ञानादनुमित्युत्पत्तेरिति ध्येयं। 'व्याप्यत्वज्ञानमेवेति व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चय एवेत्यर्थः, 'लाघवात्' कारणतावच्छेदकलाघवात्, 'आवश्यकत्वाच्चेति परनयेऽपि तादृशविशिष्टविषयताशालिनिश्चयस्यानुमितिहेतुत्वावश्यकत्वाच्चेत्यर्थः, 'उपजीव्यत्वाच्चेति क्वचित् पाठः तत्र तादृशविषयताशालिनिश्चयस्य परनयेऽप्यनुमितिं प्रति कारणत्वाच्चेत्यर्थः। अनुमित्युत्पत्त्यव्यवहितपूर्व्वं तादृशविशिष्टविषयताशालिनिश्चयः क्वापि नास्तीति भ्रमेण दूषयति, 'तस्येति तादृशविशिष्टविषयताशालिनिश्चयस्येत्यर्थः, 'अनुमितेः पूर्व्वं' अनु-

---

(१) नव्यनये इत्यर्थः।

मित्यव्यवहितपूर्व्वं, 'असिद्धौ' असत्त्वेन, 'युगपदुपस्थित्यभावादिति एकस्मिन् क्षणेऽव्यवहितपूर्व्वत्व-कालिकविशेषणताभ्यामनुमिति-तादृशविषयताशालिविशिष्टपरामर्शयोरुपस्थित्यभावादित्यर्थः, तथाच यदा अव्यवहितपूर्व्वत्वसम्बन्धेन कार्य्यं तदा कालिकसम्बन्धेन कारणतावच्छेदकावच्छिन्नमित्यन्वयसहचारज्ञानस्य कारणताग्राहकस्याभावात् कारणताग्रहासम्भव इति भावः ।

केचित्तु 'व्याप्यत्वज्ञानमेवेति व्याप्तिप्रकारकज्ञानमेवेत्यर्थः,[१] एवकारात् व्याप्यतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितत्वस्य व्याप्तिप्रकारताविशेषणस्य व्यवच्छेदः, 'लाघवादिति व्याप्यतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितव्याप्तिप्रकारताशालिनिश्चयत्वमपेक्ष्य व्याप्तिप्रकारकनिश्चयत्वस्यावच्छेदकस्य लघुत्वादित्यर्थः, कल्पनालाघवमाह, 'आवश्यकत्वाच्चेति व्याप्यतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितव्याप्तिप्रकारताशालिनिश्चयत्वावच्छिन्नस्य नियतपूर्व्ववर्त्तित्वेन व्याप्तिप्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्नस्य नियतपूर्व्ववर्त्तिताया आवश्यकत्वाच्चेत्यर्थः, 'उपजीव्यत्वाच्चेति पाठे व्याप्तिप्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्नस्य व्याप्यतावच्छेदकावच्छिन्न-विशेष्यतानिरूपितव्याप्तिप्रकारताशालिनिश्चयत्वावच्छिन्नव्यापकत्वाच्चेत्यर्थः, तथाच नियतपूर्व्ववर्त्तित्वमुभयवादिसिद्धमिति भावः, इत्याहुः । तदसत् । 'तस्येत्यादिदूषणासङ्गतेः, अनुमितेः पूर्व्वं व्याप्तिप्रकारकज्ञानस्य उभयवादिसिद्धत्वादिति ध्येयं ।

---

(१) व्याप्तिज्ञानस्य करणविधया कारणत्वं न तु परामर्शात्मकव्यापारविधया इति केषाञ्चिदभिप्रायः ।

अथ यथा तत्ताविशिष्टस्मरणे सतीन्द्रियसन्निकृष्टे स एवायमित्यभेदप्रत्ययो भवति तथेन्द्रियसन्निकृष्टे धूमे वह्निव्याप्यधूमस्मरणे धूमत्वासाधारणधर्म्मदर्शनाद्व्याप्योऽयमित्यभेदप्रत्ययः स्यात् सामग्र्या वृत्तत्वादिति स एवानुमितिहेतुरिति चेत्। न। प्रत्यक्षसामग्रीतोऽनु-

---

अनुमित्यव्यवहितपूर्व्वं तादृशविशिष्टविषयताशालिनिश्चयस्यासिद्धिं परिहरति, 'अथेति, 'वह्निव्याप्यधूमस्मरण इति, धूमवान् पर्व्वत इति ज्ञाने चेति शेषः, 'धूमत्वासाधारणेति धूमत्वरूपव्याप्यधर्म्मदर्शनात् इत्यर्थः, एतच्च संशयोत्तरं प्रत्यक्षाभिप्रायेण, 'व्याप्योऽयमितीति अनुमित्यव्यवहितपूर्व्वं वह्निव्याप्योऽयं पर्व्वते इत्याकारकनिरुक्तविषयताशालिनिश्चयात्मकः समूहालम्बनाभेदप्रत्ययः स्यादित्यर्थः, 'सामग्र्या वृत्तत्वादिति अभेदप्रत्ययसामग्रीवृत्तत्वात्तादृशविषयताशालिनिश्चयस्यापि सामग्र्या वर्त्तमानत्वादित्यर्थः, 'स एवानुमितिहेतुरिति एवकारोऽप्यर्थे सोऽप्यनुमित्यव्यवहितपूर्व्ववर्त्तीत्यर्थः। यद्वा एवकारोभिन्नक्रमेण सोऽनुमित्यव्यवहितपूर्व्ववर्त्त्येवेत्यर्थः, 'व्याप्याभेदप्रत्यय इति तादृशविषयताशालिनिश्चयात्मकाभेदप्रत्यय इत्यर्थः, 'अन्यथा' अनुमितिसामग्र्या बलवत्त्वाभावे, 'तव' नैयायिकस्य। 'स्मरत इति, पर्व्वत इत्युक्तरूपज्ञानवत इति शेषः, 'प्रथमत एवेति अनुमित्यव्यवहितपूर्व्वमेवेत्यर्थः, 'भासते' पर्व्वतांशे विशेषणीभूते धूमे भासते, 'आप्तवाक्यादिति, वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इति स्मरणं वेत्यपि बोध्यं। 'तत्रोभयत्रापीति,

मितिसामग्र्या बलवत्त्वात् अनुमितिरेवोत्पद्यते न तु व्याप्याभेदप्रत्ययः, अन्यथा तवापि परामर्शानन्तरं परामर्शान्तरम् तदनुव्यवसायो वा भवेन्न त्वनुमितिः। अथ धूमो वह्निव्याप्य इति स्मरतः पर्व्वतीयधूमेन्द्रियसन्निकर्षे प्रथमत एव व्याप्ति-धूमत्वयोर्वैशिष्टं यत्र

---

अव्यवहितपूर्व्वत्व-कालिकविशेषणताभ्यां अनुमिति-तादृशविषयताशालिनिश्चययोरन्वयसहचारज्ञानादिसत्त्वादिति भावः। 'लाघवादिति अवच्छेदकलाघवादित्यर्थः, न्यायनये च वह्निव्याप्यवानयमित्यादिव्याप्यतावच्छेदकाप्रकारकशाब्दादिपरामर्शादेव यत्रानुमितिस्तत्र व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्तिनिश्चयाद्यभावेन त्वदभिमतकारणतावच्छेदकद्वयस्याप्युभयवाद्यसिद्धनियतपूर्व्ववर्त्तितावच्छेदकताकतया(१) कल्पनागौरवविरहाच्चेत्यपि बोध्यं, एतत्सूचनायैव यत्र चाप्तवाक्यादिति पूर्व्वमुक्तं, 'पक्षधर्मव्याप्यत्वज्ञानस्येति पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयतानिरूपितव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वस्येत्यर्थः, 'हेतुत्वकल्पनात्' हेतुतावच्छेदकत्वकल्पनात्, 'अन्यत्रापीति वह्निव्याप्यो धूमः धूमवान् पर्व्वत इति ज्ञानोत्तरं यत्रानुमितिस्तत्रापीत्यर्थः, 'तथेति अनुमितिसामग्र्यभावेन तादृशज्ञानाव्यवहितोत्तरोत्पन्नस्य तादृशविषयताशालिनिश्चयस्यैवानुमित्युपधायकत्वमित्यर्थः, 'लिङ्गे' लिङ्ग-पक्षोभयस्मिन्, 'प्रत्यक्षविशिष्टज्ञानेति

---

(१) उभयवादिसिद्धनियतपूर्व्ववर्त्तितानवच्छेदकतयेति क०।

भासते विशेषणज्ञानस्य पूर्व्वं हेतुत्वात् तत्र; यत्र चाप्त-
वाक्याद्वह्निव्याप्यवानयमिति ज्ञानं तत्रोभयथापि ला-
घवात् पक्षधर्म्मव्याप्यत्वज्ञानस्य हेतुत्वकल्पनादन्य-
त्रापि तथेति चेत्। न। इन्द्रियासन्निकृष्टेऽतीन्द्रिये च
लिङ्गे प्रत्यक्षविशिष्टज्ञानसामग्रीविरहात्तेन विनानु-
मित्यनुत्पादापत्तेः अस्मदुक्तसामग्र्याश्च तत्रापि सत्त्वात्।

---

साध्यव्याप्यो हेतुर्हेतुमान् पर्व्वत इति ज्ञानोत्तरप्रात्यक्षिकताहृश-
विषयताशालिनिश्चयसामग्रीविरहादित्यर्थः, 'तेन विना' ताहृश-
विषयताशालिनिश्चयेन विना, 'अनुमित्यनुत्पादेति, इष्टापत्तौ
अनुभवविरोधादिति भावः। 'अनुमानादिति पक्षीयधूमो वह्नि-
व्याप्यो धूमत्वात् इत्यनुमानादिनेत्यर्थः, आदिपदाच्छाब्द-संस्का-
रादिपरिग्रहः, 'परामर्शः' साध्यव्याप्यो हेतुर्हेतुमांश्च पक्ष इति
ज्ञानाव्यवहितोत्तरं ताहृशविषयताशालिनिश्चयः, 'अनवस्थानादिति
व्याप्तिप्रकारकज्ञानादेस्तदानीमनवस्थानात्[१] इत्यर्थः।

केचित्तु 'अनवस्थानादिति तदानीं धूमस्याचासन्निकृष्टत्वेन
धूमत्वस्याप्यसन्निकृष्टतया विनाप्यनुमानं विशिष्टपरामर्शासम्भवेना-
नवस्थाप्रसङ्गादित्यर्थ इत्याहुः।

'वह्निरस्वतन्त्रेणापीति वह्निरिन्द्रियासत्त्वकारेण या वह्निविषय-

---

(१) तदानीमसत्त्वादित्यर्थः।

न चानुमानात् तत्र परामर्शः, अनवस्थानात्। अथ यथा स देवदत्तो गौरो न वा परमाणुरूपाधिकरणं न वेति संशयो वहिरस्वतन्त्रेणापि मनसा कोटि-स्मरण-विशेषादर्शनादिसहकारिवशाज्जन्यते, यथा वा निद्रासहकारेण वाह्यस्वप्नानुभवः तथेहापि ज्ञानान्त-रोपनीतविशेष्ये व्याप्तिस्मरणसहकृतेन मनसा परा-

---

कलौकिकप्रत्यक्षजनकता तदनाश्रयेणेत्यर्थः, सहकारित्वस्य भेदगर्भ-तया(१) घ्राणादेरेव तादृशजनकता प्रसिद्धा, घ्राणादेरपि मनःसह-कारेण तादृशजनकत्वादप्रसिद्धिवारणाय वहिष्टं इन्द्रियविशेषणं, मनसोऽपि वहिरिन्द्रियासहकारेण सुखादिप्रत्यक्षजनकत्वाद्बहिर्विष-यकत्वं प्रत्यक्षविशेषणं, 'निद्रेति, मेध्या-मनःसंयोगः 'निद्रा', 'तथे-हापीति इन्द्रियासन्निकृष्टातीन्द्रियलिङ्गपक्षस्थलेऽपीत्यर्थः, साध्य-व्याप्यो हेतुः हेतुमान् पक्ष इति ज्ञानानन्तरमिति शेषः, 'ज्ञाना-न्तरोपनीतेति हेतुमान् पक्ष इति ज्ञानान्तरोपनीतविशेष्य इत्यर्थः, 'व्याप्तिस्मरणेति साध्यव्याप्यो हेतुरितिव्याप्तिस्मरणेत्यर्थः, 'परामर्शः' साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्षइति निरुक्तविषयताशालिमानसनिश्चयः, 'तदनन्तरमिति साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्ष इत्यादिनिश्चयानन्तरमि-त्यर्थः, 'व्याप्तिस्मरणादेः' इन्द्रियासन्निकृष्टलिङ्गविशेष्यकप्रकृतव्या-प्तिस्मरणादेः, 'प्रमाणान्तरतापत्तेरिति पक्षविशेष्यक-तादृशलिङ्ग-

---

(१) तत्सहकारित्वञ्च तद्भिन्नत्वे सति तज्जन्यफलजनकत्वमिति भावः।

मर्शो जन्यते तदनन्तरमनुमितिदर्शनादिति चेत्। न। व्याप्तिस्मरणादेः प्रमाणान्तरतापत्तेः, तदेव हि प्रमाणान्तरं यदसाधारणं सहकारि समासाद्य मनोबहिर्गो-

प्रकारकमानसान्यप्रमायाः करणत्वापत्तेरित्यर्थः, अन्तरपदस्य स्वरूपार्थकत्वात् एवमग्रेऽपि, एतेन[१] प्रामाणान्तरत्वं न प्रत्यक्षादिप्रमाणचतुष्टयभिन्नप्रमाणत्वं, असिद्धेः, नापि तच्चतुष्टयभिन्नत्वमात्रं, वक्ष्यमाणापादकस्य इन्द्रियादौ मूलशैथिल्यापत्तेः, नापि प्रमाणान्तरत्वं प्रमाणत्वमेव, व्याप्तिज्ञानस्यानुमानात्मकत्वादिष्टापत्तेः, प्रमाजनकत्वोक्तावपि विशिष्टपरामर्शात्मकप्रत्यक्षप्रमामानुमित्यात्मकप्रमास्वादायेष्टापत्तेः। अत एव मानसातिरिक्तप्रमितिकरणत्वमपि न तत्, अनुमितिमादाय इष्टापत्तेः, नापि मानसप्रमित्यजनकत्वं, नियतव्यापाराभावेन प्रमायामकरणत्वादित्यभिमसिद्धान्तासङ्गतेरिति प्रत्युक्तं। आपत्तिबीजभूतां व्याप्तिं दर्शयति, 'तदेवहीति, 'हि' यस्मात्, यदसाधारणं सहकार्य्यासाद्य मनः 'बहिर्गोचरां' यद्वाह्यार्थविशेष्यक-यत्प्रकारिकां, 'प्रमां' प्रत्यक्षप्रमितिं, जनयति तत्सर्वं तदर्थविशेष्यक-तत्प्रकारकमानसान्यप्रमायाः करणं भवतीति योजना, एवकारस्य साकल्यार्थकत्वात्, तथाच यद्वाह्यार्थविशेष्यक-यदर्थप्रकारकप्रत्यक्षमितेर्मनोन्यासाधारणकारणं यद्भवति तत्तदर्थविशेष्यक-

---

(१) अन्तरपदस्य स्वरूपार्थकत्वेनेत्यर्थः।

चरां प्रमां जनयति यथेन्द्रियादि, संशय-स्वप्नौ तु न प्रमे इति न निद्रादेः प्रमाणान्तरत्वम्। नच तथापि

---

तत्प्रकारकप्रमायाः करणं भवतीति व्याप्तिशरीरं(१), सहकारित्वस्य

---

(१) यद्धाद्यार्थविशेष्यक यदर्थप्रकारक-प्रत्यक्षप्रमितित्वव्यनुभवत्वव्याप्य-जात्यवच्छिन्नकार्य्यतानिरूपित-तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकारणताश्रयत्वे सति स्वभिन्नमनोभिन्नप्रमाणजन्यवृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्य्यतानिरूपि-तकारणतानाश्रयीभूतं यद्भवति तत्तद्धाद्यार्थविशेष्यक-तदर्थप्रकारकप्रमायाः करणं भवतीति व्याप्तिशरीरं, दृष्टान्तश्च चक्षुरादिः, तथाच घटविशेष्यक-घटत्वप्रकारकप्रमितित्ववृत्तिर्या अनुभवत्वव्याप्यजातिश्चाक्षुषत्वं तदवच्छिन्नका-र्य्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नचक्षुष्ट्वावच्छिन्नकारणत्वं चक्षुषि वर्त्तते एवं चक्षुर्भिन्नमनोभिन्नप्रमाणं यत् घ्राणेन्द्रियं तज्जन्यवृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यं यत् घ्राणजत्वं तदवच्छिन्नकार्य्यतानिरूपित-कारणतानाश्रयत्वं तत्र स्थितं तत्र घटविशेष्यक-घटत्वप्रकारकप्रमायाः करणत्वमस्ति। व्याप्तिस्मरणरू-पोपनयस्य यदि व्याप्तिप्रकारकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वं नैयायिकैः स्वीक्रियते तदा व्याप्तिस्मरणेऽपि पर्व्वतविशेष्यकवह्निव्याप्यधूमप्रकार-कप्रत्यक्षप्रमितित्वव्यनुभवत्वव्याप्यप्रत्यक्षत्वरूपजात्यवच्छिन्नकार्य्यतानिरूपित-कारणताश्रयत्वघटितापादकसत्त्वेन तत्र पर्व्वतविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूम-प्रकारकप्रमायाः करणत्वापत्तिः। अत्र प्रमाकरणत्वमात्रस्यापाद्यत्वे पर्व्वत-विशेष्यक-वह्निप्रकारकानुमित्यात्मकप्रमामादाय व्याप्तिस्मरणे प्रमा-करण-त्वस्येष्टापत्तिसम्भवात् तद्धाद्यार्थविशेष्यक-तदर्थप्रकारकप्रमाकरणत्वस्या-पाद्यत्वमनुसृतं। न च पर्व्वतोवह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वतश्च वह्निमान् इति समूहालम्बनानुमितिरूपप्रमाकरणत्वस्य पक्षीभूतव्याप्तिस्मरणे सत्त्वात्

वाक्यार्थविशेष्यकेत्याद्युपादानेऽपीष्टापत्तिर्व्वारयितुं न शक्यते। न च तद्वाक्यार्थविशेष्यक-तदर्थप्रकारकप्रमायाः फलोपहितकारणत्वमेवापादनीयं तथाच धूमोवह्निव्याप्योधूमवान्पर्व्वतः इति स्मरणोत्तरं यत्र वह्निव्याप्यधूमवानिति मानसपरामर्शः तदनन्तरं पर्व्वतो वह्निमान् इत्यनुमितिः तत्स्थलीयव्याप्तिस्मरणस्य पक्षतया तत्र निरुक्तसमूहालम्बनानुमितेः फलोपहितकारणत्वाभावात् नेष्टापत्तिसम्भावनेति वाच्यं। एवं सति घटविशेष्यक-घटत्वप्रकारकप्रमितित्वत्यनुभवत्वव्याप्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितचक्षुरूपस्वरूपयोग्यत्वकारणत्वस्य घटचाक्षुषानुपधायकीभूतचक्षुष्यपि सत्त्वात् तत्र घटविशेष्यक-घटत्वप्रकारक प्रमायाः फलोपहितकारणत्वाभावात् व्यभिचारापत्तिरिति चेत्। न। स्वावृत्तित्व-स्वनिरूपितत्वैतदुभयसम्बन्धेन तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकप्रमाविशिष्टं यत्कारणत्वं तदाश्रयस्य स्वावृत्तित्व-स्वनिरूपितत्वैतदुभयसम्बन्धेन विशिष्टं यत्कारणत्वं तस्यैव तद्विशेष्यकतत्प्रकारकप्रमाकारणत्वपदार्थत्वात्। न च प्रकृतव्याप्तिस्मरणादौ तस्येष्टापत्तिः, तथाहि पर्व्वतोवह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वतश्च वह्निमानित्याकारिका या अनुमितिस्वरूपप्रमा स्वावृत्तित्व-स्वनिरूपितत्वोभयसम्बन्धेन तद्विशिष्टा न पर्व्वतविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमप्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्ना कारणता किन्तु तादृशसमूहालम्बनानुमितिपूर्व्ववर्त्ति-परामर्शनिष्ठतद्व्यक्तित्वावच्छिन्नकारणतैव तदाश्रयीभूततत्तत्परामर्शव्यक्तेः निरुक्तोभयसम्बन्धेन वैशिष्ट्यस्य प्रकृतव्याप्तिस्मरणवृत्तिकारणतायां विरहात् नेष्टापत्तिसम्भावना। घटविशेष्यक-घटत्वप्रकारकचाक्षुषस्य निरुक्तोभयसम्बन्धेनाधिकरणीभूतं यच्चक्षुःसंयोगत्वावच्छिन्नकारणत्वं तदाश्रयस्य निरुक्तोभयसम्बन्धेनाधिकरणत्वं चक्षुष्ट्वावच्छिन्नकारणतायामस्ति तत्कारणत्वस्य चक्षुषि सत्त्वात् न चक्षुषि दृष्टान्तासिद्धिः। पर्व्वतो वह्निमानित्याकारिका पर्व्वतविशेष्यिका या प्रमा निरुक्तोभयसम्बन्धेन तदाश्रयीभूता या पर्व्वतपक्षक-वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्ना कारणता तदाश्रयीभूतस्य मानसपरामर्शस्य

निरुक्तोभयसम्बन्धेनाधिकरणीभूता या मानसपरामर्शनिष्ठतद्व्यक्तित्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितव्याप्तिस्मरणनिष्ठतद्व्यक्तित्वावच्छिन्नकारणता तदाश्रयत्वस्य प्रकृतव्याप्तिस्मरणे नैयायिकैः इष्टापत्तिः कर्त्तुं शक्यतया तदर्थप्रकारकत्वोपादानं, महानसं वह्निव्याप्यधूमवत्पर्व्वतश्च वह्निमान् इत्याकारकसमूहालम्बनानुमितिप्रमायाः निरुक्तोभयसम्बन्धेनाधिकरणीभूतं यत्पर्व्वतधर्म्मिकवह्न्यनुमितित्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपित-पर्व्वतधर्म्मिकवह्निव्याप्यधूमप्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणत्वं तदाश्रयस्य मानसपरामर्शस्य निरुक्तोभयसम्बन्धेनाश्रयीभूतं यत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नव्याप्तिस्मरणनिष्ठकारणत्वं तदाश्रयत्वस्य नैयायिकमते प्रकृतव्याप्तिस्मरणे इष्टत्वात् यद्वाश्रयविशेष्यकत्वोपादानं, एवञ्च पर्व्वतोवह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वतोवह्निमांश्च इति समूहालम्बनानुमितिप्रमायाः निरूपितत्वस्य पर्व्वतधर्म्मिक-वह्निव्याप्यधूमप्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणतायां सत्त्वेऽपि न तादृशसमूहालम्बनानुमित्यवृत्तित्वं इति निरुक्तोभयसम्बन्धेन न तादृशसमूहालम्बनप्रमामादाय इष्टापत्तिः। अत्र पर्व्वतोवह्निव्याप्यवानित्याकारकानुमितिप्रमायाः स्वाव्यवहितत्वसम्बन्धेनाधिकरणीभूतं यत्पर्व्वतोवह्निमानित्यनुमितिनिष्ठतदनुमितित्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपित-तन्मानसपरामर्शनिष्ठतद्व्यक्तित्वावच्छिन्नकारणत्वं तदाश्रयीभूतपरामर्शस्य निरुक्तोभयसम्बन्धेनाश्रयीभूतकारणतायाः व्याप्तिस्मरणे सत्त्वादिष्टापत्तिरतः स्वनिरूपितत्वं प्रथमसम्बन्धद्वयघटकमिति। न च वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्व्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यकप्रमायाः निरुक्तोभयसम्बन्धेनाधिकरणीभूतं यत्कारणत्वं तदाश्रयस्य निरुक्तोभयसम्बन्धेन विशिष्टं यत्कारणत्वं तदेवापाद्यतां किं पर्व्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमप्रकारकप्रमावैशिष्ट्यस्य निवेशेन व्यवच्छेद्यवैशिष्ट्यनिवेशासम्भव एव सकलयोनिवृत्तेः साधकत्वसम्भवात् इति वाच्यं। एवं सति वह्निव्याप्यधूम एव पर्व्वतत्वस्य धर्म्मितावच्छेदकतया यत्रानुमितौ भासते तादृशं यद्वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इत्याकारकपर्व्वतोवह्निमानितिसमूहालम्बनानुमित्या-

त्मकज्ञानं तदनुमित्यवृत्तित्वस्य वह्निव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपितपर्व्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताशालिनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणत्वे सत्त्वात् एवं तदनुमितिनिरूपितत्वस्य च सत्त्वात् तादृशकारणताश्रयवैशिष्ट्यमादाय सिद्धसाधनापत्तिरतः पर्व्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारताशालिप्रमाया निरुक्तकारणत्वमापादितं, एवं जातिमान् वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वतश्च वह्निमानिति समूहालम्बनानुमितिरूपप्रमायाः निरुक्तोभयसम्बन्धेन वैशिष्ट्यस्य शुद्धपर्व्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयकानुमितित्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपित-शुद्धपर्व्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारताशालिनिश्चयत्वाच्छिन्नकारणतामादाय सिद्धसाधनापत्तिः, निरूप्य-निरूपकभावापन्नविषयताशालिप्रमाया निवेशे च शुद्धपर्व्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमप्रकारकप्रमायाः स्वावृत्तित्वसम्बन्धेन वैशिष्ट्यस्य निरुक्तकारणतायामसत्त्वात् न तादृशकारणतामादाय सिद्धसाधनमिति, एवञ्च प्रमापदमपि सार्थकं भवति अन्यथा पर्व्वतोवह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वतोवह्निमांश्चेति समूहालम्बनानुमितिरूपस्य इदं ज्ञानं वह्निव्याप्यधूमप्रमाभाववति वह्निव्याप्यधूमप्रमाप्रकारकमित्यप्रामाण्यविषयकज्ञानस्य निरुक्तोभयसम्बन्धेन वैशिष्ट्यस्य तादृशनिरुक्तकारणतायां सत्त्वादिष्टापत्तितादवस्थ्यमिति, तथाच तादृशाप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितानुमितेर्भ्रमसामान्यभिन्नत्वरूपप्रमात्वविरहात् नेष्टापत्तिसम्भावना । न चैवमपि भाविज्ञानं वह्निव्याप्यधूमाभाववति वह्निव्याप्यधूमप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानं ततः पर्व्वतोवह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वतोवह्निमांश्चेति समूहालम्बनात्मिकानुमितिः तदनन्तरमपि तादृशानुमितिधर्म्मिकतादृशाप्रामाण्यज्ञानं तादृशानुमितावप्रामाण्यज्ञानाभावविशिष्टपरामर्शत्वावच्छिन्नकारणतायाः असत्त्वेन प्रमापदोपादानेऽपि नेष्टापत्तिव्युदास इति वाच्यं। प्रमापदेन एकत्वावच्छेदेनैकात्मवृत्तित्वसम्बन्धेन भ्रमज्ञानविशिष्टान्यत्वस्य विवक्षितत्वात् तादृशानुमितेश्च भ्रमात्मकाप्रामाण्यज्ञानविशिष्टान्यत्वान्न दोषः ।

ननु भ्रमज्ञानविशिष्टान्यत्वविशिष्टपर्व्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यक-वह्निव्याप्य-धूमप्रकारकज्ञाननिरूपितकरणत्वापेक्षया केवलं प्रत्यक्षनिरूपितनिखिल-करणत्वमेवापाद्यतां तेनैव पर्व्वतोवह्निमानित्यनुमितिकरणत्वमादाय दृष्टा-पत्तिव्युदाससम्भवादिति चेत्। न। अनुमितेरपि प्राभाकरमतेऽनु-मित्यनुव्यवसायरूपतया प्रत्यक्षकारणत्वनिवेशेऽपीष्टापत्तेर्व्वारणायोगात्। नन्वेवं यत्र पर्व्वतो वह्निमानित्याकारकानुमितिरेव पर्व्वते वह्निमनु-मिनोमीत्याकारकप्रत्यक्षात्मिका तद्वृत्त्यनुमितित्वावच्छिन्नकार्य्यत्वनिरूपित-कारणत्वस्य वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वतइति परामर्शे सत्त्वात् तत्र च प्रमाकरणत्वविरहात् प्रमापदस्य प्रत्यक्षप्रमापरत्वेऽपि व्यभिचारोदुर्व्वार-एवेति चेत्। न। यद्वाह्यार्थविशेष्यक-यदर्थप्रकारतायां साक्षात्कारत्व-निरूपितत्वलाभाय प्रमापदस्य प्रत्यक्षपरत्वकथनात् तथाच पर्व्वतो-वह्निमानित्यनुमितिकाले पर्व्वते वह्निं साक्षात्करोमीत्यनुव्यवसायाभावात् साक्षात्कारत्वनिरूपितवह्निनिष्ठविषयताकत्वं न पर्व्वतोवह्निमानित्यनुमिते-रिति नानुमितेः प्रत्यक्षत्वमतेऽपि परामर्शे व्यभिचारः।

नन्तु चक्षुःसंयोगस्य कार्य्यतावच्छेदकं लौकिकविषयतासम्बन्धेन द्रव्य-चाक्षुषत्वमेवं आलोकसंयोगस्यापि तथाच चक्षुःसंयोगादौ व्यभिचारस्यानु-भवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्य्यतायां सत्यन्तदलप्रविष्टायां लौकिकविषय-त्वानवच्छिन्नत्वस्य निवेशेऽपि वारयितुं शक्यते इति तद्वारणाय स्वभिन्न-मनोभिन्नप्रमाणजन्यवृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारण-ताश्रयत्वरूपप्रमाणान्तरासहकारित्वनिवेशनं व्यर्थमिति चेत्। न। सत्यन्तदलप्रविष्टानुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्य्यतायां लौकिकविषयत्वानव-च्छिन्नत्वनिवेशे मनःसंयुक्तसमवाये व्यभिचारवारणाय मणिकृदुक्तार्थे वहिरिन्द्र-विशेषणस्य व्यर्थत्वापत्तेः आत्मसमवेतनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्धेन मान-सत्वावच्छिन्नं प्रत्येव मनःसंयुक्तसमवायस्य कारणतया तत्र लौकिक-विषयत्वानवच्छिन्नकार्य्यताप्रतियोगिककारणत्वाभावादेव व्यभिचाराप्रसक्तेः।

एवं चाक्षुषं प्रति चक्षुष्ट्वेन यथा कारणता तथा चक्षुर्मनःसंयोगत्वेनापि अतएवोक्तं प्राचीनैः “आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेन ततो ज्ञानं” इति, तथाच चाक्षुषं प्रति चक्षुर्मनोयोगत्वेन कारणतामादाय चक्षुर्मनोयोगे व्यभिचारस्तादृशकार्य्यताया लौकिकविषयत्वानवच्छिन्नत्वादतः स्वभिन्नमनोभिन्नप्रमाणजन्येत्यादिविशेष्यदलं, एवञ्च चक्षुर्मनोयोगभिन्नं यच्चक्षूरूपं प्रमाणं तज्जन्यवृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्या या चाक्षुषत्वव्याप्यजातिः तदवच्छिन्नकार्य्यतानिरूपित-कारणताश्रयत्वस्यैव चक्षुर्मनोयोगे सत्त्वात् न तत्र व्यभिचारः। नचैवं चक्षुषि दृष्टान्तासिद्धिः चक्षुर्भिन्नमनोभिन्नं प्रमाणं यच्चक्षुर्मनोयोगादिः तज्जन्यवृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वस्य चक्षुषि सत्त्वादिति वाच्यम्। अनुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्य्यता इत्यत्रानुभवत्वव्याप्यजातिपर्य्याप्तावच्छेदकताककार्य्यताया एव विवक्षणीयतया एकपुरुषीयचक्षुर्मनोयोगतः अन्यपुरुषीयचाक्षुषस्यानुत्पत्त्या तत्पुरुषीयचाक्षुषं प्रति तत्पुरुषीयमनोयोगत्वेनैव हेतुतया अनुभवत्वव्याप्यजातिपर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वस्य तादृशकार्य्यतायां विरहात्। न च तथापि चक्षुषि दृष्टान्तासिद्धिः सुषुप्तिकाले ज्ञानस्यानुत्पत्त्या ज्ञानसामान्यं प्रत्येव त्वङ्मनोयोगद्वारा त्वचो हेतुतया चक्षुर्भिन्नमनोभिन्नप्रमाणं यत्त्वक् तज्जन्यं चाक्षुषात्मकज्ञानमपि भवति तज्जन्यवृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वस्य चक्षुषि सत्त्वादिति वाच्यं। स्वभिन्नमनोभिन्नप्रमाणनिष्ठजनकतानिरूपितजन्यतायां द्रव्यावृत्तित्वमुपेक्ष्य यत्किञ्चिज्जन्यज्ञानावृत्तित्वस्य निवेशनीयतया जन्यज्ञानत्वावच्छिन्नायाः त्वक्त्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्य्यताया यत्किञ्चिज्जन्यज्ञानावृत्तित्वविरहात्। न चानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति ज्ञानत्वेन हेतुतया अनुभवत्वव्याप्यानुमितित्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणताश्रयीभूतं घटादिज्ञानमपि तज्जन्यत्वं घटवदिति घटत्वविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिचाक्षुषेऽपि वर्त्तते इति तद्वृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नका-

भेदगर्भतया मनोन्यत्वलाभात्, प्रमापदस्य प्रत्यक्षपरतया प्रत्यक्षमि-तेर्लाभः, दृष्टान्ते च इन्द्रियपदं चक्षुःपरं, आदिपदात्त्वगादिपरि-ग्रहः। अत्र करणत्वस्यासाधारणजनकताघटिततया शरीरात्मादौ काल-दिगादौ च व्यभिचारवारणाय मनोन्यासाधारणेति, तादृश-प्रमाया मनोन्यासाधारणकारणत्वञ्च तादृशप्रमितित्वव्यनुभवत्वव्या-प्यजात्यवच्छिन्नकार्य्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धानवच्छिन्नकारणता-श्रयत्वे सति मनोऽन्यप्रमाणान्तरासहकारित्वं, सत्यन्तोपादानादेव अन्यज्ञानत्वावच्छिन्नजनकस्य शरीरात्मादेः, कार्य्यत्वावच्छिन्नजनकस्य काल-दिगादेः, विशिष्टवैशिष्ट्यानुभवत्वावच्छिन्नजनकस्य विशेषण-तावच्छेदकप्रकारकज्ञानादेर्व्युदासः, तद्व्यक्तित्वेन कार्य्य-कारणभाव-मादाय विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानादावतिप्रसङ्गवारणाय तत्र जातिपदं, तदवच्छिन्नत्वञ्च तन्निष्ठावच्छेदकताकत्वमात्रं न तु तत्पर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वं, तेन पक्षीभूतव्याप्तिज्ञानादेः तत्तत्प्रकार-कप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नजनकत्वेऽपि न न्यायनये स्वरूपासिद्धिः। न चापत्तौ स्वरूपासिद्धिः न प्रतिकूलेति वाच्यं। तथासत्यापाद्याभावे-नापादकाभावसाधने सिद्धसाधनापत्तेः आपाद्याभावेन आपादका-भावसाधने एवास्यापादनस्य तात्पर्य्यात्। तादात्म्यसम्बन्धानवच्छि-

---

र्य्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वस्य चक्षुषि सत्त्वात् चक्षुषि दृष्टान्तासिद्धिता-दवस्थ्यं इति वाच्यं। स्वभिन्नमनोभिन्नप्रमाणतायां ज्ञानाहसितत्वस्य निवेश-नीयत्वात् नानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति ज्ञानत्वेन कारणतामादाय दृष्टा-न्तासिद्धिरिति विभावनीयम्।

त्वोपादानात् त्रिविषयत्वेन लौकिकप्रत्यक्षत्वेन तत्तद्विषयकलौकिक-प्रत्यक्षत्वेन तत्त्वेन सख्यादिलौकिकप्रत्यक्षत्वेन सख्यादित्वेनेति कार्य्य-कारणभावमादाय सख्यादिलक्षणविषये न व्यभिचारः। न च तदपि प्रमाकरणं भवत्येव विशिष्टप्रत्यक्षजनने निर्विकल्पकस्यैव व्यापारत्वादिति कुतो व्यभिचार इति वाच्यं। तथापि निर्विकल्पकाजनके विषये व्यभिचारस्य दुर्वारत्वात् निर्विकल्पकादिकमजनयित्वैव सा-क्षात्तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकचाक्षुषादिजनके चक्षुःसंयोगादिव्यक्तिविशेषे व्यभिचारवारणाय विशेष्यदलं तदर्थस्य मनोऽन्यस्वभिन्नप्रमाणजन्य-वृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्य्यतानिरूपित-कारणतानाश्रयत्वं, एतच्च शरीरादिसाधारणं अतो न सत्यन्तदलवैयर्थ्यं, चक्षुरादेरपि मनोरूपप्रमाणजन्यवृत्तिचाक्षुषत्वाद्यवच्छिन्नं प्रति जनकत्वात् स्वात्मक-प्रमाणजन्यवृत्तितदवच्छिन्नं प्रति जनकत्वाच्च दृष्टान्तासिद्धिवारणाय मनोऽन्यत्वं स्वभिन्नत्वञ्च प्रमाणविशेषणं। ननु तथापि[१] चक्षुरादेरालो-काद्यात्मकप्रमाणजन्यवृत्तिचाक्षुषत्वाद्यवच्छिन्नं प्रति जनकत्वात् असि-द्धिर्दुर्वारा। न च स्वभिन्नप्रमाणत्वं अनुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्य्यता-प्रतियोगिकस्वावृत्तिकारणताश्रयत्वं, अनुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नत्वञ्च तादृशजातिपर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वं, आलोकादिकस्य न तथा द्रव्यलौ-किकचाक्षुषत्वादेरेव तत्कार्य्यतावच्छेदकत्वादिति वाच्यं। द्रव्यवृत्तित्व-विशिष्टलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वस्यैव तत्कार्य्यतावच्छेदकत्वा-दिति चेत्। न। अनुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नलौकिकविषयत्वानव-

(१) अथ तथापीति ग० ।

च्छिन्नकार्य्यताप्रतियोगिकस्वावृत्तिकारणताश्रयस्य स्वभिन्नप्रमाणपदेन विवक्षितत्वात् चक्षुरादेः सामान्यतश्चाक्षुषत्वाद्यवच्छिन्नं प्रत्येव जनकत्वात् तादृशप्रमाणत्वसम्भवः, एकस्याश्चक्षुरादिव्यक्तेस्तादृशकारणताश्रयचक्षुरादिव्यक्त्यन्तरजन्यवृत्तिकार्य्यताप्रतियोगिककारणताश्रयत्वात् अधिष्ठितादवस्थ्यवारणाय स्वभिन्नत्वं तादृशकारणताश्रयविशेषणमपहाय स्वावृत्तित्वं कारणताविशेषणं, शरीरादिसाधारणकारणत्वमादाय द्रव्यत्वेन जन्यसत्त्वेन कार्य्य-कारणभावमादाय चाधिष्ठितादवस्थ्यवारणायानुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नत्वं स्वभिन्नप्रमाणत्वघटककार्य्यताविशेषणं[१]। न च तथापि कालत्वेन कार्य्यत्वेन द्रव्यत्वेन जन्यसत्त्वेन कार्य्य-कारणभावमादाय चक्षुरादिजन्यज्ञानस्यापि त्वगादिरूपनिरुक्तस्वभिन्नप्रमाणजन्यत्वात् अधिष्ठितादवस्थ्यमिति वाच्यम्। द्रव्यावृत्तित्वेन जन्यताविशेषणात्[२] पक्षीभूतव्याप्तिस्मरणादेरुपनयस्यापि तत्प्रकारकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति जनकतया चक्षुरादिप्रमाणान्तरजन्यवृत्तिकार्य्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वात्

(१) ननु एतत् कथं सङ्गच्छते द्रव्यत्वावच्छिन्नकारणत्वस्य चक्षुरादिवृत्तित्वादिति वाच्यम्। स्वावृत्तित्वपदेन स्वनिष्ठप्रमितिकारणतावच्छेदकानवच्छिन्नत्वस्य कारणतायां विवक्षितत्वात्, तथाच द्रव्यत्वावच्छिन्नजनकतायां चक्षुरादिनिष्ठप्रमितिकारणतावच्छेदकानवच्छिन्नत्वं अव्याहतमेव द्रव्यत्वस्य स्वनिष्ठप्रमितिकारणतानवच्छेदकत्वात्।

(२) मनोभिन्नस्वभिन्नप्रमाणजन्यवृत्तीत्यत्र जन्यताविशेषणादित्यर्थः, तथाच कालत्वावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतायाः कार्य्यत्वावच्छिन्नकार्य्यत्वेऽपि तत्त्वान्न दोषः इति भावः।

कथं स धूमोवह्निव्याप्य इति व्यवहारः तदानीं तद्व्याप्यत्वानुभावकाभावादिति वाच्यं। तत्र स्मृतधूमे धूमत्वेन वह्निव्याप्यत्वानुमानात्। नच तन्मते धूमत्वेन व्याप्यनु-

---

न्यायनये स्वरूपासिद्धिः कालत्वेन कार्य्यत्वेन द्रव्यत्वेन जन्यसत्त्वेन कार्य्य-कारणभावमादाय चक्षुरादेरपि त्वगादिप्रमाणान्तरजन्यत्वाद्यादिवृत्तिकार्य्यताप्रतियोगिककारणताश्रयत्वात् दृष्टान्तासिद्धिश्चातः तद्वारणाय प्रत्यक्षत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नत्वं सहकारिताघटककार्य्यताविशेषणं, प्रत्यक्षत्वव्याप्यत्वञ्च प्रत्यक्षनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वे सति प्रत्यक्षवृत्तित्वं, तेन पक्षीभूतव्याप्तिस्मरणादेरपि परामर्श-पक्षताद्यात्मकनिरुक्तस्वभिन्नप्रमाणजन्यवृत्त्यनुमितित्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वेऽपि न स्वरूपासिद्धिः, स्वभिन्नप्रमाणत्वघटकानुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नत्वं वा तादृशजातिपर्य्याप्तावच्छेदकताकत्वं वक्तव्यं परामर्शादेः कार्य्यता न तथा, एवञ्च प्रत्यक्षवृत्तित्वं नोपादेयं किन्तु तादृशजात्यवच्छिन्नत्वं मुख्यविशेष्यविधया समवायसम्बन्धेन तादृशजात्यवच्छिन्नत्वं वक्तव्यं(१) तेन व्याप्ति-

---

(१) मुख्यविशेष्यविधया अवच्छेदकत्वं इत्यस्य कार्य्यताज्ञानीयमुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारतासमानाधिकरण्यावच्छेदकत्वं इत्यर्थः, चाक्षुषं चक्षुः-कार्य्यमित्याकारक-कार्य्यताज्ञानीय-मुख्यविशेष्यतानिरूपित-प्रकारतासमानाधिकरण्यावच्छेदकत्वं चाक्षुषत्वादावेव वर्त्तते, तथा धूम-

भवः सम्भवति, अत एव यो वह्निव्याप्यवान् सोऽवश्यं वह्निमान् इति व्याप्तिज्ञानवतोऽनुमितिर्नान्यथा। अथ

---

स्मरणादेरपि कार्य्यतावच्छेदककोटौ प्रत्यक्षत्वन्यूनवृत्तिधूमत्वादेः प्रवेशेऽपि नासिद्धिः(१) स्वभिन्नप्रमाणत्वघटककारणतायां स्वावृत्तित्वविशेषणादेव व्याप्तिज्ञानादिव्यक्त्यन्तरजन्यानुमितिव्यक्तिमादाय नासिद्धिः। न च तथापि महत्त्वे व्यभिचारः प्राचीननये तस्य द्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्ने द्रव्यवृत्तित्वविशिष्टलौकिकविषयतादिसम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वावच्छिन्ने वा जनकतया निरुक्तासहकारित्ववत्त्वादिति

---

त्वप्रकारकप्रत्यक्षं धूमत्वज्ञानकार्य्यं इत्याकारककार्य्यताज्ञानीयमुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारतासमानाधिकरणावच्छेदकत्वं प्रत्यक्षत्वादावेव न तु धूमत्वादौ इति तस्य प्रत्यक्षत्वव्याप्यत्वेऽपि नासिद्धिः। यदि च परम्परायाः संसर्गत्वमभ्युपेयते तदा धूमत्वादेरप्यवच्छेदकत्वं सम्भवति स्वप्रकारकप्रत्यक्षत्ववत्त्वसम्बन्धेन धूमत्वावच्छिन्नं प्रति धूमत्वज्ञानत्वेन हेतुत्वकल्पनात् अत उक्तं समवायेनेति।

(१) व्याप्तिस्मरणभिन्नं मनोभिन्नञ्च यच्चक्षुरूपं प्रमाणं तज्जन्यं यत् वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इत्याकारकं धूमांशेऽलौकिकं पर्व्वतांशे लौकिकं प्रत्यक्षात्मकं ज्ञानं तद्वृत्तिप्रत्यक्षत्वन्यूनवृत्ति यत् धूमत्वं तदवच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वं व्याप्तिस्मरणे वर्त्तते धूमत्वप्रकारकप्रत्यक्षं प्रति धूमत्वज्ञानस्य हेतुत्वकल्पनात् अतः स्वरूपासिद्धिसङ्गतिरिति विभावनीयं।

पर्व्वतीयधूमे धूमत्वेन ज्ञाते वह्निव्याप्योऽयं न वेति संशयेऽप्यनुमितिः स्यादिति चेत्। न। धूमो वह्निव्याप्य-इति स्मरणे विद्यमाने धूमत्वज्ञानस्य विशेषदर्शनत्वेन

---

वाच्यं। तन्मताभ्युपगमेऽसाधारणकारणतायां सत्यन्तदले तादात्म्य-सम्बन्धानवच्छिन्नत्वव्वमहत्त्वावृत्तित्वेनापि कारणताया विशेषणीय-त्वात्। न च तथापि उद्भूतरूपे व्यभिचारः तस्य मानसेतरद्रव्य-लौकिकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्ने उद्भूतरूपवद्द्रव्यवृत्तित्वविशिष्टलौकिकविष-यतासम्बन्धेन[१] प्रत्यक्षत्वावच्छिन्ने वा जनकतया निरुक्तासहकारित्व-वत्त्वादिति वाच्यं। तस्य लाघवेन द्रव्यलौकिकचाक्षुषत्वाद्यवच्छिन्नं प्रत्येव जनकत्वात् मीमांसकेन पूर्व्वपक्षिणा वायोरपि प्रत्यक्षत्वाभ्युपग-मात् जरन्नैयायिकनये तु महत्त्वावृत्तित्ववद्रूपावृत्तित्वस्यापि[२] सत्य-न्तदले कारणतायां प्रवेशनीयत्वात्। मनःसंयुक्तसमवायादिलक्षणस्य सुखादिसन्निकर्षस्यापि मनोऽन्यप्रमाणान्तरासहकारित्वात् तत्र व्यभि-चारवारणाय वहिष्टं अर्थविशेषणं, तच्च मानसलौकिकप्रत्यक्षाविष-यत्वं, परनये ज्ञानलक्षणाया असन्निकर्षतया सुखादिप्रत्यक्षे वह्निरर्थस्य कदाचिदप्यभानान्न व्यभिचारतादवस्थ्यं, परामर्शादेरभावज्ञानत्वाद्य-वच्छिन्नवृत्तिकारणताश्रयस्य व्याप्तिज्ञानादेरेव सहकारितया तत्र

---

(१) मूर्त्तत्वविशिष्टलौकिकविषयतासम्बन्धेनेति ग०।

(२) उद्भूतरूपावृत्तित्वस्यापीति ख०।

संशयाभावात्, अन्यथा परामर्शोऽपि कुतो न स्यात् संशयेन प्रतिबन्धादिति चेत्तुल्यं। नच सामान्यनिश्च- यस्य सामान्यसंशयनिवर्त्तकत्वाद्धूमसामान्ये एव संशयो

---

व्यभिचारवारणाय सामान्यतोज्ञानत्वादिकमपहाय प्रत्यक्षमितित्वेन प्रवेशः, विपरीतज्ञानोत्तरप्रत्यक्षं प्रति विशेषदर्शनादेर्न कारणत्वं अपि तु विपरीतज्ञाननिवर्त्तकतया कथञ्चिदुपयोगित्वमेव तस्येति न व्यभिचार इति सर्वं चतुरस्रं।

केचित्तु 'व्याप्तिस्मरणादेः' प्रकृतव्याप्तिस्मरणादेः, 'प्रमाणान्तरताप- त्तेरिति प्रत्यक्षविजातीयविशिष्टपरामर्शरूपप्रमाकारणत्वापत्तेरित्यर्थः, 'तदेव हीत्यादि, 'हि' यस्मात्, यदसाधारणं मनोरूपं सहकार्य्यासाद्य वह्निगोचरां प्रमां जनयति 'तदेव प्रमाणान्तरं' तत्सर्वं प्रमाणान्तरं, इति योजना, यदित्यसाधारणविशेषणं, 'असाधारणं' यज्जातीयप्रमासा- मग्र्यसमवहितं, मनोरूपं सहकार्य्यासाद्येति स्वरूपकथनं, 'वह्निगोचरां प्रमां जनयति' यद्विशेष्यक-यत्प्रकारकप्रमां जनयति, 'प्रमाणान्तरं' तद्विजातीयतद्विशेष्यक-तत्प्रकारकप्रमाकरणं, तथाच यद्यज्जाती- यप्रमासामग्र्यसमवहितं सत् यद्विशेष्यक-यत्प्रकारकप्रमाजनकं भवति तत्तद्विजातीयतद्विशेष्यक-तत्प्रकारकप्रमाजनकं भवति यथा चक्षुरा- दिकमनुमानादिजातीयप्रमासामग्र्यसमवहितं सत् घटादिविशेष्यक- घटत्वादिप्रकारकप्रमाजनकं भवति तदनुमानादिविजातीयतादृ- शप्रमाजनकं भवत्येवेति निष्कृष्टं व्याप्तिशरीरं, प्रकृते व्याप्तिस्मरणमपि

मा भूत् विशेषसंशयश्च विशेषनिश्चयनिवर्त्तनीय इति धूमविशेषे संशयनिरासार्थं पृथग्व्याप्तिनिश्चयो वाच्य-इति वाच्यं। यत्र हि यद्व्यावर्त्तकधर्म्मदर्शनं तत्र न तत्सं-

---

यदि प्रत्यक्षजातीयप्रमाया लौकिकसन्निकर्षाद्यात्मकसामग्र्यसमवहितं सत् विशिष्टपरामर्शरूपप्रमाजनकं स्यात्तदा प्रत्यक्षविजातीयतादृशप्र-माजनकं स्यात्सामग्री च उभयवादिसिद्धत्वेन विशेषणीया, तेनोप-नयसन्निकर्षमादाय नासिद्धिः परनये उपनयस्य सन्निकर्षत्वाभावा-दिति व्याचक्रुः। तदसत्। 'नियतव्यापाराभावेन प्रमायामकरणत्वा-दित्यग्रिमग्रन्थासङ्गतेः प्रमाकरणत्वस्यापाद्यत्वाभावात्,। न च प्रत्यक्ष-विजातीयविशिष्टपरामर्शकरणत्वमेवापादनीयं(१) व्याप्तावपि साध्ये करणत्वमेव निवेशनीयमिति वाच्यं। अनुमानादिविजातीयप्रमा-सामग्रीमादाय चक्षुःसंयोगादौ व्यापारे व्यभिचारापत्तेरिति दिक्।

ननु प्रागुक्तसंशय-स्वप्नजनके निद्रादिजन्यपदार्थोपस्थितिरूपोपन-यसन्निकर्षेऽयं नियमो व्यभिचारी तत्र मनसो निद्रायाश्च करणत्वेन तज्जन्यपदार्थोपस्थितिरूपोपनयस्याकरणत्वादित्यत आह, 'संशय-स्वप्नौ त्विति प्रागुक्तसंशय-स्वप्नौ त्वित्यर्थः, 'न प्रमे' न विशिष्टप्रत्यक्षरूपौ, किन्तु स्मरणादिरूपधर्मिज्ञान-विशेषणज्ञानरूपौ, विशेषण-विशेष्य-

---

(१) तथाच प्रमाणान्तरतापत्तेरित्यस्य प्रत्यक्षविजातीयविशिष्टपराम-र्शरूपप्रमाकरणतापत्तेरित्यर्थो वाच्य इति भावः।

शयः तच्च सामान्ये विशेषे चेति। वस्तुतस्तु धूमत्वपुरस्कारेण व्याप्तिस्मरणे पक्षधर्मताज्ञाने चानुमितिर्भवत्येव। ननु भावोऽभावो वा उभयथापि प्रमेय-

---

योर्लौकिकसन्निकर्षसत्त्वे एव तयोः प्रत्यक्षरूपत्वादिति भावः। निद्रादेः' निद्रादिजन्यपदार्थोपस्थितेः, 'न प्रमाणान्तरत्वं' न विशिष्टप्रत्यक्षमितेरसाधारणकारणत्वं, तथाच हेत्वभावादेव न व्यभिचार इति भाव इति सम्प्रदायविदः।

रुजवस्तु नन्वेतादृशनियमे निद्रादिजन्यपदार्थोपस्थितेरपि संशय-स्वप्नकरणत्वापत्तिरित्यत आह, 'संशयेति, 'न प्रामाणान्तरत्वं' न प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्गः न संशय-स्वप्नकरणत्वप्रसङ्ग इति यावत्, शेषं पूर्ववदित्याहुः। तदुभयमप्यसत्। 'संशय-स्वप्नौ तु न प्रमे' इत्यभिधानस्यानुपयुक्तत्वापत्तेः निद्रादिजन्यपदार्थोपस्थितेर्न संशय-स्वप्नासाधारणकारणत्वमित्यस्यैव वक्तुमुचितत्वात् तन्मये ज्ञानलक्षणसन्निकर्षस्य प्रत्यक्षाजनकतया तयोर्विशिष्टप्रत्यक्षरूपत्वेऽपि निद्रादिजन्यपदार्थोपस्थितौ तदसाधारणकारणत्वासम्भवात्।

वस्तुतस्तु प्रागुक्तसंशय-स्वप्नस्थले वह्निरिन्द्रियलौकिकसन्निकर्षं विनापि वाह्यार्थविषयकविशिष्टप्रत्यक्षजनने क्लृप्तशक्तिकेन मनसा प्रकृतेऽपि तेन विना विशिष्टप्रत्यक्षं जनयितव्यं(१) केन वारणीयं

---

(१) विशिष्टप्रत्यक्षजननमिति ख०।

मित्यच भावत्वाभावत्वयोर्व्याप्यत्वावच्छेदकयोरग्रहा-दनुमानं न स्यात् तदन्यान्यत्वरूपस्यान्यतरत्वस्य लिङ्गत्वाभावादिति चेत्। न। भावत्वाभावत्वान्यान्य-

---

न व्याप्तिभिया सामग्री कार्य्यं नार्जयिष्यति। न च वहिरिन्द्रिय-व्यापारं विना मनसा वाह्यार्थविषयकविशिष्टप्रत्यक्षजनने दोषस्य सह-कारितया प्रकृते दोषाभावादेव न तेन विशिष्टप्रत्यक्षजननसम्भव-इति वाच्यं। दोषं विनापि स वृक्षः संयोगवान्न वेतिकोटिद्वयप्र-मारूपसंशयजनने दोषस्य व्यभिचारादित्यतआह, 'संशयेति लौकि-कसन्निकर्षाजन्यसंशय-स्वप्नौ लित्यर्थः, 'न प्रमे' न विशिष्टप्रत्यक्षरूपौ, किन्तु स्मरणाद्यात्मकधर्मिज्ञान-विशेषणज्ञानरूपौ, 'निद्रादेरिति पञ्चमी निद्रादिसहकारादित्यर्थः, 'प्रमाणान्तरत्वं' मनसः प्रमाणत्वं मनसो वहिरिन्द्रियलौकिकसन्निकर्षं विना वाह्यार्थविषयकविशिष्ट-प्रत्यक्षकारणत्वमिति यावत्। यद्वा 'निद्रादेरित्यस्यैव 'निद्रा' मेध्यामनःसंयोगः, तस्य 'आदिः' कारणं, इति व्युत्पत्त्या मनस-इत्यर्थः। 'न चेति, इन्द्रियासन्निकृष्टे धूमे इति शेषः, 'तवापीति, धूमो वह्निव्याप्य इति विशिष्टस्मरणाद्यभावदशायामिति शेषः, 'तद्व्याप्यत्वानुभावकेति तद्धूमे वह्निव्याप्यत्वानुभावकाभावादित्यर्थः, तत्र मानसस्य त्वयानङ्गीकारात् विशिष्टव्यवहारं प्रति च विशिष्ट-ज्ञानस्य हेतुत्वादिति भावः। 'व्याप्यत्वानुमानादिति खण्डशः धूमत्वत्वादिना धूमत्वादौ वह्निव्याप्तिव्याप्यत्वस्मरणस्य धूमत्वत्वादिना

धर्म्मावच्छिन्नस्य तच्च लिङ्गत्वात्, एवं धूमालोकान्यतरत्व-मपि लिङ्गम्। अथ यद्व्यतिरेकज्ञानं यदुत्पत्तिप्रति-बन्धकं तत्तन्निश्चयसाध्यं तथाच पक्षधर्म्मस्य व्याप्य-

---

तद्धूमे धूमत्वादिमत्तास्मरणस्य च सत्त्वात्, यदा तु न तादृशस्मरणं तदा असंसर्गाग्रहादेवेति भावः। 'न च तन्मत इति, वह्निव्याप्ति-व्याप्यधूमत्ववान् स धूमः वह्निव्याप्तिव्याप्यं धूमत्वं तद्धूमे इति विशि-ष्टस्मरणाभावात् तद्धूमस्यासन्निकृष्टत्वेन प्रात्यक्षिकतादृशविशिष्टपरा-मर्शस्यासम्भवात्, तथाच भवन्मत एव तादृशविशिष्टपरामर्शविरह-दशायां तादृशविशिष्टव्यवहारो न स्यादिति भावः। व्याप्यताव-च्छेदकप्रकारकव्याप्तिज्ञानाभावात् वह्निव्याप्यवानयमिति शाब्दादि-ज्ञानजन्यानुमितौ स्वमते व्यभिचारमुद्धरति, 'अत एवेति यत एवातीन्द्रियादौ व्यभिचारात् विशिष्टज्ञानं न कारणं अपि तु व्याप्यतावच्छेदकयद्धर्मावच्छेदेन व्याप्तिग्रहस्तत्प्रकारकपक्षधर्मताज्ञानं कारणं अत एवेत्यर्थः, वह्निव्याप्यवानयमिति शाब्दज्ञानोत्तरमिति शेषः, 'व्याप्तिज्ञानवत इति व्याप्तिस्मरणवत इत्यर्थः, अत्र वह्निव्याप्य-त्वस्यैव वह्निव्याप्यतावच्छेदकस्य प्रकारत्वादिति भावः। 'पर्व्वतीयधूम-इति धूमत्वरूपेण धूमे पर्व्वतवत्त्वे ज्ञाते इत्यर्थः, 'वह्निव्याप्यः' वह्नि-व्याप्यो धूमः, 'अयं न वा' पर्व्वतवान्न वा, अस्मन्मते च वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वतवान् इति विशिष्टनिश्चयाभावान्न तदानीमनुमिति-रिति भावः। 'स्मरणे विद्यमाने' धर्मितावच्छेदकप्रकारकधर्मिस्मरणे

भेदज्ञानमनुमितिप्रतिबन्धकम् अतो व्याप्याभेदज्ञानं तद्धेतुः सिध्यतीति चेत्। न। धूमत्वपुरस्कारेण व्याप्तिस्मरणे पक्षधर्मताज्ञाने च सति विशेषदर्शनाच्च धूमे

---

विद्यमानेऽपीत्यर्थः[१], 'धूमत्वज्ञानस्य' धूमत्वरूपेण धूमे पर्व्वतवृत्तानिश्चयस्य, 'विशेषदर्शनत्वेन' व्यावर्त्तकधर्मदर्शनत्वेन, 'संशयाभावात्' संशयस्यासम्भवात्, 'अन्यथेति व्यावर्त्तकधर्मदर्शने सत्यपि यदि तत्र संशयस्तदेत्यर्थः, संशयानन्तरमिति शेषः, 'परामर्शोऽपि कुतो न स्यादिति तव वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वतवानिति विशिष्टनिश्चयस्यापत्तेः सैव ममानुमितिसामग्री तस्या एव तव परामर्शसामग्रीत्वादित्यर्थः, तस्मात्तत्र संशयो न जायते किन्तु विशिष्टनिश्चय एव जायते ततोऽनुमितिरिति त्वयापि स्वीकरणीयमिति भावः। ननु मम विशिष्टपरामर्शस्यापि आपत्तिर्नास्तीति संशयस्य प्रतिबन्धकत्वादित्याशङ्कते, 'संशयेन प्रतिबन्धादिति, न विशिष्टपरामर्शापत्तिरिति शेषः। 'तुल्यमिति ममाप्यनुमितिं प्रति संशयः प्रतिबन्धकः सुवच इत्यर्थः, एतच्चाभ्युपगमवादः तादृशसंशयस्यानुमितिं प्रत्यतिरिक्तप्रतिबध्य-प्रतिबन्धकत्वकल्पने गौरवात्। वस्तुतस्तु विशेषदर्शनसत्त्वात् संशय एव न जायत इत्यत्रैव निर्भरो बोध्यः, अत एव तत्रैवाशङ्कते, 'न चेति, 'सामान्यनिश्चयस्येति धूमत्वरूपसामान्यधर्म-

---

(१) संशयं प्रति धर्म्मितावच्छेदकप्रकारकधर्म्मिज्ञानं कारणमित्यभिप्रेत्याह, धर्म्मितेति।

व्याप्यभेदज्ञानं किन्तु अनुमितेरेवोत्पत्तिः तत्सामग्री-सत्त्वात् अतो व्याप्यभेदज्ञानं नानुमितिप्रतिबन्धकं येन व्याप्याभेदज्ञानं तद्धेतुः स्यात्। न च धूमत्वप्रकारेण

---

धर्मितावच्छेदककनिश्चयस्येत्यर्थः, 'सामान्यसंशयेति धूमत्वरूपसामान्यधर्मधर्मितावच्छेदककसंशयेत्यर्थः, 'निवर्त्तकत्वात्' प्रतिबन्धकत्वात्, तत्सत्त्व इति शेषः, 'धूमसामान्ये' धूमत्वावच्छिन्ने, 'विशेषसंशय-इति वह्निव्याप्यधूमत्वरूपविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यताकसंशय इत्यर्थः, 'विशेषनिश्चयेति तादृशविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यताकनिश्चयेत्यर्थः, 'निवर्त्तनीयः' प्रतिबध्यः, 'धूमविशेषे' वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्ने, 'संशयनिरासार्थमिति पर्व्वतसंशयानन्तरमनुमितिनिरासार्थमित्यर्थः, 'पृथगिति वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वतवान् इति विशिष्टनिश्चय एवानुमितिहेतुर्व्वाच्यः इत्यर्थः। 'यत्र हीति यद्धर्मावच्छिन्ने हीत्यर्थः, 'तत्र' तद्धर्मावच्छिन्ने, 'तच्च' तद्धर्मावच्छिन्ने तत्संशयात्मकज्ञानञ्च, 'सामान्ये विशेषे वेति तद्धर्मावच्छिन्ने तद्धर्मघटितविशेषधर्मावच्छिन्ने वेत्यर्थः, तथाच सामान्याभाव-तद्व्याप्यादिबुद्धेः सामान्यघटितविशेषवत्ताबुद्धिप्रतिबन्धकत्ववत् सामान्यधर्मधर्म्मितावच्छेदककतद्व्यावर्त्तकधर्म्मवत्ताज्ञानमपि[१] सामान्यघटितविशेषधर्म्मधर्म्मितावच्छेदककतद्वत्ताबुद्धिं प्रति प्रतिबन्धकं भूतलं घटाभाववदिति निश्चये भूतलं घटवदिति ज्ञानवत् नीलभूतलं घटवदिति बुद्धेरप्यनुदयात्, तद्व्या-

---

(१) तद्व्यावर्त्तकधर्म्मदर्शनमपीति ग०।

व्याप्तिस्मरणपक्षधर्म्मताग्रहे इयं धूमव्यक्तिर्व्वह्निव्याप्या नेति भ्राम्यतोऽनुमित्यापत्तिरतो विशिष्टज्ञानं हेतुरिति वाच्यं। धूमत्वस्य विशेषस्य दर्शनेन तादृशभ्रमानुत्पत्तेः

---

वर्त्तकधर्म्मस्य तदत्यन्ताभावः, तदत्यन्ताभावव्याप्यः, तदत्यन्ताभावो यद्धर्मावच्छेदेन गृहीतः स धर्म्मः, तद्वदन्योन्याभावः, तद्वदन्योन्याभावव्याप्यः, तद्वदन्योन्याभावो यद्धर्मावच्छेदेन गृहीतः स धर्मः, तादात्म्यसम्बन्धेन तद्वत्ताबुद्धौ तद्भेदादिदर्शनमपि बोध्यं । न च तथापि वह्निव्याप्यः पर्व्वतवान्न वेति संशये न किमपि बाधकं तत्र धर्मितावच्छेदके धूमत्वाप्रवेशादिति वाच्यं। तादृशसंशयसत्त्वेऽनुमितेरिष्टत्वात् वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वतवानिति विशिष्टनिर्णयदशायां तादृशसंशयसत्त्वेऽप्यनुमितेस्त्वयाप्यभ्युपगमादिति भावः। वस्तुतस्तु 'अन्यथेत्यादिग्रन्थोऽन्यथैव योजनीयः, तथाहि 'अन्यथा' धूमत्वावच्छिन्नविशेष्यक-पर्व्वतवत्तानिश्चयो यदि व्यावर्त्तकधर्मदर्शनत्वेनापि न वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नविशेष्यक-पर्व्वतसंशयाभावप्रयोजकः तदा, 'परामर्शोऽपीति वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वतवानिति विशिष्टनिश्चयोऽपीत्यर्थः, 'कुतो न स्यादिति वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वतवान्न वेति संशयाभावाप्रयोजकः कुतो न स्यादित्यर्थः। अथ विशिष्टनिश्चयस्य तादृशसंशयनिष्ठप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकाश्रयत्वात् न तादृशसंशयाभावाप्रयोजकत्वमिति चेत्, तर्हि धूमः पर्व्वतवानिति निश्चयस्यापि तदाश्रयत्वात् तस्यापि न तादृशसंशयाभावाप्रयोजकत्वमित्याह, 'संशयेन प्रतिबन्धादिति संशयनिरूपितप्रतिबन्धकता-

तत्रानुमितिसद्भावादेव अन्यथा निश्चयसामग्र्यां सत्यां भ्रमानन्तरं परामर्श एव कुतो न भवति। अस्तु वा व्याप्यतया पक्षधर्म्मतया चावगतस्य भेदाग्रह एवानु-

---

वच्छेदकाश्रयत्वादित्यर्थः। तत्र तादृशसंशयप्रतिबन्धकतावच्छेदक-वत्त्वमेवासिद्धमित्यभिप्रायेणाशङ्कते, 'न चेति, 'सामान्यनिश्चयस्येति पूर्व्ववत् धूमसामान्ये संशयो मा भूत् तत्सत्त्वे धूमत्वावच्छिन्नविशेष्यकसंशय एव न जायते स धूमत्वावच्छिन्नविशेष्यकसंशयाभावस्यैव प्रयोजक इति यावत्, 'एवकारात् वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नविशेष्यकसंशयाभावस्य व्यवच्छेदः, 'विशेषसंशयस्येत्यादि व्याख्यातार्थकं, 'धूमविशेषे संशयनिरासार्थमिति पृथक् व्याप्तिनिश्चयो धूमविशेषे संशयनिरासार्थमवश्यं वाच्य इति योजना, 'पृथक् व्याप्तिनिश्चयः' वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वतवानिति निश्चयः, 'धूमविशेषे संशयनिरासार्थं' वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नविशेष्यकसंशयाभावप्रयोजकं, प्रधानकर्मतया विकारकर्मतया वा न प्रथमा "दुह्यादेर्गौणकं कर्मेत्याद्यनुशासनात्, 'यत्र त्वीत्यादिग्रन्थोऽपि पूर्व्ववत्। ननु तथापि यत्र प्रथमं वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वतवान्न वेति संशयः ततः पर्व्वतो धूमवानिति निश्चयः तत्रानुमित्यापत्तिर्दुर्व्वारा संशयस्यैव व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्तिनिश्चयत्वादित्यस्वरसादिष्टापत्तिमाह, 'वस्तुतस्त्विति, 'स्मरणे' निश्चये।

केचित्तु अनुमितिसामग्र्या बलवत्त्वात् न तादृशसंशयसम्भव इत्याह, 'वस्तुतस्त्विति, 'धूमत्वपुरस्कारेणेति, धर्म्मितावच्छेदकप्रका-

मितिहेतुः परामर्शहेतुतया तस्यावश्यकत्वात् । अत-एवासन्निकृष्टधूमज्ञानादप्यनुमितिः । न चैवं गौरवं, तदा विशिष्टज्ञानानुपस्थितेः । न च जनकज्ञानाविरोधिनो

---

रकधर्मिज्ञानस्य संशयहेतुतया तस्य प्रथममावश्यकत्वादिति भावः । 'पक्षधर्मताज्ञाने' धूमत्वरूपेण पक्षप्रकारकज्ञाने, 'अनुमितिर्भवत्ये-वेति, 'एवकारोभिन्नक्रमे अनुमितिरेव भवति न तु संशयः अनु-मितिसामग्र्या बलवत्वादित्यर्थः । न च धूमत्वरूपेण पक्षप्रकारक-ज्ञानदशायामेव संशयसम्भव इति वाच्यं । प्रतिबन्धकाभावस्य का-र्य्यसहभावेन हेतुतया तदानीं संशयासम्भवादिति भावः, इति व्याचक्षुः । तदसत् । धूमत्वरूपेण पक्षप्रकारकनिश्चयात् पूर्व्वं संशय-सम्भवात् ।

मिश्रास्तु भवतु संशयः भवतु च तन्निरासार्थं[१] क्वचिद्विशिष्ट-निश्चयोऽपेक्षितः तथापि धूमत्वरूपेण व्याप्तिस्मरणे तेन रूपेण पक्षधर्मताज्ञाने चानुमितिर्भवत्येव यत्र न संशयस्तत्रैव तादृशज्ञान-द्वयादनुमित्युत्पत्तेः तावतैव सिद्धं नः समीहितमित्याह 'वस्तु-तस्त्विती'त्याहुः ।

'नन्विति[२], इदमिति पक्षः[३] पूरणीयः, 'भावो वा' भावत्व-

---

(१) संशयानन्तरमनुमितिनिरासार्थमित्यर्थः ।

(२) नन्वित्यादिना नैयायिकशङ्का ।

(३) नीलत्वेन प्रतीयमानस्य तमसः पक्षत्वमिति भावः ।

ज्ञानस्याप्रतिबन्धकत्वात् भेदग्रहो न प्रतिबन्धक इति वाच्यम्। अभेदज्ञानस्याजनकत्वात् त्वयापि लिङ्गपरा-

---

वद्वा, 'अभावो वा' अभावत्ववद्वा, 'प्रमेयं' प्रमेयत्वव्याप्यवत्, 'भावत्वाभावत्वयोरिति धर्मपरो निर्देशः भावत्वत्वाभावत्वत्वरूपव्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयाभावादित्यर्थः, 'अनुमानं' अनुमितिः, ननु तत्र भावाभावान्यतरत्वप्रकारेण भावाभावान्यतरत्वनिष्ठप्रमेयत्वव्याप्तिज्ञानात् तेन रूपेण तस्य पक्षधर्मताज्ञानाच्चानुमितिः फलबलेन तादृशज्ञानकल्पनादित्यत आह, 'तदन्यान्यत्वेति भावभिन्नत्वे सति अभावभिन्नो यस्तदन्यत्वरूपस्य भावाभावान्यतरत्वस्येत्यर्थः, 'लिङ्गत्वाभावादिति, अप्रसिद्धेरिति भावः। 'भावत्वाभावत्वेति भावत्वाभावत्वान्यतरधर्मरूपेण भावत्वाभावत्वान्यतरधर्मनिष्ठव्याप्ति-पक्षधर्मताज्ञानादेव तत्रानुमित्युत्पादात् फलबलेन तादृशज्ञानकल्पनादित्यर्थः, 'एवमिति, 'लिङ्गं' लिङ्गतावच्छेदकं, यत्रायं धूमवान् वा आलोकवान् वा उभयथापि वह्निव्याप्यवानिति ज्ञानानन्तरमनुमितिस्तत्रापि धूमालोकान्यतरत्वरूपेण धूमालोकान्यतरनिष्ठव्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयादेवानुमितिः फलबलेन तादृशज्ञानकल्पनादित्यर्थः, 'यद्व्यतिरेकज्ञानमिति यद्धर्मावच्छिन्नविशेष्यकयद्धर्मावच्छिन्नवद्भेदज्ञानत्वावच्छिन्नमित्यर्थः, 'तन्निश्चयसाध्यमिति तद्धर्मावच्छिन्नविषयतानिरूपिततद्धर्मावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिककार्य्यतावदित्यर्थः 'पक्षधर्मस्येति पक्ष-

मर्शे तादृशस्य प्रतिबन्धकत्वस्वीकाराच्च। अथ गोत्वं मधुरत्वावान्तरजातिर्वा लिङ्गं न स्यात् तद्गतधर्म्मान्तर-

---

तावच्छेदकावच्छिन्नपक्षवत इत्यर्थः, 'व्याप्यभेदज्ञानमिति साध्यव्याप्यहेतौ भेदज्ञानमित्यर्थः, 'व्याप्याभेदज्ञानमिति साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्ने पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवतोऽभेदस्य पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवत्त्वरूपस्य ज्ञानं साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवद्विषयताशालिनिश्चयत्वावच्छिन्नमिति यावत्, यथाश्रुते सिद्धसाधनापत्तेः, एवमग्रेऽपि, 'पक्षधर्मताज्ञाने' पक्षप्रकारकनिश्चये, 'विशेषदर्शनात्' व्यावर्त्तकधर्मदर्शनात्, पक्षस्यैव पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवद्भेदव्यावर्त्तकत्वादितिभावः, 'धूमे व्याप्यभेदज्ञानं' धूमत्वावच्छिन्ने वह्निव्याप्यत्वावच्छिन्नविशेष्यकपक्षवद्भेदज्ञानमिति यावत्, 'अत इति, 'व्याप्यभेदज्ञानं' साध्यव्याप्यहेतुत्वावच्छिन्ने पक्षवद्भेदज्ञानं, स्वाभावेतरसकलकारणसत्त्वे यत्सत्त्वे कार्य्यानुत्पादस्तस्यैव प्रतिबन्धकत्वादिति भावः। ननु धूमत्वावच्छिन्नविशेष्यक-पक्षप्रकारकनिश्चयस्य धूमत्वावच्छिन्नविशेष्यक-पक्षवद्भेदप्रकारकनिश्चयं प्रत्येव विरोधितया तत्सत्त्वेऽपि वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नविशेष्यक-पक्षवद्भेदप्रकारकभ्रमे बाधकाभाव इति भ्रमेणाशङ्कते, 'न चेति, 'पक्षधर्मताग्रहे' पक्षप्रकारकनिश्चये, विद्यमानेऽपीति शेषः, 'इयमिति वह्निव्याप्यधूमव्यक्तिरियं पर्वतीया नेति योजना, 'भ्राम्यतः' भ्रमे बाधकविरहवतः, 'अनुमित्यापत्तिः' तदनन्तरमनुमित्यापत्तिः। भ्रमं निराकृत्य समाधत्ते, 'धूमत्वस्येति, घटितत्वं षष्ठ्यर्थः, धूम-

स्याभावात् स्वत एव तस्य विलक्षणत्वात् इति चेत्। न। व्यक्तेरेव तत्र प्रकारत्वात्, न हि गौर्गोत्वमिति ज्ञानयो-

त्वघटितविशेषस्येत्यर्थः, 'दर्शनेन' विशेष्यतावच्छेदकतया भानेन, 'तादृशभ्रमेति, सामान्यधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-तद्व्यावर्त्तकधर्मवत्ता-निश्चयस्य सामान्यघटितविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-तन्निश्चयं प्रत्यपि विरोधित्वात्। न च तथापि वह्निव्याप्यः पर्वतवानिति भ्रमे बाध-काभावः तत्र धूमत्वस्य विशेष्यतावच्छेदकस्याप्रवेशादिति वाच्यं। तादृशभ्रमसत्त्वेऽनुमितेरिष्टत्वात् वह्निव्याप्योधूमः पर्व्वतवानिति नि-श्चयसत्त्वे वह्निव्याप्यः पर्व्वतवानिति भ्रमेऽप्यनुमितेस्त्वयाप्यभ्युपगमात्, एवं यत्र प्रथमं वह्निव्याप्योधूमः पर्व्वतवानिति भ्रमः ततो धूमः पर्व्वतवानिति निश्चयस्तत्राप्यनुमितिरिष्टैवेति भावः। पूर्व्वं 'यत्र हीत्यादिना सामान्यधर्मावच्छिन्नविशेष्यकतद्व्यावर्त्तकधर्मदर्शनस्य सा-मान्यघटितविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यकतत्संशयं प्रत्यपि विरोधित्व-मुक्तं अत्र तु तादृशनिश्चयं प्रतीत्यतो न पौनरुक्त्यं। 'अन्यथेति यदि सामान्यधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-तद्व्यावर्त्तकधर्मदर्शनस्य न सामान्य-घटितविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-तन्निश्चयप्रतिबन्धकत्वं तदेत्यर्थः, 'निश्चयसामग्र्यां' विशेष्यतावच्छेदकप्रकारकनिश्चयादिरूपविशिष्ट-परामर्शसामग्र्यां, 'भ्रमानन्तरमिति पाठः धूमो न पर्व्वतवानिति धूमत्वधर्मितावच्छेदकभ्रमानन्तरमित्यर्थः, 'विशिष्टपरामर्श एवेति(१),

(१) विशिष्टपरामर्श एवेत्यत्र परामर्श एवेति पाठः अस्मल्लब्धादर्शपुस्त-केषु वर्त्तत इति।

रविशेषः, अन्यथा गोत्वमिति ज्ञानस्य निर्व्विकल्पकत्वापत्त्या व्याप्यत्वग्रहे परामर्शे चानुपयोगात् गवेतराद्वृत्तित्वे सति सकलगोवृत्तित्वं गोत्वत्वमित्यनुभवाच्च ।

---

वह्निव्याप्योधूमः पर्व्वतवानिति विशिष्टपरामर्श एवेत्यर्थः, तथाच धूमत्वरूपसामान्यधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-पर्व्वतवद्वेदग्रहानन्तरं यथा न तद्घटितविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-पर्व्वतवत्तानिश्चयः तथा तादृशसामान्यधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-पर्व्वतवत्तानिश्चयानन्तरमपि न तद्घटितविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-पर्व्वतवद्भेदवत्तानिश्चय इति भावः । अभ्युपगमवादेनाह, 'अस्तु वेति, 'व्याप्यतयेति व्याप्यतावच्छेदकरूपेण साध्यव्याप्यतयावगते पक्षवत्तयावगतस्य भेदाग्रह इत्यर्थः । कल्पनालाघवं हेतुमाह, 'परामर्शहेतुतयेति । न चैवं यद्व्यतिरेकज्ञानमित्यादिव्याप्तिबलादेव विशिष्टपरामर्शत्वेन हेतुत्वसिद्धिरिति वाच्यं । यत्त-तत्त्वयोरननुगमात् उभयवादिसिद्धदृष्टान्ताभावाच्च तद्व्याप्तेरसिद्धेः । न च व्यतिरेकेण दृष्टान्तः सुलभ इति वाच्यं । साध्यस्याप्रसिद्धा[१] व्यतिरेकदृष्टान्तस्यासम्भवादिति भावः । 'असन्निकृष्टधूमज्ञानादपीति धूमेन्द्रियसन्निकर्षविरहदशायामपि धूमत्वरूपेण खण्डशः साध्यव्याप्यत्व-पक्षवत्त्वस्मरणादनुमितिरित्यर्थः ।

---

(१) वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नविशेष्यक-पर्व्वतवत्तानिश्चयत्वावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यत्वरूपसाध्याप्रसिद्धेरित्यर्थः ।

न चैवमनवस्था, तदितराशक्तित्वे सति तद्दृशक्तित्वस्यानुभवेनापत्त्रापासम्भवात् ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे परामर्शपूर्वपक्षः ।

---

'गौरवमिति कारणतावच्छेदकशरीरगौरवमित्यर्थः, विशिष्टपरामर्शत्वमपेक्ष्य यथोक्तभेदाग्रहत्वस्य गुरुत्वादिति भावः । 'तदेति धूमेन्द्रियसन्निकर्षविरहदशायामित्यर्थः, 'अनुपस्थितेः' अनुपपत्तेः, तथाचानायत्या गौरवमप्याश्रीयत इति भावः[१] । 'भेदग्रहः' व्याप्यतावच्छेदकप्रकारेण साध्यव्याप्यतयावगते पक्षवद्भेदग्रहः । 'अभेदज्ञानस्य'[२] साध्यव्याप्यत्वविशिष्टहेतौ पक्षवदभेदप्रकारकनिश्चयस्य तादृशहेतौ पक्षप्रकारकनिश्चयस्येति यावत्, 'अजनकत्वात्' जनकत्वासम्भवात्, तथाचानायत्या कारणीभूतज्ञानाविरोधिनोऽपि

---

(१) ननु यत् यस्य प्रतिबन्धकं ज्ञानं तत् तस्य जनकीभूतज्ञानविघटकं भवतीति व्याप्तिबलात् तादृशाभेदज्ञानं नानुमितिप्रतिबन्धकं स्यादित्यत आह मूले न चेति ।

(२) ननु तादृशाभेदज्ञानं यदि नानुमितिप्रतिबन्धकं तदा तत्सत्त्वे अनुमितिरेव कुतो न स्यात् तत्र विशिष्टनिश्चयरूपकारणाभावादतो नानुमित्युत्पादः इत्यत आह अभेदज्ञानस्येति ।

तादृशभेदज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वमास्थीयत इति भावः। उक्तव्याप्ते-र्व्यभिचारमप्याह, 'त्वयापीति, 'तादृशस्य' कारणीभूतज्ञानाविरोधिनो यथोक्तभेदग्रहस्य(१)। 'अथेति यदि च व्याप्यतावच्छेदकप्रकारेण व्याप्तिज्ञानं व्याप्यतावच्छेदकप्रकारेण पक्षधर्मताज्ञानं व्याप्यतावच्छेदकप्रकारेण व्याप्यतयावगते पक्षवृत्तित्वग्रहाभावो वानुमितिहेतुः तदा गोत्व-मधुरत्वावान्तरजातिलिङ्गकानुमितिर्न स्यादित्यर्थः,(२) जातिपदं धर्मपरं, स च धर्मः परेषामखण्डोपाधिः अस्माकं जातिरेवेति फलतो न कश्चिद्विशेषः। .'धर्मान्तरेति अनतिप्रसक्तधर्मान्तरेत्यर्थः। न च गोत्वे गोपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वमेव तादृशोधर्मः सम्भवतीति वाच्यं। पृथिवीत्वस्यापि गोपदप्रवृत्तिनिमित्ततया तस्यातिप्रसक्तत्वात् मधुरत्वावान्तरजातेस्तदसम्भवाच्च, अत एव पृथक् तदुत्कीर्त्तनं। नन्वेवं भवन्मतेऽपि कथं तस्य गवादावितरव्यावृत्तिधाधकत्वमत आह, 'स्वतएवेति स्वरूपत एवेत्यर्थः, अस्मन्मत इति शेषः, 'विलक्षणत्वात्' व्यावर्त्तकत्वात्। 'व्यक्तेरेवेति गोत्वाद्यवच्छिन्नगवादिव्यक्तेरेवेत्यर्थः, समवेतत्वसम्बन्धेनेति शेषः, 'प्रकारत्वात्' अनतिप्रसक्तधर्मत्वात्। ननु समवेतत्वस्य सम्बन्धत्वे मानाभाव इत्यत आह, 'न हीति, समवेतत्वसम्बन्धेन गोत्वे गोप्रकारकत्वस्यैव तत्र विशेषत्वादिति भावः। ननु गौरिति ज्ञाने गोत्वं

---

(१) तथाच यत् यस्य प्रतिबन्धकीभूतं ज्ञानं भवति तत् तस्य जनकीभूतज्ञानविघटकं स्यात् इति व्याप्तौ परामर्शप्रतिबन्धके भेदग्रहे परामर्शजनकज्ञानविघटकत्वाभावात् व्यभिचार इति भावः।

(२) गोत्वादेः स्वरूपतो भानमित्यभिप्राय इति।

प्रकार: गोत्वमित्यत्र तु न तथेत्येव विशेष इत्यत आह, 'अन्यथेति, 'व्याप्यत्वग्रह इति गोत्वघटितव्याप्यत्वग्रहे तादृशव्याप्यत्वविशिष्टवत्ता-परामर्शे चानुपयोगप्रसङ्गादित्यर्थः, विशेषणतावच्छेदकप्रकारक-ज्ञानविधयैव तत्र तस्य उपयोगादिति भावः। ननु गोनिष्ठाभावा-प्रतियोगित्वादिगर्भव्याप्यत्वग्रहे तादृशव्याप्यत्वविशिष्टवत्तापरामर्शे च विशेषणज्ञानविधयैवास्मन्मये तस्योपयोग इत्यत आह, 'गवेतरेति, गोवृत्ति गोत्वमित्येव पाठः, तथाच गवेतरासमवेतत्वे सति सकल-गोसमवेतत्वमेव तत्रानतिप्रसक्तो धर्मस्तस्यानुभवसिद्धत्वेनापह्नवासम्भ-वादिति भावः। 'न चैवमिति, 'एवं' गोत्वेऽपि अनतिप्रसक्तधर्म-स्वीकारे, 'अनवस्थेति तत्रापि धर्मान्तरस्वीकारेऽनवस्थेत्यर्थः, 'अनु-भवेनेति अनुभवसिद्धत्वेनेत्यर्थः, तथाच प्रामाणिकत्वादनवस्थेयं न दोषायेति भावः।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये परामर्शपूर्वपक्षरहस्यं।

## अथ परामर्शसिद्धान्तः ।

अत्रोच्यते अयमालोको धूमो वा उभयथापि वह्नि-व्याप्य इति ज्ञानं ततोऽनुमितिः । न च धूमत्वेनालोकत्वेन वा तत्र निश्चयः । अथ तदन्यान्यत्वमेव तत्र लिङ्गं । न च तद्ज्ञानदशायामनुमितिदर्शनात् . न तथेति वाच्यं । धूमालोकान्यान्यत्वज्ञानं विना तत्रापि तत्र व्याप्यत्वानिश्चयेन तदर्थं तद्बोधावश्यकत्वादिति चेत् ।

---

## अथ परामर्शसिद्धान्तरहस्यं ।

यत्रायं पक्षः व्याप्यत्वसम्बन्धेन संयोगसम्बन्धेन वा वह्निः साध्यः तादात्म्यसम्बन्धेनालोको धूमो वा हेतुः तत्रायं धूमो वा आलोको वा उभयथापि वह्निव्याप्य इति व्याप्यतावच्छेदकधूमत्वादिप्रकारक-संशयात्मकव्याप्यतावच्छेदकतादात्म्यसंसर्गकवह्निव्याप्यप्रकारकज्ञानानन्तरमपि व्याप्यत्वादिसम्बन्धेन वह्नेरनुमितिः परस्याप्यभिमता सा कथं स्यात् व्याप्यतावच्छेदकधूमत्वादिप्रकारकव्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चय-विरहादिति समाधत्ते, 'अयमिति, 'आलोको धूमो वेति, अत्र तादात्म्यसम्बन्धेनालोकादिरेव कोटिः, 'इति ज्ञानमिति इत्याकारकं व्याप्यतावच्छेदकतादात्म्यसम्बन्धेन पक्षे वह्निव्याप्यप्रकारक-

न। न हि धूमालोकान्यान्यत्वं धूमान्यान्यत्वं वा व्याप्यावच्छेदकं, गौरवात् व्यभिचारावारकविशेषणवत्त्वाच्च, किन्तु धूमत्वादिकं, तच्च तत्र सन्दिग्धमेव। ननु तदन्यान्यद्वह्निव्याप्यमेव व्यभिचाराभावेन व्याप्तिविरहसाधनस्य बाधितत्वात्, पुरुषस्तु तत्र नीलधूमवत्त्वादि-

---

ज्ञानमित्यर्थः। न चेदन्त्वावच्छिन्ने वह्निव्याप्तिप्रकारकनिश्चयस्यैवायमाकारो न तु व्याप्यप्रकारकनिश्चयस्येति वाच्यं। धर्मप्रकारकनिश्चयस्यैव तादात्म्यसम्बन्धेन धर्मिप्रकारकनिश्चयाकारत्वात्। अत एव गोत्वप्रकारकज्ञानस्यैव तादात्म्यसम्बन्धेन गवादिप्रकारकज्ञानस्यापि अयं गौरित्याकार इति सर्व्वजनसिद्धं, 'ततोऽनुमितिः' तदनन्तरमपि व्याप्यत्वादिसम्बन्धेन वह्नेरनुमितिः, परस्याभिमतेति शेषः, 'तत्र निश्चयः' तत्र व्याप्ति-पक्षधर्मतयोर्निश्चयः। यद्यपि पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यत्र पर्व्वतो धूमवान् आलोकवान् वा उभयथापि वह्निव्याप्यवानिति व्याप्यतावच्छेदकधूमत्वादिप्रकारकसंशयात्मकपरामर्शाद्वह्न्यनुमितिरनुभवसिद्धा सा तन्मते न स्यादित्येव वक्तुं युक्तं प्रसिद्धोदाहरणत्वात्, तथापि तैः(१) तत्र तादृशसंशयात्मकपरामर्शानन्तरं वह्न्यनुमितिर्जायते इति स्वशास्त्रे क्वाप्यलिखनात् तत्परित्यागः। 'तदन्यान्यत्वमेवेति धूमालोकान्यतरत्वमेवेत्यर्थः,(२) 'तत्र लिङ्गं' तत्र

---

(१) मीमांसकैरित्यर्थः।

(२) धूमालोकान्यान्यत्वमेवेत्यर्थ इति ग०।

त्यपेक्षाधिक्येन निगृह्यते, न तु व्याप्यत्वासिद्ध्येति चेत्। न। तदन्यान्यधूमालोकस्वरूपमेव तच्च व्याप्यमिति सत्यं। न च वस्तुगत्या व्याप्यज्ञानादनुमितिः, अतिप्रसङ्गात्। किन्तु व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकज्ञानात्, न च तदन्यान्यत्वं वह्निव्याप्यतावच्छेदकं, इत्युक्तम्। न चैवं तदन्यान्यत्वाद्वह्निव्याप्यत्वमपि तच्च नानुमेयं व्यर्थविशेषण-

---

वह्निव्याप्यांशे(१) विशेष्यतावच्छेदकं सत्पक्षधर्मतांशे विशेषणतावच्छेदकं, तथा च तत्र साध्यवह्निव्याप्यधूमालोकान्यतरोऽयमिति ज्ञानं ततोऽनुमितिरिति भावः। 'तदज्ञानदशायामपीति धूमालोकान्यतरत्वाज्ञानदशायामपीत्यर्थः, 'अनुमितिदर्शनात्' तादृशसंशयात्मकपरामर्शानन्तरं व्याप्यत्वादिसम्बन्धेन वह्नेरनुमितिदर्शनात्, 'न तथा' न मध्ये तादृशज्ञानं। 'धूमालोकान्यान्यत्वज्ञानमिति पक्षे तादात्म्यसम्बन्धेन धूमालोकान्यतरत्वप्रकारक-धूमालोकान्यतरवत्तानिश्चयं विनेत्यर्थः, 'व्याप्यत्वानिश्चयेनेति पक्षे प्रत्यक्षतो वह्निव्याप्यत्वप्रकारक-वह्निव्याप्यवत्तानिश्चयासम्भवेनेत्यर्थः, संशयादिनिरासार्थं विशेषदर्शनविधया तन्निश्चयस्योपयोगादित्यभिमानः। 'धूमान्यान्यत्वं चेति, 'वा'शब्द इवार्थे, 'गौरवादिति। न चैकस्यावच्छेदकत्वापेक्षया धूमत्वालोकत्वधर्मद्वयस्यावच्छेदकत्व एव गौरवमिति वाच्यं। तादृशधर्मस्यैकत्वेऽपि बहुतरभेदादिघटिततया चरमोपस्थितत्वेन च तद्-

---

(१) व्याप्यांशे इति ख०, ग०।

त्वादिति वाच्यं। प्रत्यक्षं हि तदन्यान्यत्वविशेषदर्शना-द्व्याप्यत्वज्ञानं जनयति विशेषणज्ञान-विशेषणविशेष्यसम्बन्ध-विशेषणविशेष्येन्द्रियसन्निकर्ष-तदसंसर्गाग्रहविशेषदर्शनानां सत्त्वेन वह्निव्याप्यत्वप्रत्यक्षसत्त्वात्। न चैवं न प्रत्यक्षेऽपि तदन्यान्यत्वज्ञानं सहकारीति वाच्यम्।

---

घटकधर्मद्वयस्यैवावच्छेदकत्वौचित्यात् लाघवद्वयसत्त्वेनैकत्वरूपलाघवस्याकिञ्चित्करत्वादिति भावः, 'व्यभिचारेति अन्यान्यत्वलक्षणव्यभिचारावारकधर्मघटितत्वाच्चेत्यर्थः, 'सन्दिग्धमेव' सन्देहकोटितावच्छेदकमेव, तदन्यान्यत्वस्य व्यभिचारावारकधर्मघटिततया तदन्यान्यद्वह्निव्याप्यमेव नेत्युक्तमिति भ्रमेणाशङ्कते, 'नन्विति।

केचित्तु वस्तुगत्या व्याप्यस्य पक्षधर्मताज्ञानं कारणमित्याशयेनाशङ्कते, 'नन्वितीत्याहुः।

'तदन्यान्यदिति पाठः, 'तदन्यान्यत्वमिति पाठे तदन्यस्यान्यत्वं यत्र इति बहुव्रीहिः[१] एवमुत्तरत्र, 'वह्निव्याप्यमेव, धूमालोकत्वरूपेण वह्निव्याप्यमेव। नन्वेवं धूमालोकान्यतरस्मादिति प्रयोगे कथं निग्रहइत्यत आह, 'पुरुषेति, 'नीलधूमवत्त्वादित्यत्रैवेति, नीलधूमत्वस्य व्यर्थविशेषणघटिततया तेन रूपेण व्याप्तिविरहेऽपि धूमत्वरूपेण व्याप्तिसत्त्वादिति भावः। भ्रमं निराकृत्य समाधत्ते, 'तदन्यान्यदिति,

---

(१) तदन्यान्यत्वं यत्रेति बहुव्रीहिरिति ग०। तदन्यत् अन्यत् यत्र इति बहुव्रीहिरिति घ०।

अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां गुरोरपि तस्य विशेषदर्शनत्वेन प्रत्यक्षसहकारित्वात् तस्मात्तदन्यान्यत्वज्ञानं तत्र व्याप्यताज्ञानोपक्षीणं न तु साक्षादनुमितिहेतुरिति, किञ्च वह्निव्याप्यवानयमिति शाब्दज्ञाने व्याप्यत्वज्ञानं कार-

---

'व्याप्यज्ञानात्' व्याप्यस्य पक्षधर्मताज्ञानात्, 'अतिप्रसङ्गादिति वह्निव्याप्योधूमः द्रव्यवान् पर्व्वत इत्यादिज्ञानादपि भवन्मतेऽनुमितिप्रसङ्गादित्यर्थः, 'व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकज्ञानादिति व्याप्तिग्रहविशेष्यतावच्छेदकीभूतो यो व्याप्यतावच्छेदकधर्मस्तत्प्रकारकपक्षधर्मताज्ञानादित्यर्थः। 'न चैवमिति, 'एवं' धूमालोकान्यान्यत्वस्य व्याप्यतावच्छेदकत्वाभावे, धूमत्वालोकत्वादिरूपेण व्याप्तिज्ञानविरहदशायामिति शेषः, 'तदन्यान्यत्वादिति धर्मिपरो निर्देशः तादात्म्यसम्बन्धेन धूमालोकान्यतरेण हेतुनेत्यर्थः, 'नानुमेयं' नानुमातुं शक्यं, 'व्यर्थविशेषणत्वादिति व्यर्थविशेषणतया तस्य व्याप्यतावच्छेदकत्वा भावेन तद्धर्मावच्छिन्नस्य व्याप्यघटकत्वादित्यर्थः, तद्धर्मावच्छिन्नस्य व्याप्तिघटकत्वे तद्धर्मस्य व्याप्यतावच्छेदकत्वस्यावश्यकत्वात् यद्धर्मावच्छिन्नसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितानवच्छेदकं साध्यतावच्छेदकं तस्यैव व्याप्यतावच्छेदकत्वात् इति भावः।

केचित्तु 'न चैवमिति, 'एवं' व्यर्थविशेषणत्वस्य व्याप्यतावच्छेदकताविघटकत्वे, धूमत्वादिना व्याप्तिज्ञानविरहदशायामिति शेषः, 'तदन्यान्यत्वादिति विशेषणताविशेषसम्बन्धेन धूमालोकान्यान्यत्वेन

णमित्यन्यत्रापि तथा। अथ वह्निव्याप्यत्वमपि वह्नि-व्याप्यतावच्छेदकं तथाहि वह्निनिरूपिता धूमादि-प्रत्येकवृत्तिरेव व्याप्तिर्व्याप्तित्वेन सकलधूमादिवृत्ति-

---

हेतुनेत्यर्थः, शेषं पूर्व्ववदित्याहुः। तन्न। धूमालोकान्यान्यत्वस्य धूमत्वाद्यतिरिक्तत्वे भिन्नधर्मिकतया धूमप्रागभाववद्वैयर्थ्यात् धूमत्वादिरूपत्वेऽपि च धूमत्वत्वादेरप्रवेशेन वैयर्थ्यविरहादिति द्रष्टव्यं।

न भवत्येव तत्र तेन हेतुना वह्निव्याप्यत्वानुमितिः किन्तु प्रत्यक्षत एव तत्र व्याप्तिर्गृह्यते इति समाधत्ते, 'प्रत्यक्षं हीति, 'विशेषदर्शनादिति, एतच्च संशयोत्तरव्याप्तिप्रत्यक्षाभिप्रायेण, 'विशेषण-विशेष्यसम्बन्धेति, एतच्च सम्बन्धांशे लौकिकप्रत्यक्षाभिप्रायेण, यथार्थप्रत्यक्षं प्रति विशेषण-विशेष्यसम्बन्धस्य गुणतया तत्सम्पादनाय इदमित्यपि कश्चित्। 'विशेषण-विशेष्येन्द्रियेति, विशेषणस्य ज्ञानसत्त्वेऽपि पुनरिन्द्रियसन्निकर्षाभिधानं तदंशे लौकिकप्रत्यक्षाभिप्रायेण, 'प्रत्यक्षसत्त्वादिति प्रत्यक्षसम्भवादित्यर्थः, इदमुपलक्षणं व्यर्थविशेषणतया तद्धर्म्मावच्छिन्नघटितव्यापकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तेर्व्विरहेऽपि तद्धर्मेण साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानेन वा अनुमितेरपि सम्भवाच्च, न हि गुरुनय इव न्यायनयेऽपि व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकज्ञानमेव कारणं अन्यथाख्यात्यनभ्युपगमो वेति ध्येयं। 'न चैवमिति, 'एवं' गुरुतयानवच्छेदकत्वे, 'प्रत्यक्षेऽपीति, गुरुतया विषयितया ज्ञाननिष्ठप्रत्यक्षकारणतावच्छेदकत्वासम्भवादिति भावः। 'गुरोरपीति, तस्य वृद्धे-

# व्याप्यवच्छेदिका आश्रयभेदेनावच्छेदकभेदेन च व्याप्तिभेदादिति चेत्। न। सकलधूमादिवृत्तिव्याप्तौ मानाभावात् यत्र वह्निव्याप्यस्तत्र वह्निरिति व्याप्तिबुद्धौ

---

रिति शेषः, 'विशेषदर्शनत्वेनेति व्यावर्त्तकधर्मदर्शनविधया विपरीतज्ञानविरोधिदर्शनत्वेनेत्यर्थः, 'प्रत्यक्षसहकारित्वात्' प्रत्यक्षोपयोगित्वात्, न तु तदन्यान्यत्वज्ञानत्वेन कारणत्वमिति भावः। 'तदन्यान्यत्वज्ञानमिति पक्षे धूमालोकान्यान्यत्वप्रकारक-धूमालोकान्यान्यवत्ताज्ञानमित्यर्थः, 'तत्रेति अयमालोको धूमो वेत्यादिसंशयपरामर्शस्थल इत्यर्थः, 'व्याप्यताज्ञानोपक्षीणमिति पक्षे वह्निव्याप्यत्वप्रकारक-वह्निव्याप्यवत्ताप्रत्यक्षोपयुक्तमित्यर्थः, 'न त्विति, व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्तिपक्षधर्मताज्ञानस्यैव भवन्मतेऽनुमितिहेतुत्वात् अन्यतरत्वस्य च गौरवादिना व्याप्यतानवच्छेदकत्वादिति भावः। इदमुपलक्षणं संशयादिसामग्र्याः सर्व्वत्रानावश्यकत्वेन यत्रेतरकारणाभावात् संशयाद्यभावः तत्र धूमालोकान्यतरवत्ताज्ञानमपि नावश्यकमिति मन्तव्यं। अस्तु वा गुरुरपि धर्मो व्याप्यतावच्छेदकः अस्तु वा उक्तस्थले धूमालोकान्यान्यवत्ताज्ञानमावश्यकं तथापि शुद्धव्याप्तिप्रकारकशाब्दज्ञानस्थले व्यभिचारान्न व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्यादिज्ञानस्यैव हेतुतानियम इत्याह, 'किञ्चेति, 'शाब्दज्ञाने' शाब्दज्ञानजन्यानुमितौ, 'व्याप्यत्वज्ञानं कारणमिति पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविषयतानिरूपित-व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयताशालिज्ञानमेव कारणमित्यर्थः,

शाब्दव्याप्यत्वबुद्धौ च प्रत्येकवृत्तिव्याप्त्याश्रयत्वस्यैव विषयत्वात् प्रत्येकवृत्तिव्याप्तिज्ञानं विना तद्बोधाभावात्। अपि च यत्र धूमत्व-व्याप्त्योर्वैशिष्ट्यं प्रथममेव

---

'अन्यत्रापि' वह्निव्याप्यो धूमः धूमवान् पर्व्वत इत्यादिज्ञानोत्तरमनुमितावपि, 'तथा' तादृशविषयताशालिज्ञानं कारणं, न तु सर्व्वत्र व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्त्यादिज्ञानमेव कारणमिति नियमोऽत्रैव व्यभिचारादिति भावः। व्यभिचारमुद्धरति, 'अथेति, तथाच व्याप्यत्वप्रकारकज्ञानस्यैव व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकज्ञानत्वान्नियमस्य न व्यभिचार इति भावः। ननु व्याप्तेर्व्याप्यतावच्छेदकत्वे आत्माश्रयः इत्यत आह, 'तथाहीति, 'प्रत्येकवृत्तिः' प्रत्येकमात्रवृत्तिः, 'सकलधूमादीति सकलधूमालोकादिनिष्ठेत्यर्थः। ननु यत्र यत्र वह्निव्याप्यस्तत्र वह्निरिति प्रतीतिरेव मानमित्यत आह, 'यत्रेति, 'शाब्दव्याप्यत्वबुद्धौ चेति, 'चशब्द इवार्थे, शाब्दवह्निव्याप्यवानयमिति बुद्धाविवेत्यर्थः। ननु प्रत्येकवृत्तिव्याप्तिज्ञानाभावदशायामपि तादृशप्रतीत्युत्पत्तेर्न तस्याः प्रत्येकवृत्तिव्याप्त्याश्रयत्वं विषय इत्यत आह, 'प्रत्येकेति, तवापीतिशेषः, प्रत्येकव्याप्तेर्महाव्याप्त्यवच्छेदकत्वादिति भावः। इदमापाततः यत्र यत्र धूमस्तत्र वह्निरित्यस्य धूमत्वावच्छिन्नव्याप्तिविषयकत्ववत् यत्र यत्र वह्निव्याप्यस्तत्र वह्निरित्यस्यापि व्याप्यत्वावच्छिन्नव्याप्तिविषयताकत्वस्य सर्व्वानुभवसिद्धत्वात्, न ह्येतस्य धूमादिसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगित्वादिरूपव्याप्यत्वं विषय इति कश्चित् प्रत्येति। वस्तु-

प्रत्यक्षेण युगपत्पक्षधर्म्मे भासते तत्र लाघवात् व्याप्यत्व-ज्ञानत्वमेव कारणतावच्छेदकं। न चैवमतिरिक्तविशिष्टज्ञानकारणत्वे गौरवं दोषाय, सप्रमाणकत्वात् कारणताग्रहदशायां फलमुखगौरवस्य सिद्ध्यसिद्धिभ्याम-

---

तो विशेषव्याप्त्यवच्छिन्ना महाव्याप्तिरतिरिच्यतां तथापि प्रकृते व्याप्तेर्व्याप्त्यवच्छेदकत्वेन व्याप्यतावच्छेदकप्रकारक-पक्षधर्मताज्ञानसत्त्वेऽपि वह्निव्याप्यो वह्निव्याप्य इति तत्प्रकारकव्याप्तिज्ञानाभावात् कथमनुमितिः स्यात्। न च तदनन्तरं यो यो वह्निव्याप्यवान् सोऽग्निमान् इति व्याप्तिज्ञानं कल्प्यते ततोऽनुमितिरिति वाच्यं। तथा सति कल्प्यत्वाविशेषेण लघुरूपावच्छिन्नस्यैव नियतपूर्ववर्त्तितायाः कल्पयितुं युक्तत्वादित्येव तत्त्वं। ननु शाब्दपरामर्शमात्रादनुमितिरसिद्धैव इत्यतआह, 'अपि चेति, 'विशिष्टमिति पाठः, 'यच्च प्रथमं' यदनुमितेरव्यवहितपूर्वं, वह्निव्याप्यत्व-धूमत्वविशिष्टमेव 'प्रत्यक्षेण', 'युगपत्' विशिष्टस्य वैशिष्ट्यमिति रीत्या, 'पक्षधर्मे' पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने, 'भासते' ज्ञायते, 'तत्र', इति योजना, क्वचित् 'वैशिष्ट्यमिति पाठः, तत्रावच्छिन्नस्येत्यादिः, तथाच वह्निव्याप्यत्व-धूमत्वावच्छिन्नस्य वैशिष्ट्यमेवेत्यर्थः, शेषं पूर्ववत्। 'व्याप्यत्वज्ञानत्व-मेवेति पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविषयतानिरूपितसाध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वमेवेत्यर्थः। 'न चैवमिति, यत्र वह्निव्याप्यो धूमः धूमवान् पर्वत इति ज्ञानानन्तरमनुमितिस्तत्रेति

दोषत्वात्। न चासन्निकृष्टे धूमे तदभावः, भवन्मतानुमितिहेतुव्याप्तिस्मरण-धूमत्वज्ञानसहितेन मनसा तदुत्पादात् यथा परमाणुर्निरवयवद्रव्यं नित्यपरिमाणवत्त्वात् आकाशवदित्यादौ प्रत्येकानुमानोपनीतानो-

---

शेषः, 'कारणत्वे' पूर्ववर्त्तित्वकल्पने, 'मप्रमाणकत्वादिति कार्य्य-कारणभावग्रहाधीनप्रमाणगम्यत्वादित्यर्थः[१] अयं क्षणः विशिष्टपरामर्शवान् अव्यवहितपूर्व्ववर्त्तितासम्बन्धेनानुमितिमत्त्वात् इत्यनुमानेन विशिष्टपरामर्शसिद्धावनुकूलतर्कविधया कारणताग्रहस्य वीजत्वादिति भावः[२]। तावतैव कथं न तस्य दोषत्वं तदाह, 'कारणताग्रहदशायामिति तत्प्रागदशायामित्यर्थः[३], 'फलेति, 'फलं' विशिष्टपरामर्शानुमित्योः कार्य्य-कारणभावग्रहः,[४] स एव 'मुखं' निश्चयवीजं, यस्य एतादृशं गौरवमतिरिक्तविशिष्टपरामर्शरूपं तस्येत्यर्थः, 'सिद्ध्यसिद्धिभ्यामिति ज्ञानाज्ञानाभ्यामित्यर्थः, तदानीं[५] तस्य[६]

---

(१) तादृशविशिष्टपरामर्शत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्य्यताप्रकारकानुमितिविशेष्यकनिश्चयप्रयोज्यानुमानजन्यज्ञानविषयत्वादित्यर्थः।

(२) एतादृशपरामर्शविषयकानुमितिनिरूपितानुकूलतर्कप्रयोज्यकारणताग्रहनिष्ठप्रयोजकत्वादित्यर्थः।

(३) कारणताग्रहपूर्व्वदशायामित्यर्थः।

(४) अनुमितिमत्त्वं विशिष्टपरामर्शकार्य्यं इत्याकारग्रहः।

(५) पूर्व्वदशायामित्यर्थः।

(६) गौरवस्येत्यर्थः।

न्द्रियसाध्य-साधनयोराकाशवृत्तितया स्मरणे व्यभि-
चाराज्ञाने मनसा व्याप्त्यनुभवः अनुमानयोः प्रत्येक-
तदुभयसहचाराविषयत्वेन व्याप्तिग्राहकत्वात्। न चा-
तीन्द्रियव्याप्यत्वमतीन्द्रियेऽनुमेयं, तत्रापि व्याप्तिग्राह-
काभावात्। न च तदुपनयसहितस्य मनसो वहिरर्थ-

---

ज्ञानसत्त्वे कार्य्य-कारणभावग्रहस्य तन्निश्चयप्रयोजकतया संशयरूपमेव तज्ज्ञानं भविष्यतीति तच्च न दोषताप्रयोजकं निश्चितगौरवस्यैव दोषत्वात्,[1] एतदज्ञानश्चेत् तथापि न दोषाय स्वरूपसद्गौरव-स्यादोषत्वादिति भावः।

केचित्तु 'सप्रमाणकत्वादिति अनुमित्यात्मककार्य्यरूपप्रमाणगम्य-त्वादित्यर्थः,[2] उक्तानुमानेनैव तत्सिद्धेरिति भावः। ननु कार्य्यस्य सप्रमाणत्वं कार्य्य-कारणभावग्रहे सति स्यादनुकूलतर्कविधया तस्य तत्रोपयोगात् स एव न सम्भवति गौरवेण प्रतिबन्धादित्यत आह, 'कारणतेति, अर्थस्तु पूर्ववदित्याहुः।

'सप्रमाणकत्वादिति यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते सप्रमाणकत्वस्या-दोषत्वप्रयोजकत्वे गौरवमात्रस्यैवादोषतापत्तेः, न ह्यप्रामाणिकं गौरवमस्तीति ध्येयं। इन्द्रियासन्निकृष्टस्थले प्रागुक्तव्यभिचारमुद्धरति,

---

(१) दोषताप्रयोजकत्वादिति घ०।

(२) अनुमित्यात्मकपरामर्शकार्य्यरूपप्रमाणगम्यत्वादित्यर्थ इति घ०।

प्रमाहेतुत्वे उपनयस्य प्रमाणान्तरत्वम्, इन्द्रियादेः सन्निकर्षवदुपनयस्य नियतव्यापाराभावेन प्रमायामकरणत्वात्, सहकारिता च तदभावेऽपि भवति बहिरिन्द्रियलिङ्गसादृश्यादिव्यापारं विनापि चिन्तोपनी-

---

'न चेति, 'धूमत्वज्ञानेति धूमत्वप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानेत्यर्थः। ननु गुरूणां उपनीतभानानङ्गीकर्तॄणां कथं मानसबोध इत्यत आह, 'यथेति, 'प्रत्येकानुमानेति आकाशं निरवयवद्रव्यं परममहत्त्वात् आकाशं नित्यपरिमाणवत् अमूर्त्तद्रव्यत्वादित्यनुमानाभ्यां आकाशवृत्तितयोपनीतेत्यर्थः, 'आकाशवृत्तितया स्मरण इति, एतेन सहचारज्ञानं सम्पादितं, 'मनसा व्याप्त्यनुभव इति,(१) न च तत्र स्मरणरूपमेव व्याप्तिज्ञानं स्यादिति वाच्यं। व्याप्तिस्मरणेऽप्यनुमित्युत्पत्तेरिति भावः। ननु तत्र साध्य-साधनग्राहकप्रत्येकानुमानाभ्यामेव व्याप्तिज्ञानं स्यात् किं मानसेन इत्यत आह, 'अनुमानयोरिति, 'व्याप्तिग्राहकत्वादिति व्याप्तिविषयकत्वादित्यर्थः, न हि सहचारविषयकं ज्ञानं नियतसहचारात्मकव्याप्तिविषयकं सम्भवतीति ध्येयं। 'तत्रापीति, न च तत्राप्यनुमानान्तराद्व्याप्तिग्रह इति वाच्यं। तादृशाविरलतरव्याप्त्यनुमितिधाराविरहेऽप्यनुमितेरानुभविकत्वादिति भावः। 'तदुपनयसहितस्य' तत्तदुपनयरूपासाधारणकारणसहितस्य, 'वह्निरर्थप्रमाजनकत्वे' पर्वतादिवह्निविशेष्यक-लिङ्ग-

---

(१) व्यापकत्वघटकयत्पदार्थोपस्थितिदशायामित्यादि, 'अन्यथा व्यापकत्वस्योपनायकाभावात् व्याप्त्यनुभवो न सम्भवतीति भावः।

तपदार्थानां बाधकानवतारे मनसा संसर्गानुभवस्य सकलजनसिद्धत्वात् कथमन्यथा कविकाव्यादिकमिति।

स्यादेतत् पक्षधर्मस्य व्याप्यताज्ञानं नेन्द्रियेण वह्नेरसन्निकर्षे तन्नियतसामानाधिकरण्यस्य व्याप्यत्वस्या-

---

प्रत्यक्षजनकत्वे, 'उपनयस्य' तत्तदुपनयस्य, 'प्रमाणान्तरत्वं' प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्गः पर्वतादिविशेष्यक-लिङ्गविषयकप्रमाकरणत्वप्रसङ्ग इति यावत्, यदसाधारणमित्याद्युक्तव्याप्तेरिति भावः। 'नियतव्यापाराभावेन' करणत्वव्यापकस्य तज्जनकव्यापारवत्त्वस्याभावेन, 'प्रमायामकरणत्वात्' पर्वतादिविशेष्यकवह्निव्याप्यादिप्रकारकप्रमायाः करणत्वापादनासम्भवात्, यस्य तु व्यापारसम्भवस्तस्य करणत्वमिष्टमेव। यद्यप्यापत्तौ बाधोऽनुगुण एव, तथापि तदर्थविषयकज्ञानहेतुव्यापारवत्त्वे सति तदर्थविषयकज्ञानासाधारणकारणत्वमेव तदर्थविषयकप्रमाकरणत्वयोग्यं(१) न तु यदसाधारणमित्याद्युक्तो हेतुर्मानाभावात् इति भावः। ननु व्यापाराभावे सहकारितैव कुत इत्यत आह, 'सहकारिता चेति, यदसाधारणेत्यादिव्याप्तौ व्यभिचारभयादाह, 'वह्निरिन्द्रियेति, 'बाधकानवतारे' असत्यां बाधादिबुद्धौ, 'सकलजनसिद्धत्वाच्चेति पाठः, चकारशून्यपाठे चकारः पूरणीयः, 'कथमन्यथेति, वाक्यार्थज्ञानं विना वाक्यप्रयोगासम्भवादिति भावः।

---

(१) तदर्थविषयकप्रमाकरणत्वव्याप्यमित्यर्थः, क्वचित्तथैव पाठः।

योग्यत्वात्। न च धूमत्वेन सकलधूमव्याप्यतावगमात् धूमविशेषे संस्कारात् स्मरणाद्दोपनीतव्याप्याभेदग्रहः प्रत्यभिज्ञाने तत्ताविशिष्टस्येवेति वाच्यम्। एवं हि धूमवत्त्वेन वह्निमत्त्वज्ञानात् धूमवद्विशेषे पर्व्वते

---

नव्यास्तु 'प्रमायामकरणत्वादिति, तथाचोक्तव्याप्तौ तज्जनक-व्यापारवत्त्वमुपाधिरिति भावः(१)। ननु पक्षे साधनस्य विवादग्रस्ततया साधनाव्यापकत्वनिश्चयस्थलमेवास्य दुर्लभमित्यत आह, 'वहिरिन्द्रि-येति, तथाचात्रैव साधनाव्यापकत्वनिश्चय इति भाव इति व्याचक्रुः।

प्रात्यक्षिकपरामर्शप्रतिबन्धिमुखेन अनुमितित्वजातिं खण्डयति, 'स्यादेतदिति, 'पक्षधर्मस्य' पक्षसम्बद्धस्य, 'व्याप्यताज्ञानं' वह्निव्याप्य-त्वप्रकारेण पक्षीयधूमे ज्ञानं वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वते इति ज्ञानमिति यावत्, 'नेन्द्रियेण' वह्नौ लौकिकसन्निकर्षविरहदशायां कदाचिदपि नेन्द्रियेण, 'तन्नियतसामानाधिकरण्यस्येति नियततत्सामानाधिकर-ण्यस्येत्यर्थः, 'अयोग्यत्वादिति इन्द्रियेण ग्रहीतुमशक्यत्वादित्यर्थः, याव-द्विषयसन्निकर्षस्य प्रत्यक्षहेतुत्वादिति गूढाभिसन्धिः। 'धूमत्वेनेति महानसीयधूमे वह्निव्याप्तिप्रत्यक्षदशायां धूमत्वसामान्यलक्षणप्रत्या-सत्त्या धूमत्वरूपेण सर्व्वस्यैव धूमस्य व्याप्तित्वसामान्यलक्षणाधीन-वह्नि-व्याप्यत्वप्रकारकानुभवादित्यर्थः, 'धूमविशेष इति, 'संस्कारात् स्मर-

---

(१) नियतव्यापाराभावेनेत्यादिग्रन्थ उपाध्यभावेन हेतुना साध्याभाव-साधनाभिप्रायक इति तात्पर्य्यं।

संस्कारवशात् प्रत्यक्षेण व्याप्तिज्ञानापेक्षेण वह्निमदभेद-ग्रहो वह्निमत्त्वग्रहो वास्तु(१) किमनुमानेन, पृथक् वह्निमत्त्वस्मरणं तत्र नास्ति। किन्तु व्याप्यवच्छेदक-तयेति चेत्। न। वह्निमान्न वेति संशयानुरोधेन

---

णाद्वा धूमविशेषे उपनीतव्याप्याभेदग्रहः' इति योजना, 'संस्कारात्' धूमत्वावच्छिन्नसकलधूमविशेष्यक-निखिलवह्निव्याप्तिप्रकारक-संस्कारात्, एतच्च "सविषयकमात्रं प्रत्यासत्तिः विशिष्टाधिकरणकवैशिष्ट्य-बुद्धावपि(२) स्वविशेष्यतावच्छेदकधर्मप्रकारकसविषयकमात्रं कारणं" इति प्राचीनमते, 'स्मरणाद्वा' धूमत्वावच्छिन्नसकलधूमविशेष्यक-निखिलवह्निव्याप्तिप्रकारकस्मरणाद्वा, एतच्च "ज्ञानमेव प्रत्यासत्तिः विशिष्टाधिकरणकवैशिष्ट्यबुद्धावपि स्वविशेष्यतावच्छेदकप्रकारक-विशेष्यविषयकज्ञानमेव हेतुः" इति नव्यनये, 'धूमविशेषे' पर्वतीयधूमे, 'उपनीतव्याप्याभेदग्रहः' स्वविषयीभूतवह्निव्याप्याभेदप्रकारेणालौ-किकसन्निकर्षसाक्षात्कारः, 'स्वं' संस्कारादिः, 'वह्निव्याप्याभेदः' वह्नि-व्याप्यत्वं, 'प्रत्यभिज्ञाने' प्रत्यभिज्ञाविशेष्यीभूते इदमंशे, प्रत्यभिज्ञाय-तेऽस्मिन्निति व्युत्पत्तेः, 'तत्ताविशिष्टस्येव', संस्कारात् स्मरणाद्वा तत्ताविशिष्टस्य सन्निकर्षसाक्षात्कार इति भावः। 'धूमवत्त्वेनेति वह्नि-व्याप्यधूमवत्त्वप्रकारेणेत्यर्थः, 'वह्निमत्त्वज्ञानात्' व्याप्तिघटकतया

---

(१) वह्निमत्त्वसंसर्गग्रहो वास्त्विति क० ।

(२) वह्निव्याप्यधूमः पर्व्वते इति ज्ञानेऽपीत्यर्थः ।

स्वतन्त्रवह्निमत्त्वस्मरणात्। न च विशिष्टज्ञाने स्वतन्त्रविशेषणज्ञानत्वेन हेतुत्वं, गौरवात्। अथ यो यत्र विशिष्य पूर्व्वमवगतः स तत्र संस्कारवशाद्यथार्थप्रत्यक्षे भासते यथा तत्ताप्रत्यभिज्ञाने, न च पर्व्वते विशिष्य

---

वह्निमत्त्वलरूपेण निखिलवह्निमत्त्वविषयकज्ञानात्[१] परामर्शरूपात्, संशयोत्तरप्रत्यक्षं प्रति विशेषदर्शनस्य हेतुतया अनुमितिस्थले च संशयस्यावश्यकत्वात् तत्सम्पादनाय प्रकारकान्तं ज्ञानविशेषणं, 'धूमवद्विशेष इति वह्निव्याप्यधूमवत्त्वांशे विशेष्यीभूत इत्यर्थः, समानधर्म्मिकविशेषदर्शनस्यैव संशयोत्तरप्रत्यक्षं प्रति हेतुत्वमते तत्सम्पत्त्यर्थमिदमभिहितं, 'संस्कारवशात्' लौकिकसन्निकर्षवशात्, वहिरिन्द्रियजप्रत्यक्षे मुख्यविशेष्येण समं लौकिकसन्निकर्षस्यापेक्षिततया तत्सम्पत्त्यर्थमिदमभिहितं, 'प्रत्यक्षेण' इन्द्रियेण, 'व्याप्तिज्ञानापेक्षेण' 'व्याप्तिज्ञानजनकेनेत्यर्थः, एतच्च पर्व्वतेन समं परामर्शजनकेन्द्रियसन्निकर्षविरहस्थलाभिप्रायेण, तेन क्वचिदिन्द्रियान्तरात् प्रत्यक्षसम्भवेऽपि न क्षतिः, 'वह्निमदभेदग्रह इति अभेदसम्बन्धेन वह्निमत्प्रकारकग्रह इत्यर्थः, संयोगादिसम्बन्धेन वह्निप्रकारकग्रहस्यानुभवसिद्धत्वादाह, 'वह्निमत्त्वग्रहो वेति संयोगादिसम्बन्धेन वह्निप्रकारकग्रहो वेत्यर्थः, 'किमनुमानेनेति किं वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वतइति परामर्शानन्तरं प्रत्यक्षविजातीयज्ञानकल्पनेनेत्यर्थः, 'पृथग्वह्निमत्त्वस्मरणमिति स्वत-

---

(१) निखिलवह्निमत्त्वप्रकारकज्ञानादिति पा०।

पुरा वह्निरवगतः, यच चन्दने सौरभमुपलब्धं तच संस्कारवशाच्चक्षुषा सुरभि चन्दनमिति ज्ञानमव्यथानुमितिरिति चेत्, तर्हि पक्षधर्म्मधूमेऽपि न पुरा विशिष्य व्याप्तिरवगतेति कथं संस्कारवशात्तत्रतव्या-

---

प्ततया वह्निमत्त्वज्ञानमित्यर्थः, 'तच नास्तीति अनुमितिपूर्व्वसमये सर्व्वच नास्तीत्यर्थः, यत्रोद्बोधकादिवशात् दृष्टान्तरूपसाध्याधिकरणमेव सामानाधिकरण्यघटकतया परामर्शे भातं यच वा वह्न्यभाववद्वृत्तित्वरूपव्याप्त्यवगाहिपरामर्शस्तच तदभावादिति भावः। 'व्याप्त्यवच्छेदकतयेति व्याप्तिघटकतयेत्यर्थः, तथाच स्वातन्त्र्येण विशेषणज्ञानस्य विशिष्टप्रत्यक्षहेतुत्वेन तदभावात् कथं पक्षे साध्यविशिष्टबुद्धिः प्रत्यक्षेणेति भावः। स्वातन्त्र्यञ्च यद्यपि नाविशेषणत्वं धारावाहिकप्रत्यक्षोच्छेदापत्तेः, नापि विशेषणाविशेषणत्वं घटवद्भूतलमिति ज्ञानोत्तरं धारावाहिक-घटवद्भूतलमिति घटत्वविशिष्टवैशिष्ट्यप्रत्यक्षानापत्तेः घटत्वस्य पूर्व्वं विशेषणविशेषणतयैव ज्ञानात्तथापि फलीभूतविशिष्टप्रत्यक्षविशेष्येतरमात्राविशेषणत्वं स्वातन्त्र्यपदार्थः, चैच-मैत्रोभयविशेष्यकदण्डादिप्रकारकज्ञानानन्तरं दोषवशाज्जायमाने केवलचैत्रविशेष्यकदण्डादिप्रकारकप्रत्यक्षे व्यभिचारवारणाय माचपदं, तथाच फलीभूतप्रत्यक्षविशेष्यत्वानिरूपित-विशेषणतातिरिक्तविशेषणविषयताशालि ज्ञानं(१) हेतुरिति फलितं। ननु

---

(१) फलीभूतप्रत्यक्षविशेष्यनिष्ठविशेष्यत्वानिरूपितेत्यर्थः तेन चैचत्वावच्छिन्नविशेष्यतायाः उभयत्वावच्छिन्नविशेष्यतातोभेदेऽपि न क्षतिः।

त्तिबोधः प्रत्यक्षेण। न च सहचारदर्शनजन्यसंस्कार-सहितेनेन्द्रियेण व्यभिचारज्ञानाभावे सति महान-सीयधूमवत् पर्व्वतीयधूमे व्याप्त्यवगमो वह्नेस्तु न प्रत्य-क्षसामग्री सन्निकर्षाभावादिति वाच्यं। हेतु-साध्य-

---

तत्स्मरणस्य संशयेन विनाशात् न तावत्कालमवस्थानं। न च कोटिस्मरणस्य नाशेऽपि संशय एव स्वतन्त्रविशेषणोपस्थितिरूपो वर्त्तत इति वाच्यं। यत्रादौ संशयस्ततो व्याप्तिस्मरणं ततः परा-मर्शस्तत्र संशयस्यापि नाशादित्यस्वरसादाह, 'न चेति न वेत्यर्थः, 'विशिष्टज्ञाने' विशिष्टप्रत्यक्षे, अन्यथा स्वतन्त्रविशेषणज्ञानस्य विशिष्ट-ज्ञानसामान्यहेतुत्वाभ्युपगमेऽनुमितेरप्यसम्भवात् अनुमितेरपि विशि-ष्टज्ञानत्वादिति ध्येयं। 'यो यत्रेति, परामर्शेऽपि वह्निमत्त्वसामान्य-लक्षणया पर्व्वते वह्निज्ञानादुक्तं 'विशिष्येति तद्व्यक्तित्वरूपेणेत्यर्थः(१), क्वचित्तु 'विशिष्येति न पाठः तत्रापि 'यो यत्रेत्यनन्तरं तत्पूर-णीयं, 'संस्कारवशात्' संस्काराद्युपनयवशात्, 'न च पर्व्वत इति, सर्व्वत्रेति शेषः, 'विशिष्य' तद्व्यक्तित्वरूपेण, एवमग्रेऽपि। नन्वेवं एकस्मिन् चन्दने सौरभज्ञाने चन्दनान्तरे चक्षुषा सौरभज्ञानं न स्यात्

---

(१) पर्व्वतीयवह्निप्रकारकप्रत्यक्षे पर्व्वतीयवह्नित्वावच्छिन्नप्रकारकज्ञानत्वे-नैव हेतुत्वं मन्तव्यं तथाच प्रकृते पर्व्वते वह्निज्ञानसत्त्वेऽपि पर्व्वतीय-वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारकज्ञानविरहात् न पर्व्वते वह्निप्रकारकालौकि-कप्रत्यक्षमिति भावः।

साक्षात्कारं विना प्रत्यक्षेण व्याप्तग्रहात्। न च पर्व्वते वह्निसाक्षात्कारः, न च पक्षधर्म्मस्य साध्यसामानाधि-

---

इत्यत्रेष्टापत्तिमाह, 'यत्रेति,[१] 'पक्षधर्मधूमेऽपीति, तथाच तत्रैवोक्त-नियमस्य व्यभिचार इति भावः। ननु संस्काराद्युपनयवशात् न व्याप्तिबोधः किन्तु पर्व्वतीयधूमे व्याप्तेर्लौकिकसाक्षात्कारएव व्याप्तेः[२] सामानाधिकरण्यात्मकत्वेन संयोगादिरूपत्वादित्यभिमानेन[३] व्यभिचारमुद्धरति, 'न चेति, 'महानसीयधूमवदिति, सप्तम्यन्तात् वतिः, 'पर्व्वतीयधूमे व्याप्त्यवगमः' पर्व्वतीयधूमे व्याप्तेर्लौकिकसाक्षात्कारएव[४], सन्निकर्षाभावादिति लौकिकसन्निकर्षविरहादित्यर्थः। न चोपनयएव सन्निकर्षोऽस्तीति वाच्यं। 'यो यत्रेत्यादिनियमात् उपनय-

---

(१) यत्रेतीत्यनन्तरं "नन्वत्रापि सौरभज्ञानस्यानुभविकत्वं तत् कथमुपपद्यतामत आह, 'अन्यत्रेति तच्चन्दनं सुरभि चन्दनत्वात् एतच्चन्दनवदित्यनुमित्यात्मकमित्यर्थः" इत्यधिकः पाठः गचिह्नितपुस्तके वर्त्तते, परन्त्वेतत्पाठस्वरसेन मूले 'अन्यथेत्यत्र 'अन्यत्रेति पाठः समीचीनत्वेन प्रतिभाति।

(२) ननु व्याप्तेर्लौकिकसन्निकर्षाभावात् कथं व्याप्तेर्लौकिकसाक्षात्कार-इत्यत आह, व्याप्तेरिति।

(३) तथाच चक्षुःसंयुक्तधूमसमवायरूपसन्निकर्षस्य व्याप्तौ सत्त्वादिति भावः।

(४) तथाच यथा प्रत्यक्षेण महानसीयधूमे पुरा व्याप्तिरवगता तथा पर्व्वतीयधूमेऽपि व्याप्तेर्लौकिकसाक्षात्कार एवेति न तत्र व्यभिचार-इति भावः।

कारणविशेषो व्याप्तिः पक्षे साध्यग्रहं विना, इत्युक्तम्। उच्यते। विशेषणज्ञानं तस्य विशेष्ये सम्बन्धस्तयोरसंसर्गाग्रहो विशेषदर्शनं विशेषण-विशेष्येन्द्रियसन्निकर्षौ गौरयमित्यादियथार्थविशिष्टप्रत्यक्षकारणम्, अस्ति

---

सन्निकर्षवशेन प्रत्यक्षासम्भवादिति भावः। 'हेतु-साध्येति पक्षीय-हेतु-साध्यलौकिकसन्निकर्षजसाक्षात्कारं विनेत्यर्थः, 'व्याप्तिग्रहात्' पक्षीयहेतौ पक्षीयसाध्यस्य व्याप्तेर्लौकिकप्रत्यक्षासम्भवात्, सम्बन्धि-द्वयनिरूप्यपदार्थलौकिकप्रत्यक्षं प्रति समानेन्द्रियजन्य-सम्बन्धिद्वय-लौकिकसाक्षात्कारस्य हेतुत्वादिति भावः(१)। ननु पर्व्वतीयधूमस्य लौकिकसाक्षात्कारोऽस्त्येवेत्यत आह, 'न चेति, 'पर्वते वह्निसाक्षात्कारः' पर्व्वतीयवह्नेः लौकिकसाक्षात्कारः, तथाच पक्षीयसाध्यस्य लौकिकसाक्षात्कारो नास्तीति भावः। ननु तादृशपदार्थसामान्य-प्रत्यक्षं प्रति सम्बन्धिद्वयसाक्षात्कारस्य हेतुत्वे मानाभाव इत्यस्वरसादाह, 'न चेति न वेत्यर्थः, 'पक्षे साध्यग्रहं विना' पक्षीयसाध्यज्ञानलक्षणसन्निकर्षं विना, लौकिकप्रत्यक्षेण ग्रहीतुं शक्यत इति शेषः, पक्षीयहेतुनिष्ठव्याप्तेः पक्षीयसाध्यघटितमूर्त्तिकत्वेन तत्प्रत्यक्षस्य पक्षीयसाध्यप्रत्यक्षरूपतानियमात् पक्षीयसाध्यप्रत्यक्षसामग्रीं विना असम्भवात् लौकिकसन्निकर्षस्य च पक्षीयसाध्येन सममभावात्,

---

(१) तथाच तत्र व्याप्तिप्रत्यक्षानुरोधेन पर्व्वते वह्निप्रत्यक्षमवश्यमपेक्षणीयं तच्चोपनयजन्यमेवेति 'यो यत्रेत्यादिनियमे व्यभिचारस्तत्र पर्व्वते पुरा पर्व्वतीयवह्नेरनवगमादिति समुदिततात्पर्य्यं।

च्चापि व्याप्तिस्मरणं स्मृतव्याप्तेः पक्षवृत्तिधूमे सत्त्वम्
एकैव हि सा व्याप्तिः तयोरसंसर्गाग्रहो धूमत्वविशेष-

---

तथाच तत्रोक्तनियमस्य व्यभिचारो दुर्व्वार एवेति भावः । 'यो यत्र
विशिष्येत्याद्युक्तनियमस्य व्यभिचारं वारयितुं पक्षीयसाध्यप्रत्यक्ष-
सामग्रीं विनापि व्याप्तेर्लौकिकप्रत्यक्षमुपपादयति, 'उच्यत इति,
'तस्येति विशेषणस्य विशेष्ये सम्बन्ध इत्यर्थः, एतच्च विशेषण-विशेष्य-
सम्बन्धांशे लौकिकप्रत्यक्षाभिप्रायेण तत्र विषयविधया तस्य हेतुत्वात्,
'विशेषदर्शनमिति, इदञ्च विपरीतज्ञानोत्तरप्रत्यक्षे उपयुज्यते, 'विशे-
षणेति विशेषण-विशेष्याभ्यां इन्द्रियलौकिकसन्निकर्ष इत्यर्थः, 'विशि-
ष्टप्रत्यक्षकारणं' विशिष्टलौकिकप्रत्यक्षकारणं। ननु पर्व्वतीयधूमनिष्ठ-
व्याप्तेः पूर्वमननुभूतत्वेन महानसीयधूमव्याप्तेरेव स्मृतत्वाच्च तस्याः पर्व-
तीयधूमे सत्त्वं व्याप्तेः सामानाधिकरण्यात्मकतया प्रतिव्यक्तिभिन्नत्वा-
दित्यत आह, 'एकैव हीति, व्याप्तेर्धूमत्वादिरूपत्वादिति भावः।
यद्यपि व्याप्तेः प्रतिव्यक्तिभिन्नसाध्यसामानाधिकरण्यरूपत्वेऽपि न
क्षतिः सामान्यतो वह्नि-धूमसामानाधिकरण्यत्वेन गृहीतानां सक-
लसामानाधिकरण्यानां तथैव स्मरणसम्भवात्, तथापि व्याप्तेर्व्वह्नि-
सामानाधिकरण्यरूपत्वेन पर्व्वतीयधूमनिष्ठपर्व्वतीयवह्निसामानाधि-
करण्यस्य पर्व्वतीयवह्नि-तदधिकरणघटितया पर्वतीयवह्निप्रत्यक्ष-
सामग्रीं विना न पर्वतीयधूमे वह्निव्याप्तेर्लौकिकप्रत्यक्षसम्भवः,
वह्निसमानाधिकरणवृत्तिधूमत्वरूपत्वे तु पर्वतीयवह्निप्रत्यक्षसामग्रीं
विनापि महानसीयादियत्किञ्चिद्वह्निप्रत्यक्षसामग्रीत एव पर्व्वतीय-

दर्शने व्याप्तिविशिष्टधूमेन्द्रियसन्निकर्षस्य व्याप्तिविशिष्टज्ञानकारणं। न च वह्निविशिष्टज्ञानसामग्री, वह्नेरसन्निकर्षात्।

---

धूमे महानसीयादिवह्निसामानाधिकरण्यमत्त्वविषयक-वह्निव्याप्तिलौकिकप्रत्यक्षसम्भवः पर्वतीयधूमे महानसीयादिवह्निसामानाधिकरण्यस्य बाधितत्वेऽपि तत्समानाधिकरणवृत्तिधूमत्वस्य तत्राबाधितत्वात् इत्यभिप्रायेण 'एकैव हीत्युक्तं, 'व्याप्तिविशिष्टधूमेन्द्रियसन्निकर्षस्येति व्याप्ति-पर्व्वतीयधूमयोर्लौकिकसन्निकर्षस्येत्यर्थः, व्याप्तेर्धूमत्वादिरूपतया संयुक्तसमवायादेरेव लौकिकसन्निकर्षस्य तत्र सम्भवादिति भावः। 'व्याप्तिविशिष्टज्ञानकारणं' पर्वतीयधूमे वह्निव्याप्तिविशिष्टलौकिकप्रत्यक्षकारणं, अतः पर्वतीयवह्निप्रत्यक्षसामग्रीं विनापि पर्वतीयधूमे वह्निव्याप्तिलौकिकप्रत्यक्षसम्भव इति शेषः। न च व्याप्तेर्वह्निमत्त्वघटितमूर्त्तिकतया वह्निप्रत्यक्षसामग्रीं विना कथं तल्लौकिकप्रत्यक्षमिति वाच्यं। 'यो यत्रेत्याद्युक्तनियमात् पर्व्वतीयवह्निमत्त्वविषयकोपनीतप्रत्यक्षसामग्र्यसत्त्वेऽपि महानसीयादिवह्निमत्त्वविषयकोपनीतप्रत्यक्षसामग्रीसत्त्वात् महानसादौ विशिष्यापि पुरा वह्नेरवगमात् हेतुपरामर्शे सामानाधिकरण्यप्रतियोगितया सकलवह्निभाने मानाभावात्। न चैवमनुमितावपि कथं पर्वतीयवह्निभानं विशेषणज्ञानविरहादिति वाच्यं। स्वरूपतोविशेषणविषयकविशिष्टप्रत्यक्षं प्रति स्वरूपतो विशेषणज्ञानस्य हेतुत्वेऽपि अन्यत्र

कश्चित्तु धूमत्वे परम्परासम्बन्धेन वह्निव्याप्यत्वं पूर्व्वगृहीतं तथाच संस्कारोपनीतं वह्निव्याप्यत्वं परम्परा-

---

तद्धेतुत्वे मानाभावात् इति भावः। 'न च वह्निविशिष्टज्ञानसामग्रीति न च सर्वत्र पर्वते वह्निविशिष्टलौकिकप्रत्यक्षसामग्रीत्यर्थः, 'वह्नेरसन्निकर्षादिति सर्व्वत्र वह्निना समं लौकिकसन्निकर्षविरहादित्यर्थः। अथ लौकिकप्रत्यक्षसामग्रीविरहेऽप्युपनयसन्निकर्षादुपनीतज्ञानमेव पर्वते वह्नेर्भविष्यति यत्र च पूर्वं पर्वतीयवह्नेर्न ज्ञानं तत्रापि वह्नित्वरूपेण परामर्शविषयवह्नेर्भानसम्भवात् तावतापि पर्वतो वह्निमानिति ज्ञाननिर्वाहात्। न च परामर्शानन्तरं जायमानस्य तादृशज्ञानस्य सर्वत्र पर्वतीयवह्निव्यक्तिविषयकत्वपर्य्यन्तमनुभवसिद्धं, तथाच महानसीयवह्नेरेव पर्वते उपनीतभानमस्तु किमनुमितिस्वीकारेण। न चैवं भ्रमत्वापत्तिरिति वाच्यं। तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नाभाववति तत्तद्व्यक्तिप्रकारकत्वरूपस्य तद्व्यक्तिभ्रमत्वस्य इष्टत्वात् इति चेत्। न। यो यत्रेत्याद्युक्तनियमादुपनीतभानस्यापि सर्वत्रासम्भवादिति निगर्भः। अधिकन्त्वास्मत्कृतसिद्धान्तरहस्येऽनुसन्धेयं। धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणवृत्तिधूमत्वमेव व्याप्तिः तद्विशिष्टस्य धूमस्य पर्वते व्याप्यंशे लौकिकप्रत्यक्षात्मक एव परामर्शो वह्नौ लौकिकसन्निकर्षविरहदशायामप्यनुमितिहेतुरिति 'यो यत्रेत्याद्युक्तनियमस्य न भङ्ग इति स्वयमुक्तं।

केचित्तु धूमव्यापकवह्निसामानाधिकरण्यमेव व्याप्तिः स्वाश्रयवृत्तित्वरूपपरम्परासम्बन्धेन तद्विशिष्टस्य धूमत्वस्य स्वाश्रयसंयोगित्वरूपपरम्परासम्बन्धेन पर्वते परामर्शादेव सर्वत्रानुमितिरतो 'यो यत्रेत्या-

सम्बन्धेन पक्षवृत्तिधूमत्वे प्रत्यभिज्ञायते तद्वृत्तित्वेन पूर्व्वमनुभवात्, एवञ्च धूमत्वव्याप्यत्वपरामर्शादेवानुमितिरिति प्राह ।

---

दिनियमभङ्गं विनैव वह्नौ लौकिकसन्निकर्षविरहदशायामपि व्याप्त्यंशे उपनीतभानात्मकप्रत्यक्षरूप एव परामर्शोऽनुमितिहेतुरित्यपि वदन्ति, तन्मतमुपन्यस्यति, 'कश्चित्त्विति, 'वह्निव्याप्यत्वं' धूमव्यापकवह्निसामानाधिकरण्यरूपं वह्निव्याप्यत्वं, 'पक्षवृत्तिधूमत्व इति स्वाश्रयसंयोगित्वरूपपरम्परासम्बन्धेन पक्षांशे प्रकारीभूतधूमत्वे इत्यर्थः, 'पूर्वमनुभवादिति विशिष्य पूर्वमनुभवादित्यर्थः, अतो न 'यो यत्रे-त्यादिनियमभङ्ग इति भावः । नन्वेवमप्यनुमितिकारणपरामर्शानिर्वाह इत्यत आह, 'एवञ्चेति, 'धूमत्वव्याप्यत्वेति वह्निव्याप्यधूमत्ववान् पर्व्वत इति परामर्शादित्यर्थः ।

'लिङ्गं स्यादिति लिङ्गव्यवहारविषयः स्यादित्यर्थः, यादृशं व्याप्तिज्ञानं(१) अनुमितिहेतुः तादृशज्ञानस्यैव(२) लिङ्गव्यवहारहेतुत्वादिति भावः(३)। अत्रेष्टापत्तिमाशङ्क्याह, 'तथाचेति, 'सर्वोपसंहारेणेति

---

(१) यत्सम्बन्धेन व्याप्तिप्रकारकं ज्ञानमित्यर्थः ।

(२) तादृशसम्बन्धेन व्याप्तिप्रकारकज्ञानस्यैवेत्यर्थः ।

(३) तथाच यद्धर्मावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितयत्सम्बन्धावच्छिन्नव्याप्तिप्रकारताशालिज्ञानत्वं तद्धर्मावच्छिन्नहेतुकानुमितिजनकतावच्छेदकं तद्धर्मावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित-तत्सम्बन्धावच्छिन्नव्याप्तिप्रकारकज्ञानं तद्धर्मावच्छिन्ने लिङ्गत्वव्यवहारप्रयोजकमित्यर्थः ।

भवतु तावदेवं तथापि जातिरेव लिङ्गं स्यात् न तु व्यक्तिः, तथाच सर्व्वोपसंहारेण व्यक्तौ व्याप्ति-

सर्वां धूमव्यक्तिं विशेष्यीकृत्येत्यर्थः, 'व्यक्तौ' असन्निकृष्टधूमव्यक्तौ, तादृशव्याप्तिज्ञानस्यानुमितौ लिङ्गादिव्यवहारे च प्रयोजकत्वादिति भावः। ननु लिङ्गादिव्यवहारं प्रति साचात्सम्बन्धेन भवदुक्तव्याप्तिज्ञानमेव हेतुरनुमितौ तु लाघवात् परम्परासम्बन्धेन धूमत्वव्याप्यत्वपरामर्श एव हेतुरित्यतश्चाह, 'दृश्यते चेति, 'परम्परेति परम्परासम्बन्धेन पक्षधर्मताज्ञानं विनापि, 'जातिव्याप्तिमविदुषोऽपीत्यन्वयः, अपेरुभयत्रान्वयः, अन्यथा सम्बन्धज्ञानस्यानुपयोगित्वात्[१] यथाश्रुताऽसङ्गतेः, 'व्याप्यताग्रहः' परम्परासम्बन्धेन व्याप्यताग्रहः, 'मानाभावादिति, तन्निष्ठावच्छेदकान्तरग्रहमन्तरेणासम्भवाच्चेत्यपि[२] द्रष्टव्यं। स्वमते तृतीयलिङ्गं परामर्शस्वरूपं निर्द्धारयति, 'तस्मादिति, 'पक्षधर्मे' पक्षधर्मस्य पक्षसम्बन्धस्येति यावत्, 'व्याप्तिविशिष्टज्ञानं' व्याप्तिविशिष्टे ज्ञानं, 'तृतीयलिङ्गपरामर्श इति सम्बध्यते, तथाच वह्निव्याप्योधूमः पर्वते इत्याकारकं व्याप्तिविशिष्टविशेष्यकं पक्षप्रकारकं ज्ञानं तृतीयलिङ्गपरामर्श इति भावः। 'तदनन्तरमिति, 'तदनन्तरं पक्षे विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानं तृतीयलिङ्गपरामर्श इति योजना, 'तदनन्तरं'

---

(१) परामर्शीयसांसर्गिकविषयतायाः प्रकारतानात्मकतया तदाश्रयप्रकारकप्रत्यक्षे तादृशसम्बन्धज्ञानस्याहेतुत्वादिति भावः।

(२) ननु धूमत्वत्वस्य धर्म्मितानवच्छेदकत्वेन स्वरूपतोधूमत्वधर्मिकस्य परम्परासम्बन्धेन वह्निव्याप्तिप्रकारकज्ञानस्यासम्भवादित्याह तन्निष्ठेति।

ग्रहार्थं सामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्युपादानमफलं स्यात्, दृश्यते च परस्परासम्बन्धज्ञानं विना जातिव्याप्तिम-

---

हेतौ व्याप्तिप्रकारकज्ञानानन्तरं, 'विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानं' व्याप्तिविशिष्टनिरूपितवैशिष्ट्यज्ञानं, तथाच वह्निव्याप्यो धूम इत्याकारकज्ञानोत्तरोत्पन्नं वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतइत्याकारकं पक्षविशेष्यक-व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानं तृतीयलिङ्गपरामर्श इति भावः। 'वाशब्दस्त्वर्थे, विनिगमनाविरहेण व्याप्यविशेष्यक-पक्षविशेष्यकयोरेव परामर्शयोरनुमितिहेतुत्वादिति सम्प्रदायविदः, तत्त्वं पुनरस्मत्कृतसिद्धान्तरहस्येऽनुसन्धेयं। न चानयोः परामर्शयोस्तृतीयत्वं कथमिति वाच्यं। आदौ वह्निव्याप्तिरिति विशेषणीभूतव्याप्तिस्मरणं ततो वह्निव्याप्यो धूम इति धूमे व्याप्तिविशिष्टज्ञानं विशेषणज्ञानस्य विशिष्टबुद्धौ हेतुत्वात् ततस्तृतीयक्षणे अनयोरुत्पत्तिः विशिष्टाधिकरणकवैशिष्ट्यबुद्धौ विशेष्यतावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य विशिष्टनिरूपितवैशिष्ट्यबुद्धौ च विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य हेतुत्वादिति रीत्या तृतीयत्वात्। एतस्य न सार्वत्रिकत्वं क्वचित् प्रथमद्वितीयक्षणयोरपि तादृशपरामर्शयोरुत्पत्तिसम्भवात्।

प्राञ्चस्तु 'पक्षधर्मे' पक्षवृत्तित्वविशिष्टे, 'व्याप्तिविशिष्टज्ञानं' व्याप्तिप्रकारकज्ञानं, तथाच पर्वतवृत्तिधूमो वह्निव्याप्य इत्याकारकं पक्षवृत्तित्वविशिष्टे व्याप्तिप्रकारकं ज्ञानं तृतीयलिङ्गपरामर्श इति भावः, शेषं पूर्ववत्। न चास्य तृतीयत्वं कुत इति वाच्यं। आदौ पर्वतवृत्तित्वप्रकारेण धूमज्ञानं ततो व्याप्तिस्मरणं ततः पर्वतवृत्तित्व-

विदुषोऽपि धूमाद्वह्न्यनुमानं, न हि व्याप्यतावच्छेदक-

विशिष्टधूमे वह्निव्याप्तिविशिष्टज्ञानमिति क्रमेण हतीयलसम्भवादित्याशः। तदसत्। वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वत इत्याकारकस्य व्याप्तिविशिष्टविशेष्यक-पक्षप्रकारकज्ञानस्यैव वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादिपक्षविशेष्यकपरामर्शेन समं विनिगमनाविरहेणानुमितिहेतुत्वाभ्युपगमात् पर्व्वतवृत्तिधूमो वह्निव्याप्य इत्यादिज्ञानस्य च यथोक्तपक्षविशेष्यक-परामर्शापेक्षया गुरुत्वात् पक्षतावच्छेदकावच्छिन्न-पक्षविषयतानिरूपित-व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयताप्रतियोगिकनिश्चयत्वेन व्याप्यविशेष्यक-पक्षविशेष्यकपरामर्शोभयसाधारणधर्मेण हेतुतामते तस्य कारणतावच्छेदकानाक्रान्तत्वादिति ध्येयं।

व्यापकतापरामर्शस्य हेतुतावादिनां मतमाह, 'अन्ये त्विति, 'अप्रतियोगित्वं' प्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकवत्त्वं, 'व्यापकताज्ञानमिति साध्यतावच्छेदकविशेष्यक-हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वज्ञानमित्यर्थः, 'अनुमितिहेतुः' अनुमितिकारणं, 'साध्यस्येति साध्यविशेष्यकं हेतुतावच्छेदकविशिष्टे उपलक्षणविधया पक्षवृत्तित्वप्रकारकं उपलक्षणविधया हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतासम्बन्धेन पक्षप्रकारकं वा हेतुतावच्छेदकविशिष्टवृत्तिष्टाभावप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकवत्त्वज्ञानमित्यर्थः, 'परामर्शः' अनुमितिजनकपरामर्शः, तथाच पर्व्वतवृत्तिधूमव्यापको वह्निरित्याकारकं पर्वतवद्धूमव्यापको वह्निरित्याकारकं वा साध्यविशेष्यकज्ञानं अनुमितिजनकपरामर्श इति भावः। अत्र च पर्वतवृत्तित्वा-

तया भासमानस्यावश्यं व्याप्यताग्रहः, मानाभावात् ।

---

दिकमुपलक्षणविधया धूमादौ प्रकारः, न तु व्यापकतायां तदन्तर्भावः, तेन वह्निविशिष्ट पर्वतीयधूमव्यापकत्वस्य प्रागननुभूतत्वेऽप्यनुमितिर्नानुपपन्ना, न वा 'अतएवेत्याद्यग्रिमग्रन्थविरोध इति ध्येयं। 'साध्यव्याप्तस्येति, सप्तम्यर्थे षष्ठी, 'पक्षधर्मताज्ञानं' पक्षवैशिष्ट्यज्ञानं, तथाच वह्निव्याप्यो धूमः पर्वते इत्याकारक-व्याप्यविशेष्यक-पक्षप्रकारकज्ञानमित्यर्थः ।

प्राञ्चस्तु 'पक्षधर्मताज्ञानं' पक्षवृत्तिताज्ञानं तथाच वह्निव्याप्यो धूमः पर्वतवृत्तिरित्याकारकं ज्ञानमित्यर्थः, यद्वा 'साध्यव्याप्तस्येति 'व्याप्तपदं भावसाधनं साध्यव्याप्तेरित्यर्थः, 'पक्षधर्मताज्ञानं' पक्षवृत्तित्वप्रकारेण ज्ञानं, तथाच पर्वतवृत्तिधूमो वह्निव्याप्य इत्याकारकं ज्ञानमित्यर्थः 'तस्मादित्यादिना तादृशज्ञानस्यैव पूर्वमनुमितिजनकपरामर्शत्वाभिधानादित्याहुः ।

'साध्यव्याप्यवदिति साध्यव्याप्तिविशिष्टप्रकारकं पक्षविशेष्यकज्ञानं वेत्यर्थः, 'गौरवादिति सामानाधिकरण्यांशविषयत्वस्याधिकस्य कारणतावच्छेदककोटौ निवेशनगौरवादित्यर्थः। न चैवं हेतौ साध्यसामानाधिकरण्यस्य संशये व्यतिरेकनिश्चये वा नुमित्यापत्तिरिति वाच्यं। साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैव हेतुतावादिनामिवेष्टत्वात्। न चैवं पक्षवृत्तिधूमव्यापको वह्निरिति ज्ञानादह्न्यसमानाधिकरणधूमवान् पर्वत इति ज्ञानसत्त्वेऽप्यनुमितिः स्यादिति वाच्यं। साध्यासमानाधिकरणधर्मान्तरवत्ताग्रहस्यैव तत्राप्यनुमितिं प्रति साक्षाद्विरो-

तस्मात् पक्षधर्म्मे व्याप्तिविशिष्टज्ञानं तदनन्तरं विशिष्ट-वैशिष्ट्यज्ञानं पक्षे वा तृतीयलिङ्गपरामर्शः।

अन्ये तु स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं

---

धित्वात्। न चैवं वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति ज्ञानात् कथमनुमितिरिति वाच्यं। लाघवात्तादृशपरामर्शस्यैव हेतुत्वे सिद्धे तत्राप्यन्तरा तत्कल्पनात् पर्वतवृत्तिधूमव्यापको वह्निरिति शाब्दादिपरामर्शस्थले तथाप्यन्तरा व्याप्यत्वपरामर्शस्य कल्पनीयत्वात्। न चाप्रसिद्धसाध्यकव्यतिरेकिणि साध्यविशेष्यकानुमितिजनकपरामर्शस्यासम्भव इति वाच्यं। साध्याभावस्य भावात्मकस्य व्यापकतया हेत्वभावगाहिपरामर्शस्यैव तत्र पृथक् हेतुत्वकल्पनात्, तवापि तत्र व्याप्यत्वपरामर्शासम्भवादिति भावः। ननु व्यापकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तेर्ज्ञानं नानुमितिहेतुः किन्तु साध्यवदन्यावृत्तित्वरूपतज्ज्ञानं कारणं, तथाच तवैव गौरवं विषयाधिक्याभावेऽपि कारणतावच्छेदकघटकविषयताधिक्यात्। न चैवं केवलान्वयिन्यव्याप्तिः, तत्र व्याप्तिभ्रमादेवानुमित्युत्पत्तेरित्यत आह, 'अतएवेति यतो व्यापकताज्ञानं कारणं अतएवेत्यर्थः, 'साध्यायोगव्यवच्छेदेनेति, अभेदे तृतीया, वह्न्ययोगव्यवच्छेदरूपा वह्निनिष्ठधूमव्यापकता प्रदर्श्यते इत्यर्थः, वह्न्ययोगव्यवच्छेदश्च वह्निनिष्ठधूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितानवच्छेदकवह्नित्वायोगव्यवच्छेदः वह्निनिष्ठतादृशवह्नित्ववत्त्वमिति यावत्।

केचित्तु सहार्थे तृतीया तथाच वह्न्ययोगव्यवच्छेदेन सह वह्निनिष्ठधूमव्यापकता प्रदर्श्यत इत्यर्थः, वह्न्ययोगव्यवच्छेदश्च वह्निमदभेद इति प्राहुः।

व्यापकत्वं, तत्सामानाधिकरण्यञ्च व्याप्यत्वं, तथाच लाघवात् व्यापकताज्ञानमनुमितिहेतुः, साध्यस्य पक्ष-धर्म्मव्यापकताज्ञानञ्च परामर्शः, न तु साध्यव्याप्तस्य पक्षधर्म्मताज्ञानं साध्यव्याप्यवत्पक्षज्ञानं वा गौरवात्। अतएव योयोधूमवान् सोऽग्निमानित्युदाहरणवाक्ये

---

ननूदाहरणवाक्यात् कथं व्यापकत्वलाभः तस्यापदार्थत्वादिति चेत्, अत्र केचित्, धूमवति धूमव्यापकविशिष्टाभेदसम्बन्धेन वह्निमतोऽन्वयात् संसर्गमर्य्यादयैव वह्नौ धूमव्यापकत्वलाभः, वह्निमदभेदस्य वह्निरूपत्वात् वीप्सा च तात्पर्य्यग्राहिकेत्याहुः। तन्न(१)। संसर्गमर्य्यादया व्यापकताज्ञानस्य परामर्शानुपयोगितया तत्प्रदर्शनस्य व्यर्थत्वापत्तेः। वस्तुतस्तु वह्निवाचकपदस्य धूमव्यापकवह्नौ लक्षणया धूमवत्यभेदसम्बन्धेन धूमव्यापकवह्निमतोऽन्वयात् वह्नौ प्रकारतयैव धूमव्यापकत्वलाभात् वीप्सा च तात्पर्य्यग्राहिकेत्येव तत्त्वं। 'अन्यथेति यदि साध्यवदन्यावृत्तित्वज्ञानं कारणं तदेत्यर्थः, 'अन्ययोगेति, अन्ययोगव्यवच्छेदस्य साध्यवदन्यस्मिन् योगव्यवच्छेदः साध्यवदन्यवृत्तित्वव्यवच्छेद इति यावत्, बोधकत्वं तृतीयार्थः, तथाच साध्यवदन्यवृत्तित्वव्यवच्छेदबोधकमुदाहरणस्वरूपं स्यादित्यर्थः। ननु यदि हेतुनिष्ठव्याप्तिज्ञानं न तन्त्रं तदा तद्विघटनाय हेतुनिष्ठतया दोषोद्भावनं न स्यात् किन्तु साध्यनिष्ठतयैव तदुद्भावनं स्यादित्यत्र इष्टापत्तिमाह, 'दोषोऽपीति, 'आदिना व्याप्यत्वासिद्धिपरिग्रहः, 'न पक्षधर्मव्यापकमिति न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नव्यापकतावच्छेदकं साध्यता-

---

(१) तदसदिति ख०।

साध्यायोगव्यवच्छेदेन धूमव्यापकता वह्नेरुपदर्श्यते, अन्यथा वह्निमानेव धूमवानित्यन्ययोगव्यवच्छेदेनोदाहरणशरीरं स्यात्, दोषोऽपि व्यभिचारादिर्न पक्षधर्म्मव्यापकं साध्यमित्येवोद्भाव्यः।

---

वच्छेदकमित्यर्थः, एतच्च समानप्रकारकज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्ववादिनां नव्यानां मतमाश्रित्योक्तं, प्राचीननये हेतौ साध्याभाववद्वृत्तित्वबुद्धेरपि साध्ये हेतुव्यापकत्वधीविरोधित्वादिति[१] मन्तव्यं। 'परामर्शो यदीति, अनुमितिहेतुरिति शेषः, 'पर्व्वतीयधूमं प्रतीति वह्नौ पर्वतवृत्तित्वरूपेण धूमव्यापकताविषयकत्वस्येत्यर्थः, 'पर्वतधूमसामानाधिकरण्यनैयत्यात्' वह्नौ पर्वतीयधूमसामानाधिकरण्यविषयकत्वव्याप्यत्वात्, 'पर्वतवह्निरिति, अन्यच्च पर्वतीयधूमसामानाधिकरण्यस्य विरहादिति भावः। 'किमनुमेयमिति, सिद्धसाधनादिति भावः। 'भानं' विषयित्वं, 'साध्यसामानाधिकरण्येति पर्वतीयधूमे साध्यसामानाधिकरण्यविषयित्वनियतमित्यर्थः, 'व्याप्यत्वभानेऽपि' व्याप्यत्वपरामर्शस्यान[illegible] त्वेऽपि, 'तत्त्वं' [illegible]

अथ पर्व्वतस्थितधूमव्यापकोवह्निरितिपरामर्शो यदि तदा पर्व्वतीयधूमं प्रति व्यापकतायाः पर्व्वतधूमसामानाधिकरण्यनैयत्यात् पर्व्वतवह्निः परामर्शविषय एवेति किमनुमेयमिति चेत्, तर्हि पर्व्वतीयधूमे नियतसाध्य-

---

त्वस्य वह्नौ पर्वतधूमसामानाधिकरण्यविषयकत्वव्याप्यत्वमेवासिद्धमित्याह, 'वस्तुतस्त्विति, 'तदवच्छिन्नेति धूमवच्छिन्नेत्यर्थः, 'न तु धूमसामानाधिकरण्यं' न तु वह्निनिष्ठपर्वतीयधूमसामानाधिकरण्यघटितं, येन यथोक्तव्यापकताविषयकत्वं तद्विषयकत्वव्याप्यं स्यादिति भावः। 'सामानाधिकरण्यविशेषः' नियतसाध्यसामानाधिकरण्यं। 'मानस एवेति वहिरिन्द्रियाजन्य इत्यर्थः, 'सर्वत्र' वहिरिन्द्रियासन्निकृष्टे सर्वत्र, यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते शाब्दादिनापि क्वचित् परामर्शसम्भवात् यत्र साध्येन समं चक्षुरादिसन्निकर्षोऽस्ति तत्र चक्षुरादि- [illegible]मर्शसम्भवाच्च, 'चक्षुरन्वयेति चक्षुरसन्निकृष्टस्थलेऽपि क्वचिच्च [illegible] '[illegible]नयोपक्षीणं' उपनयेना-

सामानाधिकरण्यस्य व्याप्यत्वस्य भानं साध्यसामानाधिकरण्यभाननियतमिति व्याप्यत्वभानेऽपि तुल्यम्। यदि च स्मृता व्याप्तिर्धूमेऽवगम्यते तदा व्यापकत्वेऽपि समानं। वस्तुतस्तु व्यापकत्वं तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावा-

---

कपरामर्शस्याभावात् लिङ्गविशेष्यकपरामर्श एव हेतुर्व्वाच्यः[१] स च न सम्भवति तत्र पक्षस्योपसर्ज्जनत्वादिति भावः। ननु कारणीभूतज्ञाने यद्विशेष्यतया भासते तत् कार्य्यीभूतज्ञाने विशेष्यतातिरिक्तरूपेण न भासते इत्येव नियमः अतो न पक्षविशेषणकपरामर्शात् पक्षविशेष्यकानुमित्यनुपपत्तिरित्यत आह, 'न हीति, 'तथा' तथैव, 'तत्र चेति पुरुषस्य दण्ड इतिज्ञानजन्ये दण्डी पुरुष इतिज्ञाने चेत्यर्थः, 'पक्षवृत्तिलिङ्गपरामर्शस्येति पक्ष-साध्यव्याप्योभयवैशिष्ट्यावगाहिपरामर्शस्येत्यर्थः, 'अयं स्वभावः' अयं नियमः, 'स्वाश्रयविशेष्यिकां' पक्षविशेष्यिकां, 'नातथाभूतां' न पक्षविशेषणिकां,[२] यावद्विशेषसामग्रीविरहादिति भावः। अत्रेदमस्वरसवीजं यदि अनुभवमपलप्य लाघवात् व्यापकतापरामर्श एव हेतुरुपेयते तदास्मादप्यतिलघुतया साध्यवदन्यावृत्तित्वरूपव्याप्यत्वपरामर्श एव हेतुरुचितः केवलान्वयिनि च तद्भ्रमादेवानुमितिर्नान्यथा। न चैवं यो यो धूमवान् इत्युदाहरणानुपपत्तिरिति[३] वाच्यं। वह्निमानेव धूमवानित्यस्यैवोदा-

---

(१) लिङ्गविशेष्यकपरामर्श एव जातः तत्र स एव हेतुर्वाच्यः इति ख०।

(२) न पक्षाविशेष्यिकामिति ख०।

(३) साध्यवदन्यावृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानस्यानुमितिहेतुत्वे वीप्सार्थक-यो य- इतिपदघटितस्य यो यो धूमवान् स वह्निमान् इत्युदाहरणवाक्यस्य व्यापकताबोधकत्वेनानुमितावनुपयोगित्वमिति भावः।

प्रतियोगित्वं, न तु धूमसामानाधिकरण्यं, व्याप्यत्वन्तु सामानाधिकरण्यविशेष इति तवैवानुमितिरफला स्यात्। न चैवं परामर्शस्य चाक्षुषत्वं न स्याद्व्यापकस्य विशेष्यस्येन्द्रियासन्निकर्षादिति वाच्यम्। इष्टत्वात्,

हरणत्वात्। न चैवं कथकसम्प्रदायविरोध इति वाच्यं। युक्तेर्दार्ढ्ये सति तस्याकिञ्चित्करत्वात्[१], प्राचीनैरेतत्सूक्ष्मानालोकनेनैव तदभ्युपगमात्[२] अन्यथा तवापि वह्निव्याप्यधूमवानयमित्युपनयविरोधात् पर्व्वतवृत्तिधूमव्यापको वह्निरित्येतस्यैवोचितत्वादिति[३] दिक्।

पूर्वं 'न तु परामृश्यमाणं लिङ्गं करणमिति वक्ष्यते' इति यदुक्तं तदेव प्रसङ्गादाह, 'एवमिति यथानुमितिकारणतावच्छेदकतया मीमांसकाभिमतं व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्तिनिश्चयत्वादिकं नानुमितिकारणतावच्छेदकं अपि तु पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयतानिरूपित-व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयताप्रतियोगिकज्ञानत्वरूपं लिङ्गपरामर्शत्वं तथेत्यर्थः। 'लिङ्गपरामर्श एव' यथोक्तलिङ्गपरामर्श एव यथोक्तलिङ्गपरामर्शत्वमेवेति यावत्, 'कारणं' कारणतावच्छेदकं, एवकारव्यावृत्तमेव[४] विवृणोति, 'न त्विति, 'परामृश्यमाणं लिङ्गं' आचार्य्याभिमतं परामृश्यमाणत्वरूपं लिङ्गत्वमपि, परामृश्यमाणत्वञ्च साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतावत्त्वं, साध्यव्याप्यत्वञ्च साध्याभाववदवृत्तित्वं। वस्तुतस्तु

(१) तद्विरोधस्याकिञ्चित्करत्वादिति ङ०।
(२) तथोदाहरणाभ्युपगमादिति ङ०।
(३) इत्युपनयस्यैवोचितत्वादितीति ङ०।
(४) एवकारव्यवच्छेद्यमेवेति ख० ङ०।

**असन्निकृष्टधूमादाविव मानस एव हि सर्व्वत्र परामर्शः, चक्षुरन्वय-व्यतिरेकानुविधानञ्च पक्षवृत्तिधूमोपनयो-पक्षीणम्।**

**अथ जनकज्ञाने उपसर्ज्जनतया भातस्य पक्षस्य**

---

साध्यव्याप्यत्वं, साध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपवत्त्वं, आचार्य्यमते स्वरूप-सम्बन्धात्मकावच्छेदकताघटिततया लाघवेन तज्ज्ञानस्यैवानुमिति-हेतुत्वादिति भावः। मानाभावादिति हेतुरुक्तः। आचार्य्योक्तं प्रमा-णमाशङ्कते, 'अथेति, 'परामर्शमात्रं' ज्ञानमात्रं, 'लिङ्गपरामर्शः' यथो-क्तलिङ्गपरामर्शत्वाश्रयः, 'तथात्वेति, यथोक्तलिङ्गपरामर्शत्वस्य जनक-तावच्छेदकतयेति शेषः, 'लिङ्गमपि हेतुः' साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्न-विषयतावत्त्वरूपं लिङ्गत्वमपि हेतुतावच्छेदकं, 'विशिष्टेति यथोक्त-लिङ्गपरामर्शत्वरूपविशिष्टधर्म्मस्य कारणतावच्छेदकताग्राहकं यन्मानं तादृशधर्म्मावच्छिन्नान्वय-व्यतिरेकसहकृतं प्रत्यक्षं तेनेत्यर्थः, 'बाधकं विनेति अन्यथासिद्धि-व्यभिचारादिकं विनेत्यर्थः, 'विशेषणस्यापि हेतुत्वग्रहात्' विशेषणावच्छेदेनापि हेतुत्वग्रहात् विशेषणीभूतस्यापि यथोक्तविषयतारूपस्य लिङ्गत्वस्य स्वरूपसम्बन्धेन परामर्शकार्य्यता-वच्छेदकावच्छिन्नं प्रति कारणतावच्छेदकत्वग्रहादिति यावत्। न चैवं यथोक्तविषयताप्रतियोगिकज्ञानत्ववत् व्याप्यत्वावच्छिन्नविषय-तानिरूपित-पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताप्रतियोगिकज्ञानत्वस्यापि विनिगमनाविरहेण लिङ्गपरामर्शत्वरूपतयानुमितिकारणतावच्छे-दकत्वेन तद्विशेषणीभूतस्यापि पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताव-त्त्वरूपपक्षत्वस्यानुमितिकारणतावच्छेदकत्वापत्तिरिति वाच्यं। इष्ट-

पर्व्वतादेरनुमितौ प्राधान्येन भानं न स्यात्। न हि जनकज्ञाने उपसर्ज्जनतयावगतं जन्यज्ञाने प्राधान्येन भासते, तथादर्शनात्। न चानुमितेस्तथात्वमसिद्धं, पर्व्वतोऽयं वह्निमानित्यनुमितेर्लोकसिद्धत्वादिति चेत्। न। पुरुषस्य दण्ड इति ज्ञानानन्तरं दण्डी पुरुष इति-

---

त्वात्, लिङ्गसामान्यस्येव पक्षसामान्यस्यापि अव्यभिचारादिति भावः। अन्यथासिद्धत्वरूपबाधकमाशङ्क्य निराकरोति, 'न चेति, 'लिङ्गं' यथोक्तविषयताश्रयो धूमादिः, 'परामर्शपरिचायकत्वेनेति जनकीभूतपक्षनिश्चयस्य स्वाविषयकनिश्चयाद्विषयितया व्यावर्त्तकत्वेनेत्यर्थः, व्यावर्त्तकत्वं भेदसाधकत्वं, व्यावर्त्तकत्वं हि द्विविधं व्यावर्त्तकधर्म्मान्तरोपस्थितिद्वारा परम्परया व्यावर्त्तकत्वं, साक्षाद्व्यावर्त्तकत्वञ्च, तत्राद्यं लिङ्गे न सम्भवति, किन्तु साक्षाद्व्यावर्त्तकत्वमेव तस्य इत्याह, 'परिचेयइति व्यावर्त्तनीये पक्षनिश्चये इत्यर्थः, 'विशेषान्तराभावेनेति लिङ्गोपस्थापनीयसाक्षाद्व्यावर्त्तकधर्म्मान्तराभावेनेत्यर्थः, 'लिङ्गमेव विशेषकं' लिङ्गं विशेषकमेव, लिङ्गं विषयितासम्बन्धेन साक्षाद्व्यावर्त्तकमिति यावत्, 'तथाचेति स्वयमेव साक्षाद्व्यावर्त्तकत्वे चेत्यर्थः,(१) व्यावर्त्तकधर्म्मान्तरोपस्थितिद्वारा व्यावर्त्तकस्यैवान्यथासिद्धत्वादिति भावः। 'अन्यथेति व्यावर्त्तकतामात्रेणान्यथासिद्धत्व इत्यर्थः, 'परिचायकतया' जनकीभूतचक्षुरादिसंयोगस्याजनकसंयोगेभ्यः प्रतियोगितासम्बन्धेन व्यावर्त्तकतया, 'संयोगेनेति, अन्यथासिद्धमिन्द्रियमपि संयोगसम्बन्धेन

---

(१) स्वस्यैव साक्षाद्व्यावर्त्तकत्वे चेत्यर्थः इति क० घ०।

ज्ञानजन्यज्ञानदर्शनात्, अन्यथा तवापि कथं.पक्षविशेष्यकत्वनियमः, न हि कारणीभूतज्ञाने यद्विशेष्यतया भासते तत्कार्य्यीभूतेऽपि तथा, इह भूतले घटोनास्तीतिज्ञानजन्ये घटाभाववद्भूतलमितिज्ञाने तत्र च व्यभि-

न हेतुः स्यादिति योजना, विशिष्टाधिकरणकवैशिष्ट्यानुभवे विशेष्यतावच्छेदक-विधेययोः समानकालीनत्वमसति बाधादिप्रतिबन्धके[१] अवश्यं भासते, तद्भानञ्च न प्रकारतया, दण्डी पुरुषः कुण्डलीत्यादौ दण्डादिसमानकालीनत्वस्य प्रकारत्वाननुभवात् समानकालीनत्वस्याज्ञानदशायां तस्य प्रकारत्वासम्भवाच्च, किन्तु संसर्गतयेति सर्वजनसिद्धसिद्धान्तः, तस्य संसर्गता च विधेये विशेष्यतावच्छेदकस्य, समानकालीनतासम्बन्धेन विशेष्यतावच्छेदकस्य विधेयेऽपि प्रकारत्वात्। अतएव दण्डी पुरुषः कुण्डलीत्यादौ दण्डादिकं संयोगसम्बन्धेन पुरुष इव समानकालीनत्वसम्बन्धेन विधेये कुण्डलेऽपि प्रकार इति प्राहुः। तदसत्। दण्डी पुरुषः कुण्डलीत्यादौ दण्डादिसमानकालीनत्ववत् समानकालीनत्वसम्बन्धेन दण्डादेरपि कुण्डलादौ प्रकारत्वस्यानुभववाधितत्वात् तथा सति दण्डी पुरुषो दण्डवत्कुण्डलीति तदाकारापत्तेः।

केचित्तु उद्देश्ये विधेयस्य संसर्गस्तत्, विशेष्यतावच्छेदकसमानकालीनत्वविशिष्टविधेयतानियामकसम्बन्धेन विधेयस्य उद्देश्ये प्रकारत्वात्। अत एव दण्डी पुरुषः कुण्डलीत्यादौ दण्डादिसमानकालीनत्वविशिष्टसंयोगसम्बन्धेन पुरुषे कुण्डलादिकं प्रकार इत्याहुः।

(१) बाधक इति क०।

चारात्, तस्मात् पक्षवृत्तिलिङ्गपरामर्शस्यायं स्वभावो यत्स्वाश्रयविशेष्यिकामनुमितिं जनयति नातथाभूता-मेवं ममापि तुल्यमिति ।

एवं लिङ्गपरामर्श एव कारणं न तु परामृश्यमाणं

---

अन्ये तु विशेष्यतावच्छेदक-विशेष्ययोः संसर्गस्तत्, विधेयसमानकालीनत्वविशिष्टविशेष्यतावच्छेदकतानियामकसम्बन्धेन विशेष्यतावच्छेदकस्य विशेष्ये प्रकारत्वात्, अतएव दण्डी पुरुषः कुण्डलीत्यादौ कुण्डलादिसमानकालीनत्वविशिष्टसंयोगसम्बन्धेन दण्डादिकं पुरुषे प्रकारइत्याहुः।

तत्र मध्यममतानुसारेणानुमानात् लिङ्गस्य कारणत्वं साधयति, 'अपि चेति, 'धूमवानित्यादि अनुमित्यन्तं पक्षनिर्द्देशः, धूमवानयं वह्निमानिति या वह्नि-धूमयोः समानकालीनत्वविषयता तच्छालिनीति विषयान्तार्थः, धूमसमानकालीनत्वविषयतायाः पर्वतनिष्ठ-विशेष्यतानिरूपितत्वलाभाय इत्यन्तं विषयताविशेषणं, वह्निपदञ्च स्वरूपकथनं, तथाच पर्व्वतनिष्ठविशेष्यतानिरूपिता या धूमसमान-कालीनत्वविषयता तच्छालिनीति पर्य्यवसितार्थः, 'अधूमविशेषणिके-त्यकारप्रश्लेषः, तथाच धूमः समानकालीनत्वांशे विशेषणं यत्रेति व्युत्पत्त्या धूमविशेषणकं धूमसमानकालीनत्वज्ञानं तत् जन्यतासम्बन्धेन न विद्यते यत्रेति व्युत्पत्त्या धूमसमानकालीनत्वज्ञानाजन्येत्यर्थः, एवञ्च पर्व्वतनिष्ठविशेष्यतानिरूपितधूमसमानकालीनत्वविषयताशा-लिनी धूमसमानकालीनत्वज्ञानाजन्यानुमितिः पक्ष इति भावः । प्रत्येकदलव्यावृत्तिस्तु हेतुव्याख्यानावसरे स्फुटीभविष्यति। 'ज्ञायमा-नविशेषणेति पर्व्वतविशेष्यक-धूमप्रकारकज्ञानविशिष्टधूमजन्येत्यर्थः,

लिङ्गम्। अथ परामर्शमात्रं न हेतुरपि तु लिङ्गपरामर्शः, तथाच लिङ्गमपि हेतुः विशिष्टकारणताग्राहक-मानेन बाधकं विना विशेषणस्यापि हेतुत्वग्रहात्। न च लिङ्गं परामर्शपरिचायकत्वेनान्यथासिद्धं, परिचेये

अन्यथा पर्व्वतत्व-वह्न्यादिरूपविशेषणजन्यतयार्थान्तरापत्तेः। लिङ्गस्य कारणत्वे किं पक्षविशेष्यक-तज्ज्ञानस्य कारणत्वमेव नेत्याशङ्कामपनेतुं पर्व्वतविशेष्यक-धूमप्रकारकज्ञानस्यापि कारणतासिद्धये विशिष्टान्तं धूमविशेषणं, वैशिष्ट्यञ्च प्रकारतासम्बन्धेन। न च विशिष्टान्तोपादान-एव कथं तादृशज्ञानस्य जनकत्वसिद्धिरिति वाच्यं। आचार्य्यमते विशिष्टकारणताग्राहकप्रमाणेनासति बाधके विशेषणस्यापि कारणत्वग्रहनियमेन तत्सिद्धेः। पर्व्वतविशेष्यक-स्वजनकज्ञानप्रकारीभूतधूम-जन्यत्वेव वा साध्यं, तथाच स्फुटैव तत्सिद्धिः। न च एतावता धूमस्य जनकत्वसिद्धावपि लिङ्गत्वस्य तदवच्छेदकत्वासिद्ध्या नोद्देश्य-सिद्धिरिति वाच्यं। धूमस्य जनकत्वसिद्धौ सामान्यतोलिङ्गत्वस्यैव लाघ-वात्तदवच्छेदकत्वकल्पनादिति हृदयं। 'विशेषणसमानकालतयेति विशेषणपदं धूमपरं, विशेष्यपदं पर्व्वतपरं, विशिष्टपदञ्च विलक्षणपरं, तथाच धूमसमानकालीनतया पर्व्वते शाब्दान्यविलक्षणज्ञानत्वादि-त्यर्थः, वैलक्षण्यञ्च धूमसमानकालीनत्वज्ञानाजन्यत्वं, इत्यञ्च पर्व्वतनिष्ठ-विशेष्यतानिरूपितधूमसमानकालीनत्वविषयताशालिशाब्दान्यधूमस-मानकालीनत्वज्ञानाजन्यज्ञानत्वादिति हेतुः फलितः, धूमान्यलिङ्ग-कानुमितिषु व्यभिचारवारणाय शाब्दान्तं चरमज्ञानविशेषणं, पर्वता-न्यपक्षकधूमलिङ्गकानुमितिषु पर्वतविशेष्यकज्ञानविशिष्टधूमाजन्यतया

विशेषणान्तराभावेन लिङ्गमेव विशेषकं तथाचा-
नन्यथासिद्धत्वात् तदपि हेतुः अन्यथा परिचायकतया
संयोगेनान्यथासिद्धमिन्द्रियमपि कारणं न स्यात्।
अपि च धूमवान् वह्निमानिति धूमसमानकालवह्नि-

---

व्यभिचारवारणाय निरूपितान्तं विषयताविशेषणं, अतएव तादृ-
शानुमितिषु बाध-भागासिद्धिवारणाय पक्षेऽपि शाब्दान्तमनुमिति-
विशेषणं। न चैवं तादृशविषयताशाल्यनुमितौ लिङ्गस्य हेतुत्वसिद्धा-
वपि अनुमितिमात्रं प्रति लिङ्गस्य न हेतुत्वसिद्धिरिति वाच्यं। आचा-
र्य्यमते लिङ्गोपहितलैङ्गिकभाननियमेनानुमितिमात्रस्यैव लिङ्गविशि-
ष्टपक्षे साध्यवैशिष्ट्यविषयकतया लिङ्गसमानकालीनत्वस्य संसर्ग-
घटकतया पक्षेऽवश्यं भानात्। न च धूमविशिष्टपर्वतविशेष्यताशालि-
नीत्येवोच्यतां किं समानकालीनत्वप्रवेशेनेति वाच्यं। धूमवान् पर्वतो
वह्निमान् धूमध्वंसादित्यनुमितेर्धूमाजन्यत्वात् व्यभिचारापत्तेः।
न च समानकालीनत्वोपादानेऽपि तद्दोषतादवस्थ्यं तत्रापि धूमस्य
विशेष्यतावच्छेदकतया तत्समानकालीनत्वस्य संसर्गघटकतया भाना-
दिति वाच्यं। आचार्य्यनये शाब्दाद्यतिरिक्तज्ञाने तत्समानकालीन-
त्वस्य ज्ञानं विना तत्समानकालीनत्वभानं प्रति तज्जन्यत्वस्य नियाम-
कतया लिङ्गातिरिक्तविशेष्यतावच्छेदकसमानकालीनत्वस्याज्ञातस्य
संसर्गतयानुमितावभानात् लिङ्गातिरिक्तविशेष्यतावच्छेदकस्यानुमि-
तावहेतुत्वात् अतएव तदानीं धूमवान् पर्वतो वह्निमान्तद्धूमादित्य-
तीतादिलिङ्गकानुमितावपि न व्यभिचारः अतीतादिलिङ्गस्याजन-
कतया तत्समानकालीनत्वस्याभानात्, शाब्दबोधे विषयस्याहेतुतया

विषयाधूमविशेषणिकानुमितिः ज्ञायमानविशेषण-जन्या विशेषणसमानकालतया विशेष्यविषयेऽशाब्द-विशिष्टज्ञानत्वात् दण्डी पुरुष इति प्रत्ययवत्। अत-

---

धूमवान् पर्वतो वह्निमान् इत्यादिधूमसमानकालीनलविषयकशाब्द-बुद्धौ व्यभिचारवारणाय शाब्दान्येति, एवमुपमित्यन्यत्वं धूमाजन्य-प्रत्यक्षान्यत्वञ्च वाच्यं तेन धूमवत्पर्वतविशेष्यकोपमितौ तादृशोप-नीतभाने च न व्यभिचारः। यत्र धूमसमानकालीनलविशिष्टसंयो-गादिसम्बन्धेन पर्वते वह्न्यादिकं साध्यं धूमध्वंसादिश्च हेतुर्यत्र वा धूम-समानकालीनलविशिष्टसंयोगादिसम्बन्धेन वह्न्यादिविशिष्टः पर्वतः पक्षः धूमध्वंसादिर्हेतुः तत्र व्यभिचारवारणायाजन्यान्तं ज्ञानविशेषणं, धूमसमानकालीनलस्य पक्षतावच्छेदकघटकत्वे साध्यतावच्छेदकसम्ब-न्धघटकत्वे वा तज्ज्ञानस्यावश्यं जनकत्वात्। एवं यत्रेतरसम्बन्धेन बाधात् धूमकालीनलविशिष्टसंयोगादिसम्बन्धेनानुमितिस्तत्रापीतरत्वप्रतियो-गितया बाधज्ञानस्यैव धूमकालीनलविषयकत्वेन तज्ज्ञानजन्यत्वात् न व्यभिचार इति भावः। अतएव तादृशानुमितिषु बाध-भागासिद्धि-वारणाय पक्षेऽप्यजन्यान्तं अनुमितिविशेषणं। न चैवं यत्र धूमका-लीनत्वं प्रकारतया संसर्गतया वा साध्यतावच्छेदक-पक्षतावच्छेदक-घटकं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धघटकं वा तादृशधूमलिङ्गकानुमितीनां पक्षबहिर्भूततया न तासां धूमजन्यत्वसिद्धिरिति वाच्यं। हेत्वन्तरेण तत्रापि तत्सिद्धिसम्भवादिति भावः। या यन्निष्ठविशेष्यतानिरूपित-यद्धर्मसमानकालीनलविषयताशालितद्धर्मसमानकालीनलग्रहाजन्य-शाब्दाद्यतिरिक्तधीर्भवति सा तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकज्ञानविशिष्ट-

एव ज्ञायमानविशेषणजन्यत्वेन विशेषणकालवृत्तितया विशेष्यभाननैयत्यं यथा दण्डी पुरुष इतिप्रत्यक्षे, तेन धूमसमानकालीनवह्निसिद्धिः, अन्यथा तत्तद्धूमकाल-

तद्धर्मजन्या भवतीति सामान्यतो व्याप्त्यभिप्रायेण दृष्टान्तमाह, 'दण्डी पुरुषइतीति, तदपि पुरुषनिष्ठविशेष्यतानिरूपित-पुरुषत्वकालीनत्वविषयताशालिपुरुषत्वसमानकालीनत्वग्रहाजन्यबुद्धिर्भवति अथच पुरुषविशेष्यकज्ञानविशिष्टपुरुषत्वजन्यापि भवति, लौकिकप्रत्यक्षं प्रति विषयस्य हेतुताया विशिष्टाधिकरणकवैशिष्ट्यबुद्धिं प्रति विशेष्यतावच्छेदकप्रकारकविशेष्यज्ञानस्य हेतुतायाश्च सर्वसिद्धत्वादिति भावः। न चात्र पुरुषत्वकालीनविषयतैव नास्ति कुतोऽस्य दृष्टान्तत्वं किञ्चिद्धर्मविशिष्टे विशेषणं सत् यद्विशेष्यतावच्छेदकं तत्समानकालीनत्वस्यैव विशिष्टाधिकरणकवैशिष्ट्यानुभवे संसर्गतया भाननियमात् इति वाच्यं। तादृशनियमे मानाभावात्[१], विशेष्यतावच्छेदकमात्रस्यैवासति बाधके समानकालीनत्वस्य भानात्।

केचित्तु 'दण्डी पुरुष इति प्रत्यक्षवदित्यस्य[२] दण्डी पुरुषो गच्छतीति प्रत्यक्षवदित्यर्थः, तथाच दण्डसमानकालीनत्वभानमादायैव दृष्टान्ततेत्याहुः।

न च तथापि नीलपर्व्वतो वह्निमान् धूमात् पर्व्वतो वह्निमान्धूमादित्यादावनुमितेर्नीलपर्वतत्वादिरूपपक्षतावच्छेदकाजन्यतया तादृश-

(१) तादृशविषयविशेषे मानाभावादिति ग०, तादृशविषयस्वीकारे मानाभावादिति ङ०।

(२) अनेन 'प्रत्ययवत्' इत्यत्र 'प्रत्यक्षवत्' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठोऽनुमीयत इति।

इत्तिवत्त्वनुमानं न स्यात् समयविशेषमन्तर्भाव्य व्याप्ति-ग्रहात् । किञ्च लिङ्गकरणत्वपक्षे परामर्श एव तद्व्यापारः परामर्शस्य तु न व्यापारान्तरमस्ति चरमकारणत्वा-दिति न तत् करणम् ।

---

सामान्यव्याप्तेर्व्यभिचारः पक्षतावच्छेदकस्यापि विशेष्यतावच्छेदकत्वेन तत्समानकालीनत्वस्यापि भानादिति वाच्यं । आचार्य्यनये शाब्दाद्य-तिरिक्तज्ञाने उद्देश्य-विधेयभावमहिम्ना तत्समानकालीनत्वभानं प्रति तज्जन्यत्वस्यापि नियामकतया लिङ्गातिरिक्तविशेष्यतावच्छेदककाली-नत्वस्याज्ञातस्य संसर्गतया अनुमितावभानात् लिङ्गातिरिक्तविशेष्यता-वच्छेदकस्यानुमितावहेतुत्वादिति दिक् । नन्विदमप्रयोजकं इत्यत-आह, 'अतएवेति पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादावनुमितेर्धूमजन्य-त्वादेवेत्यर्थः, अनुमितावपीति शेषः, 'ज्ञायमानविशेषणजन्यत्वेन' विशेष्ये ज्ञायमानं सदेव यद्विशेषणं तज्जन्यत्वनियमेन, विशेष्यतावच्छे-दकजन्यत्वनियमेनेति यावत्, 'विशेषणकालवृत्तितया' विशेषणसमान-कालीनतासम्बन्धेन, 'विशेष्यभाननैयत्यं' विशेष्ये विधेयस्य भाननियम-इत्यर्थः, 'यथेति, यथा दण्डी पुरुष इति प्रत्यक्षे तथा नियम इत्यर्थः, अन्यथा शाब्दाद्यतिरिक्तज्ञाने उद्देश्य-विधेयभावमहिम्ना तत्समानका-लीनत्वभानं प्रति तज्जन्यत्वस्य नियामकतया यत्रानुमितिप्रागभावः सिद्ध्यभावो वानुमितिजनकः पक्षतावच्छेदकस्तत्रानुमितिप्रागभावादि-रूपविशेष्यतावच्छेदकसमानकालीनत्वभानसम्भवेऽपि सर्वत्र विशेष्य-तावच्छेदकसमानकालीनत्वभानासम्भवेनानुमितौ तथा भाननियमो न स्यादिति भावः । ननु मास्तु अनुमितौ तथा भाननियमः किन्तु-

अत्रोच्यते ।

अतीतानागतधूमादिज्ञानेऽप्यनुमितिदर्शनान्न लिङ्गं तद्धेतुः व्यापार-पूर्ववर्त्तितयोरभावात् । न च विद्यमानं

---

च्छिन्नमित्यत आह, 'तेनेति अनुमितावपि तथा भानस्यावश्यकत्वेनेत्यर्थः, 'धूमसमानकालीनेति पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ धूमकालीनतासम्बन्धेन वह्न्यनुमितिरित्यर्थः, 'तेनेत्यादिकमेव विवृणोति, 'अन्यथेति अनुमितौ तथा भाननियमाभाव इत्यर्थः, 'तत्तदिति वह्निमान् धूमादित्यत्र तत्तत्क्षणात्मकधूमकालवृत्तितासम्बन्धेन वह्न्यनुमितिर्न स्यादित्यर्थः, 'समयविशेषेति तत्तत्क्षणात्मकधूमकालघटितसम्बन्धेन व्याप्यग्रहादित्यर्थः। न चेष्टापत्तिः, अनुभवविरोधादिति भावः। यद्वा ननु मास्तु वह्निमान् धूमादित्यत्र धूमकालीनतासम्बन्धेनापि वह्न्यनुमितिः किन्नश्छिन्नमित्यत आह, 'अन्यथेति वह्निमान् धूमादित्यत्रानुमितेर्धूमकालीनतासम्बन्धेन वह्न्यविषयकत्वे इत्यर्थः, तत्रेति शेषः, 'तत्तदिति वह्नौ तत्तत्क्षणात्मकधूमकालवृत्तित्वविषयिण्यनुमितिर्न स्यादित्यर्थः, 'समयविशेषेति तत्तत्क्षणात्मकधूमकालवृत्तिवह्नित्वप्रकारेण व्याप्यग्रहादित्यर्थः। परामर्शस्य करणत्वं नैयायिकाभिमतमितिभ्रमेण दूषयति, 'किञ्चेति, 'परामर्श एवेति, विषयविधया तस्य लिङ्गजन्यत्वादिति भावः। 'चरमेति स्वाव्यवहितोत्तरमेवानुमितिजनकत्वादित्यर्थः, 'न तत्करणमिति, 'तत्' परामर्शः, तच्छब्दस्य सर्वनामप्रतिरूपकाव्ययतया परामर्शशब्दस्य पुंलिङ्गत्वेऽपि नपुंसकलिङ्गता, 'तत्' परामर्शात्मकं ज्ञानं, इत्यपि कश्चित् ।

लिङ्गान्तरमेव तद्धेतुः, तदा तस्यापरामर्शात् परामर्शाविषयस्य कारणताग्राहकाभावात्, भाविनि पक्षे व्यक्त्यैक्यमेव वा यत्र लिङ्गं तत्र लिङ्गान्तराभावाच्च। यदि च

---

साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नानुमातृनिष्ठनिश्चयविषयतावत्त्वं लिङ्गत्वमिति भ्रमेण दूषयति, 'अतीतानागतेति अतीतानागतधूमादीनां साध्यव्याप्यतया पक्षे ज्ञानादपीत्यर्थः, 'अनुमितिसत्त्वात्' अनुमित्युत्पादात्, 'लिङ्गं नानुमितिहेतुः' लिङ्गत्वं नानुमितिकारणतावच्छेदकं, 'व्यापारेति लिङ्गत्वावच्छिन्नस्य तदनुमितिव्याप्यव्यवहितपूर्ववर्त्तिव्यापकत्व-तत्तद्व्याप्यव्यवहितपूर्ववर्त्तित्वयोरुभयोरेवाभावादित्यर्थः, अतीतादिलिङ्गस्य परामर्शजनकतया परामर्शस्य तद्व्यापारत्वासम्भवात् तथाच व्यभिचाराच्च कारणतावच्छेदकत्वमिति भावः । 'लिङ्गान्तरमेव' साध्यव्याप्यान्तरमेव, 'तद्धेतुः' तदनुमित्यव्यवहितपूर्ववर्त्ति। ननु मास्तु तदानीं तस्य परामर्शः किन्तेनेत्यत आह, 'परामर्शाविषयस्येति, 'कारणताग्राहकेति कारणतावच्छेदकस्य लिङ्गत्वस्याभावादित्यर्थः, लिङ्गत्वं हि साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नानुमातृनिष्ठनिश्चयविषयतावत्त्वमिति भावः । ननु तदानीं तस्यापरामर्शेऽपि यदा कदाचित् परामर्शसत्त्वादेव तादृशानुमातृनिश्चयविषयतावत्त्वरूपलिङ्गत्वसम्भवः कारणतावच्छेदकविशिष्टपूर्वसत्त्वञ्च न कार्य्योत्पत्तौ तन्त्रमित्यत आह, 'भाविनीति भाविनि धूमादावेवेत्यर्थः, 'पक्षे' लिङ्गे, अनुमातृपरामर्शविषय इति यावत्, भाविधूमादिव्यक्तिरेव यत्र तादृशानुमातृनिश्चयविषयतावत्त्वरूपलिङ्गत्वाश्रय इति फलि-

वर्त्तमानमेव तत्र लिङ्गं तदा वर्त्तमानवह्न्यनुमानोपपत्तिः। अथ भावि भूतं वा धूमादि न लिङ्गं किन्तु

तार्थः, 'व्यक्त्येकमेवेति,(१) एवकारोऽन्यार्थकः, तथाच 'व्यक्त्येकमेव वा' भावि-वर्त्तमानान्यधूमादिव्यक्तिरेव वा, अतीतधूमादिव्यक्तिरेवेति यावत्, 'लिङ्गं' अनुमाहपरामर्शविषयः, 'लिङ्गान्तराभावाच्चेति विद्यमानस्य लिङ्गत्वाभावाच्चेत्यर्थः, तथाच यस्य पुरुषस्य कदाचिदपि विद्यमानधूमः(२) न वह्निव्याप्यत्वपरामर्शविषयः, किन्तु अतीतानागतधूमादिव्यक्तेर्वह्निव्याप्यत्वरूपेण परामर्शादेव वह्न्यनुमितिस्तस्य पुरुषस्य तदनुमितौ व्यभिचार इति भावः। नन्विदमयुक्तं सर्वत्रान्ततः साध्य-तत्प्रकारकप्रमाविशेष्यत्वादेर्वर्त्तमानधर्मस्यापि परामर्शादेवानुमितिर्नान्यथेत्यभ्युपगमादित्यत आह, 'यदि चेति, 'एवकारोऽप्यर्थे, 'तत्र लिङ्गं' तत्र कारणीभूतपरामर्शविषयः, 'तदेति, उद्देश्य-विधेयभावमहिम्ना तत्कालीनतया विधेयभानं प्रति तज्जन्यत्वस्य नियामकतया विशेष्यतावच्छेदकवर्त्तमानलिङ्गकालीनत्वेन वह्नेर्भानादिति भावः। ननु भावि-भूतधूमादिपरामर्शात् यस्य पुरुषस्यानुमितिस्तस्य धूमप्रागभावादिरूपविद्यमानधर्मोऽपि हेतुतानवच्छेदकविशेषणताविशेषादिसम्बन्धेन पक्षे यत्र कुत्रचित् धर्मिणि वा साध्यव्याप्यत्वविशिष्टधीविषयस्तथाच न व्यभिचारः। न चैवं वर्त्तमानसाध्यानु-

(१) 'व्यक्त्येक्यं' इत्यत्र 'व्यक्त्येकं' इति मूलपुस्तकान्तरपाठानुमापकमो-

दृश्यपाठधारयामिति।

(२) विद्यमानधर्म्म इति ग० ङ०।

तत्प्रागभावस्तद्ध्वंसश्च वर्त्तमानएव तयोरपि वह्निसमानदेशत्वनियमादिति चेत् । न । अतीतभाविदिनवृत्ति-

मानापत्तिरिति वाच्यं । तत्रानुमितौ विशेष्यतानवच्छेदकतया तत्कालीनत्वाभानात् आचार्य्यनयेऽनुमितिकारणीभूतपरामर्शविषयलिङ्गस्यैवानुमितौ विशेष्यतावच्छेदकत्वात्, अस्तु वा तदानीं साध्ये तदधिकरणकालवृत्तित्वज्ञानमथावश्यकं फलबलेन तथैव कल्पनादित्याशयेन शङ्कते, 'अथेति, 'धूमादि' धूमाद्येव, 'न लिङ्गं' न साध्यव्याप्यत्वरूपेण विशिष्टधीविषयः, 'विद्यमान एव'[१] विद्यमानोऽपि, हेतुतानवच्छेदकविशेषणताविशेषादिसम्बन्धेन पक्षे यत्र कुत्रचिद्धर्मिणि वा साध्यव्याप्यत्वविशिष्टवैशिष्ट्यधीविषय इति शेषः । ननु धूमप्रागभाव-धूमध्वंसयोस्तदानीं विशेषणताविशेषघटितसाध्यव्याप्यत्वविशिष्टवैशिष्ट्यधीविषयत्वेऽपि[२] हेतुतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धघटितसाध्यव्याप्यत्वस्य तत्र बाधितत्वेन तादृशसाध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतावत्त्वस्य तत्राभावाद्व्यभिचारो दुर्व्वार एव हेतुतावच्छेदकसम्बन्धभेदेन साध्यव्याप्यत्वस्य विभिन्नतया तद्घटितयथोक्तलिङ्गत्वस्यापि कारणतावच्छेदकस्य नानात्वादित्यत आह, 'तयोरपीति, 'वह्निसमानदेशत्वेति धूम-तद्ध्वंस-तत्प्रागभावान्यतमत्वादिरूप-

(१) ईदृशपाठधारणेन 'वर्त्तमान एव' इत्यत्र 'विद्यमान एव' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठोऽनुमीयत इति ।

(२) विशेषणताविशेषादिसंसर्गघटितसाध्यव्याप्यत्वविशिष्टवैशिष्ट्यधीविषयत्वेऽपीति ग० ।

तया निश्चितात् वर्त्तमानतया सन्दिग्धात् धूमादनुमितौ हि न प्रागभाव-ध्वंसौ लिङ्गे तयोः सन्दिग्धत्वात्। नापि

---

हेतुतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धघटितवह्निसामानाधिकरण्यावच्छेदकध-र्मवत्त्वादित्यर्थः, नियम्यतेऽवच्छिद्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या नियमपदस्या-वच्छेदकपरत्वात्, तथाच हेतुतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धघटितसाध्य-व्याप्यत्वमपि तच्च न बाधितं। न च तथापि साध्यव्याप्यत्वावच्छि-न्नहेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नविषयतावत्त्वं कारणतावच्छेदकं तच्च बाधितमेव सर्वत्र संयोगसम्बन्धेन प्रागभावादेर्भ्रमे मानाभावा-दिति वाच्यं। विशिष्टधर्मस्यावच्छेदकत्वग्राहकमानेन विशेषणी-भूतसाध्यव्याप्यत्वावच्छिन्न-हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नविषयत्वस्याव-च्छेदकत्वं गृह्यते सामान्यतः साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतात्वरूपेणैव ग्रहात् विशेषणताविशेषादिसम्बन्धावच्छिन्नविषयतायाअपि कारण-तावच्छेदकत्वादिति भावः। 'अतीतेति अतीतानागतदिनावच्छे-देन पर्वते वह्निव्याप्यधूमत्वरूपेण निश्चितादित्यर्थः, एतच्चानुमिति-कारणसम्पत्तये, दिनावच्छेदेनेति स्वरूपकथनं, 'वर्त्तमानतया सन्दि-ग्धादिति वह्निव्याप्यधूमप्रागभाववान् वा वह्निव्याप्यधूमध्वंसवान् वा इत्याकारको यः पर्वतवृत्तितया स्वप्रागभाव-स्वध्वंसयोः सन्देह-स्तद्विषयादित्यर्थः, 'धूमात्' अतीतानागतधूमात्, 'लिङ्गे' कारणे, 'सन्दिग्धत्वादिति पक्षे सन्दिग्धतया निरुक्तलिङ्गत्वरूपकारणताव-च्छेदकानाक्रान्तत्वादित्यर्थः। न च तदानीं पक्षे सन्दिग्धत्वेऽपि कालान्तरे पक्षे तदानीमेव धर्म्मान्तरे च वह्निव्याप्यत्वरूपेण

धूमः, तस्यावर्त्तमानत्वात्। किञ्च भूत-भावि-वर्त्तमानत्वाविषयात् पर्व्वते धूमइति ज्ञानाद्यत्रानुमानं तत्र

विशिष्टधीविषयतया लिङ्गत्वसम्भव इति वाच्यं। धर्मान्तरे कालान्तरेऽपि तयोस्तस्य पुरुषस्य वह्निव्याप्यत्वरूपेण विशिष्टधीविरहादिति भावः। 'नापि धूम इति कारणमिति शेषः, 'अवर्त्तमानत्वात्' अव्यवहितपूर्व्वमवर्त्तमानत्वात्। स्थलान्तरेऽपि व्यभिचारमाह, 'किञ्चेति, 'भूत-भावि-वर्त्तमानत्वाविषयादिति, 'भूतत्वं' पर्वते धूमस्य भूतत्वं, पर्वते धूमस्य ध्वंस इति यावत्, 'भावित्वं' पर्वते धूमस्य भावित्वं, पर्वते धूमस्य प्रागभाव इति यावत्, 'वर्त्तमानत्वं' पर्वते वर्त्तमानधूमस्य सम्बन्धः, तदविषयात् तद्विषयकज्ञानाकालीनादित्यर्थः, 'धूमः' वह्निव्याप्योधूमः, 'यत्रानुमानं यस्मिन् पुरुषे वह्न्यनुमितिः, तथाच,(१) तस्य पुरुषस्य धर्मान्तरे कालान्तरेऽपि च न धूमध्वंसादिरूपविद्यमानधर्मस्य वह्निव्याप्यत्वरूपेण विशिष्टधीरितिशेषः, 'तत्र का गतिरिति तत्पुरुषीय-पर्वतपक्षक-वह्न्यनुमितौ का गतिरित्यर्थः, धूमस्य यथोक्तलिङ्गत्वाश्रयत्वेऽपि नाव्यवहितपूर्व्वसत्त्वं, धूमध्वंसादेरव्यवहितपूर्व्ववर्त्तित्वेऽपि न कारणतावच्छेदकीभूत-यथोक्तलिङ्गत्वाश्रयत्वमिति व्यभिचारस्य दुर्व्वारत्वादिति भावः। पूर्व्वं धूमध्वंसप्रागभावयोः पक्षे सन्दिग्धतया न लिङ्गत्वमित्युक्तं अत्र तु तयोरज्ञानान्न लिङ्गत्वमित्यभिप्राय इति नाभेदः। 'सर्व्वत्रेति षष्ठ्यर्थे सप्तमी, भूत-भावि-वर्त्तमानधूमाज्ञानात् यस्य पुरुषस्यानुमितिस्तस्य

(१) अथ चेति ख०।

**का गतिः, सर्व्वत्र प्रागभावाद्यन्यतमत्वं धूमाद्यत्यन्ताभावाभावत्वं वा लिङ्गमिति चेत्, न, व्यर्थविशेषणत्वेन**

---

सर्वस्यैव इत्यर्थः, 'प्रागभावाद्येति धूम-तद्ध्वंस-तत्प्रागभावैतत्त्रयसाधारणं धूमप्रागभावाद्यन्यतमत्वं धूमात्यन्ताभावाभावत्वं वेत्यर्थः, प्राचां मते प्रतियोगि-तद्ध्वंस-तत्प्रागभावानां त्रयाणामेवात्यन्ताभावाभावरूपतया[१] धूमात्यन्ताभावाभावत्वमपि त्रितयसाधारणमिति भावः। 'लिङ्गं' लिङ्गतावच्छेदकं, अनुमितिजनकपरामर्शविषयतावच्छेदकमिति यावत्, तथाच भूत-भावि-धूमाज्ञानात् यस्य पुरुषस्यानुमितिस्तस्य कस्यचिदिति शिष्य धूमप्रागभावत्वादिरूपेण धूमप्रागभावादीनां परामर्शविरहेऽपि तदन्यतमत्वादित्रितयसाधारणधर्म्मेण तेषां परामर्शः सर्व्वस्यैवास्ति तथाच न व्यभिचारः प्रागभावादेरेव यथोक्तलिङ्गत्वाश्रयत्वस्य सर्वत्र पूर्वं सत्त्वादिति भावः। 'व्यर्थविशेषणत्वेनेति व्यर्थविशेषणरूपत्वेनेत्यर्थः, 'तेषामिति अन्यतमत्वघटकभेदानामत्यन्ताभावाभावत्वघटकात्यन्ताभावत्वादीनाञ्चेत्यर्थः,[२] 'अलिङ्गत्वात्' परामर्शविषयतानवच्छेदकत्वात्, किन्तु धूमत्वादिप्रत्येकधर्मं एव परामर्शविषयतावच्छेदक इति भावः। ननु व्यर्थविशेषणत्वेऽपि पक्षांशे प्रकारतावच्छेदकत्वे न किमपि बाधकमित्याशयेनाह, 'अन्यतमत्वाद्यज्ञानेऽपीति अनुमातुरन्यतमत्वादिप्रकारेण

---

(१) अत्यन्ताभावस्य प्रतियोगिनेव प्रतियोगिप्रागभावेन प्रतियोगिध्वंसेन च समं विरोधित्वं प्राचीनसम्मतमिति भावः।

(२) अन्यतमत्वघटकभेदानां अत्यन्ताभावत्वादीनाञ्चेति ग०, घ०।

तेषामलिङ्गत्वात् अन्यतमत्वाग्रज्ञानेऽपि धूमज्ञानाद-नुमितिसत्त्वाच्च। अपि च न धूमप्रागभावादि लिङ्गं,

---

कदाचिदपि परामर्शविरहेऽपीत्यर्थः, 'धूमज्ञानात्' अतीतादिधूम-ज्ञानात्, 'अनुमितिसत्त्वाच्च' अनुमितेरनुभवसिद्धत्वाच्च(१)। ननु सा-ध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नानुमाहनिश्चयविषयत्वं न लिङ्गत्वं अपि तु सा-मान्यतस्तादृग्रस्त-परसाधारणनिश्चयविषयतावत्त्वमेव लिङ्गत्वं, तथा-च धूमप्रागभावादेर्धूमप्रागभावत्वादिरूपेणानुमाहपरामर्शविषयत्वेऽपि अनन्तसंसारेऽवश्यं कस्यचित् पुरुषस्यान्ततो भगवत एव साध्यव्याप्य-त्वावच्छिन्नविशिष्टधीविषयत्वादेव यथोक्तलिङ्गत्वमक्षतमित्यत आह, 'अपि चेति, 'न लिङ्गं' न व्याप्यं, तथाच कुतो व्याप्यत्वावच्छिन्नवि-षयत्वं तचेति भावः। ननु व्याप्यत्वाभावेऽपि व्याप्यत्वावच्छिन्नभ्रमरू-पविशिष्टधीविषयत्वे न किमपि बाधकमित्यत आह, 'न वेति, 'तद्धीः' पुरुषान्तरीय-व्याप्यत्वविशिष्टवैशिष्ट्यधीः, 'अनुमितीति अतीताना-गतधूमज्ञानजन्यपुरुषान्तरीयानुमितिकारणमित्यर्थः, 'न लिङ्गमि-त्यत्र हेतुमाह, 'प्रागभावादीनामिति, लाघवात् प्रतियोगिन एव

---

(१) अनुमितिदर्शनात् अनुमितिसत्त्वाच्च अनुमितेरनुभवसिद्धत्वाच्चेति यावत् इति क०–ख०–चिह्नितपुस्तकपाठः, परन्त्वयं पाठः 'अनुमिति-सत्त्वाच्च' इत्यत्र 'अनुमितिदर्शनाच्च' इति मूलपाठेन सङ्गच्छते नान्य-थेति।

न वा तयोरनुमितिकारणं, प्रागभावादीनां व्यर्थत्वात् आवश्यकधूमज्ञानादेवानुमितिसम्भवाच्च। किञ्च लिङ्ग

व्याप्यत्वादिति भावः। एतच्चापाततः भिन्नधर्मिकत्वेन वैयर्थ्यविरहात्(१) वैयर्थ्येऽपि व्याप्तित्वे(२) बाधकाभावाच्चेति मन्तव्यं। नानुमितिकारणमित्यत्र हेतुमाह, 'आवश्यकेति, 'धूमज्ञानादेवेति अनुमातुरतीतानागतधूमपरामर्शादेवेत्यर्थः, 'अनुमितिसम्भवात्' अनुमित्युत्पादात्, 'एवकारेण पुरुषान्तरीयधूमप्रागभावादिपरामर्शव्यवच्छेदः तस्य व्यधिकरणत्वादिति भावः। ननु पुरुषान्तरीयव्याप्यत्वविशिष्टधूमप्रागभावादिवैशिष्ट्यबुद्धेः फलीभूतानुमित्यजनकत्वेऽपि तद्विषयत्वमादाय यथोक्तलिङ्गत्वमक्षतमेव, न हि फलीभूतानुमितिजनकपरामर्शस्य निरुक्तविषयतावत्त्वमेव लिङ्गत्वमित्यत आह, 'किञ्चेति, 'धूलीपटलात्' अतीतानागतधूलीपटलज्ञानात्, 'धूलीपटलपदं अतीतानागतलिङ्गमात्रोपलक्षकं, 'लिङ्गभ्रमेण' साध्यव्याप्यत्वभ्रमेण, कदाचिदपि कुत्रचिद्धर्मिणि साध्यव्याप्यत्वरूपेण विद्यमानधर्मवैशिष्ट्यमविदुषोऽपि पुरुषस्य इति शेषः, 'अनुमित्युत्पत्तेरिति संयो-

(१) तथाच भिन्नधर्म्मिकत्वेन स्वसमानाधिकरणत्वविरहात् न स्वसमानाधिकरण-व्याप्यतावच्छेदक-धर्म्मान्तरघटितत्वरूपव्यर्थविशेषणघटितत्वमिति भावः।

(२) तथाच व्याप्तिलक्षणे व्यर्थविशेषणाघटितत्वरूपविशेषणस्याप्रविष्टत्वात् व्यर्थविशेषणघटितत्वेऽपि न व्याप्तित्वे किञ्चिद्बाधकमिति भावः।

नानुमितिमात्रे हेतुः लिङ्गं विनापि धूलीपटलात् लिङ्गभ्रमेणानुमित्युत्पत्तेः। 'नापि लिङ्गं प्रमानुमितौ,

---

गादिव्यधिकरणसम्बन्धेन पराज्ञातगुणादिव्यक्तिसाध्यकानुमित्युत्पत्तेरित्यर्थः, भगवतो योगिनस्य भ्रमविरहेण तदीयविशिष्टवैशिष्ट्यधीविषयतामादायापि विद्यमानस्य तत्र लिङ्गत्वासम्भवादिति भावः। 'प्रमानुमिताविति साध्यवद्विशेष्यकानुमितावित्यर्थः, तत्रान्ततो-भगवतः साध्यव्याप्यत्वविशिष्टवैशिष्ट्यधीविषयतामादायैव विद्यमानस्य लिङ्गत्वसम्भवादिति भावः। 'तद्विशेषेति परामर्शस्य यौ विशेषौ प्रमात्वाप्रमात्वे ताभ्यामेवेत्यर्थः, 'अनुमितितथात्वादिति अनुमितेः प्रमात्वाप्रमात्वादित्यर्थः, अन्यथा विद्यमानलिङ्गकभ्रमानुमितिस्थलेऽपि प्रमानुमित्यापत्तेः लिङ्गस्याविशेषादिति भावः। नन्वेतावता प्रमापरामर्श-लिङ्गयोरुभयोरेवानुमितिप्रमात्वप्रयोजकत्वमस्तु। न च प्रमापरामर्शस्य तत्प्रयोजकत्वावश्यकत्वे लिङ्गस्यापि तत्र प्रयोजकत्वकल्पनं व्यर्थं गौरवग्रस्तञ्चेति वाच्यं। तत्कारणत्वस्यापि विशिष्टधर्मावच्छेदेन कारणताग्राहकप्रमाणमसति बाधके विशेषणावच्छेदेनापि कारणत्वं घटयतीति नियमसिद्धतया व्यर्थत्वेन गौरवेण च निराकर्त्तुमशक्यत्वादित्यतो बाधकमाह, 'यत्सामान्य इति, 'तद्विशेषस्येति तद्विशेषस्यैव, तथाच तदवच्छिन्नकार्य्यताप्रतियोगिककारणतावच्छेदक-व्याप्यधर्म एव तदवच्छिन्नकार्य्यताव्याप्य-कार्य्यताप्रतियोगिककारणतावच्छेदक इति नियमादनुमितिसामान्यजनकतावच्छेदकाव्याप्यस्य लिङ्गत्वस्य नानुमितित्वावच्छिन्नकार्य्यताव्याप्य-

यत्र विद्यमानस्य धर्मस्य स्व-परसाधारणनिश्चयघटितं लिङ्गत्वं सम्भवति तत्रैव विशिष्टकारणताग्राहकेत्याद्युत्सर्गबलात् लिङ्गं हेतुर्न तु सर्व्वत्र तथाच न व्यभिचार इति परास्तं। लिङ्गत्वस्यानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति जनकतावच्छेदकस्य व्याप्त्यादिज्ञानत्वादेर्व्याप्यतया अनुमितित्वावच्छिन्नकार्यताव्यापककार्यताप्रतियोगिककारणतावच्छेदकत्वासम्भवात् इति भावः। एतच्चोपलक्षणं परामर्शविरहदशायामपि लिङ्गमात्रादनुमित्यापत्तिवारणाय परामर्शस्यापि पृथक् कारणत्वावश्यकत्वे लिङ्गस्य पृथक् कारणत्वकल्पनं व्यर्थं गौरवग्रस्तञ्च। न च विशिष्टकारणताग्राहकेत्याद्युत्सर्गबलेन तत्कारणत्वस्य प्रमाणसिद्धतया व्यर्थत्वेन गौरवेण च प्रत्याख्यानासम्भव इति वाच्यं। विशेषणावच्छेदेनापि स्वतन्त्रान्वय-व्यतिरेकग्रहसत्त्व एव विशिष्टधर्मावच्छेदेन कारणत्वग्राहकस्यान्वय-व्यतिरेकग्रहस्य विशेषणावच्छेदेनापि कारणताग्राहकत्वात् यथेन्द्रियत्व-तत्संयोगत्वयोः, न चेह सोऽस्ति, अन्यथानुमितिं प्रति लिङ्गवद्व्याप्यत्वादिघटकपदार्थान्तरावच्छिन्नस्यापि हेतुत्वापत्तेः इच्छा-शाब्दबोधादिकं प्रत्यपि इष्ट-

नानुमितिमात्रे हेतुः लिङ्गं विनापि धूलीपटलात् लिङ्गभ्रमेणानुमित्युत्पत्तेः। 'नापि लिङ्गं प्रमानुमितौ,

---

गादिव्यधिकरणसम्बन्धेन पराज्ञातगुणादिव्यक्तिसाध्यकानुमित्युत्पत्ते-रित्यर्थः, भगवतो योगिनस्य भ्रमविरहेण तदीयविशिष्टवैशिष्ट्य-धीविषयतामादायापि विद्यमानस्य तत्र लिङ्गत्वासम्भवादिति भावः। साध्यमानमितौविति साध्यतघटितया लिङ्गमेव हेतुः, लिङ्गत्वञ्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यव्याप्यत्वं, अनुमितिसामान्यं प्रति परामर्शस्य हेतुतयैव परामर्शविरहदशायां केवललिङ्गान्न प्रमानु-मितिः। न चैवं यत्र साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन पक्षनिष्ठं सर्वमेव निरुक्तलिङ्गमतीतमनागतं वा तत्र परामर्शसत्त्वेऽपि प्रमानुमितिर्न स्यात् इति वाच्यं। तत्र परामर्शप्रमात्वस्यैवाभावात् साध्यतावच्छेद-कसम्बन्धेन विद्यमाननिरुक्तलिङ्गवति पक्षे साध्यव्याप्यतया यत्किञ्चि-द्धर्मावच्छिन्नावगाहित्वस्यैव परामर्शप्रमात्वरूपत्वात्। न च तथापि प्रमापरामर्शस्यैव प्रमानुमितिहेतुत्वं 'यत्सामान्येत्याद्युक्तव्याप्त्या लाघवे-ऽ[illegible] लिङ्गस्य हेतुत्वासम्भवादिति वाच्यं। गौरवादिरूपबाधकासत्त्व-एव(१) [illegible]ादृशव्याप्तेरभ्युपगमादित्याहुः, तन्मतमुपन्यस्यति, 'अथेति, 'विद्यमानलिङ्गविषयत्वमिति साध्यव्याप्यतावच्छेदकसम्बन्धेन विद्य-मानलिङ्गवति पक्षे साध्यव्याप्यतया यत्किञ्चिद्धर्मावगाहित्वमित्यर्थः, 'तथाचायातमिति, व्यभिचारसम्भवात् लाघवाच्चेति भावः, 'प्रमा-नुमितिहेतुत्वमिति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन पक्षनिष्ठतया प्रमानु-

---

(१) गौरवादिरूपबाधकाभावसत्त्व एवेति ख०।

न। भाविना भूतेन वा यदाकदाचिद्विद्यमानेनापि लिङ्गेन परामर्शप्रमात्वसम्भवान्नानुमितिपूर्वसमये तत्प्र-

---

मितिहेतुत्वमित्यर्थः, लिङ्गत्वमपि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यव्याप्यत्वमिति भावः। 'यदाकदाचिद्विद्यमानेनेति यदाकदाचित्साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन पक्षे वर्त्तमानेनापीत्यर्थः, 'अनुमितीति प्रमानुमितीत्यर्थः, 'तत्प्रमात्वेति परामर्शप्रमात्वेत्यर्थः, 'लिङ्गस्य सत्त्वमिति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन पक्षे लिङ्गस्य सत्त्वमित्यर्थः, 'कारणत्वं वेति 'वाशब्दोयत इत्यर्थे, यतः कारणत्वमित्यर्थः, ननु यदि लिङ्गं न कारणं तदा धूमादिलिङ्गकवह्न्याद्यनुमितौ धूमादिकालावच्छिन्नत्वसम्बन्धेन कथं वह्न्यादेर्भानं शाब्दाद्यतिरिक्तभाने उद्देश्य-विधेयभावमहिम्ना तत्कालावच्छिन्नत्वभानं प्रति तज्ज्ञानजन्यत्वमात्रस्य नियामकत्वात्। न च तस्य नियामकत्वे मानाभाव इति वाच्यं। तथापि त्वया लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानानभ्युपगमेन धूमस्य विशेष्यतानवच्छेदकतया तत्कालावच्छिन्नत्वभानासम्भवादित्यत आह, 'धूमकालीनेति धूमकालावच्छिन्नत्वसम्बन्धेन वह्न्यनुमितिस्त्वेत्यर्थः, 'यदेति यत्र धूमस्तत्र वह्निर्यदा धूमस्तदा वह्निरिति योजना, तथाच यत्र धूमस्तत्र धूमकालावच्छिन्नत्वविशिष्टसंयोगसम्बन्धेन वह्निरिति व्याप्तिज्ञानादेवेत्यर्थः। 'अथ वेति, यत्रेति शेषः, 'पक्षतावच्छेदक इति, तत्रेति शेषः, 'पक्षतावच्छेदकधर्मसमानाधिकरणस्येति पक्षतावच्छेदककालाद्यवच्छिन्नत्वविशिष्टव्यापकतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यमित्यर्थः, 'पक्षधर्मताबलात्' तेन सम्बन्धेन

मात्वानुरोधेन लिङ्गस्य सत्त्वं कारणत्वं वा, धूमकालीनवह्न्यनुमानञ्च यदा यत्र धूमस्तदा तत्र वह्निरिति व्याप्तिज्ञानादेव। अथवा धूमकालः पक्षतावच्छेदकः पक्ष-

---

बाधाद्यभावसहकारात्, 'धूमकालीनवह्निसिद्धिरिति धूमकालावच्छिन्नत्वसम्बन्धेन वह्निसिद्धिरित्यर्थः, एतच्च शाब्दाद्यतिरिक्तज्ञाने उक्तरीत्या तत्समानकालीनत्वभाने तज्जन्यत्वस्य नियामकत्वमभ्युपेत्योक्तं। वस्तुतस्तु शाब्दादिज्ञानवदनुमितावपि उक्तरीत्या तत्कालावच्छिन्नत्वभानं प्रति तज्जन्यत्वस्य नियामकत्वे मानाभावात् यत्र धूमः पक्षतावच्छेदकस्तत्रापि धूमकालावच्छिन्नत्वसम्बन्धेन वह्नेर्भानं बोध्यं। न च तज्जन्यत्वस्य नियामकत्वमते अनुमितावुद्देश्य-विधेयभावमहिम्ना विशेष्यतावच्छेदकसमानकालीनत्वभानं कुत्रेति वाच्यं। यत्र सिद्ध्यभावोऽनुमितिप्रागभावादिर्वा अनुमितिजनकरूपः पक्षतावच्छेदकस्तत्रैव तद्भानात्।

केचित्तु धूमं विहाय धूमकालस्यैव पक्षतावच्छेदकत्वस्थले धूमकालीनत्वभानाभिधानात् मणिकारमते प्रत्यक्ष एव उद्देश्य-विधेयभावमहिम्ना विशेष्यतावच्छेदकसमानकालीनत्वभानं नान्यत्रेत्याहुः। तदसत्[१]। तज्जन्यत्वस्य नियामकत्वाभ्युपगमेनापि धूमपरित्यागसम्भवात्। न च तज्जन्यत्वस्य नियामकत्वं न कारणत्वं किन्तु व्यापकत्वं तथाच तदजन्यज्ञाने बाधाभावरूपसामान्यकारणमर्या-

---

(१) तन्नेति क०।

तावच्छेदकधर्म्मसमानाधिकरणञ्च पक्षधर्म्मताबलात् साध्यं सिध्यतीति धूमकालीनवह्निसिद्धिः।

यत्तु व्यापाराभावान्न परामर्शः करणमिति, तन्न-थैव, किन्तु व्याप्तिज्ञानं करणं परामर्शोव्यापारः।

---

इया तदभावे किं बाधकमिति, न हि व्यापकत्वभङ्गभिया सामग्री कार्य्यं नार्ज्जयति, इति वाच्यं। तज्जन्यत्वस्य व्यापकत्वे यावद्विशेषसामग्रीविरहादेव तदजन्यज्ञाने तदभावादिति निगर्व्वः।

तटस्थः शङ्कते, 'न चेति, 'व्यापारः' अवश्यं व्यापारः, अन्यथा संस्कारोत्पत्तिसमय एवानुमित्यापत्तिरिति भावः। इष्टापत्त्या परिहरति, 'परामर्शस्य चेति, 'चरमकारणत्वेन' लाघवात् संस्कारानपेक्ष्यकारणत्वेन। 'नापि तर्क इति, परामर्शव्यापार इति शेषः, 'व्याप्तिग्राहकस्येति, धूमो यदि वह्निव्यभिचारी स्यादवह्निजन्यो न स्यादित्यादिसाध्यव्यभिचारित्वाद्यापादककतर्को व्याप्तिग्राहकतर्कः, पर्व्वतो यदि निर्व्वह्निः स्यात् निर्धूमः स्यादित्यादिसाध्याभावापादककतर्को विषयपरिशोधकतर्कस्य, विषयं साध्यं परिशोधयति साध्याभावग्रहप्रतिबन्धकद्वारा निश्चाययतीति व्युत्पत्तेरिति भावः। 'तदजन्यत्वादित्युपलक्षणं अनुमितिजनकत्वाच्चेत्यपि बोध्यं। न च पर्व्वतो निर्वह्निः स्यान्निर्धूमः स्यादित्यादिविषयपरिशोधकतर्कस्य कथमनुमित्यादावुपयोगित्वं साध्याभावसन्देहस्य तत्राप्रतिकूलतया तन्निवृत्तिद्वारोपयोगित्वासम्भवादिति वाच्यं। तदापादककापत्तेः

न च परामर्शस्य संस्कारो व्यापारः, परामर्शस्य च चरमकारणत्वेन संस्कारोत्पादनसमयेऽनुमित्युत्पादनात् । नापि तर्कः, व्याप्तिग्राहकस्य विषयपरिशोधकस्य वा तस्य तदजन्यत्वादिति ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे परामर्शसिद्धान्तः ।
सम्पूर्णोऽयं परामर्शः ।

---

तदिच्छिष्टबुद्धिमात्रप्रतिबन्धकतया ग्राह्याभावनिश्चयप्रतिबन्धकद्वारैव तत्रापि तस्योपयोगित्वसम्भवात्, परामर्शात् पूर्व्वं बाधनिश्चयोत्पत्तौ यत्र शाब्दाद्यात्मकः परामर्शस्तत्र परामर्शोत्तरं लौकिकबाधनिश्चयोत्पत्तौ च परामर्शस्य प्रतिबन्धकत्वासम्भवादिति समासः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये परामर्शसिद्धान्तरहस्यं, सम्पूर्णमिदं परामर्शरहस्यं ।

## अथ केवलान्वय्यनुमानं।

तच्चानुमानं त्रिविधं केवलान्वयि-केवलव्यतिरेक्य-न्वयव्यतिरेकिभेदात्। तत्रासद्विपक्षं केवलान्वयि,

---

अथ केवलान्वय्यनुमानरहस्यं ॥

सामान्यतः सपरिकरं अनुमानं लक्षयित्वा विशेषलक्षणार्थं तद्विभजते, 'तच्चेति, 'अनुमानं' अनुमितिकरणं, 'त्रिविधं' त्रैविध्यवत्[१], अनुमानविभाजकोपाधित्रयवदिति यावत्, अनुमानविभाजकोपाधित्रयमनुमानवृत्तीति समुदितार्थः, तेन विभाजकोपा-

---

(१) अत्र अनुमानं त्रिविधं इत्यत्र विधप्रत्ययस्य उद्देश्यतावच्छेदकसमनियत-वस्तुमदन्यसंख्यावाचित्वं, तथाच अनुमानस्य पक्षत्वं स्वाश्रयाश्रयत्वसम्बन्धेन केवलान्वयित्व-केवलव्यतिरेकित्वान्वयव्यतिरेकित्वगतत्रित्वसंख्यायाः साध्यत्वं केवलान्वयिभेद-केवलव्यतिरेकिभेदान्वयव्यतिरेकिभेदान्यतमभेदस्य प्रतियोगितासम्बन्धेन हेतुत्वं। विधप्रत्ययार्थान्तर्गतसमनियतत्वघटकं व्याप्यत्वं व्यापकत्वञ्च स्वाश्रयाश्रयत्वसम्बन्धेन, वस्तुमदन्यत्वघटकवस्तुमत्त्वञ्च स्ववृत्तित्व-स्वसमानाधिकरणस्वभिन्नवृत्तित्वोभयसम्बन्धेन, तादृशविशेषणदानेन केवलान्वयित्व-केवलव्यतिरेकित्वान्वयव्यतिरेकित्वानुमानत्वरूप-सामान्यधर्म्मगतचतुष्टयत्वसंख्याव्युदासः, तादृशचतुष्टयत्वसंख्यायाः उक्तोभयसम्बन्धेन केवलान्वयित्वादिरूपवस्तुविशिष्टत्वात्। उक्तचतुष्टयत्वसंख्याव्युदासाभावे अनुमानं त्रिविधमितिवत् अनुमानं चतुर्विधमिति विभागापत्तिरिति ध्येयं।

तथाहि केवलान्वयिनोऽभिधेयत्वस्य न विपक्षः अभिधानेऽनभिधाने च विपक्षत्वव्याघातात्। अथ यथा आकाशशब्दाच्छब्दाश्रयत्वमनभिधेयमप्युपति-

---

धित्त्रयवत्त्वस्यैकत्रासत्त्वेऽपि न क्षतिः(१)। ननु विभाजकोपाधीनां परस्परभेदविरहेण त्रयत्वमेवासिद्धमित्यत आह, 'केवलान्वयीति, 'केवलान्वयिपदं केवलान्वयिसाध्यकपरं, तथाच केवलान्वयिसाध्यक-केवलव्यतिरेकिसाध्यकान्वयव्यतिरेकिसाध्यकरूपाणां तादात्म्यसम्बन्धेन अनुमानविभाजकोपाधीनां परस्परं भेदसत्त्वादित्यर्थः। यद्वा 'केवलान्वय्यादिपदं केवलान्वयिसाध्यकत्वादिपरं(२), तथाच केवलान्वयिसाध्यकत्व-केवलव्यतिरेकिसाध्यकत्वान्वयव्यतिरेकिसाध्यकत्वरूपाणां अनुमानविभाजकोपाधीनां परस्परं भेदसत्त्वादित्यर्थः।

केचित्तु सामान्यतः सपरिकरामनुमितिं लक्षयित्वा विशेषलक्षणार्थं तां विभजते, 'तच्चेति, 'अनुमानं' अनुमितिः, 'त्रिविधं' अनुमितिविभाजकोपाधित्रयवती, शेषं पूर्व्ववदित्याहुः।

केवलान्वयित्वस्य ग्रह एव केवलान्वयिसाध्यकत्वमपि सुग्रहमित्यभिप्रेत्य केवलान्वयित्वमेव निरूपयति, 'तत्रेति, 'तत्र' केवलान्वयिसाध्यकत्वे, सप्तम्यर्थो विशेषणत्वं, 'असद्विपक्षमिति असन्विपक्षो-

---

(१) अनुमानविभाजकोपाधित्रयत्वावच्छिन्नेऽनुमानवृत्तित्वस्याबाधितत्वान्न क्षतिरिति भावः।

(२) भावप्रधाननिर्द्देशात् केवलान्वयिपदस्य केवलान्वयिसाध्यकत्वपरत्वमिति समुदिततात्पर्य्यं।

ष्टते, तथाभिधेयत्वविपक्षस्यानभिधेयत्वेऽपि पदादुपस्थितिः स्यात्, एवञ्चाभिधेयत्वं कुतोऽपि व्यावृत्तं धर्म्म-

---

ऽभाववान् यस्य तत्केवलान्वयीत्यर्थः(१)। न च सिद्धसिद्धिव्याघातः, अत्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदको यो धर्म्मः तद्वत्त्वं तेन रूपेण केवलान्वयित्वमिति विवक्षितत्वात्। तादृशधर्म्मावच्छिन्नसाध्यताकत्वञ्च केवलान्वयिसाध्यताकत्वं, साध्यता च व्यापारानुबन्धिनी विधेयता, स्वकरणकानुमितिविधेयतेति यावत्, तेन व्याप्त्यादिज्ञानरूपे अनुमाने वाच्यत्वादेरविधेयत्वेऽपि न क्षतिः, तथाचात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्म्मावच्छिन्नविधेयताकानुमितिकरणत्वं केवलान्वयिसाध्यकानुमानत्वमिति निष्कर्षः। अनुमितिविभागपक्षे च साध्यता विधेयतैव तथाचात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्म्मावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वं केवलान्वयिसाध्यकानुमितित्वमिति निष्कर्षः। वाच्यत्वादिर्व्यतिरेकित्वभ्रमदशायामपि तत्साध्यकं केवलान्वयिसाध्यकमेव, वह्न्यादिरूपव्यतिरेकिसाध्यकन्तु कदाचिदपि न केवलान्वयिसाध्यकमिति भावः।

---

(१) न च विपक्षपदस्याभावपरत्वेनापि असन् विपक्षः अभावोयस्य तत् केवलान्वयि इति सामञ्जस्ये विपक्षपदस्याभाववत्परत्वं विफलमिति वाच्यं। गगनाभावस्य केवलान्वयित्वानुपपत्तेः गगनस्वरूपस्य तदभावस्य विद्यमानत्वात्, विपक्षपदस्याभाववत्परत्वे तु गगनस्यावृत्तिपदार्थत्वात् गगनाभावाभाववतो न कुत्रापि सत्त्वमिति।

त्वात् गोत्ववदिति चेत्। न। व्यावृत्तत्वस्याव्यावृत्तत्वे व्यावृत्तत्वमेव केवलान्वयि, व्यावृत्तत्वे यतएव व्यावृत्तं

---

केचित्तु वह्न्यादिसाध्यकमपि कदाचित् केवलान्वयिसाध्यकं यदा त्वन्वयसहचारज्ञानजन्यान्वयव्याप्तिज्ञानमात्रादनुमितिः, वाच्यत्वादिसाध्यकमपि कदाचित् केवलव्यतिरेकिसाध्यकं यदा व्यतिरेकसहचारभ्रमजन्यान्वयव्याप्तिज्ञानमात्रादनुमितिः, कदाचित्तदन्वय-व्यतिरेकिसाध्यकं यदा चोभयसहचारज्ञानेनान्वयव्याप्तिज्ञानादनुमितिः, न तु तदानीं केवलान्वयिसाध्यकं, व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानञ्च न क्वाप्यनुमितिहेतुः केवलव्यतिरेकिण्यपि व्यतिरेकसहचारेणान्वयव्याप्तेरेव ग्रहात्, तथाच व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहाजन्यानुमितिकरणत्वं केवलान्वयिसाध्यकानुमानत्वं, तादृशानुमितित्वञ्च[1] केवलान्वयिसाध्यकानुमितित्वं, व्यतिरेकसहचारज्ञानञ्चाभावादौ साध्यादिप्रकारकविलक्षणविषयताशालिज्ञानं[2] तच्च केवलान्वयिन्यपि खण्डशः प्रसिद्धा भ्रमरूपं प्रसिद्धं, व्याप्तिज्ञानमपि हेत्वादिरूपतावत्पदार्थानां[3]

---

(१) व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहाजन्यानुमितित्वञ्चेत्यर्थः।

(२) तथाचाखण्डसाध्याभावसहचारज्ञानस्याप्रसिद्धत्वेऽपि वाच्यत्वादिसाध्यकस्थले घटाभावादौ प्रतियोगितासम्बन्धेन वाच्यत्वप्रकारकं भ्रमरूपं व्यतिरेकसहचारज्ञानं सुप्रसिद्धमेवेति भावः।

(३) तथाच हेतुविषयतानिरूपिताधिकरणविषयतानिरूपितवृत्तित्वविषयतानिरूपिताभावविषयतानिरूपितप्रतियोगित्वविषयतानिरूपिताभावविषयतानिरूपितसाध्यविषयतानिरूपिताधिकरणविषयता-

व्यहत्तत्वं तदेव केवलान्वयीति धर्मत्वस्यानैकान्तिकत्वात्, एवमत्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्यात्यन्ताभावाप्रति-

---

तथाविधपरस्परोपश्लेषावगाहिज्ञानं, तेन यत्राखण्डव्याप्तिरप्रसिद्धा तत्र नाव्याप्तिः। एवमन्वयसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानाजन्यानुमितिकरणत्वं केवलव्यतिरेक्यनुमानत्वं, तादृशानुमितित्वञ्च केवलव्यतिरेक्यनुमितित्वं, अन्वयसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रह-व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहोभयजन्यानुमितिकरणत्वं अन्वय-व्यतिरेक्यनुमानत्वं(१), तादृशानुमितित्वञ्च अन्वय-व्यतिरेक्यनुमितित्वं, शेषं पूर्ववदित्याहुः। तदसत्। व्यतिरेकसहचारज्ञानस्य व्याप्तिग्रहहेतुत्वे मानाभावात्(२)

---

निरूपितवृत्तित्वविषयतानिरूपितहेतुविषयताशालिज्ञानमेव व्याप्तिज्ञानपदेन विवक्षणीयं, तेन धूमवान् वह्नेरित्यादौ वह्निसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगिधूमसामानाधिकरण्यरूपाखण्डव्याप्तेरप्रसिद्धत्वेऽपि अन्वयसहचारज्ञानमात्रेण व्याप्तिज्ञानदशायां तत्साध्यकानुमानस्य न केवलान्वय्यनुमानत्वव्याघात इति ध्येयम्।

(१) अत्र व्याप्तिग्रहस्य द्विधा निवेशे प्रयोजनविरहात् अन्वय-व्यतिरेकोभयसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानजन्यानुमितिकरणत्वं अन्वय-व्यतिरेक्यनुमानत्वमित्येव वक्तव्यमिति।

(२) न चाचार्य्यमते धर्म्मिविशेषमन्तर्भाव्य व्यभिचारज्ञाने सहचारज्ञानस्य विरोधित्वात् व्यभिचारज्ञानविघटकतया सहचारज्ञाने व्याप्तिग्रहहेतुत्वस्य युक्तिसङ्गततया कथं व्यतिरेकसहचारज्ञानस्य व्याप्तिग्रहहेतुत्वे मानाभाव इति वाच्यं। समानप्रकारकज्ञानस्यैव विरोधित्वात् विरोध्यविषयकस्य सहचारज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानविघटकत्वाभावादिति निगूढाभिप्रायः।

योगित्वे अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वमेव केवलान्वयि, अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वे यन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोग्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वं तद्देव केवलान्वयि। न चात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं व्यावृत्तत्वञ्च नानेति वाच्यम्।

---

यत्र साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानादनुमितिस्तदनुमानस्य केवलान्वयि-केवलव्यतिरेक्युभयत्वापत्तेश्च साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानं प्रति अन्वय-व्यतिरेकोभयसहचारज्ञानस्यैवाहेतुत्वात् ।

अन्ये तु वह्न्यादिसाध्यकमपि कदाचित् केवलान्वयिसाध्यकं यदान्वयव्याप्तिज्ञानमात्रादनुमितिः, वाच्यत्वादिसाध्यकमपि कदाचित् केवलव्यतिरेकि यदा व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानमात्रादनुमितिः, कदाचिज्ज्ञान्वय-व्यतिरेकि यदान्वय-व्यतिरेकोभयव्याप्तिज्ञानादनुमितिः, अन्वयव्याप्तिज्ञानवत् व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्याप्यनुमितिहेतुत्वात् तथाच व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानाजन्यानुमितिकरणत्वं केवलान्वयिसाध्यकानुमानत्वं, तादृशानुमितित्वञ्च केवलान्वयिसाध्यकानुमितित्वं, व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानञ्च साध्य-तदभावादिरूपतद्घटकतावत्पदार्थानां तथाविधपरस्परोपस्थेषावगाहिज्ञानं, तेन यत्राखण्डव्याप्तेरप्रसिद्धिस्तत्र नाव्याप्तिः, न वा केवलान्वयिन्यप्रसिद्धिः खण्डशः प्रसिद्धा भ्रमरूपस्य तादृशज्ञानस्य तत्रापि सम्भवात् एवमग्रेऽपि। अन्वयव्याप्तिज्ञानाजन्यानुमितिकरणत्वं केवलव्यतिरेक्यनुमानत्वं, तादृशानुमितित्वञ्च केवलव्यतिरेक्यनुमितित्वं, अन्वय-व्यतिरेकोभयव्याप्तिज्ञानजन्यानुमिति-

अनुगतप्रतीतिबलेन गोत्ववत्तयोः सिद्धेः। तत्र न तावद्व्याप्यवृत्त्यत्यन्ताभावः केवलान्वयी, तस्य प्रति-

---

करणत्वं अन्वय-व्यतिरेक्यनुमानत्वं, तादृशानुमितित्वञ्चान्वयव्यतिरेक्यनुमितित्वमित्याहुः।

अभिधेयत्वादौ केवलान्वयित्वलक्षणं सङ्गमयति, 'तथाहीति, 'अभिधेयत्वस्य' शब्दशक्तिविषयत्वस्य, 'न विपक्ष इति नात्यन्ताभावाधिकरणमित्यर्थः, 'अभिधान इति, अभिधेयत्वं यदधिकरणनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगितया अभिमतं तदधिकरणस्य 'अभिधाने' शब्दशक्तिविषयत्वे, 'विपक्षत्वव्याघातात्' अभिधेयत्वात्यन्ताभावाधिकरणत्वासिद्धेः, प्रतियोग्यभावयोरेकत्र सत्त्वासम्भवात्, 'अनभिधाने च' शब्दशक्त्यविषयत्वेऽपि, 'विपक्षत्वव्याघातात्' अभिधेयत्वात्यन्ताभावाधिकरणत्वासिद्धेः, वस्तुपदादेरप्यशक्यतया वस्तुपदादिज्ञानजन्यज्ञानस्याप्यविषयत्वेनालीकत्वादित्यर्थः। 'अनभिधेयमपि' आकाशपदाशक्यमपि(१), 'उपतिष्ठते' शाब्दबोधविषयो भवति, 'अनभिधेयत्वेऽपि' वस्तुपदादिशक्त्यविषयत्वेऽपि, 'पदात्' वस्त्वादिपदात्, 'उपस्थितिः

---

(१) आकाशमस्तीत्यादौ कदाचित् अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यमस्ति इत्याकारको बोधः, कदाचिच्च शब्दाश्रयोऽस्तीत्याकारको बोधः, अतः न किञ्चिद्धर्म्मविशिष्टे आकाशपदस्य शक्तिः किन्तु आकाशपदात् आकाशस्य यदा यद्धर्म्मरूपेणोपस्थितिः तदा तद्धर्म्मेणैव शाब्दबोधः इत्यत्र तात्पर्य्यम्।

योग्यवच्छिन्नेऽप्यत्यन्ताभावात् अत्यन्ताभावाप्रतियोगिनश्च केवलान्वयित्वात्। नाप्याश्रयनाशजन्यगुणना-

स्यादिति शाब्दबोधः स्यादित्यर्थः, तथाच नालीकत्वमिति भावः। नन्वेतावता व्याघाते निरस्तेऽपि वस्तुपदाभिधेयत्वस्य[१] विपक्षसत्त्वे मानाभाव इत्यत आह, 'एवञ्चेति उक्तक्रमेण व्याघाते निरस्ते च इत्यर्थः, अन्यथा व्याघातादेवानुमानं बाधितं स्यादिति भावः। 'कुत इति किञ्चिन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकमित्यर्थः, अवच्छेदकत्वञ्च लघु-गुरुसाधारणं तेन कम्बुग्रीवादिमत्त्वादौ गुरुधर्मे न व्यभिचारः[२], तथाचाभिधेयत्वं यन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकं स एव विपक्ष इति भावः। 'धर्मत्वादिति आकाशादौ व्यभिचारवारणाय, तथाच यो यत्सम्बन्धेन वृत्तिमान् स तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकताकान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्ववान् इति यत्तद्भ्यां व्याप्तिः, अत एव 'गोत्ववदिति न दृष्टान्तासङ्गतिः, न वा सम्बन्धान्तरावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकताकान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकतामादायार्थान्तरं, 'गोत्ववदिति व्यतिरेकेण वा दृष्टान्तः,

(१) अभिधेयत्वस्येति ग०, घ०।

(२) गुरुधर्म्मस्य प्रतियोगितानवच्छेदकत्वे किञ्चिन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाववति कम्बुग्रीवादिमत्त्वरूपगुरुधर्म्मे हेतोर्धर्म्मत्वस्य वर्त्तमानत्वेन व्यभिचारः स्यादतो गुरुधर्म्मस्यावच्छेदकत्वाङ्गीकारः, धर्म्मत्वञ्च वृत्तिमत्त्वं अतः किञ्चिन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाववति आकाशे न व्यभिचारः।

ऽत्यन्ताभावः तस्य नाशस्य सर्व्वत्रात्यन्ताभावादिति वाच्यं। यत्र हि प्रतियोगिप्रागभावो वर्त्तते तत्र न

---

अन्यथा सिद्धसाधनवारणाय विशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छिन्नव्यावृत्तत्वस्यैव साध्यतया तदेकत्वात् तेन सम्बन्धेन तत्र धर्मत्वरूपहेतोर्विरहाच्चासङ्गतिः स्यादिति[१]। 'व्यावृत्तत्वस्य' अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वरूपसाध्यस्य, 'अव्यावृत्तत्वे' अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वास्वीकारे, 'व्यावृत्तत्वमेव' अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वरूपं साध्यमेव, 'केवलान्वयीति, अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वरूपसाध्याभाववदित्यर्थः, 'व्यावृत्तत्व इति अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वरूपस्य साध्यस्यान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वरूपव्यावृत्तत्वस्वीकार इत्यर्थः, 'यत एवेति यदधिकरणनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकमन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वमित्यर्थः, 'तदेव' तदधिकरणमेव, 'केवलान्वयीति अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वरूपसाध्याभाववदित्यर्थः, 'अनैकान्तिकत्वादिति अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वरूपे साध्ये तादृशसाध्यवत्त्वेनाभिमते अधिकरणे वा अनैकान्तिकत्वादित्यर्थः। ननु अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वमाकाशाद्यवृत्तिनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकमतो न व्यभिचारः तत्र धर्मत्वाभावादित्यस्वरसात् स्थलान्तरे व्यभिचारमाह, 'एवमिति, 'केवलान्वयीति अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वरूपसाध्याभाववदित्यर्थः, अत्यन्ताभावप्रति-

---

(१) धर्मत्वादितीत्यादिः स्यादित्यन्तः पाठः ग०, ङ० पुस्तकद्वये नास्ति।

तदत्यन्ताभावो वर्त्तते, तथाच नाशस्य प्रागभावो यत्र नाशप्रतियोगिसमानदेशे वर्त्तते तत्र कथं नाशात्यन्ता-

---

योगिन एवान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वनियमादिति भावः । तथाचात्यन्ताभावप्रतियोगित्वे एव धर्मत्वं व्यभिचारीति हृदयं । 'अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व इति अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्यात्यन्ताभावप्रतियोगित्वे इत्यर्थः, 'यन्निष्ठात्यन्ताभावप्रयोगीति प्रथमान्तं, अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वं यदधिकरणनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगीति योजना, 'तदेव केवलान्वयीति तदधिकरणमेवान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वरूपसाध्याभाववदित्यर्थः, अत्यन्ताभावप्रतियोगिन एवान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वनियमादिति भावः । तथाच तदधिकरण एव धर्मत्वं साध्यव्यभिचारि अवृत्तावत्यन्ताभावप्रतियोगित्वाभावासम्भवेन तदधिकरणे वृत्तिमत्त्वरूपधर्मत्वस्यावश्याभ्युपेयत्वादिति हृदयं । 'न चेति, 'व्यावृत्तत्वं' अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वं, 'नानेति व्यक्तिभेदान्नानेत्यर्थः, तथाच चालनीन्यायेन निर्घटादिनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकीभूतघटादिनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वमेव तयोरिति न क्वापि व्यभिचार इति भावः । 'तयोरिति, अनुगतयोरिति शेषः । न च तयोर्व्यक्तिभेदादननुगतत्वेऽप्यत्यन्ताभावप्रतियोगितात्वादिरूपविशेषणतावच्छेदकानुगमादनुगतप्रत्यय इति वाच्यम् । तावता स्फुटव्यभिचारविरहेऽप्यप्रयोजकत्वादिति भावः । लक्षणस्याव्याप्तिमाशङ्कते, 'तत्रेति केवलान्वयिषु मध्य इत्यर्थः ।

भावो वर्त्ततां। तर्हि नाशस्य तत्र वृत्तिः स्यादिति चेत्। न। पूर्व्वं तत्र नाशप्रागभावस्यैव सत्त्वादुत्तरकाले

---

केचित्तु 'तत्र' तस्मिन् लक्षणे सतीत्यर्थः, इत्याहुः। तदसत्। अत्यन्ताभावाप्रतियोगिन एव केवलान्वयित्वादित्युत्तरग्रन्थस्य पुनरुक्तत्वापत्तेः।

'अव्याप्यवृत्त्यत्यन्ताभावः' अव्याप्यवृत्तिसंयोगादेरत्यन्ताभावः, 'केवलान्वयी' संयोगाभावत्वादिरूपेण केवलान्वयी, स्यादिति शेषः, 'प्रतियोग्यवच्छिन्ने' प्रतियोग्यधिकरणे, 'अत्यन्ताभावाप्रतियोगिन- इति, भवन्मत इत्यादिः, भवन्मते अत्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदक- तद्धर्मवत एव तद्धर्मरूपेण केवलान्वयित्वादित्यर्थः। अव्याप्त्यन्तरमा- शङ्कते, 'नापीति 'वाच्यमित्यनेनान्वयः, 'आश्रयनाशजन्येति आश्रय- नाशजन्यो यो गुणादिनाशस्तदत्यन्ताभाव इत्यर्थः, केवलान्वयीति शेषः, 'सर्वत्रेति, नाशस्य प्रतियोगिसमवाय्यादिदेशमात्रवृत्तित्वनिय- मात् तत्र च प्रतियोगिसमवायिदेशस्याभावादिति भावः। 'इति वाच्यमिति इति भवता वक्तुं शक्यमित्यर्थः। न चेह भूतले घटरूपं नष्टं तदानीं घटरूपं नष्टमित्यादिप्रतीतिबलात् प्रतियोगिसमवायि- देशवत् भूतलादिदेशे समये च ध्वंसस्य वर्त्तमानत्वात् कथमाश्रय- नाशजन्यगुणादिनाशात्यन्ताभावस्य सर्वत्र वर्त्तमानत्वमिति वाच्यम्। इह घटे रूपं नष्टं इत्यादिप्रतीतिसाक्षिकप्रतियोगिसमवायिदेश- मात्रवृत्तिदैशिकविशेषणताविशेषेण तदत्यन्ताभावस्योक्तत्वात् स च तेन सम्बन्धेन भूतलादिदेशे समये च न वर्त्तते ध्वंसस्यावच्छेदकता-

आश्रयस्यैवाभावात्। नाप्याकाशान्ताभावः केवलान्वयी, तस्यापि प्रतियोगिरूपात्यन्ताभावप्रतियोगि-

---

सम्बन्धेनैव भूतलादिदेशवृत्तेः कालिकतयैव च समये वृत्तेरिति भावः। 'प्रतियोगिप्रागभाव इति तत्प्रतियोगिप्रागभाव इत्यर्थः। शङ्कते, 'तर्ह्ीति, 'नाशस्य' आश्रयनाशजन्यगुणादिनाशस्य, 'तत्र' प्रतियोगिसमवायिदेशे, 'पूर्वमिति प्रतियोगिसमवायिदेशसत्त्वदशायामित्यर्थः, इदमापाततः प्रागभावस्यात्यन्ताभावविरोधित्वे मानाभावात् तादृशगुणादिनाशोत्पत्तिपूर्वमेव तदत्यन्ताभावस्य प्रतियोगिसमवायिदेशे सत्त्वात्, परमार्थतस्तु तदत्यन्ताभावस्य सर्वत्र वर्त्तमानत्वेऽपि आकाशात्यन्ताभाववत्प्रतियोगिरूपात्यन्ताभावप्रतियोगित्वान्न केवलान्वयित्वसम्भव इत्येव तत्त्वं। 'प्रतियोगिरूपेति आकाशरूपेत्यर्थः(१)। नन्वाकाशस्याकाशात्यन्ताभावाभावत्वे मानाभावः प्रमेयत्वं नास्तीति प्रतीतिवदाकाशात्यन्ताभावो नास्तीति प्रतीतेरसिद्धत्वात् आकाशात्यन्ताभावाभावस्यैवासिद्धेः। न चैवं घटादेरपि घटात्यन्ताभावाभावत्वे मानाभाव इति वाच्यम्। घटवति भूतले घटात्यन्ताभावो नास्तीति प्रतीतिबलाद्घटात्यन्ताभावाभावे प्रमाणसिद्धे तत्र लाघवाद्घटस्यैव तथात्वकल्पनात्। न च भूतलादावाकाशाधिकरणत्वं भ्राम्यतोभूतलादावाकाशात्यन्ताभावो नास्तीति प्रतीतेराकाशात्यन्ताभावाभावोऽपि प्रामाणिक इति वाच्यम्। तत्प्रतीतेरभावान्तरे प्रतियोगितासम्बन्धेन आकाशात्यन्ताभावावगाहित्वात् अन्यथा प्रमेयत्वे

---

(१) 'प्रतियोगिरूपाभावेति आकाशरूपाभावेत्यर्थ इति क०।

त्वात् अभावात्यन्ताभावस्य भावत्वात्। अथाभावात्यन्ताभावो न प्रतियोगिरूपस्तथासत्यन्योन्याभावात्य-

---

घटावृत्तित्वं भ्राम्यतो घटे प्रमेयत्वं नास्तीति प्रतीतेः प्रमेयत्वात्यन्ताभावस्यापि सिद्ध्यापत्तेरित्यत आह, 'अभावाभावस्येति सावधारणं तदभावाभावस्यैवेत्यर्थः, 'भावत्वात्' तस्याभावस्य प्रतियोगित्वात्, तथाचाकाशस्याकाशाभावाभावत्वविरहे तत्प्रतियोगित्वमेवानुपपन्नं अभावविरहात्मत्वस्य प्रतियोगितारूपत्वात्, यदाङ्कराचार्य्याः "अभावविरहात्मत्वं वस्तुनः प्रतियोगिता" इति भावः। एतच्च प्राचीनमतानुसारेणोक्तं, वस्तुतस्तु स्वरूपसम्बन्धविशेषस्यैव प्रतियोगितारूपतया आकाशस्याकाशाभावाभावत्वाभावेऽपि प्रतियोगित्वसम्भवात् आकाशाभावो नास्तीति प्रतीतेस्त्वासिद्धत्वादाकाशाभावस्याभावे आकाशस्य तद्रूपत्वे च मानाभावः। एवं कालाद्यभावाभावोऽपि न कालादिः, संयोगादिव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यत्वाभावाद्यभावोऽपि न द्रव्यत्वादिः तदभावाभावस्यासिद्धेः इति मन्तव्यं। 'न प्रतियोगिरूप इति किन्त्वतिरिक्त इत्यर्थः, तथाच अभावाभावत्वं न प्रतियोगित्वमिति भावः। ननु लाघवादभावाभावः प्रतियोग्येव न त्वतिरिक्त इत्यत आह, 'तथासतीति, 'प्रतियोगिसमानदेश इति संयोगादिसम्बन्धेन घटादिमति देशे घटाद्यन्योन्याभावो न स्यादित्यर्थः, स्वात्यन्ताभावेन समं स्वस्य विरोधादिति भावः। एतच्चापाततः, यथा घटात्यन्ताभावाभावस्यातिरिक्तत्वेऽपि कालिकविशेषणतादिना तद्वति भूतलादौ घटाद्यभावोवर्त्तते अभावीयविशेषणता-

न्ताभावः प्रतियोगिरूप इति प्रतियोगिसमानदेशो-ऽन्योन्याभावो न स्यादिति चेत्। न। अत्यन्ताभावा-

---

विशेषेणैव तयोर्विरोधात् तथा घटाद्यन्योन्याभावाभावस्य घटादिरूपत्वेऽपि संयोगादिना घटादिमति घटाद्यन्योन्याभावो वर्त्तते तदात्म्य-विशेषणताभ्यामेव तयोर्विरोधात् इति सुवचत्वात्। न च तथापि घटान्योन्याभावाभावस्य घटरूपत्वे घटे घटान्योन्याभावो नास्तीति प्रतीतिर्न स्यात् तादात्म्यसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकत्वात् अन्यथा(१) घटे घट इत्यपि प्रतीत्यापत्तेरिति वाच्यम्। तादात्म्यसम्बन्धस्य घटत्वावच्छिन्नवृत्त्यनियामकत्वेऽपि प्रतीतिबलात्(२) अन्योन्याभावात्यन्ताभावत्वावच्छिन्नवृत्तिनियामकत्वस्य सुवचत्वात्। वस्तुतस्तु यत्र प्रतियोगिनो नानात्वं प्रतियोगितावच्छेदकधर्मस्त्वेकस्तत्र प्रतियोगिनां नान्योन्याभावाभावत्वसम्भवो गौरवात् किन्तु प्रतियोगितावच्छेदकरूप एव तदभावः। न चैवं यत्र प्रतियोगिनो नानात्वं प्रतियोगितावच्छेदकस्त्वेकस्तत्रात्यन्ताभावाभावस्यापि प्रतियोगिरूपत्वं न स्यात् लाघवात् स्वाश्रयात्मकपरम्परासम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकस्यैव तथात्वौचित्यादिति वाच्यम्। स्वाश्रयात्मकपरम्परासम्बन्धेन घटत्वादेरेव घटात्यन्ताभावाद्यभावरूपत्वे घटशून्यदेशे घटा-

---

(१) तादात्म्यस्य वृत्तिनियामकत्व इत्यर्थः।

(२) घटे घटान्योन्याभावो नास्तीति प्रतीतिसामर्थ्यात् तादात्म्यसम्बन्धस्य घटान्योन्याभावात्यन्ताभावत्वावच्छिन्नवृत्तिनियामकत्वं न तु घटत्वावच्छिन्नवृत्तिनियामकत्वं घटे घट इति प्रतीतेरसिद्धेरिति।

त्यन्ताभावः प्रतियोग्येव अन्योन्याभावात्यन्ताभावस्तु प्रतियोगिवृत्तिरसाधारणो धर्म्म इति।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे केवलान्वय्यनुमानपूर्व्वपक्षः।

---

त्यन्ताभावात्यन्ताभावो नास्तीति प्रतीत्यनुपपत्तेः(१) तादात्म्यातिरिक्तवृत्त्यनियामकसम्बन्धस्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वात्, किञ्च तादात्म्यसम्बन्धस्यान्योन्याभावाभावत्वावच्छिन्नघटनिष्ठघटवृत्तित्वनियामकत्वे तादृशवृत्तितामादायैव तादात्म्यसम्बन्धेन घटो घटवृत्तिरिति घटत्वधर्मितावच्छेदककघटविशेष्यकप्रतीतेः घटे घटवृत्तित्वांशस्य प्रमात्वापत्तेर्दुर्वारत्वात्, अतएवाधिकरणस्वरूपाभाववादिमतमप्यपास्तं इत्येव तत्त्वं। 'अत्यन्ताभावात्यन्ताभाव इति तथाचात्यन्ताभावस्य प्रतियोगित्वमभावाभावत्वमिति भावः। 'प्रतियोगिवृत्तिरसाधारण इति प्रतियोगितावच्छेदकधर्म इत्यर्थः, इति साम्प्रदायिकाः।

नव्यास्तु प्रतियोगिवृत्त्यसाधारणधर्ममात्रमेवान्योन्याभावात्यन्ताभावः न तु नियमतः प्रतियोगितावच्छेदकमेव। न चैवं कम्बुग्रीवादिमत्त्वादीनां घटादिवृत्तिरूपादीनाञ्च अन्योन्याभावाभावत्वात् घटान्योन्याभावग्रहे तेषामपि ग्रहो न स्यादिति वाच्यम्। घटा-

---

(१) तथाच घटात्यन्ताभावाभावस्य स्वाश्रयात्मकपरम्परासम्बन्धेन घटत्वस्वरूपस्य तादृशपरम्परासम्बन्धेनाभाव एव घटात्यन्ताभावाभावाभावः स चाप्रसिद्धः तादृशपरम्परारूपवृत्त्यनियामकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगित्वे मानाभावादिति भावः।

न्योन्याभावग्रहस्य घटान्योन्याभावात्यन्ताभावत्वप्रकारेण ग्रहे घटत्वग्रहे च प्रतिबन्धकतया कम्बुग्रीवादिमानित्यादिग्रहे बाधकाभावात्। न च घटत्ववत्ताज्ञानवत् कम्बुग्रीवादिमत्त्वादिग्रहस्यापि घटभेदग्रहप्रतिबन्धकत्वापत्तिः तस्य घटभेदाभावरूपत्वादिति वाच्यम्। तदभावत्वप्रकारकज्ञानस्यैव तद्वत्ताज्ञानं प्रति प्रतिबन्धकत्वात् अन्यथातिप्रसङ्गात्[१] घटत्वादिज्ञानस्य तु स्वातन्त्र्येणैव प्रतिबन्धकत्वात्। न च तथापि कम्बुग्रीवादिमत्त्वग्रहस्य तदभाववत्त्वग्रहे प्रतिबन्धकत्वात् घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य च तथात्वात् तत्सत्त्वे कथं ग्रह इति वाच्यम्। तस्य तदभावत्वप्रकारकग्रहं प्रत्येव प्रतिबन्धकत्वात् अयन्तु घटभेदत्वप्रकारक इति। न च स्वरूपतो यद्वत्ताज्ञानं यदभाववत्ताज्ञानप्रतिबन्धकं तदेवाभावाभावः, कम्बुग्रीवादिमत्त्वादिकञ्च न तथेति वाच्यम्। अप्रयोजकत्वात्। न च कम्बुग्रीवादिमत्त्वादीनां प्रतिव्यक्तिभिन्नानां अनन्तरूपादीनाञ्चान्योन्याभावाभावत्वकल्पनमपेक्ष्य लाघवात् प्रतियोगितावच्छेदकस्य घटत्वस्यैव तथात्वं कल्प्यते इति वाच्यम्। तथापि कम्बुग्रीवादिमत्त्वाद्यवच्छिन्नान्योन्याभावाभावत्वस्य घटत्वादौ दुर्वारत्वात् प्रतियोगितावच्छेदकापेक्षया घटत्वस्य लघुत्वात्। न च कम्बुग्रीवाद्यवच्छिन्नान्योन्याभाव एवाप्रसिद्ध इति वाच्यम्। तदनङ्गीकारेऽपि तदेकत्वाद्यवच्छिन्नान्योन्या-

---

(१) तद्वत्ताग्रहे तदभावत्वेन तदभावग्रहस्यैव प्रतिबन्धकत्वं इति नियमाभावे प्रमेयत्वेन तदभावग्रहोऽपि तद्वत्ताग्रहे प्रतिबन्धकः स्यात् इत्येवातिप्रसङ्ग इति।

भावाभावत्वस्य तत्समनियतपरिमाणव्यक्तीनां दुर्वारत्वात्। न च प्रतियोगितावच्छेदकं विना धर्मान्तरस्य ग्रहे अन्योन्याभावाभाव-व्यवहाराभावान्न तस्य तदभावत्वमिति वाच्यम्। धर्मान्तरस्यान्यो-न्याभावाभावत्वेन ग्रहदशायां तद्ग्रहेऽप्यन्योन्याभावाभावव्यवहारात् प्रतियोगितावच्छेदकस्यान्योन्याभावाभावत्वमविदुषः प्रतियोगिता-वच्छेदकवत्त्वग्रहेऽप्यन्योन्याभावाभावव्यवहाराभावात् तस्माद्यत्र प्रति-योगितावच्छेदकधर्मो लघुः स एव तत्रान्योन्याभावाभावः, यत्र प्रति-योगितावच्छेदकापेक्षया धर्मान्तरं लघु तत्र तदेव तदभावाभावः, यत्र च प्रतियोगितावच्छेदकधर्मो धर्मान्तरञ्च लघु तत्र उभयमेव तथेति विषयविभागः, मूले 'प्रतियोगिवृत्तिरसाधारणधर्म' इत्यस्य प्रतियोगिवृत्तिलघुधर्म इत्यर्थ इति प्राहुः।

मिश्रास्तु स्वप्रतियोगिनिरूपितस्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध एव सर्वत्राभावाभावः, स चान्योन्याभावस्य तादात्म्यं अत्यन्ताभावस्य संयोगादिः, यत्किञ्चित्संयोगवति संयोगसम्बन्धसामान्यावच्छिन्न-घटाभावाभावप्रत्ययापत्तिवारणाय स्वप्रतियोगिनिरूपितत्वं सम्बन्ध-विशेषणं, प्रतियोगितावच्छेदकतानियामकसम्बन्धेन च तस्याभाव-विरोधितया न सम्बन्धान्तरेण प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धवति अभावविलयप्रसङ्गः, अन्यथात्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वेऽन्यो-न्याभावाभावस्य च प्रतियोगिवृत्त्यसाधारणधर्मरूपत्वेऽनुगताऽनतिप्रस-क्तोक्त्यसम्भवात् अभावाभावत्वप्रकारकग्रहदशायां केवलप्रतियोगिता-वच्छेदकसम्बन्धज्ञानेऽप्यभावाभावव्यवहारात् तद्ग्रहदशायां तत्र प्रतियोग्यादिग्रहेऽप्यभावाभावव्यवहारविरहात्, स्वरूपेण यदत्ता-

ज्ञानमभावज्ञानप्रतिबन्धकं तदेवाभावाभाव इति नियमे च माना-भावात्। न चैवं संयोगादिव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक-द्रव्यत्वाभावादीनां स्वप्रतियोगिनिरूपितस्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्ब-न्धाप्रसिद्धा तदभावविलयप्रसङ्ग इति वाच्यम्। तादृशद्रव्यत्वाभावा-दीनामभाव एव मानाभावात्, यस्य हि अभावाभावः प्रामाणिकस्त-दीयाभावस्यैव प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धरूपत्वकल्पनादित्याहुः। तदसत्। स्वत्वघटितत्वेनार्थानुगमस्यासम्भवात् शब्दानुगमस्याकिञ्चि-त्करत्वात्। किञ्चाभावाभावस्य स्वप्रतियोगिनिरूपितस्वप्रतियोगिता-वच्छेदकसम्बन्धरूपत्वे समवायसम्बन्धावच्छिन्नरूपाभावाभावस्य रूप-निरूपितसमवायरूपतया समवायावच्छिन्नरूपात्यन्ताभावाभाववान् वायुरित्यपि प्रत्ययः स्यात् रूपनिरूपितसमवायस्य समवायानति-रिक्ततया वाय्वादावपि तत्सत्त्वात्, एवं संयोगसम्बन्धावच्छिन्नघटा-द्यभावाभावस्य घटसंयोगादिरूपतया तादृशघटाभावाभाववान् घट-इत्यपि प्रत्ययः स्यात् स्वसंयोगस्य स्वस्मिन्नपि सत्त्वात्। न च स्वप्रतियोगिनिरूपितत्वविशिष्टस्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धोऽभावा-भाव इति वाच्यम्। विशिष्टस्यानतिरिक्ततया तद्दोषतादवस्थ्यात्। न च यथा रूपनिरूपितसमवायस्य समवायानतिरिक्तत्वेऽपि रूप-निरूपितत्वविशिष्टसमवायत्वावच्छिन्नतदाधारत्वस्य वाय्वादावभावा-द्रूपनिरूपितसमवायवान् वायुरिति न प्रत्ययः यथा वा विशिष्ट-सत्ताभावाभावस्य विशिष्टसत्त्वस्य सत्त्वानतिरिक्तत्वेऽपि विशिष्टसत्ता-भावाभावत्वावच्छिन्नतदाधारत्वस्य गुणादावभावात् विशिष्टसत्ता-भावाभाववान् गुण इति न प्रत्ययः तथा समवायसम्बन्धावच्छिन्न-

रूपाभावाभावत्वावच्छिन्नरूपसमवायाद्याधारत्वस्य वाय्वादावभावाभ्योक्तप्रत्यय इति वाच्यम्। तथा सति सर्वेषामेवाभावानामभावस्य गगनाभावस्वरूपत्वसम्भवेनाननुगतप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धरूपताभ्युपगमस्यान्याय्यत्वात्। अथ समवायावच्छिन्नरूपाद्यभावाभावस्य गगनाभावरूपत्वे तादृशरूपाभावाभावोविशेषणताविशेषेण वायुवृत्तिरित्यपि प्रत्ययः स्यात् न स्याच्च तादृशरूपाभावाभावो न विशेषणताविशेषेण वायुवृत्तिरिति प्रत्ययः गुणाद्यन्यत्वविशिष्टसत्ताया- गुणादिवृत्तित्ववत् विशिष्टस्यानतिरिक्ततया तादृशरूपाभावाभावत्वविशिष्टस्यापि वाय्वादौ वृत्तेः, एवं संयोगादिसम्बन्धावच्छिन्नघटाभावाद्यभावस्यापि गगनाभावस्वरूपत्वे तादृशघटाभावाभावो घटवृत्तिरित्यपि प्रत्ययः स्यात् न स्याच्च तादृशघटाभावाभावो न घटवृत्तिरिति प्रत्यय इति चेत्, तुल्यमिदमापत्तिदानं,(१) प्रतियोगिनिरूपितप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धरूपत्वेऽपि विशिष्टस्यानतिरिक्ततया समवायसम्बन्धावच्छिन्नरूपाभावाभावत्व-संयोगसम्बन्धावच्छिन्नघटाभावाभावत्वविशिष्टस्य रूपसमवाय-घटसंयोगादेर्वायु-घटादावपि वृत्तेः। न च तवापि विशिष्टसत्ताभावाभावस्य विशिष्टसत्तारूपत्वे विशिष्टसत्ताभावाभावो गुणवृत्तिरिति प्रत्ययः स्यात् न स्याच्च विशिष्टसत्ताभावाभावो न गुणवृत्तिरिति प्रत्ययः विशिष्टस्यानतिरिक्तत्वादिति वाच्यम्। इष्टत्वात्। सर्वेषामेव विशिष्टाभावानां अभावस्य गगनाभावरूपत्वे विशिष्टसत्ताभावाभावोजात्यादिवृत्तिरित्यादिप्रत्ययापत्तेः

(१) तुल्यमिदमापादनमिति घ०।

स्वीकरणीयं वा तादृशप्रतीत्यापत्तिवारणाय(१) अवच्छेदकतासम्बन्धेन गुणाद्यन्यत्व-सत्तयोः सामानाधिकरण्यस्य समवायसम्बन्धेन द्रव्यत्वस्यैव वा विशिष्टसत्ताभावाभावत्वं न तु विशिष्टसत्त्वस्येति न किञ्चिदेतत् ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये केवलान्वय्यनुमानपूर्व्वपक्षरहस्यं ।

---

(१) तादृशप्रतीत्यप्रतीतिवारणायेति ख० ।

## अथ केवलान्वय्यनुमानसिद्धान्तः।

उच्यते। वृत्तिमदत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं केवलान्वयित्वं, आकाशात्यन्ताभावो यद्यपि प्रतियोगिरूपात्यन्ताभावप्रतियोगी तथापि स न वृत्तिमानित्याकाशात्यन्ताभाव एव केवलान्वयी, तथा प्रमेयत्वाभिधेयत्वादि

---

## अथ केवलान्वय्यनुमानसिद्धान्तरहस्यं।

'वृत्तिमदिति वृत्तिमान् योऽत्यन्ताभावस्तदप्रतियोगित्वमित्यर्थः, आकाशात्यन्ताभावेऽव्याप्तिमुद्धरति, 'आकाशात्यन्ताभावएवेति आकाशात्यन्ताभावोऽपीत्यर्थः, आकाशात्यन्ताभावः केवलान्वय्येवेति व्युत्क्रमेण वा अन्वयः। प्रमेयत्वादौ लक्षणं सङ्गमयति 'तथेत्यादिना। नन्विदानीं आकाशमिह दिश्याकाशमिति प्रतीतिबलादाकाशस्यापि काल-दिङ्निरूपितविशेषणतया वृत्तिमत्त्वात् आकाशात्यन्ताभावे तथाप्यव्याप्तिः। न च वृत्तिः संयोगः समवायोवा विवक्षित इति वाच्यम्। घटादेरपि केवलान्वयित्वापत्तेः। न च काल-दिङ्निरूपितविशेषणतातिरिक्तसम्बन्धेन वृत्तिमत्त्वं विवक्षितमिति वाच्यम्। तथापि संयोगादिव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यत्वात्यन्ताभावादावव्याप्तेस्तस्य प्रतियोगिरूपतादृशवृत्तिम-

केवलान्वयि वृत्तिमतोऽत्यन्ताभावस्याप्रतियोगित्वात्। न च प्रमेयत्वं प्रमाविषयत्वं तच्च न केवलान्वयि प्रमायाविषयत्वस्य चाननुगमादिति वाच्यं। प्रमात्वमेव हि परम्परासम्बन्धात् घटादौ प्रमेयत्वमनुगतं प्रमाजाती-

दत्यन्ताभावप्रतियोगित्वात् अव्याप्यवृत्त्यत्यन्ताभावेऽव्याप्तेश्च। न च वृत्तिमत्पदेन निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वं विवक्षितमतोनाव्याप्यवृत्त्यत्यन्ताभावेऽव्याप्तिः न वाकाशाभावादौ संयोगादिव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यत्वात्यन्ताभावादौ चाव्याप्तिः उक्तयुक्त्या तदत्यन्ताभावस्यैवाप्रसिद्धेरिति वाच्यम्। तथापि कालिकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताके गोत्वादेः कालिकाव्याप्यवृत्तेरभावेऽव्याप्तेः गोत्वादेः समवायसम्बन्धेनानवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वादिति चेत्। न। प्रतियोग्यनधिकरणे वृत्तिमत्त्वस्य वृत्तिमत्पदेन विवक्षितत्वात् आकाशात्यन्ताभावाभावादेः प्रतियोग्यनधिकरणस्यैवाप्रसिद्धत्वान्नाव्याप्तिः। न चैवं समवायसम्बन्धेनापि ज्ञानादेः कालिकसम्बन्धेनापि गगनाभावादेश्च केवलान्वयित्वापत्तिः समवायसम्बन्धावच्छिन्नज्ञानाद्यभावस्य कालिकसम्बन्धावच्छिन्नगगनाभावाभावस्य च प्रतियोग्यनधिकरणाप्रसिद्धेः[१] इति वाच्यम्। यत्सम्बन्धेन प्रतियोग्यनधिकरणे वृत्तिमतोऽभावस्याप्रतियोगित्वं तेन सम्बन्धेन केवलान्वयित्वमिति विवक्षितत्वात्। न च तथापि तादात्म्यसम्बन्धेन प्रमेयादेः केवलान्वयित्वानुपपत्तिः

(१) तथाच विषयतासम्बन्धेन ज्ञानस्य विशेष्यताविशेषेण गगनाभावस्य च सर्व्वत्र सत्त्वमिति भावः।

यविषयत्वं वा। तथापि केवलान्वयिनि सन्देहाभावात् कथमनुमितिः, प्रमेयत्वमत्र वर्त्तते न वेति संशयश्च न प्रमेयपक्षकः किन्तु प्रमेयत्वपक्षको भिन्नविष-

---

चालनीन्यायेन सर्व्वस्यैव प्रमेयस्य तादात्म्यसम्बन्धेन प्रतियोग्यनधिकरणे वर्त्तमानस्याभावस्य प्रतियोगित्वादिति वाच्यम्। तादृशाभावस्य प्रतियोगितानवच्छेदको यो धर्मस्तद्वत्त्वं तेन रूपेण तत्सम्बन्धेन केवलान्वयित्वमिति विवक्षणात्, इत्यञ्च प्रतियोग्यनधिकरणत्वं प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वमेव वक्तव्यं न तु प्रतियोग्यनधिकरणत्वमात्रं तथा सति द्रव्यभेद-गुणभेदयोरन्यतरत्वरूपेण केवलान्वयित्ववदुभयत्वरूपेणापि केवलान्वयित्वापत्तेः। नचैवं विरुद्धयोरपि द्वित्वेन केवलान्वयित्वापत्तिः तदवच्छिन्नाधिकरणाप्रसिद्ध्या तदवच्छिन्नाभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणवृत्तिमत्त्वस्यासम्भवात् समवायादिना प्रमेयत्वादेर्गगनादेश्च केवलान्वयित्वापत्तिः समवायावच्छिन्नप्रमेयत्वाभावादेस्तादृशगगनाभावादेश्च समवायसम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणाप्रसिद्धेरिति वाच्यम्। तत्सम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नवति येन केनचित्सम्बन्धेन सम्बन्धित्वे सतीत्यनेनापि विशेषणात्, इत्यञ्च समवायादिसम्बन्धेन विरुद्धघटत्व-पटत्वोभयत्वावच्छिन्नवतस्तत्सम्बन्धेन प्रमेयत्व-गगनत्वावच्छिन्नवतश्चाप्रसिद्धत्वान्नातिव्याप्तिः विशेषणताविशेषेण वर्त्तमानस्य घटत्व-पटत्वाद्यभावस्यैव विशेषणताविशेषेणावर्त्तमानस्यापि गगनादेः विशेषणताविशेषसम्बन्धेन प्रमेयत्वादिरूपेण केवलान्वयित्वमिष्टमेव, तदनभ्यु-

यकः, प्रमेयत्वपक्षके चास्तित्वसाध्यस्यान्वय-व्यतिरेकित्वं तथाच घटः प्रमेयो न वेति संशयो मृग्यते स च नास्त्येव। अथ पक्षः साध्यवान्न वा पक्षे साध्यमस्ति न वेति संशयौ समानविषयकावेव तदस्यास्त्यस्मिन्निति

---

पगमे तु येन केनचित्सम्बन्धेन इत्यपहाय तत्सम्बन्धेनेति वक्तव्यं[१]। नचैवमपि आश्रयनाशजन्यगुणादिनाशात्यन्ताभावेऽव्याप्तिस्तदवस्थैवेति वाच्यं। प्रागभावस्यात्यन्ताभावविरोधित्वे मानाभावात् प्रतियोगिसमवायिदेशेऽपि तादृशनाशात्यन्ताभावोवर्त्तत एवेत्यभिप्रायादिति न कोपि दोषः।

सोन्दड़ोपाध्यायास्तु[२] अन्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्म्मवत्वं केवलान्वयित्वं अन्योन्याभावोव्याप्यवृत्तिरेवेति नाव्याप्यवृत्त्यत्यन्ताभावेऽव्याप्तिः धर्मत्वोपादानान्नाकाशेऽतिव्याप्तिरित्याहुः। तदसत्। विषयतया ज्ञानस्य केवलान्वयित्वानुपपत्तेः समवायेनान्योन्याभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वात् केवलान्वयितावच्छेदकसम्बन्धेन अन्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वोक्तावपि तादात्म्येन मेयसामान्यस्य केवलान्वयित्वानुपपत्तिः चालनीन्यायेन सर्व्वेषामेव मेयानां अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वादित्यास्तां विस्तरः।

यथाश्रुताभिप्रायेणाशङ्कते, 'न वेति, 'प्रमाया इति दृष्टा-

---

(१) मन्तव्यमिति क०।

(२) उपाध्यायास्त्विति ख० ग० घ० ङ०।

मतुपोविधानादिति चेत्। न। विशेषण-विशेष्यभाव-भेदेनार्थभेदात्। मैवं। य एव हि संशयः पक्षे साध्य-सिद्धिविरोधी स एवानुमानाङ्गमावश्यकत्वात् लाघ-

---

न्तार्थं, प्रमाव्यक्तयो यथा पुरुषभेदेन विभिन्नास्तथा विषयस्वरूपस्य तद्विषयत्वस्यापि विषयभेदेन विभिन्नत्वादित्यर्थः, तथाच चालनी-न्यायेन सर्व्वासामेव प्रमाविषयत्वव्यक्तीनां तादृशात्यन्ताभावप्रतित्वात् न केवलान्वयित्वसम्भव इति भावः। 'प्रमात्वमेवेति, 'परम्परासम्बन्धात्' स्वाश्रयविषयत्वरूपसम्बन्धात्[1]। न च प्रमात्वमपि विषय-प्रकारभेदेन[2] अननुगतमिति वाच्यम्[3]। प्रकृते प्रमात्वपदेनानुभवत्वस्य विवक्षितत्वा-दिति भावः। ननु प्रमेयत्वस्य परम्परासम्बन्धेन प्रमात्वरूपत्वे प्रमेत्येव धीः स्यान्न तु प्रमेयमिति सम्बन्धस्य प्रकारत्वासम्भवादित्यत आह, 'प्रमा-जातीयेति प्रमात्वाश्रयविषयत्वमेवेत्यर्थः। न चेवं उक्तदोषतादवस्थ्यं, लक्षणस्यानवच्छेदकघटनाया आवश्यकत्वेन प्रमाविषयत्वस्याननुगत-त्वेऽपि प्रमाविषयत्वत्वधर्म्मस्यानुगतस्य तादृशाभावप्रतियोगितान-वच्छेदकत्वादेव लक्षणसङ्गतेरिति भावः। वस्तुतस्तु विषयताया ज्ञान-स्वरूपत्वेन भगवतोऽस्मदादेर्योगिनां वा सर्व्वविषयकप्रमाव्यक्तेस्तद्वि-

---

(१) प्रमारूपसम्बन्धादिति ख॰ ग॰ घ॰ ङ॰।

(२) विशेष्य-प्रकारभेदेनेत्यर्थः।

(३) तत्तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकज्ञानत्वरूपप्रमात्वस्य विषयविशेषनिय-न्त्रितत्वादननुगतत्वमिति भावः।

चास्य न तु समानविषयकत्वमपि तच्च तन्त्रं गौरवात् प्रमेयत्वं घटनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि न वेति संशयश्च

---

षयत्वस्यानुगतस्यैव प्रमेयत्वरूपतया यथाश्रुतलक्षणमपि तत्र सम्भवति, एतेन सकलप्रमाविषयत्वसाधारणस्य प्रमाविषयत्वत्वस्यैकस्यानभ्युपगमेऽपि न क्षतिरिति मन्तव्यम्। साध्यसन्देहः पक्षतेत्यभिप्रायेण शङ्कते, 'तथापीति, 'सन्देहाभावादिति साध्यसन्देहाभावादित्यर्थः, साध्याभावस्याप्रसिद्धेरिति भावः। 'कथमनुमितिरिति, तथाच केवलान्वयिसाध्यकानुमितेरप्रसिद्धत्वात् तादृशानुमितिकरणत्वरूपस्य तादृशानुमितित्वरूपस्य वा केवलान्वयिसाध्यकत्वस्य कथं विभाजकतावच्छेदकत्वमिति भावः। ननु तत्रापि प्रमेयत्वं अत्र वर्त्तते न वेत्याकारकः सन्देहः सम्भवतीत्यत आह, 'प्रमेयत्वमिति, 'न प्रमेयपक्षकः' न प्रमेयविशेष्यकः, 'प्रमेयत्वपक्षकः' प्रमेयत्वविशेष्यकः, 'भिन्नेति वृत्तित्व-तदभावप्रकारक इत्यर्थः, स च न प्रयोजकः पक्षविशेष्यकसाध्यसन्देहस्यैव पक्षतारूपत्वादिति भावः। ननु मास्तु घटादिपक्षकप्रमेयत्वादिसाध्यकानुमितिस्तथापि प्रमेयत्वादिपक्षक-घटादिवृत्तित्वसाध्यकानुमितिः सम्भवत्येव सैव केवलान्वयिसाध्यकानुमितिः प्रसिद्धेत्यत आह, 'प्रमेयत्वेति, 'अस्तित्वसाध्यस्य' घटादिवृत्तित्वसाध्यस्य, यथाश्रुते अस्तित्वस्य कालसम्बन्धित्वरूपस्य केवलान्वयित्वादसङ्गतेः, 'साध्यसिद्धिविरोधीति साध्यसिद्धिप्रतिबन्ध्य इत्यर्थः, साध्यसिद्धिर्हतो विरोधोऽस्यास्तीति व्युत्पत्तेः, 'आवश्यकत्वादिति साध्य-तदभावप्रकारक-पक्षविशेष्यकसंशयत्वमात्रेण नानुमित्यङ्गता आहार्य्यसंशय-

घटः प्रमेय इति साध्यसिद्धिविरोधी भवत्येव। यद्वा संशययोग्यतैवानुमानाङ्गं संशयस्य तदानीं विनाशात्।

---

स्योत्कटदोषाधीनसंशयस्य चानुमित्यप्रतिबध्यत्वेन तदङ्गत्वाभावात् तथाच साध्यसिद्धिप्रतिबध्यत्वमपि विशेषणं देयमित्यावश्यकत्वात् लाघवाच्च तेनैव रूपेणाङ्गतेत्यर्थः, 'समानविषयकत्वमपीति समान-विशेष्यक-समानप्रकारकत्वमपीत्यर्थः, 'गौरवादिति साध्यसिद्धि-प्रतिबध्यत्वप्रवेशस्यावश्यकत्वेन गौरवादित्यर्थः, तथाच मेयत्वं घटवृत्ति न वेति संशयस्यापि साध्यसिद्धिप्रतिबध्यत्वेन स एव केवलान्वयिनि अनुमितिहेतुरिति भावः। नन्वेवमपि प्रमेयत्वं घटनिष्ठात्यन्ता-भावप्रतियोगि न वेति सन्देहस्य न संग्रह इति तटस्थाशङ्कायामाह, 'प्रमेयत्वमिति, 'साध्यसिद्धिविरोधी' साध्यसिद्धिप्रतिबध्यः, 'तदानी-मिति अनुमितिपूर्व्वकाले क्वचिद्विनाशादित्यर्थः। 'सापि' संशय-योग्यतापि, 'साधकेति साध्य-तदभावनिश्चयाभाव इत्यर्थः, 'प्रमेय-त्वाभावेति, तथाचेत्यादिः, 'तत्प्रमाणेति तन्निश्चयेत्यर्थः, 'पक्षनिष्ठेति नञ्व्यत्यासेन पक्षनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वज्ञानाभावस्येत्यर्थः,(१) 'साध्यसाधकत्वेनेति प्रतिबन्धकाभावविधया पक्षविशेष्यकसाध्यविशि-ष्टबुद्धिसामान्यजनकत्वेनेत्यर्थः, 'तदभावस्यैवेति स एव योऽभावस्त-स्यैव साध्ये पक्षनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वज्ञानाभावस्यैवेति यावत्, 'योग्यतात्वात्' संशययोग्यतात्वात्, संशयस्यापि साध्यादिविशिष्ट-बुद्धिरूपत्वादिति भावः। 'प्रमेयत्वमिति अत्यन्ताभावान्तरे प्रति-

---

(१) पक्षनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वज्ञानभावलाभ इति क०।

न च सापि साधक-बाधकप्रमाणाभावः प्रमेयत्वाभावासिद्धौ तत्प्रमाणासिद्धेस्तदभावासिद्धिरिति वाच्यं। पक्षनिष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वज्ञानस्यैव साध्यसाधकत्वेन तदभावस्यैव योग्यतात्वात्। प्रमेयत्वमत्यन्ता-

---

योगित्वसम्बन्धेन प्रमेयत्वस्य भ्रमवतः पुरुषस्येत्यर्थः, 'सन्देह इति प्रतियोगितासम्बन्धेन प्रमेयत्वमभावान्तरे प्रकारः अभावस्य पक्षे प्रकार इति क्रमेण पक्षः प्रमेयो न वेति सन्देह इत्यर्थः। 'एकरूपेति विपक्षासत्त्वविकलमित्यर्थः, 'इदं' केवलान्वयिसाध्यकं लिङ्गं, 'कथं गमकमिति पक्षसत्त्व-सपक्षसत्त्व-विपक्षासत्त्वाबाधितत्वासत्प्रतिपक्षात्मकपञ्चरूपोपपन्नलिङ्गस्यैव गमकत्वादिति भावः, 'तच्चे वेति विपक्षासत्त्व-विकलस्य गमकत्वे वेत्यर्थः, 'व्यतिरेकेति विपक्षासत्त्वेत्यर्थः, 'रूपान्तरेति पक्षसत्त्वाबाधितत्वादीत्यर्थः(१)। अन्वय-व्यतिरेकिस्थल एव विपक्ष-व्यावृत्तत्वज्ञानमङ्गमिति समाधत्ते, 'अन्वयेति, इदञ्च 'युगपदुभय-व्याप्त्युपस्थितौ उभयोरपि प्रयोजकत्वे' इत्यत्र हेतुः, 'युगपदिति, सम्भेदे नान्यतरवैयर्थ्यमिति भावः। 'प्रयोजकत्वे' प्रयोजकत्वस्थले, एतावता-न्वय-व्यतिरेकी लब्धः, 'व्यतिरेकोपासनेति विपक्षव्यावृत्तत्वज्ञानापेक्षेत्यर्थः, न तु केवलान्वयिनीति भावः। अत्र हेतुमाह, 'व्यतिरेक-स्येति, 'चः' हेतौ, 'व्यतिरेकः' विपक्षसत्त्वव्यतिरेकः, 'विपक्षवृत्तित्व-शङ्कानिवृत्तिद्वारेति सावधारणं, तद्वृत्तित्वशङ्कानिवृत्तिद्वारैवेत्यर्थः, 'व्यतिरेकव्याप्तौ' साध्याभाव-हेत्वभावयोर्यौ व्यतिरेकौ साध्य-हेतू

---

(१) सपक्षसत्त्वाबाधितत्वादीत्यर्थः इति क॰।

भावप्रतियोगीति भ्राम्यतः सन्देह इत्यन्ये। नन्वेकरूप-विकलमिदं कथं गमकं तत्त्वे वा व्यतिरेकविकलवत् रूपान्तरविकलमपि गमकं स्यादिति चेत्। न। अन्वय-व्यतिरेकव्याप्त्योरन्यतरनिश्चयेनानुमित्यनुभवात् युग-

---

तयोर्व्याप्तिग्रहे अन्वयव्याप्तिग्रह इति यावत्, 'अत्र तु' केवलान्वयिनि तु, 'व्यतिरेकव्याप्ताविति यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते व्यतिरेकव्याप्तिग्रहं प्रत्येव तस्य विपक्षवृत्तित्वशङ्कानिवृत्तिमात्रद्वारा उपयोगितया केवलान्वयिनि तन्निवृत्त्यसम्भवेऽपि तस्यान्वयव्याप्तिग्रहोपयोगित्वे बाधकाभावात्। न च 'व्यतिरेकव्याप्तावित्यस्य व्यतिरेकव्याप्तिग्रह एवेत्यर्थः इति वाच्यम्। अन्वयव्याप्तिग्रहं प्रत्यपि तादृशशङ्कानिवृत्तिद्वारोपयोगित्वस्य सर्व्वसिद्धतया अवधारणासङ्गतेः 'अत्र तु विपक्षाभावेन शङ्कैव नोदेतीत्यभिधानस्यासङ्गतत्वापत्तेश्च अत्र तु व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानमेव नेत्येव वक्तुमुचितत्वादिति ध्येयम्।

केचित्तु विपक्षव्यावृत्तत्वग्रहस्य व्यतिरेकव्याप्तिग्रहद्वारा सर्व्वत्रानुमितावावश्यकत्वं अन्वयव्याप्तिग्रहानुकूलतया वा नाद्य इत्याह, 'अन्वयेति, 'अन्यतरनिश्चयेनेति एकतरनिश्चयेनापीत्यर्थः। ननु तर्हि विपक्षव्यावृत्तत्वग्रहः क्वचिदपि नापेक्षितः स्यात् इत्यत आह, 'युगपदिति, 'प्रयोजकत्वे' प्रयोजकत्वस्थले, 'व्यतिरेकोपायेनेति विपक्षवृत्तित्वशङ्कानिवृत्तिद्वारा विपक्षव्यावृत्तत्वग्रहापेक्षेत्यर्थः। न द्वितीय इत्याह, 'व्यतिरेकस्येति अर्थस्तु पूर्व्ववदिति व्याचक्षुः।

उपाध्यायानुयायिनस्तु 'एकरूपेति व्यतिरेकव्याप्तिविकलमित्यर्थः। अन्वय-व्यतिरेकिणि उभयव्याप्तिज्ञानस्यैव गमकत्वदर्शनादिति

पदुभयव्याप्त्युपस्थितौ विनिगमकाभावेन उभयोरपि प्रयोजकत्वे व्यतिरेकोपासना व्यतिरेकश्च विपक्षवृत्तित्वशङ्कानिवृत्तिद्वारा व्यतिरेकव्याप्तावुपयुज्यते अत्र तु विपक्षाभावेन शङ्कैव नोदेति।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे केवलान्वय्यनुमानसिद्धान्तः, समाप्तमिदं केवलान्वय्यनुमानं।

---

भावः। 'व्यतिरेकविकलवत्' व्यतिरेकव्याप्तिविकलवत्, 'रूपान्तरेति पक्षधर्मताविकलमित्यर्थः, 'अन्यतरनिश्चयेनेति एकतरनिश्चयेनापीत्यर्थः, तथाचान्वयव्याप्तिज्ञानमेव हेतुरिति भावः। नन्वेवमत्र यथानुमितेरन्वयव्याप्तिज्ञानमात्रजन्यत्वं तथा यत्र युगपदुभयव्याप्त्युपस्थितिः तत्राप्यनुमितेरन्वयव्याप्तिज्ञानमात्रजन्यत्वमस्त्वित्यत आह, 'युगपदिति, 'प्रयोजकत्व इति तृतीयार्थे सप्तमी, 'व्यतिरेकोपासनेति अनुमितेर्व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजन्यत्वमित्यर्थः। ननु तथापि केवलान्वयिनि विपक्षासत्त्वज्ञानं विना कथं व्याप्तिग्रहस्तस्य तद्धेतुत्वादित्यत आह, 'व्यतिरेकश्चेति अर्थस्तु पूर्व्ववदित्याहुः।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये केवलान्वय्यनुमानसिद्धान्तरहस्यं, समाप्तमिदं केवलान्वय्यनुमानरहस्यं[१]।

---

(१) इति महामहोपाध्यायश्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशभट्टाचार्य्यकृतं केवलान्वयिरहस्यं रमणीयमिति ग०।

## अथ केवलव्यतिरेक्यनुमानं।

केवलव्यतिरेकी त्वसत्सपक्षो यत्र व्यतिरेकसहचारेण व्याप्तिग्रहः। ननु व्यतिरेकी नानुमानं व्याप्ति-

---

## अथ केवलव्यतिरेक्यनुमानरहस्यं।

'असत्सपक्ष इति असन् स्वजन्यानुमित्यव्यवहितपूर्व्वं स्वाधिकरणे असन्सपक्षः साध्यवत्त्वेन क्वापि निश्चयो यस्येत्यर्थः, तथाच स्वसमानाधिकरणस्वजन्यानुमित्यव्यवहितपूर्व्ववर्त्तिनिश्चयाविषयसाध्यकत्वं केवलव्यतिरेक्यनुमानत्वमिति भावः। स्वं लक्ष्यत्वेनाभिमतं, अव्यवहितपूर्व्वत्वञ्च क्षणत्रयसाधारणं(१) तेन व्याप्तिनिश्चयाव्यवहितपूर्व्वं साध्यवत्त्वनिश्चयस्य क्वापि सत्त्वेऽपि न केवलव्यतिरेकित्वं। न च स्वाव्यवहितपूर्व्ववर्त्तीत्येवोच्यतां किं जन्यानुमित्यव्यवहितपूर्व्ववर्त्तित्वपर्य्यन्तेनेति वाच्यं। वह्निमान्धूमादित्यादावन्वयव्याप्तिग्रहजनकान्वयसहचारज्ञाने साध्यज्ञानत्वेन ज्ञानत्वेन वा अनुमितिकरणे अन्वय-व्यतिरेक्यनुमानान्तर्गतेऽतिव्याप्त्यापत्तेः तत्पूर्व्वं साध्यनिश्चयस्य क्वापि विरहादिति

---

(१) क्षणत्रयसाधारण्याव्यवहितपूर्व्वत्वञ्च स्वप्रागभावाधिकरणसमयप्रागभावाधिकरणसमयप्रागभावाधिकरणसमयप्रागभावानधिकरणत्वे सति स्वप्रागभावाधिकरणत्वरूपमिति।

भावः। ननु तस्य लक्ष्यमेव दुर्लभमनुमितिपूर्व्वं सपक्षयाभ्यन्तरे साध्यवत्त्वनिश्चयाभावे सहचारज्ञानाभावात् व्याप्तिज्ञानस्यैवासम्भवादित्यतोलक्ष्यं दर्शयति, 'यत्रेति, अनुमितिजनन इति शेषः, 'व्यतिरेकसहचारेण' व्यतिरेकसहचारज्ञानेन, जन्यत्वं तृतीयार्थः, 'व्याप्तिग्रहः' व्याप्तिग्रह एव, सहकारीति शेषः, तथाच यज्ज्ञानं व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानमात्रसहकारेणानुमितिं जनयति तदेव लक्ष्यं, सहकारित्वञ्च न भेदगर्भं(१) तेन व्याप्तिज्ञानस्यापि संग्रह इति भावः। अत्र लक्षणे साध्यं व्यतिरेकित्वेन विशेषणीयं, तेन सपक्षासत्त्वदशायामपि व्यतिरेकसहचारभ्रमजन्यकेवलान्वयिसाध्यकानुमाने नातिव्याप्तिः, साध्यत्वञ्च व्यापारानुबन्धिविधेयत्वं स्वकरणकानुमितिविधेयत्वमिति यावत्, तेन व्याप्तिज्ञानादिरूपेऽनुमाने पृथिवीतरभेदादेरविधेयत्वेऽपि न क्षतिः, तथाच स्वसमानाधिकरण-स्वजन्यानुमित्यव्यवहितपूर्व्ववर्त्तिनिश्चयविषयतानवच्छेदको यो व्यतिरेकितावच्छेदकोधर्म्मस्तदवच्छिन्नविधेयताकानुमितिकरणत्वं केवलव्यतिरेक्यनुमानत्वं स्वं लक्ष्यत्वेनाभिमतं, स्वसमानाधिकरण-स्वाव्यवहितपूर्व्ववर्त्तिनिश्चयविषयतानवच्छेदकव्यतिरेकितावच्छेदकधर्म्मावच्छिन्नविधेयताकानुमितिकरणत्वं केवलव्यतिरेक्यनुमानत्वमिति तु निष्कर्षः वारद्वयमनुमितिप्रवेशे प्रयोजनविरहात्, स्वपदमनुमितिपरं। अन्वय-व्यतिरेक्यनुमानलक्षणन्तु स्फुटत्वान्नोक्तं, तच्च स्वसमानाधिकरण-

---

(१) तथाचात्र तत्सहकारित्वं तज्जन्यफलजनकत्वमात्रं न तु तद्भिन्नत्वविशिष्ट-तज्जन्यफलजनकत्वरूपमतः स्वस्यापि स्वसहकारित्वमिति भावः।

स्वाव्यवहितपूर्व्ववर्त्तिनिश्चयविषयतावच्छेदकव्यतिरेकितावच्छेदकधर्म्मावच्छिन्नविधेयताकानुमितिकरणत्वं, स्वपदं अनुमितिपरं, तादृ-शानुमितित्वञ्चान्वय-व्यतिरेक्यनुमितित्वं, केवलव्यतिरेक्यनुमानेऽति-व्याप्तिवारणाय प्रथममवच्छेदकान्तं तत्र साध्यवत्त्वेन निश्चयस्य क्वापि विरहात्, अव्यवहितपूर्व्वत्वञ्च क्षणत्रयसाधारणं तेन व्याप्ति-निश्चयपूर्व्वं साध्यनिश्चयसत्त्वेऽपि अन्वय-व्यतिरेकित्वं, केवलान्वयिसाध्य-कानुमानेऽतिव्याप्तिवारणाय द्वितीयमवच्छेदकान्तं। न च व्यतिरेक-सहचारेणान्वयव्याप्तिरेव गृह्यते इति वक्ष्यमाणमते यत्र व्यतिरेक-सहचारज्ञानमात्रजन्यव्यापकसामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिज्ञानाद-नुमितिस्तत्र केवलव्यतिरेक्यनुमानलक्षणस्याव्याप्तिः अन्वय-व्यतिरे-क्यनुमानलक्षणस्य चातिव्याप्तिः व्याप्तिग्रहस्यैव साध्यान्वयग्रहरूपत्वा-दिति वाच्यं। एतद्भयरसेनैव तन्मतमपहाय 'यद्देति' कृत्वा व्यति-रेकसहचारज्ञानजन्यव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यैव गमकत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात् नव्यनये लाघवात् साध्याभाववदवृत्तित्वरूपान्वयव्याप्तिज्ञानस्यैवा-नुमितिहेतुतया व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यतादृशान्वयव्याप्तिज्ञानस्यैव व्यतिरेक्यनुमितावपि हेतुत्वाच्च। एतच्च 'तच्चानुमानं त्रिविधं' इत्यस्यानुमानविभागपरत्वपक्षे व्याख्यातं, तस्यानुमितिविभागपरत्वपक्षे तु 'असत्सपक्ष इत्यस्य असन्स्वाव्यवहितपूर्व्वकाले स्वाधिकरणे असन् सपक्षः साध्यवत्त्वेन क्वापि निश्चयो यस्यानुमित्यात्मकग्रहस्य स इत्यर्थः, तथाच स्वसमानाधिकरण-स्वाव्यवहितपूर्व्ववर्त्तिनिश्चयविषयतान-वच्छेदकव्यतिरेकितावच्छेदकधर्म्मावच्छिन्नसाध्यकानुमितित्वं केवल-व्यतिरेक्यनुमितित्वमिति भावः। स्वपदमनुमितिपरं प्रत्येकद्वय-

पक्षधर्म्मताज्ञानस्य तत्कारणत्वात् अत्र व्यतिरेकसह-चारात् तत्र व्याप्तिरन्वयस्य पक्षधर्म्मता। न च व्याप्त-

---

प्रयोजनञ्च उक्तप्रायं। नन्वेतस्य लक्षणमेव दुर्लभं अनुमितिपूर्व्वं क्षणत्रयाभ्यन्तरे साध्यवत्त्वनिश्चयाभावे सहचारज्ञानाभावात् व्याप्ति-ज्ञानस्यैवासम्भवादित्यतो लक्ष्यं दर्शयति, 'यत्रेति अनुमिताविति शेषः, 'व्यतिरेकसहचारेण' व्यतिरेकसहचारज्ञानेन, जन्यत्वं तृतीयार्थः, 'व्याप्तिग्रहः' व्याप्तिग्रह एव, कारणमिति शेषः, तथाच यत्रानुमितौ व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानमात्रं कारणं सैव लक्ष्येति भावः।

केचित्तु ननु 'असत्सपक्ष इत्यस्य असन्सपक्षः साध्यवत्त्वेन निश्चितो यस्येत्यर्थः, स च सिद्धासिद्धिपराहत इत्यतोऽसत्सपक्षमेव पारि-भाषिकं व्याचष्टे, 'यत्रेति, अनुमितिजनन इति शेषः, 'व्यतिरेकसह-चारेण' व्यतिरेकसहचारज्ञानेन, जन्यत्वं तृतीयार्थः, 'व्याप्तिग्रहः' व्याप्तिग्रह एव, सहकारीति शेषः, तथाच व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्य-व्याप्तिग्रहमात्रजन्यानुमितिकरणत्वं केवलव्यतिरेक्यनुमानत्वं, अन्वय-व्यतिरेकोभयसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानस्यान्वय-व्यतिरेक्यनुमाना-न्तर्गतस्य वारणाय मात्रपदं। व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रह-मात्रजन्यत्वञ्च अन्वय-सहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहाजन्यत्वं, अनुमितिश्च व्यतिरेकितावच्छेदकधर्म्मावच्छिन्नविधेयताकत्वेन विशेषणीया, तेन व्यतिरेकसहचारभ्रमजन्यवाच्यत्वादिसाध्यकव्याप्तिज्ञाने पूर्व्वनिरुक्तके-वलान्वयिसाध्यकान्तर्गते नातिव्याप्तिः, महानसादौ वह्न्यादिमत्त्व-

पक्षधर्म्मत्वं साध्याभावव्यापकाभावप्रतियोगिसत्त्वमु-भयमप्यनुमितिप्रयोजकमिति वाच्यम्। अननुगमात्। न चान्यतरत्वं तथा, एकप्रमाणपरिशेषापत्तेः। न च

---

निश्चयसत्त्वे यदि व्यतिरेकसहचारज्ञानमात्रात् वह्न्यादिव्याप्तिज्ञानं तदा तदपि केवलव्यतिरेक्येव, व्याप्तिश्च(१) यदि सर्व्वत्रान्वयव्याप्ति-ज्ञानमेव कारणं केवलव्यतिरेकिण्यपि व्यतिरेकसहचारात् अन्वय-व्याप्तिरेव गृह्यते इति मतं तदान्वयरूपैव निवेशनीया, यदि च केवलव्यतिरेक्यतिरिक्तस्थलेऽन्वयतोव्यतिरेकतश्च उभयरूपैव व्याप्ति-र्गमिका केवलव्यतिरेकिणि तु व्यतिरेकव्याप्तिरेव गमिकेति मतं तदा तु व्यतिरेकरूपैव निवेशनीया, वह्निमान् धूमादित्यादाव-न्वयसहचारज्ञानजन्यव्यतिरेकव्याप्तिग्रहजन्यानुमितिकरणन्तु न केव-लव्यतिरेकि किन्त्वन्वय-व्यतिरेक्येवेति भावः।

'तच्चानुमानमिति मूलस्यानुमितिविभाजकपरत्वपक्षे 'यत्रेत्य-स्यानुमिताविति शेषः, 'व्याप्तिग्रह एवेत्यस्य च कारणमिति शेषः, तथाच व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहमात्रजन्यव्यतिरेकिताव-च्छेदकधर्म्मावच्छिन्नसाध्यकानुमितित्वं केवलव्यतिरेक्यनुमितित्वमिति भावः। अन्वयसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहजन्यव्यतिरेकितावच्छेदक-धर्म्मावच्छिन्नसाध्यकानुमितिकरणत्वन्तु अन्वय-व्यतिरेक्यनुमानत्वं तादृशानुमितित्वञ्चान्वय-व्यतिरेक्यनुमितित्वं। व्याप्तिश्च यदि सर्व्व-

---

(१) व्याप्तिश्चेत्यस्य निवेशनीयेत्यनेनाग्रेतनेनान्वय इति।

तृणारणि-मणिन्यायेनानुमितिविशेषे तद्धेतुत्वमिति वाच्यं । व्यतिरेकिसाध्येऽनुमितित्वासिद्धेः उभयसिद्ध-

चान्वयव्याप्तिज्ञानमेव कारणं केवलव्यतिरेकिण्यपि व्यतिरेक-सहचारज्ञानादन्वयव्याप्तिरेव गृह्यते इति मतं तदान्वयरूपैव निवेशनीया, यदि च केवलव्यतिरेक्यतिरिक्तस्थलेऽन्वयतो व्यतिरे-कतश्च व्याप्तिद्वयमेव गमकं केवलव्यतिरेकिणि तु व्यतिरेकव्याप्तिरेव गमिकेति मतं तदान्वयतो व्यतिरेकतश्च उभयरूपैव यथाकथ-ञ्चिदनुगतीकृत्य[१] निवेशनीया, तेन[२] वह्निमान् धूमादित्यादाव-न्वयसहचारज्ञानाधीनव्यतिरेकव्याप्तिग्रहजन्यानुमितौ तत्करणे च नाव्याप्तिरित्याहुः ।

'नन्विति, 'व्यतिरेकी' व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहः, 'नानुमानं' नानुमितिकरणं, 'व्याप्तेति हेतुव्यापकसाध्यसामानाधि-करण्यरूपान्वयव्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानस्येत्यर्थः, 'अत्र' व्यतिरेक-सहचारज्ञानजन्यपरामर्शे, 'व्यतिरेकसहचारात्' साध्याभाव-हेत्वभा-वयोः सहचारज्ञानात्, 'तत्र' तयोः साध्याभाव-हेत्वभावयोरिति यावत्, 'व्याप्तिः' व्यापकत्वं, 'अन्वयस्य' हेतोः, 'पक्षधर्मतेति, भासते

(१) व्यभिचारधीविरोधिधीविषयत्वेन व्याप्तिद्वयं अनुगतीकृत्येत्यर्थः, त-थाचान्वय-सहचारज्ञानजन्यप्रकृतहेतुधर्मिकप्रकृतसाध्यव्यभिचारधी-विरोधिधीविषयतावच्छेदकावच्छिन्नविषयकग्रहजन्यानुमितिकरणत्वं अन्वय-व्यतिरेक्यनुमानत्वं तादृशानुमितित्वञ्चान्वय-व्यतिरेक्यनुमिति-त्वमिति भावः ।

(२) अनुगतरूपेणोभयविधव्याप्तिनिवेशेनेत्यर्थः ।

कृततत्कारणस्याभावात्। न च साध्याभावव्यापका-भावप्रतियोगित्वमेवानुमितिप्रयोजकमिति वाच्यं। गौरवात् केवलान्वयिन्यभावाच्च। अथ साध्याभाव-

---

इति शेषः, तथाच व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्यतिरेकव्याप्तिपरामर्श-स्यानुमित्यजनकतया तादृशव्याप्तिज्ञानस्य नानुमितिकरणत्वमिति भावः। नन्वन्वयव्याप्तिपरामर्श-व्यतिरेकव्याप्तिपरामर्शयोरुभयोरेवानु-मितिजनकत्वमित्याशङ्कते, 'न चेति, 'व्याप्तपक्षधर्मत्वं' निरुक्तान्वय-व्याप्तिविशिष्टहेतुमत्त्वं, 'साध्याभावेति साध्याभावव्यापकाभावप्रति-योगिहेतुमत्त्वमित्यर्थः, 'अनुमितिप्रयोजकं' अनुमितिकारणीभूत-ज्ञानविषयः, 'अननुगमादिति उभयसाधारणकारणतावच्छेदकधर्मा-भावादित्यर्थः, प्रत्येकरूपेण कारणत्वे च(१) परस्परं व्यभिचार इति भावः। 'तथा' उभयसाधारणकारणतावच्छेदकधर्मः, 'एकप्रमाणेति इन्द्रियादीनां चतुर्णामेव प्रमाणानामिन्द्रियाद्यन्यतमत्वरूपैकधर्म्मे-णानुमित्यादिप्रमितिचतुष्टयाद्यन्यतमत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वाप-त्तेरित्यर्थः, व्यापाराणां(२) विशेषतः कारणत्वेनैवानुमितित्वाद्यवच्छि-

---

(१) अन्वयव्याप्तिज्ञानत्वेन व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानत्वेन चेत्यर्थः, तथाच अन्वयव्याप्तिज्ञानमात्रजन्यानुमितौ व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानाभावात् व्यति-रेकव्याप्तिज्ञानमात्रजन्यानुमितौ च अन्वयव्याप्तिज्ञानाभावात् पर-स्परं व्यभिचार इति भावः।

(२) ननु प्रमाणचतुष्टयस्य अन्यतमत्वेन प्रमितिचतुष्टयान्यतमत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वे प्रत्यक्षप्रमाणसत्त्वे कथमनुमितिर्नोत्पद्यत इत्यत आह,

व्यापकाभावप्रतियोगित्वेन साध्यव्याप्यत्वमनुमेयम्, एवं व्यतिरेकव्याप्त्यान्वयव्याप्तिमनुमाय यत्रानुमितिः स एव व्यतिरेकीत्युच्यते, तन्न, अन्वयव्याप्तेर्गमकत्वे व्यतिरेक-

---

व्योत्पत्तिनियमसम्भवादिति भावः। 'तृणारणीति यथा तृणारणि-मणीनां परस्परं व्यभिचारितया वह्नित्वव्याप्यधर्म्मावच्छिन्नं प्रत्येव हेतुत्वं न तु वह्नित्वावच्छिन्नं प्रति तथात्राप्यनुमितित्वव्याप्यधर्म्मा-वच्छिन्नं प्रत्येव तयोः कारणत्वमित्यर्थः, 'व्यतिरेकिसाध्य इति व्यतिरेकव्याप्तिपरामर्शोत्तरं जायमानज्ञानइत्यर्थः, 'अनुमितित्वा-सिद्धेरिति, अगृहीतासंसर्गकं खण्डशः साध्यपक्षयोः ज्ञानमेव तदिति भावः। 'उभयसिद्धेति निरुक्तान्वयव्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानस्य उभयसिद्धानुमितिकारणस्याभावादित्यर्थः। 'न च साध्याभावेति न त्वन्वयव्याप्तिरित्यर्थः, विनिगमकाभावादिति भावः। 'केवलान्वयीति तव केवलान्वयित्वग्रहदशायामसम्भवाच्चेत्यर्थः, यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते साध्य-साधनभेदेन कार्य्य-कारणभावस्य विभिन्नतया केवलान्वयिन्य-न्वयव्याप्तिज्ञानमेव हेतुः व्यतिरेकिणि तु व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानमेव

---

व्यापारयोरिति, तथाच प्रमितिचतुष्टयं प्रति प्रमाणचतुष्टयस्यान्य-तमत्वेनैव कारणत्वं, व्यापारविशेषस्य प्रमितिविशेषं प्रति स्वातन्त्र्येण कारणत्वेनैवातिप्रसङ्गवारणमिति भावः। न च व्यापारविशेषस्य प्रमितिविशेषं प्रति कारणत्वेनैवातिप्रसङ्गभङ्गे प्रमाणस्यान्यथासिद्ध-त्वमिति वाच्यं। व्यापारेण व्यापारिणोऽन्यथासिद्धत्वाभावादिति।

व्याप्त्युपन्यासस्यार्थान्तरतापत्तेः अन्वयव्याप्त्यनुकूलतया च तदुपन्यासे अन्वयव्याप्तिमनुपन्यस्य तदुपन्यासस्या-

---

इत्यस्य सुवचत्वात् खपुष्पः प्रसिद्धा केवलान्वयिन्यपि भ्रमरूपतज्ज्ञानसम्भवात्।

केचित्तु 'अनुमितित्वासिद्धेरिति, किन्तु अर्थापत्त्याख्यविजातीयज्ञानमेव तदिति भावः। न चैवं 'गौरवादित्यग्रिममूलमसङ्गतं अर्थापत्तित्वाख्यातिरिक्तवैजात्याभ्युपगमे तदवच्छिन्नं प्रत्येव तज्ज्ञानस्य हेतुत्वावश्यकत्वात् वैजात्यकल्पनस्य पुनरधिकत्वादिति वाच्यम्। एतदस्वरसादेव 'केवलान्वयीत्याद्यभिधानादित्याहुः। तदसत्। अर्थापत्त्याख्यविजातीयज्ञानस्यार्थापत्तिग्रन्थ एवाग्रे निरसनीयत्वादिति ध्येयम्।

'अथेति, 'साध्यव्याप्यत्वं' साध्यान्वयव्याप्यत्वं, तथाच व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्य साध्यान्वयव्याप्त्यनुमितिद्वारा अनुमितिकरणत्वमिति भावः। अत्र वृत्तिमत्त्वेन विशेषणाद्वृत्तौ व्यभिचारः। न च तथापि व्यतिरेकिणि हेतुव्यापकसाध्यसमानाधिकरणवृत्तिहेतुतावच्छेदकवत्त्वरूपान्वयव्याप्यत्वमप्रसिद्धं कथमनुमेयं प्रकृतहेतावेव प्रसिद्धं चेत्तत्तमनुमानेनेति वाच्यम्। यत् यद्धर्मावच्छिन्नाभावव्यापकाभावप्रतियोगितावच्छेदकयद्धर्मवद्वति तत् तद्धर्मावच्छिन्नव्यापकतावच्छेदकतद्धर्मावच्छिन्नसमानाधिकरणवृत्तितद्धर्मवद्वतीति यत्तद्भ्यां सामान्यतो व्याप्त्या तस्याप्रसिद्धत्वेऽप्यनुमितिसम्भवादिति भावः[१]। यत्तु

---

(१) तस्याप्रसिद्धस्याप्यनुमितिसम्भवादिति ग० पु०।

प्राप्तकालत्वमिति। उच्यते। निरुपाधिव्यतिरेकसहचा-रेणान्वयव्याप्तिरेव गृह्यते प्रतियोग्यनुयोगिभावस्य

---

'साध्यव्याप्यत्वं' साध्यवदन्यावृत्तित्वं, तज्ज्ञानतः साध्ये प्रसिद्धं हेतावनु-मेयमिति। तदसत्। केवलान्वयित्वग्रहदशायामसम्भवेन व्यतिरेक-व्याप्तिज्ञानवत् साध्यवदन्यावृत्तित्वज्ञानस्यापि अनुमितिहेतुत्वासम्भ-वादिति ध्येयं(१)। ननु निरुक्तान्वयव्याप्तिज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वे 'केवलव्यतिरेकी लक्षणपक्षः' इति प्रागुक्तलक्षणमसम्भवि व्याप्तिग्रह-स्यैव साध्यान्वयग्रहरूपत्वादित्यत आह, 'एवमिति, 'यत्रानुमितिः' यस्मिन्ग्रहे सत्यनुमितिः यद्ग्रहकरणिकानुमितिरिति यावत्।

केचित्तु नन्वेवमन्वयिपरामर्श-व्यतिरेकिपरामर्शयोः को भेद-इत्यत आह, 'एवमिति, 'यत्रानुमितिः' यस्मिन् परामर्शे सत्य-नुमितिरित्याहुः।

'व्यतिरेकव्याप्त्युपन्यासस्येति उदाहरणवाक्येन व्यतिरेकव्याप्त्यु-पन्यासस्येत्यर्थः, 'अन्वयव्याप्त्यनुकूलतयेति अन्वयव्याप्तिसाधकहेतुतये-त्यर्थः, 'अप्राप्तकालत्वमिति, साध्योपन्यासानन्तरमेव हेतूपन्यासस्य कथकसम्प्रदायसिद्धत्वात्। न चान्वयव्याप्तिरेव प्रथममुपन्यसनीया तत्र कथन्तायां तत्साधनाय व्यतिरेकव्याप्तिरुद्भाव्येति वाच्यं। कथक-संप्रदायविरोधादिति भावः। 'निरुपाधीति हेत्वभावे नियतसा-ध्यव्यतिरेकसहचारज्ञानेनान्वयव्याप्तिघटकतावत्पदार्थविषयकेणेत्यर्थः,

---

(१) केवलान्वयिन्यसम्भवाद्यथा व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानं न कारणं तथा साध्यवदन्यावृत्तित्वज्ञानमपीतीति क०।

नियामकत्वात् अन्वय-व्यतिरेकिवत्। नन्वेवं व्याप्ति-ग्रह एव पृथिवीतरभिन्नेति भासितं नियतसामानाधि-

---

नियतसाध्यव्यतिरेकसहचारः साध्याभावव्यापकत्वे सति साध्याभावसहचारः, 'अन्वयव्याप्तिरेव गृह्यते' इति, 'अन्वयव्याप्तिः' हेतुव्यापकसाध्यसमानाधिकरणवृत्तिहेतुतावच्छेदकवत्त्वरूपा व्याप्तिः, 'गृह्यते' व्यतिरेक्यनुमितिकरणज्ञानेन विशेष्ये विशेषणमिति रीत्या विषयीक्रियते, तथाच व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यतादृशव्याप्तिज्ञानमेवानुमितौ करणमित्यर्थः, उदाहरणेन च नियतव्यतिरेकसहचार एव प्रदर्श्यते इति नार्थान्तरत्वं व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानानन्तरञ्चागृहीतासंसर्गकं खण्डशः पक्ष-साध्ययोर्ज्ञानमात्रमिति भावः। अथाभावयोः सहचारज्ञानात् कथं प्रतियोगिनोर्व्याप्तिग्रहः एकनिष्ठसहचारज्ञानेनान्यनिष्ठव्याप्तिज्ञानजननेऽतिप्रसङ्गादित्यत आह, 'प्रतियोग्येति तत्तद्धर्मावच्छिन्नाभावत्वेन तत्तद्धर्मावच्छिन्नाभावयोः सहचारज्ञानस्य तत्तद्धर्मरूपेण तत्तद्धर्माश्रययोर्व्याप्तिग्रहं प्रत्येव जनकत्वान्नातिप्रसङ्ग इत्यर्थः, 'अन्वय-व्यतिरेकिवदिति अन्वययोः प्रतियोगितावच्छेदकरूपेण प्रतियोगिनोः सहचारज्ञानस्य तद्व्यतिरेकत्वरूपेण तद्व्यतिरेकयोर्व्याप्तिग्रहं प्रत्येव जनकत्ववदित्यर्थः, एतच्चापाततः नियमांशज्ञानस्य व्याप्तिघटकीभूततावत्पदार्थोपस्थितिविधया व्याप्तिग्रहहेतुत्वेऽपि व्यतिरेकसहचारज्ञानस्य तद्धेतुत्वे मानाभावादिति ध्येयं। 'नन्वेवमिति, 'एवं' अन्वयव्याप्तिज्ञानस्य हेतुत्वे, 'पृथिवीतरभिन्नेतीति पक्षतावच्छेदकीभूते पृथिवीत्वे साध्यस्येतरभेदस्य सामानाधिकरण्यं भासितमित्यर्थः,

करण्यरूपत्वाद्व्याप्तेरिति, सत्यं, गन्धवत्त्वावच्छेदेनेतर-भेदस्य साध्यत्वात्। अतएवाचार्य्यैः पक्षतावच्छेदकस्य न हेतुत्वमनुमेने पृथिवीत्वमितरभेदव्याप्यमितिप्रतीता-वपि सर्व्वा पृथिवीतरभिन्नेति पृथिवीविशेष्यकबुद्धे-र्व्यतिरेकिसाध्यत्वाच्च। यद्वा व्यतिरेकव्याप्तेरेवान्वयेन गम्य-गमकभावः, साध्याभावव्यापकसाधनाभावाभा-

---

पृथिवीत्वस्यैव हेतुत्वात्, तथाच सिद्धसाधनं अनुमित्यापि पक्षताव-च्छेदक-साध्ययोः सा॰ाधिकरण्यस्यैव विषयीकरणादित्यभिमानः। अभिमानमभ्युपेत्यैव समाधत्ते, 'गन्धवत्त्वेति गन्धवत्त्वं पक्षतावच्छेदकी-करणीयमित्यर्थः, हेतुस्तु पृथिवीत्वमिति भावः। 'अत एवेति यत-एव व्यतिरेकिणि अन्वयव्याप्तिज्ञानस्य हेतुतया पक्षतावच्छेदकस्य हेतुत्वे सिद्धसाधनमत एवेत्यर्थः, 'पक्षतावच्छेदकस्येति, पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते इत्यादाविति शेषः, किन्तु गन्धवत्त्वादेरेव हेतुत्वमपीति भावः।

केचित्तु प्रकारान्तरेण व्याप्तिज्ञाने पक्षतावच्छेदक-साध्ययोः सामानाधिकरण्यभानं निराकरोति, 'अत एवेति एतदर्थमेवेत्यर्थः, पृथिव्यामितरभेदे साध्ये इति शेषः, 'पक्षतावच्छेदकस्य' पक्षवाचक-पृथिवीपदशक्यतावच्छेदकस्य पृथिवीत्वस्येति यावत्, 'न हेतुत्व-मिति, किन्तु गन्धवत्त्वस्यैव हेतुत्वमिति शेषः, तथाच पृथिवीत्वमेव पक्षतावच्छेदकीकरणीयं हेतुस्तु गन्धवत्त्वमिति भाव इति प्राहुः।

त्वेन साधनेन साध्याभावाभावस्य साध्यस्य साधनात् व्यापकाभावेन व्याप्याभावस्यावश्यम्भावात्। नन्वेवं[(१)] न सानुमितिः क्लृप्तहेतुलिङ्गपरामर्शाभावादन्यथानन्तुगम इति चेत्। न। अनुमितिमात्रे व्याप्तिज्ञानस्य प्रयोजकत्वात्। न चैवमतिप्रसङ्गः, अनुमितिसामान्य-

---

अभिमानं निराकृत्य समाधत्ते, 'पृथिवीत्वमिति, 'इतरभेद-व्याप्यं' पृथिवीत्वव्यापकेतरभेदसमानाधिकरणं, 'पृथिवीविशेष्यकेति पृथिवीत्वव्यापकत्वविशिष्टविशेषणतासंसर्गक-पृथिवीत्वावच्छिन्नविशेष्यकेतरभेदप्रकारकबुद्धेरित्यर्थः, 'व्यतिरेकिसाध्यत्वादिति व्यतिरेक-सहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानेन जननसम्भवाच्चेत्यर्थः, समानाकार-सिद्धेरेव प्रतिबन्धकत्वात् तथाच पृथिवीत्वस्यैव पक्षतावच्छेदकत्व-हेतुत्वोभयवत्त्वेऽपि न क्षतिरिति भावः। ननु निरुक्तान्वयव्याप्ति-ज्ञानस्यैव व्यतिरेक्यनुमितिहेतुत्वे 'केवलव्यतिरेकी लक्षणपक्षः' इति प्रागुक्तलक्षणमसम्भवि व्याप्तिग्रहस्यैव साध्यान्वयग्रहरूपत्वादित्यस्वरसादाह, 'यद्वेति, 'व्यतिरेकव्याप्तेरेवेति व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यैवेत्यर्थः, 'अन्वयेनेति अन्वयेन साध्येन सह गम्य-गमकभावः व्यतिरेक्यनुमितिं प्रति जनकत्वमिति यावत्, कुत्रचित् 'अन्वये गम्य-गमकभावः' इति पाठः, तत्र 'व्यतिरेक-व्याप्तेरेवेति, पञ्चमी, व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्यतिरेकव्याप्तिज्ञान-

---

(१) अथैवमिति क०, ख०, ग०।

सामग्र्यां सत्यामप्यनुमितिविशेषसामग्रीविरहादनुमित्यनुत्पत्तेः विशेषसामग्रीसापेक्षाया एव सामान्यसामग्र्या जनकत्वात् अन्वयि-व्यतिरेकिविशेषद्वयसामग्री च नास्त्येव।

---

सहचारादित्यर्थः, 'अन्वये' साध्य-हेतू, तत्र गम्य-गमकभाव इत्यर्थोऽनुसन्धेयः।

केचित्तु ननु केवलव्यतिरेकिण्यपि अन्वयव्याप्तिज्ञानस्यैव हेतुत्वे पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते इत्याद्यप्रसिद्धसाध्यककेवलव्यतिरेक्यनुमितिर्न स्यात् साध्यस्याप्रसिद्ध्या व्यापकसामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिज्ञानस्यासम्भवात् तत्र। न च पृथिवीतरावृत्तित्वात्मकान्वयव्याप्तिज्ञानादेव तत्रानुमितिरिति वाच्यम्। केवलान्वयित्वग्रहदशायामसम्भवेन तज्ज्ञानस्यानुमित्यहेतुत्वादित्यत आह, 'यद्वेति, न च साध्याप्रसिद्ध्या व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्याप्यसम्भव इति वाच्यम्। अनुपदं स्वयमेवोपपादयिष्यमाणत्वात् इति व्याचक्रुः।

स्वरूपयोग्यत्वे फलोपधायकत्वं मानमाह, 'साध्याभावेति साध्याभावव्यापकसाधनाभावाभावस्य साधनस्य ज्ञानेनेत्यर्थः, 'साधनात्' अनुमितिजननात्। नन्वनुमित्युपधायकत्वमेव तत्रासिद्धमित्यत आह, 'व्यापकाभाव इति साध्याभावव्यापकस्य साधनाभावस्य अभावे साधने निश्चित इत्यर्थः, 'व्याप्याभावेति व्याप्याभावस्य साध्यस्यानुमितेरनुभवसिद्धत्वादित्यर्थः। 'नन्वेवमिति, 'एवं' व्यतिरेकव्याप्तिपरामर्शस्यैव तत्र हेतुत्वे, 'न सानुमितिरिति, स्यादिति शेषः, 'लिङ्ग-

ननु पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते पृथिवीत्वादिति व्यतिरेकिणि साध्यमसिद्धं तथाच न व्यतिरेकिनिरू-

---

परामर्शेति अन्वयव्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानेत्यर्थः। नन्वन्वयव्याप्ति-परामर्शवद्व्यतिरेकव्याप्तिपरामर्शानन्तरमप्यनुमितेरनुमिनोमीत्यनु-व्यवसायसिद्धतया व्यतिरेकव्याप्तिपरामर्शोऽपि तद्धेतुरित्यत आह, 'अन्यथेति उभयपरामर्शस्यैवानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति हेतुत्व इत्यर्थः, 'अननुगमः' परस्परं व्यभिचारः। 'अनुमितिमात्र इति अनुमितित्वा-वच्छिन्ने इत्यर्थः, 'व्याप्तिज्ञानस्य' अन्वय-व्यतिरेकान्यतरव्याप्तिज्ञानस्य, 'प्रयोजकत्वादिति प्रतियोगित्वादिज्ञानत्वेन ज्ञानत्वेन वा प्रयोजक-त्वादित्यर्थः। 'अतिप्रसङ्ग इति पक्षधर्मताज्ञानं विनापि प्रतियोगि-त्वादिज्ञानमात्रात् अनुमितिप्रसङ्ग इत्यर्थः, 'अनुमितिविशेषेति अन्वय-व्यतिरेकपरामर्शरूपानुमितिविशेषसामग्रीत्यर्थः, तत्कार्य्यता-वच्छेदके अन्वय्यनुमितित्वे व्यतिरेक्यनुमितित्वे च परस्परव्यावृत्तानु-मितित्वव्याप्यजातौ तादृशपरामर्शाव्यवहितोत्तरानुमितित्वे वेति भावः। ननु तथापि सामान्यसामग्रीमर्य्यादया सामान्यकार्य्यापत्ति-र्दुर्वारैवेत्यत आह, 'विशेषेति, 'अन्वयीति अन्वय्यनुमिति-व्यतिरे-क्यनुमितिरूपविशेषद्वयेत्यर्थः, 'नास्त्येवेति, अतिप्रसङ्गस्थल इति शेषः[१]।

---

(१) दीधितिकृत् नास्त्येवेत्यन्तं केवलव्यतिरेकिमूलं व्याख्याय अवयवादि-हेत्वाभासान्तं मूलं व्याख्यातवानिति।

पक्षं, न वा पक्षत्वं, न वा लिङ्गजन्यसाध्यविशिष्टतज्ज्ञानं तेषां साध्यज्ञानजन्यत्वात्। अथ साध्यं प्रसिद्धं तदा यत्र प्रसिद्धं तत्र हेतोरवगमेऽन्वयित्वं अनवगमे असाधारण्यम्। किञ्च इतरभेदो न स्वरूपं अधिकरण-प्रतियोगिनोः पृथिवी-जलाद्योरनुमानात् प्रागेव सिद्धेः। नापि वैधर्म्यं जलादिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं,

'नन्विति, 'साध्यं' साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यं, 'न वा पक्षत्व-मिति तस्य साध्यसन्देहरूपत्वात् साध्यसिषाधयिषाघटितत्वाद्वेति भावः। 'साध्यविशिष्टतज्ज्ञानमिति साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नविशिष्ट-तज्ज्ञानमित्यर्थः, 'साध्यज्ञानेति साध्यतावच्छेदकप्रकारकसाध्यज्ञाने-त्यर्थः। न च प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिज्ञानस्याभावधी-हेतुतया साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यप्रसिद्धिं विना व्यतिरेकज्ञाना-सम्भवेऽपीतरभेदस्य च खण्डशः प्रसिद्धिसत्त्वेन विशेष्ये विशेषणमिति रीत्या साध्यतावच्छेदकप्रकारकसाध्यविशिष्टज्ञानसम्भवइति वाच्यम्। साध्यतावच्छेदकरूपेण साध्यज्ञानं विना तेन रूपेण साध्यप्रकारका-नुमितिर्न जायत इति सर्व्वानुभवसिद्धत्वात्। अत एव साध्यताव-च्छेदकरूपेण साध्यप्रकारकानुमितेर्विशिष्टनिरूपितवैशिष्ट्यविषयता-शालितानियम इति सिद्धान्त इति भावः। 'अन्वयित्वमिति अन्वय-सहचारज्ञानादेव व्याप्तिज्ञानमित्यर्थः, किं गुरुतरव्यतिरेकसहचार-ज्ञानस्य हेतुत्वेनेति भावः। इदमुपलक्षणं प्रागुक्तव्यतिरेकलक्षणस्या-प्यसम्भव इत्यपि बोध्यं। ननु अनवगमेऽपि वस्तुगत्या नासाधारण्यं

तद्धि पृथिवीत्वादिकं तच्च सिद्धमेव। न च जलादि-निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेन पृथिवीत्वं न सिद्धमिति वाच्यं। जलादौ पृथिवीत्वात्यन्ताभावग्रहदशायां पृथिवीत्वेऽपि तत्प्रतियोगित्वग्रहात्। अन्योन्याभावस्तु भेदोयद्यपि साध्यं सम्भवति वैधर्म्यग्रानसाध्यत्वादन्योन्याभावग्रहस्य, तथापि जलादिप्रतियोगिकान्योन्याभावस्याप्रसिद्धिः। न च जलादिप्रत्येकान्योन्या-

---

किन्तु तद्ग्रह एवेत्यखरसादाह, 'किञ्चेति, 'स्वरूपं' अधिकरण-प्रतियोगिनोः स्वरूपं, 'प्रागेव सिद्धेरिति। इदमापाततः स्वरूप-सिद्धावपि इतरभेदत्वेन पृथिव्यां तदसिद्धेः, वस्तुतोऽनुगतधीबलात् अन्योन्याभावस्यातिरिक्तस्यावश्यकत्वे तत एव प्रतीति-व्यवहारयो-रुपपत्तेश्च स्वरूपस्याभेदत्वकल्पने गौरवान्मानाभावाच्चेत्येव तत्त्वं, 'वैधर्म्यमित्यस्यैव विवरणं 'जलादीति, 'तद्धीति तादृशप्रतियोगित्वं हीत्यर्थः, प्रतियोगित्वस्य प्रतियोगिरूपत्वादिति भावः। 'जलादा-विति, व्यतिरेकव्याप्तिग्रहार्थं तस्यावश्यकत्वादिति भावः। ननु अन्यो-न्याभावरूपो भेदः साध्य इत्यत आह, 'अन्योन्याभावस्त्विति, 'वैध-र्म्येति, प्रकृते च पृथिवीत्वमेव वैधर्म्यमिति भावः। 'तथापीति जलादिप्रतियोगिकपृथिवीतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकसामान्यान्यो-न्याभावस्याप्रसिद्धिरित्यर्थः। 'जलादिप्रत्येकेति जलत्वाद्यवच्छिन्नप्रति-योगिकेत्यर्थः, 'असाधारण्येति अन्नभेदवत्तया निश्चिते वाय्वादौ

भावः साध्यः, असाधारण्यप्रसङ्गात्। अथ पृथिवी तेजोभिन्ना न वेति संशयेन तेजोभिन्नत्वेऽवगते पृथिवी तेजोभिन्ना सती जलादित्रयोदशभिन्ना न वेति संशये तेजोभिन्नत्वे सति जलादित्रयोदशभिन्नत्वं प्रसिद्धं तदेव साध्यम् एकविशेषणविशिष्टे विशेषणान्तर-बुद्धेरेव विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानत्वात्, एवञ्च संशयप्रसिद्धं साध्यमादाय व्यतिरेकादिनिरूपणम्। यद्वा पृथिवी

---

पृथिवीत्वस्यावर्त्तमानत्वादिति भावः। क्वचित्तु 'अतिप्रसङ्गादिति पाठः तत्र वाय्वादावतिप्रसक्तत्वादित्यर्थः, तथाचासाधारण्यमिति भावः। 'तेजोभिन्ना न वेति तेजोभिन्नत्वस्य जलादौ प्रसिद्धमिति भावः। 'तेजोभिन्नत्वेऽवगते' तेजोभिन्नत्वप्रकारेण पृथिव्यामवगतायामित्यर्थः, एतेनाग्रिमसंशयोपयुक्तधर्मितावच्छेदकविशिष्टधर्मिज्ञानं सम्पादितं। 'पृथिवी तेजोभिन्नेति तेजोभिन्ना पृथिवी जलादित्रयोदशभेदवती न वेत्यर्थः, अत्र त्रयोदश भेदाः कोटयः, 'जलादिभिन्नत्वमिति जलादित्रयोदशभिन्नत्वमित्यर्थः[१]। ननु तेजोभिन्नत्वविशिष्टजलादि-त्रयोदशभिन्नत्वं कथमुक्तसंशयेन प्रसिद्धं तेन विशृङ्खलस्य तेजोभिन्न-त्वस्य जलादित्रयोदशभिन्नत्वस्य चावगाहनेऽपि विशिष्टस्य पूर्वमप्रसिद्धे-रित्यत आह, 'एकेति, तथाचोक्तसंशयस्यापि विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञान-

---

(१) 'जलादित्रयोदशभिन्नत्वं' इत्यत्र 'जलादिभिन्नत्वं' इति कस्यचिन्मूल-पुस्तकस्य पाठमनुसृत्य ईदृशव्याख्यानं कृतं रहस्यकृतेति सम्भाव्यते।

जलभिन्ना न वेत्यादि प्रत्येकं त्रयोदशसंशयविषयाणां त्रयोदशान्योन्याभावानां समुदायः पृथिव्यामवगतो व्यतिरेकादिनिरूपकः। न चैवं पृथिव्यामेव साध्यप्रसिद्धेर्व्यतिरेकिवैयर्थ्यं, साध्यनिश्चयार्थं व्यतिरेकिप्रवृत्तेः। न चासाधारण्यं, समुदितान्योन्याभावानां

---

रूपतया विशेष्यतावच्छेदकीभूतं तेजोभिन्नत्वं सामानाधिकरण्यसंसर्गेण विधेये जलादिद्वादशभिन्नत्वे प्रकारीभूय भासते विशिष्टवैशिष्ट्यबोधे विशेष्यतावच्छेदकस्य सामानाधिकरण्यसंसर्गेण विधेये प्रकारत्वनियमादिति भावः। 'व्यतिरेकादीति, 'आदिना पक्षे साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यवैशिष्ट्यस्य परिग्रहः, तदिदं तेजोभिन्नत्वविशिष्टजलादिद्वादशभेदाः साध्या इत्यभिप्रेत्योक्तं। तेजोभिन्नत्वविशिष्टजलभेदः तद्विशिष्टो वायुभेद इति क्रमेण परस्परविशिष्टभेदः साध्यइत्यभिप्रेत्याह, 'यद्वेति, 'पृथिवी जलभिन्ना न वेत्यादीति[१] आदौ पृथिवी जलभिन्ना न वेति संशयः, ततो जलभिन्ना पृथिवी तेजोभिन्ना न वेति संशयेन जलभिन्नत्वविशिष्टतेजोभिन्नत्वे प्रसिद्धे जलभिन्नत्वविशिष्टतेजोभेदवती पृथिवी वायुभेदवती न वेति संशयइति क्रमेण त्रयोदशसंशयविषयेत्यर्थः, 'समुदाय इति, 'समुदायः'

---

(१) अस्मत्संगृहीतेषु त्रिषु मूलपुस्तकेषु पुस्तकद्वये 'पृथिवी जलभिन्ना' इत्यत्र 'पृथिवी इतरभिन्ना' इति पाठोवर्त्तते परन्त्वयं मथुरानाथधृतमूलपाठविरुद्धत्वात् न समीचीनः।

साध्यत्वे सपक्षाभावादिति चेत्। न। साध्यनिश्चये हि साध्यव्यतिरेकनिश्चयोभवत्येव साध्यसन्देहे तद्व्यतिरेक-संशयस्य वज्रलेपत्वात् तथाच संशयरूपा-साध्यसिद्धि-रिति शिष्यबन्धनम्। एतेन पृथिवी जलादिभ्योभि-न्नेति विप्रतिपत्तिरूपवादिवाक्यादाकाङ्क्षादिमतोऽ-

---

ऐकाधिकरण्यं, ऐकाधिकरण्यविशिष्टत्रयोदशान्योन्याभावा इत्यन्वयः, 'पृथिव्यामवगत इति पृथिव्यां प्रसिद्धाः सन्तो व्यतिरेकादिनिरू-पका इत्यर्थः। 'साध्यनिश्चयार्थमिति, पृथिव्यां साध्यप्रसिद्धेः संशय-रूपत्वादिति भावः। 'समुदितेति ऐकाधिकरण्यावच्छिन्नेत्यर्थः, 'तद्व्यतिरेकसंशयस्येति, तथाच जलादावपि साध्यव्यतिरेकसन्देहात् कथं तत्र व्यतिरेकव्याप्तिनिश्चयः स्यादिति भावः। इदमापाततः पृथिव्यां साध्यसन्देहसत्त्वेन तत्र व्यतिरेकनिश्चयासम्भवेऽपि जलादौ तद्व्यतिरेकनिश्चये बाधकाभावात्, न ह्येकत्र सन्देहे सर्वत्र सन्देहः, पृथिव्यां रूपादिसन्देहेऽपि वायौ तदभावनिश्चयस्यानुभविकत्वात् जले जलभेदाभावग्रहसत्त्वेन विशेषदर्शनसत्त्वाच्च एकदेशविरहनिश्चयस्यापि समुदायसंशयविरोधित्वात्। न च प्रतियोगिसत्तानिश्चयस्याभाव-निश्चयहेतुत्वात् कथं जले तद्व्यतिरेकनिश्चय इति वाच्यम्। तादृश-कार्य्य-कारणभावान्तरे मानाभावात् लाघवेन प्रतियोगितावच्छेदक-निश्चयमात्रस्याभावप्रत्यक्षहेतुत्वात्। अथ जलादौ साध्याभावनिश्चयः कथं स्यात् मनोभेदस्यापि प्रविष्टत्वेनायोग्यतया प्रत्यक्षासम्भवात्।

पूर्व्वार्थप्रतिपादकात् साध्यप्रसिद्धिरिति परास्तम्। वाक्यादेव पृथिव्यां साध्यसिद्धेर्व्यतिरेकिवैयर्थ्यात्। न च तद्बुद्धौ वादिवाक्यजन्यत्वेनाप्रामाण्यसंशयात् निश्चयेऽपि संशय इति तन्निश्चयार्थं व्यतिरेकीति वाच्यं।

---

न च जलं तेजोभिन्नत्वविशिष्टजलादिद्वादशभेदाभाववत् जलभेदाभाववत्त्वादित्यनुमानात् तत्सिद्धिरिति वाच्यम्। एतस्यापि व्यतिरेकरूपत्वेन तादृशद्वादशभेदाभावाभावस्य साध्यनिश्चितत्वेन व्यतिरेकव्याप्तिनिश्चयासम्भवादिति चेत्। न। साध्याभावोपस्थितिजलेन्द्रियसन्निकर्षयोः सत्त्वेनोपनीतनिश्चये बाधकाभावादिति। वस्तुतस्तु पृथिवी तेजोभिन्ना न वेति संशयानन्तरं तेजोभिन्ना पृथिवी जलादिद्वादशभिन्ना न वेति संशयो हि तेजोभिन्नत्वांशे संशयाकार एव भविष्यति संशयसामग्रीसत्त्वात् तथाचापसिद्धान्तः धर्मितावच्छेदकांशे संशयाकारसंशयस्यास्माभिरनङ्गीकारात्। अत एव धर्मिणि धर्मितावच्छेदकप्रकारकनिश्चयो गुरुरपि प्राचीनैः संशये हेतुरुच्यते।

किञ्च विशिष्टवैशिष्ट्यबोधे विशेष्यतावच्छेदकं सामानाधिकरण्यसंसर्गेण विधेये प्रकारीभूय भासते इत्यत्र मानाभावः। किन्तु विशेष्यतावच्छेदकविशिष्टे विधेयवैशिष्ट्यमात्रं तद्विषयः तथाच कथमुक्तसंशयेन साध्यतावच्छेदकप्रकारेण विशिष्टसाध्यप्रसिद्धिरित्येव दूषणं सारं। 'एतेनेति, 'जलादिभ्योभिन्नेतीति, 'विप्रतिपत्तिरूपेति

तर्हि संशयप्रसिद्धं साध्यं तस्य च न व्यतिरेकनिश्चाय-कत्वमित्युक्तत्वात् स्वार्थानुमाने तदभावाच्च।

इति श्रीगङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे केवलव्यतिरेक्यनुमानपूर्व्वपक्षः।

---

प्रतिवाद्यभिमतसाध्यविरोधिकोटिप्रतिपादकेत्यर्थः, 'वादिवाक्यादिति वाद्युक्तप्रतिज्ञावाक्यादित्यर्थः, 'अपूर्वार्थप्रतिपादकादिति पूर्वाप्रतीतस्यापि विशिष्टार्थस्य विशिष्ये विशेषणमिति रीत्या प्रतिपादकादित्यर्थः, 'व्यतिरेकिवैयर्थ्यादिति व्यतिरेकिणो व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानस्य तत्रानुमितिजनकत्वाभ्युपगमवैयर्थ्यादित्यर्थः, 'संशयः' तदुत्तरं संशयः स्यादित्यर्थः, 'तन्निश्चयार्थं' अगृहीताप्रमाण्यकतन्निश्चयार्थं, 'व्यतिरेकी' व्यतिरेकिणो यथोक्तव्याप्तिज्ञानस्य तत्रानुमितिजनकत्वाभ्युपगमः। 'संशयप्रसिद्धमिति अप्रामाण्यसंशयाक्रान्तनिश्चयविषयीभूतमित्यर्थः, 'तस्य च' तादृशनिश्चयस्य च, 'उक्तत्वात्' सकलप्रामाणिकैरुक्तत्वात्, 'तदभावाच्चेति वादिवाक्यात् साध्यप्रसिद्धेरसम्भवाच्चेत्यर्थः,।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये केवलव्यतिरेक्यनुमानपूर्व्वपक्षरहस्यं।

## अथ केवलव्यतिरेक्यनुमानसिद्धान्तः।

उच्यते घटादावेवेतरसकलभेदस्य प्रत्यक्षतः प्रसिद्धिः घटो न जलादिरितिप्रतीतेः। नन्वयमन्योन्याभावो न

---

## अथ केवलव्यतिरेक्यनुमानसिद्धान्तरहस्यं।

'इतरसकलभेदस्येति पृथिवीतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्येत्यर्थः, 'न जलादिरिति न पृथिवीतर इत्यर्थः। यद्यपि पृथिवीतरत्वस्य पृथिवीसामान्यभेदरूपस्य भेदविशेषणतया अतीन्द्रियपृथिवीघटितत्वात्तदवच्छिन्नान्योन्याभावोघटादौ कथं लौकिकप्रत्यक्षगम्यः अन्यथा गुरुतरघटान्योन्याभावोऽपि लौकिकप्रत्यक्षगम्यः स्यात्(१)। तथापि स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन पृथिवीत्ववद्भेद एव पृथिवीतरत्वं तत्र च पृथिव्या न प्रवेश इति भावः। इदमुपलक्षणं पृथिवीतरत्वरूपेण पृथिवीतरस्य भेदत्वरूपेण भेदस्य च खण्डशः प्रसिद्धत्वेन विशेष्ये विशेषणमिति न्यायेन पृथिवीतरभेद इति निरधिकरणकसिद्धिसम्भव इत्यपि बोध्यं। अयोग्यधर्मानवच्छिन्नयोग्यमात्रवृत्तिप्रतियोगिताकत्वमभावप्रत्यक्षे तन्त्रमिति प्राचीनमते

---

(१) तथाच यथा गुरुतरघटान्योन्याभावस्य अतीन्द्रियगुरुत्वघटितत्वेन न प्रत्यक्षं तथा पृथिवीतरभेदस्यापि अतीन्द्रियपृथिवीघटितत्वेन न नप्रत्यक्षमित्याशयः।

प्रत्यक्षः अतीन्द्रियप्रतियोगिकाभावत्वात् परमाणुसंसर्गाभाववत् योग्यानुपलब्धेरभावग्राहकत्वात् नयनो-

---

शङ्कते, 'नन्विति, 'अतीन्द्रियप्रतियोगिकाभावत्वादिति, अतीन्द्रियप्रतियोगिकत्वेन पृथिवीतरत्वस्यापि अतीन्द्रियतया अतीन्द्रियधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वाच्चेत्यपि द्रष्टव्यं, 'परमाणुसंसर्गाभाववदिति, परमान्वन्योन्याभाववच्चेत्यपि बोध्यं। ननु परमाणुसंसर्गाभावादेरपि घटादौ न कथं लौकिकाध्यक्षगम्यत्वं तच्च तदधिकरणविशेष्यक-प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धसंसर्गक-प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिसत्त्वोपलम्भसामान्याभावस्यैव तत्तदधिकरणेऽभावग्राहकत्वात्तस्य च तत्रापि सम्भवादित्यत आह, 'योग्यानुपलब्धेरिति तत्तदिन्द्रिययोग्यतासहिताया एव निरुक्तानुपलब्धेस्तत्तदिन्द्रियजाभावलौकिकप्रत्यक्षजनकत्वादित्यर्थः, तत्तदिन्द्रिययोग्यधर्मावच्छिन्नतत्तदिन्द्रिययोग्यमात्रवृत्तिप्रतियोगिताकाभावत्वमेव चाभावस्य तत्तदिन्द्रिययोग्यत्वं, तच्च विषयनिष्ठतया अभावत्वावच्छिन्नलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषादिरूपतत्तदिन्द्रियजाभावप्रत्यक्षोत्पत्तौ हेतुः परमानुसंसर्गाभावादेः प्रत्यक्षानुत्पत्त्या तथैव कल्पनात्। गुरुतरत्वविशिष्टघटत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकगुरुतरघटाभावादेः चाक्षुषादिलौकिकसाक्षात्कारवारणाय अवच्छिन्नान्तं प्रतियोगिताविशेषणं, घटत्वत्व-पटत्वत्वादेः प्रतियोगितावच्छेदकधर्मस्यातीन्द्रियतया(१)

---

(१) घटत्वत्वं घटेतरावृत्तित्वे सति सकलघटवृत्तित्वं तस्य च घटेतरान्तर्गतपरमान्वाकाशादिरूपातीन्द्रियघटिततया अतीन्द्रियत्वमिति तात्पर्य्यं।

न्मीलनानन्तरं स्तम्भः पिशाचो न भवतीति प्रतीते-र्बाधकबलेन वायुर्व्वातीति वह्निलिङ्गग्रहोऽपक्षीणत्वादिति चेत्। न। योग्यानुपलम्भोऽधिकरणे प्रतियोगिमत्त्व-

---

गुरुतरघटाभावादिवत्तादृशधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकजात्यभावमा-त्रस्यैवाप्रत्यक्षत्वं सर्वसिद्धमेव दीधितिकृतापि पदार्थखण्डने तथा लिखनात् अन्यथा सिद्धान्तेऽप्यगतेः किन्तु[१] घटत्व-पटत्वादिजातीनां तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव एव लौकिकप्रत्यक्षगम्यः जात्यभावप्रत्यक्षत्वप्रतिपादकः प्राचां ग्रन्थोऽपि तादृशजात्यभावपरः[२] इत्यतो न तद्विरोधोऽपि[३]। जातिनिष्ठतत्तद्व्यक्तित्वञ्च[४] तादात्म्यसम्ब-न्धेन तत्तज्जातिरेवेति तद्योग्यमेव। तत्तद्गन्ध-तत्तद्रसवत्त्वाद्यव-च्छिन्नप्रतियोगिताक-तत्तद्द्रव्यव्यक्त्यभावस्य घ्राणज-रासनादिसाक्षात्-कारवारणाय वायौ रूपसामान्याभावस्य चाक्षुषसाक्षात्कारवारणाय[५]

---

(१) नन्वतीन्द्रियधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यातीन्द्रियत्वे घटत्वं नास्ति इत्यादि प्रत्यक्षप्रतीतेः का गतिरित्यत आह, किन्त्विति।

(२) तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्न-घटत्वादिजात्यभावाभिप्रेत इत्यर्थः।

(३) न प्राचीनग्रन्थविरोधोऽपीत्यर्थः।

(४) ननु घटत्वगततद्व्यक्तित्वं तत्तादात्म्यविशिष्टघटत्वत्वं अतस्तद्दोषतादव-स्थमित्यत आह, जातिनिष्ठेति।

(५) अनुद्भूतरूपस्य चक्षुर्योग्यत्वाभावात् रूपसामान्याभावस्य न चक्षु-र्योग्यमात्रवृत्तिप्रतियोगिताकत्वमिति तात्पर्य्यं।

विरोधी सोऽभावं ग्राहयति न तु योग्यानुपलब्धिमा-
त्रम् अध्यथा वायौ रूपाभावप्रतीतिवत् जलपरमाणौ

---

च वृत्त्यन्तं प्रतियोगिताविशेषणं, तत्तद्गन्धवत्त्व-तत्तद्रसवत्त्वाद्यवच्छिन्न-प्रतियोगिताकतत्तद्द्रव्यव्यक्त्यभावस्य चाक्षुषतावारणाय प्रथमं तत्त-त्पदं, द्वितीयतत्तत्पदञ्च तादृशस्यैवाभावस्य घ्राणज-रासनादिप्रत्यक्ष-तापत्तितादवस्थ्यवारणायेति भावः। नन्वेवं नयनोन्मीलनानन्तरं स्तम्भः पिशाचो न भवतीति प्रत्ययो न स्यादित्यत आह, 'नयनेति, 'लिङ्गग्रहोपक्षीणत्वादिति लिङ्गग्रहजन्यत्वादित्यर्थः, नयनोन्मीलना-नुविधानन्तु लिङ्गग्रहार्थमिति भावः। निरुक्तयोग्यत्वस्य व्यतिरेक-व्यभिचारान्न कारणत्वसम्भव इत्याह, 'योह्यनुपलम्भ इति, 'हि' यस्मात्, 'यः' देशः, 'अनुपलम्भः' प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध-संसर्गक-प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिमत्तानिश्चयाभाववि-शिष्टः, न विद्यते उपलम्भोयत्र इति व्युत्पत्तेः, 'अधिकरण इति निर्द्धारणे सप्तमी, तथाचाधिकरणेषु मध्ये निरुक्तनिश्चयाभाव-विशिष्टो योदेशः 'प्रतियोगिसत्त्वविरोधी' प्रतियोगितावच्छेदक-सम्बन्धसंसर्गकाधिकरणत्वसम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रति-योगिमत्तया आपादितसाक्षात्कारकः, 'सः' देशः, 'अभावं ग्राह-यति' अतीन्द्रियप्रतियोगिकस्याप्यभावस्य लौकिकसाक्षात्कारविषयो भवति, यथा योग्यद्रव्यवृत्तिगुण-कर्म-सामान्यादिकं रूपसामान्या-भावस्य, घटादिः स्नेहसामान्याभावस्य, तद्भूतरूपवान् परमाणुर्महत्त्व-सामान्याभावस्य, महान् वायुरुद्भूतरूपसामान्याभावस्य च लौकिक-

पृथिवीत्वाभावग्रहप्रसङ्गात् अधिकरणे प्रतियोगिसत्त्वञ्च तर्कितं यदि हि स्तम्भः पिशाचः स्यात् स्तम्भव-

---

प्रत्यक्षविषयः, अयं गुणादिर्यदि चक्षुःसंयुक्तमहत्त्ववदुद्भूतरूपवत्समवेतत्वे सति रूपवान् स्यात् चाक्षुषवान् स्यात्, घटो यदि महत्त्वोद्भूतरूपवत्त्वे चक्षुरादिसंयुक्तत्वे च सति स्नेहवान् स्यात् चाक्षुषवान् स्यात्, पृथिवीपरमाणुर्यदि उद्भूतरूपवत्त्वे चक्षुरादिसंयुक्तत्वे च सति महत्त्ववान् स्यात् चाक्षुषवान् स्यात्, महान्वायुर्यदि महत्त्वे सति चक्षुरादिसंयुक्तत्वे च सत्युद्भूतरूपवान् स्यात् चाक्षुषवान् स्यात्, इत्यापादने मूलशैथिल्यविरहादित्यर्थः, 'न त्विति तु शब्दः अतद्रत्यर्थे, नातो निरुक्तयोग्यतासहितैव निरुक्तानुपलब्धिरभावलौकिकप्रत्यक्षे कारणं व्यतिरेकव्यभिचारादित्यर्थः। ननु योग्यद्रव्यवृत्तिगुण-कर्म-सामान्यादिषु रूपसामान्याभावादीनां लौकिकप्रत्यक्षमेवासिद्धं परमाणुसंसर्गाभावलौकिकप्रत्यक्षवारणाय लाघवान्निरुक्तयोग्यताया एवाभावनिष्ठतया अभावलौकिकप्रत्यक्षकारणत्वकल्पनादन्यथा तत्र तेषां लौकिकप्रत्यक्षाभ्युपगमे मनोवाय्वादावपि तेषां लौकिकप्रत्यक्षापत्तिवारणाय यत्राधिकरणे तादृशापादनं न सम्भवति अनन्ततत्तदधिकरणभेदस्याधिकरणनिष्ठतया वक्ष्यमाणक्रमेण तत्तदभावलौकिकप्रत्यक्षकारणत्वकल्पने महागौरवापत्तिरित्यत आह, 'अन्यथेति निरुक्तयोग्यताया-एवाभावलौकिकप्रत्यक्षकारणत्वे इत्यर्थः, 'रूपाभावप्रतीतिवदिति, रूपाभावपदं महत्त्वसमानाधिकरणोद्भूतरूपाभावपरं घटादिवृत्तितत्तद्रूपाभावपरं वा, पूर्वपक्षिनये तस्यातीन्द्रियप्रतियोगिकत्वेनाप्रत्य-

दुपलभ्येत न पिशाचानुपलम्भः स्यात्। न च पृथिवी जलाद्भिद्यते जलावृत्तिधर्मवत्त्वात् तेजोवत् एवमन्ये-

---

ष्वत्वात् सिद्धान्तिनयेऽपि वायौ तत्प्रत्यक्षानभ्युपगमात्, 'पृथिवीत्वाभावप्रत्ययेति[१] तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपृथिवीत्वाभावलौकिकचाक्षुषप्रसङ्गादित्यर्थः, निरुक्तयोग्यतायास्तादृशपृथिवीत्वाभावे सत्त्वात्।

ननु परमाणौ पृथिवीत्वाभावलौकिकचाक्षुषः किं परमाण्वंशेऽलौकिकरूप आपाद्यते स्थूलजले पृथिवीत्वाभावेन समं लौकिकसन्निकर्षदशायां परमाण्वंशे उपनीतभानात्मकस्य पृथिवीत्वाभावलौकिकचाक्षुषस्येष्टत्वात्। न च परमाणुघटितचक्षुःसन्निकर्षेण पृथिवीत्वाभावलौकिकचाक्षुष आपाद्यते इति वाच्यं। चक्षुःसंयुक्तमहदुद्भूतरूपवद्विशेषणतायाः पृथिवीत्वाद्यभावग्राहकतया तद्घटितसन्निकर्षेण तच्चाक्षुषासम्भवात् परमाणुसन्निकर्षदशायां पृथिवीत्वशून्ययोग्यपदार्थान्तरसन्निकर्षस्यावश्यकतया तदानीं पृथिवीत्वाभावसाक्षात्कारस्यावश्यकत्वेन तत्र परमाणुघटितसन्निकर्षजन्यत्वाभावस्य शपथनिर्णेयत्वाच्चेति चेत्। न। परमाण्वाद्यंशे उपनीतभानात्मकोऽपि परमाण्वादिवैशिष्ट्यावगाहिपृथिवीत्वाद्यभावलौकिकचाक्षुषो न भवति इति सिद्धान्तात्, परमाणौ पृथिवीत्वाभावसाक्षात्कारो न भवति

---

(१) पृथिवीत्वाभावप्रत्ययप्रसङ्गादित्यपि कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठो मथुरानाथस्वरसेनानुमीयते।

भ्योऽपि भेदसिद्धौ द्वादशभिन्नेति विशेषणं दत्त्वा समवा-
यभेदसाधनादन्वयिन एव पृथिव्यां त्रयोदशभेदसिद्धि-

---

वायौ रूपसामान्याभावसाक्षात्कारो न भवतीत्यादिसकलप्रामाणिक-
सिद्धान्तप्रवादान्यथानुपपत्त्या तथैव सिद्धान्तस्य निर्णीतत्वादेवं सर्वत्र।
न चैवं सिद्धान्ते स्थूलजले पृथिवीत्वाभावप्रत्यक्षानन्तरं पृथिवीत्वा-
भावसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या पृथिवीत्वाभावप्रकारेण परमाणोश्चा-
क्षुषो न स्यात् इति वाच्यं। तत्र पृथिवीत्वाभावनिष्ठालौकिकप्रका-
रतानिरूपितविषयताया एव परमाणावभ्युपगमात् तन्निष्ठलौकिक-
प्रकारतानिरूपितविषयतायास्तु सन्निकृष्टस्थूलजलमात्रवृत्तित्वादिति
भावः। एतच्चोपलक्षणं निरुक्ततत्तदिन्द्रिययोग्यत्वं तत्तदिन्द्रियजन्य-
लौकिकसाक्षात्कारविषयत्वं तत्तदिन्द्रियजन्यलौकिकसाक्षात्काराप्र-
तिबन्धकत्वं वा, नाद्यः भूतलादौ घटादिसामान्याभावस्याप्यचाक्षुष-
तापत्तेः दैवात् त्वगादिमात्रगृहीतघटादिव्यक्तेरपि तत्प्रतियोगिकु-
क्षिनिक्षिप्तत्वात्। न द्वितीयः प्रतिबन्धकत्वाननुगमेनाननुगमताद-
वस्थ्यात् तत्तद्गन्धवत्त्व-तत्तद्रसवत्त्वावच्छिन्नतत्तद्द्रव्यव्यक्त्यभावस्यापि
घ्राणज-रासनादिप्रत्यक्षविषयतापत्तेः द्रव्यस्य घ्राणजादिप्रत्यक्षप्रतिब-
न्धकत्वे मानाभावात् गन्ध-तत्समवेतघ्राणजादिकं प्रति घ्राणसंयुक्त-
समवाय-घ्राणसंयुक्तसमवेतसमवायादेर्हेतुतयैव द्रव्यस्य घ्राणजप्रत्यक्षा-
पादनासम्भवात्। ननु समानेन्द्रियजन्य-प्रतियोगितावच्छेदकवि-
शिष्टप्रतियोग्याहार्य्यारोपस्याभावलौकिकप्रत्यक्षहेतुतया तदभावा-

रिति किं व्यतिरेकिणेति वाच्यं। जलादिभिन्ना सती समवायभिन्नेति बुद्धावपि त्रयोदशभिन्नेति बुद्धेर्व्यतिरे-

---

देव जलपरमाणौ न पृथिवीत्वाभावलौकिकप्रत्यक्षं परमाणोरयोग्य-तया तत्र चक्षुषा पृथिवीत्वारोपासम्भवादित्यत आह, 'अधिकरण-' इति जलपरमाणावित्यर्थः, 'प्रतियोगिसत्त्वञ्च' पृथिवीत्वाभावस्य प्रतियोगिसत्त्वञ्च पृथिवीत्वाभावस्य प्रतियोगिसत्वमपि, 'तर्कितं' विशेष्यतया सम्भवदाहार्य्यारोपकं। नन्वेवं तव नयेऽपि योग्या-धिकरणमादाय लौकिकसन्निकर्षदशायां उपनीतपरमाणुप्रका-रको न कुतः पृथिवीत्वाभावलौकिकचाक्षुषः, कुतो वा वायौ रूपं नास्ति वायौ स्नेहो नास्तीत्याद्युपनीतवायुप्रकारकोरूपसामा-न्याभाव-स्नेहसामान्याभावयोर्न लौकिकचाक्षुषः, कुतो वा परमाणौ महत्त्वं नास्तीति मनसि महत्त्वं नास्तीत्युपनीतपरमाणु-मनः-प्रकारको न महत्त्वाभावलौकिकचाक्षुषः, कुतो वा मनसि पवनीय-परमाणौ वा नोद्भूतरूपाभावस्य लौकिकचाक्षुषः, अभावानां योग्य-त्वात् अन्यथा अन्यत्रापि तल्लौकिकचाक्षुषानुपपत्तेः विना च कार-णाभावं कार्याभावानभ्युपगमात्। अथ यस्मिन्नधिकरणे पत्रवृत्ति-धर्मविशेषितेन प्रतियोगिग्राहकतावच्छेदकावच्छिन्नातिरिक्तविशेषि-तेन च तत्संसर्गकाधिकरणत्वसम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नत्वेन हेतुत्वात्त-दिन्द्रियजन्यसाक्षात्कारवत्त्वमापादयितुं शक्यते तदधिकरण एव तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्धेन तदिन्द्रियजन्यतादृशाभावप्रत्यक्षमुत्पद्यते न तु अन्यत्राधिकरण इति

किसाध्यत्वात्। न च घटस्यापि पक्षत्वादंशतः सिद्धसा-
धनं, सर्व्वा पृथिवीतरभिन्नेत्युद्देश्यप्रतीतेरभावात्, पक्ष

---

नियमः, यत्राधिकरणे तादृशापादनादिकं न सम्भवति तत्तदधि-
करणभिन्नत्वस्वरूपस्याधिकरणयोग्यत्वस्याधिकरणनिष्ठतया तादृश-
विषयतासम्बन्धेन तत्तदिन्द्रियजन्य-तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नाभावप्रत्यक्षो-
त्पत्तौ हेतुत्वादित्यस्य परमाण्वादावेव तादृशपृथिवीत्वादिमत्त्वे च
चाक्षुषवत्त्वापादनासम्भवान्न तत्र चक्षुरादिना तदभावस्य योग्यस्यापि
ग्रहः, किन्तु योग्यजलादावेव तद्ग्रहः, घटादौ समवायसम्बन्धाव-
च्छिन्नप्रतियोगिताकस्नेहादिसामान्याभावस्तु चक्षुरादिना गृह्यत एव
घटो यदि चक्षुरादिसंयुक्तत्वे सति महत्त्वोद्भूतरूपवत्त्वे च सति
स्नेहवान् स्यात् चाक्षुषवान् स्यात् इत्यापादनस्य मूलशैथिल्यविर-
हात् व्यर्थविशेषणत्वेष्टापत्त्योः सम्भवेऽपि मूलशैथिल्यविरहादेवापाद-
नादियोग्यतानपायात् आपत्त्यादेः सर्वत्रासम्भवात् व्याप्त्यादिभ्रम-
जन्यापाद्यव्यतिरेकादिभ्रमजन्यापत्त्यादेरतिप्रसक्तत्वाच्च योग्यताया एव
यथोक्तनियमघटकत्वात् सा च प्रकृते व्याप्तिमात्रं, नन्विष्टापत्त्यादि-
विरहेऽपीति चेत्तर्हि चक्षुरादिना वाय्वादौ तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रति-
योगिताकस्तम्भत्वात्यन्ताभावप्रत्यक्षमपि न स्यात् वाय्वादौ स्तम्भत्व-
त्वेन साक्षात् साक्षात्कारवत्त्वापादानासम्भवात् गृहादिधारकस्यैव
स्तम्भपदवाच्यतया चक्षुःसंयुक्तत्वे पिशाचात्मकस्तम्भे मूलशैथिल्यादि-
त्यतआह, 'यदि' इति, 'स्तम्भः पिशाचः स्यात्' चक्षुःसंयुक्तः कश्चित्
पिशाचः स्तम्भः स्यात्, 'स्तम्भवदुपलभ्येतेति सोऽपि पिशाचः पिशाच-

तावच्छेदकनानात्वे हि तत्, अतएवानित्ये वाङ्मनसे इत्यत्रानित्या वागितिबुद्धेरुद्देश्यांशः सिद्धत्वादंशतः

---

स्तम्भान्तरवच्चाक्षुषः स्यादित्यर्थः, स्तम्भत्वस्य महत्त्वोद्भूतरूपवत्त्वनियतत्वादिति भावः। 'न पिशाचानुपलम्भः स्यात्' न सर्व्वः पिशाचोलौकिकसाक्षात्काराविषयः स्यात्, पिशाचत्वं लौकिकसाक्षात्काराविषयत्वव्याप्यं न स्यादिति यावत्, तथाच पिशाचत्वस्य लौकिकसाक्षात्काराविषयत्वव्याप्यत्वान्यथानुपपत्त्या स्तम्भत्वं न पिशाचवृत्तीति यथोक्तनियमे न किमपि बाधकमिति भावः। वस्तुतस्तु पनसाम्रादिस्तम्भसाधारणस्य स्तम्भत्वस्य पिशाचवृत्तित्वे पनसत्वाम्रत्व-पिशाचत्वमादाय साङ्कर्य्यापत्तेः किन्तु स्तम्भत्वं आम्रत्व-पनसत्वादिव्याप्यं नाना, तच्च न पिशाचवृत्ति पिशाचोऽपि यदि स्तम्भस्तदा तद्व्याप्यस्तम्भत्वं पिशाचत्ववदतीन्द्रियमेव तदत्यन्ताभावो न क्वापि लौकिकाध्यक्षगम्यइति यथोक्तनियमे न किमपि बाधकं इत्येव तत्त्वं। यथोक्तनियमस्य प्रवृत्त्यवयवव्यावृत्तिरस्मत्कृते सिद्धान्तरहस्ये अभावग्राहकयोग्यताविचारे अनुसन्धेया। 'द्वादशभिन्नेति विशेषणमिति द्वादशभेदान्यत्वे विशेषणीकृत्येत्यर्थः, 'समवायभेदसाधनादिति समवायावृत्तिधर्मवत्त्वादिरूपसमवायभेदसाधकाद्धेतोरित्यर्थः, 'अन्वयिन एवेति अन्वयसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानादेवेत्यर्थः, 'भेदसिद्धिरिति, अस्त्विति शेषः, 'किं व्यतिरेकिणेतीति किं व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानस्यानुमितिकरणत्वेनेत्यर्थः। 'जलादिभिन्ना सतीति, विशिष्टाधिकरणकवैशिष्ट्यबुद्धौ सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन विशेष्यतावच्छेदकस्य

सिद्धसाधनम्, अन्यथानुमानमात्रोच्छेदात् पक्षस्य सिद्धस्यैव साध्यत्वात्। न च घटः कथं पक्षः साध्यनिश्चयेन

---

विधेये प्रकारत्वादित्यभिमानः, 'त्रयोदशभिन्नेतीति पृथिवीतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिकभेदप्रकारकबुद्धेरित्यर्थः, 'व्यतिरेकिसाध्यत्वात्' व्यतिरेकिण एव साध्यत्वात्, एवकाराद्यथोक्तहेतुकान्वयिव्यवच्छेदः। 'सर्वा पृथिवीति, पृथिवीत्वस्यावच्छेदकत्वस्फोरणाय सर्वपदं, 'इत्युद्देश्यप्रतीतेः' इत्याकारकफलीभूतानुमितिसमानाकारप्रतीतेः, पृथिवीत्वावच्छेदेन पृथिवीत्वधर्मितावच्छेदकक-पृथिवीतरभेदप्रकारकप्रतीतेरिति यावत्, तथाच तद्धर्मावच्छेदेन यद्धर्मधर्मितावच्छेदककानुमितिं प्रति तद्धर्मावच्छेदेन तद्धर्मधर्मितावच्छेदककसिद्धेरेव प्रतिबन्धकतया घटत्वावच्छेदेन घटे सिद्धिसत्त्वेऽपि पृथिवीत्वावच्छेदेन पृथिवीत्वधर्मितावच्छेदककानुमितौ अविरोध इति भावः। ननु तद्धर्मावच्छेदेन तद्धर्मावच्छिन्नविशेष्यकानुमितिं प्रति तदन्यधर्मावच्छेदेन तदन्यधर्मावच्छिन्नस्वसमानविशेष्यताकसिद्धिरपि प्रतिबन्धिका अनित्ये वाङ्मनसे वाङ्मनोऽन्यतरत्वादित्यादौ वाक्यतावच्छेदेन वाक्यत्वावच्छिन्नविशेष्यकसिद्धेरपि मनस्त्वावच्छेदेन मनस्त्वावच्छिन्नविशेष्यकसमूहालम्बनानुमितिप्रतिबन्धकत्वात् तथाच घटत्वावच्छेदेन घटत्वावच्छिन्नविशेष्यकसिद्धिसत्त्वे पृथिवीत्वावच्छेदेन पृथिवीत्वरूपेण घटे कथमनुमितिरित्यत आह, 'पक्षतावच्छेदकनानात्वेऽपीति तद्धर्मावच्छेदेन तद्धर्मावच्छिन्नविशेष्यकत्वे सति तदन्यधर्मा-

संशय-सिषाधयिषयोरभावादिति वाच्यं। सर्व्वा पृथिवी इतरभिन्ना न वेति संशयस्य तत्प्रकारकसिषाधयिषायाश्च सामान्यतोघटविषयत्वात् घटत्वेन विशेषदर्शनं सिद्धिर्वा अतस्तेन रूपेण संशय-सिषाधयिषे न स्तः पृथिवीत्वेन ते भवतः एव धूमवान् वह्निमानिति धूमवत्त्वेन वह्निनिश्चयेऽपि पर्व्वते वह्निसंशयवत्, यद्वा सर्व्वत्वेन

---

वच्छेदेन तदन्यधर्मावच्छिन्नविशेष्यकानुमितौ ह्रीत्यर्थः, 'तत्' तदन्यधर्मावच्छेदेन तदन्यधर्मावच्छिन्नस्वसमानविशेष्यकसिद्धेः प्रतिबन्धकत्वं, 'उद्देश्यायाः' उद्देश्यानुमितिविशेष्यतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यिकायाः, उद्देश्यानुमितिश्च मनस्त्वावच्छिन्नविशेष्यकसमूहालम्बनानुमितिः, 'सिद्धत्वात्' सत्त्वात्, 'अंशतः सिद्धसाधनं' अंशतः सिद्धेरेवोपधायकं साधनं, वाक्यत्व-मनस्त्वावच्छिन्नविशेष्यकसमूहालम्बनानुमितेरनुपधायकं साधनमिति यावत्। ननु लाघवात्तद्धर्मिकसिद्धित्वेनैव तद्धर्मिकानुमितिसामान्यं प्रति प्रतिबन्धकता धर्मिविशेषान्तर्भावस्यावश्यकत्वादित्यत आह, 'अन्यथेति यदि तद्धर्मिकसिद्धित्वेनैव तद्धर्मिकानुमितिसामान्यं प्रति विरोधित्वं तदेत्यर्थः, 'अनुमानमात्रेति हेतु-साध्यसहचारघटकतया अधिकरणत्वरूपेण निखिलसाध्याधिकरणे साध्यवत्त्वविषयकव्याप्तिज्ञानजन्यानुमितिमात्रोच्छेदापातादित्यर्थः, 'पचस्येति सप्तम्यर्थे षष्ठी, 'सिद्धस्यैव' सहचारघटकतया निश्चितस्यैव, 'साध्यत्वात्' तादृशानुमितौ विधेयत्वात्। 'न चेति,

रूपेण न पक्षता सर्व्वैषामविप्रतिपत्तेः घटाद्येकदेशे इतरभेदस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् तथाचैकदेशे विप्रतिपत्तौ सामान्ये इतरभेदसाधने अर्थान्तरं, किन्तु सामान्येन पृथिवीत्वेन यावदेव विप्रतिपत्तिविषयस्तावतामेव पक्षता विशेष्याननुगमात्। तर्हि पृथिवी इतरभिन्ना पृथिवीत्वाद्घटवदित्यन्वयिनैवेतरभेदस्य सिद्धत्वात् किं

---

सन्देह-सिषाधयिषयोरन्यतरस्य पक्षतात्ववादिनां प्राचां नय इति शेषः, 'पक्षः' अनुमित्युद्देश्यः। 'सर्वा पृथिवीति सकलपृथिव्या विशेष्यत्वस्फोरणाय सर्वपदं, पृथिवीत्वरूपेण सकलपृथिवीविशेष्यकेतरभेदसंशयस्येत्यर्थः, 'तत्प्रकारकेति पृथिवीत्वावच्छिन्नसकलपृथिवीविशेष्यकसिद्धित्वप्रकारकसिषाधयिषायास्येत्यर्थः, 'सामान्यतः' पृथिवीत्वरूपेण, ननु घटे विशेषदर्शन-सिद्धिसत्त्वेन कथं संशय-सिषाधयिषयोस्तद्विषयत्वं ज्ञानादेः स्वरूपसत एव स्वविषयकेच्छाविरोधित्वादित्यत आह, 'घटत्वेनेति, 'सिद्धिर्वेति, 'अत इति, 'पर्वते' पर्वतत्वविशिष्टे, इदमुपलक्षणं प्रत्यक्षतः सिद्धिसत्त्वेऽपि अनुमितित्वादिरूपेण संशय-सिषाधयिषयोर्बाधकाभावाच्च, समानधर्मिकनिश्चयस्यैव संशयविरोधित्वमते समाधत्ते, 'यद्वेति, 'सर्वत्वेनेति तस्याः पृथिव्या न पक्षतेत्यर्थः, 'अविप्रतिपत्तेः' असंशयात्, 'विप्रतिपत्तौ' संशये, 'सामान्य इति, सन्देहाविशिष्येऽपीति शेषः, 'इतरभेदसाधने' इतरभेदानुमित्यभ्युपगमे, 'अर्थान्तरं' सिद्धान्तान्तरं, अपसिद्धान्त इति यावत्,

व्यतिरेकिणा, घटसाधारणपक्षत्वेऽप्यभेदानुमानवत् पक्षस्यापि दृष्टान्तत्वाविरोधात् पक्षान्यत्वं हि तत्तन्त्रं, किन्तु साध्यवत्तया निश्चितत्वं प्रयोजकं। न च पृथिवीत्वाग्रहे पूर्व्वं गृहीतं यत्र साध्यं पश्चात् स्मर्य्यते तत्र हेतु-साध्यसामानाधिकरण्याग्रहाद्व्यतिरेक्यवतार इति वाच्यं। हेतोरेव पक्षतावच्छेदकत्वेन घटे पृथिवीत्वग्रहदशायामितरभेदसामानाधिकरण्यग्रहावश्यम्भा-

---

तद्धर्मिकानुमितौ तद्धर्मिकसंशयस्यैव प्राचीनमते पक्षतात्वादिति भावः। 'अविप्रतिपत्तेरिति यथाश्रुतन्तु न संगच्छते स्वार्थानुमाने विप्रतिपत्त्यभावेन विप्रतिपत्त्यभावस्य पक्षताभावाप्रयोजकत्वात्। 'सामान्येति सकलपृथिवीनिष्ठेनेत्यर्थः, 'विप्रतिपत्तिविषयः' संशयविषयः, 'पक्षता' पृथिवीत्वावच्छेदेन पृथिवीत्वेनानुमित्युद्देश्यता, 'अननुगमादिति सर्व्वत्रेतरभेदस्यानिश्चयादित्यर्थः। शङ्कते 'तर्हीत्यादिना 'चेदित्यन्तेन, 'किं व्यतिरेकिणेति किं व्यतिरेकव्याप्त्युपन्यासेनेत्यर्थः, अत एवाग्रे व्याप्त्युपन्यासस्येति संगच्छते, पूर्व्वमतेऽप्यनुमितित्वमुपपादयति, 'अभेदानुमानवदिति अयं घटः पूर्व्वानुभूतघटाभिन्नः तद्घटवृत्तिविलक्षणसंस्थानवत्त्वादित्यादिस्थैर्य्यसाधकाभेदानुमानवदित्यर्थः। 'पृथिवीत्वाग्रहइति यत्र स्थले पूर्व्वं गृहीतं साध्यं उद्बोधकमहिम्ना पृथिवीत्वाग्रहे पश्चात् स्मर्य्यते इत्यर्थः, साध्यस्य प्रत्यक्षतादशायां पृथिवीत्वस्यापि प्रत्यक्षमावश्यकमतः स्मरणपर्यन्तानुधावनं, 'व्यतिरेक्यवतारः' व्यतिरेकव्याप्त्युपन्यासः। 'घट-

वादिति चेत्, सत्यं, अन्वयितुल्यतया व्यतिरेकिणोऽपि सामर्थ्यादन्वयाप्रतिसन्धानदशायां व्यतिरेक्युपन्यासस्यापर्य्यनुयोज्यत्वात् तदुक्तं, आस्तां तावदयं सुहृदुपदेशः, केवलव्यतिरेकिलक्षणं तावन्निर्व्यूढम्। अथ वा जलादीनां त्रयोदशान्योन्याभावाः त्रयोदशसु प्रसिद्धाः पृथिव्यां साध्यन्ते, अत एवाकाशे व्यतिरेकिणा जलादिमिलितप्रतियोगिकान्योन्याभावाप्रतीतावपि त्रयोदशान्योन्याभावाः साध्या इति नान्वयित्वासाधारण्ये।

---

इति, इदञ्च घटसाधारणपक्षतादशायामित्युक्तं, अन्यथा तु अन्यस्मिन् पक्षे बोध्यं। 'पृथिवीत्वपक्षेति, पक्षतावच्छेदकप्रकारेण पक्षज्ञानस्यावश्यकत्वात् इति भावः। 'इतरभेदेति, तथाच पक्षस्यैव अन्वयिदृष्टान्तत्वं सम्भवतीति भावः। न च प्रत्यक्षतः पृथिवीत्वपक्षदशायामितरभेदपक्षो नावश्यकः प्रतियोगिज्ञानस्य तदा अभावादिति वाच्यं। व्यतिरेकव्याप्तिघटकत्वेन तज्ज्ञानस्य तदानीमावश्यकत्वादिति भावः। 'अन्वयितुल्यतयेति यथा अन्वयव्याप्तिज्ञानस्य व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानविरहस्थलेऽनुमितिजनकत्वमनुभवसिद्धं तथा अन्वयव्याप्तिज्ञानविरहस्थले व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यानुमितिजनकतया अनुभवसिद्धतयेत्यर्थः, 'अन्वयाप्रतिसन्धानेति अन्वयानुपन्यासदशायामित्यर्थः, तदुपन्यासदशायान्तु अधिकेन निग्रहात् पर्य्यनुयोगो भवत्येव इति भावः। 'अथमिति अन्वयिनैव इतरभेदसिद्धौ किं व्यतिरेक-

यद्वा जलं तेजःप्रभृतित्रयोदशभिन्नप्रतियोगिकान्योन्याभाववत् द्रव्यत्वात्तेजोवदित्यनुमानात्त्रयोदशभिन्नस्य सामान्यतः सिद्धौ पृथिव्यां त्रयोदशभिन्नत्वं साध्यं। न चान्वयित्वमसाधारण्यं वा, पक्षादन्यत्र साध्याप्रसिद्धेः। वस्तुगत्या पृथिव्यामेव साध्यसिद्धेः किं व्यतिरेकिणेति चेत्। न। पृथिवी त्रयोदशाभिन्नेति व्यतिरेकिणं विना अप्रतीतेः। नन्वेवं पृथिवी जलादित्रयोदशभिन्नप्रतियोगिकान्योन्याभाववती द्रव्यत्वादिति पृथिवीभिन्नतद्भिन्नादिसिद्धिः स्यादिति चेत्। न। अप्रयोजकत्वात् प्रकृते चानुभूयमानजलादिवैधर्म्यस्य पृथिवीत्वशब्दा-

---

व्याप्त्युपन्यासेनेति सुहृदुपदेश इत्यर्थः, एतदाशङ्काया असदुक्तिकत्वादिति भावः। 'केवलव्यतिरेकिलक्षणमिति केवलव्यतिरेकिस्वरूपमित्यर्थः, 'निर्व्यूढमिति, अन्वयाप्रतिसन्धानदशायामपि व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानादनुमितेरनुभवसिद्धत्वेन तस्यापि हेतुत्वादिति भावः। 'प्रसिद्धाः' प्रत्येकवैधर्म्यलिङ्गकानुमित्यादिना प्रसिद्धाः, 'पृथिव्यां साध्यन्त इति पृथिव्यां त्रयोदशत्वरूपेण साध्यन्ते इत्यर्थः, प्रत्येकरूपेण साध्यत्वे अपि 'नान्वयित्वासाधारण्ये' इत्यसङ्गतेः। न च त्रयोदशान्योन्याभावानां प्रातिस्विकरूपेण त्रयोदशप्रसिद्धत्वेऽपि साध्यतावच्छेदकत्रयोदशत्वप्रकारेण सिद्ध्यभावात् कथमनुमितिरिति वाच्यं। भिन्न-भिन्नाधिकरणस्थानामप्यभावानां त्रयोदशत्वादिना

श्रयत्वादेः[१]. अतिरिक्तं विनानुपपत्तेः। नन्वितरभेदो यद्यन्योन्याभावस्तदा भावाद्भेदो न सिद्ध्येत अभावस्याभावान्तराभावात्, यदि च तेन समं स्वरूपभेद एव साध्यः तदाननुगमादनुमानाप्रवृत्तिः, भावोऽभावो न भवतीत्यबाधितप्रतीतिबलादभावस्यापि अन्योन्याभावोऽस्तीति केचित्, तन्न, अपसिद्धान्तात्। अनतिप्रसक्ताधिकरणस्वरूपमात्रेणैवाभावप्रतीत्युपपत्तौ चाधिकाभावे मानाभावाच्च इति चेत्। न। इतरभावान्यो-

---

शानसम्भवात् भिन्नाधिकरणस्थघटयोर्द्वौ घटादिरिति प्रतीतिवत्, 'जलादिमिलितेति आकाशेतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावानुमित्यसम्भवेऽपीत्यर्थः, आकाशस्यैकव्यक्तित्वेन तत्रैकदेशे साध्यप्रसिद्ध्यसम्भवादिति भावः। त्रयोदशभेदानां त्रयोदशप्रत्येकं प्रसिद्धिमुक्त्वा एकत्रैव तेषां प्रसिद्धिमाह, 'जलमिति तेजःप्रभृतिद्वादशभिन्ननिष्ठभेदप्रतियोगीत्यर्थः, यथाश्रुते पृथिव्यां साधनीयस्य त्रयोदशभेदस्यास्मादसिद्धेः जलभेदस्यैवासिद्धत्वात्, इदञ्च प्रमाणान्तरेण पृथिव्यां द्वादशभिन्नत्वस्य प्रसिद्धिदशायां बोध्यं, 'त्रयोदशभिन्नत्वमिति त्रयोदशत्वरूपेणेत्यर्थः। प्रकृते 'वस्तुगत्येति, 'पृथिवी त्रयोदशभिन्नेतीति पृथिवी जलादित्रयोदशभिन्नेत्यर्थः। 'प्रकृते चेति 'यदा जलं' इत्यत्रेत्यर्थः, 'अनुभूयमानेति तेजःप्रभृतिद्वा-

---

(१) पृथिवीत्वाश्रय-शब्दाश्रयत्वादेरिति क०, ख०, ग०।

न्याभावस्य साध्यत्वात् । न चैवमभावादविवेकतादवस्थ्यं, तेन समं स्वरूपभेदस्यान्वयिना व्यतिरेकिणा वा साध्यत्वात् ।

अन्ये तु पृथिवीत्वभिन्नधर्म्मात्यन्ताभाव एव साध्यः जलत्वादिप्रतियोगिकास्तावन्तोऽत्यन्ताभावा वा तत्तदसाधारणतत्तद्धर्म्मात्यन्ताभावयोगोवा एते चाभावा जलत्वं न घटादौ घटादिजलात्यन्ताभाववदिति प्रत्यक्षादेः[1] क्वचित्तत्तद्वैधर्म्म्यादेव प्रसिद्धा इति ना-

---

दशभिन्नपृथिव्यादौ अनुभूयमानस्येत्यर्थः, 'पृथिवीत्वेति तेजःप्रभृतिद्वादशभिन्नपृथिवीनिष्ठान्योभावानुमानमधिकृत्य, 'शब्दाश्रयत्वेति आकाशेतरभेदानुमानस्थले तेजःप्रभृतिद्वादशभिन्नाकाशनिष्ठान्योन्याभावानुमानमधिकृत्येति, 'अतिरिक्तमिति पृथिव्यादेर्जलाद्यतिरिक्तत्वं विनेत्यर्थः । त्रयोदशत्वरूपेण त्रयोदशभेदाः साध्या इति द्वितीयकल्पे शङ्कते, 'नन्विति, इतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकसामान्याभावस्य साध्यत्वे एतदाशङ्काया असङ्गतेः तस्याभावाभावप्रतियोगिकस्यैकत्वादिति मन्तव्यं, 'अभावान्तरेति अधिकरणातिरिक्तभेदेत्यर्थः, 'स्वरूपभेद इति अधिकरणस्वरूपभेद इत्यर्थः, 'अननुगमादिति अधिकरणानामनन्तत्वेन चतुर्दशत्वरूपेण साध्यत्वासम्भवादित्यर्थः । अत्र कस्यचित् समाधानमाशङ्कते, 'अबाधितेति

---

(१) प्रत्यक्षादेवेति घ० ।

प्रसिद्धिः। तावतामभावानां वैशिष्ट्यं न प्रसिद्धमिति चेत्, किमेतावता, न हि तावद्वैशिष्ट्यमत्र साध्यते, किन्तु जलत्वादीनां यावन्तोऽभावा इह साध्यास्ते च तत्र तत्र प्रसिद्धा एव तावद्वैशिष्ट्यधीस्तु फलम् अन्यथा सिद्धसाधनात्, मिलितानामपि साध्यत्वे नाप्रसिद्धिः किञ्चिदेकधर्म्मावच्छेदेऽपि बलादिवन्मेलकार्थः, स च नासिद्धः। न च हेतोरसाधारण्यं, तावदभावयोगी ह्यत्र सपक्षो भवति न तु तदेकदेशकतिपयाभाववान्

---

अभावत्वांशे अबाधितप्रत्ययेत्यर्थः, 'अस्ति' अतिरिक्तोऽस्ति, अयमेकदेशिनं प्रति नापसिद्धान्त इत्यत आह, 'अनतिप्रसक्तेति, 'माना-भावादिति। न चाभावत्वांशे अबाधितोक्तप्रत्यय एव मानमिति वाच्यं। इदमिदं भवतीति प्रतीतिसाक्षिकस्याभावत्वस्य भावे स्वीकारात् अतिरिक्तधर्मिकल्पनामपेक्ष्य लाघवादिति भावः। 'स्वरूप-भेदस्येति अभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदत्वरूपेणेत्यर्थः, 'अन्व-यिनेति भावत्वहेतुकान्वयिनेत्यर्थः, 'व्यतिरेकिणेति पृथिवीत्वादि-हेतुकव्यतिरेकिणेत्यर्थः, न चासाधारण्यं, अन्यत्र साध्यानिर्णयदशाया-मनुमानप्रवृत्तेः, इदमुपलक्षणं अभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वे सति जलादित्रयोदशान्योन्याभावस्य साध्यत्वे प्रथमानुमानेनाप्यभाव-भेदः सिध्यतीति मन्तव्यं।

'पृथिवीत्वभिन्नेति पृथिवीत्वासमानाधिकरणेत्यर्थः। नन्वत्राप्यसिद्धि-

साध्यतायास्तावत्यपर्य्याप्तेः[१]। यद्वा जलत्वात्यन्ताभाव-स्तेजस्त्वात्यन्ताभावाधिकरणवृत्तिः अत्यन्ताभावत्वात् घटत्वात्यन्ताभाववत्[२], एवमत्यन्ताभावान्तरसामानाधिकरण्यमपि तत्र साध्यमिति क्वाप्रसिद्धिः।

---

रित्यस्वरसेनाह, 'जलत्वादीति, 'तावन्तः' चयोदशेत्यर्थः, 'तत्तद्साधारणेति असाधारणेत्यर्थः, 'योग इति, पक्षधर्मतावललभ्यसाध्यसम्बन्धाभिधानं न तु सम्बन्धपर्यन्तं साधनं, तथा सति 'न हि तावद्वैशिष्ट्यं' इत्यग्रिमग्रन्थविरोधात्। न चैवं पूर्वाभेदः, अत्र जलत्वादिनियतत्वेनाद्यभावोऽपि साध्य इति पूर्वतो भेदात्, 'क्वचित्' मनस्त्वात्यन्ताभावादौ। प्रकृते, 'तावतामिति, 'अन्यथेति पक्षधर्मतावललभ्यस्य पक्षे साध्यवैशिष्ट्यस्य प्रसिद्धिरपि यद्यप्युक्तं तदेत्यर्थः, ननु जलत्वादिप्रतियोगिकतावदत्यन्ताभावाः प्रत्येकमेव साध्याः अनुमितिः परामर्शश्च समूहालम्बनरूप इत्युक्तौ असाधारण्यं मिलितत्वरूपेण साध्यतायान्तु अप्रसिद्धिः तेन रूपेण कुत्राप्यसिद्धेरित्यत आह,

---

(१) तावति न पर्य्याप्तिरिति घ० ।

(२) 'घटात्यन्ताभाववदिति क-ख-गचिह्नितपुस्तकपाठः परन्त्वयं न समीचीनः 'पदार्थविभाजकधर्म्मात्यन्ताभावत्वादित्यर्थः' इति कस्यचिद्व्याख्यानस्यासङ्गत्यापत्तेः दृष्टान्तस्य घटात्यन्ताभावस्य पदार्थविभाजकधर्म्मात्यन्ताभावत्वविरहेण हेतुवैकल्यप्रसङ्गात्। घटत्वात्यन्ताभावरूपदृष्टान्तस्य घटत्वस्य साक्षात्पदार्थविभाजकत्वाभावेऽपि परम्परया पदार्थविभाजकत्वात् न हेतुवैकल्यमिति ध्येयम् ।

किञ्चेतरे तावत् प्रसिद्धा एव ते च भेदप्रतियोगिनो मेयत्वादितीतरभेदोऽपि सुग्रह एव। ननु पृथिवी नेतरभेदवती गुरुत्वादिभ्यो जलवदिति प्रतिरोध इति चेत्। न। इतरभेदनिषेधो हीतराभेदः न तु तेजःप्रभृत्यभेदः[१] जल इति दृष्टान्तस्य साध्यवैकल्यात् चतुर्दशाभेदानां चैकत्र विरोधेनासम्भवात् चतुर्दशभेदानां

---

'मिलितानामपीति त्रयोदशत्वाद्यवच्छिन्नानामपीत्यर्थः, 'यत्किञ्चिदेकेति[२]यत्किञ्चिदेकधर्मावच्छिन्नत्वमित्यर्थः, स च प्रकृते त्रयोदशत्वादि-संख्यासमानकालीनमपेक्षाबुद्धिविशेषविषयत्वमेवेति भावः। 'स चेति, भिन्न-भिन्नाधिकरणस्थानामप्यभावानां मानसोपस्थित्या अपेक्षाबुद्धि-विषयत्वप्रकारेण ज्ञानसम्भवात् भिन्नाधिकरणस्थघटयोर्द्वौ घटाविति प्रतीतिवदिति भावः।'तावदभावयोगीति तावदभाववत्तया निश्चित-इत्यर्थः, 'कतिपयाभाववान्' कतिपयाभाववत्तया निश्चितः, 'साध्य-ताया इति साध्यतावच्छेदकस्येत्यर्थः, साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नवत्तया निश्चितस्य सपक्ष इति भावः, 'अत्यन्ताभावत्वादिति तेजस्त्वानियता-त्यन्ताभावत्वादित्यर्थः, तेन तेजोऽन्यत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभावादौ वस्तुतस्तेजोऽविषया च या चतुर्दशविषया धीव्यक्तिस्तद्विषयत्वात्यन्ता-

---

(१) न च तेजःप्रभृत्यभेद इति ख०, ग०। स च न तेजःप्रभृत्यभेद इति घ०।

(२) 'किञ्चिदेकधर्म्मावच्छेदोऽपि' इत्यत्र 'यत्किञ्चिदेकधर्म्मावच्छेदोऽपि' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठ एतेनानुमीयते।

चैकत्र वृत्तौ न विरोधः। यत्तु साध्यप्रसिद्धौ पृथिवीतर-भिन्ना तत्साध्याधिकरण-पृथिव्यन्यतरत्वात्तदधिकरण-वत् पृथिव्यां तत् साध्यमन्वयिन एव सेत्स्यतीति, तन्न, अन्यतरत्वस्यालिङ्गत्वादित्युक्तत्वात्, लिङ्गत्वे वा जला-दावपि तत्सिद्धिप्रसङ्गात्। एवं तर्हि पृथिवी जलं पृथिवीत्वात् यन्न जलं तन्न पृथिवी यथा तेज इति-सत्प्रतिपक्षोऽस्त्विति चेत्। न। अजलस्य घटादेः प्रत्य-क्षत एव पृथिवीत्वनिश्चये व्यतिरेकव्यभिचारादस्य

---

भावादौ च न व्यभिचारः, पदार्थविभाजकधर्मात्यन्ताभावत्वादित्यर्थः इति कश्चित्। 'तत्रेति जलत्वात्यन्ताभाव इत्यर्थः, 'क्वाप्रसिद्धिरिति, तेजस्त्वात्यन्ताभाव-वायुत्वात्यन्ताभावादिसमानाधिकरणजलत्वात्य-न्ताभावस्यैव साध्यत्वादिति भावः।

अन्येतुमतं समाप्य प्रकारान्तरेण साध्यप्रसिद्धिं दर्शयति,'किञ्चेति, 'ते चेति, पृथिवीतरत्वं भेदप्रतियोगितावच्छेदकं व्यतिरेकिधर्मत्वात् इत्यत्र तात्पर्य्यं, अन्यथा इतरप्रतियोगिकभेदप्रसिद्धावपि तेजस्त्वा-वच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाप्रसिद्धेरिति ध्येयं। 'न तु तेजःप्रभृतीति, प्रातिस्विकरूपेण चतुर्दशभेदानामभावः साध्य इत्यभिप्रायेणेदं दूषणं, अन्यथा पृथिवीतरभेदाभावस्य पृथिवीतरत्वस्य जले सत्त्वादसङ्गतेः। बाधमप्याह, 'चतुर्दशेति, अभावमादाय चतुर्दशत्वं बोध्यं, स्थापनानु-माने बाधमुद्धरति, 'चतुर्दशेति। 'जलादावपीति, तत्रापि तत्साध्यां-

न्यूनत्वात् तदनवधारणे तु सत्प्रतिपक्षत्वमिष्टमेव। ननु जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्त्वात् इच्छादिकार्य्यवत्त्वाद्वेति व्यतिरेकिणि साध्याप्रसिद्धौ कथं व्यतिरेकादिनिरूपणं, नैरात्म्यञ्च घटस्य न प्रत्यक्षवेद्यं तस्य तत्रासामर्थ्यात्, नानुमानगम्यं नैरात्म्याप्रतीतावन्वयिनोऽभावात् सात्मकत्वप्रतीतिं विना व्यतिरेकिणोऽनुपपत्तिः। अथेच्छा समवायिकारणजन्या कार्य्यत्वात् तच्च समवायिकारणं पृथिव्याद्यष्टद्रव्यभिन्नं पृथिव्यादित्वे बाधकसत्त्वादिति पृथिव्यादिभिन्नात्मसिद्धौ तद्वत्त्वं जीव-

---

धिकरण-जलाद्यन्यतरत्वस्य लिङ्गत्वसम्भवादिति भावः। इदमापाततः जले पृथिवीतरभेदस्य बाधेनासिद्धेः जलेतरभेदसिद्धौ च इष्टापत्तेः। वस्तुतस्तु पृथिवीतरभेदस्य विशिष्य कुत्राप्यधिकरणेऽसिद्धेः सिद्धौ चान्वयाप्रतिसन्धानदशायां व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानहेतुत्वावश्यकत्वाच्चेत्येव द्रष्टव्यं। 'एवं' व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्य हेतुत्वे, 'व्यतिरेकव्यभिचारादिति साध्याभावस्य हेत्वभावव्यभिचारित्वादित्यर्थः, इदमुपलक्षणं असाधारण्यादित्यपि द्रष्टव्यं, 'तदनवधारणे त्विति पृथिवीलक्षणानवधारणे त्वित्यर्थः। 'इच्छादीति, अवच्छेदकतासम्बन्धेन हेतुरिति भावः। 'साध्याप्रसिद्धाविति, सात्मकत्वस्य जीवच्छरीरमात्रवृत्तित्वात्तस्य पक्षत्वादिति भावः। 'व्यतिरेकादीति, 'आदिना साध्यवैशिष्ट्यस्य परिग्रहः, 'तस्येति, तदभावस्यातीन्द्रियत्वादिति भावः। अप्रसिद्धाभावसाध्यके व्यतिरेक्यस्त्वित्यत आह, 'सात्मकत्वेति, 'कार्य्यत्वादिति भावकार्य्यत्वा-

च्छरीरे साध्यत इति चेत्, यदि सात्मकत्वमात्मसंयोग-वत्त्वन्तदा घटादै। तदस्तीति तताऽहेतुव्याहृत्तावसाधारण्यं, ज्ञानसमानाधिकरणज्ञानकारणीभूतसंयोगाश्रयकार्य्यत्वं सात्मकत्वं शरीरात्मसंयोगस्य ज्ञानकारणत्वात् आत्म-मनसोस्तथात्वेऽप्यकार्य्यत्वादिति चेत्। न। शरीरादन्यत्रासिद्धेः, तत्र प्रसिद्धौ सिद्धसाधनात्। इच्छाया असमवायिकारणसंयोगावच्छेदकत्वस्याभावे।

---

दित्यर्थः। शङ्कते, 'ज्ञानेति, चक्षुःसंयोगाश्रयत्वेन घटादेः सात्मकत्व-वारणाय 'ज्ञानसमानाधिकरणेति, आत्म-घटादिसंयोगादिमादाय तद्दोषतादवस्थ्यमतः 'ज्ञानकारणेति, तादृशसत्त्वादेर्घटादौ सत्त्वात् तद्दोषतादवस्थ्यमतः 'संयोगेति, आत्म-मनसोर्वारणाय 'कार्य्यत्व-मिति। न च प्राणेऽतिप्रसङ्गः, आत्म-प्राणसंयोगस्याहेतुत्वादिति वक्ष्यमाणत्वादिति भावः। 'शरीरादन्यत्रेति, न च राहोः शिरसि तत्प्रसिद्धिरिति वाच्यं। पद्मादन्यत्राप्रसिद्धेरित्यर्थात् चेष्टावत्त्वेन तस्यापि पद्मत्वात्। शङ्कते, 'इच्छाया इति, 'दृष्टः' जातः, 'तद्व्यतिरेक-इति स एव च सात्मकत्वमिति भावः। 'अप्रसिद्धसाध्यसंसर्गमिवेति, यद्यपि व्याप्तिज्ञाने साध्यसंसर्गस्यावश्यंभानात् कथं साध्यसंसर्गोऽप्रसिद्धः। न च निरधिकरणकसाध्यप्रसिद्ध्या साध्याभाव-हेत्वभावयोर्व्यापकत्व-ग्रहसम्भवान्न संसर्गप्रसिद्धिरावश्यकीति वाच्यं। साध्यतावच्छेदका-वच्छिन्नसाध्याभावस्य व्याप्तिघटकत्वेन तद्भानावश्यंभावात्। न च तथापि अप्रसिद्धाभावसाध्यकव्यतिरेकिणि अप्रसिद्ध एव साध्यसंसर्गो

घटादौ दृष्टः तद्व्यतिरेकः शरीरे साध्यत इति चेत्। न। इच्छाया असमवायिकारणसंयोगावच्छेदकत्वस्य शरीर एव प्रसिद्धेः सिद्धसाधनात्, अन्यथा असिद्धि-व्यतिरेकाद्यनिरूपणात्। अप्रसिद्धसाध्यसंसर्गमिव साध्यमप्रसिद्धं साधयति व्यतिरेकीति चेत्। न। व्यति-

---

भावत इति वाच्यं। पूर्वपक्षिणा तदनङ्गीकारात् तस्य च मतान्तरत्वात्। तथापि साध्यसंसर्गप्रसिद्ध्यसहकारेण साध्यसंसर्गमिव साध्यप्रसिद्धिं विनैव साध्यमपि साधयति व्यतिरेकीत्यर्थः, साध्यसंसर्गस्य प्रसिद्धि-सत्त्वेऽपि तत्त्वेनासहकारादिति भावः। 'असाधरणेति, 'इच्छा-ऽसमवायीति, भावकार्यत्वादिति शेषः, एतत्सिद्धिश्च वक्ष्यमाणानु-माने सासमवायिकारणवृत्तित्वस्य सन्दिग्धोपाधित्वनिरासार्थं साधन-व्यापकत्वज्ञानायोपयुज्यते। केचित्तु 'इच्छासमवायिकारणेति अकार-रहितः पाठः, तत्सिद्धिश्च समवायिकारणवृत्तित्वस्य सन्दिग्धो-पाधित्वनिरासार्थं साधनव्यापकत्वज्ञानायोपयुज्यते। 'इच्छात्वमिति, व्यक्तिपक्षके विभागजे च शब्दे व्यभिचारः स्यादिति जातेः पक्षत्वमुक्तं(१), 'नित्येन्द्रियेति, संख्यात्व-पृथक्त्वादौ व्यभिचार-

---

(१) तथाच इच्छा संयोगासमवायिकारणिका नित्येन्द्रियग्राह्यविशेष-गुणवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वात् शब्दवत् इत्यनुमाने विभा-गासमवायिकारणके शब्दे संयोगासमवायिकारणकत्वरूपसाध्या-भाववति हेतोर्वर्त्तमानत्वेन व्यभिचारप्रसङ्ग इति जातेः पक्षत्वानु-सरणमिति भावः।

रेकाद्यनिरूपणात् असाधारणधर्म्मेणाप्रतीतपदार्थानुमाने घटत्वादिनापि स्वेच्छाकल्पितडित्थाद्यनुमानप्रसङ्ग इति। उच्यते। इच्छाऽसमवायिकारणसिद्वाविच्छात्वं संयोगासमवायिकारणकवृत्ति नित्येन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातित्वात् शब्दत्ववत् स चासमवायिकारणं संयोगः किञ्चिदवच्छिन्नः संयोगत्वात् आत्मसंयोगमात्रस्येच्छाजनकत्वेऽतिप्रसङ्गादितीच्छाऽसमवायिकारणसंयोगावच्छेदकत्वं सात्मकत्वं शरीरे साध्यते। यद्वा आत्मानीच्छाधारता महत्-

---

वारणाय वृत्त्यन्तं, स्नेहत्वे व्यभिचारवारणाय 'नित्येन्द्रियग्राह्येति विशेषगुणविशेषणं, नित्येन्द्रियग्राह्यत्वञ्च तन्मात्रग्राह्यत्वमतो न मनसोग्राह्यत्वेन तस्य तद्दोषतादवस्थ्यं, आत्मैकत्वप्रत्यक्षत्वपक्षे संख्यात्वे व्यभिचारादाह 'विशेषेति, शब्दजशब्दादिमात्रवृत्तिजातिविशेषे व्यभिचारादाह, 'गुणत्वसाक्षाद्व्याप्येति, तत्त्वञ्च गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजात्यव्याप्यत्वं, अन्यथा गुणत्वव्याप्यान्यतरत्वादिव्याप्यत्वादसिद्व्यापत्तिः, जातिपदञ्च शब्दजशब्द-संख्यान्यतरत्वादौ व्यभिचारवारणाय, समवायसम्बन्धेन विशेषगुणवृत्तित्वलाभाय वा, अन्यथा जन्यमात्रस्य कालोपाधितया संख्यात्वे व्यभिचारतादवस्थ्यादिति संक्षेपः। 'अतिप्रसङ्गादिति अन्यावच्छेदेनापीच्छोत्पत्त्यापत्तेरित्यर्थः, असमवायिकारणसंयोगावच्छेदकत्वस्यैव इच्छाद्यवच्छेदकत्वनियामकत्वादित्यभिमानः, 'इच्छाऽसमवायिकारणेति। न च तादृशसंयोगाद्यवच्छेदकत्वेन प्रकारेण

संयोगावच्छेद्या जन्यविभुविशेषगुणाधारतात्वात् वा-य्वादिसंयोगाद्यवच्छेद्यशब्दाधारत्ववदिति सामान्यतः सिद्धमिच्छाधारताघटकेच्छासमवायिकारणद्रव्यसंयोगवत्त्वं सात्मकत्वम्, अत एव ज्ञानसमानाधिकरणज्ञानकारणीभूतसंयोगाश्रयकार्य्यत्वं वा सात्मकत्वं स्वशरीरे प्राणादिमत्त्वस्य इच्छादिमत्त्वस्य च चेष्टावयवोपचया-

---

साध्यं नोक्तानुमानात् प्रसिद्धमिति वाच्यं। तदनन्तरं मनसा तथा प्रसिद्धेः। 'यद्वेति, इच्छाधारतायाः शरीरे व्याप्यवृत्तेर्न महत्सं-योगोऽवच्छेदक इत्यतः 'आत्मनीति, 'महत्संयोगेति, 'महत्पदं मनोयोगावच्छेद्यत्वेनार्थान्तरवारणाय, ईश्वरज्ञानादेर्व्याप्यवृत्तेरा-धारताया वारणाय 'जन्येति, रूपाद्याधारतावारणाय 'विभ्विति, आत्मवृत्तिद्वित्वाद्याधारतावारणाय 'विशेषेति, आधारता च सम-वायावच्छिन्ना विवक्षिता नातः शरीरवृत्तीच्छाद्याधारतायां व्यभि-चार इति मन्तव्यं, 'सामान्यत इति सिद्धसाधनशङ्कावारणाय, 'इच्छा-धारतेति 'इच्छाधारताघटकः' इच्छाधारतावच्छेदकः य इच्छा-समवायिद्रव्यनिरूपितसंयोगस्तद्वत्त्वमित्यर्थः, आत्मन्यतिप्रसक्तेः वार-णाय निरूपितेत्यन्तं, स्वनिरूपितसंयोगवत्त्वञ्च स्वस्मिन्नास्तीति भावः। अत्रापि साध्यतावच्छेदकप्रकारेण प्रसिद्धिर्मनसा द्रष्टव्या। 'अत एवेति ज्ञानाधारता महत्संयोगावच्छेद्या शरीरवत्त्वात् स च महत्सं-योगो ज्ञानसमानाधिकरणः तत्तद्वृत्त्यवच्छेदकत्वात् ज्ञानकारणञ्च अनन्यथासिद्धान्वय-व्यतिरेकात् तदाश्रयोमहान्कार्य्यः आत्मसंयो-

दिव्याप्यत्वग्रहात् घटादौ चेष्टादिविरहेण प्राणादिमत्वेच्छादिमत्त्वविरहानुमानमिच्छादिविरहात् इच्छादिप्रयोजकेच्छाद्याधारताघटकेच्छाद्यसमवायिकारणसंयोगविरहानुमानं कार्य्याभाववति कारणाभावनियमात् । न च सात्मकत्वं शरीरवृत्ति शरीरे बाधकाभावात् शरीरत्ववदित्यन्वयिनैव साध्यसिद्धेः(१) किं व्यतिरेकिणेति वाच्यं । शरीरं सात्मकमिति शरीरविशेष्यक-

---

गिमत्त्वादित्यनुमानेन प्रसिद्धिसम्भवादेवेत्यर्थः । ननु सात्मकत्वस्य साध्यस्य प्रसिद्धावपि नैरात्म्यस्य साध्याभावस्य घटादावसिद्धत्वात् कथं व्यतिरेकव्याप्तिग्रह इत्यत आह, 'स्वशरीर इति, 'चेष्टेति चेष्टावयवोपचयाद्यन्यतमव्याप्यत्वग्रहादित्यर्थः, तेन निष्क्रियविनष्टशरीरे न व्यभिचारः, 'चेष्टादिविरहेण' चेष्टाद्यन्यतमसामान्याभावेन शरीरबाधकाभावेन, 'शरीरे बाधकेति शरीरवृत्तित्वाभाववत्तया अप्रमितत्वादित्यर्थः । 'संस्काराजन्येति वेगजकर्मणि व्यभिचारवारणाय, गुरुत्व-द्रवत्वाजन्येत्यपि बोध्यं, तेन पतन-स्यन्दनयोर्न व्यभिचारः, 'एवञ्चेति, सत्यन्तमात्रस्यात्मन्यपि सत्त्वात्तद्व्यावृत्तये 'शरीरत्वमिति, तेन शरीरावयवे न व्यभिचारः । 'आत्मभिन्नेति, आत्मनः सात्मकत्ववारणाय सत्यन्तं, मृतशरीरस्यापि कदाचिद्भोगाधारतया तद्व्यावृत्तये 'आत्मविशेषगुणकारणेति, कारणत्वं फलोपधायकत्वं तेन शरीरात्मसंयोगत्वेन तस्य स्वरूपयोग्यत्वेऽपि न क्षतिः, मृत-

---

(१) सिद्धसाधनादिति घ० ।

बुद्धेर्व्यतिरेकित्वं विनानुपपत्तेः उपायान्तरस्योपायान्तराद्दूषकत्वाच्च। यद्वा चेष्टा संयोगासमवायिकारणिका संस्काराजन्यक्रियात्वादिति चेष्टाया असमवायिकरणसंयोगसिद्धौ प्रयत्नवदात्मसंयोग एव पर्य्यवस्यति प्रयत्नान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वात्, एवं चेष्टाया असमवायिकारणसंयोगाश्रयत्वे सति शरीरत्वं सात्मकत्वं जीवच्छरीरे साध्यं चेष्टावत्त्वादिति हेतुः चेष्टाविरहश्च घटादौ प्रत्यक्षसिद्धः(१) चेष्टाविरहात्तदसमवायिकारण-

---

शरीरात्मसंयोगजनकं तदवयवात्मसंयोगमादाय मृतशरीरावयवस्य मृतशरीरावयवात्मविभागकारणमृतशरीरात्मसंयोगमादाय मृतशरीरस्य च सात्मकत्ववारणाय 'विशेषेति, भेरीदण्डसंयोगवच्छब्दजनकं मृतशरीरे शरीरान्तरसंयोगमादाय मृतशरीरे सात्मकत्ववारणाय 'आत्मेति। यद्यपि तस्यापि स्वगोचरप्रत्यक्षजनकत्वेन जीवच्छरीरे मृतशरीरसंयोगस्य दुःखजनकत्वेन च तद्दोषतादवस्थ्यं तथापि आत्मविशेषगुणपदं प्रयत्नपरमित्यदोषः। आत्मवृत्तित्वेन संयोगे विशेष्य इत्यपि केचित्। मनसः सात्मकत्ववारणाय 'भोगानधिकरणवृत्तीति, नञ्द्वयस्याप्येतदेव फलमिति संक्षेपः। 'प्राणान्यत्वे सतीति, प्राणे व्यभिचारवारणाय सत्यन्तं, नाड्यादौ व्यभिचारवारणाय 'ज्ञानकारणीभूतेति, चक्षुःसंयोगादिमादाय तद्दोष-

---

(१) चेष्टाविरहस्य घटादौ प्रत्यक्षसिद्धेरिति घ०।

संयोगविरहेऽपि सुग्रहः। यद्वा जीवच्छरीरं तदवयवो वा आत्मभिन्नत्वे सत्यात्मविशेषगुणकारणभोगानधिकरणावृत्तिसंयोगवत् प्राणान्यत्वे सति ज्ञानकारणीभूतप्राणसंयोगवत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा घटः, आत्म-प्राणसंयोगः प्राण-मनःसंयोगो वा शरीर-प्राणसंयोगेनैवान्यथासिद्धो न कारणं, भोगाधारत्वं भोगसमवायिकारणातिरिक्तवृत्ति सकलभोगाधिकरणवृत्तित्वात् प्रमेयत्वादिवदिति तार्किकी रीतिः[१]। अथेच्छाष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रिता अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति गुणत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथानाश्रितमष्टद्रव्याश्रितं वेति कथं व्यतिरेकी अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यस्य तद्वृत्तित्वस्य चाप्रतीतेर्व्यं-

---

तादवस्थ्यं अतः 'प्राणेति, नन्वात्म-मनसोरपि हेतुत्वेन व्यभिचार इत्यत आह, 'आत्म-प्राणेति। न च शरीर-प्राणसंयोगस्य न शरीर-प्राणसंयोगत्वेन हेतुत्वं गौरवात् किन्तु प्राणसंयोगत्वेनैव यत्रावच्छेदकतासम्बन्धेन ज्ञानं तत्र समवायेन प्राणसंयोग इति सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः, तथाचात्म-प्राणसंयोगादिरपि ज्ञानस्वरूपयोग्य एवेति व्यभिचारस्तदवस्थ इति वाच्यं। फलोपधानस्य विवक्षितत्वात्। तच्च कार्य्य-कारणभावघटकसम्बन्धेन ज्ञानसमानाधिकरणत्वे सति ज्ञानजनकत्वमिति न कोऽपि दोष इति भावः। ननु भोगानधि-

---

(१) तार्किकनीतिरिति क०, ख०, ग० ।

तिरेकाद्यनिरूपणात्। स्यादेतत् इच्छायाद्रव्याश्रितत्वेऽनुमिते पृथिव्यादौ बाधानवतारदशायां विप्रतिपत्तिवाक्यादाश्रितत्वादिसाधारणधर्म्मदर्शनाद्वा तद्द्रव्यमष्टद्रव्यातिरिक्तं न वेति सन्देहेनाष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्योपस्थितिः। यद्वा इच्छाष्टद्रव्यातिरिक्ताश्रिता न वेति संशयात्(१) इच्छाया अष्टद्रव्यातिरिक्ताश्रयोपस्थितौ पश्चादिच्छाश्रयोऽष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यं न वेति संशयादष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्योपस्थितिः। अथ वा द्रव्याश्रिता इच्छा अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तिर्न वेति पूर्व्ववत् संशयादष्टद्र-

---

करणावृत्तिः संयोगोऽसिद्धः भोगसमवायिकारणस्यैव भोगाधारत्वात् संयोगस्य तन्मात्रावृत्तित्वादित्याशङ्क्य उक्तसाध्योपपत्तये शरीरस्यापि भोगाधारत्वं साधयति, 'भोगाधारत्वमिति भोगासाधारणाधारत्वमित्यर्थः, तेन कालादिवृत्तितया न सिद्धसाधनं, 'सकलेति, न च भोगाधिकरणेत्यस्य स्वरूपासिद्धिवारकतया वैयर्थ्यमिति वाच्यम्। समुदायस्य भोगाधिकरणत्वव्यापकत्वादित्यर्थत्वात्। नन्विदं सन्दिग्धानैकान्तिकं साध्याभाववत्तया निश्चिते संसार्य्यात्मत्वे एतदनुमानात्पूर्व्वंहेतोः सन्देहादित्यत आह, 'तार्किकीति अनुभवमूलिका रीतिरित्यर्थः, शरीरे सुखमित्यनुभवात् शरीरेऽपि भोगाधार-

---

(१) 'इच्छाष्टद्रव्यातिरिक्ताश्रिता न वेति संशयात्' इत्ययं पाठः क-ख-चिह्नितपुस्तके नास्ति।

व्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वं प्रसिद्धमिच्छायाः साध्यते संशय-प्रसिद्धमपि साध्यं व्यतिरेकादिनिरूपकं साध्यज्ञान-मात्रस्य कारणत्वात्। न चैवं संशयादेव पक्षे साध्य-सिद्धेर्व्यतिरेकिवैयर्थ्यं, निश्चयार्थं तत्प्रवृत्तेरिति। मैवं। संशयेन साध्यप्रसिद्धावपि तद्व्यतिरेकनिश्चयासम्भवात् साध्यव्यतिरेक-तद्व्याप्तिनिश्चयस्य साध्यनिश्चयसाध्यत्वात् साध्यसन्देहे तद्व्यतिरेकादिसंशयावश्यम्भावात्। किञ्च संशयोपस्थितसाध्यस्य व्यतिरेकिनिरूपणं न योग्यानु-पलम्भात् साध्यनिश्चयं विना योग्यानुपलम्भासम्भवात्। नापि व्यापकाभावात्, साध्यनिश्चयं विना तद्व्यापकत्व-निश्चयाभावात्। न च यदीच्छा अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्या-

---

त्वसिद्धौ संसार्य्यात्मत्वे हेतोर्व्यतिरेकनिर्णयेन व्यभिचारसन्देहा-भावादिति भावः। 'अनुमित इति गुणत्वेनेति शेषः, 'आश्रितत्वा-दीति आश्रयत्वादीत्यर्थः, 'द्रव्योपस्थितिरिति, तद्वृत्तित्वञ्च इच्छायां द्रव्यत्वे च प्रतीतमेवेति भावः। नन्वष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वेन साध्यतावच्छेदकप्रकारेण यथोक्तसंशयान्न प्रसिद्धिः प्रसिद्धौ वा साध्यतावच्छेदकांशे निश्चयात्मकसाध्यज्ञानं विना कथं व्यतिरेक-व्याप्तिग्रहः तस्य साध्यतावच्छेदकांशे विशिष्टवैशिष्ट्यबोधरूपत्वा-दित्यस्वरसादाह, 'अथ वेति, ननु कोटितावच्छेदकप्रकारेण कोटि-प्रसिद्ध्यभावात् कथमयं संशयः तत्प्रसिद्धौ च तत एवानुमानसम्भवे

श्रिता न स्यादृष्टानाश्रिता सती द्रव्याश्रिता न स्यात् रूपवदिति साध्यविपर्य्ययकोटौ प्रतिकूलतर्कसहकृतः साध्यसंशय एव निश्चयकार्य्यं करोति, अत एवैतादृश-संशयोपस्थितकल्पितडित्यादिसाधनमप्यपास्तं, तद्वि-पर्य्यये प्रतिकूलतर्काभावादिति वाच्यं। साध्यनिश्चयं विना साध्यव्यतिरेकनिश्चय-तन्मूलतर्कानवतारात्, अन्यथा अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वनिरूपणे तर्कोद-यस्तर्कोदये च तत्सहकृतसाध्यसंशयस्य साध्यव्यतिरेक-निश्चायकत्वमिति। उच्यते। इच्छाश्रयद्रव्यसिद्धौ पृथि-व्यादाविच्छाधारताऽभावे तद्द्रव्यं पृथिव्याद्यष्टद्रव्यभि-न्नम् अष्टद्रव्यावृत्तिधर्म्मवत्त्वात् पृथिव्यादित्वे बाधक-

---

किमन्तर्गतेनात्र तत्संशयेनेति चेत्। न। इच्छायामष्टद्रव्यातिरिक्त-वृत्तित्व-तदभावकोटिकेन संशयेन उपनयबलादष्टद्रव्यातिरिक्ते द्रव्य-त्वस्य विषयीकरणात् अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वप्रसिद्धिरित्यभिप्रा-यात्। नन्विदमयुक्तं इच्छायां साध्यसन्देहेऽपि रूपादौ तद्व्यतिरेकनि-श्चये बाधकाभावात्, न ह्येकत्र सन्देहे सर्व्वत्र सन्देहः, पार्थिवरूपादि-संशयसत्त्वेऽपि वायौ तदभावनिश्चयस्यानुभवसिद्धत्वादित्यत आह,'किञ्चे-ति, 'साध्यनिश्चयं विनेति, प्रतियोगि-तद्व्याप्येतरसकलतन्निश्चायकसम-वधाने प्रतियोग्यनुपलम्भरूपस्य योग्यानुपलम्भस्य तन्निश्चयाप्रसिद्धाव-सम्भवादिति भावः। इदमापाततः इदानीं निश्चयत्वस्य योग्यानुपल-

सत्त्वादेत्यष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यसिद्धाविच्छायामष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवत्त्वमष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वं वा साध्यते साध्यप्रसिद्धिर्द्रव्यत्वे इच्छाविशेष्यकाष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वप्रतीतेर्व्यतिरेकिसाध्यत्वात्, तथापीच्छाष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रिता अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति द्रव्याश्रितत्वात् अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्ववदिति साध्यप्रसिद्धौव दृष्टान्तसिद्धेरन्वयी हेतुः स्यादिति चेत्। न। अन्वयव्याप्त्यप्रतिसन्धाने व्यतिरेकव्याप्तिप्रतिसन्धानदशायां व्यतिरेकिसम्भवात्। न च द्रव्यत्वादेः सपक्षात् व्यावृत्त्याऽसाधारण्यं,तद्धि साध्य-तदभावोभयसाधकत्वेन सत्प्रतिपक्षोत्थापकतया दोषावहं प्रकृते च न हेतोः साध्या-

---

भावतन्त्रत्वात् कादाचित्कस्य तस्याचापि भावात्, 'व्यापकाभावादिति साध्यव्यापकाभावादित्यर्थः, साध्यस्य व्यतिरेकनिरूपणमिति शेषः। भ्रान्तः शङ्कते, 'न चेति, 'रूपवदितीति, 'प्रतिकूलतर्केत्यनेनान्वयः, 'एतादृशसंशयेति प्रागुक्तक्रमेण इच्छा नवद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रिता न वेति संशयेनोपस्थितेत्यर्थः।'साध्यव्यतिरेकनिश्चयेति, आपादकनिश्चयस्य तर्कं प्रति हेतुत्वात् इति भावः। 'इच्छाश्रयेति गुणत्वहेतुकद्रव्याश्रितत्वानुमानेनेति शेषः, 'इच्छाधारताभाव इति, इदञ्चापिमहेतुसिद्ध्यर्थं,'पृथिव्यादीति पृथिवीत्वाभावादिव्याप्यधर्मवत्त्वादित्यर्थः, स च गन्धाभावादिरिति शेषः, 'द्रव्यवत्त्वमिति वृत्तितासम्बन्धेनेत्यर्थः, 'प्रसि-

भावसाधकत्वं विपक्षे बाधकाभावात् साध्यसाधकत्वे तत्सत्त्वात्, अत एव यावदेकत्रानुकूलतर्को नावतरति तावदेव दशाविशेषेऽसाधारण्यं दोष इत्युक्तं सुवर्णतैजसत्वसाधकव्यतिरेकिणि शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादावपि तथा। अथाष्टद्रव्यबाधानन्तरं[१] इच्छादौ गुणत्वादेवाष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वं सिद्ध्यति पक्षधर्म्मताबलात् प्रसिद्धविशेषबाधे सामान्यज्ञानस्य तदितरविशेषविषयत्वनियमात्, अत एवासर्व्वविषयानित्यज्ञानबाधानन्तरं क्षित्यादौ कार्य्यत्वेन ज्ञानजन्यत्वं सिद्ध्यन्नित्यसर्व्वविषयत्वं ज्ञानस्यादायैव सिद्ध्यतीति चेत्। न। बाधानन्तरं ह्यष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यविषयाप्यनुमितिर्द्र-

---

द्धिरिति उक्तानुमानानन्तरं मनसा तादृशद्रव्यवृत्तित्वत्वेन साध्यतावच्छेदकप्रकारेण साध्यप्रसिद्धिर्द्रव्यत्व इत्यर्थः, इदमुपलक्षणं अष्टानां, द्रव्यस्य, अतिरिक्तस्य, वृत्तित्वस्य च खण्डशः प्रसिद्धा मनसा विशेष्ये विशेषणमिति न्यायेन अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वमिति विशिष्टप्रमितिसम्भव इत्यपि बोध्यं। नन्वेवमिच्छायामपि द्रव्यवृत्तित्वात् साध्यसिद्धिर्जातेति किं व्यतिरेकिणा इत्यत आह, 'इच्छेति, 'द्रव्यत्ववदितीति 'अन्वयी हेतुः स्यादित्यनेनान्वयः, अत्र हेतुः 'साध्यप्रसिद्धेवेति, 'दृष्टान्तसिद्धेः' दृष्टान्ते द्रव्यत्वे साध्यसिद्धेः।

---

(१) अथाष्टद्रव्याधारताबाधानन्तरमिति क०, ख०।

व्याश्रितत्वप्रकारिका स्यात् अनुमितेर्व्यापकतावच्छेद-कमात्रप्रकारकत्वनियमात्, न त्वष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्य-वृत्तित्वप्रकारिका तस्य पूर्व्वमप्रतीतत्वेन प्रकारत्वासम्भ-वादिति तत्प्रकारिकानुमितिर्व्यतिरेकिण्यैव। अनाद्यन-न्तद्व्यणुकादियावत्पक्षीकरणेऽनाद्यनन्ततावदुपादानगो-चरापरोक्षज्ञानत्वमेव नित्यसर्व्वविषयकत्वमेतदन्यनित्य-सर्व्वविषयत्वं व्यतिरेकिण एव सिद्ध्यति, पक्षधर्म्मताब-लेनापि व्यापकतावच्छेदकप्रकारेण साध्यसिद्धिर्भवति न तु साध्यगतविशेषप्रकारिका अतिप्रसङ्गात्। नन्वष्ट-द्रव्यानाश्रितेच्छा द्रव्याश्रितेति यदि साध्यते तदाष्टद्र-व्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वमन्तरेण प्रतिज्ञार्थ एव नोपप-द्यते, सत्यम्, एवमप्यष्टद्रव्यानाश्रितेच्छायां द्रव्याश्रितत्वं

---

'व्यावृत्ताविति अत्र द्रव्यानाश्रितत्वे सति गुणत्वस्य हेतोर्व्यावृत्ता-वित्यर्थः, 'साध्य-तदभावोभयसाधकत्वेनेति प्रकृतहेतौ साध्य-तद-भावोभयव्याप्तिनिश्चायकत्वेनेत्यर्थः, 'साध्याभावसाधकत्वं' साध्याभाव-व्याप्तिनिश्चयः, 'साध्यसाधकत्वे' साध्यव्याप्यत्वे, 'तत्सत्त्वादिति अनु-कूलतर्कसत्त्वादित्यर्थः, अष्टद्रव्यानाश्रितस्य तदतिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वं विना द्रव्याश्रितत्वस्यैवानुपपत्तेरिति भावः। 'एकत्रेति एकमात्रे इत्यर्थः, 'सुवर्णतैजसत्वेति सुवर्णं तेजः अत्यन्ताग्निसंयोगेनानुच्छिद्य-मानद्रवत्वाधिकरणत्वादित्यत्रेत्यर्थः। 'अष्टद्रव्यबाधेति पृथिव्याद्यष्ट-

सिद्ध्यतु तस्याष्टद्रव्यातिरेक्यं कुतः सिद्ध्येत्। अथ सामा-
न्याव्यभिचारमादाय मानान्तरोपनीतं तत्तदन्यत्व-
मुपजीव्याष्टद्रव्यान्यद्रव्यवृत्तितैवेच्छादेः परिच्छिद्यते
ज्ञानान्तरोपस्थापितविशेषणविशिष्टज्ञानस्य सुरभि
चन्दनमित्यादौ दर्शनादिति चेत्। न। मानान्तरानि-
यमेनानुपस्थितेः।

ये चेच्छाश्रये पृथिव्यादिभिन्नत्वं न जानन्ति इच्छा-
याश्च पृथिव्याद्यनाश्रितत्वं न जानन्ति तेषामप्यनु-
मानादित्यप्याहुः।

---

द्रव्येषु इच्छाधारताबाधानन्तरमित्यर्थः, 'गुणत्वादेवेति इच्छा द्रव्याश्रिता गुणत्वादित्यनुमानेनेत्यर्थः, 'पक्षधर्म्मताबलादिति अष्टद्रव्यवृत्तित्वबाधसहकारादित्यर्थः, तथाच किं व्यतिरेकिणेति भावः 'बाधानन्तरं हीति बाधानन्तरमनुमितिरष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यविषयापि द्रव्याश्रितत्वप्रकारिका स्यादित्यर्थः, 'व्यापकतावच्छेदकेति येन रूपेण व्यापकत्वग्रहस्तेनैव रूपेणानुमितौ भाननियमादित्यर्थः, यथाश्रुते कूटलिङ्गस्य स्थले व्यभिचारात्, 'पूर्व्वमप्रतीतत्वेनेति पूर्व्वं व्यापकतावच्छेदकतया अप्रतीतत्वेनेत्यर्थः। नन्वेवमीश्वरानुमाने नित्यत्वं सर्व्वविषयकत्वञ्च ज्ञाने कथं सिद्ध्यतीत्यत आह, 'अनाद्यनन्तेति। 'सामान्याव्यभिचारमादायेति गुणत्वनिष्ठद्रव्याश्रितत्वसामान्यव्याप्तिज्ञानमादायेत्यर्थः, 'परिच्छिद्यत इति इच्छा द्रव्याश्रिता गुणत्वादिति प्राथमिक

अथ व्यतिरेकी नानुमानं सर्व्वत्र प्रमेयत्वादिना सत्प्रतिपक्षग्रस्तत्वादिति चेत् । न । विपक्षबाधकेन व्यतिरेकिणो बलवत्त्वात् ।

अन्ये तु व्यतिरेकिण्यभाव एव साध्यः स चाप्रसिद्ध एव सिद्ध्यति यस्याभावस्य व्यापको हेत्वभावो गृहीतस्तस्याभावः पक्षे व्यापकाभावाभावरूपेण हेतुना सिद्ध्यति व्यापकाभाववत्तया ज्ञाते व्याप्याभावज्ञानावश्यम्भावात्, तथाहि पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते पृथिवीत्वादित्यत्र इतरस्य जलादेर्व्यापकः पृथिवीत्वाभावो गृहीत इति पृथिवीत्वाभावाभावरूपेण पृथिवीत्वेन

---

सामान्यतोदृष्टानुमाननेनेत्यर्थः, 'मानान्तरादिति प्राथमिकगुणत्वहेतुकद्रव्याश्रितत्वानुमितिप्राक्काले द्रव्यगतमष्टद्रव्यान्यत्वं मानान्त ियमतो नोपतिष्ठते येनोपनीतं भासेतेत्यर्थः, इदमुपलक्षणं मान ेरुपस्थितत्वेऽपि भानं न सम्भवति अनुमितेर्व्यापकतावच्छेदकमात्रप्रकारेणैव साध्यविषयकत्वनियमात् अनुमितावुपनीतभाने मानाभावाच्चेत्यपि द्रष्टव्यम् ।

केषाञ्चित्समाधानमाह, 'ये चेति, 'जानन्तीति, न वा सामान्यतोदृष्टानुमानेन इच्छायामपि द्रव्याश्रितत्वं जानन्तीति शेषः, 'पृथिव्याद्यनाश्रितत्वमिति, इदञ्च व्यतिरेकिणि सत्यन्तविशेषणसिद्ध्यर्थं, 'अनुमानादिति इच्छायामष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वानुमितेरित्यर्थः, सा च व्यतिरेकिणं विना न सम्भवति पूर्व्वं सामा-

पृथिव्यामितरान्योन्याभावोऽप्रसिद्ध एव सिद्ध्यति प्रतियोगिज्ञानस्य हेतुत्वात् प्रत्यक्षेण भूतले घटाभाववत् । एवमन्यत्राप्यव्याप्यवृत्तीच्छायाः स्वाश्रयत्वे सिद्धे स्वाश्रये योऽत्यन्ताभावस्तदवच्छेदकं घटादि सर्व्वं तदवच्छेदेनेच्छानुपलम्भात् जीवच्छरीरन्तु न तथा तदवच्छेदेन तदाश्रये इच्छोपलम्भात् तथाचेच्छात्यन्ताभावाश्रयतावच्छेदकत्वरूपस्य नैरात्म्यस्य घटादौ प्राणादिमत्त्वाभावो व्यापको गृहीत इति जीवच्छरीरे प्राणादिमत्त्वेन इच्छात्यन्ताभावाश्रयत्वावच्छेदकत्वस्याभावः सात्मकत्वं साध्यते, एवं प्रामाण्यसाधकव्यतिरेकिण्यपि व्यधिकरण-

---

न्यतोदृष्टानुमानाभावेन तेन तत्सिद्ध्यसम्भवादिति भावः। 'इत्यपाङ्क्‌रित्यस्वरसोद्भावनं, तद्बीजन्तु यदीच्छाया द्रव्याश्रितत्वेन तदाश्रयस्याष्टद्रव्यभिन्नत्वेन न ज्ञानं तदा साध्याप्रसिद्ध्या व्यतिरेकिणोऽप्यनवकाश इति तत्समर्थनमप्यशक्यं स्यादिति ध्येयम् ।

'बलवत्त्वादिति, सत्प्रतिपक्षानवतारदशायां व्यतिरेकिसाम्राज्यात्यपि बोध्यम् ।

'अभाव एवेति अभावत्वरूपेणाभाव एव साध्य इत्यर्थः, अतएव व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानादज्ञ्यभावाभावत्वेनैव वह्न्यनुमितिरिति भावः। 'अप्रसिद्ध एवेति अप्रसिद्धोऽपीत्यर्थः, ननु तस्याप्रसिद्धत्वे हेत्वभावे तदभावव्यापकत्वग्रहासम्भवात् कथमनुमितिरत आह, 'यस्याभावस्येति यस्य प्रतियोगिनो व्यापकतया हेत्वभावे गृहीत इत्यर्थः,

प्रकारावच्छिन्नत्वस्य व्यापकः समर्थप्रवृत्तिजनकत्वाभावोऽप्रमायां गृहीतोऽतो विवादाध्यासितानुभवे समर्थप्रवृत्तिजनकत्वेन व्यधिकरणप्रकारावच्छिन्नत्वस्याभावः सिध्यति व्यधिकरणप्रकारानवच्छिन्नत्वमेव प्रमात्वम्। ननु साध्याप्रसिद्धौ कथं साध्यविशिष्टज्ञानं विशेषणज्ञानजन्यत्वाद्विशिष्टज्ञानस्येति चेत्। न। पक्षे साध्यानुमितिसामग्रीसत्त्वात्पक्षविशेषणकः साध्यविशेष्यकएव प्रत्यय जायते भूतले घटो नास्तीत्यभावविशेष्यकप्रत्ययवत्[१] तथापि साध्याभावव्यापकाभावाभावरूपहेतुमत्तया पक्षज्ञानं व्यतिरेकिणि गमकतौपयिकं। न च साध्यप्रसिद्धिं विनापि तादृशप्रतिसन्धानं सम्भवति, न

---

तथाच तत्र हेत्वभावे प्रतियोगिव्यापकताज्ञानमेव हेतुरिति भावः। 'व्यापकाभाववत्तयेति व्यापकाभावत्वरूपेण व्यापकाभाववत्तया ज्ञाने इत्यर्थः, 'तथाहीति तथाचेत्यर्थः, 'इतरस्य जलादेरिति तादात्म्यसम्बन्धेनेत्यादिः। 'पक्षविशेषणक इति पृथिव्यां पृथिवीतरभेद इत्याकारकः प्रत्ययो जायत इत्यर्थः। नन्विदमपि ज्ञानं न सम्भवति पृथिवीतरत्वावच्छिन्नप्र तियोगिताकभेदत्वस्य विशेष्यीभूते भेदे विशेषणतया तज्ज्ञानाभावा । न चेतरस्य भेदत्वस्य च खण्डशः प्रसिद्धिसत्त्वेन विशेष्ये विशेषणमिति न्यायेन तादृशधीसम्भव इति वाच्यं। तथा सति पक्षविशेषणकपर्य्यन्तानुधावनवैयर्थ्यात् इतरत्वा-

---

(१) अभावविशेष्यकप्रत्ययवदिति घ०।

च वस्तुगत्या यः साध्याभावस्तद्व्यापकाभावप्रतियोगि-मत्तया ज्ञानं मृग्यत इति वाच्यं। व्यतिरेक्याभासानु-पपत्तेरिति चेत्। न। योऽभावो यस्य भावस्य व्यापक-त्वेन गृहीतः तदभावाभावेन तस्य व्याप्यस्याभावः पक्षे साध्यत इत्यनुगतानतिप्रसक्तस्य गमकतौपयिकत्वात्, अयञ्च व्यतिरेकिप्रकारः स्वार्थ एव, परं प्रति साध्याप्र-सिद्धा प्रतिज्ञाद्यसम्भवादिति सर्व्वं समञ्जसम्(१)।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे केवलव्यतिरेक्यनुमानसि-द्धान्तः, सम्पूर्णमिदं केवलव्यतिरेक्यनुमानं।

---

वच्छिन्नस्य भेदस्य च खण्डशः प्रसिद्धिसत्त्वेन विशेष्ये विशेषणमिति न्यायेन पक्षविशेष्यक-साध्यविशेषणकज्ञानस्यापि सम्भवादिति चेत्। न। भेदत्वरूपेण पृथिवीतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदव्यक्तेर्ज्ञाना-भावदशायामस्याभिधानात् तज्ज्ञानदशायान्तु पक्षविशेष्यकमपि सम्भवतीति ध्येयं। 'व्यतिरेक्याभासेति वस्तुगत्याधेयत्वादेरभावस्या-प्रसिद्धा व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानान्मेयत्वाननुमानापत्तेरित्यर्थः।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये केवलव्यतिरेक्यनुमानसिद्धान्तरहस्यं, सम्पूर्णमिदं केवलव्यतिरेक्यनुमानरहस्यं।

---

(१) सर्व्वमवदातमिति घ०।

## अथ अर्थापत्तिः।

व्यतिरेक्यनुमानसिद्धावर्थापत्तिर्न मानान्तरं तेनैव तदर्थसिद्धेः स्यादेतत् ज्योतिःशास्त्रात्तत्कथितलिङ्गाद्वा देवदत्तस्य शतवर्षजीवित्वमवगतं चरमं शतवर्षजीवी गृह एवेति नियमे प्रत्यक्षेणावगते पश्चाद्योग्यानुपलब्ध्या निश्चितो गृहाभावो जीवननियमग्राहकप्रमा-

---

## अथ अर्थापत्तिरहस्यं।

व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यानुमितिजनकत्वं व्यवस्थाप्य प्रसङ्गसङ्गत्या अर्थापत्तेरतिरिक्तप्रमाणत्वं मीमांसकाभिमतं निराचष्टे, 'व्यतिरेक्यनुमानसिद्धाविति व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यानुमितिजनकत्वसिद्धावित्यर्थः, 'अर्थापत्तिः' अर्थापत्तिशब्दवाच्यं ज्ञानं, तच्चास्मन्मते व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजन्यानुमितिरेव तन्मते चातिरिक्तमिति ध्येयं। 'न मानान्तरमिति नानुमितिभिन्नमित्यर्थः, 'तेनैवेति अनुमानेनैव, 'तदर्थस्य' अर्थापत्तिशब्दवाच्यज्ञानस्य, 'सिद्धेः' उत्पत्तेरित्यर्थः, तथाचानुमितिसामग्रीभिन्नसामग्र्यजन्यत्वे सति जन्यत्वादिति हेतुरिति भावः(१)। न

---

(१) प्रयोगस्तु अर्थापत्तिशब्दवाच्यं ज्ञानं नानुमितिभिन्नं अनुमितिसामग्र्यजन्यत्वे सति जन्यत्वादित्याकारक इति।

णयोर्बलाबलानिरूपणाद्वह्निःसत्त्वकल्पनं विना नियमद्वयविषयकसंशयं जनयित्वा जीवति न वेति संशयमापाद्य जीवनसंशयापनुत्तये जीवनोपपादकं वह्निःसत्त्वं कल्पयतीति यथोक्तसामग्र्यनन्तरं वह्निरस्तीति प्रतीतेः तत्रान्वय-व्यतिरेकाभ्यां संशयद्वारा गृहाभावः तदुत्पादितनियमद्वयविषयकसंशयो वा करणं जीव-

---

त्वानुमितिसामग्रीजन्यत्वादित्येव सम्यक्, यथासन्निवेशे वैयर्थ्याभावात्(१)। अर्थापत्तिशब्दवाच्यं ज्ञानं अनुमितिभिन्नं न वेति विप्रतिपत्तिः, यद्वा व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानं व्यतिरेकव्याप्यविषयकानुमितिभिन्नप्रमितिकरणं न वेति विप्रतिपत्तिः, व्याप्तिविशिष्टबुद्धेः व्याप्तिज्ञानानुव्यवसायस्य च वारणाय व्यतिरेकव्याप्यविषयकेति।

अत्राभिनवमीमांसकाः प्रत्यक्षेणोमीत्यनुभवसिद्धप्रत्यक्षत्वादिजातिवत् अर्थादापादयामीत्यनुभवसिद्धमर्थापत्तित्वमपि जातिविशेषः सिद्ध्यति। न च व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजन्यानुमितित्वमेव तद्विषय इति वाच्यं। अननुगतत्वादित्वाप्पोपस्थितिकत्वेन तदुपस्थितिं विनापि तादृशानुगतमतेर्जायमानत्वात्। अथास्तु अर्थापत्तित्वनामा जातिविशेषः, स चानुमितित्वव्याप्य एव। न च तस्य तद्व्याप्यत्वे मानाभावः,

---

(१) अनुमितिसामग्रीभिन्नसामग्र्यजन्यत्वे सति जन्यत्वादिति हेतोरनुमितिसामग्रीजन्यत्वघटितत्वाभावात् न अर्थविशेषणघटितत्वमिति भावः।

मसंशयएव वा, करणे सव्यापारकत्वानियमात्। प्रमाणयोर्व्विरोधज्ञानं तदाहितसंशयद्वारा करणमिति कश्चित्। तदा जीवित्वस्य लिङ्गविशेषणस्य सन्दिग्धत्वेनानुमानासम्भवादर्थापत्तिर्म्मानान्तरम्। ननु संशयस्य कल्पकत्वे स्थाणु-पुरुषसंशयादपि तदेककोटिनिर्व्वाहकल्पनापत्तिः, न च प्रमितसंशयः कल्पनाङ्गं, जीवनस्य

---

व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजन्यज्ञाने अनुमिनोमीत्यनुव्यवसायस्यानुमितिसामग्रीजन्यत्वस्य च मानत्वादिति चेत्। न। तत्र तादृशानुव्यवसायस्यैवासिद्धेः प्रत्युत इदन्त्वसाचात्कृतं न वा अनुमितं परन्तु अर्थापत्त्या अवगतमिति वैपरीत्येनैवानुभवात्। अत एवानुमितिसामग्रीजन्यत्वमप्रसिद्धं तत्र तादृशव्यवसायाभावे लाघवात् साध्यवदन्यावृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वात् अर्थापत्तिं प्रति गुरुणोऽपि व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यानागत्या हेतुत्वकल्पनात् लघुनोऽप्यसम्भवात्। न चार्थापत्तिं प्रति लाघवात् साध्यवदन्यावृत्तित्वज्ञानं हेतुः अनुमितौ च व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानमित्येव किन्न स्यादिति वाच्यं। अन्वयव्याप्तिज्ञानजन्यज्ञाने अर्थादापादयामीत्यनुव्यवसायाभावात् अनुमिनोमीत्यनुव्यवसायात् व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजन्ये च तादृशानुव्यवसायादिति प्राहुः।

हेतोः स्वरूपासिद्धिमाशङ्कते, 'स्यादेतदिति, देवदत्तः शतवर्षजीवीति न ज्योतिःशास्त्रोक्तं किन्तु यत् केन्द्रस्थबृहस्पतिकं भवति

नत् शतवर्षजीवीति व्याप्तिमात्रग्राहकमत आह, 'तत्कथितेति' 'शतवर्षजीवी गृह एवेतीति देवदत्तः शतवर्षजीवी सन् गृहान्यावृत्तिरिति नियमे इत्यर्थः, 'निश्चितोऽगृहाभाव इति शतवर्षमध्ये एव गृहे देवदत्ताभावस्य निश्चय इत्यर्थः, 'जीवननियमग्राहकेति जीवित्वनिश्चय-गृहान्यावृत्तित्वनिश्चययोः प्रामाण्याप्रामाण्यान्यतरानिश्चयादित्यर्थः, 'वहिःसत्त्वकल्पनमिति वहिःसत्त्वनिश्चयाभावेन चेत्यर्थः, 'नियमद्वयविषयकमिति नियमद्वयविषयकनिश्चयद्वयविषयकं प्रामाण्यसंशयं जनयित्वेत्यर्थः, 'आपाद्य' उत्पाद्य, 'अपनुत्तये' निवृत्तये, 'जीवनोपपादकमिति शतवर्षमध्ये गृहसतः शतवर्षजीवित्वस्य व्यापकमित्यर्थः, 'कल्पयति' ज्ञापयति, अत्र मानमाह, 'यथोक्तेति, 'संशयद्वारा' प्रामाण्यसंशयद्वारा, 'गृहाभावः' गृहे देवदत्तस्याभावनिश्चयः, गृहाभावनिश्चयस्य प्रामाण्यसंशयं प्रत्यहेतुत्वेन तस्य तद्द्वारत्वासम्भवादाह, 'तदुत्पादितेति तत्प्रयोज्यनिश्चयद्वयविषयकप्रामाण्यसंशय इत्यर्थः, सोऽपि न जीवनकारणं जीवनसंशयेनान्यथासिद्धत्वात् तस्य तद्व्यापारत्वे मानाभावादत आह, 'जीवनसंशय एव वेति 'कारणमित्यनुषज्यते। ननु जीवनसंशयस्य व्यापाराभावात् कथं करणत्वमित्यत आह, 'करण इति फलायोगव्यवच्छिन्नत्वस्य करणलक्षणत्वात् इति भावः[(१)]। 'प्रमाणयोः' देवदत्ते शतवर्षजीवित्व-गृहान्यावृत्तित्वनिश्चययोः,'विरोधज्ञानं' विरुद्धार्थविषयकत्वज्ञानं, शतवर्षमध्ये गृहनिष्ठाभावप्रतियोगिनि शतवर्षजीवित्वं गृहान्यावृत्तित्वञ्च धर्मद्वयं विरुद्धं उभाभ्यां तन्निश्चयार्थं तदुभयविषयीकृतं ज्ञानमिति

(१) न तु फलायोगव्यवच्छिन्नव्यापारवत् कारणं करणमिति तात्पर्यम्।

तदानीं प्रमितत्वे संशयाभावप्रसङ्गात् जीवित्वनिश्चये-ऽनुमानादेव वह्निःसत्त्वनिश्चयाच्च, कदाचित् प्रमितत्वे च प्राक्प्रमितपुरुषत्वस्यान्तरा तत्संशये कल्पना स्यात्। किञ्च जीवनसंशयस्य मृतेऽपि दृष्टत्वान्न व्यभिचारेण वह्निःसत्त्वगमकमिति चेत्। न। यथोक्तसामग्रीप्रभव-संशयस्य कल्पनाङ्गत्वात्, अतएव मृत-जनिष्यमाणयो-र्गृहाभावनिश्चयो न यथोक्तसंशयमापादयतीति न वह्निःसत्त्वकल्पकः। गृहाभावश्च योग्यानुपलब्धिनि-

---

यावत्, 'तदाहितेति तादृशविरोधज्ञानाहितप्रामाण्यसंशयद्वारेत्यर्थः, तादृशविरोधज्ञानं विना प्रामाण्यसंशयासम्भवेन उपजीव्यत्वादिति भावः। 'कश्चिदित्यस्वरसोद्भावनं तद्बीजन्तु आन्तरालिकस्य प्रामाण्य-संशयस्य तद्व्यापारत्वे मानाभाव इति। 'लिङ्गविशेषणस्येति, जीवित्वे सति गृहासत्त्वस्यैव हेतूकरणीयत्वादिति भावः। 'अनुमानासम्भवात्' अनुमितिसामग्र्यसम्भवात्, 'कदाचित् प्रमितत्व इति यदा कदाचि-न्निश्चितविषयकसन्देहस्यैव कल्पनाङ्गत्व इत्यर्थः, 'कल्पना स्यात्' जीवन-तदुपपादककल्पना स्यात्, 'जीवनसंशयस्येति जीवनसंशयो यस्मादिति व्युत्पत्त्या गृहासत्त्वनिश्चयस्येत्यर्थः, यथाश्रुते समाधाने 'गृहाभाव-निश्चय इत्यसङ्गतेः तच्चानुपदं स्फुटीभविष्यति, 'मृतेऽपि' मृतत्वेन निश्चितेऽपि, 'व्यभिचारेण' अन्वयव्यभिचारेण, 'यथोक्तेति, 'संशयस्य' जीवनसंशयस्येत्यर्थः, कार्य्य-कारणभावस्तु फलबलात्तद्व्यक्तित्वेन विश्व-

श्चितो न संशय इति। अथ जीवननियमग्राहकप्रमाणयोर्यदि च तुल्यबलत्वमवगतं क तर्हि वहिःसत्त्वकल्पना विशेषदर्शनविरहात्, कल्पने वा प्रमितजीवननिर्व्वाहकवहिःसत्त्ववद्गृहनियमनिर्व्वाहकमरणस्याप्युचितत्वेन तत्कल्पनापि स्यात् जीवन-मरणयोः संशयाविशेषात्। अथ तयोरेकं बलीयोऽपरमबलं तदैकेनापरस्य बाध एवेति न संशयः तस्माच्च शतवर्ष-

---

चणाशक्तिमत्त्वेनैव वेति। 'किञ्चेत्युक्तदोषमुद्धरति, 'अत एवेति यथोक्तसामग्रीप्रभवसंशयस्य कल्पनाङ्गत्वादेवेत्यर्थः, 'मृत-जनिष्यमाणयोरिति मृतत्व-जनिष्यमाणत्वेन निश्चितयोरित्यर्थः, 'गृहाभावनिश्चयः' गृहासत्त्वनिश्चयः, 'यथोक्तेति यथोक्तरूपेण जीवित्वसंशयं जनयतीत्यर्थः।

केचित्तु 'जीवनसंशयस्येति यथा कथञ्चित् जीवनसंशयस्येत्यर्थः, 'मृतेऽपीति, वहिःसत्त्वनिश्चयाभावोऽसिद्ध एवेति भावः। एतेन दूषणद्वयमेव निराकृतं। ननु तथापि मृतत्वादिना निश्चिते गृहासत्त्वनिश्चयः वहिःसत्त्वं न कल्पयतीति अत आह, 'अत एवेति, अर्थस्तुपूर्व्ववदित्याहुः।

ननु जीवित्वनिश्चये प्रामाण्यसंशयात् जीवित्वसंशय इव योग्यानुपलब्धिजनितगृहाभावनिश्चयेऽपि प्रामाण्यसंशयात् कथं न गृहाभावसंशय इत्यत आह, 'गृहाभावस्येति, तथाच तत्र योग्यानुपल-

जीवित्वमवधारितं गृहाभावस्य निश्चितः तत्र वहिः-सत्त्वकल्पनं न तु जीवनसंशये, एवञ्च देवदत्तो वहिः सन् जीवित्वे सति गृहनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वादिति व्यतिरेकिणा वहिःसत्त्वज्ञानेनार्थापत्त्या लिङ्ग-विशेषणजीवित्वसंशये वहिःसत्त्वकल्पना च नास्त्येव। किञ्च गृहाभावनिश्चयः प्रमाणद्वयविषयसंशयं जनयित्वा जीवनसंशयमापाद्य वहिःसत्त्वं कल्पयतीति न युक्तं, न हि यत एव यत्संशयः स एव तन्निश्चयाय

---

भिजनितज्ञानमेव विशेषदर्शनतया प्रामाण्यसंशयविरोधीति भावः। 'जीवननियमेति देवदत्ते शतवर्षजीवित्वगृहान्यावृत्तित्वनिश्चययोरित्यर्थः, 'तुल्यबलत्वमिति उभयत्रैव सन्दिग्धाप्रामाण्यकत्वमित्यर्थः, 'अवगतं' प्रमाणसिद्धं, 'वहिःसत्त्वकल्पना' वहिःसत्त्वनिश्चयः, 'विशेषदर्शनेति वहिःसत्त्वव्याप्यस्य शतवर्षमध्ये गृहासत्त्वे सति शतवर्षजीवित्वस्य निश्चयविरहादित्यर्थः, व्याप्यनिश्चय एव तदनुपपत्त्या व्यापककल्पनादिति भावः। ननु संशयकरणकार्थापत्तिस्थले व्याप्यनिश्चयो न हेतुः किन्तु व्याप्यसंशय एव तथा फलबलात् तथैव कल्पनादित्यस्वरसादाह, 'कल्पने वेति, 'जीवनेति शतवर्षमध्ये गृहासत्त्वे सति शतवर्षजीवित्वस्य व्यापकेत्यर्थः, 'गृहनियमेति गृहासतो गृहान्यावृत्तित्वस्य व्यापकेत्यर्थः, 'उचितत्वेन' त्वदभिमतनिश्चायकसामग्री-विशिष्टत्वेन, व्याप्यसंशयमात्रं न व्यापकार्थापत्तिहेतुः किन्तु विलक्षण-

प्रभवति, अतिप्रसङ्गात्। मैवम्। यथोक्तसामग्रीजनित-संशयवानेवं तर्कयति योग्यानुपलब्धिगृहीतो गृहाभाववइति तन्निश्चयः सुदृढइति जीवननियमग्राहकयोरेकं बाध्यं विरुद्धयोरप्रमाणत्वात् तदिह मरणं कल्पयित्वा जीवनग्राहकं बाध्यतां नोवा वहिःसत्त्वं कल्पयित्वा गृहनियमग्राहकं तत्र वहिःसत्त्वकल्पने गृहनियमग्राहकमात्रबाधा, मरणकल्पने तु शतवर्षजीवी देवदत्तः

---

स्तत्संशय एवेत्यत आह, 'जीवनेति, जीवन-मरणयोः' जीवित्व-तद्भावयोः, 'संशयेति, गृहान्यावृत्तित्वसंशयतोऽवैलक्षण्यादित्यर्थः। 'एकं' गृहान्यावृत्तित्वज्ञानं, 'बलीयः' निश्चितप्रामाण्यकं, 'अपरं' शतवर्षजीवित्वज्ञानं, 'अबलं' गृहीताप्रामाण्यकं, 'एकेनेति शतवर्षमध्ये गृहनिष्ठाभावप्रतियोगित्वेन निश्चितस्य देवदत्तस्य गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयेनेत्यर्थः, 'अपरस्य' अपरविषयीभूतस्य शतवर्षजीवित्वस्य, 'बाधः' अभावनिश्चयः, शतवर्षमध्ये गृहासत्त्वे सति गृहान्यावृत्तेः शतवर्षजीवित्वाभावनिश्चयादिति भावः। 'न संशय इति न शतवर्षजीवित्वसंशय इत्यर्थः, 'अवधारितमिति निश्चितमित्यर्थः, गृहान्यावृत्तित्वञ्च सन्दिग्धमित्यपि बोध्यं, 'गृहाभावः' गृहेऽभावः। नन्वेवमेव वक्तव्यमित्यत आह, 'एवञ्चेति, 'जीवित्वे सतीति एतच्छतवर्षमध्ये गृहनिष्ठाभावप्रतियोगित्वादित्यर्थः, 'व्यतिरेकिणेति, इदमुपलक्षणं देवदत्तभिन्ने मैत्रादौ साध्य-हेतुनिश्चयदशायामन्वयिनापि सम्भव-

शतवर्षजीवी गृह एवेतिनियमद्वयस्यापि बाधा स्यात्, तदाह जीवनबाधे तन्नियमबाधस्यावश्यकत्वादिति। किञ्च अद्य जीवति श्वो जीविष्यतीत्यादिबहुतरक्षण-लव-मुहूर्त्तादिसमयोपाधिनियतं जीवनमुपलब्धमिति तद्बाधे बहुतरव्याप्तिबाधः, देवदत्त-तदवयवगृहसत्त्व-व्याप्तिस्वाल्पा तथा अभावस्वरूपमरणापेक्षया बहिः-

---

तीति बोध्यं, 'लिङ्गेति, अग्रे 'कल्पना चेति चकारो यत इत्यर्थे, यतो लिङ्गविशेषणजीवित्वसंशये बहिःसत्त्वकल्पना नास्त्येवेत्यर्थः। 'प्रमाणद्वयेति निश्चयद्वयविषयकप्रामाण्यसंशयमित्यर्थः, 'जीवनसंशय-मिति जीवन-गृहान्यावृत्तित्वयोः संशयमापाद्येत्यर्थः,'तन्निश्चयायेति, गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयस्यैव बहिःसत्त्वसंशयत्वादिति भावः। 'अतिप्रस-ङ्गादिति सर्व्वत्रैव तत्संशयोत्तरं तन्निश्चयापत्तेरित्यर्थः, पूर्वं तत्संशयस्य तदुपपादकनिश्चयहेतुत्वे सर्व्वत्रैव तत्संशयानन्तरं तदुपपादककल्पना-पत्तिरित्युक्तं, अत्र तु तत्संशायकस्यैव तन्निश्चयहेतुत्वे सर्व्वत्र तत्संशया-नन्तरं तन्निश्चयापत्तिरित्युच्यते इति न पौनरुक्त्यं। यद्यपि यथोक्त-सामग्रीप्रभवसंशयसहकारेण तत्संशायकस्य तन्निश्चयहेतुत्वाभ्युपगमा-न्नातिप्रसङ्गः, तथापि स्फुटत्वात् तदनुपेक्ष्य एकमेव समाधानं उभ-याह, 'नैवमिति, 'एवं तर्कयतीति एवं लाघव-गौरवतर्कमवतारय-तीत्यर्थः, 'योग्यानुपलब्धीति लाघव-गौरवज्ञानशरीरं भवति, तथा च शतवर्षमध्ये गृहासति पुरुषे शतवर्षजीवित्वं गृहान्यावृत्तित्वञ्च द्वयं विरुद्धमिति भावः। 'मरणं कल्पयित्वेति मरणसत्त्वेन जीवनज्ञान-

सत्त्वस्य भावस्य लघुत्वं, यदि च गृहान्योन्याभावाश्रय-वहिःपदार्थवृत्तिसंयोगाश्रयत्वं वहिःसत्त्वमिति तद-पेक्षया मरणमेव लघु, तथापि मरणापेक्षया जीवन-मात्रं लघ्विति तदेव कल्पयितुमर्हं । ततोऽर्थापत्ति-कल्पितं जीवित्वमुपजीव्यानुमानादपि वहिःसत्त्वज्ञानं

---

मप्रमेत्यर्थः, 'वहिःसत्त्वं कल्पयित्वेति वहिःसत्त्वसत्त्वेनेत्यर्थः, 'वहिःसत्त्व-कल्पन इति वहिःसत्त्वसत्त्वे इत्यर्थः, 'गृहनियमेति गृहान्यावृत्तित्व-निश्चयेत्यर्थः, 'बाधा' अप्रमात्वं, 'शतवर्षजीवी गृह एवेति शतवर्ष-जीवित्वे सति गृहान्यावृत्तिरित्यर्थः, 'नियमद्वयस्यापि बाधा स्यादिति निश्चयद्वयस्य विभिन्नरूपाप्रमात्वं स्यात्, 'शतवर्षजीवी देवदत्तः' इत्यस्य शतवर्षजीवित्वाभाववति शतवर्षजीवित्वप्रकारकत्वरूपशतवर्ष-जीवित्वाप्रमात्वं स्यात् शतवर्षजीवित्वे सति गृहान्यावृत्तिरित्यस्य शतवर्षजीवित्वस्य विशेषणस्याभावेन विशिष्टस्याप्यभावाच्छतवर्षजीवि-त्वविशिष्टगृहान्यावृत्तित्वप्रकारकत्वरूपविशिष्टाप्रमात्वं स्यादिति यथा-श्रुतेऽर्थे 'न तत्र विशिष्टबाधो विशेष्यबाधात्' इत्यग्रिमग्रन्थासङ्गतेः तस्य तत्रैव व्यक्तिर्भविष्यति । 'तन्नियमबाधस्येति देवदत्तः शतवर्ष-जीवित्वे सति गृहान्यावृत्तिरिति निर्णयप्रमात्वाभावस्येत्यर्थः, 'तद्बाध-इति तेषामप्रामाण्ये इत्यर्थः, 'बहुतरव्याप्तीति ज्योतिःशास्त्रजनित-तद्वत्प्रोक्तवहुतरव्याप्तिज्ञानानामप्रामाण्यमित्यर्थः, 'देवदत्त-तद्व-र्थवेति, 'गृहसत्त्वव्याप्तिः' तादात्म्यसम्बन्धेन गृहसत्त्वस्य व्याप्तिधीः

भविष्यतीत्येतावत्तर्कसहकृततो यथोक्तसामग्रीप्रभवः संशयो वहिःसत्त्वं कल्पयति। न च वाच्यं तर्काणां विपर्य्ययापर्य्यवसायित्वे आभासत्वं, तत्पर्य्यवसाने च

---

गृहान्यावृत्तित्वधीरिति यावत्। न च एकस्य देवदत्तस्य तावत्कालो-पाधिनिश्चयापेक्षया देवदत्त-तदवयवादिपरम्परार्थ-गृहान्यावृत्ति-त्वनिश्चयानां कथमल्पत्वमिति वाच्यं। तावत्कालोपाधिजीवित्व-निश्चयस्यापि देवदत्त-तदवयवादिपरम्परार्थयावत्सत्त्वे जीवनग्राहकस्य वहुत्वात्। न च तथापि वहिःसत्त्वकल्पने देवदत्त-तदवयवादि-परम्परार्थग्रहनियमवत्त्वेषु तदवयवादिपरम्परनियमनिश्चयानामप्य-प्रमात्वं स्यादिति कथमल्पत्वमिति वाच्यं। मरणकल्पने गृह-तदवय-वादिपरम्पराणां देवदत्त-तदवयवादिपरम्पराणामपि कालोपाधि--तया तत्तज्जीवित्वनिश्चयानां कालोपाध्यन्तरजीवित्वनिश्चयानामप्य-प्रमात्वं स्यादिति भावः। 'अभावस्वरूपेति तत्पुरुषीयशरीरसंयोगा-धिकरणक्षणावृत्ति तत्पुरुषीयशरीरप्राणसंयोगध्वंसरूपेत्यर्थः, 'गृहा-न्योन्याभावाश्रयेति, गृह-तदभावान्योन्याभावकूटघटितत्वेन च वहिः-सत्त्वं गुर्व्विति भावः। अदृष्टविशेषध्वंसो मरणमित्यभिप्रायेणैतदभि-प्राय इत्यपि कश्चित्। 'तदेवेति वहिःसत्त्वमेवेत्यर्थः, वहिःसत्त्वकल्पने लघुतरं जीवनमायास्यति मरणकल्पने च वहिःसत्त्वापेक्षया गुरुतरं गृहान्यावृत्तित्वमायास्यतीति गौरवादिति भावः। तथा सति जीवनमात्रमेव कल्प्यतां किं वहिःसत्त्वकल्पनेनेत्याशङ्कायामाह, 'ततः

तद्वेवानुमानमेतत्तर्कसहायं वह्निःसत्त्वमनुमापयिष्यतीति यतो लाघव-गौरवतर्काणां विपर्य्ययापर्य्यवसायिनामेव प्रमाणसहकारित्वमत एव प्रत्यक्ष-शब्दादावपि

इति, 'उपजीव्य' हेतूकृत्य, 'अनुमानादपीति तथाचैतस्याल्पत्वात् तर्कत्वमपि कल्प्यत इति भावः। 'एतावत्तर्केति एतावल्लाघवज्ञानेनेत्यर्थः, 'वह्निःसत्त्वं कल्पयति' वह्निःसत्त्वं निश्चाययतीत्यर्थः, मरणे च लाघवज्ञानाभावान्न तन्निश्चयं जनयतीति भावः। एतेन 'किञ्चेत्युक्तमपि प्रत्युक्तं, तत्संशायकमात्रस्य तन्निश्चायकत्वे एवातिप्रसङ्गात् सहकारिविशेषमासाद्य तस्य तथात्वे चातिप्रसङ्गाभावादिति हृदयं। न च संशयसामान्यमेव कल्पकमस्तु कृतं यथोक्तसामग्रीप्रभवत्वविशेषणेनेति वाच्यं। अयं पुरुषो न वेति संशयस्यापि पुरुषत्वं भावरूपं तदभावापेक्षया लघ्विति तर्कसहकृतस्य पुरुषत्वकल्पकत्वापत्तेः अचेष्टापत्तौ न देयमेवोक्तविशेषणमिति ध्येयं। 'विपर्य्ययेति, 'विपर्य्ययः' गुर्व्वर्थविपरीतः लाघवार्थ इति यावत्, 'तदपर्य्यवसायित्वे' तदनुमितिजनकसामग्र्यसहकृतत्वे, 'आभासत्वं' लघ्वर्थनिश्चयाजनकत्वं, ईश्वरानुमानादौ लाघवज्ञानस्य लघ्वर्थानुमितिजनकसहकारेण लघ्वर्थनिश्चयजनकत्वदर्शनादिति भावः। 'तत्पर्य्यवसाने चेति देवदत्तएतत्कालीनवह्निःसत्त्व-मरणान्यतरप्रतियोगी एतत्कालीनप्रागभावाप्रतियोगित्वे सति गृहासत्त्वादित्यनुमितिजनकसामग्र्याः सहकारित्वे चेत्यर्थः, 'विपर्ययेति लघ्वर्थानुमितिजनकसामग्र्यसहकृतानामपीत्यर्थः।

सहकारी सः। न च तस्यां दशायामेव प्रमाणा-न्तरमस्ति, ततोऽर्थापत्तिसहकारित्वं तर्कस्य। ननु स्वकारणाधीनस्वभावविशेषात्तर्कानुगृहीतयथोक्तसंशयस्य यदि वहिःसत्त्वप्रमापकत्वं तदा मृते गृहस्थिते वा तादृशसंशयाद्यत्र वहिःसत्त्वकल्पना सापि प्रमा स्यादिति चेत्। न। यथाहि प्रमापकस्येन्द्रियस्य दोषेण प्रमाशक्तितिरोधानादैन्द्रियकभ्रमः तथा यथोक्तसंशयस्यापि दोषेण प्रमाशक्तितिरोधानादग्रहरूपभ्रमसम्भवात् परोक्षज्ञानानां जनकज्ञानाविभ्रमत्वे यथार्थत्वनियमइति चेत्, सत्यं प्रकृतेऽपि जीवन-गृहाभावनियमग्राहकप्रमाणयोरन्यतराभासत्वेनाभासत्व-

---

ननु लाघवज्ञानस्य प्रमाणान्तरसहकारित्वे प्रमाणान्तरादेव वहिःसत्त्वज्ञानं भविष्यति किमर्थापत्त्येत्यत आह, 'न चेति, 'तस्यामिति लाघवज्ञानदशायामित्यर्थः, 'स्वभावविशेषात्' विशेषशक्तिविशेषात्। 'प्रमाशक्तीति प्रमाजनकशक्तेरुद्भावनाशादित्यर्थः, उद्भवश्च शक्तिनिष्ठपदार्थान्तरं, 'अग्रहरूपेति धर्म-धर्मिणोर्भेदाग्रहरूपेत्यर्थः, गुरुभिरन्यथाख्यात्यनभ्युपगमादिदमुक्तं। 'जीवन-गृहाभावग्राहकप्रमाणयोरिति शतवर्षजीवित्वनिश्चय-योग्यानुपलब्धिजनितगृहाभावनिश्चययोरित्यर्थः, मृतस्थले जीवननिश्चयस्याभावसत्त्वादिति भावः। कुत्रचित् 'जीवननियमग्राहकयोरिति पाठः अत्रापि 'नियमग्राहक-

सम्भवात्। यद्वा दोषाभावसहकृतस्य यथोक्तसंशयस्य वह्निःसत्त्वप्रमापकत्वमिति।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे संशयकारणकार्यापत्तिपूर्व्व-पक्षः॥ * ॥

---

पदेन योग्यानुपलब्धिजनितः देवदत्तोऽगृहे नास्त्येवेति निश्चयोविव-क्षितः न तु जीवी गृहे एवेतिनिश्चयः, तथासति वह्निःसत्त्वं कुत्रापि न स्यात्, गृहे एवेतिनिश्चयस्य कुत्राप्याभासत्वादिति ध्येयं। दोषेण प्रमाप्रकेद्भावनाप्रमुक्त्वा दोषाभावस्य प्रमाहेतुत्वमाह, 'यद्वे'ति।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये संशयकारणकार्यापत्तिपूर्वपक्षरहस्यं।

## अथ संशयकारणकार्यापत्तिसिद्धान्तः।

उच्यते। अनयोरेकं बाध्यं विरुद्धार्थग्राहकत्वादिति सामान्यतोदृष्टादेव तर्कसहकृतात् गृहनियमग्राहकबाधे लिङ्गविशेषणजीवित्वनिश्चयेऽनुमानाद्बहिःसत्त्वसिद्धिः, तथाहि जीवनप्रमाणबाधे गृहनियमप्रमाणोत्थापित-लिङ्गेन मरणानुमानात् प्रमाणत्वाभिमतयोर्द्वयोरपि बाधा स्यात् गृहनियमग्राहकमानबाधे च निष्परिपन्थि-जीवनप्रमाणाल्लिङ्गविशेषणजीवित्वनिश्चये बहिःस-

---

अथ संशयकारणकार्यापत्तिसिद्धान्तरहस्यं।

'अनयोरिति देवदत्तः शतवर्षजीवी देवदत्तोगृहान्यावृत्तिरिति निश्चयद्वयान्यतरत्वं शतवर्षजीवित्वभ्रम-गृहान्यावृत्तित्वभ्रमद्वयान्यतर-वृत्ति शतवर्षजीवित्व-गृहान्यावृत्तित्वोभयविरोधनिरूपकाधिकरण-विशेष्यक-शतवर्षजीवित्वप्रकारकज्ञानवृत्तित्वे सति तद्विशेष्यकगृहा-न्यावृत्तित्वप्रकारकज्ञानवृत्तित्वादित्यर्थः, तदुभयविरोधनिरूपकत्वन्तु तदुभयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववत्त्वं, यत् तदुभयोर्विरोधनि-रूपकाधिकरणविशेष्यक-तत्प्रकारकज्ञानवृत्तित्वे सति तादृशाधिकर-णविशेष्यक-तत्प्रकारकज्ञानवृत्ति तत्तद्भ्रम-तद्भ्रमद्वयान्यतरवृत्ति यथा सत्तावान् गुणः द्रव्यत्ववान् गुण इतिनिश्चयद्वयान्यतरत्वमिति सामा-

स्यानुमानादेकप्रमाणबाधैवेत्यादितर्कसहकृतात् सामान्यतोदृष्टादेवानयोरेकं बाध्यमिति जायमानानुमितिः परम्परामरणज्ञापकं विषयीकरोति, न तु वहिःसत्त्वपरम्परासाधकं जीवनप्रमाणं, तथाच सामान्यतोदृष्टादेव गृहनियमग्राहकबाधे जीवनप्रमाणाल्लिङ्गविशेषणजीवित्वनिश्चयेऽनुमानादेव वहिःसत्त्वज्ञानमिति किमर्थापत्त्या। ननु वहिःसत्त्वज्ञानं विना जीवी गृहएवेत्यस्य ब्रह्मणापि बाधितुमशक्यत्वात् प्रथमं वहिःसत्त्वज्ञानं न तु गृहनियमग्राहकबाधानन्तरं तत् येन निष्प्रतिपन्थिजीवनग्राहकाज्जीवित्वनिश्चयेऽनुमानं स्यात्, न

---

न्मुखी च व्याप्तिरिति भावः। यथाश्रुते शतवर्षजीवी देवदत्त इत्यत्र व्यभिचारात् तस्य प्रमात्वात् बाधत्वस्य सामान्यतोदुर्वचत्वाच्च। 'तर्कसहकृतादिति लाघवज्ञानसहकृतादित्यर्थः,'गृहनियमग्राहकबाधइति गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयस्याप्रमात्वनिश्चये इत्यर्थः, 'जीवनप्रमाणबाध इति शतवर्षजीवित्वनिश्चयस्याप्रमात्वे इत्यर्थः, 'गृहनियमप्रमाणेति गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयान्वितेन एतत्कालीनप्रागभावाप्रतियोगिप्राणित्वे सति गृहान्यावृत्तित्वविशिष्टगृहासत्त्वेन लिङ्गेनेत्यर्थः, 'मरणानुमानात्' मरणस्यानुमानप्रमाणसिद्धत्वात्, 'प्रमाणत्वाभिमतयोरिति शतवर्षजीवी देवदत्तः शतवर्षजीवी देवदत्तोगृह एवेतिनिश्चयद्वयोरित्यर्थः, 'बाधा स्यात्' अप्रमात्वं स्यात्, शतवर्षजीवी

प्राथमिकवह्निःसत्त्वज्ञानमर्थापत्तिं विना। न च गृह-नियमग्राहिणि तुल्यबले जागरूके कथमर्थापत्त्यापि वह्निःस्वत्त्वज्ञानमिति वाच्यं। तर्कसहकारेणार्थापत्तेर्बल-वत्त्वाद्वह्निःसत्वज्ञानमुत्पाद्य गृहनियमग्राहकमानबा-धादिति चेत्। न। तर्कसहकारेण सामान्यतोदृष्टस्य बलवत्त्वेन गृहनियमग्राहकबाधसम्भवात्, तस्माद्यथो-क्तसंशयदशायां जीवनबाधे तन्नियमबाधस्यावश्यकत्वा-दिति तर्कानन्तरमेव वह्निःसत्त्वज्ञानमित्यविवादं, तच्च कल्पनीयप्रमाणाभावे यथोक्तसंशये तर्कस्य न सह-कारित्वं गौरवात् किन्तु नियमग्राहकबाधद्वारा वह्निः-

---

देवदत्तोऽगृह एवेतिनिश्चयेऽपि शतवर्षजीवित्वस्य देवदत्ते प्रकारकत्वा-दिति भावः। 'निष्परिपन्थीति 'प्रतिबन्धकासमवहितेत्यर्थः, 'जीवन-प्रमाणात्' केन्द्रस्थवृहस्पतिकत्वादिनिष्ठप्रमात्मकजीवित्वव्याप्तिनिश्च-यात्, 'जीवित्वनिश्चये' जीवित्वसिद्धौ, 'वह्निःसत्त्वानुमानात्' वह्निः-सत्त्वस्यानुमानप्रमाणसिद्धत्वात्, 'एकप्रमाणबाधेवेति गृहान्यावृत्तित्व-निश्चयस्यैवाप्रमात्वं स्यादित्यर्थः, 'परम्परेति गृहान्यावृत्तित्वनिश्चय-मित्यर्थः, 'जीवनप्रमाणं' शतवर्षजीवित्वं, 'बाधे' अप्रमात्वनिश्चये, 'जीवनप्रमाणादिति। 'वह्निःसत्त्वज्ञानं विनेति देवदत्ते वह्निस्त्वनिश्चयं विनेत्यर्थः, 'बाधितुमिति अप्रमात्वेन निश्चितुमित्यर्थः, गृहनियम-निश्चयस्याप्रमात्वं हि वह्निःसत्त्ववति देवदत्ते गृहान्यावृत्तित्वप्रकारकत्वं

सत्त्वपरम्परासाधके सामान्यतोदृष्टे लाघवात्। न च सामान्यतोदृष्टावतार एवाच नास्तीति वाच्यम्। अनिर्द्धारितैकबाधप्राप्तौ ह्येकबाधानुकूलकल्पनायां विनिगमकस्तर्को भवति, न चैकबाधप्राप्तिः सामान्यतोदृष्टं विना। किञ्च विरोधज्ञानानन्तरमेकमप्रमाणमिति यदि धीर्नास्ति तदा प्रामाण्यसंशयो न स्यात् न स्याच्च जीवनसंशयः द्वयोरपि जीवनमरणनिश्चायकत्वात्। अथैकमनयोरप्रमाणमिति ज्ञानं जनयित्वा सामान्यतोदृष्टस्य

---

वहिःसत्त्वस्यैव गृहान्यावृत्तित्वाभावत्वादिति देवदत्ते तन्निश्चयस्यावश्यकत्वादिति भावः। 'बाधानन्तरं' अप्रमात्वनिश्चयानन्तरं, 'तत्' देवदत्ते वहिःसत्त्वज्ञानं। 'गृहनियमेति गृहान्यावृत्तित्वसंशये इत्यर्थः, जीवित्वसंशयकालोत्पन्नप्रामाण्यसंशयाहितगृहान्यावृत्तित्वसंशयात्मककोटिद्वयोपस्थितिसत्त्वादिति भावः। 'अर्थापत्तेर्बलवत्त्वादिति अर्थापत्तिजनकीभूतस्य जीवित्वसंशयस्य गृहान्यावृत्तित्वसंशये प्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, अलौकिकप्रत्यक्षसामग्र्या मानससामग्र्याः सर्वतो बलवत्त्वात् गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयस्याप्रमात्वग्रहसम्भवादिति भावः। 'जीवनबाध इति जीवित्वनिश्चयस्याप्रामाण्ये इत्यर्थः, 'तन्नियमेति शतवर्षजीवी देवदत्तो गृह एवेति निर्णयाप्रमात्वस्यावश्यकत्वादित्यर्थः, 'कल्पनीयप्रमाणाभाव इति कल्पनीयप्रमितिजनकताकेत्यर्थः, 'गृहनियमग्राहकद्वारेति गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयस्य प्रामाण्यद्वारेत्यर्थः,

पर्य्यवसितत्वात्तज्जनितनियमद्वयसंशयाहितजीवनसं-
शयानन्तरं तर्कावतारे वह्निरस्तीतिज्ञानं जायमानं
संशयस्य कारणत्वं व्यवस्थापयतीति चेत् । न । यदेव
हि विरुद्धार्थग्राहकत्वं तर्कविनाकृतमनिर्द्धारितैका-
प्रामाण्यानुमितिमजीजनत्तदेव तर्कसहकृतं पुन-
रनुसन्धीयमानं गृहनियमग्राहकप्रमाणमित्यनुमितिं
वह्निःसत्त्वज्ञानानुकूलां जनयति सहकारिवैचित्र्यादेक-
स्यापि विचित्रफलजनकत्वात् । न च जीवनसंशयान-

---

'अनिर्द्धारितैकेति सामान्यतोऽन्यतरनिश्चयस्याप्रामाण्यनिश्चयेत्यर्थः, 'एकबाधानुकूलेति गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयस्याप्रामाण्यानुकूलवह्निः-सत्त्वकल्पनायामित्यर्थः, 'एकबाधप्राप्तिः सामान्यतोऽन्यतरनिश्चय-स्याप्रामाण्यनिश्चयः । ननु सामान्यतोऽन्यतराप्रामाण्यनिश्चयं विनैव इदमप्रमाणमितिसंशयो यथोक्तलाघवतर्कसहकाराद्वह्निःसत्त्वनिश्चयं जनयिष्यति किं सामान्यतोदृष्टेनेत्यत आह, 'किञ्चेति, 'विरोध-ज्ञानानन्तरं' विरुद्धार्थविषयकज्ञानानन्तरं, 'एकमप्रमाणमिति अन-योरन्यतरदप्रमाणमिति धीर्यदि नास्तीत्यर्थः, 'तदा प्रामाण्येति, गृहाभावनिश्चयात् प्राक्द्वयोर्विरुद्धार्थविषयकत्वानुपस्थित्याप्रामाण्य-निश्चितप्रामाण्यकत्वान्यतरस्याप्रामाण्यज्ञाने च तत्र च प्रामाण्य-निश्चयेऽप्रामाण्यसंशयादिति भावः । ननु मा भूत् प्रामाण्यसंशयो-जीवनसंशयादेव वह्निःसत्त्वकल्पना भविष्यतीत्यत आह, 'न स्यो-

न्तरं तदनुसन्धानमसिद्धं गृहनियमग्राहकस्य जीवनग्राहकविरुद्धार्थग्राहकत्वं विना[1] वहिःसत्त्वकल्पनेऽप्यबाधप्रसङ्गात्। अथ यदि पर्य्यवसन्नमपि प्रमाणं पुनरनुसन्धीयमानं सहकारिविशेषात् फलान्तरजनकं तदेच्छा द्रव्याश्रिता कार्य्यत्वादिति सामान्यतो दृष्टद्रव्याश्रितत्वानुमितौ पश्चाद्दृष्टद्रव्यवृत्तित्वबाधे व्यतिरेकिणात्मसिद्धिरिति भज्येत अदृष्टद्रव्यवृत्तित्वबाधसहकृतात् सामान्यतोदृष्टादेव पुनरनुसन्धीयमानात् तत्सिद्धेरिति

ह्येति, 'द्वयोरिति जीवनग्राहकप्रमाण-गृहान्यावृत्तित्वग्राहकप्रमाणयोरित्यर्थः, 'जीवन-मरणेति, 'मरणपदं मरणनिर्व्वाह्यगृहान्यावृत्तित्वपरं, जीवित्व-गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयोपस्थितत्वादित्यर्थः, तथा चागृहीताप्रामाण्यकजीवित्वनिश्चयसत्त्वात् कथं तत्संशय इति भावः। इदमापाततः यत्र द्वयोः प्रामाण्यं पूर्वं न निश्चितं तत्र सामान्यतोदृष्टं प्रति प्रामाण्यसंशयादिसम्भवादिति ध्येयं। नन्वेतावता भवत्वप्रामाण्यसंशयात् पूर्व्वं सामान्यतोदृष्टाभावः तथापि तस्यानयोरेकमप्रमाणमिति ज्ञानं जनयित्वा विनाशात् तज्जनितप्रामाण्यसंशयाहितजीवित्वसंशयानन्तरं तर्कावतारे वहिरस्तीति ज्ञानं स्यात् तत्र जीवित्वसंशयस्य कारणत्वादित्याशङ्कते, 'अथेति, 'पर्य्यवसितत्वात्' विनाशात्, 'नियमद्वयेति निश्चयद्वयप्रामाण्य-

(१) विरुद्धार्थग्राहकत्वानुसन्धानं विनेति क० ख०।

षेत् । न । अनुमितेर्व्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्वनियमेन तत्प्रकारकबुद्धेर्व्यतिरेकिसाध्यत्वात् व्यतिरेकिणोऽप्यन्यथ सामर्थ्यावधारणेनोपायान्तरस्यादोषाच्च । अपि च देवदत्तो जीवन-मरणान्यतरप्रतियोगी प्राणित्वान्मद्वदिति सामान्यतोदृष्टं लाघवसहकारेण जीवनप्रतियोगित्वं विषयीकरोति तथाच लिङ्गविशेषणनिश्चया-

---

संशयाहितेत्यर्थः, 'अनिर्द्धारितेति सामान्यतोऽन्यतरनिश्चयस्याप्रामाण्यानुमितिमित्यर्थः, 'पुनरिति जीवनसंशयानन्तरं पुनरनुसन्धीयमानमित्यर्थः, 'विरुद्धार्थग्राहकत्वं विना' तज्ज्ञानं विना, 'वहिःसत्त्वकल्पनेऽपीति, षष्ठ्यर्थे सप्तमी, 'अबाधप्रसङ्गादिति 'बाधः' असत्त्वं, तदभावप्रसङ्गात् सत्त्वप्रसङ्गादिति यावत्, 'तदनुसन्धानं विना', तस्यासत्त्वन्तु अनुभवसाक्षिकमिति भावः । 'पर्यवसन्नमपीति विशिष्टमपीत्यर्थः, 'अष्टद्रव्यवृत्तित्वबाध इति अष्टद्रव्यवृत्तित्वाभावनिश्चय इत्यर्थः, 'व्यतिरेकिणेति इच्छा अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रिता अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति गुणत्वादिति व्यतिरेकिणेत्यर्थः, 'तत्सिद्धेरिति अष्टद्र' ातिरिक्तद्रव्यसिद्धेः सम्भवादित्यर्थः, 'तत्प्रकारकेति अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्वप्रकारकेत्यर्थः । ननु लाघव-बाधसहकारेण व्यापकतानवच्छेदकमपि प्रकारीभूय भासते ईश्वरानुमानादौ तथा दर्शनादित्यत आह, 'व्यतिरेकिणोऽपीति व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यापीत्यर्थः । ननु विरुद्धार्थग्राहकत्वप्रतिसन्धानं विना वहिःसत्त्व-

दनुमानादेव वह्निःसत्त्वसिद्धिः। अथ लाघवसाचिव्यात् सामान्यतोदृष्टस्यापि विशेषविषयत्वात् नियमग्राहकप्रमाणोत्थापितलिङ्गकमरणानुमानेन जीवनग्राहकस्यैव सत्प्रतिपक्षत्वम् एकेनापि भूयसामपि प्रतिबन्धसम्भवात्[१]। न च तर्कात्सामान्यतोदृष्टस्य बलवत्त्वं, व्याप्ति-पक्षधर्म्मते हि बलं तच्च तुल्यमेव ज्ञातं लाघवाख्यतर्कस्य विशेषमात्रपर्य्यवसायकत्वेन व्याप्तिग्राहकत्वस्य

---

निश्चयस्यासत्त्वमेवासिद्धं तच्च पुनरनुसन्धानं विनापि यथोक्तसामग्रीप्रभवसंशयानन्तरं लाघवावताराद्वह्निःसत्त्वनिश्चयस्यानुभवसिद्धत्वादित्यभिप्रायेणाह, 'अपि चेति, 'सामान्यतोदृष्टमिति जीवित्वसंशयानन्तरोत्पन्नमित्यर्थः। न च प्रामाणिकप्रतिसन्धानाभावेऽपि यथोक्तसामग्रीप्रभवसंशयानन्तरं वह्निःसत्त्वासिद्धेरर्थापत्तिरतिरिच्यते इति वाच्यं। केन्द्रस्थितवृहस्पतिकत्वस्य घटादिसाधारणतया प्रामाणिकत्वोपस्थितिं विनापि यथोक्तसामग्रीघटकस्य शब्दत्वनिश्चयस्यैवासम्भवादिति भावः। 'विशेषविषयत्वादिति जीवनत्वप्रकारेण जीवनविषयकत्वादित्यर्थः, अन्यथा अन्यतरत्वरूपेण जीवनविषयकत्वे मरणानुमानेन न सत्प्रतिपक्षः सम्भवति भिन्नप्रकारकत्वेन विशेषकत्वाभावादिति भावः। 'नियमग्राहकप्रमाणेति गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयनिश्चितलिङ्गपरामर्शेनेत्यर्थः, तच्च देवदत्तोमृतः गृहान्यावृत्तित्वे

---

(१) प्रतिषेधसम्भवादिति ष०।

तुल्यत्वादिति चेत्, तर्हि पक्षधर्मतावलाद्विशेषसिद्धिः क्वापि न स्यात् सर्व्वच सामान्यमुखप्रवृत्तप्रमाणस्य विशेषपर्य्यवसानेऽन्यसाधर्म्येण सत्प्रतिपक्षसम्भवात्, अप्रयोजकत्वान्न विपरीतसाधनमिति तुल्यं नियमग्राहकस्याप्रयोजकत्वात् जीवनग्राहकस्य तु सामान्यतोदृष्टस्य ज्योतिःशास्त्राद्यथार्थत्वमेव विपक्षबाधकं व्याप्तिग्राहक-

सति गृहावस्थानस्याप्रामाणिकत्वादित्याकारकमिति भावः। 'जीवनग्राहकस्येवेति देवदत्तः शतवर्षजीवी केन्द्रस्थबृहस्पतिप्रामाणिकत्वादित्यादेरेवेत्यर्थः, 'सत्प्रतिपक्षितत्वमिति[१]। ननु जीवनग्राहकस्य केन्द्रस्थबृहस्पतिकप्रामाणिकत्व-केवलप्राणित्वादिरूपतया भूयस्त्वेन बलवत्त्वमित्यत आह, 'एकेनेति, विशेषमात्रे जीवित्वप्रकारेण जीवित्वानुमितौ हेतुत्वेनेत्यर्थः, 'भूयसामपीति। 'तर्हीति, 'विशेषपर्यवसानइति लाघवादिसहकारेण विशेषप्रकारेणानुमितिजनन इत्यर्थः, 'अन्यसाधर्म्येणेति पर्वतो न पर्वतीयवह्निमान् पर्वतीयवह्निमदन्यत्वात् इति सत्प्रतिपक्षसम्भवादित्यर्थः, अभिसन्धिमुद्घाटयति, 'अप्रयोजकत्वादिति, 'अप्रयोजकत्वात्' अनुमितिप्रयोजकरूपशून्यत्वात् हेतौ पक्षधर्मतानिश्चयविरहात् इति यावत्, 'न विपरीतसाधनमिति न पक्षधर्मतावललभ्यविशेषविरहव्याप्यवत्तानिश्चय इत्यर्थः, 'तुल्यमिति,

(१) एतेन 'सत्प्रतिपक्षत्वं' इत्यच 'सत्प्रतिप्रतिपक्षितत्वमिति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठोऽनुमीयत इति।

मस्ति तस्मात् सामान्यमुखप्रवृत्तस्य सहकारिविशेषात्[१] विशेषपरस्यानुमानस्य तद्विशेषविलक्षणग्राहकप्रमाणेन[२] सत्प्रतिपक्षत्वम्। न च प्रमाणविरोधेनास्य तर्को न सहकारीति वाच्यं। तर्कानवतारे विशेषपरत्वाभावेनाविरोधात् तदवतारे तदधिकबलत्वादेव अन्यथा तर्कानवतारे सत्प्रतिपक्षस्य तदवतारेऽपि

---

गृहान्यावृत्तित्वस्य देवदत्ते सन्दिग्धत्वादिति भावः। 'नियमग्राहकस्येति पूर्वोत्पन्नस्य गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयस्येत्यर्थः, 'अप्रयोजकत्वात्' अनुमित्यजनकत्वात्, तत्र प्रामाण्यसन्देहादिति भावः। नन्वेवं जीवित्वे सति गृहासत्त्वेन वहिःसत्त्वानुमितिरेव कथं स्यात् गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयवत् लाघवसहकारेण उत्पन्नजीवित्वविषयकानुमितेरपि प्रामाण्यसंशयेन लिङ्गविशेषणजीवित्वसन्देहात् व्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयविरहादित्यत आह, 'जीवनग्राहकस्येति, 'ज्योतिःशास्त्राद्यथार्थत्वमेव,' 'जीवनग्राहकस्य सामान्यतोदृष्टस्य' लाघवतर्कसहकारेण जीवनविषयकस्य सामान्यतोदृष्टस्य, 'विपक्षबाधकं' अप्रामाण्यग्रहे बाधकं, 'व्याप्तिग्राहकमस्तीति जीवित्वलिङ्गकवहिःसत्त्वानुमाने व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मतानिश्चायकमस्तीत्यन्वयः, 'विशेषग्राहकप्रमाणेनेति अतुल्यबलेनेति शेषः। गृहान्यावृत्तित्वस्य निश्चयासत्त्वेऽपि मरण-

---

(१) सहकारिनियमादिति घ०।

(२) तद्विशेषविलक्षणविशेषग्राहकमानेनेति घ०।

तत्त्वं न निवर्त्तते। किञ्चैवमर्थापत्तावपि तद्विरोधेन न सहकारी स्यात्। यदुक्तं मरणकल्पने शतवर्षावच्छिन्नजीवी गृह एवेत्यस्यापि बाधइति तच विशिष्टबाधे न विशेष्यबाधात् मरणेऽपि जीवी गृह एवेत्यस्य विशेष्यस्याबाधात् किन्तु विशेषणबाधात् स च शतवर्षजीवित्वबाध एव। विशेषणाभावायत्तो विशिष्टाभावोऽप्यस्तीति चेत्। न। विशेष्यवति विशिष्टाभावस्य केवलविशेषणाभावात्मकत्वात् विशिष्टस्यातिरिक्तस्यानभ्युपगमात्।

---

व्याप्यत्वेन धर्म्मान्तरनिश्चय एव प्रतिबन्धकः स्यादित्याशङ्कते, 'न चेति, 'प्रमाणविरोधेन' प्रमाणान्तरविरोधेन मरणव्याप्यत्वेन मेयत्वादिलक्षणयत्किञ्चिद्धर्म्मान्तरस्य निश्चयेन प्रतिबन्धेनेति यावत्, यद्यपि मरणव्याप्यत्वेन यत्किञ्चिद्धर्म्मान्तरस्य निश्चयो न सर्व्वत्र, तथापि यत्र तदवतारस्तत्रार्थापत्तिरायास्यतीति भावः। 'विशेषपरत्वाभावेनेति विशेषप्रकारकानुमितिजनकत्वाभावेनेत्यर्थः, 'अविरोधात्' मरणव्याप्यवत्तानिश्चयस्याप्रतिबन्धकत्वात्, 'तदधिकबलत्वादेवेति तदपेक्षया सामान्यतोदृष्टस्याधिकबलत्वादेवेत्यर्थः, तर्केण तत्र प्रामाण्यसंशयादिति भावः। 'अन्यथेति तर्कस्याधिकबलत्वासम्पादकत्वे इत्यर्थः, 'तद्विरोधेनेति वहिःसत्त्वाभावव्याप्यत्वेन यत्किञ्चिद्धर्म्मनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वेनेत्यर्थः, 'किञ्चेत्यापाततः, वहिः-

अन्ये तु शतवर्षजीवी देवदत्तो जीवी गृह एव, गृहे नास्तीतिप्रमाणेषु द्वयोरविरोधेऽपि तृतीयमादाय विरोधज्ञानमस्ति तत्र जीवी गृह एवेत्यप्रमाणघटित-प्रमाणद्वयविरोधज्ञानजनिताप्रामाण्यसंशयाहितजीवनसंशयात् प्रमाणयोरविरोधोपपादकमप्रमाणविरोधि वहिःसत्त्वं कल्प्यते यथोक्तसंशयस्यायमेव स्वभावो यद्वस्तुगत्या अप्रमाणं तद्विरोधि कल्पयति विरोधघट-

---

सत्त्वाभावव्याप्यत्वेन यत्किञ्चिद्धर्मनिश्चयसत्त्वे वहिःसत्त्वनिश्चयाभावे इष्टापत्तेः मयापि तदानीं तदनभ्युपगमादिति ध्येयं। 'बाधः' अप्रामाण्यं, 'तत्र विशिष्टबाधः' तत्प्रतिपाद्यं विशिष्टविषयक-ज्ञानस्याप्रामाण्यं, 'न विशेष्यबाधात्' न विशेष्याभाववति विशेष्य-प्रकारकत्वात् न गृहान्यावृत्तित्वाभाववति गृहान्यावृत्तित्वप्रकार-कत्वादिति यावत्, 'अबाधादिति गृहान्यावृत्तित्वांशे बाधासम्भ-वादित्यर्थः, 'किन्तु विशेषणबाधादिति किन्तु शतवर्षजीवित्वा-भाववति शतवर्षजीवित्वप्रकारकत्वादित्यर्थः, धर्म्मिणि विशिष्टस्य प्रकारत्वे विशेषणस्यापि प्रकारत्वनियमात्, अत एव गुणान्यत्ववि-शिष्टसत्तावान् गुण इत्यस्याप्यप्रमात्वं गुणे विशिष्टसत्तायाः प्रकारत्वे गुणान्यत्वस्यापि प्रकारत्वादिति भावः। 'शतवर्षजीवित्वबाध एवेति शतवर्षजीवित्वाप्रमात्वमेवेत्यर्थः, तथाच निश्चयद्वयस्याप्रमात्वद्वयक-ल्पना नास्तीति भावः। 'विशेषणाभावायत्त इति, तथाच विशिष्टा-

कस्य वस्तुगत्या अप्रमाणत्वमेव विनिगमकत्वमिति,[१] तन्नुच्छम्, अप्रमाणस्यापि प्रमाणत्वेन ज्ञानात्, तर्कादिभिर्विशेषदर्शनं विना यथोक्तसंशयानन्तरं वहिरस्तीति ज्ञानमसिद्धमतोन फलबलेन तथार्थापत्तिकल्पनं। किञ्च मृते गृहस्थिते वहिःस्थिते तादृशसंशयादेव

---

भाववति विशिष्टप्रकारकत्वरूपाप्रमात्वद्वयकल्पनापत्तिरिति भावः। 'विशिष्टाभावस्येति विशिष्टाभावव्यवहारविषयस्येत्यर्थः, इदमापाततः विशिष्टाभावस्यातिरिक्तस्याभावेऽपि विशिष्टं नास्तीतिप्रतीत्या विशिष्टस्य प्रतियोगित्वावगाहनाद्विशेषणाभावस्यैव विशिष्टप्रतियोगित्वाभ्युपगन्तव्यत्वात् विशिष्टप्रकारकत्वरूपाप्रमात्वमादायाप्रमात्वद्वयकल्पना भवत्येवेति ध्येयं।

यदि गृहान्यावृत्तित्व-शतवर्षजीवित्वयोः संशयाविशेषेऽपि जीवित्वोपपादकं वहिःसत्त्वमेव कल्प्यं न तु गृहान्यावृत्तित्वोपपादकं मरणमित्यत्र तर्कोविनिमक उच्यते तदा त्वन्मतादेव देवदत्तो जीवन-मरणाद्यन्यतरप्रतियोगीति सामान्यतोदृष्टात् जीवित्वं विशिष्टविशेषणं निश्चित्यानुमानादेव वहिःसत्त्वज्ञानं स्यादिति त्वया वाच्यं, न चैवं, किन्तु यथोक्तसंशयस्यायमेव स्वभावोनिश्चयं विनापि धर्म्मिणि वस्तुगत्या अबाधितत्त्वं यत्तदेव कल्पयति न तत्र बाधितत्वमिति कल्पनेति केचिन्मीमांसका वदन्ति, तन्मतमुपन्यस्यति, 'अन्ये त्विति, 'जीवी गृह एवेति शतवर्षजीवित्वे सति गृहान्यावृत्तित्तिरित्यर्थः,

---

(१) अप्रमाणमेव विनिगमकमिति घ०।

वह्निःसत्त्वं गृहसत्त्वं मरणञ्च कल्प्येत कस्यचित् क्वचि-
द्वस्तुगत्या अप्रमाणत्वात् अर्थापत्त्याभासश्चैवं न स्यात्।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे संशयकारणकार्थापत्तिसिद्धान्तः।

---

'गृहे नास्तीति शतवर्षमध्ये गृहे नास्तीत्यर्थः, 'प्रमाणेषु' निश्चयचयेषु, 'द्वयोः' शतवर्षजीवित्वनिश्चय-शतवर्षमध्ये गृहासत्त्वनिश्चययोः, 'अविरोधेऽपि' परस्परविरुद्धार्थविषयकत्वाभावेऽपि, 'विरोधज्ञानमस्तीति तृतीये विरुद्धार्थविषयकत्वज्ञानमस्तीत्यर्थः, 'तत्र' तस्मिन् ज्ञाने सति, 'अप्रमाणघटितेति अप्रमात्मकनिश्चयघटितेत्यर्थः, 'प्रमाणद्वयेति विरुद्धद्वयेत्यर्थः, 'विरोधज्ञानेति विरुद्धार्थविषयज्ञानेत्यर्थः, 'अप्रामाण्यसंशयेति देवदत्तः शतवर्षजीवी शतवर्षजीवी देवदत्तोऽगृह एवेति निश्चयद्वयनिष्ठाप्रामाण्यसंशयेत्यर्थः, 'प्रमाणयोः' प्रमात्मकनिश्चयद्वयोः, 'अविरोधोपपादकं' भ्रमत्वाभावोपपादकं, 'अप्रमाणविरोधि' अप्रमात्मकनिश्चयविषयविरोधि, 'तद्विरोधि कल्पयतीति तद्विषयीभूतस्य विरोध्येव कल्पयतीत्यर्थः, 'विरोधघटकस्य' विरुद्धार्थविषयकत्वज्ञानघटकस्य, 'प्रमाणत्वेन ज्ञानादिति प्रमाणत्वेन निश्चयसम्भवादित्यर्थः, 'फलबलेनेति तर्कं विनापि वह्निःसत्त्वज्ञानोत्पत्तिबलेनेत्यर्थः।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये संशयकारणकार्थापत्तिसिद्धान्तरहस्यं।

## अथानुपपत्तिकरणकार्थापत्तिः ।

स्यादेतत् मा भूत् संशयः करणमर्थापत्तावनुपपत्तिस्तु स्यात् तथाहि जीवी देवदत्तो गृहे नास्तीति ज्ञाने सति वहिःसत्त्वं विना जीवतोगृहासत्त्वमनुपपन्नमिति ज्ञानानन्तरं वहिरस्तीति धीरस्ति तचान्वयव्यतिरेकाभ्यामनुपपत्तिज्ञानं करणम् । न च देवदत्तो वहिरस्ति विद्यमानत्वे सति गृहासत्त्वात् घटवदित्यनु-

---

### अथानुपपत्तिकरणकार्थापत्तिः ।

संशयकरणकार्थापत्तिं निराकृत्यानुपपत्तिकरणकार्थापत्तिमाशङ्कते, 'स्यादेतदिति, 'अनुपपत्तिरिति गृहे नास्तीति ज्ञानमित्यर्थः, 'जीवतो गृहासत्त्वमिति जीवित्वविशिष्टं गृहासत्त्वमित्यर्थः, 'व्याप्तिप्रभवेति, 'व्याप्तिप्रभवात्' सामान्यतोव्याप्तिप्रभवात्, 'अनुमानादिति देवदत्तोवहिरस्ति विद्यमानत्वे सति गृहासत्त्वादित्यनुमानादित्यर्थः, पूर्व्वं विद्यमानत्वे सति तद्गृहासत्त्वात् तद्वहिःसत्त्वमितिविशेषतोव्याप्तिरिदानीन्तु सामान्यतोव्याप्तिरिति भेदाद्विकल्पः । विशेषव्याप्तिमूलकमनुमानं दूषयति, 'हेतु-साध्ययोरिति यथोक्तहेतु-साध्ययोरित्यर्थः, सामान्यतोव्याप्तिमूलकमनुमानं दूषयति, 'सामान्यत इति, 'अनुमाने' अनुमितिकरणे, 'उपसंहर्त्तुं'

मानाद्विद्यमानत्वे सति यत्र यन्नास्ति तदन्यदेशे तदस्ति यथा गृह एव कोणेऽसन्नहं मध्ये तिष्ठामीतिव्याप्तिप्रभवानुमानाद्वा वह्निःसत्त्वसिद्धेः किमर्थापत्त्येति वाच्यं। हेतु-साध्ययोः सहचाराज्ञानदशायामनुपपत्तिज्ञानेऽपि वह्निःसत्त्वज्ञानात् सामान्यतो व्याप्तिज्ञानुमाने उपसंहर्त्तुमशक्येति तदन्यदेशसिद्धिरर्थापत्त्यैव। ननु जीविनो गृहासत्त्वमनुपपन्नं किं देवदत्तबहिःसत्त्वं विना, उत वह्निःसत्त्वमात्रं विना, नाद्यः

---

प्रवेशयितुं, 'अशक्या' सामान्यमुखी व्याप्तिर्नानुमितिकरणमित्यर्थः यत्त्व-तत्त्वयोरनुगतयोरभावात् सामान्यतो व्याप्तेरभावादिति भावः।

'तदन्यदेशेति गृहान्यदेशसत्त्वसिद्धिरित्यर्थः।

'ज्ञानाभावादिति प्रतियोगिज्ञानं विना व्यतिरेकज्ञानासम्भवादिति भावः। नन्वर्थापत्तित एव तत्प्रतीतिरतोऽर्थापत्तिरावश्यकीत्यत आह, 'अर्थापत्तित इति, 'अन्योन्याश्रय इति अर्थापत्तितस्तत्प्रतीतौ तेन विना नानुपपत्तिज्ञानमनुपपत्तिज्ञानेऽर्थापत्तिरित्यन्योन्याश्रय इत्यर्थः, स्वीकृतदूषणे खण्डनसम्पत्तिमाह, 'तदुक्तमिति, 'यतोऽन्यत्वमिति, 'यतोऽन्यत्वं' यस्य व्यतिरेकः, 'तत्सिद्धेः' तस्य सिद्धेः, 'अतद्सिद्धेः' एतद्व्यतिरेकेणेदमनुपपन्नमिति ज्ञानासिद्धेरित्यर्थः। वह्निःसत्त्वमात्रपदेन यावद्वह्निःसत्त्वं, वह्निःसत्त्वत्वावच्छिन्नं वा, नाद्य इत्यत्राह, 'अन्यदीयेति, नान्त्य इत्याह, 'वह्निःसत्त्वमात्रेति वह्निःसत्त्वत्वा-

प्रथमं देवदत्तबहिःसत्त्वाप्रतीतौ[1] तेन विनेदमनुपपन्नमिति ज्ञानाभावात् प्रतीतौ वा किमर्थापत्त्या अर्थापत्तित एव तत्प्रतीतावन्योन्याश्रयः, तदुक्तं यतोऽन्यत्वं तत्सिद्धेरग्रे तदसिद्धेरिति। नान्त्यः अन्यदीयबहिःसत्त्वज्ञानं विनानुपपत्त्यभावात् बहिःसत्त्वमात्रसिद्धावपि देवदत्तबहिःसत्त्वासिद्धेश्चेति चेत्। न। सामान्येन हि विनानुपपत्तिज्ञानं कारणं सामान्याकारेण विशेषज्ञानं फलं, तथाहि जीविनो बहिःसत्त्वं

---

च्छिन्नेत्यर्थः, 'पर्य्यवस्यतीति, पक्षधर्म्मतावलादिति भावः। 'तेन रूपेण' देवदत्तबहिःसत्त्वरूपेण, 'कल्पना' ज्ञानं, 'तेन विना' तद्रूपावच्छिन्नेन विना, 'उपपादकाभाववतीति उपपादकाभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वमापाद्यस्येत्यर्थः, 'अभावमात्रमिति उपपाद्याभावमात्रमित्यर्थः, 'अतिप्रसङ्गादिति केवलधूमाभावज्ञानादपि धूमार्थापत्त्यापत्तिरित्यर्थः, 'अर्थापत्त्याभासेति व्यभिचारिणार्थापत्तिरेव न स्यादित्यर्थः। 'अत्र हीति, 'व्यतिरेके' हेत्वभावे, 'व्याप्तिः' व्यापकताज्ञानं, 'अन्वयस्य' हेतोः, 'पक्षधर्म्मत्वं' पक्षधर्म्मताज्ञानमित्यर्थः, व्याप्तिधीजन्यमिति व्यतिरेकव्याप्तिधीजन्यमित्यर्थः, 'व्याप्तेति अन्वयव्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्म्मताज्ञानेत्यर्थः, 'केवलान्वयिनीति, तव मत इति शेषः, 'साध्यव्याप्यत्वेति साध्यस्यान्वयव्याप्तिज्ञानस्येत्यर्थः। यद्यप्ये-

---

(१) बहिःसत्त्वासिद्धाविति ग०।

विना गृहासत्त्वमनुपपन्नमिति ज्ञानं यस्य गृहासत्त्वमनुपपन्नं तत्र वहिःसत्त्वं कल्पयति नान्यत्र देवदत्तश्च तथेति सिद्धे देवदत्ते वहिःसत्त्वं कल्प्यत इति देवदत्तवहिःसत्त्वं पर्य्यवस्यति, न तु तेन रूपेण कल्पना न वा तेन विनानुपपत्तिज्ञानं कारणं, यथा वह्निमात्रव्याप्तधूमात् पर्व्वते वह्निसिद्धिरेव पर्व्वतीयवह्निसिद्धिर्न तु पर्व्वतीयत्वेनैव धूमात्तत्सिद्धिः तेन रूपेण व्यापकत्वाग्रहात्(१)। अथोपपादकाभाववत्युपपाद्याभावनियमो-

---

वमपि यत्र नान्वयव्याप्तिग्रहः व्यतिरेकमात्रप्रतिसन्धानं तत्रापत्त्यवकाशः। न च तत्रार्थनिश्चय एव जनयिष्यत इति वाच्यं। अनुभवविरोधात्। तथापि तुष्यतु दुर्जन इति न्यायेनाह, 'अस्त्विति, 'गृहे वर्त्तमान इति गृहवृत्तित्वविशिष्ट इत्यर्थः, 'देवदत्तावृत्तित्वादिति पक्षीभूतस्य देवदत्तस्य तदनधिकरणत्वादित्यर्थः, 'वहिःसत्त्व-गृहनिष्ठाभावयोः' वहिःसत्त्व-गृहवृत्तित्वविशिष्टाभावयोः, 'व्यधिकरणत्वेनेति, गृहाधिकरणदेशभेदस्यापि वहिःपदार्थघटकत्वादिति भावः 'नियतेति, अत एव गृहवृत्तिदेवदत्ताभावोऽपि(२) न लिङ्गं गृहमात्रवृत्तिपदार्थे तस्य सत्त्वेनाव्याप्यत्वादिति भावः। ननूपरि सवितभूमेरालोकवत्त्वादित्यत्र भूमिनिष्ठालोकसंयोगस्य कथमुपरिदेसंयोगसम्बन्धेन सवितनुमापकत्वं पक्षावृत्तित्वादव्याप्यत्वाच्चेत्यत आह

---

(१) धूमव्याप्यत्वाग्रहादिति घ०।

(२) गृहवृत्तित्वोपलक्षितदेवदत्ताभाव इत्यर्थः।

ऽनुपपत्तिर्न त्वभावमात्रमतिप्रसङ्गात् एवञ्च व्यतिरेक-व्याप्तिमत उपपाद्याद्व्यतिरेक्यनुमानमुद्रयैव साध्यसिद्धेः, किमर्थापत्त्या, तथाहि देवदत्तो वहिः सन् जीवित्वे सति गृहासत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा मृतो गृहस्थितो वा। न चान्यव्याप्यान्यस्य गमकत्वेऽतिप्रसङ्गः साध्याभावव्यापकाभावप्रतियोगित्वस्य नियामकत्वात्। न चार्थापत्तौ सरूपसती व्याप्तिर्लिङ्गं नानुमान इति वाच्यम्। अनुपपत्तेर्ज्ञानं विना कल्पनानुदयात् अर्था-

---

'उपरीति, 'उपरिसन्निहितेति सविटसंयुक्तोपरिदेशकत्वेनेत्यर्थः, तथाच तत्र भूमिः पक्षः सवितृसंयुक्तोपरिदेशकत्वं साध्यं उपर्य्यव-च्छेदेनालोकसंयोगो हेतुरिति भावः। ननु जीवित्वे सति गृह-निष्ठाभावप्रतियोगित्वमेव लिङ्गं भवतापि तन्निष्ठव्यतिरेकव्याप्तिज्ञान-स्यैवार्थापत्तिजनकत्वस्वीकारादित्याशङ्कते, 'नापीति, 'लिङ्गमित्यनु-षज्जनीयं, 'ज्ञातुमशक्यत्वादिति, तथाच लिङ्गज्ञानाभावात् न व्याप्तिग्रह इति भावः। ननु सन्निकृष्टस्थले जीवित्वे सति गृहनिष्ठा-भावप्रतियोगित्वस्य वहिःसत्त्वव्याप्यत्वं गृहीतं तदेवेदानीं स्मर्य्यते-ऽन्यथा भवन्मतेऽपि व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानाभावात् कथमर्थापत्तिः, अपि च गृहनिष्ठाभावप्रतियोगित्वं न हेतुः किन्तु प्रतियोगितासम्बन्धेन गृहनिष्ठाभाव एव हेतुर्व्वाच्यः स च देवदत्तस्यासन्निकृष्टत्वेऽपि गृहस्य सन्निकृष्टतया ग्रहीतुं शक्य इत्यतो व्याप्तिग्रहाभावेऽपि देवदत्तस्या-सन्निकृष्टतया न पक्षविशेष्यकपरामर्शसम्भव इत्याह, 'अत एवेति,

पत्त्याभासानवकाशाच्च। मैवम्। अत्र हि व्यतिरेकव्याप्तिरन्वयस्य पक्षधर्मत्वमिति व्याप्तिधीजन्यमपि वह्निःसत्त्वज्ञानं नानुमितिः तस्या व्याप्तपक्षधर्म्मताज्ञानजन्यतानियमात्। न च साध्याभावव्यापकाभावप्रतियोगित्वेन पक्षधर्म्मस्य ज्ञानमनुमितिप्रयोजकं तच्चेहाप्यस्तीति वाच्यं। केवलान्वयिनि तदसम्भवात् तद-

---

असम्मते च व्यतिरेकव्याप्तिस्मरणं गृहे जीविनो देवदत्तस्याभावनिश्चयस्य अर्थापत्तिहेतुक इति भावः, शब्दानुमानादिकञ्च न सार्व्वत्रिकमिति हृदयं। 'गृहनिष्ठाभावयोर्ज्ञानमिति, देवदत्तस्मरणञ्चेत्यपि बोध्यं, अभावप्रत्ययानुरोधेन तस्यावश्यकत्वात् परामर्शः। 'व्याप्तिज्ञानानन्तरमिति वह्निव्याप्तिरिति स्मरणानन्तरमित्यर्थः, 'स्मर्य्यमाणेति पचवृत्तिधूमस्मरणादित्यर्थः, असन्निकृष्टपचस्थल इति शेषः, 'उक्तन्यायेति विशेष्यस्यासन्निकृष्टत्वेनेत्यर्थः। 'धूमोवह्निं विनेति, वह्न्यभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगी धूम इति व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानादित्यर्थः, 'दृश्यमानो धूम इति वह्न्यभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगी धूम इति यदा ज्ञायत इत्यर्थः, 'अनुपपत्तिज्ञानं विना' व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानं विना, 'व्याप्यत्वेन' अन्वयव्याप्यत्वेन, 'तदानुमानमिति, यदा तु व्यतिरेकान्वयव्याप्त्युभयप्रतिसन्धानं तत्रैवमेव विज्ञानमुभयात्मकं अनुमितित्वादेरसम्मते जातित्वाभावात् फलबलादेव सामग्र्या वा अन्यत्र प्रतिबन्धकत्वं कल्प्यत इति भावः। 'त्वयापीति, 'तत्र' वह्निमान्धूमादित्यत्र, 'त्रिविधेति व्याप्तिज्ञानभेदेन त्रिविधानुमिति-

पेक्षया साध्यव्याप्यत्वज्ञानस्य लघुत्वाच्च। अथ व्यतिरेक-सहचाराद्धेतोरेव व्याप्तिर्गृह्यते[१] एवञ्चान्वयस्य व्यतिरेकस्य उभयस्य वा सहचाराद्व्याप्तिग्रहत्रैविध्येऽनुमान-त्रैविध्यम्, अत एव धूमो दशाविशेषेऽन्वयी व्यतिरेकी अन्वय-व्यतिरेकी चेति चेत्, अस्तु तावदेवं तथापि जीविदेवदत्ताभावो गृहे वर्त्तमानो न वहिःसत्त्व लिङ्गं[२] देवदत्तावृत्तित्वात् वहिःसत्त्व-गृहनिष्ठाभाव-योर्व्यधिकरणत्वेन नियतसामानाधिकरण्यरूपव्याप्त्य-भावाच्च, उपरि सविता भूमेरालोकवत्त्वादित्यत्र भूमेरु-परिसन्निहितसवितृकत्वेनानुमानात्। नापि गृह-निष्ठाभावप्रतियोगित्वं, तत्प्रतियोगित्वस्य देवदत्त-धर्म्मतया तदसन्निकर्षे प्रत्यक्षेण ज्ञातुमशक्यत्वात्, अत-

स्वीकारात् इत्यर्थः, परन्तु भवता यद्व्यतिरेक्यनुमितितया अभिमतं तदेवमस्माकमर्थापत्तिरिति विशेष इति भावः। 'व्यतिरेकव्याप्तिमिति व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानं सहकार्य्यासाद्येत्यर्थः, 'देवदत्ताभावः' देवदत्ता-भावनिश्चयः, 'वहिःसत्त्वं कल्पयतीति वहिःसत्त्वं निश्चाययतीत्यर्थः, न तु व्यतिरेकपरामर्शः विशेष्यीभूतदेवदत्तासन्निकर्षेण परामर्शा-सम्भवादिति भावः। 'गृहे देवदत्तस्याभाव इति देवदत्तप्रतियोगि-

(१) इष्यत इति क०, ख०।

(२) वहिःसत्त्वे अनुमिति क०, ख०।

एव विशेष्यासन्निकर्षात्तृतीयलिङ्गपरामर्शोऽपि न प्रत्यक्षेण। न च व्यतिरेकव्याप्ति-गृहनिष्ठाभावयोर्ज्ञानं सहकार्य्यासाद्य मनसैव जन्यत इति वाच्यं। सहकारिण एव मानान्तरत्वप्रसङ्गात्। अथ व्याप्तिज्ञानानन्तरं स्मर्य्यमाणधूमात् कथमनुमितिः उक्तन्यायेन तत्रापि लिङ्गपरामर्शाभावादिति चेत्, न कथञ्चित्, कथं तर्हि वह्निज्ञानं पक्षधर्म्मधूमस्मृतिसहितात् धूमो वह्निं विना नास्तीत्यनुपपत्तिज्ञानादिति गृहाण, अत एव दृश्यमानोधूमो वह्निं विनानुपपन्न इति यदा ज्ञायते तदार्थापत्तिरेव यदा त्वनुपपत्तिज्ञानं विना व्याप्यत्वेन प्रतिसन्धीयते तदानुमानं त्वयापि तत्र त्रिविधानुमानस्वीकारात् तस्माद्व्यतिरेकव्याप्तिमुपजीव्य जीविद्देवदत्ताभावो वहिःसत्त्वं कल्पयति। उच्यते। देवदत्तासन्निकर्षेऽपि तस्य गृहनिष्ठाभावप्रतियोगित्वं प्रत्यक्षेण

---

कोऽभाव इति प्रत्यक्षमित्यर्थः, अन्यथा षष्ठ्यर्थप्रतियोगित्वस्य संसर्गविधया भानात् लिङ्गतावच्छेदकीभूतप्रतियोगित्वानुपस्थितौ कथमनुमानं न स्यात्। न चैवं यत्र नेह देवदत्त इति संसर्गविधयैव प्रतियोगित्वभानं तत्रानुमानासम्भवादर्थापत्तिरिष्यतइति वाच्यं। अर्थापत्तावपि वहिःसत्त्वं विना गृहनिष्ठाभावप्रतियोगित्वस्यानुपलब्धिर्गमिकेति प्रतियोगित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगित्वोपस्थितिं विना

गृह्यते तथाहि गृहे देवदत्तस्याभाव इति प्रत्यक्षं देवदत्तं षष्ठ्यर्थस्वाभावसम्बन्धं प्रतियोगित्वलक्षणं गोचरयति सम्बन्धज्ञानस्य सम्बन्धिद्वयविषयत्वात्, प्रतियोगिना सममभावस्य सम्बन्धान्तराभावात् गृहनिष्ठाभावप्रतियोगित्वे च प्रत्यक्षोपस्थिते स्मृतव्याप्तिवैशिष्ट्यमपि प्रत्यक्षेण सुग्रहम्। न च देवदत्तविशेष्यकं वहिःसत्त्वव्याप्यगृहनिष्ठाभावप्रतियोगित्वज्ञानं नास्तीति वाच्यं। पक्षवृत्तिलिङ्गपरामर्शमात्रस्यानुमितिजनकत्वात् अधिकस्य गौरवपराहतत्वात्। अथवा अनतिप्रसक्तसह-

---

तेनाप्यर्थापत्त्यनभ्युपगमादिति। ननु देवदत्तप्रतियोगिकोऽभाव इति प्रत्यक्षस्य देवदत्तविषयकत्वे मानाभावः देवदत्तं साक्षात्करोमीत्यनुव्यवसायाभावात् अभावं साक्षात्करोमीत्यनुव्यवसायात् किन्तु तद्व्यवहितपूर्ववर्त्तिस्मरणस्यैव देवदत्तोविषय इत्यत आह, 'सम्बन्धज्ञानस्येति सम्बन्धिद्वयोपस्थितौ सत्यां सम्बन्धप्रत्यक्षस्येत्यर्थः, अन्यथा संयोगो नास्तीत्यादिशाब्दादिज्ञाने तदुपनयवशात् संयोगवदिति प्रत्यक्षे गुण इति प्रत्यक्षे च व्यभिचारापत्तेरिति ध्येयं। न चैवं देवदत्तं न पश्यामि किन्तु तदभावं गेहे इत्यनुव्यवसायः कथं सङ्गच्छते इति वाच्यं। तस्य लौकिकविषयत्वाभावविषयकत्वादिति भावः। ननु सम्बन्धप्रत्यक्ष एव सम्बन्धिद्वयं विषयः प्रतियोगित्वन्तु न प्रतियोग्यभावयोः सम्बन्ध इत्यत आह, 'प्रतियोगिनेति, 'सम्बन्धान्तराभावा-

कारिवशात्मनसैव स्मृतदेवदत्तविशेष्यकस्तृतीयलिङ्ग-परामर्शः यथाच न सहकारि मानान्तरं तथोपपादित-मधस्तात्। ननु मयूरः पर्व्वतेतरे न नृत्यति नृत्यति चेतिज्ञानानन्तरं पर्व्वते नृत्यतीति ज्ञानमस्ति, न च व्यतिरेकिणस्तत्सम्भवति, पर्व्वतनृत्यस्य साध्यस्याप्रतीतौ व्यतिरेकव्याप्त्यनिरूपणात्। न च पर्व्वतनृत्याप्रसिद्धौ तेन विनानुपपत्तिप्रतिसन्धानमपि नेति कथमर्थापत्ति-रपीति वाच्यम्। अधिकरणं विनानुपपद्यमानं नृत्यं प्रसिद्धाधिकरणबाधसहकृतं प्रसिद्धेतरमधिकरणं कल्प-

---

दिति इदमिह नास्तीति प्रतीतेर्नियामकसम्बन्धान्तराभावादित्यर्थः, तथाच सम्बन्धान्तरेण इदमिह नास्तीति प्रतीत्यसम्भवात् प्रतियो-गित्वस्य सम्बन्धत्वमावश्यकमिति भावः। यथाश्रुते एककालीनत्वादेरपि सम्बन्धान्तरत्वेन सम्बन्धान्तराभावादित्यसङ्गतेः। 'पचत्वेनीति, तथाच लिङ्गविशेष्यकपरामर्श एवाच हेतुरिति भावः। 'अधिकस्य' पचविशे-ष्यकत्वस्य। ननु गृहनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्यापि देवदत्तधर्म्म-तया अमन्निकृष्टत्वात् तद्विशेष्यकोऽपि चाक्षुषः परामर्शोऽसम्भवीत्य-स्वरसादाह, 'अथवेति, पूर्व्वोक्तदोषविरहायाह, 'यथाचेति, 'पर्व्वते-तर इति पर्व्वत इतरोयस्मादिति बहुब्रीहिः, तेन न सर्व्वनामकार्य्यं, मयूरनृत्यस्य नित्यत्वं साधिकरणत्वं विना अनुपपन्नमिति ज्ञानं प्रसिद्धाधिकरणबाधसहकारेण मयूरः पर्व्वते नृत्यतीति ज्ञानं जन-

यतीति चेत् । न । मयूरनृत्यं साधिकरणं नृत्यत्वादिति सामान्यतोदृष्टं प्रसिद्धाधिकरणबाधसहकृतं प्रसिद्धेतरं पर्व्वतमधिकरणमादाय नृत्यज्ञानं जनयति । यद्वा पर्व्वतेतरे न नृत्यतीतिशब्देन नृत्याभावबोधानन्तरं मयूरोनृत्यतीतिशब्दाज्जायमानं ज्ञानं पर्व्वतनृत्यं गोचरयति प्रसिद्धविशेषबाधसहकृतसामान्यज्ञानजनकप्रमाणस्य प्रसिद्धेतरं पर्व्वतमधिकरणविशेषमादाय ज्ञानजनकत्वनियमात् । अत एवानित्यज्ञानबाधानन्तरं क्षित्यादौ ज्ञानजन्यत्वं सिद्धनित्यत्वमादाय

---

यतीति समाधत्ते, 'अधिकरणं' विनेति, 'अनुपपद्यमानं' अनुपपन्नत्वेन ज्ञायमानं, 'नृत्यं' नृत्यनित्यत्वमित्यर्थः । 'नृत्याभावबोधानन्तरमिति पर्व्वतेतरनृत्याभावबोधानन्तरमित्यर्थः । ननु सामान्यतोदृष्टेन साधिकरणकत्वानुमितावपि पर्व्वते नृत्यतीत्येवमाकारकबुद्धिर्न सिद्धैव अनुमितेर्व्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्वनियमात् एवं मयूरो नृत्यतीति शब्दात् पर्व्वतेतराधिकरणकनृत्यबाधसहकारेण नृत्यविशेषसिद्धावपि नृत्यस्य पर्व्वतवृत्तित्वं न सिद्धं तदुपस्थापकपदाभावादिति, मैवं, गुरुमते इतरबाधसहकारेण पदानुपस्थितमपि शाब्दबोधे प्रकारीभूय भासते इति तन्मतेनैव तन्मतनिराकरणात्, स्वमते त्वाह, 'यद्वेति, 'अन्वय-व्यतिरेकी पर्व्वतनृत्यं गोचरयतीत्यनुपपद्यते । न चैवं मयूरः पर्व्वते नृत्यतीति मयूरविशेष्यकप्रतीतिर्न स्यात्

सिद्ध्यतीत्याचार्य्याः। यद्वा मयूरनृत्यं पर्व्वताधिकर-णकं पर्व्वतेतरानधिकरणत्वे सति साधिकरणत्वात् पर्व्वतत्ववदित्यन्वय-व्यतिरेकी, अथवा यः सम्भावित-तदितरावृत्तिः सन् तदतिरिक्तवृत्तिर्न्न भवति सः तद्वृत्तिर्भवतीति सामान्येन यत्तदर्थान्तर्भावेन व्याप्त्या नृत्यस्य पर्व्वतवृत्तित्वं सिद्ध्यति। एवं पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते इत्यत्रापि अप्रसिद्धरात्रिभोजनसाध्य-पीनत्वज्ञानं रात्रिभोजनमादाय सिद्ध्यति। अथ यथा अभोजी पीन इत्यत्रायोग्यताज्ञानं तथा पीनो दिवा

---

इति वाच्यं। उक्तानुमान एव मनसा तदुपपत्तेरिति भावः। 'सम्भावि-तेति, 'सम्भावना' योग्यता, तस्मिन् तदितरस्मिंश्च वर्त्तमानयोग्यः, योग्यतावच्छेदकञ्च वृत्तिमत्त्वमेव, तथाच वृत्तिमत्त्वे सतीति फलि-तार्थः। ननु पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते इति ज्ञानानन्तरं पीनत्वं भोजनवत्त्वं विना अनुपपन्नमिति ज्ञानात् दिवाभोजनबाधसहकृतात् देवदत्तोरात्रौ भुङ्क्ते इति ज्ञानं जायते तत्रानुमानासम्भवादर्था-पत्तिरित्यत इत्यत आह, 'एवमिति, 'देवदत्त इति अप्रसिद्धरात्रि-भोजनदेवदत्त इत्यर्थः, 'भोजनसाध्यपीनत्वज्ञानमिति, दिवाभोज-नबाधसहकृतमिति शेषः, 'रात्रिभोजनमिति रात्रिभोजनानुमितिं जनयतीत्यर्थः। यथाश्रुतशब्देन शब्दकल्पनरूपां श्रुतार्थापत्तिं भङ्क्तुमि-च्छतामाशङ्कते, 'अथेति, 'न योग्यताज्ञानमिति, तत्रातेऽन्वयप्रयोजक-

न भुङ्क्ते इत्यत्रापि दिवाभोजनस्य बाधाद्योग्यताघटकरात्रिभोजनस्याप्रतीतेः अतो योग्यताघटकोपस्थितिं विना अन्वयमलभमानमिदं वाक्यं योग्यताघटकरात्रिभोजनोपपादकं रात्रौ भुङ्क्ते इति वाक्यं कल्पयित्वा तेन सहान्वयबोधं जनयति । न चैवं लाघवाद्रात्रिभोजनमेव कल्पयितुं युक्तं, शाब्दी ह्याकाङ्क्षा शब्देनैव प्रपूर्य्यतइतिन्यायेन शब्दोपस्थापितमादाय शब्दस्यान्वयबोधजनकत्वात्, एवञ्च श्रूयमाणशब्दस्या-

---

रूपवत्त्वस्य योग्यतात्वेन पीनत्वान्वये भोजित्वस्य योग्यतात्वेन पीनत्वान्वयेऽभोजित्वस्यायोग्यतात्वादिति भावः। 'दिवाभोजनस्य बाधादिति 'योग्यताघटकेत्यत्र हेतुः, 'योग्यताघटकेति योग्यतात्मकरात्रिभोजित्वोपस्थितिं विनेत्यर्थः, 'अन्वयमलभमानमिति अन्वयबोधं अजनयदित्यर्थः, 'इदं वाक्यमिति पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते इति वाक्यमित्यर्थः, 'रात्रिभोजनोपपादकमिति रात्रिभोजनोपस्थापकमित्यर्थः, 'तेन सहेति तदुपस्थापितरात्रिभोजित्वेन सहेत्यर्थः, 'अन्वयबोधमिति पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते किन्तु रात्रौ भुङ्क्ते इत्यन्वयबोधमित्यर्थः, तन्मते योग्यत्वस्य शाब्दबोधे भाननियमादिति भावः। 'लाघवादिति, शब्दं कल्पयित्वापि अर्थोपस्थितेरावश्यकत्वादिति भावः। 'शाब्दी ह्याकाङ्क्षेति शाब्दबोधोपयोगिनी पदार्थोपस्थितिः शब्देनैव जन्यत इति नियमेनेत्यर्थः, तथाच केवलार्थकल्पनेन योग्यता-

न्वयबोधकत्वं योग्यताघटकोपस्थापकेन शब्देन विना-नुपपद्यमानं तं कल्पयित्वा यत्रान्वयबोधं जनयति तत्र श्रुतार्थापत्तिः। द्वारमित्यादौ पिधेहीतिशब्दकल्पनं श्रुतार्थापत्तिरेव शब्दस्य यद्यपि श्रूयमाणोबाधित-स्तथाप्यभिप्रायस्थः कल्प्यते यथा गुरुमते स्वर्गकामो यजेतेत्यत्र साक्षात्साधनताबाधे परम्पराघटकस्यानुप-स्थित्या परम्परासाधनताज्ञानविरहोयोग्यताज्ञाना-भावात् प्रसिद्धपदसामानाधिकरण्यानुपपत्तिरिति यो-

---

ज्ञाननिर्व्वाहेऽपि शब्दजन्योपस्थितिं विना रात्रिभोजिलरूपस्य योग्य-त्वस्य शाब्दबोधे भानासम्भवाच्छब्दः कल्प्यते तन्मते शब्दयोग्यता-विषयकस्यैव शाब्दबोधस्य जननियमादिति भावः। 'शब्देन विनेति शब्दव्यवहारं विनेत्यर्थः, 'अनुपपद्यमानमिति अनुपपन्नत्वेन ज्ञाय-मानमित्यर्थः, 'द्वारमित्यादाविति, एवमित्यादि, 'पिधेहीतिशब्द-कल्पनमिति द्वारमितिवाक्यस्यापि पिधानविशेष्यकद्वारकर्म्मकत्वान्वय-बोधजनकत्वं पिधेहीतिशब्दसमभिव्याहारं विनाऽनुपपन्नमिति ज्ञा-नात् पिधेहिशब्दकल्पनमित्यर्थः। ननु द्वारमिति वाक्यं पिधेहीति-शब्दवदिति ज्ञानमर्थापत्त्या जननीयं तच्च न सम्भवति पिधेहीति-शब्दस्य बाधितत्वादित्यत आह, 'शब्दस्येति, 'श्रूयमाणः' समभिव्या-हारेण श्रूयमानस्य, 'बाधित इति नास्तीत्यर्थः, 'अभिप्रायस्थ इति द्वारमिति वाक्यं पिधेहीति शब्देन सहान्वयबोधं जनयत्वित्येता-

ग्यताज्ञानाय परम्परासाधनताघटकमपूर्व्वं लिङा-
दिवाच्यं कल्पयति ततः स्वर्गसाधनं याग इति ज्ञानं
जायते अन्यथा अपूर्व्वमपि वाच्यं न स्यादिति।
उच्यते। बाधकप्रमाणाभावोऽन्वयविरोधिरूपविरहो
वा योग्यता अतो दिवा अभोजने रात्रिभोजना-
प्रतीतावपि भोजनसाध्यपीनत्वाद्दिवा न भुङ्क्त इति
शब्दाद्धीरुत्पद्यते न प्रतीत्यनुपपत्तिः किन्तु प्रतीता-

---

दृशाभिप्रायविषयः कल्प्यते इत्यर्थः, तथाच तादृशैकाभिप्रायविषय-
त्वसम्बन्धेनैव तद्वत्ताज्ञानं अर्थापत्त्या जननीयमिति भावः। योग्यता-
प्रकारकोपस्थितिं विना शब्दान्वयधीरित्यत्र प्राभाकरसम्मतिमाह,
'यथेति, 'साक्षात्साधनताबाध इति स्वर्गं प्रति यागस्य साक्षात्साधन-
त्वाभाव इत्यर्थः, यागस्य आशुतरविनाशित्वादिति भावः। 'परम्परा-
घटकस्येति परम्पराघटकस्यापूर्व्वस्येत्यर्थः, 'योग्यताज्ञानाभावादिति
यागे विध्यर्थस्य इष्टसाधनत्वस्यान्वये योग्यताज्ञानविरहादित्यर्थः,
साक्षादसाधने साधनत्वान्वये परम्परासाधनत्वस्य योग्यतात्वादिति
भावः। 'प्रसिद्धपदेति प्रसिद्धपदस्य विधेरर्थेन इष्टसाधनत्वेनान्वय-
बोधानुपपत्तिरित्यर्थः, 'योग्यताज्ञानायेति परम्परासाधनताज्ञानाये-
त्यर्थः, 'लिङादिवाच्यमिति कार्य्यत्वरूपेण लिङादिवाच्यमित्यर्थः,
एवञ्च स्वर्गकामोऽग्निष्टोमादिविषयकसाधनकार्य्यवानिति प्रथमतो-
ऽन्वयबोधः, विषयकत्वं जन्यत्वं, एतच्च याग-कामयोः संसर्गविधया
भासत इति भावः। 'अन्यथेति योग्यताप्रकारकोपस्थितेरपि हेतुत्वे

नुपपत्त्या रात्रिभोजनं कल्प्यते अतएवापूर्वमपि न व्याप्यमिति वक्ष्यते, तस्मान्नार्थापत्तिरनुमानादतिरिच्यत इति।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे अर्थापत्तिः।

---

इत्यर्थः, 'बाधकप्रमाणाभाव इति ग्राह्याभावनिश्चयाभाव इत्यर्थः 'अन्वयविरोधीति ग्राह्याभावव्याप्यधर्मेत्यर्थः, 'प्रतीतानुपपत्त्येति प्रतीतस्य दिवाऽभोजित्वे सति पीनत्वस्य रात्रिभोजित्वं विनाऽनुपपत्त्या रात्रिभोजित्वमनुमीयते इत्यर्थः, 'अत एवेति अन्वयप्रयोजकरूपवत्त्वज्ञानस्याहेतुत्वादेवेत्यर्थः, 'अर्थापत्तिः' अर्थापत्तिशब्दवाच्यं ज्ञानं।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये अर्थापत्तिरहस्यं।

## अथावयवनिरूपणं ।

तच्चानुमानं परार्थं न्यायसाध्यमिति न्यायस्तद-
वयवाश्च प्रतिज्ञा-हेतूदाहरणोपनय-निगमनानि निरू-

---

अथावयवरहस्यं ।

परार्थानुमानप्रयोजकत्वेन स्मृतस्य न्यायादेरुपेक्षानर्हतया प्रस-ङ्गसङ्गत्या तन्निरूपयितुमाह, 'तच्चेति, 'परार्थं' परप्रतिपिपादयिषाप्रयोज्यं, परोऽत्र विप्रतिपन्नः न तु मीमांसकमात्रं, तेनाप्तेन परप्रतिपिपादयिषया उदीरितेऽपि न्यायत्वमित्यवधेयं । 'न्यायसाध्यमिति न्यायजन्यज्ञानप्रयोज्यमित्यर्थः । अवयवान्विभजते, 'प्रतिज्ञेति, यद्यपि अवयवसामान्यं निरूप्यैव तद्विभागो युक्तस्तथापि पञ्चावयवोपेतस्यैवात्र लक्ष्यत्वं न तु मीमांसकाभिमतोदाहरणादित्र्यवयवस्य बौद्धाभिमतोदाहरणोपनयात्मकद्व्यवयवस्य वा इति सूचनाय प्रथमतस्तद्विभागः, अन्यथा वक्ष्यमाणन्यायलक्षणस्याव्याप्त्यतिव्याप्त्यापत्तेः । 'तत्र' न्यायावयवनिरूपणे, सप्तम्यर्थो विषयत्वं, 'समस्तरूपेति पक्षसत्त्व-सपक्षसत्त्व-विपक्षासत्त्वाबाधितत्त्वासत्प्रतिपक्षितत्वरूपपञ्चरूपविशिष्ट-लिङ्गप्रतिपादकमित्यर्थः, 'अत्रैवेति पञ्चरूपविशिष्टलिङ्गमिति वाक्यमित्यर्थः, तस्यापि उक्तपञ्चरूपविशिष्टलिङ्गप्रतिपादकत्वादिति भावः[१]।

---

(१) प्रसङ्गादाह, 'तच्चेति तत्त्रिविधमप्यनुमानं, 'परार्थं' परस्य वादिनोऽर्थः साध्यनिश्चयः तच्छङ्कानिवृत्तिर्वा यस्मात् तादृशं, 'न्यायसाध्यं' न्यायप्रयो-

ध्यमित्यर्थः, सतिप्रार्थ्यैकपनयमात्रस्य सौगतैरुदाहरणादिद्वयस्य मीमांसकैः
प्रतिज्ञादित्रयस्य जरन्नैयायिकैर्विप्रतिपत्ति-समयबन्ध-जिज्ञासावाक्य-क
कोद्धारदृष्टान्तक्रमेण वाक्यदशकस्य न्यायत्वोपगमात् तेषां मतमपकरि-
विशिष्यावयवान् दर्शयति, 'प्रतिज्ञा-हेतूदाहरणोपनय-निगमनानीति,
न्यायावयवयोर्मध्ये, 'समस्तेति पक्षसत्त्वादिपञ्चरूपैर्विशिष्टस्य लिङ्गस्य प्रति-
पादकं वाक्यं इत्यर्थः, 'अत्रैव' समस्तरूपोपेतं लिङ्गमिति वाक्य एव, 'अति
व्याप्तेरित्युपलक्षणं केवलान्वयिस्थले विपक्षाप्रसिद्ध्या तत्साध्यकन्यायेऽव्याप्ति
रपि द्रष्टव्या। 'किन्त्वित्यादि, अत्रानुमितिपदं यादृश-यादृशानुपूर्व्यवच्छि
न्नवाक्ये नैयायिकानां प्रकृतपक्ष-हेतु-साध्यकन्यायव्यवहारः तादृश-तादृ
शानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावकूटसाध्यकानुमितिपरं, तथाच तादृशानुमितेः चरा-
मकारणीभूतो यो लिङ्गपरामर्शः तादृश-तादृशानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावकूटव्याप्य
प्यघटपदत्ववान् इत्याकारकः परामर्शः, तस्य प्रयोजकं तज्जनकव्याप्ति-
ज्ञानस्य जनकं यत् शाब्दज्ञानं शब्दप्रकारकं ज्ञानं तज्जनकं तस्य प्रकारतः
जनकतावच्छेदकं वाक्यमित्यर्थः, घट इत्यानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावस्य ज्ञानं प्रति
प्रकारतया जनकतावच्छेदकं घट इत्यानुपूर्व्यवच्छिन्नवाक्यमपीति तत्रातिव्या
प्तेर्वारणाय प्रयोजकान्तं शाब्दज्ञानस्य विशेषणं। न च यादृश-यादृशानु
वच्छिन्ने न्यायव्यवहारस्तादृश-तादृशानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावकूटवत्ताबुद्धि
तावच्छेदकीभूतानुपूर्वीविशिष्टवाक्यत्वमेव न्यायत्वं कुतो लघुतरं न तन्निरुक्तं
इति वाच्यम्। स्वतन्त्रेच्छस्य नियन्तुमशक्यत्वात् इति जागदीशी व्याख्या।

केचित्तु अनुमितिकारणपरामर्शनिष्ठकार्य्यतानिरूपितशाब्दत्वव्याप्यधर्म्मा-
वच्छिन्नकारणतावच्छेदकीभूता या विषयता तदवच्छिन्नकार्य्यतानिरूपिता
या यत्किञ्चिज्ज्ञानवृत्तिजनकता तदवच्छेदकीभूतविषयितानिरूपकवर्णस
मुदायत्वं न्यायत्वं अतो न कुत्राप्यतिव्याप्तिः परामर्शं प्रति न्यायजन्यशाब्द
बोधस्य तादृशशाब्दत्वेन हेतुत्वोपगमात् व्यभिचारश्चाव्यवहितोत्तरत्वादि-
निवेशेन वारणीयः, केवलोपनयजन्यपरामर्शस्थले च उपनयजन्यशाब्दबो-

प्यन्ते । तत्र न समस्तरूपोपपन्नलिङ्गप्रतिपादकवाक्यं न्यायः, अत्रैव वाक्येऽतिव्याप्तेः, किन्त्वनुमितिचरमका-

---

'अनुमितीति अनुमितिचरमकारणं यल्लिङ्गपरामर्शस्तस्य प्रयोजकं तज्जनकजनकं यच्छाब्दज्ञानं तज्जनकज्ञाननिष्ठकारणताया विषयितासम्बन्धेनावच्छेदकवाक्यमित्यर्थः, घटमानयेति वाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय प्रयोजकान्तं, उपनयस्यापि अनुमितिकारणपरामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानजनकतया तत्रातिव्याप्तिवारणाय 'चरमेत्युक्तं, चरमत्वञ्चा-

---

धस्य न परामर्शं प्रति तादृशशाब्दबोधत्वेन हेतुता अपि तु तद्विषयकज्ञानत्वेन । न च तादृशकार्य्य-कारणभावे मानाभाव इति वाच्यं। उपनायकज्ञानादिसत्त्वे वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वते इत्यादिज्ञानकाले वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इत्यादिवारणाय तत्तदननुगतज्ञानादीनां हेतुत्वं कल्प्यं इत्यत्र न्यायजन्यपरामर्शस्थलीयानन्तज्ञानानां हेतुत्वकल्पनमपेक्ष्य लाघवात् न्यायजन्यबोधस्य तादृशबोधत्वेन हेतुता कल्प्यते तादृशकारणबाधादेवान्यत्र धूमविशेष्यकपरामर्शकाले न धूमप्रकारकपरामर्श-इति, चरमकारणपदन्तु तादृशकारणताभिप्रायेण उपात्तं। न च तादृशयुक्त्या न्यायजन्यशाब्दबोधस्य तादृशशाब्दबोधत्वेन हेतुत्वकल्पने तादृशयुक्त्यैव केवलोपनयजन्यशाब्दस्यापि तादृशशाब्दत्वेन हेतुत्वं कल्प्यमिति वाच्यम् । तत्र परामर्शस्यानैयत्येनाननुगतकारणताकल्पनासम्भवादित्याहुः, तच्चिन्त्यं ।

नवीनास्तु न्यायजन्यशाब्दबोधप्रयोज्यानुमितिर्यल्लिङ्गमेव तल्लिङ्गमादाय तदनुमितिप्रयोजकीभूतपरामर्शयल्लिङ्गप्रयोजकीभूतशाब्दबोधनिष्ठकार्य्यतानिरूपित-यत्किञ्चिज्ज्ञाननिष्ठस्वरूपयोग्यतावच्छेदकीभूतविषयितानिरूपकवर्णसमुदायत्वमतो न कश्चिद्दोषः, असम्भववारणाय यत्किञ्चिज्ज्ञाननिवेशनमिति प्राहुः, इति व्याख्यान्तरं ।

रणलिङ्गपरामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानजनकवाक्यं न्यायः।
प्रतिज्ञादिपञ्चवाक्यैरेकवाक्यतया स्वार्थविशिष्टज्ञानं ज-

---

नुमितौ कर्त्तव्यायां स्वोत्तरोत्पन्नज्ञानानपेक्षत्वं, तथाच उपनयप्रयो-
ज्यानुमितिकारणपरामर्शस्य स्वोत्तरोत्पन्ननिगमनसाध्याबाधितत्व-
ज्ञानसापेक्षत्वात् नोपनयेऽतिव्याप्तिरिति भावः। अनुमितिचरम-
कारणात्मकशाब्दज्ञाने क्वतेऽसम्भवः न्यायजन्यज्ञानस्य पक्षतावच्छेद-
कविशिष्टे साध्यव्याप्यवदभेदस्यैव विषयीकरणात् नामार्थयोर्भेदान्व-
यस्याव्युत्पन्नतया पक्षतावच्छेदकविशिष्टे साध्यव्याप्यवैशिष्ट्यानवगाहि-
त्वात् तादृशज्ञानस्यानुमितिजनकत्वाभावात्। न च तादृशपरामर्श-
जनकत्वमेवोच्यतां किं तज्जनकजनकत्वप्रवेशेनेति वाच्यं। तथाप्य-
सम्भवापत्तेः न्यायजन्यज्ञानस्य वादिवाक्यज्ञानजन्यत्वेनाप्रामाण्यज्ञाना-
स्कन्दितत्वेन तेन विशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकतादृशज्ञानजननासम्भवात्
अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दित-विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चयात्मकं
न्यायजन्यशाब्दज्ञानजन्यज्ञानान्तरमपेक्षणीयमिति।
उपाध्यायास्तु तादृशपरामर्शप्रयोजकत्वं तादृशपरामर्शजनकत्वमेव
तथाच न्यायजन्यज्ञानानन्तरोत्पन्नज्ञानादेवानुमितिरित्याहुः।
यत्र समयवशेनायन्नाभास इत्यादिरूपकण्ठकोद्धारसहित एव
न्यायप्रयोगः क्वतः तत्र कण्टकोद्धारवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय 'शाब्देति,
तथाच तत्पदमहिम्ना तादृशपरामर्शं प्रति तज्जन्यज्ञानस्य शाब्दत्वेन
प्रयोजकत्वमित्यर्थः पर्य्यवस्यति, कण्टकोद्धारवाक्यस्य च योग्यता-
ज्ञानमात्रसम्पादकत्वात् योग्यताज्ञानस्य च शाब्दाशाब्दसाधारणेनैव

न्यते तेन च विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि मानान्तरमुत्था-

---

हेतुत्वमिति नातिप्रसङ्गः, न्यायजन्यज्ञानस्य च प्रतिवादिपरामर्शं प्रति तादृशशाब्दत्वेन हेतुत्वं अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां तथैव कार्य्य-कारण-भावावधारणादिति हृदयं। वाक्यपदं तादृशशाब्दज्ञाननिष्ठकार्य्यता-निरूपितकारणताया विषयविधयावच्छेदकत्वपर्य्याप्त्यधिकरणत्वला-भाय अन्यथा न्यायैकदेशेऽतिव्याप्तेः[1]।

---

(१) लक्ष्ये लक्षणं योजयति, 'प्रतिज्ञादीति प्रतिज्ञादिपञ्चवाक्यैरेकवाक्य-तया एकानुपूर्व्वीमत्त्वेन रूपेण यः स्वस्वार्थो निवृत्तिरभाव इति यावत्, तज्ज्ञानं जन्यते, 'तेन च' क्रमिकप्रतिज्ञादिपञ्चगतैकानुपूर्व्यवच्छिन्नाभाव-कूटज्ञानेन च, विशिष्टस्य तादृश-तादृशानुपूर्व्वीमत्त्वावच्छिन्नाभावीयत्व-विशिष्टव्याप्यत्वस्य घटपदत्वादिहेतौ वैशिष्ट्यावगाहि यन्मानं घटपदत्वं तादृश-तादृशानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावकूटव्याप्यमित्याकारकं ज्ञानं तदुत्थाप्यते जन्यते, 'तेन च' व्याप्यत्वबोधेन च, 'चरमपरामर्शः' तादृश-तादृशानुपूर्व्वी-मत्त्वावच्छिन्नाभावकूटव्याप्यघटपदत्ववान् इत्याकारको जन्यत इत्यर्थः।

साम्प्रदायिकास्तु लक्षणस्यास्यानुमितिपदस्य प्रकृतपक्षक-प्रकृतसाध्यक-प्रकृतहेतुकानुमितिपरत्वं वर्णयन्तो ग्रन्थमन्यथा व्याचक्षते, यथा प्रति-ज्ञादिपञ्चवाक्यैरेकवाक्यतया स्व-स्वघटकपदानामेकवाक्यत्ववशेन स्व-स्वार्थ-विशिष्टज्ञानं समूहालम्बनरूपमेव जन्यते न तु मिथो विशिष्टवैशिष्ट्या-वगाहिरूपं, उदाहरणस्यान्यचानन्वयित्वेन पञ्चभिः परस्परमेकवाक्यता-निरन्वयबोधस्य जननासम्भवात्, तेन च प्रतिज्ञादिपञ्चकजन्यबोधेन च विशिष्टस्य प्रकृतसाध्यीयत्वविशिष्टस्य व्याप्यत्वस्य हेतौ वैशिष्ट्यावगाहि मानं मानसात्मकं ज्ञानं तदुत्थाप्यते जन्यते। न च न्यायजन्यबोधस्यैव

प्यते तेन च चरमपरामर्श उत्पाद्यत इति न्यायजन्यशाब्दज्ञानस्य परामर्शप्रयोजकता ।

---

लक्ष्ये लक्षणं सङ्गमयति, 'प्रतिज्ञादीति, 'एकवाक्यतया' मिलित्वा, 'स्वार्थविशिष्टज्ञानं' परस्परार्थान्वितस्वार्थविषयकज्ञानं, 'तेन' विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानेन, 'मानान्तरं' मित्यन्तरं, 'उत्पाद्यते' जन्यते, उपाध्यायमते 'मानं' मनः, 'उत्पाद्यते' ज्ञानात्मकसहकारिसम्पन्नीक्रियते

---

विशेषणज्ञानविधया परामर्शजनकत्वसम्भवात् मानान्तरोत्पादनमफलमिति वाच्यम् । हेत्वंशे व्याप्त्यंशे च साध्यस्य संसर्गविधया वैशिष्ट्यावगाहिन एव बोधस्य चरमपरामर्शहेतुतया न्यायजन्यबोधस्य तथात्वासम्भवात् तस्य हेत्वाद्यंशे तादात्म्येन व्याप्त्याद्यवगाहित्वात्, एतेन न्यायजन्यशाब्दबोधेन विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि व्याप्तिविशिष्टस्य हेतोः पक्षवैशिष्ट्यग्राहकं यन्मानं मनः तदुत्पाद्यते सहकारिसम्पन्नीक्रियते इत्युपाध्यायव्याख्यानमनादेयं । यत्तु न्यायजन्यबोधस्य वादिवाक्यजन्यत्वेनाप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितत्वात् ततो न चरमपरामर्शोत्पादः सम्भवत्यतः साध्यीयत्वविशिष्टव्याप्यत्वस्य साधने वैशिष्ट्यावगाहि यन्मानान्तरं मानसज्ञानं तस्यानुसरणमिति मिश्रैरुक्तं, तदप्ययुक्तं, न्यायजन्यशाब्दज्ञानस्याप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितत्वे ततः परामर्शस्येव साधनधर्मिकव्याप्यत्वोपनीतभानस्याप्युत्पत्तेरसम्भवात् सर्वस्यां न्यायजन्यबुद्धौ वादिवाक्यजन्यत्वेनाप्रामाण्यग्रहानावश्यकत्वाच्चेत्याहुः, तन्मन्दं, वह्निव्याप्यवानयमित्यादिवाक्यजशाब्दस्यापि वह्न्यनुमितिचरमकारणीभूतपरामर्शं प्रति कथञ्चित् प्रयोजकत्वेन तज्जनकतादृशवाक्येऽतिव्याप्तेर्दुर्वारत्वापत्तेः इत्यास्तां विस्तरः इति जागदीशी व्याख्या ।

इत्यर्थः, मनसोविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिता तु व्यापारानुबन्धिनी। न च प्रतिज्ञादिपञ्चवाक्यैर्मिलिता विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानमसम्भवि उदाहरणे यद्यदित्यनेन पर्वतादीनां उपस्थापनादिति वाच्यम्। वीप्सासमभिव्याहारेण तत्र व्यापकत्वबोधनात् तथाच धूमवदभिन्न-धूमव्यापकवह्निसम्बन्ध्यभिन्न-धूमज्ञानज्ञाप्यवह्निसम्बन्ध्यभिन्नः पर्वतो वह्निव्याप्याभिन्नधूमसम्बन्ध्यभिन्न-वह्निव्याप्यधूमज्ञानज्ञाप्यवह्निसम्बन्ध्यभिन्नपर्वताभिन्न इति न्यायजन्यमहावाक्यार्थबोधः। न च धूमज्ञानज्ञाप्यवह्निसम्बन्ध्यभिन्नपर्वते कथं वह्निव्याप्यधूमज्ञानज्ञाप्यवह्निसम्बन्धिनस्तादात्म्येन भानं उद्देश्यतावच्छेदकस्य विधेयतावच्छेदककोटिप्रविष्टत्वादिति वाच्यम्। उद्देश्यतावच्छेदके विधेयतावच्छेदकतायाः पर्य्याप्तेरेव निराकाङ्क्षत्वात्, अत एव दण्डी रक्तदण्डीति प्रयोगोऽपि सङ्गच्छते। यदि च उद्देश्यतावच्छेदकस्य विधेयतावच्छेदककोटिप्रवेश एव निराकाङ्क्षत्वं अत एव पक्ता पचतीत्यादौ लडर्थवर्त्तमानत्वादेरधिकस्य प्रवेशेऽपि नान्वयबोध इत्यभ्युपेयते तदा 'एकवाक्यतया' एकैकवाक्यतया प्रत्येकेनेति यावत्, 'स्वार्थविशिष्टज्ञानं' स्वार्थमात्रविषयकं अवान्तरवाक्यार्थज्ञानं, 'जन्यते', 'तेन च' अवान्तरवाक्यार्थज्ञानेन च, 'विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि' प्रतिज्ञार्थे हेत्वर्थवैशिष्ट्यावगाहि उपनयार्थे निगमनार्थवैशिष्ट्यावगाहि, 'मानान्तरं' महावाक्यार्थज्ञानं, 'उत्पाद्यते' जन्यते इत्यर्थः, यद्वा 'एकवाक्यतया' एकान्वयबुद्धिजननयोग्यतया, 'स्वार्थविशिष्टज्ञानं' स्वार्थविषयकं समूहालम्बनरूपं महावाक्यार्थज्ञानं जन्यते इत्यर्थः, इति नानुपपत्तिगन्धोऽपीति। ननु न्यायजन्यज्ञानस्य तादृशपरामर्शं प्रति प्रयोजकत्वं यदि

व्याप्ति-पक्षधर्मतोपस्थापकतया(१) उदाहरणोपनययोरेवानुमिति-चरमकारणलिङ्गपरामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानजनकत्वं पर्यवस्यति, तदा अवयवान्तरेऽव्याप्तिः, यदि च परामर्शविषयीभूतयत्किञ्चित्पदार्थ-मात्रविषयकतामात्रेण तदा वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्युदासीनवा-क्यादावतिव्याप्तिः। न च न्यायजन्यज्ञानस्य तादृशशाब्दत्वेन तादृश-परामर्शं प्रति स्वातन्त्र्येण हेतुत्वमिति वाच्यम्। मानाभावादिति चेत्। न। शाब्दज्ञानान्तेन बहुव्रीहिणा विरुद्धानुपूर्वीकभिन्नस्य तत्-पक्षक-तत्साध्यक-तद्धेतुकप्रतिज्ञादिपञ्चकसमुदायत्वमुक्तं एवम्भूतं जन-कीभूतं वाक्यं तत् इत्यत्र तात्पर्य्यात्। न चैवमपि हेत्वाभासता-लिङ्गकासाधकतासाधकन्यायेऽव्याप्तिः तत्र व्याप्तेरुभयवादिसिद्धत-या उदाहरणाभावेन तादृशपञ्चकत्वाभावादिति वाच्यम्। स्वक-र्त्तव्यतानिर्वाहार्थं तत्राप्युदाहरणप्रयोगादित्यलमधिकेनेति(२)।

---

(१) व्याप्ति-पक्षधर्म्मताविषयकतयेत्यर्थः।

(२) 'अनुमितीति अत्राप्यनुमितिपदं यादृश-यादृशानुपूर्व्यवच्छिन्ने प्रकृ-तपक्ष-प्रकृतसाध्यादिन्यायव्यवहारः प्रामाणिकः तादृश-तादृशानुपूर्व्यव-च्छिन्नाभावकूटसाध्यकानुमितिपरं, तथाच तादृशानुमितेश्चरमकारणीभूतो यः तादृशानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावकूटव्याप्यवानयमित्याकारकः परामर्शः तस्य प्रयोजकं तज्जनकव्याप्तिज्ञानस्य जनकं यच्छाब्दं शाब्दप्रकारकं ज्ञानं तादृश-तादृशानुपूर्व्वीमत्त्वावच्छिन्नाभाव इत्याकारकं ज्ञानं तज्जनकं विषयविधया जनकतावच्छेदककोटिप्रविष्टं अथ च शाब्दबोधस्य जनकं यद्वाक्यं तत्त्व-मित्यर्थः, न्यायाप्रविष्टस्य प्रतिज्ञादिसमानार्थकवाक्यस्य वारणाय प्रविष्टान्तं, न्यायनिविष्टस्य प्रतिज्ञाद्यन्तर्गतपर्व्वत इत्यादिनिरर्थकभागस्य वारणाय शा-

ब्दबोधजनकेति। न च न्यायनिविष्टस्य वह्निमानित्यादिभागस्य शाब्दबोधजनकत्वात्तत्रातिव्याप्तिरिति वाच्यम्। शाब्दबोधजनकेत्यनेन पक्षे साध्यस्य, हेतुतायां साधनस्य, साधने साध्यव्याप्यत्वस्य, पक्षे साध्यव्याप्यहेतुमत्त्वस्य, हेतुव्याप्यसाध्यत्त्ववस्य च येऽन्वयबोधास्तेषामन्यतमबोधं प्रत्येव जनकत्वस्य विवक्षितत्वात्। न चैवमपि रमेश्वरः पूज्यो देवत्वादित्यादिन्यायान्तर्गतस्य मेश्वरः पूज्य इति भागस्यापि उक्तरूपवत्त्वात् तत्रातिव्याप्तिरिति वाच्यं। स्वघटितवाक्याप्रतिपाद्यस्वार्थकवाक्यत्वरूपमहावाक्यत्वपरेण वाक्यपदेनैव तद्वारणादिति भावः। ननु प्रकृतपक्ष-हेतु-साध्यकपरामर्शजनकवाक्यत्वं न्यायत्वं, तादृशबोधानुकूलबोधजनकत्वञ्चावयवत्वं इति प्राचीनैरुक्तं कुतस्त्यक्तमतआह, 'अतएवेति उक्तनिरुक्तेस्त्यागादेवेत्यर्थः, 'तदवयवे' तादृशवाक्यैकदेशे वह्निव्याप्येत्यादिभाग इति यावत्। ननु नामार्थ-धात्वर्थयोर्नामार्थयोश्च भेदेनान्वयबोधस्याव्युत्पन्नतया उक्तवाक्यस्य पक्ष-व्याप्त्यादौ हेतु-साध्यादिप्रकारकबोधाजनकत्वेन परामर्शजनकत्वमेव नास्ति कुतस्तत्रातिव्याप्तिरित्यतआह, 'तेनेति, 'जननात्' जननसम्भवात्, प्राचैर्मतुबादिसमभिव्याहारवशान्नामार्थयोर्भेदेनान्वयस्याभ्युपगमादिति भावः।

न्यायावयवपदयोः पर्य्यायत्ववादिनां मतमुपन्यस्यति, 'यत्त्विति 'सङ्क्षेपतः' लाघवात्, 'विशेषाभावादित्यस्य प्रतिज्ञादिपञ्चकसमुदायापेक्षयेत्यादिः, 'सोऽपीति वह्निव्याप्यधूमवानयं इत्यादिशाब्दबोधप्रयोजकोऽपीत्यर्थः, न्यायस्य प्रथमतो वादिवाक्यत्वनियमात् उक्तवाक्यस्य च न्यायत्वेऽनाकाङ्क्षितस्य तस्य प्रागभिधानेऽर्थान्तरात्मकस्य निग्रहस्थानस्य प्रसङ्गादित्याशयेन निरस्यति, 'कथायामिति जल्प-वादकथायामित्यर्थः, लाघवाद्यदि परामर्शप्रयोजकवाक्यत्वस्यैव न्यायपदप्रतिपाद्यतावच्छेदकता तदाऽतिलाघवात् परामर्शप्रयोकत्वमात्रस्य तथात्वं स्यात् तथाच चक्षुरादिरपि न्यायः स्यादित्याह, 'अन्यथेति न्यायत्वापत्तिर्न्यायपदवाच्यत्वापत्तिः। ननु चक्षुरादेर्न्यायत्वे प्रथमतस्तदभिधानेऽर्थान्तरं स्यादित्यत आह, 'आकाङ्क्षेति, 'तुल्य इत्यस्य उपनयनवाक्येऽपीत्यादिः।

अनुमितिचरमकारणलिङ्गपरामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानजनकशाब्दज्ञानजनकवाक्यत्वमवयवत्वम्, अतएव वह्निव्याप्यधूमवानयमितिवाक्ये तदवयवे च न न्यायतदवयवलक्षणातिव्याप्तिः तेन परामर्शस्य तदवयवेन परामर्शजनकस्य जननात्।

यत्तु संक्षेपतः परामर्शप्रयोजकवाक्यत्वेन विशेषा-

---

'अनुमितिचरमकारणेति, न्यायेऽतिव्याप्तिवारणाय तादृशशाब्दज्ञानजनकेत्युक्तं, वह्निव्याप्यधूमवानयमितिवाक्यैकदेशेऽतिव्याप्तिवारणाय चरमत्वं परामर्शविशेषणं, अर्थस्तु पूर्ववत्, पूर्वोक्तकण्टको-

---

'तद्धीति तादृशशाब्दधीत्यर्थः, विजातीयं विलक्षणैकजातिविशिष्टं, 'तल्लक्षणं' अवयवलक्षणं, क्वचित्तु मूले 'तत्तद्धीजनकत्वमेव तल्लक्षणमिति पाठः, स च विजातीयज्ञानजनकत्वं प्रतिज्ञात्वं, तद्विलक्षणज्ञानजनकत्वं हेतुत्वमित्येवं क्रमेण व्याख्येयस्तेन प्रतिज्ञादिग्रन्थे तादृशतल्लक्षणस्याग्रे प्रक्षिप्तत्वेन पुनरुक्तिभिया प्रामादिक इति ध्येयं। 'दुर्निरूपमिति कार्य्यमात्रवृत्तिजातेरनुगतानतिप्रसक्तधर्म्मावच्छिन्नकारणप्रयोज्यत्वनियमादिति भावः। 'तस्यैवेत्येवकारोभिन्नक्रमे तेन 'तत्स्वीकारे एव' प्रतिज्ञादावनुगतधर्म्मस्वीकार एव, 'तस्य' विजातीयधीजनकवाक्यत्वस्य लक्षणत्वसम्भवादित्यर्थः, तथाच वैजात्यासत्त्वात्तद्घटितलक्षणस्यासम्भवादिति भावः। ननु विनाप्यनुगतानतिप्रसक्तधर्म्मावच्छिन्नकारणं कार्य्यगतवैजात्यसत्त्वे कोदोष इत्यत आह, 'अन्यथेति अनुगतकारणं विनापि कार्य्यगतवैजात्योपगमे घट-पटादिचित्रतुरेष्वप्येकवैजात्यसिद्ध्या तेन समं घटत्व-पटत्वादेः सङ्करप्रसङ्ग इत्यर्थः, तथाविधवैजात्ये प्रमाणविरहस्तु प्रकृतेऽपि समान इति भावः इति जागदीशी व्याख्या।

भावात् सोऽपि न्याय एवेति, तन्न, कथायामाकाङ्क्षा-क्रमेणाभिधानमिति प्रथमं विशिष्टवैशिष्ट्ये आकाङ्क्षा नास्तीति तदभिधाने निग्रहादिति वक्ष्यते, अन्यथा

---

द्वारावयवेऽतिव्याप्तिवारणाय शब्दपदं, उदासीने च यथा नाति-व्याप्तिस्तथोक्तमधस्तात्। न च यत्र द्वाभ्यामवयवाभ्यां न्यायजन्यज्ञान-जनकं एकं ज्ञानं जनितं तत्र तादृशावयवद्वयेऽतिव्याप्तिः एवं पूर्वोक्त-रीत्या वह्निव्याप्यधूमवानयमिति वाक्यैकदेशेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यम्। स्वाविषयकप्रतीत्यविषयन्यायकत्वे सति प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वं अवयवत्वं इत्यर्थे तात्पर्य्यात्, बहुव्रीहिसमासे जनकान्तात् तथा लाभात्, उदा-सीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं, अवयवैकदेशेऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलं, तत्र चान्यतमत्वघटकाः प्रतिज्ञादिभेदाः तत्तद्व्यक्तित्वा-वच्छिन्नप्रतियोगिताका ग्राह्याः, न तु तत्तदानुपूर्व्व्यवच्छिन्नप्रति-योगिताकाः, धूमादालोकवान् पर्वतोवह्निमान् धूमादित्यत्र हेत्व-वयवसमानानुपूर्वीकप्रतिज्ञैकदेशे धूमादितिभागेऽतिव्याप्तेः। न च शब्दभेदेन न्यायानन्त्यं स्यादिति वाच्यं। इष्टत्वात्। न्यायलक्षणे तदवय-वलक्षणे च चरमपदव्यावृत्तिमाह, 'अत एवेति परामर्शे चरमत्वो-पादानादेवेत्यर्थः, 'तदवयवे चेति वह्निव्याप्यधूमवानितिन्यायावय-वैकदेशे चेत्यर्थः, 'न्याय-तदवयवेति यथाक्रममन्वयः। ननु चरमत्वो-पादानादेव कुतोनातिव्याप्तिः तत्र हेतुमाह, 'तेनेति वह्निव्याप्य-धूमवानयमिति वाक्येनेत्यर्थः, 'परामर्शस्येति सावधारणं, 'परामर्शपदं परामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानपरं, अस्य 'जननादित्यनेनान्वयः, तथाच

**चक्षुरादेरपि परामर्शजनकतया न्यायत्वापत्तिः आकाङ्क्षाविरहस्तुल्यएव ।**

परामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानस्यैव जननादित्यर्थः, अनुमितिचरमकारणपरामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानाजननात् इति पर्य्यवसितार्थः, तथाच तादृशवाक्यजन्यशाब्दज्ञानप्रयोज्यज्ञानस्य स्वोत्तरोत्पन्नाबाधितत्वज्ञानसापेक्षतया चरमत्वाभावान्नातिव्याप्तिरिति भावः । 'तदवयवेनेति वह्निव्याप्यधूमवानयमित्यस्य एकदेशेनेत्यर्थः, 'परामर्शजनकस्येति इदमपि सावधारणं, अत्रापि पूर्व्वोक्तरीत्या अर्थोऽवसेयः ।

'सङ्क्षेपतः' लाघवतः, नन्वेवं वाक्यत्वमेव तदुच्यतामिति लाघवादित्यत आह, 'अविशेषादिति[१] अत्र चकारः पूरणीयः, अत्र हेतुमाह, 'परामर्शप्रयोजकेति परामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानजनकवाक्यत्वेनेत्यर्थः, 'सोऽपीति तावन्मात्रमपि यदि कथायां प्रयुज्यते तदा तस्यापि न्यायत्वमिष्यत एवेत्यर्थः, 'प्रथममिति हेत्वाद्यभिधानात् प्रागित्यर्थः, 'विशिष्टवैशिष्ट्य इति सप्तम्यर्थो विषयत्वं, तथाच व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिजिज्ञासा नास्तीत्यर्थः, 'तदभिधाने' अनाकाङ्क्षिताभिधाने, तथा चाचेष्टापत्तिरनुचितेति भावः । ननु हेत्वाद्यभिधानात् प्रागपि कदाचित् वह्निव्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानगोचरेष्टसाधनतास्मरणादिना विशिष्टवैशिष्ट्यगोचराकाङ्क्षा सम्भवत्येवेति तत्र न्यायत्वस्वीकारे नोक्तदोषः इत्यत आह, 'अन्यथेति लाघवेन सम्प्रदायसिद्धन्यायव्यवहाराविषयस्यापि न्यायत्वस्वीकारे इत्यर्थः,

(१) 'विशेषाभावात्' इत्यत्र 'अविशेषात्' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठोऽनेन रहस्यकृत्पाठधारणेनानुमीयते ।

अन्ये तु पञ्चावयववाक्यादिजातीयमेव शाब्दज्ञान-मुत्पद्यत इति तद्धीजनकवाक्यत्वं न्यायत्वम्, एवं प्रति-

'चक्षुरादेरपीति अतिलाघवात् वाक्यत्वमपि परित्यज्य चक्षुरादि-साधारणस्यैव वक्तुमुचितत्वादिति भावः।'आकाङ्क्षाविरह इति आकाङ्क्षापदं सम्प्रदायसिद्धन्यायव्यवहारपरं, तथाच सम्प्रदायसिद्धन्यायत्व-व्यवहारविरहश्चक्षुरादाविव वह्निव्याप्यधूमवानयमित्येतावन्मात्रवाक्ये-ऽपि तिष्ठतीत्यर्थः, तथाचाच न्यायत्वास्वीकारे तत्रापि तथात्वौचित्या-दिति भावः। 'तद्धीजनकेति विजातीयशाब्दज्ञाननिष्ठकार्य्यतानिरू-पितकारणतायाः विषयितासम्बन्धेनावच्छेदकं यद्वाक्यं तत्त्वमित्यर्थः, वह्निव्याप्यधूमवानयमित्येतावन्मात्रजन्यज्ञाने च न वैजात्यमिति नाति-प्रसङ्गः, वाक्यपदं अवच्छेदकतापर्य्याप्तिलाभाय, इतरथा न्यायैक-देशेऽतिव्याप्तिः, 'एवमिति तुल्यप्रायमित्यर्थः, 'तल्लक्षणमिति प्रतिज्ञा-दिलक्षणमित्यर्थः, 'अनतिप्रसक्तमिति उदासीनवाक्यव्यावृत्तमित्यर्थः, एतेन तादृशवाक्यत्वव्यवच्छेदः, 'अनुगतमिति सकलन्यायसाधारण-मित्यर्थः, एतेन तत्तद्व्यक्तित्वव्यवच्छेदः, 'दुर्निरूपमिति दुःसम्भवमि-त्यर्थः, जनकतायाः जनकतावच्छेदकघटितत्वादिति भावः। ननु तादृशं रूपं स्वीकृत्यैव लक्षणं करणीयमित्यत आह, 'तत्स्वीकार-इति न्यायादावनुगताननतिप्रसक्तधर्मस्वीकार इत्यर्थः, 'लक्षणत्वात्' लक्षणत्वापातात्। ननु तस्यैव इत्ययुक्तं लक्षणान्तरसत्त्वेन लक्षणान्त-रकरणे दोषाभावादित्यत आह, 'अन्यथेति न्यायादिजन्यताव-च्छेदकवैजात्यानां स्वीकारे इत्यर्थः, 'जातिसङ्करप्रसङ्ग इति प्रतिज्ञा-

शाद्यवयवादपि प्रत्येकं विजातीयं शाब्दज्ञानमिति तत्तद्धीजनकशब्दत्वमेव तत्तल्लक्षणमिति, तन्न, ज्ञानविशेषजनकत्वं तत्तज्ज्ञानजनकत्वं वा न्याये प्रतिज्ञादौ चानतिप्रसक्तमनुगतरूपमन्तरेण दुर्निरूपमिति तत्स्वीकारे तस्यैव लक्षणत्वात् अन्यथा जातिसङ्करप्रसङ्गः ।

---

जन्यतावच्छेदकजात्यभाववति हेतुमात्रजन्यज्ञाने हेतुजन्यतावच्छेदिका जातिः हेतुजन्यतावच्छेदकजात्यभाववति प्रतिज्ञामात्रजन्यज्ञाने प्रतिज्ञाजन्यतावच्छेदिका जातिः उभयज्ञानजन्ये च उभयोः समावेश इति सङ्कर इत्यर्थः, एवमुदाहरणादिजन्यतावच्छेदकजातिमादायापि सङ्करो बोध्यः । न चोभयजन्यतावच्छेदकं भिन्नमेव वैजात्यं स्वीकार्य्यं प्रत्येकजन्यतावच्छेदकवैजात्यावच्छिन्नं प्रति उभयजन्यतावच्छेदकवैजात्यावच्छिन्नसामग्रीणां प्रतिबन्धकतया नोभयादिजन्यज्ञाने च प्रत्येकजन्यतावच्छेदकवैजात्यमिति न सङ्कर इति वाच्यम् । एतादृशप्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावे विभिन्नवैजात्यकल्पने मानाभावात् क्लृप्तसामग्रीत एव तादृशशाब्दोदयात् ।

'तत्र' निरूपणे, सप्तम्यर्थो विषयत्वं, 'साध्यनिर्द्देश इति साध्यं निर्द्दिश्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या साध्यप्रतिपादकशब्द इत्यर्थः, 'साध्यपद' इति साध्यपदस्यापि साध्यप्रतिपादकत्वादिति भावः । 'उद्देश्येति, उभयत्र उद्देश्यत्वं प्रकृतत्वं, यथाश्रुते यत्र न्याये अनुमितिर्नेच्छाविषयस्तत्रत्यप्रतिज्ञायामव्याप्तेः, तथाच तद्धर्मावच्छिन्नपक्षक-

तत्र प्रतिज्ञा न साध्यनिर्देशः साध्यपदेऽतिव्याप्तेः[१] किन्तूद्देश्यानुमितिहेतुलिङ्गपरामर्शप्रयोजकवाक्यार्थ-

---

तद्धर्मावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वे सति तद्धर्मावच्छिन्नपक्षक-तद्धर्मावच्छिन्नसाध्यकान्यूनानतिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकवाक्यत्वं तद्धर्मावच्छिन्नपक्षक-तद्धर्मावच्छिन्नसाध्यकप्रतिज्ञात्वमित्यर्थः, पर्वतो वह्निमानित्युदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं, तद्दत्ते तद्धर्मावच्छिन्नपक्षकेत्यनुक्तौ यत्राभिधेयसामान्यं पक्षीकृत्य वह्निज्ञानजन्यज्ञानं निरूपितत्वसम्बन्धेन साध्यते वह्निश्च हेतुस्तत्र वह्नेरिति हेतौ विषयत्वत्वावच्छिन्नपक्षक-वह्निज्ञानजन्यज्ञानत्वावच्छिन्नसाध्यकप्रतिज्ञालक्षणातिव्याप्तिः तादृशहेतुत्ववयवस्य वह्निज्ञानजन्यज्ञानत्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वात् विषयत्वत्वावच्छिन्नपक्षक-वह्निज्ञानजन्यज्ञानत्वावच्छिन्नसाध्यकानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकत्वाच्च, तद्दाने च विषयत्वत्वावच्छिन्नपक्षकन्यायावयवत्वाभावात् नातिव्याप्तिः, तत्पक्षकेत्युक्तावपि तद्दोषतादवस्थ्यमत आह, तद्धर्मावच्छिन्नपक्ष-

---

(१) 'तत्रेति, 'तत्र' निरूपणीयप्रतिज्ञादिषु मध्ये, 'साध्येति, 'साध्यस्य' विधेयधर्मविशिष्टधर्म्मिणः, 'निर्द्देशः' तद्बोधकशब्द इत्यर्थः, तथाच साध्यविशिष्टपक्षबोधकन्यायावयववाक्यत्वमर्थः पर्य्यवस्यति, 'साध्येति, निरुक्तसाध्यस्य 'पदे' बोधकशब्दे इति यावत्, 'अतिव्याप्तेरिति उपनयनिगमनाभ्यां एकवाक्यतया जायमाने बोधे निगमनस्य हेतुत्वेनातिव्याप्तेरित्यर्थः, एतेन निगमने अयम्पदा नुषङ्गपक्षे नातिव्याप्तिरिति परास्तं। तादृशबोधमात्रपदप्रक्षेपे तु नोक्तदोष इति ध्येयमिति जागदीशी व्याख्या।

केति। न चैवमपि यत्र विषयत्वत्वेन विषयत्वं पक्षीकृत्य निरूपितत्व-सम्बन्धेन वह्निज्ञानजन्यज्ञानं साध्यं वह्निश्च हेतुस्तत्र वह्नेरिति हेत्ववयवेऽतिव्याप्तिर्दुर्व्वारैवेति वाच्यम्। सम्प्रदायविरुद्धतया तादृशन्यायप्रयोगाभावात् तावन्मात्रे कृते पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-द्रव्यत्वावच्छिन्न-साध्यकोपनये पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-द्रव्यव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नसाध्यक-प्रतिज्ञालक्षणातिव्याप्तिः तादृशोपनयस्य पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षकन्यायावयवत्वात् पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-द्रव्यव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नसाध्यकानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकवाक्यत्वाच्च, तद्दाने च तस्य द्रव्यव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वाभावात् नातिप्रसङ्गः, तत्साध्यकत्वमात्रोक्तौ पर्वतोद्रव्यवान् धूमादित्यादिन्यायान्तर्गते द्रव्यव्याप्यधूमवानयमित्युपनये द्रव्यव्याप्यधूमसाध्यकप्रतिज्ञालक्षणातिव्याप्तिः तस्यापि द्रव्यत्वेन रूपेण द्रव्यव्याप्यधूमसाध्यकन्यायावयवत्वात् पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-द्रव्यव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नसाध्यकानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकवाक्यत्वाच्च, तथोक्तौ च तस्य द्रव्यव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वाभावान्नातिव्याप्तिः, हेत्वावयवेऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलं, तत्र तद्धर्मावच्छिन्नपक्षकेत्यनुक्तौ यत्राभिधेयसामान्यं पक्षीकृत्य निरूपितत्वसम्बन्धेन वह्निज्ञानजन्यज्ञानं साध्यं वह्निश्च हेतुः तत्र हेत्ववयवेऽतिव्याप्तिः तस्याभिधेयत्वावच्छिन्नपक्षक-वह्निज्ञानजन्यज्ञानत्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वात् विषयत्वत्वावच्छिन्नपक्षक-वह्निज्ञानजन्यज्ञानत्वावच्छिन्नसाध्यकानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकत्वाच्च ज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वस्य पञ्चम्यर्थत्वात्, तद्दाने च अभिधेयत्वावच्छिन्नपक्षक-तत्साध्यकानुमित्यन्यू-

ज्ञानजनकत्वे सत्युद्देश्यानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयक-
शाब्दज्ञानजनकं वाक्यम्[१] ।

---

नानतिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकत्वाभावान्नातिव्याप्तिः, तत्पक्षके-
त्युक्तावपि तद्दोषतादवस्थ्यं अत आह तद्धर्मावच्छिन्नेति, तद्धर्माव-
च्छिन्नसाध्यकेत्यनुक्तौ वह्निव्याप्यधूमवानयमित्युपनये पर्वतत्वावच्छिन्न-
पक्षक-वह्नित्वावच्छिन्नसाध्यकप्रतिज्ञालक्षणातिव्याप्तिः तस्यापि पर्वत-
त्वावच्छिन्नपक्षक-वह्नित्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वात् पर्वतत्वाव-
च्छिन्नपक्षक-वह्निव्याप्यधूमसाध्यकानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशा-
ब्दज्ञानजनकत्वाच्च, तद्दाने च वह्निसाध्यकानुमित्यन्यूनानतिरिक्त-
विषयकशाब्दज्ञानजनकत्वाभावान्नातिप्रसङ्गः, तत्साध्यकेत्युक्तौ च पर्व-
तोद्रव्यवान् धूमादित्यादिस्थलीयोपनयेऽतिव्याप्तिः तस्य पर्वतत्वावच्छि-

---

(१) 'किन्त्वित्यादि, प्रतिज्ञासमानार्थकस्य न्यायानन्तर्गतवाक्यस्य वार-
णाय सत्यन्तं, तत्राप्युद्देश्यानुमितिपदं यादृश-यादृशानुपूर्व्यवच्छिन्ने प्रकृत-
पक्षक-प्रकृतसाध्यकन्यायत्वं तादृश-तादृशानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावसाध्यकानु-
मितिपरं, तथाच तादृशानुमितेर्हेतुभूतोयोलिङ्गधर्म्मिकः परामर्शः घटत्वं
तादृश-तादृशानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावकूटव्याप्यमित्याकारकव्याप्तिनिश्चयः तस्य
प्रयोजकं विषयविधया जनकतावच्छेदकानुपूर्व्वीघटकं अथच यादृश-यादृश-
वाक्ये प्रकृतपक्ष-साध्य-हेतुकावयवव्यवहारस्तादृश-तादृशवाक्यकूटस्यार्थां-
निवृत्तिरभाव इति यावत् तद्बोधरज्ञानस्य जनकं प्रतियोगिविधया जनक-
तावच्छेदकं तत्त्वे सतीत्यर्थः, हेत्वाद्यवयवस्य वारणार्थं विशेष्यदलं, 'उद्देश्या'
प्रकृतपक्ष-साध्यिका, यानुमितिः तदन्यूनानतिरिक्तविषयकशाब्दधीजनकवा-
क्यत्वमिति तदर्थः, प्रकृतानुमित्यनतिरिक्तविषयकत्वंमात्रं धूमाद्द्रव्यत्ववान्

मपच्चक-द्रव्यत्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वात् पर्वतत्वावच्छिन्नपच्च-कद्रव्यव्याप्यधूमात्मकद्रव्यसाध्यकानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशाब्द-ज्ञानजनकत्वाच्च, तज्ज्ञाने च द्रव्यत्वावच्छिन्नसाध्यकानुमित्यन्यूनानति-रिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकत्वाभावान्नातिव्याप्तिः, धूमाद्दन्यवयवस-मवेतद्रव्यवान् पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यत्र हेत्ववयवे तादृशपर्वतत्वा-

---

पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादिन्यायस्थले धूमादित्यादिहेत्ववयवेऽतिव्याप्त-मतः प्रकृतानुमित्यन्यूनविषयकत्वमुक्तं, तच्च प्रकृतपच्चे प्रकृतसाध्यवैशिष्ट्याव-गाहित्वरूपं ग्राह्यं, धूमात् प्रमेयत्ववद्धेतुत्वं धूमीयं धूमादित्यादौ हेतुतामात्र-एव प्रकृतसाध्यवैशिष्ट्यबोधकोऽहेतुर्न तु विशिष्टहेतुत्वात्मके प्रकृतपच्चे, हेतुत्वं वाच्यत्वात् प्रमेयवृत्तिधर्म्मवत् वाच्यत्वादित्यादौ च प्रकृतपच्चे प्रकृत्य-र्थस्य वाच्यत्वस्यैव वैशिष्ट्यबोधकोऽहेतुर्न तु वाच्यत्वव्याप्यप्रमेयवृत्तिधर्म्मात्मकस्य प्रकृतसाध्यस्य इति तयोर्व्युदासः। न च पर्व्वतो वह्निमानित्यादौ वह्निसाध्य-कप्रतिज्ञायामव्याप्तिः नामार्थयोर्भेदेनान्वयबोधस्याव्युत्पन्नत्वेन तस्याः पच्चे साध्यप्रकारकबोधजनकत्वासम्भवादिति वाच्यं। समानविभक्तिकमतुवादि-समभिव्याहारवशेन नामार्थयोरपि भेदेनान्वयस्य प्राचीनैः स्वीकृतत्वादेव तत्सम्भवादिति प्रतिज्ञासहकारेण हेत्ववयवस्य उपनयस्थायमादिपदसह-कारेण निगमनस्य च निरुक्तानुमित्यन्यूनविषयकत्वात् तन्नातिव्याप्तिवार-णार्थमनतिरिक्तविषयकत्वमुक्तं। न च सर्व्वं प्रमेयं वाच्यत्वादित्यादौ प्रकृता-नुमितिविषयातिरिक्ताप्रसिद्धिः, प्रकृतपच्चधर्म्मिक-प्रकृतसाध्यावगाहिता-नन्तर्गतविषताशून्यत्वस्य विवच्चितत्वात्। न चैवमपि रमाधवः पूज्योदेवत्वा-दित्यादौ माधवः पूज्य इत्याकारकप्रतिज्ञैकदेशेऽतिव्याप्तिः तस्यापि निरुक्त-सत्यन्तार्थवत्त्वात्प्रकृतानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशाब्दधीजनकत्वाच्चेति वाच्यम्। स्वघटितवाक्याप्रतिपाद्यस्वार्थकत्वरूपमहावाक्यत्वपरेण चरमवा-क्यपदेनैव तस्य वारितत्वादिति भावः इति जागदीशी व्याख्या।

वच्छिन्नपक्षक-वह्नित्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वात् तादृशपर्वतत्वा-वच्छिन्नपक्षक-वह्नित्वावच्छिन्नसाध्यकानुमित्यनतिरिक्तविषयकशाब्द-ज्ञानजनकत्वाच्च तत्र तादृशपर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-वह्नित्वावच्छिन्नसा-ध्यकप्रतिज्ञालक्षणातिव्याप्तिवारणायान्यूनेति, तद्दाने च तस्य वह्न्यव-यवसमवेतद्रव्याविषयकत्वेन तादृशानुमित्यन्यूनविषयकत्वाभावान्नाति-प्रसङ्गः। तस्माद्वह्निमानित्यादिनिगमनस्यापि पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-वह्नित्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वात् पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-वह्नित्वा-वच्छिन्नसाध्यकानुमित्यन्यूनविषयकशाब्दज्ञानजनकत्वाच्च तत्रातिव्या-प्तिवारणायानतिरिक्तेति, तथाच तस्य तादृशानुमितिविषयातिरि-क्तव्याप्त्यादिविषयकत्वात् नोक्तातिव्याप्तिः, तत्र शाब्दज्ञानजनकत्वं ता-दृशज्ञानजनकतावच्छेदकानुपूर्व्वीमत्त्वं, अतः सभाक्षोभादिनाऽजनित-बोधकप्रतिज्ञायां नाव्याप्तिः, एतल्लाभायैव शाब्द-वाक्यपदयोरुपादानं।

ननु सर्व्वं प्रमेयमित्यादिप्रतिज्ञायामव्याप्तिः तादृशानुमितिवि-षयातिरिक्ताप्रसिद्धेः। न च तादृशानुमित्यनतिरिक्तविषयकत्वं तादृ-शानुमितिविषयितान्यावृत्तवैलक्षण्याश्रयविषयिताशून्यत्वं वाच्यमिति वाच्यम्। अनुमितिविषयितान्यावृत्ततत्तद्व्यक्तित्वरूपवैलक्षण्यस्य शाब्द-बोधविषयितायां सत्त्वात् इत्यतोलक्षणासम्भवात् लक्षणान्तरमाह, 'अन्यूनेति,(१) अन्यूनानतिरिक्तपदं अनुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकपरं,

(१) लाघवादाह, 'अन्यूनेति अन्यूनानतिरिक्तविषयकान्तभागं विहाय इत्यर्थः, अनुमितिविषयकत्वस्य प्रायशः प्रतिज्ञायामसत्त्वात् अनुमितिस-मानविषयकत्वस्य सतोऽपि व्यर्थत्वादिति ध्येयं। 'लिङ्गाविषयकत्वमिति लिङ्गं भावभिन्नत्वस्य यल्लिङ्गमभावत्वं तदविषयत्वमित्यर्थः, तेन हृदोमिर्धूमो-

अन्यूनानतिरिक्तपदं विहाय लिङ्गाविषयकत्वं वा ज्ञानविशेषणं तेनोदाहरणादिव्युदासः, निगमनञ्च

---

'लिङ्गाविषयकत्वमिति लिङ्गपदं व्याप्यपरं, भावार्थश्च विवक्षितः, व्याप्यत्वञ्च प्रकृतहेतुक-प्रकृतसाध्यकानुमितिगमकतौपयिकव्याप्यत्वं, यथाश्रुते पृथिवीतरेभ्योभिद्यते पृथिवीत्वादित्यत्र प्रतिज्ञायामव्याप्तेः, तथाच मन्न्यत्यासेन प्रकृतहेतुक-प्रकृतसाध्यकानुमित्यौपयिकव्याप्यत्वविषयकशाब्दबोधजनकाकाङ्क्षाशून्यत्वमित्यर्थः, उदाहरणादीनां

---

निर्वह्नित्वादित्यादौ यो यो धूमवान् स वह्निमानित्यादिव्यतिरेक्युदाहरणस्य निर्व्वह्नित्वादिरूपहेत्वविषयकत्वेऽपि नातिव्याप्तिः। न च घटाभावः पटशून्योऽभावत्वादित्यादिस्थलीयप्रतिज्ञाया अभावत्वविषयकत्वनियमात् तत्राव्याप्तिः प्रकृतपक्षधर्म्मिकप्रकृतसाध्यप्रकारितावच्छिन्नभावेन यदभावत्वविषयकत्वं तच्छून्यत्वस्य विवक्षितत्वात्। न च प्रकृतपक्षधर्मिकप्रकृतसाध्यप्रकारितावच्छिन्नभूतविषयिताशून्यत्वमात्रस्य सम्यक्त्वेऽभावत्वप्रवेशोव्यर्थं इति वाच्यम्। अखण्डाभावघटकतया तस्याव्यर्थत्वादिति भावः। ननु तस्माद्वह्निमान् इति निगमनस्याप्यभावत्वाविषयकत्वात्तत्रातिव्याप्तिरित्यत आह,'निगमनञ्चेति,'न परामर्शहेतुः' नाभावत्वाविषयकज्ञानहेतुः, 'अबाधितत्वेति, प्रतिज्ञातः पक्षस्य साध्यवत्त्वसिद्धेः पुनस्तदभिधानस्याबाधितत्वादिबोधकत्वस्यावश्यकत्वात् सिद्धे सत्यारम्भोनियमायेत्यादिव्युत्पत्तेरिति भावः। वस्तुतोऽबाधितत्वादेर्निगमनाप्रतिपाद्यत्वेऽपि ज्ञापकत्वरूपहेतुत्वस्याभावत्वगर्भज्ञनकताघटितत्वेन हेतुतावाचिपञ्चमीगर्भनिगमनस्याभावत्वाविषयकज्ञानजनकत्वमेव दुर्लभं, अत एव पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ हेत्ववयवेऽपि नातिव्याप्तिः, तस्यापि पञ्चम्यर्थहेतुताघटकतयैवाभावत्वविषयकज्ञानजनकत्वनियमादिति ध्येयं।

न परामर्शहेतुः अबाधितासत्प्रतिपक्षितत्वज्ञानजनकत्वात्।

हेत्वभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकवाक्यत्वं वा।

---

तादृशाकाङ्क्षासत्त्वान्नातिप्रसङ्गः, अत्राप्युदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय न्यायावयवत्वे सतीत्यनुसन्धानीयं, अत्र च हेत्ववयवेऽतिव्याप्तिवारणाय हेत्वन्यत्वविशेषणं देयं, प्रकृतपदद्वयदानात् तेजोव्याप्यधूमवानयं वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्निव्याप्यनीलत्ववानयं वह्निमान् धूमादित्यत्र नाव्याप्तिः। न च प्रकृतहेतुनिष्ठप्रकृतसाध्यनिरूपितव्याप्यत्वाद्येव उच्यतामिति वाच्यम्। व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजनकोदाहरणादावतिव्याप्तेः, अत्र चान्वयव्याप्तिविषयता-व्यतिरेकव्याप्तिविषयतोभयोः प्रत्येकरूपेणैवाभावौ निवेश्यौ व्याप्तिद्वयसाधारणानुगतरूपस्य एकस्याभावेन एकरूपेण तदुभयाभावनिवेशासम्भवात्। अन्यूनपदस्य

---

'हेत्विति, 'हेतुः' स्वार्थज्ञाप्यत्वविशिष्टसाध्यवत्तया पक्षबोधानुकूलपञ्चम्यन्तशब्दः, तस्य यदभिधानं तस्य प्रयोजिका तज्जन्यबोधनिवर्त्या पक्षः कुतः साध्यवानित्याकारिका या जिज्ञासा तदनुकूलावयवत्वमित्यर्थः, 'लिङ्गेति उपनयनादिवारणार्थमविषयकान्तं प्रकृतसाध्य-पक्षविषयतावच्छिन्नभावेन प्रकृतलिङ्गाविषयकत्वार्थकं, नातः प्रागुक्तदोषः, ह्रदोनिर्धूमोह्रदावृत्तिधर्मशून्यत्वादित्यादौ यो यो धूमवान् स ह्रदावृत्तिधर्मवान् इत्यादिव्यतिरेक्युदाहरणस्य वारणाय 'लिङ्गविषयकेति लिङ्गं प्रकृतसाध्यव्याप्यं तद्विषयकेत्यर्थः। न च साध्यवद्विशेष्यकत्वमेव सम्यक् व्याप्यपदं व्यर्थमिति वाच्यम्। यथासन्निवेशे वैयर्थ्याभावात् इति जागदीशी व्याख्या।

लिङ्गाविषयक-लिङ्गिविषयकज्ञानजनकन्यायावय-

---

व्यावृत्तिमाह, 'तेनेति अन्यूनपददानेनेत्यर्थः, 'उदाहरणादिपदं उदाहरणस्यादिरिति समासेन धूमादग्न्यवयवसमवेतद्रव्यवान् पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादिस्थलीयहेत्ववयवपरं ।

केचित्तु लिङ्गाविषयकपदव्यावृत्तिपरोऽयं ग्रन्थ इत्यप्याहुः ।

अनतिरिक्तपदस्य कृत्यतोव्यावृत्तिमाह, 'निगमनस्येति, अन्यूनानतिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकं यदिति शेषः, 'न परामर्शहेतुः' न न्यायावयव इत्यर्थः। ननु तस्य कुतो न तथाज्ञानजनकत्वं अत आह, 'अबाधितेति अबाधितत्वासत्प्रतिपक्षत्वज्ञानजनकत्वादित्यर्थः। ननु निगमनं नाबाधितत्वादिज्ञानजनकं तस्यापदार्थत्वात्। न च लक्षणया तस्योपस्थितिरिति वाच्यम्। वादिवाक्ये स्वारसिकतया तस्या अभावादिति चेत् । न । अबाधितत्वासत्प्रतिपक्षितत्वज्ञानजनकत्वादित्यस्य अबाधितत्वासत्प्रतिपक्षत्वादिमानयज्ञानप्रयोजकस्य साध्यव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताविशिष्टहेतुज्ञानज्ञाप्यत्वस्य ज्ञानजनकत्वादित्यर्थत्वात्, तादृशहेतुज्ञानज्ञाप्यत्वज्ञानस्य अबाधितत्वादिज्ञानप्रयोजकत्वं तादृशहेतुज्ञानज्ञाप्यत्वस्य अबाधितत्वादिव्याप्यतया ।

नव्यास्तु नास्ति बाधितत्वं पक्षनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं यस्मादिति विग्रहेणाबाधितत्वादिपदस्य व्याप्तिपक्षधर्मताविशिष्टोयो हेतुस्तज्ज्ञानज्ञाप्यत्वमर्थः, 'असत्प्रतिपक्षितत्वं' असत्प्रतिपक्षवृत्तिधर्म्मोव्याप्तिरूपः, तथाच तज्ज्ञानज्ञाप्यत्व-व्याप्युभयबोधजनकत्वादित्यर्थ इत्याहुः ।

यवाक्यत्वं वा इतरावयवानां लिङ्गविषयकज्ञानजनकत्वात्।

---

केचित्तु 'लिङ्गाविषयकेति लिङ्गस्वरूपव्याप्ति-पक्षधर्मताकाङ्क्षात्रयनिवर्त्तकभिन्नत्वे सति अबाधितत्वादिशून्यलिङ्गपरामर्शप्रयोजकन्यायावयवत्वमर्थः, सत्यन्तव्यावृत्तिमाह, 'तेनेति, 'उदाहरणादिष्विदासः', हेत्ववयवस्य च लिङ्गस्वरूपाकाङ्क्षानिवर्त्तकत्वात्, उदाहरणस्य व्याप्त्याकाङ्क्षानिवर्त्तकत्वात्, उपनयस्य पक्षधर्मताकाङ्क्षानिवर्त्तकत्वात्, प्रतिज्ञायाश्च तादृशाकाङ्क्षात्रयनिवर्त्तकभिन्नत्वादिति भावः। अबाधितत्वादिशून्यलिङ्गपरामर्शप्रयोजकपदव्यावृत्तिमाह, 'निगमनश्चेति, 'न परामर्शहेतुः' नाबाधितत्वादिशून्यलिङ्गपरामर्शप्रयोजक इत्यर्थः, उदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलमिति व्याचक्षुः।

परे तु 'निगमनश्चेति निगमनैकदेश इत्यर्थः, 'न परामर्शहेतुः' न न्यायावयव इत्यर्थः, तथाच न्यायावयवार्थकसत्यन्तस्येयं व्यावृत्तिरित्याहुः। तदसत्। अवयवैकदेशवारणस्यापि सत्यन्तदलसाध्यतया निगमनैकदेशमात्रानुसरणविरोधात्।

'हेत्वभिधानेति हेत्वभिधानस्य प्रयोजिका या जिज्ञासा तज्जनकवाक्यार्थज्ञानजनकत्वे सति न्यायावयवत्वमित्यर्थः। भवति हि पर्व्वतो वह्निमानित्यादिवाक्यजन्यज्ञानानन्तरं कुतोऽस्य वह्निमत्त्वमिति जिज्ञासा, हेत्वादावतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं, उदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलं। न च तस्य हेत्वभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकत्वमेव नास्तीति कथं तर्हि अतिव्याप्तिरिति वाच्यम्। यत्तु

प्रतिज्ञात्वं जातिः अनुगतानतिप्रसक्तताान्त्रिक-व्यवहारादिति केचित्, तन्न, देवदत्तप्रभवत्वादिना

---

सभाक्षोभादिना जिज्ञासादिकमेव न जातं तत्राव्याप्तिवारणाय तादृ-शजिज्ञासाजनकवाक्यार्थज्ञानजनकतावच्छेदकानुपूर्वीमत्त्वस्य सत्य-न्तार्थतात्पर्य्यात् ।

'लिङ्गाविषयकेति, 'लिङ्गी' पक्षः, तज्ज्ञानं तन्मुख्यविशेष्यकज्ञानं, तथाच लिङ्गाविषयक-पक्षमुख्यविशेष्यकज्ञानजनकन्यायावयवत्वमि-त्यर्थः, हेत्वादावतिव्याप्तिवारणाय 'लिङ्गाविषयकेति । न च धूमादा-लोकवान् पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादिस्थलीयप्रतिज्ञायामव्याप्तिः अस्या लिङ्गविषयकज्ञानजनकत्वादिति वाच्यम् । पक्षतावच्छेदका-वच्छिन्नपक्षविषयतानिरूपिता या साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्य-विषयता तदनिरूपिता या लिङ्गविषयता तच्छून्यत्वस्य तदर्थत्वात् । ह्रदोनिर्धूमत्ववान् निर्व्वह्नित्वादित्यादिस्थलीययोयोधूमवान् स वह्निमान् इति व्यतिरेक्युदाहरणेऽतिव्याप्तिवारणाय पक्षमुख्यविशेष्य-केति, पक्षविशेष्यकेत्येतावन्मात्रे कृते ह्रदोनिर्धूमत्ववान् ह्रदावृत्तिध-र्म्मशून्यत्वादित्यादिस्थलीययोयोधूमवान् स ह्रदावृत्तिधर्म्मवान् इत्यु-दाहरणेऽतिव्याप्तेः, तथाच तज्जन्यज्ञाने ह्रदस्य विशेष्यत्वेऽपि मुख्यवि-शेष्यत्वाभावान्नातिव्याप्तिः, फलतोलिङ्गाविषयकेत्यस्य व्यावृत्तिमाह, 'इतरेति व्यतिरेक्युदाहरणभिन्नप्रतिज्ञेतरावयवानामित्यर्थः, 'लिङ्ग-विषयकज्ञानजनकत्वात्' लिङ्गविषयकज्ञानस्यैव जनकत्वात् उक्त-लिङ्गविषयताशून्यज्ञानाजनकत्वादिति यावत्, ।

जातिसङ्करप्रसङ्गात्, प्रतिज्ञाजन्यं विजातीयं ज्ञानं व्यवहारादिति तज्जनकं वाक्यं प्रतिज्ञेत्यपि न, तज्जनकत्वं जनकत्वज्ञानं वा नानुगतरूपमन्तरेण सम्भ-

'प्रतिज्ञात्वमिति,[१] अत्र च प्रतिज्ञापदप्रवृत्तिनिमित्तत्वेन पक्षत्वं, प्रतिज्ञापदप्रवृत्तिनिमित्तत्वञ्च उभयवादिसिद्धमेव, तत्र जातिरुपाधिर्व्वा इत्यत्र विवादात् अतो नाश्रयासिद्धिः, 'अनुगतेति प्रतिज्ञेत्याकारकहेत्वादिव्यावृत्तताव्निकानुगतबुद्धिजनकत्वादित्यर्थः, अत्र चानुगतबुद्धिजनकत्वमेव हेतुः, 'अनतिप्रसक्ताद्यभिधानञ्च आश्रयासिद्धिशङ्कानिरासकतर्कप्रदर्शनपरमेवेति ध्येयं। 'देवदत्तप्रभवत्वादिनेति पुरुषविशेषजन्यतावच्छेदकजात्यादिनेत्यर्थः, 'आदिपदात्कला-

(१) 'प्रतिज्ञात्वमिति, न च जातेर्व्यासज्यवृत्तित्वविरहात् एकैकपदेऽपि प्रतिज्ञात्वजातेर्ग्रहापत्तिरिति वाच्यम्। प्रतिज्ञाघटकतत्तदानुपूर्व्वीव्यङ्ग्यत्वस्य तादृशजातावङ्गीकारादिति भावः। 'प्रभवत्वादीत्यादिना कत्वखत्वपरिग्रहः, 'उक्तस्य' न्यायावयवलक्षणोक्तदोषस्य उद्देश्यानुमित्याद्युक्तलक्षणस्येति वार्थः। 'एतेन' प्रतिज्ञाजन्यज्ञानमात्रवृत्तिवैजात्यविरहेण, 'निरस्तमित्यग्रेऽन्वयः। उदाहरणादिप्रयोज्यजातेर्व्वारणाय 'वृत्यन्तं शब्दोऽनित्य इत्याकारकं यल्लिङ्गधीपरमवयवात्मकं वाक्यं तज्जन्यज्ञानवृत्तीत्यर्थः, न्यायाप्रयोज्यचैत्रादिशरीरविशेषस्य प्रयोज्यायाः शब्दोऽनित्य इत्युदासीनवाक्यधीनिष्ठायाः शाब्दत्वावान्तरजातेः प्राचीनसम्मतत्वेन तद्वारणार्थमवयवेति, सत्ता-गुणत्वादेरवयवसामान्यप्रयोज्यजातेर्व्वारणार्थं 'हतकत्वादित्याद्यन्त्यन्तं, 'जातियोगीति जातिसमवायीत्यर्थः, इति जागदीशी व्याख्या।

वतीत्युक्तस्यानुसरणीयत्वात्। एतेन शब्दोऽनित्य इति लिङ्गिधीपरंवाक्यजन्यज्ञानवृत्तिकृतकत्वादित्यादिवाक्यजन्यज्ञानावृत्तिजातियोगिज्ञानजनकवाक्यं प्रतिज्ञेति निरस्तम्।

---

दिपरिग्रहः, इदमुपलक्षणं तस्य प्रत्येकपरिसमाप्तौ एकदेशे तादृशबुद्ध्यापत्तेः, समुदितपर्य्याप्तत्वे व्यासज्यवृत्तित्वेन जातित्वासम्भवादित्यपि बोध्यं। 'अनुगतरूपमन्तरेणेति, 'सम्भवतीति, अस्यार्थस्तु प्रागेव व्याख्यातः, 'उक्तस्येति अस्मदुक्तलक्षणस्यैवेत्यर्थः। 'एतेनेति अनुगतजनकतावच्छेदकरूपं विना तज्जनकत्व-तद्ग्रहयोरसम्भवेनेत्यर्थः, 'शब्दोऽनित्य इति, अत्र 'लिङ्गिधीपरेति स्वरूपकथनं, कार्य्यत्वं न्यायान्तर्गतत्वं, 'कृतकत्वादित्यादीति, आदिपदात् योयः कृतकइत्युदाहरणादेः परिग्रहः, तथाच शब्दोऽनित्य एतादृशवाक्यजन्यज्ञानवृत्तिः सती कृतकत्वादित्यादिवाक्यजन्यज्ञानावृत्तिर्या जातिस्तदाश्रयज्ञानजनकन्यायान्तर्गतत्वमित्यर्थः। यत्र स्थलविशेषे कण्ठकोद्धारसहित एव न्यायप्रयोगः कृतस्तत्र कण्ठकोद्धारवाक्ये कृतकत्वादित्यादिवाक्यजन्यज्ञानावृत्तिजातिविशेषशालिज्ञानजनकेऽतिव्याप्तिवारणाय 'वृत्त्यन्तं, शब्दोऽनित्यइतिवाक्यधीजन्यज्ञानवृत्तिसत्तावज्ज्ञानजनकवाक्ये चातिव्याप्तिवारणाय 'अवृत्त्यन्तं, समवायेन तदाश्रयतालाभाय जातिपदं, कालोपाधिव्यावृत्तजनकतालाभाय ज्ञानपदं, उदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलं,।

**ननु प्रतिज्ञा न साधनाङ्गं विप्रतिपत्तेः पक्षपरिग्रहे तच्च प्रमाणाकाङ्क्षायां हेत्वभिधानस्य प्राथम्यादिति**

'प्रतिज्ञा न साधनाङ्गमिति[१] प्रतिज्ञा न परार्थानुमाने प्रयोजकज्ञानजनकमित्यर्थः, तथाच न्यायप्रयोगे प्रतिज्ञाकरणं व्यर्थमिति भावः। 'पक्षपरिग्रहे' शब्दानित्यत्वादिकोटिपरिग्रहे सतीत्यर्थः,

(१) 'साधनाङ्गमिति साधनस्य न्यायस्याङ्गं घटकमित्यर्थः, साधनस्य परार्थानुमानस्याङ्गमुपयुक्तमिति वा। ननु पक्षस्य साध्यवत्त्वाग्रहे तत्र हेत्वाकाङ्क्षाविरहात् तदभिधानेऽर्थान्तरं स्यादित्यवश्यं प्रतिज्ञा कर्त्तव्येत्यत आह, 'विप्रतिपत्तेरिति विप्रतिपत्तिवाक्यादेव, 'पक्षपरिग्रहे' साध्यवत्तया पक्षग्रह इत्यर्थः, 'तच्च' पक्षस्य साध्यवत्तायां।

केचित्तु 'प्रतिज्ञा न साधनाङ्गं' साधनं हेतुवाक्यं तेन सहैव वाक्यत्वापन्ना प्रतिज्ञा नेत्यर्थः, पर्व्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञा ततः कुत इत्याकाङ्क्षायां धूमादिति प्रयोगः, प्रतिज्ञा-हेतुभ्यां विशिष्टार्थबोधोजन्यत इति नेति पर्य्यवसितं, तथाच प्रतिज्ञा-हेत्वोरेकवाक्यताविरहेण प्रतिज्ञादिपञ्च इत्यादिन्याये यदुक्तं तस्यासम्भवेन न्यायलक्षणासम्भव इति भावः। अत्र प्रतिज्ञादिप्रयोगे प्रमाणाभावेन नैकवाक्यता इति अभिसन्धिः, अभिसन्धिं प्रकाशयति, 'विप्रतिपत्तेरिति, पञ्चम्याः प्रयोज्यत्वमर्थः, स च परिग्रहेऽन्वेति, विप्रतिपत्तिः शब्दोऽनित्यो न वेत्याकारिका, 'पक्षपरिग्रहः' मया शब्दानित्यत्वं साधनीयमित्यादिवाक्यरूपः, 'तच्च' शब्दानित्यत्वे, 'प्रमाणाकाङ्क्षायां' शब्दविशेष्यकानित्यत्वप्रकारकप्रमाकरणं वद इत्याकाङ्क्षायामिति यावत्, तादृशाकाङ्क्षानिरासकप्रश्ने कृते 'हेत्वभिधानस्य' कृतकत्वादिप्रयोगस्य, 'प्राथम्यात्' प्रथमोपन्यासार्हत्वात् इति साम्प्रदायमतानुसारेण व्याचक्षुः इति जागदीशी व्याख्या।

चेत्, न, विप्रतिपत्त्यग्रे हि समयबन्धानन्तरं शब्दा-
नित्यत्वं साधयेति मध्यस्थस्य वादिनोवाकाङ्क्षायां शब्दा-

---

'तच' शब्दामित्यत्वे, 'प्रमाणाकाङ्क्षायां' कुत इति प्रयोगे, 'प्राथम्या-दिति प्रथममेव वक्तुमुचितत्वादित्यर्थः, 'समयबन्धेति कण्टकोद्धार-सहित एव न्यायप्रयोगः कार्य्यः उदाहरणे समयबन्धः कर्त्तव्यः तथा न कार्य्यं वा इत्यादिरूपेत्यर्थः, 'साध्यनिर्द्देशं विनेति पदजन्यसाध्यो-पस्थितिं विनेत्यर्थः, 'हेतुवाक्यमिति साध्यान्वितपञ्चम्यर्थान्वयबोध-जनकमिति शेषः, 'निष्प्रतियोगिकमिति पञ्चम्यर्थज्ञानज्ञाप्यत्वांशे निर्धर्म्मितावच्छेदककबोधजननसमर्थं भवतीत्यर्थः। ननु हेतुवाक्येन साध्यानन्वितहेतुकत्वविषयकज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वमित्याकारकशाब्द-बोधजनने न किमपि बाधकमिति कथं तत्रासामर्थ्यमिति चेत्। न। साध्यानन्विततादृशान्वयबोधजनने कुतोऽस्यानित्यत्वमित्याकाङ्क्षाया-अनिवृत्तेः। ननु पदानुपस्थितमपि शाब्दबोधविषयो भविष्यतीत्यत-आह, 'न चेति, 'वादिवाक्ये' वादिवाक्यजन्यशाब्दबोधे, 'अनुपस्थित-मपि' पदानुपस्थितमपीत्यर्थः, साध्यमिति शेषः, 'योग्यतया' अबा-धिततया, 'अन्वेति' शाब्दबोधविषयो भवति, 'अतिप्रसङ्गात्' साध्यभिन्नाबाधितान्तरस्यापि शाब्दबोधविषयत्वप्रसङ्गात्, 'तस्याः' साध्योपस्थितेः, 'प्रतिवादिविप्रतिपत्त्या' प्रतिवादिविप्रतिपत्तिजन्यो-पस्थित्या, 'प्रामाणादिव्यवस्थयेति समयबन्धजन्यज्ञानेनेत्यर्थः, 'अन्त-रितत्वात्' नष्टत्वात्। ननु परविप्रतिपत्त्यादिरेव तत्र नास्ति माना-भावादित्यत आह, 'परेति, 'विप्रतिपत्तिवाक्यस्येति निराकाङ्क्ष-

नित्यत्वं साध्यं, न च साध्यनिर्देशं विना हेतुवाक्यं निष्प्रतियोगिकमन्वयं बोधयितुमीष्टे। न च वादि-

---

त्वादित्यनेनान्वयः, अत्र हेतुमाह, 'पक्षपरिग्रहेति शब्दानित्यत्वादि-शाब्दबोधरूपतात्पर्य्यविषयीभूतान्वयबुद्ध्युपधायकतयेत्यर्थः, 'निरा-काङ्क्षत्वादिति तत्पदविषयकतज्ज्ञानजन्यशाब्दबोधं प्रति तत्पद-विषयकतज्ज्ञानजन्यतात्पर्य्यविषयीभूतशाब्दबोधाभावरूपाकाङ्क्षाविर-हादित्यर्थः, ननु विप्रतिपत्तिवाक्यस्थशब्दोऽनित्य इति भागस्यावृत्त्या अन्वयबोध इति नोक्तदोषइत्यत आह, 'आवृत्ताविति तत्पदस्य पुनरनुसन्धान इत्यर्थः, 'सैवेति तादृशानुसन्धानविषय एवेत्यर्थः। ननु मा भूदनुपस्थितस्य शाब्दबोधविषयता अस्य तु उदाहरणा-देवोपस्थितिरस्ति, अथ वा अनुमानतएव उपस्थितिर्भविष्यति, तथाहि अयमवयवः साध्यान्वितस्वार्थबोधकावयवजन्यजिज्ञासाप्रयोज्यः व्याप्तिबोधकावयवत्वादित्यादीत्याशङ्कते, 'न चेति, 'अवयवान्तरात्' प्रतिज्ञेतरात्,(१) 'हेत्वन्वययोग्येति हेत्वर्थान्वयबोधजनिकेत्यर्थः, 'अवय-

---

(१) 'विप्रतिपत्त्यग्रे' मध्यस्थोक्तविप्रतिपत्तेः पश्चात्, 'समयेति मया न्याय-मतेनैव अन्वयिहेतुना स्वसाध्यं साधनीयमित्यादिको वादिनोर्नियमाभिलापः समयवद्धस्तदुत्तरमित्यर्थः, मध्यस्थस्यासार्व्वत्रिकत्वात् तस्यैव वादिनोऽप्युक्ता-काङ्क्षायां त्वत्यभावाच्चाह, 'वादिनोवेति "साध्यं' साधनीयं, 'न चेति, बोध-यितुमीष्ट इत्यग्रेतनेनान्वयः, 'साध्यनिर्देशं विनेति साध्यस्य प्रतिज्ञां विने-त्यर्थः, 'निष्प्रतियोगिकं' निर्व्विशेष्यकं, 'अन्वयं' .स्वार्थवत्त्वान्वयं। अथा-वयवानुपस्थितमपि प्रकृतसाध्यं योग्यताबलादेव हेत्वर्थस्य धूमवानेव्याप्य·

त्वादेर्विशेष्यतयाऽन्वयि भविष्यति इत्याह, 'स चेति, 'अतिप्रसङ्गादिति पक्षानुपस्थाप्यस्यान्वयबोधविशेष्यत्वे अतिप्रसङ्गादित्यर्थः। प्रकृते, 'न चेति, निरस्यति, 'प्रतीति उक्तविप्रतिपत्तेर्भावकोटावभावकोटावेव वा प्रमाणं नास्तीत्येवं प्रतिवादिनो विरुद्धविप्रतिपत्तिजनकोक्तेरित्यर्थः, निरुक्तविरुद्धोक्तेः रणावश्यकत्वेऽप्याह, 'प्रमाणादित्यवस्थया चेति प्रागुक्तसमयबन्धेन चेत्यर्थः, अन्तरितत्वादित्यत्र विप्रतिपत्तेरित्यनुषज्यते, 'स्थापना' प्राथमिकन्यायप्रयोगः। ननु प्रतिवादिनोविरुद्धोक्तेः समयबन्धस्य च स्थापनायामुपयोगित्वं निष्प्रमाणकमत आह, 'विप्रतिपत्तिवाक्यस्येति, पक्षस्य यः परिग्रहः साध्यवत्तया बोधनं, तेनैव 'पर्य्यवसितत्वेन' जनितान्वयबोधत्वेनेत्यर्थः, प्रत्यक्षस्येव शाब्दबोधस्यापि संशयत्वमभ्युपेत्येदं। ननु पक्षः साध्यवान्नवेत्यादिविप्रतिपत्त्येकदेशस्य पक्षः साध्यवानिति भागस्यैव पुनरावर्त्तनं कार्य्यमिति तदर्थ एव हेत्वर्थस्यान्वयो भवितेति विफलः प्रतिज्ञोपगमइत्यत आह, 'आवृत्ताविति विप्रतिपत्त्येकदेशस्य पुनरावर्त्तने त्वित्यर्थः, 'सैव' आवृत्तिरेव। यत्तु जनितान्वयबोधस्यापि पक्षः साध्यवानित्येवं विप्रतिपत्त्येकदेशस्य पुनः प्रतिसन्धानरूपायामावृत्तौ सत्यां हेत्वर्थस्यान्वयो भविता इत्याशङ्कायामाह, 'आवृत्ताविति, 'सैवेति तादृशावृत्तिविषयीभूतपक्षः साध्यवानिति वाक्यमेव प्रतिज्ञापदेनोच्यते इत्यर्थः, तदयुक्तं, पक्षः साध्यवानित्येवंभागस्य प्रतिसन्धानेऽपि हेत्ववयवस्य तदानन्तर्य्यविरहेण तमन्तर्भाव्य प्रतिज्ञादिपञ्चकस्य क्रमिकोचितानुपूर्वीकत्वाभावेन तस्य प्रतिज्ञात्वासम्भवात्। वस्तुतो हेत्ववयवस्य प्रतिज्ञानन्तर्यं न प्रतिज्ञोत्तरोच्चरितत्वगर्भं किन्तु प्रतिज्ञोत्तरज्ञातत्वगर्भं अतः प्रतिसन्धानरूपायामेवावृत्तौ न क्षतिरिति ध्येयं।

प्रकृते, 'न चेति, 'अवयवान्तरात्' उदाहरणात्। ननु यो यो धूमवान् स वह्निमानित्येवंक्रमेण हेत्वन्वययोग्यस्य वह्न्यादिसाध्यस्योदाहरणादुपस्थितावपि पक्षः कुतः साध्यवानित्याकाङ्क्षायास्तथाविधहेत्वन्वयान्न निरु-

वाक्येऽनुपस्थितमपि योग्यतया अन्वेति, अतिप्रसङ्गात्। न च विप्रतिपत्तितः साध्योपस्थितिः, तस्याः प्रतिवादि-

---

वान्तारेणेति व्याप्तिबोधकावयवत्वादिज्ञानेनेत्यर्थः, तृतीयार्थोजन्यत्वं आक्षेपान्वितं, 'आक्षेपादिति, 'आक्षेपः' अनुमितिः, पञ्चम्यर्थोऽभेदः अस्य च प्रागुक्तसाध्योपस्थितिरित्यनेनान्वयः, तथाच व्याप्तिबोधकावयवत्वादिज्ञानजन्यानुमित्यभिन्ना साध्योपस्थितिरित्यन्वयबोधः,

---

त्तिरुपपद्यते वस्तुतोऽप्रसिद्धसाध्यव्यतिरेक्युदाहरणस्य साध्याबोधकतया उदाहरणोपस्थाप्यसाध्ये हेत्वन्वयः सर्वत्र न सम्भवतीति अतः प्रकारान्तरमाह, 'नापीति, 'अवयवान्तरेण' उपनयेन, स्वार्थान्वयानुपपत्त्या साध्यवत्तया पक्षस्य 'आक्षेपात्' अनुमानात्, हेत्वन्वययोग्यसाध्योपस्थितिरिति पूर्वेणान्वयः, प्रथमे दूषणमाह, 'साध्यान्वय इति हेतोः साध्ये अन्वये सति कथमस्य गमकत्वमित्याकाङ्क्षायां उदाहरणस्याभिधानं तदभिधाने च हेत्वन्वययोग्यसाध्योपस्थितिरित्यन्योन्याश्रयादित्यर्थः, द्वितीये दोषमाह, 'तस्मादिति, तस्मादुपनयात्मकावयवान्तरात् पक्षस्य साध्यव्याप्यवत्त्वप्रतीतिः, यच्च साध्यव्याप्यवत्त्वं प्रतीतं तदन्यथानुपपत्त्या पक्षस्य साध्यवत्त्वाक्षेपः, 'इह' हेतुप्रयोगप्राक्काले नास्त्येवेत्यर्थः, पक्षस्य साध्यवत्त्वं विनापि तद्व्याप्यवत्त्वप्रतीतेः सम्भवात् तदन्यथानुपपत्त्या पक्षस्य साध्यवत्त्वाक्षेपः सम्भवदुक्तिक एव नेत्यतः प्रतीतस्य साध्यव्याप्यवत्त्वस्यानुसरणं। वस्तुतः पक्षे साध्यवत्त्वाक्षेपसम्भवेऽपि न तत्र हेत्वर्थान्वयः सम्भवत्यपदार्थत्वादिति ध्येयं।

अप्रसिद्धसाध्यव्यतिरेक्युदाहरणादेः साध्याबोधकतया उदाहरणोपस्थाप्यसाध्ये हेत्वन्वयः सर्वत्र न सम्भवतीत्यतोऽपि प्रतिज्ञा साधनाङ्गमिति कश्चित्। इति भागदीपी व्याख्या।

विप्रतिपत्त्या प्रमाणादिव्यवस्थया चान्तरितत्वात् पर-विप्रतिपत्तिं सभयबन्धञ्च विना स्थापनाया अभावात् विप्रतिपत्तिवाक्यस्य पक्षपरिग्रहेण पर्य्यवसितत्वेन निराकाङ्क्षत्वाच्च, आवृत्तौ तु सैव प्रतिज्ञा। न चावयवान्तराद्वेत्वन्वययोग्यता साध्योपस्थितिः, नाप्यवयवान्तरेणा-

---

इदन्तु नैयायिकमते, मीमांसकमते तु आक्षेपोऽर्थापत्तिः, 'अवयवान्तरेणेत्यस्य च साध्यान्वितस्वार्थबोधकावयवजन्यजिज्ञासां विना अयमनुपपन्न इत्यनुपपत्तिज्ञानेनेत्यर्थः, एवञ्चावतारणिकापि तथैव करणीया इत्यपि बोध्यं, आशङ्कां खण्डयति, 'साध्यान्वय इति उदाहरणादितः साध्योपस्थितावित्यर्थः, 'तदभिधानमिति हेतुवाक्यात् अन्वयबोधानन्तरं तदाकाङ्क्षायामित्यादिः, 'तदभिधानं' उदाहरणाभिधानं, 'तदभिधाने चेति उदाहरणाभिधाने चेत्यर्थः, द्वितीयशङ्कामुपसंहारव्याजेन खण्डयति, 'तस्मादिति, 'प्रतीत्यनुपपत्त्येति, इदन्तु मीमांसकमते, 'प्रतीतानुपपत्त्येति इदन्तु नैयायिकमते, मीमांसकमते हि स्वर्गकामो यजेत इत्यादौ यागे स्वर्गकामकृतिसाध्यतान्वयबोधो हि इष्टसाधनत्वरूपयोग्यताज्ञानादेव भवति, तच्चाशुविनाशिनि यागे व्यापारं विना न सम्भवतीति स्वर्गकामकृतिसाध्यतान्वयानुपपत्त्या अपूर्वं आक्षिप्यते, नैयायिकमते तु वेदात् प्रतीते इष्टसाधनत्वान्वयानुपपत्त्या अपूर्वं आक्षिप्यते, अत्र चानुपपत्तिद्वयमेव नास्ति साध्यान्वितस्वार्थबोधकहेतुजन्यजिज्ञासां विना उदाहरणाद्युपन्यासासम्भवात् इत्याखण्डनार्थः।

क्षेपात्, साध्यान्वये तदभिधानं तदभिधाने च साध्यान्वय इत्यन्योन्याश्रयात् । तस्मात् प्रतीत्यनुपपत्त्या प्रतीतानुपपत्त्या वा नेहाक्षेपः ।

अन्ये तु[१] शब्दानित्यत्वे प्रमाणं वदेति यदि मध्यस्थस्यानुयोगः तथापि प्रमाणमात्रे नाकाङ्क्षा किन्तु विशिष्टे, विशिष्टन्तु विशेषणं साध्यमनभिधाय न शक्याभिधानं। न च वस्तुतोयत्साध्यं तत्र प्रमाणं वदेति मध्यस्थनियोगः, वादिद्वयमध्ये तदसम्भवात् तस्मात्सा-

न च शब्दानित्यत्वे प्रमाणं वदेति प्रश्नवाक्यादेव साध्योपस्थितिर्भविष्यतीति वाच्यम् । तदा धूमादिति पञ्चमी न स्यात् किन्तु धूम इत्येव स्यादिति, 'किन्तु विशिष्ट इति शब्दानित्यत्वप्रमाणे इत्यर्थः, 'तदसम्भवात्' वस्तुगतित्वासम्भवात्, द्वयोरेकस्यावश्यं बाधितत्वादिति भावः । 'अन्ये' इत्यस्वरसोद्भावनं, तद्बीजन्तु वस्तुतो यत्सिषाधयिषितं साध्यं तत्र प्रमाणं वदेति प्रश्ने नोक्तदोष इति ध्येयं । उपसंहरति, 'तस्मादिति, 'न वान्वयबोधकत्वमिति हेतुवाक्यस्येति शेषः, तथाच न वा तादृशाकाङ्क्षानिवर्त्तकान्वयबोधजनकत्वं हेतुवाक्यस्येत्यर्थः, तथाच एतदुभयानुकूलसाध्योपस्थित्यर्थं साध्यनिर्द्देश इति भावः[२] ।

(१) प्रतिज्ञायाः साधनाङ्गत्वे निबन्धकृद्युक्तिमुपन्यस्यति, 'अन्ये त्विति, मध्यस्थस्येत्युपलक्षणं वादिनोवेत्यपि द्रष्टव्यं, 'अनुयोगः' प्रश्नः, शब्दानित्यत्वं साधयेत्येवं मध्यस्थस्य नियोगः साम्प्रदायिक इत्यतो यदीत्युक्तं, 'विशिष्ट- इति शब्दानित्यत्वसाधकत्वविशिष्ट इत्यर्थः, 'यत्साध्यं' पक्ष इति शेषः, 'तदभावात्' वास्तविकत्वाभावात् । इति जागदीशी व्याख्या ।

(२) ननु प्रतिज्ञोत्तरं हेतुरेवोद्भाव्यते न उदाहरणादिकमित्यत्र किं निया-

---

सकमित्यत आह, 'साध्यनिर्देशेति, 'साधनताभिव्यञ्जकेति ज्ञापकताबोधकेत्यर्थः, 'लिङ्ग' नाम, 'अन्यथा' साध्यनिर्देशोत्तरमुदाहरणाद्यभिलापे। ननु साध्यस्य प्रतिज्ञोत्तरं उदाहरणादेरिव हेतोरपि अनाकाङ्क्षितत्वमविशिष्टमत आह, 'लोक इति, 'तथैव' साधनताभिव्यञ्जकविभक्तिमल्लिङ्गवचनेनैव, कुत इत्याकाङ्क्षानिवृत्तिरेवं व्युत्पत्तिकल्पनादित्यर्थः। 'अनुमितीत्यादि हेतुसमानानुपूर्वीकोदासीनवाक्यस्य प्रतिज्ञाद्येकदेशस्य च वारणाय जनकान्तं, यादृश-यादृशानुपूर्व्यवच्छिन्ने प्रकृतं न्यायत्वं तादृश-तादृशानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावकूटसाध्यकानुमितिकारणीभूतलिङ्गपरामर्शस्य यत्प्रयोजकं प्रकारतया जनकतावच्छेदकानुपूर्वीघटकं अथ च प्रामाणिकस्य यादृशयादृशशब्दे न्यायावयवव्यवहारस्तादृश-तादृशशब्दकूटाभावस्य धियोजनकं प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नजनकतावच्छेदकमिति तदर्थः। निगमनस्य वारणाय साध्याविषयकेत्यादि, हेतुताधर्मिकप्रकृतहेतुप्रकारतावद्भिन्नभावेन साध्यविषयताशून्यधीजनकेतितदर्थः। तेन पर्वतो वह्निमान् वह्निसामग्रीमत्त्वादित्यादिहेतौ नाव्याप्तिः अयं धूमादालोकाभाववान् ह्रदत्वादित्यादौ यो यो धूमादालोकवान् स ह्रदत्वाभाववान् इत्यादिव्यतिरेक्युदाहरणेऽतिव्याप्तिवारणाय हेतुविभक्तिमदिति प्रकृतसाध्यधर्मिकस्वार्थान्वयबोधजनकपञ्चमीविभक्तिमदिति तदर्थः। अतएव गोत्वाभावो गोत्वशून्यः सास्नावत्त्वाभावात् यो यो गोत्ववान् स सास्नावान् गोत्वव्यापकसास्नाभाववांश्चायं तस्माद्गोत्वशून्य इत्यादौ व्यतिरेक्युपनयस्य गोत्वाभावरूपसाध्यधर्मिकस्वार्थैकत्वान्वयबोधकप्रथमाविभक्तिमत्त्वेऽपि न तत्रातिप्रसङ्गः। न चैवं रमाधवः पूज्यो माधवत्वादित्यादौ हेत्वेकदेशे माधवत्वादित्यत्रातिप्रसङ्गः तस्यापि प्रकृतन्यायान्तर्गतत्वे सति प्रकृतावयवसमानार्थकानुपूर्वीकत्वादिति वाच्यम्। स्वघटिताप्रतिपाद्यस्वार्थकत्वरूपमहावाक्यत्वपरेण चरमशब्दपदेनैव तद्वारणादिति भावः। इति जागदीशी व्याख्या।

ध्याभिधानं विना न हेतोराकाङ्क्षा, न वान्वयबोधकत्वमिति प्रतिज्ञा साधनाङ्गमिति।

---

लक्ष्यतावच्छेदकाक्रान्तधूमोऽयं इत्यादिवाक्ये वक्ष्यमाणहेतुलक्षणाव्याप्त्याशङ्कायां तस्यालक्ष्यत्वेन परिहर्त्तुं फलतो लक्ष्यतावच्छेदकं दर्शयति, 'साध्येत्यादिना 'साध्यनिर्देशानन्तरं' प्रतिज्ञावाक्यात्पक्षतावच्छेदकविशिष्टे साध्यान्वयबोधानन्तरं, 'कुत इत्याकाङ्क्षायां' हेत्वाकाङ्क्षया प्रयुक्ते कुतः प्रश्ने सतीत्यर्थः, 'साधनताव्यञ्जकेति साधनताव्यञ्जकपञ्चमीविभक्तिमल्लिङ्गप्रतिपादकवाक्यमित्यर्थः, तेन धूमेनेति प्रयोगनिरासः, आकाङ्क्षाया आवश्यकत्वे युक्तिमाह, 'अन्यथेति अस्यैवार्थविवरणं 'अनाकाङ्क्षिताभिधान इति, साधनताव्यञ्जकविभक्तिप्रयोगे युक्तिमाह, 'लोक इति, 'तथैवेति इच्छाविषयतावच्छेदकप्रकारेण सिद्धिरित्यर्थः, 'इति व्युत्पत्तेरिति इत्यस्यानुभवसिद्धत्वादित्यर्थः, तथाच तादृशाकाङ्क्षानिवर्त्तकपञ्चमीविभक्तिमन्न्यायावयवत्वमेव लक्ष्यतावच्छेदकमिति नोक्तस्य लक्ष्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वमिति नाव्याप्तिरिति। हेत्ववयवनिरूपणभूमिकामाह, 'अनुमितीति कारणीभूतोयो लिङ्गपरामर्शस्तत्प्रयोजकशाब्दज्ञानजनकत्वे सति साध्याविषयकशाब्दज्ञानकारणं यो हेतुविभक्तिमान्शब्दस्तत्त्वमित्यर्थः, धूमादित्युदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं न्यायावयवार्थकं, निगमनैकदेशे तस्मादितिभागेऽतिव्याप्तिवारणाय न्यायान्तर्गतत्वं विहाय न्यायावयवत्वपर्य्यन्तमुक्तं, निगमनेऽतिव्याप्तिवार-

साध्यनिर्देशानन्तरं कुतइत्याकाङ्क्षायां साधनता-
व्यञ्जकविभक्तिमल्लिङ्गवचनमेवोचितं अन्यथानाका-

---

ङ्क्षाय 'साध्याविषयकेति विषयितासम्बन्धेन साध्यवद्भिन्नेत्यर्थः, तथाच निगमनजन्यबोधस्य विषयितासम्बन्धेन साध्यवत्त्वान्नातिव्याप्तिरिति भावः। न च वह्निमान् वह्निसामग्रीमत्त्वादित्यादौ हेत्ववयवेऽव्याप्तिः तज्जन्यबोधस्य साध्यविषयकत्वादिति वाच्यम्। साध्याविषयकपदेन प्रकृतहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतुविशिष्टहेतुत्वविषयितावहिर्भावेन यद्विषयित्वं तेन सम्बन्धेन साध्यवद्भिन्नस्य विवक्षितत्वात्, तथाच वह्निमान् वह्निसामग्रीमत्त्वादित्यादौ तादृशविषयितान्तर्भावेनैव साध्यविषयकत्वान्नाव्याप्तिरिति भावः। न चेदमेकं धूमादित्यादौ निरुक्तविषयितावहिर्भावेन एकत्वरूपसाध्यविषयकज्ञानजनकत्वादव्याप्तिरिति वाच्यम्। तेन कदाचित् केवलधूमज्ञानज्ञाप्यत्वबोधस्यापि जननात् तमादाय लक्षणगमनात् ह्रदोनिर्धूमोनिर्वह्नित्वादित्यादौ योयोधूमवान् स वह्निमानित्युदाहरणस्य साध्याविषयकज्ञानजनकत्वात् तत्रातिव्याप्तिवारणाय 'हेतुविभक्तिमदिति ज्ञानज्ञाप्यत्वप्रतिपादकविभक्तिमदित्यर्थकं, तथाच व्यतिरेक्युदाहरणस्य तादृशविभक्तिमत्त्वाभावान्नातिव्याप्तिरिति भावः। न च धूमादालोकाभाववान् आलोकसामग्रीशून्यत्वादित्यादौ योयोधूमादालोकवान् स आलोकसामग्रीमान् इत्यादिव्यतिरेक्युदाहरणेऽतिव्याप्तिः तस्यापि साध्याविषयकज्ञानजनकत्वात् हेतुविभक्तिमत्त्वाच्चेति वाच्यं। हेतुविभक्तिमत्पदस्य प्रकृतसाध्यतात्पर्यकपदसाकाङ्क्षहेतुत्वबोधकविभ-

ङ्क्षिताभिधाने निग्रहापत्तेः लोके तथैवाकाङ्क्षानिवृत्तिरिति व्युत्पत्तेरिति प्रतिज्ञानन्तरं हेतूपन्यासः, हेतुत्वञ्चानुमितिकारणीभूतलिङ्गपरामर्शप्रयोजकशा-

---

क्तिमदर्थकत्वात्, तथाच तस्यालोकतात्पर्य्यकपदसाकाङ्क्षहेतुत्वबोधकविभक्तिमत्त्वेन प्रकृतसाध्यतात्पर्य्यकपदसाकाङ्क्षहेतुत्वबोधकविभक्तिमत्त्वाभावान्नातिव्याप्तिरिति भावः। न च प्रकृतसाध्यतात्पर्य्यकपदसाकाङ्क्षहेतुत्वबोधकत्वमेवास्तु किं विभक्तिमत्त्वेनेति वाच्यं। हेतुत्वं घटभिन्नं द्रव्यत्वाभावादित्यादौ योयोघटः स द्रव्यत्ववानित्यादौ घटत्वव्यापकीभूताभावप्रतियोगिद्रव्यत्वाभाववदिदं इत्युपनयेऽतिव्याप्तिः तस्यापि साध्याविषयकज्ञानजनकत्वात् निगमनस्य प्रकृतसाध्यघटभिन्नत्वतात्पर्य्यकं यद्घटभिन्नपदं तत्साकाङ्क्षहेतुत्वबोधकेदम्पदवत्त्वाच्च विभक्तिपददाने च न दोषः तस्य विभक्तित्वाभावात्।

ननु एतल्लक्षणे हेतुत्वबोधकेति व्यर्थं अतो लाघवाच्चाह, 'हेतुत्वप्रतिपादकेति[१] विभक्त्यर्थहेतुत्वमुख्यविशेष्यकशाब्दबोधजनकत्वे सति न्यायावयवत्वमर्थः, उदाहरणादावतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं,

---

(१) लक्षणान्तरमाह, 'हेतुत्वप्रतिपादकेति स्वार्थहेतुत्वमुख्यविशेष्यकान्वयबोधजनकविभक्तिमन्न्यायावयवत्वमर्थः। हेतुत्वं प्रमेयं वाच्यत्वादित्यादौ प्रतिज्ञोपनययोर्वारणाय विभक्तिपदं। न च वह्निर्धूमात् धूमव्यापकत्वादित्यादौ धूमहेतुताकाचस्य साध्यतायत्वे तस्माद्धूमादित्येवं निगमनस्यापि विभक्त्यर्थहेतुत्वमुख्यविशेष्यकधीजनकत्वात्तत्रातिव्याप्तिरिति वाच्यम्। उपनय-

ब्दज्ञानजनकसाध्याविषयकशाब्दधीजनकहेतुविभक्तिमच्छब्दत्वं ।

---

हेतुत्वं प्रमेयमित्यादिप्रतिज्ञायामतिव्याप्तिवारणाय विभक्त्यर्थत्वं हेतुत्वविशेषणं, हेतुत्वानुपादाने पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते पृथिवीत्वादित्यादौ तस्माद्भिद्यते इत्यादिनिगमनेऽतिव्याप्तिः तस्याप्याख्यातार्थविशेष्यकान्वयबोधजनकत्वात् । न च निगमस्यायंपदार्थमुख्यविशेष्यकान्वयबोधस्य जनकत्वात् कथं तत्रातिव्याप्तिरिति वाच्यं । अयम्पदाननुषङ्गपक्षे एव एतल्लक्षणकरणात्, उक्तनिगमनस्यापि तस्मादितिविभक्त्यर्थहेतुत्वविशेष्यकबोधजनकत्वात् तद्दोषतादवस्थ्यवारणाय मुख्यविशेष्यकेति, उदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलं । न च वह्निर्धूमात् वह्नित्वेन प्रमीयमाणत्वादित्यादौ

---

स्यायम्पदस्य निगमनघटकतया तदर्थस्यैव मुख्यविशेष्यत्वात् । वस्तुतस्तु एकसुवर्थस्य सुवर्थान्तरमुख्यविशेष्यत्वेनान्वयस्य निराकाङ्क्षितत्वेन तस्माद्धूमादित्यस्य धूमनिष्ठज्ञापकतायां हेतुनिष्ठज्ञापकताकत्वबोधनासमर्थत्वेन तद्गर्भोन्याय एव नास्तीति न तत्रातिव्याप्तिप्रसक्तिरपीति। न च घटे जातावित्यादौ घटवृत्तित्वं जातिवृत्ति इत्याकारकान्वयबोधानुत्पत्त्या सुवर्थयोर्मिथोऽन्वयबोध एवाऽव्युत्पन्न इति तत्र मुख्यविशेष्यतानुसरणमफलमिति वाच्यम् । क्रमाचैत्रस्येदमित्यादाविदमंशे विशेषणतापन्नस्य षष्ठ्यर्थस्वत्वस्य पञ्चम्यर्थजन्यतायां विशेष्यत्वेन सामान्यतस्तदन्वयस्यानिराकाङ्क्षितत्वादिति ध्येयं । एकजातीयसुपोर्मिथो निराकाङ्क्षत्वात् क्रमाचैत्रस्येदमित्यादौ पञ्चमी-षष्ठ्योर्मिथः साकाङ्क्षत्वेऽपि न क्षतिरिति वदन्ति । इति जागदीशी व्याख्या ।

हेतुत्वप्रतिपादकविभक्तिमन्न्यायावयवत्वं वा ।

तस्मात् धूमादितिनिगमनेऽतिव्याप्तिः तस्यापि विभक्त्यर्थज्ञानज्ञाप्य-त्वरूपहेतुत्वमुख्यविशेष्यकान्वयबोधजनकत्वादिति वाच्यम् । कथक-सम्प्रदायविरोधेन वह्निर्धूमादित्यस्य प्रतिज्ञालाभावात् तादृशपञ्च-कस्य न्यायत्वाभावेन विशेष्यदलेनैव तद्वारणात् ।

ननु हेतुत्वं प्रमेयमित्यादिप्रतिज्ञायामतिव्याप्तिर्दुर्वारा हेतुत्व-पदोपस्थाप्यज्ञानज्ञाप्यत्वस्य विभक्त्यर्थज्ञानज्ञाप्यत्वाभिन्नत्वात् । न च विभक्तिजन्योपस्थितिसहकारेणैव हेतुत्वविशेष्यकशाब्दबोधजनकत्वं वाच्यमिति न दोषः तस्य हेतुत्वपदजन्योपस्थितिसहकारेणैव तादृशबोधजनकत्वादिति वाच्यं । तथापि तस्माद्धेतुत्वमिति निग-मनेऽतिव्याप्तिः पञ्चमीजन्योपस्थितिसहकारेणैव हेतुत्वविशेष्यकशाब्द-बोधजनकत्वात् । न च हेतुत्वमुख्यविशेष्यकत्वांशे विभक्तिजन्योपस्थितेः सहकारित्वं वाच्यम् इति न दोषः तत्र हेतुत्वमुख्यविशेष्यकत्वांशे हेतुत्वपदजन्योपस्थितेरेव सहकारित्वादिति वाच्यं । मुख्यविशेष्यक-त्वस्य कार्य्यतानवच्छेदकतया तदंशे सहकारित्वस्य दुर्व्वचत्वात् इत्यतोलक्षणान्तरमाह, 'उदाहरणेति'[१] उदाहरणस्य प्रयोजिका या

(१) 'उदाहरणेति उदाहरणस्य प्रकृतहेतुक-प्रकृतसाध्यसिद्ध्यौपयिकव्याप्तिधीजनकवाक्यस्य प्रयोजिका तज्जन्यबोधनिवृत्तये कथमस्य गमकत्वमित्याकाङ्क्षा तज्जनकं तज्जनकावयवत्वमित्यर्थः, अत्र जनकत्वं स्वरूपयोग्यत्वं तेनासाधकतानुमानस्थलीयन्याये उदाहरणासत्त्वेऽपि न क्षतिरिति स्वरूपयोग्यतावच्छेदकरूपस्य हेतुत्वस्य तत्रापि सत्त्वादिति, अनुक्तोपनयादिकस्य उदाहरणस्य प्रयोजकहेतुवाक्येऽतिव्याप्तिवारणार्थमवयवेति । इति जागदीशी व्याख्या ।

उदाहरणप्रयोजकाकाङ्क्षाजनकशाब्दज्ञानजनकन्यायावयवत्वं वा ।

साध्याविषयकज्ञानजनकहेतुपञ्चम्यन्तानुमितिपरशब्दत्वं वा ।

---

आकाङ्क्षा कुतोऽस्य गमकत्वमित्याकारिका जिज्ञासा तज्जनकं यच्छाब्दज्ञानं तज्जनकत्वे सति न्यायावयवत्वमित्यर्थः। इतरावयवानां तादृशाकाङ्क्षाप्रयोजकत्वाभावान्नातिव्याप्तिः, अत्र जनकत्वं स्वरूपयोग्यत्वं अतो यत्र तादृशजिज्ञासा न जाता तत्र नाव्याप्तिः इत्यस्य उदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिरित्यतोविशेष्यदलं। न च न्यायान्तर्गतत्वे सतीति सम्यगिति वाच्यं। हेत्वेकदेशेऽतिव्याप्तिरिति तदुपादानं। ननु यत्पक्षक-यत्साध्यक-यद्धेतुकन्यायस्थले कदापि तादृशाकाङ्क्षा न जाता तत्र तत्स्वरूपयोग्यत्वे मानाभाव इत्यतो लक्षणान्तरमाह, 'साध्याविषयकेति[१] साध्याविषयकज्ञानजनकत्वे सति हेतु-

---

(१) 'साध्येत्यादि घटो न धूमादेतत्त्वादित्यादौ धूमहेतुताकत्वाद्यभावसाध्यके प्रतिज्ञा-निगमनयोर्व्वारणाय 'जनकान्तं हेतुत्वधर्मिकप्रकृतहेतुविषयतावच्छिन्नभावेन यत्साध्यविषयकं तदन्यज्ञानजनकार्थकं, तेनायं वह्निमान् वह्निसामग्रीमत्त्वादित्यादिस्थलीयहेतौ नाव्याप्तिः, वस्तुतः प्रकृतलिङ्गकहेत्ववयवानां वस्तुगत्या यादृश-यादृशविषयताकबोधजनकत्वं तादृश-तादृशविषयतावच्छिन्नभावेनैव साध्यविषयकत्वं वाच्यं। तेनायं एकोधूमादित्यादौ साध्यीभूतैकत्वविशिष्टधूमस्य ज्ञापकत्वबोधकहेत्ववयवे नाव्याप्तिः, ह्रदोनिर्धूमोनिर्वह्नित्वादित्यादौ धूमव्यापकवह्न्यभाववांश्चायमित्यादिव्यतिरेक्युपनयस्य वारणाय 'हेतुपञ्चम्यन्तेति 'हेत्विति, सम्पातायातं, हेतुसमानानुपूर्वीकस्य उदासीनवाक्यस्य वारणाय 'अनुमितिपरेत्यादि न्यायावयवत्वार्थकं।

पञ्चम्यन्तत्वे सति न्यायावयवत्वमित्यर्थः । अयं न दण्डाद्दण्डसंयोगा-जन्यद्रव्यत्वादित्यादौ प्रतिज्ञा-निगमनयोर्हेतुपञ्चम्यन्तत्वात् अनुमिति-परवाक्यत्वाच्च तत्रातिव्याप्तिवारणाय 'साध्याविषयकेति। न चैवं वह्निमान् वह्निसामग्रीत इत्यादौ अव्याप्तिः तत्र साध्यविषयक-ज्ञानस्यैव जननादिति वाच्यम् । 'साध्याविषयकपदेन हेतुतावच्छे-दकावच्छिन्नहेतुविशिष्टहेतुत्वविषयतावहिर्भावेन या विषयता तेन सम्बन्धेन अवच्छिन्नत्वस्य विवक्षितत्वात्, ह्रदो निर्धूमो निर्व्वह्नित्वा-दित्यत्र साध्याविषयकज्ञानजनकत्वेन धूमव्यापकीभूताभावप्रतियोगि-के.।भाववानयमित्युपनयेऽतिव्याप्तिवारणाय 'हेतुपञ्चम्यन्तेति हेतुत्व-बोधकपञ्चम्यन्तेत्यर्थः, तथाच तस्यायम्पदान्तत्वेन हेतुपञ्चम्यन्तत्वाभा-वान्नातिव्याप्तिः। न चोक्तोपनयेऽतिव्याप्तिवारणाय हेतुत्वबोधका-न्तत्वं पञ्चम्यन्तत्वं वा उपादीयतां कृतं विशिष्टोपादानेनेति वा-च्यम् । साध्याविषयकज्ञानजनकहेतुत्वबोधकान्तानुमितिपरवाक्यत्वं साध्याविषयकज्ञानजनकपञ्चम्यन्तानुमितिपरवाक्यत्वं वा हेतुत्वमिति लक्षणद्वये तात्पर्य्यात् ।

ननु पर्वतस्तेजस्त्वाभाववान् पृथिवीत्वादित्यादौ योयस्तेजस्त्ववान् स पृथिवीत्वाभाववान् यथा वह्निर्धूमादिति धूमज्ञानज्ञाप्यवह्निरूप-दृष्टान्तशालिव्यतिरेक्युदाहरणेऽतिव्याप्तिः तस्य साध्याविषयकज्ञान-

---

न चायं न गुरुत्वहेतुताकोऽरसवत्त्वादित्यादौ यो यो गुरुत्वात् स रसवत्त्वा-दित्यादिव्यतिरेक्युदाहरणेऽतिव्याप्तिस्तस्यापि साध्याविषयकत्वे सति पञ्चम्य-न्तावयवत्वादिति वाच्यम् । उदाहरणान्यत्वेनापि विशेषणीयत्वादिति भावः। इति जागदीशी व्याख्या ।

जनकत्वात् पञ्चम्यन्तानुमितिपरवाक्यत्वाच्च इत्यतो लक्षणान्तरमाह(१)

---

(१) 'प्रतिज्ञावाक्यधीजन्येत्यादि पक्षधर्मिक-साध्यवत्ताबोधकवाक्यजन्या शाब्दधीद्वारा प्रयोज्या या कारणस्य ज्ञापकस्याकाङ्क्षा पक्षः कुतः साध्यवान् इत्याकारिका जिज्ञासा तन्निवर्त्तकज्ञानस्य जनकत्वे सति हेतुविभक्तिमदव-यवत्वमित्यर्थः, प्रतिज्ञादिवारणाय सत्यन्तं, अयं तस्मात् वह्निमान् इत्यादि-निगमनस्यापि पक्षः कुतः साध्यवानित्याकारकजिज्ञासानिवर्त्तकज्ञान-जनकत्वसम्भवात्तत्रातिव्याप्तेर्वारणाय 'हेतुविभक्तिमदिति, 'हेतोः' अबाधि-तत्वादिधीहेतोः, या 'विभक्तिः' विभागः पार्थक्यं तद्वन्निगमनान्यत्ववदिति तु फलितार्थः, न्यायबहिर्भूतस्य हेतुसमानार्थकस्य धूमादित्यादेर्वारणाय 'अवयवेति, 'पञ्चम्यन्तेत्यादि पञ्चमी अन्ते यस्य तादृशं यल्लाक्षणिकं पदं तद्गर्भावयवत्वमित्यर्थः, धूमेनालोकवानयं वह्निमान् धूमादित्यादौ प्रतिज्ञा-वारणाय 'पञ्चम्यन्तेति, अयं दण्डाज्ज्ञातो घटत्वादित्यादौ प्रतिज्ञावारणाय 'लाक्षणिकेति। यद्यप्येवमपि धूमादालोकवानयं वह्निमानित्यादिप्रतिज्ञाया-मतिव्याप्तिः प्रकृतसाध्यधर्मिकशाब्दबोधकत्वेन पञ्चम्या विशेषणीयत्वेऽपि धूमाद्वह्निमतः सधर्मायं वह्निमानित्यादिप्रतिज्ञायां तथा, तथापि प्रकृत-पक्षधर्मिकशाब्दविशिष्टप्रकृतसाध्यवत्त्वान्वयबोधजनकत्वेन पञ्चमी विव-क्षितेति नायं दोषः। यद्यपि चैवमप्ययं तस्माद्वह्निमानित्यादिनिगमनेऽति-व्याप्तिः ज्ञानत्वादिप्रकारेण ज्ञानग्राहकस्यापि सर्व्वनामतच्छब्दस्य व्याप्त्यादि-विशिष्टधूमत्वप्रकारेण बोधने लाक्षणिकत्वात् लघु-गुरुरूपाभ्यामन्वयबोध-कस्य पदमात्रस्यैव गुरुरूपेण लक्षणायाः सर्वसम्मतत्वात्। तथापि लाक्ष-णिकेत्यस्य प्रकृतहेतुविषयकज्ञानत्वावच्छिन्नलाक्षणिकपरत्वान्नोक्तदोषः तत्र व्याप्त्यादिविशिष्टप्रकृतहेतुगोचरज्ञानत्वेनैव तच्छब्दस्य लक्षकत्वादिति। न चायं गुरुः पतनादित्यादौ हेतावव्याप्तिस्तत्र पञ्चम्यन्तस्य पतनादिशब्दस्य शक्तिविरहेण पतनज्ञानत्वावच्छिन्नलक्षकत्वासम्भवादिति वाच्यम्। पञ्चम्यन्ते-

त्वस्य पञ्चमीसाकाङ्क्षपरत्वेन तत्रापि पञ्चमीसाकाङ्क्षस्य ल्युडन्तपतधातोः पतनज्ञानलक्षकत्वसम्भवादिति ध्येयं।

ननु धूमादित्यादिहेत्ववयवस्य धूमनिष्ठं ज्ञापकत्वमित्यन्वयबोधकतायां पञ्चम्यन्तधूमादित्यादिपदस्य लाक्षणिकत्वाभावात् अव्याप्तिरत आह, 'हेतुपदेनेति हेतुभूतधूमादिवाचकपदेन धूमज्ञानादिलक्षणादित्यर्थः। अत्र हेतुमाह, 'अन्यथेति लक्षणां विनेत्यर्थः, 'अहेतुत्वेन' साध्याज्ञापकत्वेन। ननु प्रकृत्यर्थे स्वार्थसङ्ख्याबोधकतयैव हेतुविभक्त्यर्थान्वयो भविता इत्यत आह, 'तथैवेति पञ्चम्या ज्ञापकत्वबोधकतायामेव कुतो वह्निमानित्याकाङ्क्षानिवृत्तेरित्यर्थः।

प्राञ्चस्तु लिङ्गस्यानुमापकत्वमतेऽप्याह 'तथैवेति धूमादिपदस्य धूमादिज्ञाने लक्षणायामेवेत्यर्थः, अन्यथा पञ्चः किंगोचरज्ञाननिष्ठज्ञापकताकवह्निमानितिप्रश्नस्य धूमनिष्ठज्ञापकताकवह्निबोधानिवर्त्त्यत्वेन धूमादित्यस्य तत्रोत्तरत्वानुपपत्तेरिति प्राहुः।

ननु तत्र पञ्चम्या ज्ञाप्यत्वमर्थो बोध्यः अत आह, 'तथैवेति निरुक्तहेत्वन्वयबोधेनैवेत्यर्थः, 'आकाङ्क्षानिवृत्तेः' कुत इति जिज्ञासाया अनुत्पत्तेः, तथाच निरुक्तहेतुत्वमेव पञ्चम्यर्थ इति भाव इत्यन्ये।

अत्रेदं बोध्यं धूमपदं धूमज्ञानपरं, वह्निपदे ज्ञानविषयवह्नौ लक्षणा, वह्निज्ञाने वा सा, पञ्चम्या हेतुत्वमर्थः, धूमज्ञानहेतुकज्ञानविषयवह्निमान् पर्वतः धूमज्ञानहेतुकवह्निज्ञानविषयाभिन्नः पर्वत इति वा बोध इति कश्चित्, तन्न 'आवृत्तौ सैवेति मूलविरोधात्।

अन्ये तु धूमपदं धूमज्ञानलाक्षणिकं, पञ्चम्या ज्ञानजनकत्वं जन्यज्ञानविषयत्वं वार्थः धूमज्ञाननिष्ठज्ञानजनकत्वनिरूपकवह्निमदभिन्नः पर्वतः धूमज्ञानजन्यज्ञानविषयवह्निमदभिन्नः पर्वत इति वा बोधः।

परे तु पञ्चम्या ज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वमर्थः, धूमपदं यथाश्रुतमेव, बोधस्तु पूर्व्ववदित्याहुः इति जागदीशी व्याख्या।

प्रतिज्ञावाक्यधीजन्यकारणाकाङ्क्षानिवर्त्तकज्ञानजनकहेतुविभक्तिमद्वाक्यत्वं वा ।

पञ्चम्यन्तलाक्षणिकपदवदनुमितिपरवाक्यत्वं वा ।

---

'प्रतिज्ञावाक्येति प्रतिज्ञावाक्यार्थज्ञानजन्या या कारणाकाङ्क्षा कुतइति प्रश्नोन्नेयकारणजिज्ञासा तन्निवर्त्तकज्ञानजनकत्वे सति हेतुविभक्तिमन्न्यायावयवत्वमित्यर्थः, अयं न दण्डादित्यादिप्रतिज्ञावारणाय सत्यन्तं, तस्माद्वह्निमानितिनिगमनेऽतिव्याप्तिवारणाय 'हेतुविभक्तिमदिति हेतुत्वप्रतिपादकविभक्त्यन्तार्थकं, हेतुत्वं प्रमेयमित्यादौ तस्मात्प्रमेयमिदमिति निगमने हेतुत्वप्रतिपादकेदम्पदान्तकेऽतिव्याप्तिवारणाय 'विभक्तीति ।

लक्षणान्तरमाह,[१] 'पञ्चम्यन्तेति पञ्चम्यन्तं यल्लाक्षणिकपदं तद्वत्त्वे सति न्यायावयवत्वमर्थः, लाघवेन पञ्चम्या विभागत्वस्यैव शक्यतावच्छेदकतया यत्र पञ्चम्या ज्ञानज्ञाप्यत्वादिबोधः तत्र लक्षणैवेति तस्माद्वह्निमानित्यादिनिगमने लाक्षणिकपञ्चमीपदवति न्यायावयवेऽतिव्याप्तिवारणाय 'पञ्चम्यन्तेति, तथाच पञ्चम्यन्ततत्पदस्य लाक्षणिकत्वाभावान्नातिव्याप्तिरिति भावः। तस्माद्वह्निमानितिनिगमनस्यापि पञ्चम्यन्ततत्पदवत्त्वात् तद्दोषतादवस्थ्यवारणाय 'लाक्षणिकेति, उदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलं, लक्ष्ये लक्षणं सङ्गमयति,

---

(१) ननु तथापि अयं न दण्डादित्यादौ तस्मान्न दण्डादिति निगमने अतिव्याप्तिस्तस्य तादृशजिज्ञासानिवर्त्तकज्ञानजनकत्वात् हेतुत्वप्रतिपादकविभक्त्यन्तत्वाच्चातोलक्षणान्तरमाहेत्यधिकः पाठः घ-चिह्नितपुस्तके वर्त्ततइति ।

हेतुपदेन ज्ञाने लक्षणा 'अन्यथा लिङ्गस्याहेतुत्वेन हेतुविभक्त्यर्थानन्वयात्(१) तथैवाकाङ्क्षानिवृत्तेः।

'हेतुपदेनेति हेतूपस्थापकधूमादितिपदेनेत्यर्थः, 'ज्ञाने लक्षणा' हेतुज्ञाने लक्षणा, पञ्चम्या ज्ञानविषयत्वरूपं ज्ञाप्यत्वमर्थः, तदेकदेश-ज्ञाने हेतुज्ञानस्य जन्यतासम्बन्धेनान्वयः, तथाच धूमादिति हेतु-वाक्यात् धूमज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वमित्याकारकः शाब्दबोधः। ननु धूमपदे कथं धूमज्ञाने लक्षणा धूमस्यैव जन्यतासम्बन्धेन ज्ञानेऽन्वयः स्यादित्यत आह, 'अन्यथेति हेतुपदे हेतुज्ञाने लक्षणानङ्गीकारे, 'विभक्त्यर्थानन्वयादिति पञ्चमीविभक्त्यर्थे हेतोरनन्वयापत्तेरित्यर्थः, अनन्वये हेतुमाह, 'लिङ्गस्याहेतुत्वेनेति साध्यज्ञाने लिङ्गस्याहेतुत्वेने-त्यर्थः, लिङ्गज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वादिति भावः। ननु लिङ्गोपहित-लैङ्गिकभानादिमते लिङ्गस्याप्यनुमितिविषयतया विषयतासम्बन्धेन हेतोरन्वयोऽस्तु पञ्चम्यर्थैकदेशे ज्ञाने इति किं लक्षणयेत्यत आह, 'तथैवेति जन्यतासम्बन्धेन धूमज्ञानस्य ज्ञानेऽन्वयेनैवेत्यर्थः, 'आकाङ्क्षा-निवृत्तेरिति कारणाकाङ्क्षानिवृत्तेरित्यर्थः, वह्निज्ञाने धूमज्ञानजन्य-त्वसिद्धौ जायमानायां धूमज्ञानेऽपि तुल्यवित्तिवेद्यतया वह्निज्ञान-जनकत्वसिद्धेरिति भावः। ननु एतल्लक्षणं धूमादालोकवान् पर्व्वतो-वह्निमानित्यादिप्रतिज्ञायामतिव्याप्तं तस्यापि पञ्चम्यन्तलाक्षणिक-धूमपदवत्त्वादिति चेत्। न। प्रकृतपक्षविशेष्यक-प्रकृतसाध्यप्रकारका-न्वयबोधजनकाकाङ्क्षा-तात्पर्य्यादिमत् यत् प्रकृतसाध्यतात्पर्य्यकं पदं

(१) विभक्त्यर्थानन्वयात् इति पा०।

अनुमितिहेतुज्ञानकारणधूमवत्त्वादितिशब्दजन्य-ज्ञानवृत्तिप्रतिज्ञादिजन्यज्ञानावृत्तिजातियोगिज्ञानज-नकवाक्यत्वं हेतुत्वमित्यन्ये, जातिं विना केन रूपेण

---

तदाकाङ्क्षादि-तात्पर्य्यादिमती या पञ्चमी तदन्तत्वात्क्षणिकपदवत्त्वस्य विवक्षितत्वात् तथाच धूमादालोकवान् पर्व्वतोवह्निमानित्यादि-प्रतिज्ञायां नातिव्याप्तिः तत्रत्यपञ्चम्याः प्रकृतसाध्यतात्पर्य्यकं यद्वह्नि-पदं तदाकाङ्क्षाद्यभावात् एवं धूमाद्वह्निमतः सधर्म्मा पर्व्वतो वह्नि-मान् धूमादित्यादौ नातिव्याप्तिः तत्र तादृशविशिष्टपक्षविशेष्यक-साध्यप्रकारकान्वयबोधजनकाकाङ्क्षादिमत् यत्प्रकृतसाध्यतात्पर्य्यकं पदं चरमवह्निपदं तदाकाङ्क्षादिमत्त्वस्य पञ्चम्या अभावादिति भावः।

'अनुमितीत्यादि, उदाहरणादिप्रयोज्यजातेर्वारणाय वृत्त्यन्तं जातिविशेषणं, परार्थानुमितिहेतुभूतं यच्छाब्दज्ञानं तत्कारणीभूतस्य धूमवत्त्वादिति शब्दस्य जन्यज्ञाने वर्त्तमानेति तदर्थः, न्यायजन्यज्ञान-विधुरस्य चेष्टादिशरीरविशेषस्य प्रयोज्याया धूमवत्त्वादित्यादि-शाब्दधीवृत्तिजातेर्व्वारणाय 'कारणान्तं, अवयवजन्यस्यैव शाब्दस्य परार्थस्थलीयानुमितिहेतुत्वान्नातिव्याप्तिरित्यभिमानः। सत्ता-शाब्द-त्वादेर्व्वारणाय 'प्रतिज्ञादिजन्यज्ञानावृत्तीति प्रतिज्ञोदाहरणादेरेकै-कमात्रं निवेश्यं न तु समुदायोवैयर्थ्यात्। वस्तुतस्तु एतद्वह्निसमवेत-तद्व्यक्त्यसमवेतधर्म्मवत्त्वमर्थः, तद्व्यक्तेरेतद्व्यक्तेश्च लाभाय वृत्त्यवृत्त्यन्तद्वय-मिति, एतेन प्रतिज्ञात्वादिप्रवेशे प्रतिज्ञालक्षणेप्येतन्मते हेतुत्वघटित-त्वापत्त्या आत्माश्रयापत्तिरिति दूषणं निरस्तं, मतं दूषयति, 'जातिं

ज्ञानस्यानुमितिजनकत्वं वाक्यविशेषजन्यत्वस्यापि अ-न्यतावच्छेदकरूपापरिचये दुर्ग्रहादित्यपरे।

अन्वयव्याप्त्यभिधायकावयवाभिधानप्रयोजकज्ञान-जनकहेतुत्वप्रतिपादकविभक्तिमन्न्यायावयवत्वमन्वयि हेतुत्वं, एतदेव व्यतिरेकव्याप्त्यभिधायकपदप्रक्षेपाद्-व्यतिरेकि हेतुत्वम्। अन्वयव्यतिरेकोदाहरणाकाङ्क्षा-प्रयोजकतथाभूतावयवत्वमन्वयव्यतिरेकि हेतुत्वं।

---

विनेति हेतुजन्यबुद्धौ वैजात्यं विना केन रूपेण परार्थानुमिति-जनकत्वमित्यर्थः, तथाच कारणान्तदलमव्यावर्त्तकमेवेति भावः। ननु कारणान्तं प्रकृतन्यायावयवार्थकं धूमवत्त्वादित्यादिशब्दान्वयि तथाच धूमवत्त्वादित्यानुपूर्व्वीकावयवजन्यज्ञानवृत्तीत्येव जातेर्विशेषणं वाच्यम् न तु कारणान्तगर्भं अत आह, 'वाक्यविशेषजन्यत्वस्यापीति धूमवत्त्वादित्यानुपूर्व्वीकावयवजन्यत्वस्यापीत्यर्थः, तथाच कत्वादिना साङ्कर्य्येण तादृशवाक्यवृत्तिजात्यभावेन तदवच्छिन्नजनकतानिरूपि-तजन्यतावच्छेदकजातावपि मानाभावेन लक्षणस्यासम्भव इति भावः।

हेतुत्वस्यान्वयि-व्यतिरेक्यन्वयव्यतिरेकि भेदेन त्रैविध्यात् तदनुक्तौ न्यूनत्वमत आह, 'अन्वयेत्यादि, व्यतिरेकिहेतोर्वारणाय 'जनकान्तं प्रकृतहेतुधर्म्मिकसाध्याम्वयव्याप्त्यभिधायकवाक्यप्रयोजकशाब्दधीप्रयो-जकार्थकं, उपनयप्रयोजकज्ञानजनके उदाहरणे प्रतिज्ञायाश्चाति-व्याप्तिवारणाय उदाहरणान्तमात्रस्याभिधानस्थले हेतोरलक्ष्यत्वान्न-

'यद्वा पक्ष-सपक्षसतो विपक्षासतो हेतुवचनमन्वय-व्यतिरेकि,' अत्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यसमानाधिकरणपक्ष-सपक्षसद्धेतुवचनं केवलान्वयि।

---

द्वारणाय च 'हेतुत्वप्रतिपादकेत्यादि स्वार्थहेतुत्वमुख्यविशेष्यकान्वयबोधजनकविभक्तिमन्न्यायावयवत्वमित्यर्थः, 'अन्वयिहेतुत्वमिति अन्वयिहेत्ववयवत्वमित्यर्थः। 'एतदेव' स्वार्थत्वाद्यवयवत्वमेव, 'तथाभूतावयवत्वं' निरुक्तहेत्ववयवत्वं, तावन्मात्रञ्च केवलान्वयिनः केवलव्यतिरेकिणश्च हेतोर्गतमतः 'प्रयोजकान्तं प्रकृतहेतुकप्रकृतसाध्यसिद्ध्यौपयिकान्वय-व्यतिरेकोभयव्याप्त्यभिधाननिवर्त्त्याकाङ्क्षाकारणीभूतज्ञानजनकार्थकं, तयेत्यादिपदव्यावृत्तिः पूर्व्ववत्।

ननु कथमस्य गमकत्वमित्याकाङ्क्षायां एकव्याप्त्यभिधानेनैव निरस्तत्वात् व्याप्त्यन्तराभिधानस्यार्थान्तरग्रस्तत्वमतोनोक्तक्रमेणान्वय-व्यतिरेकिहेतोर्लक्षणं युक्तमत आह, 'यद्वेति। सद्धेतोरेव लक्ष्यत्वमित्यभिप्रायेणाह, 'यद्वेतीत्यन्ये। 'हेतुवचनं' प्रकृतहेतुत्वप्रतिपादकोऽवयवः, तथाच पक्षे सपक्षे च सतो विपक्षेऽसतोऽर्थस्य हेतुत्वप्रतिपादकोऽवयवः अन्वयव्यतिरेकीत्यर्थः, अत्र च सपक्षसत्त्वं निश्चितसाध्यवद्वृत्तित्वं, तेन पृथिवीतरेभ्योभिद्यते पृथिवीत्वादित्यादौ केवलव्यतिरेकिहेतौ नातिव्याप्तिः, पक्षसत्त्वन्तु पर्वतो वह्निमान् महानसत्वादित्यादौ स्वरूपासिद्धस्य हेतोर्व्युदासार्थं, सद्धेतोरेव लक्ष्यत्वादिति ध्येयं। नन्वेवं वह्निसाध्यकधूमादिहेतोरन्वयव्यतिरेकित्वे तच प्रागुक्तकेवलान्वयिहेतुलक्षणस्यातिव्याप्तिरतस्तस्य लक्षणान्तरमाह,

यद्वा अनुमितिकारणीभूतपरामर्शप्रयोजकशाब्द-ज्ञानकारणसाध्याविषयकशाब्दधीजनकप्रतीतान्वयसा-ध्य-साधनवाचकहेतुविभक्तिमच्छब्दत्वमन्वयिहेतुत्वम्। एतद्देवाप्रतीतान्वयसाध्यसाधनेतिविशेषणाद्व्यतिरेकि-

---

'अत्यन्तेति वृत्तिमदत्यन्ताभावाप्रतियोगिनः साध्यस्य समानाधिक-रणीयः पक्ष-सपक्षयोः सन् हेतुस्तस्य 'वचनं' हेतुत्वप्रतिपादकोऽव-यवः केवलान्वयीत्यर्थः, अत्र पक्षसत्त्वस्य व्यावृत्तिः प्रागिव स्वरू-पासिद्धहेतोर्वारणं, सपक्षसत्त्वन्तु सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वादित्यादौ सर्वस्य पक्षतादशायां प्राचीनसम्मतस्यानुपसंहारिहेतोर्वारणायेति ध्येयं । इदमुपलक्षणं पक्षसतः सपक्षासतः पक्षमात्रसतो वा विपक्षासतश्च हेतोर्वचनं केवलव्यतिरेकीति द्रष्टव्यं।

दशाविशेषे वह्न्यादिसाध्यके धूमादिहेतावप्यन्वयित्वं स्वीकुर्वतामा-चार्य्याणां मतेनाह, 'यद्वेति, 'अनुमितीत्यादि, अप्रोदासीनस्य धूमा-दित्यादिवाक्यस्य वारणार्थमाद्यं कारणान्तं, प्रागुक्तरीत्या प्रकृतपक्षक-प्रकृतहेतुकप्रकृतसाध्यकन्यायावयवार्थकं, धूमाद्वह्निमतः सधर्म्मायं व-ह्निमान् धूमादित्यादौ प्रतिज्ञादेर्निगमनस्य च वारणाय द्वितीयं का-रणान्तं, प्रकृतहेतुविशिष्टहेतुत्वविषयतावच्छिन्नभावेन यत् साध्यविषयकं तदन्यशाब्दधीकारणमिति तदर्थः, तेनायं वह्निमान् वह्निसामग्री-मत्त्वादयं हेतुतावान् तत्त्वेन प्रमीयमानत्वादित्याद्यन्वयिहेतौ नाव्याप्तिः, अयं न धूमाद्वह्निशून्योधूमात् यो यो धूमाद्वह्निशून्यः स धूमशून्य-इत्यादावप्रतीतसाध्यान्वय-व्यतिरेकिहेतोर्वारणाय 'प्रतीतसाध्यान्वये-

हेतुलक्षणं, कथायां धूमादित्येव प्रयोक्तव्यं न तु धूमवत्त्वादिति मतुपोव्यर्थत्वात्।

सामान्यवत्त्वे सति वाह्यकरणप्रत्यक्षत्वादित्यपार्थकं विभक्त्युपस्थापितहेतुत्वेन सामान्यवत्त्वस्य

---

त्यादि प्रतीतः साध्यान्वयोऽन्वयसहचारमात्रं यत्र तादृशं यत्साधनं तद्वाचकशब्दादृया हेतुविभक्तिः पक्षधर्मिकस्वार्थविशिष्टसाध्यवत्त्वबोधस्य हेतुभूता या विभक्तिस्तद्वत्त्वमित्यर्थः, 'प्रतीतान्वयसाध्य-साधनेति पाठेऽपि साध्यपदस्य व्यत्यासेन उक्त एवार्थः।

केचित्तु वह्निसामग्रीमत्त्वादित्यादिहेतुसंग्रहाय 'साध्यविषयकेति साध्यविषयकत्वनियतावयवतावच्छेदकरूपशून्यार्थकं, तथाच उदाहरणत्वावच्छिन्नस्यापि तथात्वादन्यत्युदाहरणवारणाय 'हेतुविभक्तीति प्रागुक्तहेतुत्वार्थकमित्याहुः।

'अप्रतीतेत्यादि, इदमुपलक्षणं एतदेव प्रतीतसाध्य-तद्भावसहचारकेति[१] विशेषणादन्वय-व्यतिरेकिहेतुलक्षणमित्यपि बोध्यं। ननु प्रतिज्ञादित्र्यवयववादिनां मीमांसकानां मते धूमहेतुस्थले तस्य पक्षधर्मताप्रतिपत्त्यर्थं धूमवत्त्वादिति कथञ्चिन्मतुपोऽस्तु प्रयोजनं पञ्चावयववादिनान्तु तार्किकाणां उपनयादेव हेतोः पक्षधर्मताप्रतिपत्तिसम्भवान्मतुपोव्यर्थत्वमित्यत्र इष्टापत्तिमाह, 'कथायामिति, एतेन धूमसम्बन्धपर्य्यवसन्नत्वेन तस्य धूमवत्त्वस्य हेतुतायां न वैयर्थ्यं धूमत्वस्य

---

(१) प्रतीतोभयसहचारकेतीति च०।

विभक्त्यन्तरावरुद्धस्यानन्वयादिति केचित्। तन्न। सतिसप्तमीबलात् सामान्यवत्त्वस्य वाह्यकरणप्रत्यक्ष-त्वस्य च सामानाधिकरण्योपस्थितौ 'विशिष्टे हेतुत्वा-न्वयात् तथैव व्युत्पत्तेः, न ह्ययमर्थोऽस्मान्नावगम्यते इति।

---

धूमसम्बन्धावृत्तित्वेन तन्निष्ठव्याप्यवच्छेदकत्वासम्भवात् अन्यथा धूमप्रा-गभावस्यापि हेतुता न स्यादिति दूषणं प्रत्युक्तं।

नन्वेकविभक्त्यर्थान्वितसामान्यवत्त्वे[1] विभक्त्यन्तरार्थहेतुत्वान्वये आकाङ्क्षाविरहात् कथं विशिष्टहेतौ हेतुत्वान्वय इत्याशङ्कते, 'केचित्त्वित्यादि, 'सामान्यवत्त्व इत्यस्य शब्दानित्यत्वे साध्ये इत्यादिः, 'अपार्थकं' अनन्वितं[2], तथाच निश्चितानन्वयरूपापार्थकत्वमेव तस्य न त्वन्वयाबोधकत्वमित्यर्थः, विरुद्धविभक्त्यर्थावरुद्धे विभक्त्यन्तरार्थान्वय-बोधास्वीकारात् प्रकृते सप्तम्यर्थसामानाधिकरण्यविशिष्टहेतौ हेतुत्वा-न्वये बाधकाभाव इत्याशयेन समाधत्ते, 'सतीति सतिपदसमभिव्या-हृतसप्तमीबलादित्यर्थः, 'विशिष्ट इति सामान्यवत्त्वविशिष्टवाह्यकर-णकप्रत्यक्षत्व इत्यर्थः, लिङ्गस्य हेतुतामतेनेदं, अन्यथा तु लक्षणयो-पस्थिते तादृशप्रत्यक्षत्वस्य ज्ञाने हेतुत्वान्वयो द्रष्टव्यः। ननु सति-सप्तम्याः सामानाधिकरण्यवाचित्वे घटे जातिमत्त्वमित्यतोऽपि घट-विशिष्टजातिमत्त्वं प्रतीयेत इत्यत आह, 'तथैव व्युत्पत्तेरिति सति-

---

(१) नन्वेवं विभक्त्यर्थावरुद्धे सामान्यवत्त्व इति घ०।
(२) अनुचितमिति घ०।

'हेतावुक्ते कथमस्य गमकत्वमित्याकाङ्क्षायां व्याप्ति-पक्षधर्म्मतयोरुपदर्शनप्राप्तौ व्याप्तेः प्राथम्यात् तत्प्रदर्शनायोदाहरणं ' तत्रानुमितिहेतुलिङ्गपरामर्शपरवाक्यजन्यज्ञानजनकव्याप्यत्वाभिमतवन्निष्ठनियतव्यापकत्वाभिमतसम्बन्धबोधजनकशब्दत्वमुदाहरणत्वं । सा-

---

पदसमभिव्याहारेणैव सप्तम्याः सामानाधिकरण्ये व्युत्पन्नत्वादित्यर्थः, 'अयं' सामानाधिकरण्यरूपः, 'अस्मात्' सप्तम्याः सतिपदसमभिव्याहारात् ।

ननु व्याप्तेरिव पक्षधर्मताया अपि गमकतौपयिकत्वात् तत्प्रदर्शनाय हेतूत्तरमुपनय एव कथं नोपन्यस्यते इत्यत आह, 'कथमस्येति, 'अस्य' धूमादेः, 'गमकत्वं' गमकतावच्छेदकत्वं, लिङ्गस्य हेतुतामते तु यथाश्रुतमेव न्यायः। 'अस्य' लिङ्गज्ञानस्येत्यर्थः, इति कश्चित् । 'प्राथम्यादिति परामर्शार्थं प्रथमोपस्थाप्यत्वादित्यर्थः, परामर्शे व्याप्तेर्विशेषणतावच्छेदकतया पूर्व्वोपस्थितिनियमः पक्षधर्मतायास्तु वैशिष्ट्यरूपतया न विशेषणतावच्छेदकत्वमिति न तदुपस्थितिः प्रागपेक्षणीयेत्यभिप्रायः ।

यत्तु 'प्राथम्यादिति प्रथमाकाङ्क्षाविषयत्वादित्यर्थः, प्रतीतव्याप्तिकोहेतुः पक्षे वर्त्तते न वेत्याकाङ्क्षादर्शनादिति व्याख्यानं, तन्न सम्यक्, युक्त्यनभिधाने व्याप्त्याकाङ्क्षायाः प्राथम्ये मानाभावात् । वस्तुतः 'कथमस्य गमकत्वमित्याकाङ्क्षायाः किंप्रकारावच्छिन्नस्य गमकत्वमित्यर्थः, इति तादृशाकाङ्क्षायां प्रथमतः पक्षधर्मताप्रदर्शनस्य प्रसक्तिरेव नास्तीति ध्येयम् । 'तत्प्रदर्शनायेति व्याप्तिप्रदर्शनायेत्यर्थः,

मान्यलक्षणे साध्य-साधनसम्बन्धबोधकत्वं साध्य-साधनाभावसम्बन्धबोधकत्वञ्च विशेषलक्षणद्वयम्।

न्यायावयवदृष्टान्तवचनमुदाहरणमिति तु न, दृष्टान्तप्रयोगस्य सामयिकत्वेनासार्व्वत्रिकत्वात् यो यो धूमवान् सोऽग्निमानित्येव व्याप्तिप्रतीतेः।

---

यद्यपि उदाहरणस्य न व्याप्तिः पदार्थो न वा वाक्यार्थः, तथापि उदाहरणाद्व्याप्तिग्राहकसहचारज्ञाने जाते व्याप्तिग्रहो मानसो भवतीति व्याप्तितात्पर्य्यकत्वरूपव्याप्तिप्रदर्शकत्वं।

यद्वा वीप्साया व्याप्तिबोधकत्वादेव व्याप्तिप्रदर्शकत्वमित्यवगन्तव्यं, वीप्सया व्यापकत्वं बोध्यते, तथाच स्वव्यापकीभूतसाध्यावच्छिन्नस्यैव हेतोः पक्षधर्मताज्ञानं अनुमितिहेतुरित्याशयेनेदं, व्याप्तिपदस्य व्यापकत्वपरत्वादित्यपि वदन्ति(१)।

'अनुमितीत्यादि, उदाहरणसदृशोदासीनवाक्यवारणाय 'जनकान्तं प्रागुक्तरीत्या प्रकृतन्यायावयवार्थकं, हेत्वादिवारणाय 'व्याप्यत्वाभिमतेत्यादि, व्याप्यत्वाभिमतवद्धर्म्मिको यः 'नियतः' प्रतिनियतः प्रकृतपक्षे प्रकृतसाध्यवत्त्वाविषयकोव्यापकत्वाभिमतस्य सम्बन्धबोधस्तज्जनकत्वं, अभिमतान्तद्वयञ्चाच धर्मद्वयोपलक्षकं, तथाच प्रकृतपक्षे प्रकृतसाध्यवत्त्वाविषयको य एकपदार्थवद्धर्मिकतद्व्यापकत्वविशिष्टापरपदार्थवत्त्वबोधस्तज्जनकत्वमिति तु फलितार्थः। एतेन यथाश्रुतलक्षणमिदं उपनयेऽतिव्याप्तमिति निरस्तं। न च प्रकृतपक्षे प्रकृतसाध्याविषयक-

---

(१) द्रष्टव्यमिति ङ०।

नापि प्रकृतानुमितिहेतुलिङ्गपरामर्शपरवाक्यज-
न्यज्ञानविषयव्याप्त्युपनायकं वचनं तत्, उपनयाति-

लक्षणवैयर्थ्यं, धूमवान् धूमव्यापकवह्निमान् पर्वतत्वादित्यादिस्थलीय-
प्रतिज्ञावाक्येऽतिव्याप्तिवारकत्वात्, यत्पदवीप्सासहकारेण व्यापकत्वा-
वगाहिबोधजनकावयवत्वं समुदितार्थः इत्यपि कश्चित्, 'सामान्य-
लक्षणे' अन्वय-व्यतिरेकिसाधारणलक्षणे, 'साध्येत्यादि साध्ये साधनस्य
सम्बन्धो व्यापकत्वं, एवमग्रेऽपि, तथाच वीप्सालभ्यसाधनव्यापकत्व-
बोधकावयवत्वं अन्वय्युदाहरणत्वं, वीप्सालभ्यसाध्याभावव्यापकत्वबो-
धकावयवत्वं व्यतिरेक्युदाहरणत्वं, उपनयादेर्व्युदासाय वीप्सालभ्येति
वेशेषणमिति भावः ।

केचित्तु 'साध्येत्यादि, 'सम्बन्धपदं सामानाधिकरण्यार्थकं,
तथाचान्वयव्याप्तितात्पर्य्यकसाध्य-साधनसामानाधिकरण्यबोधकावय-
वत्वं अन्वय्युदाहरणत्वं, व्यतिरेकव्याप्तितात्पर्य्यकसाध्याभावसाधना-
भावसामानाधिकरण्यबोधकावयवत्वं व्यतिरेक्युदाहरणत्वं, पक्षधर्म-
तातात्पर्य्यकोपनयादेः सामानाधिकरण्यबोधकत्वेऽपि व्याप्तितात्प-
र्य्यकत्वाभावादेव वारणमित्याहुः । तन्न साधीयः, अन्वयव्याप्तिता-
त्पर्य्यकावयवत्वस्यैव सम्यक्त्वेनेतरांशवैयर्थ्यात् ।

प्राचीनमतं निरस्यति, 'न्यायेत्यादि न्यायावयवत्वे सति
'दृष्टान्तवचनं' यथापदार्थान्वयिस्वार्थबोधकनामोत्तरप्रथमान्तत्वं,
तेनान्वयिनोव्यतिरेकिणश्च द्वयोर्दृष्टान्तयोः(१) संग्रहः, 'दृष्टान्तेति
दृष्टान्तशून्योदाहरणेऽव्याप्तिः, 'इत्येव' इत्यत एव, 'व्याप्ति-

(१) द्वयोरुदाहरणयोरिति क० ।

व्याप्तेः, अत उपनयाभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकवाक्यमुदाहरणम्। एतदेवान्वयव्यतिरेकव्याप्तिविषयत्वविशेषितं विशेषलक्षणद्वयमित्यन्ये। अत्र च व्यभिचारवारणाय वीप्सामाहुः। यत्र च सामानाधिकर-

---

प्रतीतेरिति, वीप्सया तत्समभिव्याहृताग्न्यादिपदेनैव वा अग्न्यादेरुद्देश्यतावच्छेदकीभूतधूमादिव्यापकत्वांशबोधनादिति भावः। 'नापीत्यादि, अत्रोक्तरीत्या 'वाक्यान्तं प्रकृतन्यायार्थकं, तथाच प्रकृतन्यायजन्यज्ञानविषयीभूता या अन्वयतो व्यतिरेकतो वा व्याप्तिस्तस्याः 'उपनायकं' बोधकं, यत् 'वचनं' अवयवः, 'तत्' उदाहरणमित्यर्थः, 'उपनयाभिधानेति 'उपनयस्य' प्रकृतहेतुकप्रकृतसाध्यसिद्ध्यौपयिकव्याप्यवच्छिन्नप्रकृतलिङ्गवत्त्वेन पक्षबोधकवाक्यस्य, प्रयोजिका या पक्षः साध्यव्याप्यप्रकृतहेतुमान् वेत्याकारिका जिज्ञासा तस्याः 'जनकं' अनुकूलं यत् 'वाक्यं' अवयवः, 'तत्' उदाहरणमित्यर्थः, एतेन उपनयत्वस्य एकत्वाभावे सामान्यलक्षणस्यानुपपत्तिरिति दूषणं प्रत्युक्तं। 'एतदेवेति साध्यान्वयव्याप्तिविशिष्टप्रकृतहेतुमत्पक्षबोधकवाक्याभिधानप्रयोजकजिज्ञासानुकूलावयवत्वं साध्यीयव्यतिरेकव्याप्तिविशिष्टप्रकृतहेतुमत्पक्षबोधकवाक्याभिधानप्रयोजकजिज्ञासानुकूलावयवत्वञ्चान्वयिनोव्यतिरेकिणश्च क्रमेणोदाहरणद्वयस्य लक्षणमित्यर्थः, उदाहरणस्य न व्याप्यत्वमर्थः, किन्तु सहचारमात्रं, अन्यथा अन्वयव्याप्तेरेव गमकतया व्यतिरेकव्याप्त्युपन्यासेऽर्थान्तरप्रसङ्गात्, वीप्सितयत्पदद्वयेन सहासत्व-तदन्यत्वादिविरुद्धरूपाभ्यामधिक-

ग्यांदेव व्याप्तिस्तत्र न वीप्सा केवलान्वयिन्यभेदानुमाने च वीप्सायामपि व्यभिचारतादवस्थ्यमिति तु वयं, वीप्सा च यत्पदे न तु तत्पदेऽपि विरूपोपस्थितयो-रपि तत्पदेन परामर्शाद्बुद्धिस्थवाचकत्वादिति न व्युत्पत्तिविरोधः, यथा "यद्यत् पापं प्रतिजहि जगन्नाथ

---

रणद्वयोपस्थितौ अन्वयतोव्यतिरेकतश्च सहचारद्वयोरेव तादृशा-धिकरणत्वान्तर्भावेन व्यभिचारशङ्कानिवृत्तिद्वारा गमकतौपयिक-त्वेन तदुपन्यासेऽर्थान्तरस्यायोगात्। यो यो धूमवान् स वह्नि-मानित्यादौ महानसं तद्भिन्नश्च धूमवत् महानसं तद्भिन्नश्च वह्नि-मदित्यादिक्रमेणैवान्वयबोधादित्याचार्य्याणां मतमुपन्यस्यति, 'अत्र चेति, 'व्यभिचारवारणाय' तज्ज्ञानवारणाय इत्यर्थः, तथाच उदाहरणवशात् महानसे तदन्यस्मिंश्च सामानाधिकरण्यभानेन व्यभिचारज्ञानाभावात् मानसोव्याप्तिग्रह इत्यर्थः, समानविषयत्वेन विरोधित्वमित्याशयः। 'आहुरित्यनेन सूचितमस्वरसवीजं स्वय-मेव प्रकाशयति, 'यत्र चेति, 'च:' त्वर्थः, 'व्याप्तिः' व्यभिचारवि-रहः, 'न वीप्सेति स्यादिति शेषः, कुत्र न वीप्सा अर्हणीया इत्यत: 'केवलेति तथाचेदं प्रमेयं द्रव्याभिन्नं वा गगनत्वादित्यादौ हेतुमति साध्यव्यभिचारासम्भवात् तत्रत्योदाहरणे वीप्साप्रवेशोव्यर्थः स्यादस्माकन्तु गमकतोपयुक्तस्य व्यापकत्वस्य बोधकत्वेनैव तत्सार्थक्यं, "उदाहरणेन धूमव्यापकता वह्नेरेवोपदर्श्यते" इति परामर्शग्रन्थे

नमस्य तन्म इत्यत्र[1]। इदञ्च साध्य-साधनोभयाश्र-यविकलानुपदर्शितान्वय-विपरीतोपदर्शितान्वयानुप-दर्शितव्यतिरेक-विपरीतोपदर्शितव्यतिरेकभेदादाभा-सरूपमिति।

---

एव स्फुटतरमभिधानादिति भावः। यत्र साधनस्यानेकमधिकरणं तत्रापि यो यो धूमवान् सोऽग्निमानित्यादौ वीप्सया व्यभिचारश-ङ्कानिरसनं दुर्घटं, वीप्सितयत्पदाभ्यां महानसं तद्भिन्नञ्च धूमवत् वह्निमच्चेति बोधनेऽपि धूमवान् कश्चित् वह्न्यभाववानित्येवं व्यभिचारशङ्के बाधकाभावादित्याह, 'वीप्सायामपीति, समान-प्रकारकत्वेनैव विरोधित्वादिति भावः। ननु यदि वीप्सितयच्छब्देन विधेयधर्मस्य उद्देश्यतावच्छेदकधर्मव्यापकत्वमात्रं प्रत्याय्यते न तु विरुद्धरूपाभ्यां अधिकरणद्वयं तदा पूर्ववाक्यगतयच्छब्दस्य तच्छब्द-साकाङ्क्षत्वानुरोधादेकमेव तत्पदं उदाहरणस्य घटकमस्तु तत्र वीप्सा विफला, अस्माकन्तु उपक्रान्ताभ्यां महानसत्व-तदन्यत्वादिवि-रुद्धरूपाभ्यामेकेन तच्छब्देन बोधयितुमशक्यत्वादेव तत्र वीप्सा-स्वीकारः, सकृदुच्चरितेत्यादिव्युत्पत्तेः[2] बलवत्त्वादित्यतस्तत्रेष्टापत्ति-माह, 'वीप्सा चेति, प्राचां मतेऽपि वीप्सितयत्पदोपक्रान्ताभ्यां विरुद्ध-रूपाभ्यामेकेनैव तत्पदेन परामर्शसम्भवात् तत्र वीप्सा विफलैव तैरपि बुद्धिस्थवाचकतदादिपदातिरिक्तस्थल एव सकृदुच्चरितेत्यादिव्युत्पत्तेः

---

(१) यद्यत् पापं प्रतिजग्राहीत्यत्रेति क०।

(२) सकृदुच्चरितः शब्दः सकृदर्थं गमयतीति व्युत्पत्तेरित्यर्थः।

ह्वीकर्त्तव्यत्वादित्याशयेनाह, 'विरुद्धरूपेति, 'तत्पदेन' एकेन, 'परामर्शात्' परामर्शसम्भवात्। नन्वेकेन तत्पदेन वीप्सितयत्पदोपक्रान्ताभ्यां विरुद्धरूपाभ्यां युगपद्बोधनं न दृष्टचरमतोभवभूतेः काव्यं[१] अत्र प्रमाणयति, 'यथेति हे जगन्नाथ मे मम यद्यत्पापं तत्प्रतिजहि नमस्य नतस्य नाशय इति वाक्यार्थः। अत्रेदं बोध्यं विरुद्धरूपाभ्यां प्रत्येकपदेन प्रत्येकबोधने यत्र तात्पर्य्यं तत्र तत्पदेऽपि वीप्सा बोध्या यथा "स स भूमिपाल इत्यादि[२] यादृशोदाहरणप्रयोगे नियमस्तादृशोदाहरणान्याह, 'इदञ्चेति साध्यविकलं, साधनविकलं, उभयविकलं, आश्रयविकलञ्चेति बोध्यं, 'विकलशब्देन सह सर्वत्रान्वयः। साध्यविकलं यथा शब्दोऽनित्योऽमूर्त्तत्वात् यद्यदमूर्त्तं तदनित्यं यथाकाशं,

---

(१) कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्त्ते
धुर्य्यां लक्ष्मीमथ मयि भृशं धेहि देव प्रसीद।
यद्यत् पापं प्रतिजहि जगन्नाथ नम्रस्य तन्मे
भद्रं भद्रं वितर भगवन् भूयसे मङ्गलाय॥
इति मालतीमाधवे भवभूतिः।

(२) सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिम्वरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः॥
इति रघुवंशे कालिदासः।

यां यां प्रियां प्रैक्षत कातराक्षीं
सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव॥
इति माघश्च।

साधनविकलं यथा शब्दोऽनित्योऽगुणत्वात् यो यो गुणत्ववान् सोऽनित्यः यथा घट इत्यत्र, उभयविकलं यथा शब्दोऽनित्योऽगुणत्वात् यथाकाशं, आश्रयविकलं यथा स्थिरोभावोऽनित्यः क्रम-यौगपद्याभ्यां रहितत्वात् यथा शशविषाणं कूर्मरोम वाजिविषाणञ्चेति, ‘अनुपदर्शितान्वयं’ यथा शब्दोऽनित्यः कृतकत्वात् यथा घट इत्यत्र उदाहरणानुल्लेखेन केवलदृष्टान्तमात्रकथनं, ‘विपरीतोपदर्शितान्वयं’ यथा यदनित्यं तत् कृतकं यथा घट इत्यत्र प्राक्साध्यवाचकपदोल्लेखेन विपरीतक्रमेण सहचारप्रतिपादनस्थले बोध्यं, ‘अनुपदर्शितव्यतिरेकं’ यथा जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्त्वादिति व्यतिरेकिप्रयोगे साध्याभाव-साधनाभाववाचकपदानुल्लेखेन बोध्यं, ‘विपरीतोपदर्शितव्यतिरेकं’ यथा यत्प्राणादिमत्त्वरहितं तन्निरात्मकं यथा घट इत्यत्र साधनाभाववाचकपदस्य प्राङ्निर्देशेन बोध्यं। ननु विपरीतान्वयव्याप्त्युपदर्शनेऽपि प्रकृतविवक्षितव्याप्त्यनुपदर्शनादनुपदर्शितान्वयमेव कथं स्वातन्त्र्येण तस्योपन्यासः एवं विपरीतोपदर्शितव्यतिरेकस्यापीति चेत् । न । व्याप्त्यन्तरोपदर्शनेन विपरीतोपदर्शितव्याप्तिकं, यत्र कापि व्याप्तिर्न प्रदर्श्यते तदनुपदर्शितव्याप्तिकं, एवमनुपदर्शितव्यतिरेकमिति भावः। उदाहरणाभासस्तु व्याप्तिग्रहाननुकूलतया अर्थान्तरविधया दोषः विभाजकसूत्रस्थचशब्देन समुच्चितो वा, स्वतन्त्रनिग्रहस्थानान्येतान्यपि यथायथं बोध्यानि ।

केचित्तु ‘इदञ्चेत्यादि, अयं धूमवान् वह्नेरित्यादौ साध्य-साधनयोरन्वयव्याप्तिविकलत्वात् यो यो वह्निमान् स धूमवान् इत्युदाहरणमाभासः, अयं वाच्यः प्रमेयत्वादित्यादौ यो यो न प्रमेयः स

उदाहरणानन्तरम्भवतु व्याप्तिस्तथापि व्याप्तं किं पक्षे वर्त्तते न वेत्याकाङ्क्षायां व्याप्तस्य पक्षधर्मत्वप्रद-

---

न ज्ञेयः इत्युदाहरणं अनुपदर्शितसाध्य-साधनान्वयव्याप्तिकत्वादाभासं, पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ यो यो वह्निमान् स धूमवानित्युदाहरणं वैपरीत्यक्रमेणोपदर्शितान्वयव्याप्तिकत्वादाभासं, अयमेतद्घटाभिन्नः एतद्घटत्वादित्यादौ यो य एतद्घटत्ववान् स एतद्घटाभिन्न इत्युदाहरणं अनुपदर्शितव्यतिरेकव्याप्तिकत्वादाभासं, एवं तत्रैव यो य एतद्घटत्वाभाववान् स एतद्घटाभिन्नत्वाभाववानित्युदाहरणं विपरीतक्रमेणोपदर्शितव्यतिरेकव्याप्तिकत्वादाभासमित्यर्थः, इत्यञ्च दृष्टान्तस्य उदाहरणाघटकत्वेऽपि न क्षतिरिति मन्तव्यम् ।

अतएव प्रकृतहेतुक-प्रकृतसाध्यसिद्ध्यौपयिकव्याप्तिप्रमाया अजनकत्वमेव उदाहरणस्याभासताप्रयोजकं पञ्चविधभेदोक्तिस्तु(१) प्रपञ्चार्थमित्यवधेयमिति व्याचक्षुः ।

'उदाहरणेति तथाच व्याप्तोहेतुः पक्षे वर्त्तते न वेत्याकाङ्क्षायां व्याप्याश्रयस्य पक्षधर्मत्वं विधीयत इत्यर्थः। वस्तुतोव्याप्तं किमित्यादेः पक्षः साध्यव्याप्यप्रकृतहेतुमान्न वेत्याकाङ्क्षायां तात्पर्य्यं तस्या एव पक्षधर्मिकान्वयबोधजनकोपनयनिवर्त्त्यत्वादिति ध्येयम् । 'अनुमितीत्यादि प्रकृतहेतुकप्रकृतसाध्यकानुमित्यौपयिकव्याप्तिविशिष्टहेतुमत्तया प्रकृतपक्षबोधकावयवत्वमुपनयत्वमित्यर्थः, यथाश्रुते तु शाब्दपरामर्शस्य व्याप्यत्वदभेदविषयकस्य संयोगेन पक्षे व्याप्याप्रकार-

---

(१) एवम्बिधभेदोक्तिस्त्विति घ० ।

र्शनायोपनयः, तथानुमितिकारणतृतीयलिङ्गपरामर्श-जनकावयवत्वमुपनयत्वमिति सामान्यलक्षणं, साध्य-व्याप्यविशिष्टपक्षबोधकावयवत्वं साध्याभावव्यापका-भावप्रतियोगिमत्पक्षबोधकावयवत्वञ्च विशेषलक्षण-द्वयम्, उदाहरणान्त एव प्रयोग इति न वाच्यं तृती-

---

कस्यानुमितिहेतुत्वाभावादसङ्गतेः, अनुमितिकारणव्यापारसमाना-कारज्ञानजनकावयवत्वमुपनयत्वमित्यपि कश्चित्। 'सामान्यलक्षणं' अन्वय्युपनय-व्यतिरेक्युपनयसाधारणसामान्यलक्षणमित्यर्थः, 'साध्य-व्याप्येति साध्यान्वयव्याप्तिविशिष्टेत्यर्थः, 'साध्याभावेति साध्यीयव्यति-रेकव्याप्तिविशिष्टप्रकृतहेतुमत्तया पक्षबोधकावयवत्वमित्यर्थः। 'अर-न्मीमांसकमतं निरस्यति, 'उदाहरणान्त एवेति उदाहरणादिचि-कस्यैव प्राभाकरादिनव्यमीमांसकानां सम्मतत्वादिति ध्येयं। 'तृती-यलिङ्गपरामर्शेत्यस्य विवरणं 'व्याप्ति-पक्षधर्मतावगाहिन इति, 'अवयवान्तरात्' उपनयभिन्नावयवान्तरात्। ननु मीमांसकमते व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताया ज्ञानं नानुमितिहेतुरतस्तदलाभो न क्षतिकर इत्यत आह, 'तदनभ्युपगमेऽपीति, 'अलाभादिति व्याप्यता-वच्छेदकरूपेण पक्षधर्मत्वग्रहस्यानुमितिहेतुतायाः परैरपि स्वीका-रादिति भावः। 'हेतुवचनात्' हेत्ववयवात्, 'को हेतुरित्यस्य कुतः इत्याकाङ्क्षायां तात्पर्य्यं, अन्यथा धूमादित्युत्तरस्य धूमधर्मिकहेतु-त्वबोधाजनकत्वेन तस्य को हेतुरित्याकाङ्क्षानिवर्त्तकत्वानुपपत्तेः पञ्चम्यातिरिक्तसुवर्थस्य प्रकृत्यर्थविशेष्यत्वनियमादिति ध्येयं। 'हेतुत्व-

र्थलिङ्गपरामर्शस्य व्याप्ति-पक्षधर्म्मतावगाहिनोऽवयवा-
न्तरादलाभात् तदनभ्युपगमेऽपि पक्षधर्म्मताया अला-
भात्। न च हेतुवचनादेव तदवगमः, तस्य को हेतु-
रित्याकाङ्क्षायां प्रवृत्तत्वेन हेतुस्वरूपोपस्थापकस्यात-

---

द्रूपेति लिङ्गनिष्ठहेतुतामात्रबोधकस्येत्यर्थः, 'अतत्परत्वात्' पक्षध-
र्म्मत्वाबोधकत्वात्। न चैवं पर्वतोद्रव्यं महानसत्वादित्याद्यपि प्रयोगः
स्यादिति वाच्यं। तदुत्तरपञ्चम्यर्थव्याप्यत्वान्वितसाध्यस्य हेत्वधि-
करणवृत्तिसाध्यताघटकसम्बन्धेनैव पक्षधर्मिकान्वयबोधं प्रति साका-
ङ्क्षत्वादिति भावः। प्रकृते, 'वादिवाक्यादिति हेत्वन्तवाक्यात्पक्षे
लिङ्गव्याप्यसाध्यवत्त्वप्रतीतौ यो यज्ज्ञाप्यसाध्यवान् स तद्वान्
इत्यनुमानादेव पक्षस्य हेतुमत्त्वावगम इत्यर्थः, 'तदर्थस्य' हेत्व-
न्तवादिवाक्यार्थस्य, 'असिद्धत्वेन' प्रमितत्वेनानिश्चिततयेत्यर्थः, परेषां
मते अनुमितौ प्रमितसाध्याभाववत्त्वादिनिश्चयस्य विरोधित्ववत्प्रमि-
तहेतुमत्तानिश्चयस्यैव कारणत्वादिति भावः। 'अन्यथेति प्रति-
ज्ञावाक्यात् पक्षस्य साध्यवत्त्वावगतौ तेनैव हेतुना तज्ज्ञापकहेतुम-
त्त्वादेरप्याक्षेपसम्भवेन हेत्ववयवादेरपि वैयर्थ्यापातादित्यर्थः।

केचित्तु 'वादिवाक्यादिति, इदं पदं विशिष्टपरामर्शतात्पर्य्यकं
तत्तात्पर्य्यकतया वादिप्रयोज्यत्वात् इत्यनुमानादेव विशिष्टपरामर्श-
लाभात् किमुपनयेनेत्यर्थः, 'तदर्थस्येति, तथाच वादिवाक्यार्थस्या-
प्रामाण्यज्ञानास्कन्दितत्वेन उभयवाद्यसिद्धतया अनाक्षेपकत्वं तस्येति
भावः, इति व्याचक्षुः।

त्परत्वात्, वादिवाक्यादेवाक्षेप इति चेत्। न। तदर्थ-स्यासिद्धत्वेनानाक्षेपकत्वात् अन्यथा प्रतिज्ञावाक्यादेव सर्व्वाक्षेपेऽवयवान्तरविलयात्। प्रतिपाद्यानां स्वत एव तदवगम इति चेत्, न, तेषां व्युत्पन्नाव्युत्पन्नतया सर्वेष

शङ्कते, 'प्रतिपाद्यानामिति प्रतिवादिनामिति शेषः, 'स्वत एव' शब्दं विनैव, 'तदवगमः' पक्षस्य हेतुमत्त्वावगमः, पक्ष-हेत्वोरुपस्थितौ प्रतिज्ञास्थल इव तयोर्विशिष्टोपनीतभानसम्भवादिति भावः। यत्र पूर्व्वं यदवगतं तत्रैव तस्योपनीतभानं त्वया वाच्यं अन्यथा अन्य-थाख्यात्यापत्तेः, तथाच यस्य प्रतिवादिनः साधनवत्तया पूर्वं पक्षो-नोपस्थितस्तस्य उक्तक्रमेण स्वतः पक्षस्य हेतुमत्त्वप्रत्यो न सम्भवती-त्याशयेन समाधत्ते, 'तेषामिति, 'व्युत्पत्तिः' पक्षधर्मिकहेतुम-त्त्वज्ञानाधीनहेतुस्मृतिः, परनये तस्या एव पक्षधर्मिकहेतुमत्त्वोपनीत-भानहेतुत्वादिति भावः। साधनाद्युपनीतभानं प्रति साधनाद्युपस्थि-तिमात्रस्य हेतुत्वमिति मतेऽप्याह, 'प्रतिपादकेनेति वादिनेति शेषः, 'स्वव्यापारस्य' व्याप्तोहेतुः पक्षे वर्त्तते न वेत्याकाङ्क्षानिवर्त्तकवाक्यस्य, 'निर्वाहयितुं' सम्पादयितुमौचित्यादित्यर्थः, 'प्रतिपादयितुमिति क्वचित् पाठः तत्र प्रापयितुमौचित्यादित्यर्थः, 'अन्यथा' प्रतिपा-द्याकाङ्क्षानिवर्त्तकवाक्यस्य वादिनानभिधाने, 'अवयवान्तरे' हेत्वादौ, 'एवं प्रसङ्गः' अनभिधानप्रसङ्गः,(१) प्रतिज्ञोत्तरं कुतः इत्याकाङ्क्षानि-वर्त्तकस्यापि वाक्यस्यानावश्यकत्वादिति भावः।

(१) अयं प्रसङ्गः अनभिधानप्रसङ्गः इति ख०, ङ०।

तदसम्भवात् प्रतिपादकेन स्वव्यापारस्य निर्वाहयितु-मुचितत्वाच्च अन्यथावयवान्तरेऽप्येवं प्रसङ्गादिति ।

उपनयानन्तरं निगमनं तच्चानुमितिहेतुलिङ्ग-परामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानकारणव्याप्ति-पक्षताधीप्रयु-क्तसाध्यधीजनकं वाक्यम्। न च व्याप्ति-पक्षधर्म्म-

---

परे तु 'प्रतिपाद्यानां' श्रोतॄणां, 'स्वत एव तदवगमः' पर-प्रयुक्ततत्तदर्थज्ञापकपदं विनापि स्वकल्पितशब्दादनुमानाद्वा व्याप्ति-पक्षधर्मत्वावगम इत्यर्थः, 'तेषामिति प्रतिपाद्यानामित्यर्थः, 'व्युत्प-न्नेति, तथाच ये व्युत्पन्ना भवन्ति तान् प्रति आपातत उपनय-प्रयोगो न क्रियतां ये तु तादृशा न भवन्ति तान् प्रति अवश्यं उपनयादिप्रयोगः करणीय इत्यर्थः। व्युत्पन्नं प्रत्येव उपनयः कर्त्तव्य इत्याह, 'प्रतिपादकेनेति, यदि च व्युत्पन्नतया तस्य स्वत-एव तदर्थावगम इति नोपनयापेक्षा इति ब्रूयात्तदाप्याह, 'अन्यथेति, इति प्राहुः ।

'उपनयेति उपनयनिरूपणानन्तरं निगमनं निरूप्यत इत्यर्थः, एतेनावसरसङ्गतिः सूचितेति ध्येयं । 'अनुमितीत्यादि, निग-मनसदृशस्य उदासीनवाक्यस्य वारणाय 'कारणान्तं प्रागुक्तरीत्या प्रकृतन्यायावयवार्थकं, प्रतिज्ञादिवारणाय 'व्याप्तीत्यादि, 'प्रयुक्तत्व' ज्ञाप्यत्वं, तथाच व्याप्ति-पक्षधर्मताविशिष्टप्रकृतहेतुधीज्ञाप्यत्वप्रकार-कप्रकृतसाध्यधीजनकत्वमर्थः, धूमाद्वह्निमत्पक्षधर्मायं वह्निमान् धूमा-दित्यादौ प्रतिज्ञादिव्युदासाय विशिष्टान्तं, अत्र तादृशहेतुज्ञान-

तयोश्चतुर्भिरेवावयवैः पर्य्याप्तेः किं तेनेति वाच्यम्। अबाधितासत्प्रतिपक्षितत्वयोरलाभे चतुर्णामप्यपर्य्यवसानात्। अथाभिधानाभिधेययोर्व्याप्ति-पक्षधर्म्मतावल्लिङ्गप्रतिपादनादेव पर्य्यवसानेनावयवान्तराणां निराकाङ्क्षत्वं विपरीतशङ्कानिवृत्तेरपि तत एव लाभात्

---

निरूपिताखण्डजन्यत्वनिवेशाच्च व्याप्तिपदवैयर्थ्यं, वह्निव्याप्ति पक्षधर्म्मताविशिष्टधूमाद्वह्निमानयं वह्निमानित्यादिका तु प्रतिज्ञा प्रकृतहेतौ पक्षधर्म्मतां बोधयन्त्यपि न प्रकृतव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म्मतां बोधयतीति न तत्राति प्रसङ्गः। वस्तुतोव्याप्ति-पक्षधर्म्मतापदयोर्वैकल्पिकोपादानात् लक्षणद्वये तात्पर्य्यं, वह्निव्याप्तिविशिष्टेत्यादिका तु न प्रतिज्ञा सम्प्रदायविरोधादिति तत्त्वं। 'चतुर्भिः' प्रतिज्ञाद्यैः, 'पर्य्याप्तेः' प्राप्तेः, 'अपर्य्यवसानादिति अनुमितिसामग्र्यसम्भवादित्यर्थः। 'पर्य्याप्तेः' ज्ञानजनकत्वात्, 'अपर्य्यवसानात्' अनुमित्युपधायकज्ञानाजनकत्वादित्यर्थः, इति कश्चित्। ननु प्रतीत्यनुपपत्ति-प्रतीतानुपपत्त्योरभावेनावयवान्तरेण सह निगमनस्य आकाङ्क्षाविरहः(१) इत्याशङ्कते, 'अथेति, 'अभिधानं' प्रतीतिः व्याप्ति-पक्षधर्म्मताविशिष्टलिङ्गानुभव इति यावत्, 'अभिधेयं' तथाभूतलिङ्गं, 'निराकाङ्क्षत्वमिति तथाच चतुर्णामवयवानां व्याप्ति-पक्षधर्म्मताप्रतिपादनेन

---

(१) अवयवान्तरार्थविशेष्यक-निगमनार्थप्रकारकबोधजनकतावच्छेदकीभूतानुपूर्व्वीमत्त्वं नास्तीत्यर्थः।

अन्यथा निगमनेनापि तदवारणात्, न हि तत् विशेष-दर्शनमनाहृत्यैव तन्निवर्त्तकम्। सिद्धनिर्देशतया वारय-तीति चेत्। न। स्वरूपमात्राभिधानात् साध्यत्वानुपस्थितौ तस्मादिति हेतुविभक्त्यनन्वयप्रसङ्गाच्चेति चेत्। न। व्या-

---

पर्य्यवसानात् निगमनाकाङ्क्षा तेषां नास्तीत्यर्थः। ननु साध्याभाववत्प-क्षज्ञानसत्त्वे तादृशज्ञानसत्त्वेऽप्यनुमितिसामग्र्यसम्पादनात् तत्सम्पत्त्यर्थं निगमनाकाङ्क्षास्ति तेषामित्यत आह, 'विपरीतेति पक्षादेः साध्याभावादिमत्त्वशङ्कानिवृत्तेरपीत्यर्थः, 'तत एव' व्याप्ति-पक्षधर्म्म-ताविशिष्टलिङ्गप्रतिपादनादेवेत्यर्थः, 'तत एव' प्रतिज्ञाजन्यज्ञानादेव इत्यर्थ इति कश्चित्। 'निगमनेनापीति, अबाधितत्वादेरपदार्थतया निगमनेन तस्य बोधयितुमशक्यत्वादिति भावः। 'तत्' निगमनं, 'तन्निवर्त्तकं' विपरीतशङ्कानिवर्त्तकं, शङ्कते, 'सिद्धनिर्देशतयेति सिद्धत्वविशिष्टस्य बोधकतया निगमनं विपरीतशङ्कां वारयतीत्यर्थः। सिद्धत्वमत्र प्रमाणसिद्धत्वं वा, हेतुविभक्तिसाकाङ्क्षत्वरूपस्य साध्य-स्याभाववत्त्वं वा, हेतुजिज्ञासाविरोधिबोधविषयत्वं वा प्रथमे 'स्वरूपमात्रेति अयं तस्माद्वह्निमानित्यादौ वह्न्यादिपदेन वह्न्या-दिस्वरूपमात्रस्याभिधानादित्यर्थः। द्वितीये 'साध्यत्वेति वह्न्यादौ हेतुविभक्तिसाकाङ्क्षत्वस्यानुपस्थितौ तस्मादित्यादिहेतुविभक्त्यर्थस्य वह्न्यादावनन्वयप्रसङ्गादित्यर्थः। शाब्दबोधमात्रं प्रत्येवाकाङ्क्षाधियः कारणत्वादिति भावः। 'तदभावेति तयोर्बाधितत्व-सत्प्रतिपक्षि-तत्वयोः अभावबोधक इत्यर्थः, 'समीहितानिर्व्वाहात्' अनुमिति-

त्तिपक्षधर्म्मताज्ञानेऽपि बाध-सत्प्रतिपक्षबुद्धेः साध्यज्ञा-
मानुत्पत्तिदर्शनात् तदभावाबोधने समीहितानिर्व्वा-
हात् । अथ बाधादिविरहस्य प्रयोजकत्वं न तु तद्बो-
धस्य मानाभावादसिद्धेश्च इति किमर्थं बाधादिविरहो-

---

रूपफलानिर्व्वाहात्, अत्र पक्षादेः साध्यादिमत्त्वस्य उपनयान्तैः चतु-
र्भिरेव सिद्धत्वात् पुनर्निगमनेन तदभिधानस्य "सिद्धे सत्यारम्भो-
नियमाय" इतिव्युत्पत्तिबलेनाबाधितत्वासत्प्रतिपक्षितत्वबोधकत्वं, स
च बोधो यदि शाब्दस्तदा निगमनस्थतच्छब्दस्य व्याप्ति-पक्षधर्म्म-
ताविशिष्ट इवाबाधितत्वासत्प्रतिपक्षितत्वविशिष्टेऽपि हेतौ शक्त्या
निरूढलक्षणया वा सम्पादनीयः इतरथा तादृशतच्छब्दोपस्था-
पितेन व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म्मत्वेन हेतुनैवाबाधितत्वासत्प्रतिपक्षितत्व-
योरानुमानिकोबोधः प्रकृतहेतौ द्रष्टव्यः, 'बाधादिविरहस्येति बाधा-
दिनिश्चयाभावस्येत्यर्थः, 'तद्बोधस्य' बाधाद्यभाववत्त्वबोधस्य । अथान्व-
याद्यनुविधानमेव मानमत आह, 'असिद्धेश्चेति अन्वयाद्यनुविधा-
नासिद्धेश्चेत्यर्थः, 'यदवगमे' यन्निश्चये, तथाचानुमितिर्बाधाभाव-
ज्ञानजन्या बाधनिश्चयप्रतिबध्यत्वादित्यनुमानमेव अबाधितत्वादि-
ज्ञानस्य हेतुतायां मानमिति भावः । ननु बाधः पर्व्वते वह्न्यभाव-
रूपः तदभावोवह्निः पर्व्वते तज्ज्ञानस्य पर्व्वतोवह्निमान् इति
निश्चयात्मकस्य सत्त्वे कथं ततोऽनुमितिः । न च बाधाभावस्य
वह्निरूपस्य वह्न्यभावाभावत्वेन ज्ञानं कारणं तच्च न निश्चयात्मकं एवं
वह्न्यभाववत्त्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वज्ञानं प्रतिबन्धकं तादृशविशेष्यत्वा-

बोधनीय इति चेत्। न। यदवगमे सति यन्न भवति तत्तदभावज्ञानसाध्यमिति व्याप्तेः। न चानन्वयः, तस्मादित्यन्वयबलादेव हेत्वनाकाङ्क्षितत्वलक्षणसिद्धत्वज्ञानात् न त्वन्वयात् प्राक्। इह केचित् यथा तस्मादिति सर्व्वं-

---

भावज्ञानं हेतुः तच्च निगमनसाध्यं सिद्धत्वात्मकमिति वाच्यं। तस्य कारणत्वे मानाभावात् स्वीयस्थले व्यभिचाराच्च इति चेत्। न। यदवगमे यन्न भवति तत्तदभावज्ञाने सत्येव सम्भवतीति प्रयोक्तृतात्पर्य्यात्, तथाच यज्ज्ञानं यत्प्रतिबन्धकं तदभावज्ञाने तज्ज्ञानप्रतिरोधेन तदवश्यं भवतीति तस्य कारणत्वे मानाभावात्, निगमनादेव बाधविरहो यदा बोध्यते तदा प्रतिबन्धकबाधज्ञानाभावे अनुमितिरविकलैव स्यात् इति, इत्यञ्च बाधज्ञानप्रतिबन्धकद्वारा बाधाभावज्ञानस्य प्रयोजकत्वं न तस्य कारणत्वं अग्रे च साध्यमित्यस्य प्रयोज्यत्वमर्थो बोध्य इति रमणीयं[(१)] उक्ताबाधितत्वज्ञानमन्वयव्यतिरेकाभ्यां स्वार्थातिरिक्तस्थले हेतुस्तच्च निगमनाद्भवतीति यथाश्रुतग्रन्थ एव साधुरित्यपि कश्चित्। तृतीयमाशङ्कते, 'न चेति हेतुजिज्ञासाविरोधिबोधविषयत्वरूपस्य सिद्धत्वस्यापदार्थत्वेन साध्यांशे तदन्वयायोग इत्यर्थः, उक्तरूपं सिद्धत्वं न निगमनेन बोध्यते किन्तु ततः साध्यव्याप्त्यादिविशिष्टलिङ्गज्ञाप्यत्वप्रतीतौ तेनैव हेतुना प्रकृतसाध्यस्य निरुक्तसिद्धत्वमनुमीयते इत्याशयेन परिहरति, 'तस्मादि-

---

(१) विभावनीयमिति ड०।

नाम्ना हेतोः परामर्शः पूर्व्वोक्ताशेषरूपलाभाय तथा साध्यांशस्यापि तथेति सर्व्वनाम्ना सिधस्थल इव विरोधादिवारणाय युक्त इत्याहुः । तन्न । तथेति स्वरूपे प्रकारे सादृश्ये वा, आद्ये तथाचायमिति प्रक्रमात्

---

त्यन्वयबलादिति, 'हेत्वनाकाङ्क्षितत्वं' हेत्वाकाङ्क्षाविरोधिविषयत्वं, 'प्राक्' अनुत्तरं, इदञ्च निगमनात् सिद्धत्वज्ञानं भवतीत्यभिप्रायेण । हेत्वन्वयबोधानन्तरं मानससिद्धत्वज्ञानं भवति न तु तस्मात्पदार्थभाने तत्प्राक्काले वा इत्याशयेन परिहरति, 'तस्मादिति कश्चित् ।

तस्मात्तथेतिनिगमनाकारं ये वदन्ति तन्मतं दूषयितुमुपन्यस्यति, 'इह केचिदिति पूर्व्वोक्तं व्याप्ति-पक्षधर्मतात्मकं यद्धेतोरशेषरूपं तल्लाभायेत्यर्थः, 'सिद्धस्थल इवेति चैत्रः पक्षत्वयमपि तथेत्यादिलोकप्रसिद्धस्थल इवेत्यर्थः । 'सिद्धं' पक्षादि, तथाच वह्निव्याप्यधूमवानयमित्यत्र यथा इदमादिप्रसिद्धपक्षस्योपस्थापनं तद्वदिहापीत्यन्ये । 'विरोधादीति अयं तस्माद्वह्निमानित्युक्तौ हि पक्षे साधनीयस्य[१] साध्यवत्त्वस्यालाभेन उपसंहारविरोधः साध्यवद्भेदप्राप्त्या अर्थान्तरञ्च स्यात् अतस्तद्वारणाय 'साध्यांशस्यापि तथेति सर्वनाम्ना युक्तः परामर्श इत्यन्वयः, 'स्वरूप इति सादृश्यपदान्तरप्रयुक्तप्रक्रान्तस्वरूप इत्यर्थः, 'प्रकार इति अव्यवहितपूर्वबुद्धेर्विशेष्यत्वं सति प्रकार इत्यर्थः, तथासत्येवाग्रिमग्रन्थसङ्गतेरिति ध्येयं ।

---

(१) बोधनीयस्येति क० ।

तथेति हेतुमानित्यर्थः स्यात् तथा चानन्वयः, न हि हेतुमत्त्वादेव हेतुमत्त्वमित्यन्वितं, न द्वितीयः, सामान्येन पक्षस्यापि अन्वयव्याप्तौ प्रवेशात् तत्प्रकारान्वयस्तत्रैवेत्यनन्वयात्, अतएव न तृतीयोऽपि, अभेदानु-

---

'सादृश्यइति अव्यवहितपूर्वबुद्धिविशेष्यस्य सादृश्य इत्यर्थः, 'न हीति, अभेदेनोद्देश्यविधेयभावस्येव व्याप्य-व्यापकभावस्याप्यव्युत्पन्नत्वात् धूमो धूम इतिवत् धूमाद्धूमवान् इति शाब्दधियोऽपि असत्त्वादित्यभिमानः। वस्तुतः 'अनन्वय इत्यस्य उपनयार्थे निगमनार्थस्याप्यनन्वयप्रसङ्ग इत्यर्थः, 'हेतुमत्त्वादित्यस्य ल्यब्लोपे पञ्चम्या हेतुमत्त्वं धर्मितावच्छेदकीकृत्येत्यर्थकत्वात् दण्डवान् रक्तदण्डवान् इत्यत्रेव साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्षः हेतुव्याप्यहेतुमान् इत्यन्वयेऽपि उद्देश्यतावच्छेदक-विधेययोरैक्येन निराकाङ्क्षत्वस्वीकारादिति ध्येयं। 'सामान्येन' साधनाधिकरणत्वादिना, 'तत्प्रकारेति निगमनप्रकारीभूतस्य तस्मादित्यस्य, 'अन्वयः', 'तत्रैव' पक्ष एव, 'इत्यनन्वयात्' अयोग्यत्वादित्यर्थः, पक्षस्य लिङ्गाव्यापकत्वेन तज्ज्ञाप्यत्वबाधादिति भावः। 'अभेदानुमाने चेति, 'च:' केवलान्वयिनीत्यनन्तरं योज्यः, तथा च पर्वतः पर्वताभिन्नः पर्वतत्वादित्यादौ पर्वतसादृश्यस्य पर्वतत्वाव्यापकत्वेन पर्वतत्वाज्ज्ञाप्यतया केवलान्वयिपक्षके च प्रमेयं वह्निमत् धूमादित्यादौ पक्षीभूतस्य प्रमेयस्य सादृश्यस्याप्रसिद्धा तदुभयस्थले तस्मात् तथेति निगमनेन लिङ्गज्ञाप्यत्वविशिष्टस्य पक्षसादृश्यस्य बोधयितुमशक्यत्वादित्यर्थः, पक्षसादृश्यस्य तद्भेदगर्भत्वादिति भावः।

माने चान्वयिनि तस्मात्तथेति सादृश्याभावात् वह्नि-
नाश्च प्रक्रमे विशेष्यानन्वयात्, वादिवाक्ये च योग्यता-
न्वयेऽतिप्रसङ्गात् तस्मादित्यत्र तु विभक्त्यर्थानन्वयादेव

---

अन्ये तु 'सामान्येन' व्याप्त्यन्तर्निविष्टसामानाधिकरण्यघटक-त्वेनेत्यर्थः, 'अत एव' व्याप्त्यन्तर्निविष्टसामानाधिकरण्यघटकतया पक्षस्योपस्थापनादेवेत्यर्थः, 'अभेदानुमाने चान्वयिनीति, विशेषण-विशेष्यभावेनान्वयात् घटो द्रव्याभिन्नः द्रव्यत्वादित्यादिस्थलोपसंग्रहः अन्वयिनीत्युपादानाच्च पक्षाघटितव्यतिरेकव्याप्तिवारणं व्यतिरे-कव्याप्तिबोधकोपनयस्थपदार्थपरामर्शकतत्पदेन पक्षपरामर्शासम्भवा-दिति व्याचक्षुः ।

ननु तथापदं बुद्धिस्थत्वेनैव वह्निं बोधयिष्यतीति तत्रैव तस्मा-दित्यस्यान्वयोभविष्यतीत्यत आह, 'वह्निनाश्चेति, 'प्रक्रमे' बुद्धिस्थत्वे, 'विशेष्येति साध्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्ने तस्मादित्यस्य अन्वयायो-गादित्यर्थः । ननु साध्यवह्निभिन्ने बुद्धिस्थे लिङ्गव्याप्यत्वस्य बाधादेव प्रकृतसाध्ये तस्मादित्यस्यान्वयोभवितेत्यत आह, 'वादिवाक्ये चेति, 'अतिप्रसङ्गादिति इदं स्नेहवत् गुणादित्यपि प्रयोगापातादित्यर्थः, स्नेहस्य जलान्यवृत्तिगुणव्याप्यत्वबाधकवशादेव जलान्यावृत्तिगुणव्या-प्यत्वमादाय तादृशवाक्यस्य प्रामाण्यसम्भवादिति भावः । यद्वा ननु तथाशब्दस्य पूर्वप्रक्रान्तपरत्वेन साध्य एव तादृशि तस्मादित्यस्या-न्वयोभवितेत्यत-आह, 'वह्निनाश्चेति, 'विशेष्येति साध्यस्यैव व्याप्या-

नियमः तस्मादनित्य इत्यभिधाने विशिष्य सिद्धताव-गम्यते पूर्व्वं साध्यतयोक्तस्य समर्थहेतुसम्बन्धेन पुन-रुत्कीर्त्तनात् अन्यथा तद्वैयर्थ्यात्। संशय-प्रयोजनादय-स्त्ववयवलक्षणाभावादेव नावयवाः किन्तु न्यायाङ्ग-

---

देरपि प्रक्रान्तत्वेन तत्रापि तस्मादित्यस्यान्वयप्रसङ्गादित्यर्थः। ननु व्याप्त्यादौ लिङ्गव्याप्यत्वस्य बाधादेव तत्र तस्मादित्यस्यान्वयो न भविष्यतीत्यत आह, 'वादिवाक्ये चेति, 'च:' अप्यर्थे, तथाच वादिवाक्ये योग्यतयान्वयेऽप्यतिप्रसङ्गात् पूर्वप्रक्रान्ते व्याप्तिघटक-प्रतियोगित्वादौ तस्मादित्यस्यान्वयप्रसङ्गादित्यर्थः, प्रतियोगित्वा-देरपि लिङ्गव्याप्यत्वसम्भवादिति भावः। यद्यपि पूर्वोपस्थितं साध्य-मेव विशेषतस्तथाशब्देन परामृष्टमित्युक्तौ न कश्चिद्दोषः, तथापि सादृश्यादिशक्तस्य तस्य वह्नित्वादिप्रकारेण बोधकतायामाधुनिक-लक्षणापत्तेर्नैव प्रकारोयुक्त इति ध्येयं। ननु तथाशब्दस्येव तच्छ-ब्दस्यापि पूर्वोपस्थितयावद्वस्तुपरामर्शकत्वसम्भवेन तस्मादित्यतोऽपि कुतः साधनव्याप्यत्वस्यैवावगतिरित्यत आह, 'तस्मादित्यचेति, तस्मतेऽपि उपस्थितपचादिव्याप्यत्वस्य प्रकृतसाध्ये बाधादेव तत्रो-पस्थितलिङ्गमात्रपरामर्शकत्वं तत्पदस्येति भावः। ननु तथाशब्दात् बुद्धिस्थत्वेन साध्यस्योपस्थितौ तत्र विशिष्टहेतुव्याप्यत्वस्यान्वये कोदोष इत्यत आह, 'तस्मादनित्य इत्यभिधाने चेति, 'च:' हेतौ, 'विशिष्य' साध्यतावच्छेदकरूपेण, 'सिद्धता' हेतुत्वनाकाङ्क्षितत्वं, 'अव-गतेः प्रकारमाह, 'पूर्वमिति, 'समर्थः' व्याप्ति-पक्षधर्मताविशिष्टो

तयोपयुज्यन्त इति नाधिक्यं, कण्टकोद्धारस्य च न सार्व्वत्रिकत्वं समयविशेषोपयोगित्वादिति ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डे अवयवनिरूपणं ।

---

हेतुः तज्ज्ञाप्यत्वेनेत्यर्थः, तथाच वह्निर्हेत्वनाकाङ्क्षितः स्वव्याप्यादिविशिष्टधूमज्ञाप्यत्वात्तादृशज्ञाप्यतयोपस्थितत्वाद्वेत्यादिक्रमेण वह्नित्वाद्यवच्छिन्नस्य सिद्धभाव इत्यर्थमेव बुद्धिस्थत्वेन साध्यस्य परामर्शकत्वं तथाशब्दस्य नोचितमिति भावः । अथ मास्तु सिद्धत्वस्य विशिष्यानवगमः ततः किमत आह, 'अन्यथेति तस्य निगमनस्य यर्थ्यादित्यर्थः । ननु साध्यसंशयप्रयोजनहेत्वाकाङ्क्षादीनामपि अवयवत्वात् तेषामपि विभागोयुक्त इत्यवयवानां पञ्चताभिधानमसङ्गतमत आह, 'संशयेति, 'प्रयोजनं' तत्त्वनिर्णयः, 'लक्षणेति, वाक्यत्वगर्भस्यावयवत्वस्य तत्रासत्त्वादिति भावः । 'उपयुज्यन्त इति प्रयोजनस्यापि स्वगोचरेच्छाद्वारैव न्यायोपयोगित्वं, तत्त्वबुभुत्सैवात्र प्रयोजनपदार्थः, 'कण्टकोद्धारस्येति को वह्निमान् कुतो धूमात् कथमस्य गमकत्वमित्यादिप्रश्नव्यञ्जककिम्पदस्तोमस्येत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये अवयवरहस्यं ।

---

# अथ हेत्वाभासनिरूपणं।

## अथ हेत्वाभासास्तत्त्वनिर्णय-विजयप्रयोजकत्वान्निरूप्यन्ते।

### अथ हेत्वाभासरहस्यं।

न्याय-तदवयवान् निरूप्य प्रसङ्गसङ्गत्या हेत्वाभासं(१) निरूपयितुं शिष्यावधानाय प्रतिजानीते,(२) 'अथेति न्याय-तदवययवयोर्निरूप-

(१) व्याप्ति-पक्षधर्म्मताविरहविशिष्टहेतुमित्यर्थः।

(२) अत्र वर्त्तमानकालाव्यवहितोत्तरकालकर्त्तव्यत्वप्रकारकबोधानुकूलव्यापारः प्रतिज्ञापदार्थः, "अथ हेत्वाभासास्तत्त्वनिर्णय-विजयप्रयोगकत्वान्निरूप्यन्ते" इति मूलमेव प्रतिज्ञा तत्र निरूप्यन्त इत्यत्र वर्त्तमानसामीप्यार्थकलट्प्रत्ययस्य वर्त्तमानकालाव्यवहितोत्तरकालीनत्वमर्थः, तस्य च निरूपणपदार्थेऽन्वयः, तथाच वर्त्तमानाकालाव्यवहितोत्तरकालीनं तत्त्वनिर्णय-विजयप्रयोजकत्वज्ञानजन्यजिज्ञासाधीनं यन्निरूपणं तद्विषयतावन्तः हेत्वाभासाः इति समुदितवाक्यजन्यशाब्दबोधः, तत्त्वनिर्णय-विजयप्रयोजकत्वादित्यत्र तज्ज्ञानजन्यजिज्ञासाधीनत्वं पञ्चम्यर्थः, निरूप्यन्त इत्यत्र कर्म्मवाच्यलट्प्रत्ययस्य विषयत्वरूपं कर्म्मत्वमर्थः, शिष्यसमवेतज्ञानानुकूलव्यापारोधात्वर्थः, शिष्यसमवेतज्ञानविषयतापन्नेषु हेत्वाभासेषु याचितमण्डनन्यायेन तादृशज्ञानानुकूलव्यापारविषयतान्वयः। केषाञ्चित् अन्तेवासिनां के हेत्वाभासा इति जिज्ञासया केषाञ्चिच्च के तत्त्वनिर्णय-विजयप्रयोजका इति जिज्ञासया हेत्वाभासनिरूपणात् हेत्वाभासत्वरूपप्रसङ्गस्य तत्त्वनिर्णय-विजयरूपैककार्य्यकारित्वरूपैककार्य्यानुकूलत्वस्य च अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकज्ञानविषयत्वात् अत्र सङ्गतित्वमिति विभावनीयं।

तत्रानुमितिकारणीभूताभावप्रतियोगियथार्थज्ञान-विषयत्वं, यद्विषयत्वेन लिङ्गज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्ध-

---

णानन्तरमित्यर्थः, 'हेत्वाभासाः' आभासीभूता हेतवो दुष्टहेतव इति यावत्, हेतुवदाभासन्त इति व्युत्पत्तेः, न तु हेतोराभासा-दोषविशेषाः 'ते चेत्यादिना हेतुविभागानुपपत्तेः। निरूपणप्रयोजनं दर्शयति, 'तत्त्वनिर्णयेति, अवास्तवकोटिनिश्चायकहेतौ दुष्टत्वज्ञाने वास्तवकोटिनिश्चयो भवतीति तत्त्वनिर्णयप्रयोजकत्वमिति भावः। स्वार्थ-वादयोरुक्त्वा जल्प-वितण्डयोराह,(१) 'विजयेति, तदिदं(२) उद्भावनद्वारा, परोक्तहेतौ दुष्टत्वोद्भावने तस्य निग्रहादिति भावः। एवञ्च तत्त्वनिर्णयादिलक्षणैककार्य्यानुकूलत्वमपि प्रकृते सङ्गतिः सम्भवति, यथा हि स्वीयसन्न्यायप्रयोगे तत्त्वनिर्णयोविजयश्च तथा परकीयहेतौ दुष्टत्वोद्भावनेऽपि तत्त्वनिर्णयोविजयश्चेति बोध्यं। हेत्वाभासरूपदोषवत्त्वं दुष्टत्वमिति दुष्टहेतुलक्षणं स्फुटमेवेति तदुपेक्ष्य तद्घटकमेव दोषं लक्षयति, 'तत्रेति, 'तत्र' निरूपणे, इदं हेत्वाभासत्वं हेतुदोषत्वमित्यन्वयि,

---

(१) स्वमतव्यवस्थापनं स्वार्थः, तत्त्वबुभुत्सोः कथा वादः, वास्तवकोटिकनिश्चयपूर्व्वकपरमतनिराकरणं जल्पः, परमतनिराकरणमात्रं वितण्डा अतएवोक्तं।

"स्वपक्षस्थापनाहीना विजिगीषोः कथा तु या।
सा वितण्डेति विज्ञेया वादिनिग्रहकारिणी" इति॥

(२) तस्य विजयप्रयोजकत्वमर्थः।

कत्वं, ज्ञायमानं सदनुमितिप्रतिबन्धकं यत् तत्त्वं वा हेत्वाभासत्वं। दृष्टाविशेषे हेत्वोरेवासाधारण-सत्प्र-

---

विषयत्वं सप्तम्यर्थः, 'अनुमितीति अनुमितिप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वमित्यर्थः, भवति च साध्याभाववान् पक्षः साध्याभावव्याप्यवान् पक्ष इति ज्ञाने चानुमितिप्रतिबन्ध इति साध्याभाववत्पक्षरूपस्य बाधस्य साध्याभावव्याप्यवत्पक्षरूपस्य सत्प्रतिपक्षस्य हेत्वाभासत्वं, पर्वतो वह्न्यभाववान् पर्वतो वह्न्यभावव्याप्यवान् इति भ्रमादप्यनुमितिप्रतिबन्धात्तद्विषयत्वमादाय सद्धेतावतिव्याप्तिवारणाय 'यथार्थेति, यथार्थत्वञ्च सर्वांशे भ्रमभिन्नत्वं[१] तेनांशिकयथार्थत्वमादाय न तद्दोषतादवस्थ्यं[२]। न च साध्याभाववद्वृत्तिसाधनादिरूपे व्यभिचारादावव्याप्तिः तस्य व्याप्त्यादिज्ञानाभावेनान्यथासिद्धतया अनुमित्यप्रतिबन्धकत्वादिति वाच्यं। अनुमितिपदस्य साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्षः साध्यवांश्चेति समूहालम्बनानुमितिपरत्वादिति भावः।

केचित्तु दुष्टहेतोरेव इदं लक्षणं। न चैवं बाधितादावव्याप्तिः[३]

---

(१) भ्रमसामान्यभिन्नत्वमिति ग०।

(२) स्वागधिकारणवृत्तित्व-स्वनिष्ठविषयतानिरूपितत्वोभयसम्बन्धेन स्वविशिष्टविशेष्यतानिरूपकत्वं, ईश्वरज्ञानावृत्तिविषयतावदन्यत्वं वा भ्रमसामान्यभिन्नत्वं, स्वपदञ्च साध्याभावादिपरं।

(३) ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादिस्थले बाधितधूमहेतौ स्वरूपासिद्धिमादाय लक्षणगमनसम्भवेन उत्पत्तिकालीनो घटो गन्धवान् पृथिवीत्वादित्यादावशुद्धबाधस्थले हेतावव्याप्तिर्द्रष्टव्या।

तिपक्षयोराभासत्वात्तद्बुद्धेरप्यनुमितिप्रतिबन्धकत्वम्। यद्यपि बाध-सत्प्रतिपक्षयोः प्रत्यक्ष-शाब्दज्ञानप्रतिबन्धकत्वान्न लिङ्गाभासत्वं तथापि ज्ञायमानस्याभासस्यात्र लक्षणं।

---

तन्न हेत्वन्तर्भावेनाप्रतिबन्धकत्वादिति वाच्यं। यथाकथञ्चित् समूहालम्बनज्ञानविषयत्वमादायैव(१) तत्र लक्षणसमन्वयात्। न चैवमनुमितिप्रतिबन्धकसमूहालम्बनबाधादिभ्रमविषयत्वमादाय सद्धेतावप्यतिप्रसङ्ग इति वाच्यं। भ्रमभिन्नत्वरूपयथार्थत्वस्य विशेषणत्वेनैव तद्वारणात्। न च तथापि ह्रदो वह्निमान् इत्यनुमितिप्रतिबन्धक-भ्रमभिन्न-ह्रदोवह्न्यभाववान् धूमाभाववांश्चेतिसमूहालम्बनज्ञानविषयत्वमादाय पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ धूमादावतिव्याप्तिरिति वाच्यं। अनुमितिपदस्य विशिष्टप्रकृतसाध्यव्याप्यप्रकृतहेतुमान् प्रकृतसाध्यवांश्च प्रकृतपक्ष इत्यनुमितिव्यक्तिपरत्वावश्यकत्वात्, तथाच तत्साध्यव्याप्यतद्धेतुमान् तत्साध्यवांश्च तत्पक्ष इत्यनुमितिव्यक्तिप्रतिबन्धकभ्रमभिन्नज्ञानविषयस्तद्धेतुः तस्मिन् पक्षे तस्मिन् साध्ये दुष्ट इति विशिष्य लक्षणस्य पर्य्यवसन्नतया न कोऽपि दोषः, धूमव्याप्यवह्निमान् धूमवांश्च पर्वत इत्यनुमितिप्रतिबन्धकव्यभिचारादिज्ञानविषयस्य धूमस्य पर्वते पक्षे धूमे साध्ये दुष्टत्वाभावात् द्वितीयतद्धेतुपदं, प्रतिबन्धकता च ग्राह्याभाव-तद्व्याप्यादि-

---

(१) वह्न्यभाववान् ह्रदो धूमश्च इति समूहालम्बनज्ञानविषयत्वमादायैवेत्यर्थः।

मुद्रया ग्राह्या[१] तेन तादृशानुमितिप्रतिबन्धकसमूहालम्बनसिद्धि-विषये सद्धेतौ 'नातिप्रसङ्ग इति प्राहुः । तदसत् । अस्य दुष्टहेतो-र्लक्षणत्वे दोषाश्रयस्य दुष्टपदार्थत्वाभावात् दुष्टपदस्य पारिभाषि-कत्वापत्तेः । न च पारिभाषिकत्वमिष्टमेवेति वाच्यं । तथासति तत्तद्धेतुत्वं तत्तत्पक्षे तत्तत्साध्ये दुष्टत्वमित्यस्यैव सम्यक्त्वेन विषया-न्तविशेषणवैयर्थ्यापत्तेरिति दिक् ।

नन्विदं व्यभिचारादिघटकसाध्यादावतिव्याप्तं तस्यापि तादृश-प्रतिबन्धकव्यभिचारादिज्ञानविषयत्वात् सिद्धेरनुमितिप्रतिबन्धक-तया साध्यवत्पक्षे चातिव्याप्तिः । न च यादृशविशिष्टविषयकत्वं तादृशानुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तादृशविशिष्टत्वं हेत्वा-भासत्वं[२] भवति च साध्याभावविशिष्टपक्ष-साध्याभाववद्वृत्तित्ववि-शिष्टसाधनादिविषयकत्वं तथेति वाच्यं । 'यथार्थेत्यस्य वैयर्थ्यप्रस-ङ्गात् । भ्रमविषयविशिष्टस्याप्रसिद्धत्वादित्यरुचेर्यथार्थत्वविशेषणं परि-त्यज्य लक्षणान्तरमाह, 'यद्विषयत्वेनेति, 'लिङ्गज्ञानस्येत्यत्र लिङ्ग-

---

(१) तथाच ह्रदपक्षक-वह्निसाध्यक-धूमहेतुकस्थले वह्निव्याप्यधूमत्वा-वच्छिन्नप्रकारतानिरूपितह्रदत्वावच्छिन्नविशेष्यताकत्वे सति वह्नित्वावच्छि-न्नविधेयतानिरूपितह्रदत्वावच्छिन्नविशेष्यताकानुमितिनिष्ठप्रतिबध्यतानिरू-पितसाध्यवत्त्वनिश्चयत्वानवच्छिन्नप्रतिबन्धकताश्रयज्ञानविषयस्तद्धेतुस्तस्मिन् पक्षे तस्मिन् साध्ये तस्मिन् हेतौ दुष्ट इति रीत्या सर्वत्र विशिष्य लक्षणं वक्तव्यम् ।

(२) अनुमितिप्रतिबन्धकत्वाभाववदिच्छाकालीनसिद्धौ तादृशविषयता-सत्त्वात् साध्यवत्पक्षे नातिव्याप्तिरिति भावः ।

मविवक्षितं बाधादिज्ञानस्य लिङ्गाविषयकत्वात् व्यर्थत्वाच्च[१]। 'अनुमितिपदञ्च साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्षः साध्यवान् इत्यनुमितिपरं, अन्यथोक्तरूपेण व्यभिचारादावव्याप्तिः। तथाच यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्य धूमव्याप्यवह्निमान् पर्वतो धूमवान् इत्यनुमितिप्रतिबन्धकत्वं स पर्वतत्वरूपेण पक्षतायां धूमत्वरूपेण साध्यतायां वह्नित्वरूपेण हेतुतायां दोष इति प्रातिस्विकरूपेणैव लक्षणं अन्यथा साध्यादेरननुगमेन एकतरोपादानेऽन्यत्राव्याप्त्यापत्तेः पर्वतोवह्निमान् धूमादित्यादावपि पर्वतादौ काञ्चनमयत्वाभावादेर्दोषत्वापत्तेश्च[२] तज्ज्ञानस्यापि काञ्चनमयः पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यनुमितिप्रतिबन्धकत्वात्। नन्विदमपि पक्ष-साध्यादावतिव्याप्तं तस्याप्यवच्छेदककोटिप्रविष्टत्वात्। न च यत् विषयतासम्बन्धेनानुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकतायाः पर्य्याप्त्यधिकरणं तत्त्वमर्थ इति

---

(१) ननु ज्ञानांशे अनाहार्य्यत्व-निश्चयत्वनिवेशापेक्षया लिङ्गत्वनिवेशे लाघवं लिङ्गाज्ज्ञानं लिङ्गज्ञानमिति व्युत्पत्त्या लिङ्गज्ञानपदस्य अनुमितिपरत्वात्। न च नैयायिकमते लिङ्गजन्यत्वाप्रसिद्धिः लिङ्गज्ञानस्यैवानुमितिजनकत्वादिति वाच्यं। लिङ्गादित्यत्र पञ्चम्यर्थः प्रयोज्यत्वं तेन लिङ्गप्रयोज्यज्ञानलाभः तच्चानुमित्यात्मकमेव, प्रयोज्यत्वञ्च स्वज्ञानजन्यत्वं इति चेत्, न, लिङ्गज्ञानपदेन लिङ्गज्ञानजन्यज्ञानं नोच्यते इत्यनुभवात् लिङ्गत्वमविवक्षितमित्युक्तं। यद्वा लिङ्गज्ञानपदस्यानुमितिपरत्वे यद्दोषविशेषस्यानुमितिः कदाचिदपि न जाता तत्राव्याप्तिः अतः लिङ्गत्वनिवेशे लाघवमकिञ्चित्करमिति ध्येयम्।

(२) यत्त्व-तत्त्वयोरिव यत्किञ्चित्त्वस्याप्यनुगतत्वमित्यभिप्रायेण यत्किञ्चित्पक्षक-यत्किञ्चित्साध्यकानुमित्यभिधाने दोषमाह, पर्व्वतेत्यादि।

वाच्यं। तथा सति साध्याभाववत्पक्षादेरप्यदोषत्वापत्तेः, न हि साध्याभाववत्पक्षादिविषयकनिश्चयत्वेनानुमितिप्रतिबन्धकत्वं, विशिष्टज्ञानातिरिक्ततया केवलपक्षादिविषयकज्ञानादेरपि प्रतिबन्धकत्वापत्तेः।

अथ यद्विशेष्यक-यत्प्रकारकनिश्चयत्वेनानुमितिप्रतिबन्धकता तद्विशिष्टतत्त्वं दोषत्वं भवति च पक्षविशेष्यक-साध्याभावप्रकारकनिश्चयत्वेन साधनविशेष्यक-साध्याभाववद्वृत्तित्वप्रकारकनिश्चयत्वादिना च प्रतिबन्धकतेति साध्याभाववत्पक्षः साध्याभाववद्वृत्तिसाधनादिर्दोषइति चेत्। न। प्रतिबन्धकता हि न पक्षविशेष्यक-साध्याभावप्रकारकनिश्चयत्वेन प्रमेयवान् पक्ष इति ज्ञानेऽपि प्रतिबन्धापत्तेः, न वा साध्याभावत्वरूपेण साध्याभावप्रकारकनिश्चयत्वेन पक्षे साध्यप्रतियोगिकत्वेन घटाभावाद्यवगाहिभ्रमस्य साध्याभावत्वरूपेण घटाद्यवगाहिभ्रमस्य चाप्रतिबन्धकत्वापत्तेः, किन्तु अभावत्वरूपेण यत्किञ्चिद्वस्तुनि साध्यप्रकारकः पक्षे चाभावत्वरूपेण यत्किञ्चिद्वस्तुप्रकारकोयोनिश्चयः तत्त्वेन तथात्वं। न चैवमपि साध्याभाववान् अभाववांश्च पक्ष इति समूहालम्बनज्ञानादपि प्रतिबन्धापत्तिरिति वाच्यं। विलक्षणविषयताकतादृशनिश्चयत्वेन(१) प्रतिबन्धकत्वादिति। अत्राहुः यद्विषयत्वेनेत्यत्रानतिरिक्तवृत्तित्वाख्यमवच्छेदकत्वं तृतीयार्थो न तु स्वरूपसम्बन्धविशेषः, पक्षसाध्यादिविषयत्वञ्च न तथेति नातिप्रसङ्गः, साध्याभावविशिष्टपक्षा-

(१) परस्परनिरूप्य-निरूपकभावापन्नविषयताशालिनिश्चयत्वेनेत्यर्थः।

दिविषयकत्वन्तु तथेति तेषां दोषत्वं। अथ तथापि ह्रदविशे-ष्यकत्वावच्छिन्नवह्न्यभावत्वविशिष्टवह्न्यभावनिरूपितप्रकारिताच्छ्रकः व-ह्न्यभावप्रकारकत्वावच्छिन्नह्रदत्वविशिष्टह्रदनिरूपितविशेष्यिताव्यक्तेश्च ह्रदोवह्निमान् इत्यनुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तितया केवल-वह्न्यभावत्वविशिष्टवह्न्यभावे केवलह्रदत्वविशिष्टह्रदे चातिव्याप्ति-र्दुर्वारा । न च केवलवह्न्यभावादिर्लक्ष्य एव, तन्मात्रे हेत्वाभासव्य-वहाराभावेन साध्याभाववत्पक्षादेरेव तथात्वात् तन्मात्रस्य दोषत्वे पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादेरपि दुष्टत्वापत्तेः येन केनचित् सम्बन्धेन दोषवत एव दुष्टत्वादिति चेत् । न । यद्विषयितासामान्यं तादृशानुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तत्त्वस्य विवक्षितत्वात् केवलवह्न्यभावत्वविशिष्टवह्न्यभावादिविषयितासामान्यन्तु न तथा तद्विषयत्वस्य वह्निर्नास्तीत्युपकृष्टत्वज्ञानेऽपि सत्त्वात् । न चैवं विशिष्टस्यानतिरिक्ततया केवलह्रदादिविषयकज्ञाने प्रमेयवान् प्रमेयमित्यादिज्ञाने च वह्न्यभावादिविशिष्टह्रदादिविषयकत्वस-त्त्वादसम्भव इति वाच्यं । यद्विषयित्वपदस्य यादृशविशिष्टविषयित्व-परत्वात्, विशिष्टविषयित्वञ्च विशिष्टनिरूपितं विषयित्वं तस्य च विलक्षणस्य वह्न्यभाववान् ह्रद इत्यादिप्रमात्मकज्ञान एव सत्त्वेन केवलह्रदादिविषयकज्ञाने अभावात्[१] अतएव सिद्धिविषयीभूत-

---

(१) एकत्र द्वयमिति रीत्या ह्रदत्वं वह्न्यभावञ्चावगाहमानं वह्न्यभाववद्ध्रदविषयकं यत् ज्ञानं तत्र विलक्षणविषयताकं अभावत्वावच्छिन्नानुयो-गिताकत्वविशिष्टप्रतियोगित्वसंसर्गावच्छिन्न-वह्नित्वावच्छिन्नवह्निनिष्ठावच्छेद-कतानिरूपितं यत् ह्रदत्वावच्छिन्नानुयोगिताकत्वविशिष्टस्वरूपसम्बन्धाव-

साध्यवत्पक्षेऽपि नातिव्याप्तिः यद्विषयकत्वस्य सिषाधयिषाकालीन-साध्यनिश्चयेऽपि सत्त्वेन प्रतिबन्धकतातिरिक्तवृत्तित्वात्, तद्व्यावृत्त-प्रतिबन्धकताया विवक्षणाद्वा[१] यादृशविशिष्टविषयित्वस्याव्याप्यवृत्ति-त्वज्ञानानास्कन्दिताग्रहीताप्रामाण्यकनिश्चयनिष्ठत्वेन विशेषणीयं तेन तदेच्छादौ संशयेऽव्याप्यवृत्तित्वज्ञानास्कन्दितनिश्चये ग्रहीताप्रामा-ण्यकनिश्चये च सत्त्वेऽपि नासम्भवः। न चैवं वृक्षः संयोगी द्रव्यत्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यके संयोगाभाववद्वृक्षादावतिव्याप्तिः अव्याप्यवृत्तित्वग्रहानास्कन्दिताग्रहीताप्रामाण्यकनिश्चयनिष्ठतादृशवि-शिष्टविषयित्वस्याप्यनुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वादिति वा-च्यम्। तस्य बाधस्वरूपत्वेन लक्ष्यत्वात् "बाधेऽपक्षधर्मो हेतुरनै-कान्तिको वा" इति प्रवादस्य व्याप्यवृत्तिसाध्यकबाधपरत्वात्। न च तस्य बाधत्वे सद्धेतोरपि तस्य बाधितत्वापत्तिरिति वाच्यं। हेत्वाभासविभाजकतावच्छेदकस्य बाधितत्वस्य तत्रेष्टत्वात् बाधितत्वव्यवहारनियामके तु निरवच्छिन्नाऽधिकरणतासम्बन्धेन

---

च्छिन्नाभावत्वावच्छिन्नाभावनिष्ठावच्छेदकत्वं तादृशावच्छेदकतानिरूपकताकं सत् ह्रदत्वनिष्ठावच्छेदकताकं यद्विषयित्वं तदेव विवक्षणीयं तस्य च अनुमिति-प्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वात् न कुत्रापि दोषः।

(१) यादृशपक्षे यादृशसाध्यस्य सिद्धिकाले सिषाधयिषा कस्यापि न जाता तादृशपक्षे तादृशसाध्ये सिद्धिविषयेऽतिव्याप्तिवारणाय तद्व्यावृत्त-प्रतिबन्धकताविवक्षायां, प्रतिबन्धकतायां तद्व्यावृत्तत्वञ्च साध्यतावच्छेदकाव-च्छिन्नप्रकारतानिरूपित-पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यताकनिश्चयत्वानवच्छि-न्नत्वमिति।

साध्याभाववत्त्वस्य घटकत्वात्। न चैवं वृक्षः संयोगी द्रव्यत्वा-दित्यादावेव बाधस्य स्वरूपासिद्धि-व्यभिचारासङ्कीर्णोदाहरणतया किं तस्य उदाहरणान्तरगवेषणयेति[१] वाच्यं। अशोकवनिकान्यायात्[२] अतिस्फुटतया ग्रन्थकर्त्तुरुपेक्षणात्। अथैवं प्रमेयत्वादिविशिष्टवह्न्यभाववद्ध्रदाद्यात्मकस्य विशिष्टस्यापि दोषत्वापत्तिः तद्विषयित्वस्यापि प्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वात्। न च तादृशविशिष्टान्तराघटितत्वेन यादृशविशिष्टं विशेषणीयं उक्तविशिष्टन्तु न तथा तस्य तादृशविशिष्टान्तरेण वह्न्यभाववद्ध्रदादिना घटितत्वादिति वाच्यं। प्रमेयत्वं अवृत्ति प्रमेयत्वादित्यादाववृत्तित्वाभाववद्वृत्तिप्रमेयत्वादिरूपे व्यभिचारेऽव्याप्तिः तस्य वृत्तिप्रमेयत्वरूपबाधघटितत्वादिति चेत्। न। स्वानिरूपितविशिष्टविशेष्यकत्वानवच्छेद्यत्वेन प्रतिबन्धकताविशेषणात् स्वपदं लक्ष्यत्वाभिमतविशिष्टपरं प्रमेयत्वादिविशिष्टवह्न्यभाववद्ध्रदात्मकविशिष्टन्तु न तथा तद्विषयकत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतायाः स्वानिरूपितेन केवलवह्न्यभाववद्ध्रदविशेष्यकत्वेनाप्यवच्छिन्नत्वात्, स्वानिरूपितविशिष्टविशेष्यकत्वानवच्छिन्नत्वञ्च स्वानिरूपितविशिष्टविशेष्यकत्वानतिरिक्तवृत्तिकप्रतिबन्धकताभिन्नत्वं[३] ! न चैवं प्रतियोगिव्यधिकरणत्ववि-

---

(१) बाधग्रन्थे गन्धप्रागभावकालीनघटोगन्धवान् पृथिवीत्वादित्युदाहरणान्वेषणेनेति भावः।

(२) यथा वनान्तरं परित्यज्य अशोकवने सीतायाः स्थापने न्यायभावः तथेहापीति भावः।

(३) ननु स्वानिरूपितविशिष्टविषयकत्वसामान्यं यत्प्रतिबन्धकतावच्छे-

इत्थं तदन्यत्वमेव वक्तव्यं किमनतिरिक्तवृत्तित्वनिवेशेन तावतैव बाधादौ लक्षणासम्भवात् मेयत्वविशिष्टबाधादिवारणासम्भवाच्चेति चेत्। न। ह्रदो वह्निमान् जलादित्यादावसाधारण्येऽव्याप्तेः वह्निव्यापकीभूताभावप्रतियोगिजलरूपासाधारण्यनिरूपित-जलवद्ध्रदरूपविशिष्टविषयित्वसामान्यस्य असाधारण्यविषयकत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वात् तत्प्रतिबन्धकताभिन्नत्वस्य असाधारण्यविषयकज्ञानप्रतिबन्धकतायामसत्त्वात्। अथानतिरिक्तवृत्तित्वनिवेशेऽपि तद्दोषतादवस्थ्यं असाधारण्यज्ञानप्रतिबन्धकतायां ज्ञाननिरूपितं यत् तादृशजलकालीनजलवद्ध्रदविषयकत्वं तदनतिरिक्तवृत्तित्वादिति चेत्। न। ज्ञाननिरूपितविशिष्टविषयकत्वे असाधारण्यविषयितान्यत्व-ज्ञानवैशिष्ट्यावच्छिन्नप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वोभयाभावस्य विवक्षितत्वात् तादृशजलकालीनजलवद्ध्रदविषयकत्वस्य तादृशोभयवत्त्वात् नासाधारण्याव्याप्तिरिति भावः। न चैवमनतिरिक्तवृत्तित्वनिवेशनमफलं मेयत्वविशिष्टबाधादावतिव्याप्तिश्च तत्र ज्ञाननिरूपितवह्न्यभावद्ध्रदादिविषयकत्वस्य तादृशोभयवत्त्वात् अभाववान् वह्न्यभाववान् अभाववान् ह्रद इत्याकारकज्ञानीय-ज्ञानवैशिष्ट्यावच्छिन्नप्रतिबन्धकतायाः अभाववद्ध्रदत्वावच्छिन्नविषयतात्वेनावच्छेदकत्वात् असाधारण्यविषयित्वस्य तादृशोभयाभाववत्त्वेन तत्प्रतिबन्धकतान्यत्वस्य तत्प्रतिबन्धकतायां सत्त्वादिति वाच्यम्। ज्ञाननिरूपितविशिष्टविषयकत्वे असाधारण्यविषयितान्यत्व-असाधारण्यविषयकनिश्चयत्वव्यापकप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वोभयाभावस्य विवक्षितत्वात् तथा च मेयत्वविशिष्टदोषे नातिव्याप्तिः, एवमसाधारण्यज्ञानप्रतिबन्धकतावच्छेदकीभूततादृशोभयाभाववज्जलवद्ध्रदविषयकत्वमादायासाधारण्येऽव्याप्तिवारणाय विशिष्टान्तराघटितत्वशरीरेऽनतिरिक्तवृत्तित्वविशेषणं सार्थकमिति भावः। न च वह्न्यव्यापकाभावकालीनह्रदो वह्निमान् जलादित्यादौ मेयत्वविशिष्टवह्निव्यापकाभावेऽतिव्याप्तिः तत्प्रतिबन्धकत्वस्य नियतासाधारण्यज्ञाने सत्त्वादिति वाच्यम्। असाधारण्यविषयकनिश्चयत्वव्यापकप्रतिबन्धकतायां ज्ञानवैशिष्ट्यावच्छिन्नत्वस्य निवेशनीयत्वात्।

शिष्टसाध्याभाववत्पक्षरूपे बाधे[1] अव्याप्तिः तद्विषयकत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतायाः स्वानिरूपितेन केवलसाध्याभाववत्पक्षविशेष्यकत्वेनाप्यवच्छिन्नत्वादिति वाच्यं। केवलसाध्याभाववत्पक्षस्यैव बाधतया तस्याबाधत्वात् अयं वृक्षः कपिसंयोगी तत्त्वादित्यादावपि बाधस्येष्टत्वात्। न च तथाप्यनुमितिपदस्य यथोक्तसमूहालम्बनानुमितिपरतया निर्वह्निः पर्वतो वह्निमान् वह्निव्यभिचारिधर्म्मादित्यादौ न कोऽप्याभासः स्यात्तत्र यथोक्तसमूहालम्बनानुमितेरप्रसिद्धेरिति वाच्यं। निर्वह्निर्वह्निमान् इत्यादिवन्निर्वह्निः पर्वतो वह्निमान् वह्निव्यभिचारिधर्म्मादित्यादेरप्यपार्थकतया[2] तत्र हेत्वाभासविरहेऽपि क्षतिविरहात्। यद्वा प्रकृतपक्षतावच्छेदकरूपेण प्रकृतपक्षे प्रकृतसाध्यतावच्छेदकरूपेण प्रकृतसाध्यवैशिष्ट्यावगाहिनी सती प्रकृतसाध्यताव-

---

न च घटवद्ध्रदो वह्निमान् जलादित्यादौ घटाभाववद्वह्निव्यापकाभावप्रतियोगिजलवद्ध्रदकालीनत्ववद्ध्रदेऽतिव्याप्तिस्तत्प्रतिबन्धकत्वस्य ज्ञानवैशिष्ट्यावच्छिन्नत्वात् नियतासाधारण्यज्ञाने सत्त्वाच्च इति वाच्यम्। असाधारण्यविषयितान्यत्वपदेनासाधारण्यघटितनिरूपितान्यत्वस्य विवक्षितत्वात्। न च प्रतिहेतुव्यापकसाध्याभावसमानाधिकरणप्रतिहेतुमत्पक्षात्मकसत्प्रतिपक्षेऽव्याप्तिः तद्विषयकत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतायां स्वानिरूपितप्रतिहेतुव्यापकसाध्याभावकालीनप्रतिहेतुमत्पक्षविषयित्वावच्छिन्नत्वादिति वाच्यं। साध्यवदवृत्तिमत्पक्षस्यैव सत्प्रतिपक्षत्वेन तस्यालक्ष्यत्वादिति सद्भिरपरिशीलितः पन्थाः।

(१) गुणः संयोगवान् गुणत्वादित्यादिस्थलीयबाधे इत्यर्थः।

(२) शाब्दबोधजनकीभूताकाङ्क्षायोग्यताविरहविशिष्टवाक्यमपार्थकमिति।

च्छेदकरूपेण प्रकृतसाध्यनिरूपितव्याप्तिप्रकारेण प्रकृतहेतुतावच्छेद-करूपेण प्रकृतहेतुवैशिष्ट्यावगाहिनी या बुद्धिः सा यत्र यदवगा-हते तत्र तद्वैशिष्ट्यावगाहि यज्ज्ञानं तत्प्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति यादृशविशिष्टनिरूपितविषयितासामान्यं तादृशविशिष्टत्वं हेतु-दोषत्वमिति विवक्षणीयं। इत्थञ्च वह्न्यभाववत्पर्वतादेरेव तत्र दोषत्वं तद्विषयकनिश्चयमात्रस्यैव निर्वह्निः पर्वतो वह्निमानित्या-दिज्ञानं यत्र यदवगाहते तत्र तदवगाहिनः केवलपर्वतो वह्निमा-नित्यनाहार्य्यज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वात्। न च तादृशबुद्धेरेव उक्त-स्थलेऽप्रसिद्धिरिति वाच्यं। आहार्य्यरूपस्य तस्य सम्भवात्। न चैवं पर्वतो वह्निमान् इत्यादौ काञ्चनमयत्वाभाववत्पर्वतादेरपि दोष-त्वं स्यात् तद्विषयकनिश्चयस्य पर्वतो वह्निमानित्यादिज्ञानं यत्र यदवगाहते तत्र तदवगाहिनः काञ्चनमयः पर्वतो वह्निमानित्या-दिज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वादिति वाच्यं। तत्र तदवगाहित्वांशे प्रति-बन्धकताया विवक्षितत्वादिति[१] संक्षेपः। इदन्तु चिन्त्यं यत्र क्षेत्र-विशेषादौ यदङ्कुरविशेषस्य ज्ञानं कस्यापि न जातं तत्र क्षेत्रवि-शेषादौ प्रमेयत्वादिना तदङ्कुरविशेषादौ साध्ये न कोऽप्याभासः स्यात् तत्र तादृशबुद्धेरप्रसिद्धेः। न च तत्राभासोनेष्ट एव, व्यव-हारादेरविशेषेणानिच्छायाः स्वातन्त्र्यमात्रत्वात्। किञ्च यदङ्कुरविशे-षस्य वह्न्यभाववत्पर्वतादिविषयक एव निश्चयोजातः न तु कदा-

---

(१) तद्धर्म्मावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित-तद्धर्म्मावच्छिन्नप्रकारत्वावच्छि-न्नप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकताया विवक्षितत्वादित्यर्थः।

चिदपि तद्विषयत्वानिश्चयः तदङ्कुरविशेषस्य पर्वतो वह्निमानित्यादौ दोषत्वापत्तेरिति दिक्।

इदमत्रावधेयं बाधादिविषयितानियतविषयिताके तदङ्कुरादिव्यक्तिविशेषे यथाविवक्षितलक्षणस्य नातिप्रसङ्गशङ्कापि तादृशज्ञाननिष्ठतथाविधानुमितिप्रतिबन्धकतायां बाधादिविषयकत्वरूपेण विशिष्टविषयकत्वान्तरेणावच्छिन्नत्वात् मेयत्वविशिष्टबाधादावतिप्रसङ्गवारणाय ग्रन्थकृतैव पूर्वं विशिष्टविषयकत्वान्तरानवच्छेद्यत्वेन प्रतिबन्धकताया विशेषितत्वात्। न च तादृशज्ञाननिष्ठबाधादिविषयिता तदङ्कुरादिविषयिता चैकैवेति वक्तुं शक्यते, निरूपकभेदेन विषयिताभेदस्य सिद्धान्तसिद्धत्वात्। न च पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादिसद्धेतावेव बाधादिभ्रममात्रविषयीभूताङ्कुरादिविशेषे विवक्षितलक्षणस्याप्यतिव्याप्तिरिति शङ्कनीयं, तदङ्कुरादिविशेषस्यान्ततो भगवज्ज्ञानादिविषयता तथाविधभ्रमविषयमात्रविषयत्वासम्भवात्। न च तथापि बाधादिभ्रम-नित्यज्ञानोभयमात्रविषये व्यक्तिविशेषेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यं। तादृशव्यक्तिविषयिताया नित्यज्ञानेऽपि सत्त्वेन तत्र तदनुमितिप्रतिबन्धकताविरहात्। न च सिद्धिविधया तत्रापि तदनुमितिप्रतिबन्धकत्वं, नित्यज्ञाने सिषाधयिषाविरहवैशिष्ट्यविरहेण सिद्धिप्रतिबन्धकत्वस्यापि तत्रासम्भवात्। न च यत्र तदङ्कुरो वह्न्यभाववानित्येव बाधज्ञानं तत्र तादृशबाधज्ञानमात्रविषये तदङ्कुरत्वविशिष्टेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यं। तत्र प्रकृतपक्षे साध्यवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानाप्रसिद्ध्यातिव्याप्त्यनवकाशात्। न च यत्र तदङ्कुरो वह्निमानित्यनुमितिरपि प्रसिद्धा तत्रैवा-

तिव्याप्तिरिति वाच्यं। तत्र तद्विषयकत्वस्य तादृशानुमितावपि सत्त्वेन तत्र तादृशानुमितिप्रतिबन्धकत्वविरहात् सिद्धिविधया प्रतिबन्धकत्वस्यापि प्रागुत्तरवर्त्तिसिषाधयिषाकज्ञानेऽभावात्। यदि च नैतादृशं सिषाधयिषासमवहितं तज्ज्ञानं कदापि जातमित्युच्यते, तदा तु सिद्धिविशेषविषयेऽतिप्रसङ्गवारणाय सिद्धिविधया प्रतिबन्धकतातिरिक्तप्रतिबन्धकतैव लक्षणे निवेशनीया तथाच कुतोऽयमतिप्रसङ्ग इति दिक्।

यत्तु यत्र बाधादिविषयतानियतविषयिताकोऽङ्कुरादिव्यक्तिविशेषस्तत्र बाधादावव्याप्तिस्तत्र तदनुमितिप्रतिबन्धकताया अङ्कुरादिव्यक्तिविशेषविषयत्वरूपेण विशिष्टविषयकत्वान्तरेणाव च्छेद्यत्वात् इति, तन्न, विशिष्टविषयकत्वान्तरानवच्छेद्येत्यत्र स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेद्यत्वस्यैव विशेषणीयत्वात्। वस्तुतो वह्न्यभाववद्ध्रदवत्प्रमेयत्वविषयित्वावच्छेद्यतया असम्भववारणाय स्वघटितानिरूपितविशिष्टविशेष्यकत्वानवच्छेद्यत्वं विवक्षणीयं, स्वघटितत्वञ्च स्वाविषयकप्रतीत्यविषयत्वं, तथाच तदङ्कुरादेर्बाधादिघटिततया बाधादेः स्वघटितानिरूपितविशिष्टविशेष्यकत्वानवच्छेद्यप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वादन्यूनवृत्तित्वरूपावच्छेद्यत्वनिवेशेऽपि न क्षतिरिति मन्तव्यं(१)।

यन्मते ज्ञायमानलिङ्गस्य करणत्ववत् ज्ञायमानव्यभिचारादेरपि प्रतिबन्धकत्वं तन्मते लक्षणमाह, 'ज्ञायमानमिति, अत्रापि 'अनुमितिपदं प्रकृतपक्षतावच्छेदकरूपेण प्रकृतपक्षे प्रकृतसाध्यतावच्छे-

(१) इदमत्राधेयमित्यादिः इति मन्तव्यमित्यन्तः क-चिह्नितपुस्तकीयक्रोडपत्रस्थितः पाठः ग-घ-ङ-चिह्नितादर्शपुस्तकेषु नास्ति।

यद्वा प्रत्यक्षादौ बाधेन न ज्ञानं प्रतिबध्यते किन्तूत्पन्नज्ञानेऽप्रामाण्यं ज्ञाप्यते अनुमितौ तूत्पत्तिरेव

दकरूपेण प्रकृतसाध्यावगाहिनी सती प्रकृतसाध्यतावच्छेदकरूपेण प्रकृतसाध्यनिरूपितव्याप्तिप्रकारेण प्रकृतहेतुतावच्छेदकरूपेण प्रकृतहेतुवैशिष्ट्यावगाहिनी या बुद्धिस्तत्परं, तेन व्यभिचारादेरनुमित्यप्रतिबन्धकत्वेऽपि[१] नाव्याप्तिः, प्रतिबन्धकत्वञ्च तादृशी बुद्धिर्यच्च यदवगाहते तत्र तदवगाहिज्ञानप्रतिबन्धकत्वं वक्तव्यं तेन निर्व्वह्निः पर्व्वतो वह्निमानित्यादौ नोक्तरीत्या आभासासम्भवः, एवमन्यदप्युक्तदिशावसेयं। अथैतेषु लक्षणेषु अज्ञानपक्षतावच्छेदकरूपासिद्ध्यादावव्याप्तिः[२] तत्र तत्र प्रतिबन्धकत्वे ज्ञानानुपयोगात्। न च तदलक्ष्यमेव, एकविंशतिनिग्रहस्थानवहिर्भूतस्य तस्य हेत्वाभासमध्येऽप्यनन्तर्भावे निग्रहस्थानत्वानुपपत्तेः, न चानुक्तसमुच्चयपरेण चरमसूत्रस्थचकारेण[३] तस्यापि समुच्चयान्निग्रहस्थानत्वव्यवस्थितिरिति वाच्यं। तथासति निग्रहस्थानस्य द्वाविंशतिप्रभेदत्वानुपपत्तेरिति चेत्। न। निग्रहस्थानत्वौपयिकस्य हेत्वाभासत्वस्य पृथगेव निर्वच्यमाणत्वादिह तु हेतुदोषा निरूप्यन्त इति न काप्यनुपपत्तिः, येन केनचित् सम्बन्धेन

(१) साक्षादनुमित्यप्रतिबन्धकत्वेऽपीत्यर्थः।

(२) पक्षतावच्छेदकज्ञानाभावरूपासिद्ध्यादावित्यर्थः।

(३) "हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः" इति सूत्रस्थितचकारेणेत्यर्थः।

प्रतिबध्यते। ते च सव्यभिचार-विरुद्ध-सत्प्रतिपक्षासिद्ध-बाधिताः पञ्च।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डे हेत्वाभासे हेत्वाभाससामान्यनिरुक्तिः।

---

तद्वत्त्वं तु दुष्टत्वं। न चैवं सद्धेतावतिव्याप्तिः वह्न्यभाववद्वृत्तिजलत्वादेर्येन केनापि सम्बन्धेन धूमादिनिष्ठत्वादिति वाच्यं। तत्पक्षक-तत्साध्यक-तद्धेतुकोयो दोषः येन केनापि सम्बन्धेन तद्वान् स हेतुः तस्मिन् साध्ये तस्मिन् पक्षे दुष्ट इति विवक्षितत्वादित्यास्तां विस्तरः।

ननु साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगिहेतुमत्पक्षरूपस्यासाधारणत्वस्य साध्याभावव्याप्यवत्पक्षरूपस्य सत्प्रतिपक्षस्य च धियोऽनुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावः ग्राह्याभावाद्यनवगाहित्वात्(१) इत्यत आह, 'दशाविशेषे हेत्वोरेवेति 'एवकारोभिन्नक्रमे असाधारणसत्प्रतिपक्षयोर्हेत्वोर्दशाविशेष एव सत्प्रतिपक्षासाधारणत्वेन भानदशायामेव, 'आभासत्वात्' अनुमित्यजनकत्वादित्यर्थः, एवकारेण तदज्ञानदशायान्तु जननादिति सूचितं, तथाचान्वय-व्यतिरेकात् तज्ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वमिति भावः। नन्वेतानि लक्षणानि बाध-

---

(१) पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने साध्याभावाद्यनवगाहित्वादित्यर्थः तथाच तयोर्दोषत्वानुपपत्तिरिति भावः।

सत्प्रतिपक्षयोरतिव्याप्तानि अनुमित्यसाधारणदोषस्यैवात्र लक्ष्यत्वात् तयोश्च प्रत्यक्ष-शाब्दज्ञानयोरपि प्रतिबन्धकतया साधारणत्वादिति केषाञ्चिद् दूषणमपाकरोति, 'यद्यपीत्यादिना', 'न लिङ्गाभासत्वं' न लिङ्गासाधारणदोषत्वं नानुमित्यसाधारणदोषत्वमिति यावत्, 'ज्ञायमानस्याभासस्येति विशिष्टबुद्धिसामान्यप्रतिबन्धकज्ञानविषयस्य दोषमात्रस्येत्यर्थः, तथाच तयोरपि लक्ष्यत्वान्नातिव्याप्तिरिति भावः।

अत्र केचित् शाब्दे बाधज्ञानमात्रं न प्रतिबन्धकं नरशिरः-कपालं शुचि प्राण्यङ्गत्वात् शङ्खवदित्यनुमानेन "मल-मूत्र-पुरीषास्थि निर्गतं ह्यशुचि स्मृतं। नारं स्पृष्ट्वा तु सस्नेहं सचेलोजलमाविशेत्" इतिवेदबाधापत्तेः, किन्तु अनुमित्यन्यबाधज्ञानत्वेन। न चैवं परमाणुरनित्य इति शब्दस्यापि ज्ञानजनकत्वापत्तिः परमाणुर्नित्यः जन्यमहत्त्वानधिकरणत्वे सति(१) द्रव्यत्वादित्यनुमितेर-

---

(१) गगने दृष्टान्तत्वालाभार्थं सत्यन्तदले महत्त्वांशे जन्यत्वविशेषणं, घटाद्यन्तर्भावेन व्यभिचारवारणाय सत्यन्तं, जन्यगुणादौ व्यभिचारवारणाय विशेष्यदलं, परमाणौ जन्यक्रियासत्त्वात् जन्यानधिकरणत्वे सतीत्युक्तौ स्वरूपासिद्धिः स्यादतोजन्यमहत्त्वानधिकरणत्वे सतीत्युक्तं। न च व्यभिचारावारकविशेषणस्य सार्थकत्वाभावात् कथं दृष्टान्तत्वालाभार्थं व्यभिचाराद्यवारकस्य महत्त्वांशे जन्यत्वविशेषणस्य सार्थकत्वमिति वाच्यं। अखण्डाभावघटकतया सार्थकत्वसम्भवात्। न च तथापि साध्याभाववति द्व्यणुके तादृशहेतोः कथं नानैकान्तिकत्वमिति वाच्यं। महत्त्वपदस्य परिमाणसामान्यपरत्वात्। अतएव व्यभिचारादिवारकतयैव महत्त्वांशे जन्यत्वविशेषणस्य सार्थकत्वं अन्यथा परमाणौ नित्यपरिमाणस्य सत्त्वेन स्वरूपासिद्ध्यापत्तेः इति।

प्रतिबन्धकत्वाद्बाधज्ञानान्तरस्य चाभावादिति वाच्यं। अगृहीतविशेषेत्यनेनानुमितिविशेषणात् तत्र च प्रामाण्यग्रह एवानुमितौ विशेष इत्याहुः। तन्न, शाब्दबुद्धित्वावच्छिन्नं प्रति तेन रूपेण पृथक्प्रतिबन्धकत्वान्तरकल्पने गौरवात्मानाभावाच्च। न च यथोक्तानुमानादग्नौ चबोधकवेदबाधापत्तिरेव मानं, तत्रानुकूलतर्काभावेनागमविरोधेन च व्याप्तिनिश्चयस्यानुमितेश्चानुत्पत्तेरनुमित्युत्पत्तौ च प्रतिबन्धकत्वस्येष्टत्वादिति।

नन्वनुमाननिरूपणप्रस्तावे प्रमाणसामान्यदोषाभिधानमनुचितमित्यनुशयेनाह, 'यद्वेति, 'बाधेनेति परोक्षबाधनिश्चयेनेत्यर्थः, परोक्षसत्प्रतिपक्षेण चेत्यपि बोध्यं, आनुमानिकबाध-तद्व्याप्यवत्तादिज्ञानसत्त्वेऽपि लौकिकविशिष्टसाक्षात्कारोदयात्। न चैतावतापि शाब्दबोधे तत्प्रतिबन्धकत्वमस्त्वेवेति वाच्यं। योग्यताज्ञानेनान्यथासिद्धतया(१) शाब्दबोधं प्रति बाध-तद्व्याप्यवत्तादिज्ञानमात्रस्यैवाप्रतिबन्धकत्वादिति भावः। 'अनुमिताविति, तथाच बाधनिश्चयत्वादिसामान्यरूपेण प्रतिबन्धकत्वस्यानुमितिं प्रत्येव सत्त्वात्तेन रूपेणासाधारणदोषत्वमस्त्येवेति भावः। इदञ्चापाततः लौकिकप्रत्यक्षनिश्चये आनुमानिकबाधादिनिश्चयसामान्यस्याप्रतिबन्धकत्वेऽपि संशयोपनीतभानं प्रति तस्य प्रतिबन्धकतया बाधनिश्चयत्वादिरूपेणाप्यसाधारणत्वविरहात्। न चोपनीतभानं प्रत्यपि बाधनिश्चयत्वादिना न प्रतिबन्धकत्वमपि तु इच्छाविशेषादिविरहविशिष्टबाधनिश्चयत्वादिनैव बाधनिश्चयसत्त्वेऽप्याहार्य्योपनीतभानोदया-

(१) बाधविरहो योग्यता इत्यभिमानेनेदमुक्तं।

दिति वाच्यं। तथापि सत्युपमितौ प्रति बाधनिश्चयस्याहिंना बाधनिश्चयसामान्यस्यैव प्रतिबन्धकतया असाधारण्यविरहादिति ध्येयं।

असिद्ध-विरुद्ध-सव्यभिचारानध्यवसितास्चत्वारो हेत्वाभासाः अनध्यवसितोऽसाधारणः न तु बाध-प्रतिरोधौ हेत्वाभासाविति वैशेषिकसिद्धान्तस्तन्निराकरणाय स्वमतसिद्धान् हेत्वाभासान् विभजते, 'ते चेति, आभासीभूता हेतव इति शेषः। 'सव्यभिचारेति व्यभिचारात्मकेन दोषेण सह वर्त्तत इति व्युत्पत्त्या व्यभिचारीत्यर्थः, व्यभिचारित्वरूपञ्चानुपदमेव विवेचयिष्यते। 'विरुद्धेति साध्यासमानाधिकरणो हेतुर्विरोधः तादात्म्येन तद्वान् हेतुर्विरुद्धः, एतज्ज्ञानञ्च साध्यसामानाधिकरण्यघटितव्याप्तिप्रकारकज्ञाने सामानाधिकरण्यांशे प्रतिबन्धकं उदाहरणन्तु समवायेन साध्य-हेतुको गोत्ववानश्वत्वादित्यादिरिति मणिकृतः।

प्राञ्चस्तु साध्यासामानाधिकरण्यं विरोधः तद्वान् हेतुर्विरुद्ध इत्याहुः। तदसत्। केवलसाध्यासामानाधिकरण्यरूपविशिष्टनिरूपितविषयित्वस्य केवलसाध्यासामानाधिकरण्यविषयकज्ञाने हेत्वन्तरविशेष्यकतत्प्रकारकज्ञाने च सत्त्वेन प्रकृतहेतुकानुमिति-तत्कारणज्ञानप्रतिबन्धकतातिरिक्तवृत्तितया केवलस्य तस्य हेतुदोषत्वासम्भवात्, अतएवाग्रेऽपि सर्वत्र विशेष्यान्तर्भाव इति मन्तव्यं। 'सत्प्रतिपक्षेति सत्प्रतिपक्षपदस्य नीलादिपदवद्धर्म-धर्म्युभयवाचकत्वात् सत्प्रतिपक्षित इत्यर्थः, साध्याभावव्याप्यवान् पक्षः सत्प्रतिपक्षः वृत्तिमत्त्वादियथा-कथञ्चित्सम्बन्धेन तद्वान् हेतुः सत्प्रतिपक्षितः, एतज्ज्ञानजन्य साक्षादेवानुमितिविरोधि तदभावनिश्चयवत्तदभावव्याप्यनिश्चयस्यापि

तद्विशिष्टबुद्धिप्रतिबन्धकत्वात् उदाहरणन्तु ह्रदोवह्निमान् धूमादित्यादिबाधितमात्रमेव, सद्धेतुस्तु कदाचिदपि न सत्प्रतिपक्षितः। बाधितस्तु कदापि नासत्प्रतिपक्षितः इति तु नव्याः।

प्राञ्चस्तु समानबलप्रकृतपक्षविशेष्यक-साध्याभावव्याप्यवत्त्वपरामर्शकालीनप्रकृतपक्षविशेष्यक-साध्यव्याप्यवत्त्वपरामर्शः सत्प्रतिपक्षः विषयतासम्बन्धेन तद्वान् हेतुः सत्प्रतिपक्षितः, अयञ्च स्वरूपसन्नेव साक्षादनुमितिविरोधी, अत एव सद्धेतुरपि साध्याभावव्याप्यवत्ता-परामर्शकाले सत्प्रतिपक्षितः बाधितोऽपि तदभावदशायां कदाचिदसत्प्रतिपक्षित इत्याहुः। एतन्मते यथोक्तं न दोषलक्षणं किन्तु दुष्टलक्षणमेवेति न तत्राव्याप्तिः।

'असिद्धेति, असिद्धः त्रिविधः स्वरूपासिद्धः आश्रयासिद्धो-व्याप्यत्वासिद्धश्च तत्र हेत्वभाववान् पक्षः स्वरूपासिद्धिः कलिकादियत्किञ्चित्सम्बन्धेन तद्वान् हेतुः स्वरूपासिद्धः एतज्ज्ञानञ्च पक्षधर्मतांशे परामर्शविरोधि उदाहरणन्तु ह्रदोवह्निमान् धूमादित्यादि। पक्षविशेषणासिद्धिराश्रयासिद्धिः सा च पक्षतावच्छेदकाभाववान् पक्षः वृत्तिमत्त्वादियत्किञ्चित्सम्बन्धेन हेतोस्तद्वत्त्वं एतज्ज्ञानञ्च पक्षतावच्छेदकवैशिष्ट्यांशे अनुमिति-परामर्शयोरुभयोरेव विरोधि, उदाहरणन्तु काञ्चनमयः पर्व्वतोवह्निमान् इत्यादि। व्याप्यत्वासिद्धिः त्रिविधा साध्यविशेषणासिद्धिः हेतुविशेषणासिद्धिः व्याप्यभावरूपासिद्धिश्च, तत्र साध्यतावच्छेदकाभाववत्साध्यं साध्यविशेषणासिद्धिः सामानाधिकरण्यादियत्किञ्चित्सम्बन्धेन हेतोस्तद्वत्त्वं एतज्ज्ञानञ्च साध्यतावच्छेदकवैशिष्ट्यांशेऽनुमिति-परामर्शयोर्विरोधि, उदाहर-

णन्तु पर्व्वतः काञ्चनमयवह्निमानित्यादि। हेतुतावच्छेदकाभाववान् हेतुः हेतुविशेषणासिद्धिः तादात्म्यसम्बन्धेन हेतोस्तद्वत्त्वं, एतज्ज्ञानं हेतौ हेतुतावच्छेदकवैशिष्ट्यांशे परामर्शविरोधि, उदाहरणन्तु पर्वतो वह्निमान् काञ्चनमयधूमादित्यादि। व्याप्यभाववान् हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धिः तादात्म्येन तद्वान् हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धः, एतज्ज्ञानञ्च हेतौ व्याप्तिज्ञानविरोधि, उदाहरणन्तु व्यभिचारिमात्रमेव। 'बाधितेति साध्याभाववान् पक्षोबाधः, वृत्तिमत्तादियत्किञ्चित्सम्बन्धेन तद्वान् हेतुः बाधितः, एतज्ज्ञानञ्च साक्षादेवानुमितिविरोधि, उदाहरणन्तु ह्रदोवह्निमान् धूमादित्यादीति संक्षेपतः सामान्यतो दूषकताबीजनिर्णयः, विशेषतस्तु तत्तद्ग्रन्थ एव विवेचयिष्याम इति दिक्।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये हेत्वाभासे हेत्वाभाससामान्यनिरुक्तिरहस्यं।

## अथ सव्यभिचारः।

सव्यभिचारोऽपि त्रिविधः[1] साधारणासाधारणानुपसंहारिभेदात् तत्र सव्यभिचारः साध्य-तदभावप्रसञ्जक इति न त्रितयसाधारणं लक्षणम् एकस्यो-

### अथ सव्यभिचाररहस्यं।

नन्वयं विभागोऽनुपपन्नः असाधारणानुपसंहारिणोरधिकयोरपि सत्त्वादित्यत आह, 'सव्यभिचारोऽपीति, तथाच तावत्स्वेवान्तर्भूताविति भावः। एतेन सामान्यधर्मप्रकारेण ज्ञातानामेव विशेषतो जिज्ञासोदयात् सामान्यलक्षणानन्तरमेव विशेषविभागोयुक्त इति निर्युक्तिकप्रवादोऽपि निरस्तः विभागे तात्पर्य्याभावादिति भावः।

(१) सव्यभिचारोऽपि त्रिविधः साधारणासाधारणानुपसंहारिभेदात् इत्यत्र उद्देश्यतावच्छेदकसमनियतवस्तुमदन्यसंख्यावत्त्वं विधप्रत्ययार्थः, तादृशसंख्यावत्त्वञ्चात्र साधारणत्वासाधारणत्वानुपसंहारित्वगतत्रित्वं, एतादृशत्रित्वस्य स्वाश्रयाश्रयत्वसम्बन्धेनात्र साध्यत्वं सव्यभिचारस्य पक्षत्वं साधारणभेदासाधारणभेदानुपसंहारिभेदान्यतमस्य प्रतियोगित्वसम्बन्धेन हेतुत्वं उद्देश्यतावच्छेदकसमनियतत्वं उद्देश्यतावच्छेदकव्याप्यत्वे सति उद्देश्यतावच्छेदकव्यापकत्वं व्याप्यत्वं व्यापकत्वञ्च स्वाश्रयाश्रयत्वसम्बन्धेन, वस्तुमदन्यत्वघटकवस्तुमत्त्वञ्च स्ववृत्तित्व-स्वसमानाधिकरणस्वभिन्नवृत्तित्वोभयसम्बन्धेन, वस्तुमदन्यत्वनिवेशात् सामान्यतः साधारणत्वासाधारणत्वानुपसंहारित्वं विशेषतः तत्साधारणत्वादिकञ्चादाय सव्यभिचारोऽपि चतुर्विधः पञ्चविधो वा इत्यादिको न प्रयोगः।

'साधारणेति साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वं साधारणत्वं तद्वान् हेतुः साधारणः, एतज्ज्ञानञ्च व्याप्तिज्ञानविरोधि, उदाहरणन्तु द्रव्यं सत्त्वादित्यादि, विरुद्धवारणाय च साध्यवद्वृत्तित्वदलमिति प्राञ्चः। नव्यास्तु साध्याभाववद्वृत्तिहेतुः साधारणत्वं तादात्म्येन तद्वान् हेतुः साधारणः, साध्यवद्वृत्तित्वभागो नोपादेयः दूषकतायामनुपयोगात्, विरुद्धोऽपि लक्ष्य एव एकस्याज्ञानदशायामन्यस्य ज्ञानेन व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धात् द्वयोरेव तुल्यदोषत्वमिति[१] प्राहुः। 'असाधारणेति सर्वसाध्यवद्व्यावृत्तहेतुमान् पक्षोऽसाधारणत्वं साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगिहेतुमान् पक्ष इति यावत्, वृत्तिमत्त्वादियत्किञ्चित्सम्बन्धेन तद्वान् हेतुरसाधारणः, एतज्ज्ञानञ्च साध्याभावव्याप्यवत्ताज्ञानविधया साक्षादेवानुमितिविरोधि, साध्याभावाभावस्य साध्यरूपतया साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वस्य साध्याभावव्यतिरेकव्याप्तित्वात् सत्प्रतिपक्षेऽन्वय-व्यतिरेकोभयव्याप्तेः प्रवेशो न हेतोरत्र तु हेतुप्रवेशो न त्वन्वयव्याप्तेरिति ततो भेदः। उदाहरणन्तु शब्दो-नित्यः शब्दत्वादित्यादि पक्षधर्मविरुद्धमात्रमेव, सद्धेतुस्तु कदाचि-दपि नासाधारण इति मणिकृतः।

प्राञ्चस्तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सर्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वमसाधारणत्वं तद्वान् हेतुरसाधारणः साध्यवत्तया निश्चितः सपक्षः तदभाववत्तया निश्चितो विपक्षः, एवञ्च सद्धेतुरपि कदाचिदसाधारणः

(१) विभाज्ययोः साधारण-विरुद्धयोरभेदेऽपि विभाजकयोः साधारणत्व-विरुद्धत्वयोर्भेदात् न विभागव्याघातः, अत एवोक्तं "उपधेयसङ्करेऽपि उपाधेरसङ्करात्" इतीति तात्पर्य्यम्।

यदा ऽत्वनधिकरण एव साध्य-तद्भावनिश्चयो न हेत्वधिकरणे, एतज्ज्ञानञ्च प्रकृतहेतौ पक्षधर्मताज्ञानदशायां तत्र साध्य-तद्भावोभयव्यतिरेकव्याप्तिग्रहजननद्वारा अनुमितिविरोधि पक्षे साध्य-तद्भावोभयव्याप्यत्त्वाज्ञाने परस्परविरोधेन द्वयोरेवानुमित्यनुत्पत्तेः, उभयव्याप्तिग्राहकत्वन्तु साध्याभावाभावस्य साध्यरूपतया सर्वसपक्षव्यावृत्तत्वांशज्ञानस्य साध्याभाव-हेत्वोर्व्यतिरेकसहचारज्ञानरूपत्वेन साध्याभावव्यतिरेकव्याप्तिग्राहकत्वात्, सर्वविपक्षव्यावृत्तत्वांशज्ञानस्य च साध्य-हेत्वोर्व्यतिरेकसहचारज्ञानरूपत्वेन साध्यव्यतिरेकव्याप्तिग्राहकत्वाद्बोध्यं।

यद्वा तादृशोभयव्यावृत्तत्वग्रहस्य साध्य-तद्भावोभयव्याप्तिग्रहप्रतिबन्धद्वारा दूषकत्वं विरोध्यनुमितिसामग्र्या इव विरोधिव्याप्तिग्राहकसहचारज्ञानयोरपि परस्परं प्रतिबन्धकत्वात्, न तु उभयव्याप्तिग्रहजननद्वारा दूषकत्वं एकस्मिन् धर्मिणि विरोध्युभयव्याप्यत्वस्य ग्रहीतुमशक्यत्वादित्याहुः।

साम्प्रदायिकास्तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सर्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वमेवासाधारण्यं तद्वान् हेतुरसाधारणः, परन्तु सपक्षः साध्यवान् विपक्षस्तदभाववान् निश्चितत्वज्ञानस्य यथोक्तरूपेण दूषकतायामनुपयोगात्, उदाहरणन्तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनावृत्तिहेतुकं वह्निमानाकाशादित्यादिरेव, हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्वृत्तिः साध्याभाववद्वृत्तिर्वा कदाचिदपि नासाधारण इत्याहुः।

'अनुपसंहारीति साध्यसन्देहाक्रान्तविश्वकत्वमनुपसंहारित्वं केवलान्वयिधर्मव्यापकधर्मिताकसाध्यसन्देहविषयवृत्तित्वमिति यावत्

तद्वान् हेतुरनुपसंहारी, उदाहरणन्तु सर्व्वमनित्यं प्रमेयत्वात्, सर्व्व-मभिधेयं प्रमेयत्वादित्यादि सर्वपक्षकानुमानमात्रमेव, एतज्ज्ञा-नञ्चान्वय-व्यतिरेकोभयव्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकमेवेति प्राञ्चः।

मिश्रास्तु स्वरूपसत्तथाविधसंशयविषयो यस्तद्वृत्तित्वज्ञानं सह-चारसंशयसामग्रीतया सहचारांशे व्याप्तिनिश्चयप्रतिबन्धकं तदुत्तरं सामानाधिकरण्यसंशयोत्पत्तेः तस्य तत्सामग्रीत्वात् इत्याहुः।

नव्यास्तु हेतौ साध्याभावव्यापकाभावप्रतियोगित्वरूपव्यतिरेक-व्याप्तिज्ञानविरोधिहेत्वाभासोऽनुपसंहारी स च साध्याभावव्यापकी-भूताभावाप्रतियोगी हेतुः साध्याभावाव्यापको हेत्वभावः अभावा-प्रतियोगि साध्यं अभावाप्रतियोगी हेतुश्चेत्यादि, उदाहरणञ्च केव-लान्वयिसाध्यकमात्रं केवलान्वयिहेतुकमात्रं व्यभिचारिमात्रञ्चेति(१) प्राहुरिति संक्षेपः।

नन्वसाधारणानुपसंहारिणोः सव्यभिचारान्तर्भावस्तदा स्याद्यदि तत्त्रितयसाधारणमेकं लक्षणमभिधातुं शक्यते, न चैवं, इत्यभि-प्रायेण शङ्कते, 'तत्रेति, साध्य-तदभावेति अस्ति च साधारणस्य साध्यसमानाधिकरणत्वेन साध्यप्रसञ्जकत्वं साध्याभावसमानाधि-करणत्वेन च साध्याभावप्रसञ्जकत्वं, असाधारणस्य साध्याभावव्यति-रेकासहचारित्वेन साध्याभावप्रसञ्जकत्वं साध्यव्यतिरेकासहचारित्वेन

---

(१) केवलान्वयिसाध्यकस्थले अभावाप्रतियोगिसाध्यस्य अनुपसंहारित्वं केवलान्वयिहेतुकस्थले अभावाप्रतियोगिहेतोः अनुपसंहारित्वं, व्यभि-चारिमात्रस्थले साध्याभावव्यापकीभूताभावाप्रतियोगिहेतोः साध्याभावा-व्यापकहेत्वभावस्य अनुपसंहारित्वमिति भावः।

भयं प्रत्यसाधकत्वात् अनापादकत्वाच्च। नाप्युभय-

साध्यप्रसञ्जकत्वं,[(१)] अनुपसंहारिणः साध्यवत्तया ज्ञातवृत्तित्वेन साध्य-प्रसञ्जकत्वं, साध्याभाववत्तया ज्ञातवृत्तित्वेन साध्याभावप्रसञ्जकत्व-मित्यभिमानः। अत्र प्रसक्तिरनुमितिरापत्तिर्वा तज्जनकत्वञ्च न फलोपधायकत्वं फलानुपधायके अव्याप्त्यापत्तेः उभयव्याप्तिभ्रमेण तदुपधायके सद्धेतावतिव्याप्त्यापत्तेः किन्तु तत्स्वरूपयोग्यता वाच्या स्वरूपयोग्यत्वञ्च तदुभयव्याप्त्यादिमत्त्वं तच्च न सम्भवति विरुद्धो-भयव्याप्यत्वस्य एकत्रासम्भवादित्याह, 'एकस्येति, 'उभयं प्रति' विरु-द्धोभयं प्रति, तेनैकस्य द्रव्यत्वादेः संयोग-तदभावोभयसाधकत्वेऽपि न क्षतिः, 'असाधकत्वात्' अनुमितिस्वरूपायोग्यत्वात्, 'अनापाद-कत्वात्' आपत्तिस्वरूपायोग्यत्वात्। 'उभयपक्षेति, 'पक्षपदं धर्म्मि-परं, साध्यवद्वृत्तित्वे सति साध्याभाववद्वृत्तित्वमित्यर्थः, 'उभयव्या-वृत्तत्वमिति सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वमित्यर्थः, 'वाकारश्चार्थे, यावत्त्वेन सपक्ष-विपक्षौ विशेषणीयौ, तेन न धूमादावतिव्याप्तिः[(२)], इदमुप-

(१) साध्यवद्व्यावृत्तत्वे सति साध्याभाववद्व्यावृत्तरूपस्यासाधारणस्य सा-ध्यवद्व्यावृत्तत्वमेव साध्याभावव्यतिरेकासहचारित्वं, साध्याभाववद्व्यावृत्तत्व-मेव साध्यव्यतिरेकासहचारित्वं, तच्च साध्य-तदभावोभयव्याप्यत्वरूपं तादृशव्याप्तिविशिष्टस्य हेतोः साध्य-तदभावप्रसञ्जकत्वमिति भावः। अत्र ग्रन्थस्तु आदर्शपुस्तकेषु सर्व्वत्र साध्याभावव्यतिरेकासहचारित्वेन इति पाठो वर्त्तते स न समीचीन इति ध्येयम्।

(२) तथाच वह्निमान् धूमादित्यादौ धूमस्य यत्किञ्चित्सपक्षे अयो-गोलके विपक्षे च व्यावृत्तत्वेऽपि नासाधारणत्वमिति भावः।

पक्षवृत्तित्वं उभयव्यावृत्तत्वं वा तत्त्वम् अननुगमात्।
अथ साध्यसंशयजनककोटिद्वयोपस्थापकपक्षधर्म्मता-

---

लक्षणं साध्यसन्देहाक्रान्तविशिष्टत्वमित्यपि बोध्यं अन्यथा अनुपसंहार्य्यलाभात्, 'अननुगमादिति प्रथमस्य साधारणमात्रे, द्वितीयस्यासाधारणमात्रे, तृतीयस्यानुपसंहारिमात्रे सत्त्वादिति भावः। साधारणधर्म्मवद्धर्म्मिज्ञानजन्या असाधारणधर्म्मवद्धर्म्मिज्ञानजन्या विप्रतिपत्तिवाक्यजन्या वा या कोट्युपस्थितिः सैव संशयजनिका न तु कोट्युपस्थितिमात्रं ह्रदे वह्निर्नास्तीति ज्ञानस्य प्रतियोगिविधया वह्निविषयकत्वेन वह्नि-तदभावोभयकोट्युपस्थितिरूपस्य सत्त्वेऽपि सन्निकृष्टपर्व्वतादौ संशयाभावेन तथैवान्वय-व्यतिरेकात्, साधारणधर्म्मश्च कोटिद्वयसहचरितो धर्म्मः, असाधारणधर्म्मश्च कोटिद्वयवत्तया निश्चितसकलव्यावृत्तो धर्म्मः सकलकोटिद्वयवद्व्यावृत्तधर्म्मो वा यथा गगनादिः समवायादिसम्बन्धेन स्थाणुत्व-तदभाववद्व्यावृत्तप्रमेयत्वादिर्वा, साधारणधर्म्मवत्त्वादिकन्तु येन सम्बन्धेन साधारणत्वादि तेन सम्बन्धेन बोध्यं, तेन विषयत्वसम्बन्धेनात्मत्व-तदभावसहचरितस्य संयोगादिसम्बन्धेनात्मत्व-तदभाववद्व्यावृत्तस्य वा समवायसम्बन्धेनात्मनि ज्ञानादात्मत्व-तदभावोपस्थितावपि न संशयः। न च परस्परं व्यभिचारान्न तादृशोपस्थितित्वादीनां कारणतावच्छेदकत्वमिति वाच्यं। अनुमितौ व्याप्तिज्ञानादिवदव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धेन तत्तत्कोटिद्वयोपस्थितिविशिष्टत्वस्यैव कार्य्यतावच्छेदकत्वात्। न चैवं संशयत्वावच्छेदेन कारणालाभ इति वाच्यं। तत्र

ज्ञानविषयत्वे सति हेत्वभिमतः सः, विप्रतिपत्तिस्तु

धर्म्मितावच्छेदकविशिष्टधर्म्मिज्ञानस्यैव कारणत्वात्। न च एतादृश-कोट्युपस्थितीनामेव सन्देहजनकत्वमिति नियमे भ्रमत्वघटकतया कोटिद्वयोपस्थितिरूपस्य भ्रमत्वसंशयस्य कथमर्थसंशयजनकत्वं तस्य भ्रमत्व-तदभावसाधारणज्ञानत्वलक्षणधर्म्मवद्धर्म्मिज्ञानजन्यत्वेऽपि अर्थ-तदभावसाधारणधर्म्मवद्धर्म्मिज्ञानाजन्यत्वादिति वाच्यं। तत्रापि भ्रम-त्वसंशयरूपकोट्युपस्थितेरर्थसन्देहाजनकत्वात् किन्तु भ्रमत्वसंशयान-न्तरं ज्ञानविषयतात्मकसाधारणधर्म्मदर्शनादर्थ-तदभावोपस्थितेरेव सन्देहजनकत्वात् भ्रमत्वसंशयानुविधानन्तु प्रतिबन्धकापसरणार्थ-मिति प्राचीनमतानुसारेण लक्षणमाह, 'अथ साध्येति, अत्र 'जन-कान्तमुपस्थापकपदप्रकृत्यर्थस्य उपस्थितेर्विशेषणं तथाच साध्यसन्देह-जनिका या कोटिद्वयोपस्थितिस्तज्जनकस्य पक्षधर्म्मताज्ञानस्य विषयो यत्र इति बहुब्रीहिणा साध्यसन्देहजनककोटिद्वयोपस्थितिजनक-पक्षधर्म्मताज्ञानविषयवत्त्वे सति हेत्वभिमत इत्यर्थः, 'पक्षधर्म्मताज्ञानं' पक्षविशेष्यकज्ञानं, भवति च साध्य-तदभाववद्वृत्तिर्हेतुमान् पक्ष-इति पक्षविशेष्यकज्ञानं सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तहेतुमान्पक्ष इति पक्षविशेष्यकज्ञानञ्च साध्यसन्देहजनककोट्युपस्थितिजनकं तद्विषयः साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वरूपं साधारणत्वं सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वरूप-मसाधारणत्वञ्च साधारणासाधारणहेत्वोरिति लक्षणसमन्वयः, 'पक्ष-धर्म्मताज्ञानविषयत्वे सति' इति यथाश्रुतं न सङ्गच्छते वह्नि-तद-भाववद्वृत्तिधूमवान् पर्व्वत इति पक्षविशेष्यकभ्रमस्य तथाविध-

कोटिद्वयोपस्थितिजनकतया तद्विषये धूमेऽतिव्याप्त्यापत्तेः। नन्वेवमपि वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्नि-तदभाववद्वृत्तिप्रमेयत्ववान् पर्व्वत इति ज्ञानस्य तथाविधकोटिद्वयोपस्थितिजनकतया तद्विषयप्रमेयत्ववति धूमेऽतिप्रसङ्गः। अथ विषयपदं विशेषणतावच्छेदकपरं, तथाच पक्षे यद्रूपावच्छिन्नवत्त्वज्ञानं साध्यसन्देहजनककोटिद्वयोपस्थितिजनकं तद्रूपावच्छिन्नवत्त्वं पर्य्यवसितोऽर्थः तच्च रूपं साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वादिरूपं साधारणत्वादिकमेवेति नातिप्रसङ्ग इति चेत्। न। तथापि वह्नि-तदभाववद्वृत्तिधूमवान् पर्व्वत इति भ्रमविशेषणतावच्छेदकधूमत्वमादाय वह्नि-तदभाववद्वृत्तिधूमवान् पर्व्वतः प्रमेयवांश्चेति समूहालम्बनज्ञानविशेषणतावच्छेदकप्रमेयत्वमादाय च धूमेऽतिव्याप्तेर्दुर्व्वारत्वात् साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वादिरूपसाधारण्यादिविशिष्टहेतुमत्ताभ्रमस्य तथाविधकोटिद्वयोपस्थितिजनकतया साध्यवद्वृत्तित्वांशस्यापि तादृशरूपत्वेन तमादाय सद्धेतावतिव्याप्तेर्दुर्व्वारत्वाच्च, किञ्च धूमीयवृत्तित्वे वह्नि-तदभाववदीयत्वं गृह्णतो वह्नि-तदभाववद्वृत्तिधूमवान् पर्व्वत इति भ्रमस्यापि तथाविधतया तादृशवृत्तित्ववत्त्वात् धूमेऽतिव्याप्तिः। न च भ्रमभिन्नत्वेन ज्ञानं विशेषणीयं अतो नैषां दूषणानामवकाश इति वाच्यं। तथापि साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वरूपसाधारण्यविशिष्टप्रमेयत्वादिमत्ताज्ञानस्य भ्रमभिन्नस्यैव तथाविधकोटिद्वयोपस्थितिजनकतया साध्यवद्वृत्तित्वांशस्यापि तादृशरूपत्वेन तमादाय सद्धेतावतिव्याप्तेर्दुर्व्वारत्वात् वह्नि-तदभाववद्वृत्तिघटवान् धूमवांश्च पर्व्वतः वह्नि-तदभाववद्वृत्तिघटवान् प्रमेयत्वविशिष्टधूमवांश्च पर्व्वत इत्यादि-

भ्रमभिन्नज्ञानविशेषणतावच्छेदकधूमत्व-प्रमेयत्वादिमादाय धूमेऽति-व्याप्तेर्दुर्व्वारत्वाच्च । न च वस्तुगत्या साधारण्याश्रयो यो धर्म्म-स्तद्धर्म्मिज्ञानजन्या कोटिद्वयोपस्थितिर्न संशयजनिका स्थाणुत्वादि-व्याप्यधर्म्मेऽपि स्थाणुत्वादिसाधारण्यभ्रमात् संशयोदयात् स्थाणु-त्वादिसाधारण्याद्यज्ञाने च वस्तुतः स्थाणुत्वादिसाधारण्योच्चत्वस्य ज्ञानेऽपि संशयानुदयाच्च अतः साधारण्यादिप्रकारकधर्म्मवद्धर्म्मि-ज्ञानजन्यकोट्युपस्थितिरेव संशयजनिका तथाच पक्षे यद्रूपविशिष्ट-वत्ताज्ञानजन्यकोटिद्वयोपस्थितित्वं साध्यसन्देहजनकतावच्छेदकता-पर्य्याप्त्यधिकरणं तद्रूपवत्त्वं विवक्षितमिति वाच्यं । साध्य-तदभाववद्-वृत्तित्वविशिष्टवत्ताज्ञानजन्यकोटिद्वयोपस्थितित्वस्यापि अतथात्वेना-सम्भवापत्तेः, न हि तादृशकोट्युपस्थितित्वेन जनकत्वं, साध्यप्रति-योगिकत्वेनाभावान्तरावगाहिनो भ्रमादर्थसंशयोत्पत्तेरिति । मैवं । पक्षविशेष्यक-यद्रूपविशिष्टप्रकारकज्ञानजन्यकोट्युपस्थितित्वं साध्यस-न्देहजनकतानतिरिक्तवृत्ति तद्रूपावच्छिन्नत्वस्य विवक्षितत्वात् । अथैव-मपि वह्निमद्वृत्तित्वांशमादाय धूमेऽतिव्याप्तिः वह्न्यभाववद्वृत्ति-त्वांशमादाय विरुद्धे जलत्वादावतिव्याप्तिश्च वह्निसंशयत्वावच्छिन्नं प्रति वह्निसहचरितधर्म्मवद्धर्म्मिज्ञानजन्यवह्न्युपस्थितित्वेन वह्न्यभावसहचरित-धर्म्मवद्धर्म्मिज्ञानजन्यवह्न्यभावोपस्थितित्वेन च दण्ड-चक्रवद्धेतुतया केवलवह्निसहचरितत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारकज्ञानजन्यकोट्युपस्थितित्वांश-स्यापि तादृशजनकतानतिरिक्तवृत्तित्वात् । न हि वह्निसंशयत्वेन कार्य्यत्वं वह्नि-तदभावोभयसहचरितधर्म्मवद्धर्म्मिज्ञानजन्यवह्नि-तद-भावोपस्थितित्वेन जनकत्वमिति हेतु-हेतुमद्भावः, प्रत्येकसहच-

रितधर्मद्वयज्ञानजन्यकोटिद्वयोपस्थितितोऽपि संशयोत्पत्तेः, अतएव दीधितौ धर्मस्यैकत्वं ज्ञानस्य च निश्चयत्वं न विवक्षितमित्युक्तमुपाधिवादे, एकस्मिन्नेव धर्म्मे साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वयोः प्रत्येकमात्रविषयकक्रमिकज्ञानद्वयेन जनितादपि कोटिद्वयज्ञानात् संशयोत्पत्तेश्चेति चेत्। न। धर्म-ज्ञानयोरुभयोरेव एकत्वमपेक्षितमिति-प्राचीनमतानुसारेण एतल्लक्षणप्रणयनात्, रूपवान् स्पर्शादित्यादिकस्य विरुद्धमेव न तु व्यभिचारि कस्यापि स्पर्शस्य रूप-तदभाववद्वृत्तित्वाभावात्। न च सर्व्वदा तादृशरूपविशिष्टत्वं सव्यभिचारित्वं यद्वाकदाचित्तादृशरूपविशिष्टत्वं वा आद्ये वह्निमान् रासभादित्यादौ रासभस्य महानसादिमात्रवृत्तित्वदशायां वह्न्यभाववत्संयुक्तत्वरूपविशिष्टत्वाभावेन सव्यभिचारित्वानुपपत्तेः, द्वितीये शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यत्र पक्षे नित्यत्वाभावस्य साध्यस्य निश्चयदशायामपि सव्यभिचारित्वापत्तिः पक्षातिरिक्तमात्रे साध्य-तदभावनिश्चयदशायां शब्दत्वे सर्व्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वरूपासाधारणत्वसत्त्वादिति वाच्यं। असाधारणत्वलक्षणे सपक्ष-विपक्षत्वं न निश्चयगर्भमपि तु वास्तविकसाध्य-तदभाववत्त्वमेव तदुभयव्यावृत्तत्वस्य कदाचिदपि तत्र नास्ति। न चैवं पक्षातिरिक्ते साध्य-तदभावनिश्चयदशायामपि तस्यासाधारणत्वं न स्यादिति वाच्यं। इष्टत्वात्, साध्यवद्वृत्तिः साध्याभाववद्वृत्तिर्वा कदाचिदपि नासाधारणः किन्तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनावृत्तिरेवासाधारण इति साम्प्रदायिकमतानुसारेण एतल्लक्षणकरणादिति न काप्यनुपपत्तिः। अत्र धर्मितावच्छेदकविशिष्टधर्मिणि साधारणादिधर्मप्रकारकज्ञानजन्यकोटिद्वयोपस्थिते-

रेव साध्यसन्देहजनकतया साध्य-तदभावसहचरितधर्मवानित्यादि-निर्धर्मितावच्छेदकज्ञानेन सम्बन्धिज्ञानविधया जनितायाः कोट्युप-स्थितेः साध्यसन्देहाजनकतया अनतिरिक्तवृत्तित्वघटितलक्षणस्या-सम्भवापत्तिरिति पक्षविशेष्यकेति यत्किञ्चिद्धर्मितावच्छेदकवि-शिष्टविशेष्यकार्थकं। न च पक्षविशेष्यक-यद्रूपावच्छिन्नप्रकारकज्ञानं कोटिद्वयोपस्थितिजनकं तद्रूपावच्छिन्नत्वमित्येवास्तु किं साध्यसन्देह-जनकतानतिरिक्तवृत्तित्वप्रवेशेनेति वाच्यं। वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्निमदनुवृत्तत्व-वह्न्यभाववद्व्यावृत्तत्वविषयकस्य वह्निमदनुवृत्त-वह्न्य-भाववद्व्यावृत्तधूमवान् पर्व्वत इति ज्ञानस्य सम्बन्धिज्ञानविधया वह्नि-तदभावोभयोपस्थापकतया वह्निमदनुवृत्तत्वे सति वह्न्यभाववद्व्या-वृत्तत्वमादाय धूमादावतिव्याप्त्यापत्तेः वह्नि-तदभाववद्वृत्तिधूमवान् पर्व्वतः प्रमेयवांश्चेति समूहालम्बनभ्रमस्य साधारणधर्म्मज्ञानविधया कोटिद्वयोपस्थितिजनकत्वेन प्रमेयत्वादिमादाय धूमादावतिव्याप्त्या-पत्तेश्च, विवक्षिते तु साधारणादिधर्म्मवद्धर्म्मिज्ञानजन्यकोट्युपस्थितेरेव सन्देहजनकतया तादृशकोट्युपस्थितेः साध्यसन्देहजनकत्वाभावा-न्नातिव्याप्तिः। न च पक्षविशेष्यक-यद्रूपावच्छिन्नप्रकारकज्ञानत्वं कोटिद्वयोपस्थितिजनकतावच्छेदकं तद्रूपावच्छिन्नत्वं विवक्षणीयं स-म्बन्धिज्ञानस्य पक्षविशेष्यक-सम्बन्धिप्रकारकज्ञानत्वेन न हेतुः किन्तु सम्बन्धिज्ञानत्वेनेति नोक्तातिप्रसङ्ग इति वाच्यं। साधारणादिधर्म्मव-द्धर्म्मिज्ञानस्योद्बोधकविधया तत्तद्व्यक्तित्वेनैव कोट्युपस्थितिं प्रति जन-कत्वादसम्भवापत्तेः। अत एव पक्षविशेष्यक-यद्रूपावच्छिन्नप्रकारक-ज्ञानत्वं कोटिद्वयोपस्थितिजनकतानतिरिक्तवृत्ति तद्रूपावच्छिन्नत्व-

विवक्षणेन न कोऽपि दोष इत्यपि परास्तं। पक्षविशेष्यक-साधारण्यादिधर्म्मप्रकारकज्ञानत्वस्य कोटिद्वयोपस्थित्यनुपधायके साधारण्यादिधर्म्मवद्धर्म्मिज्ञानेऽपि सत्त्वेनातिरिक्तवृत्तित्वादसम्भवापत्तेः तत्तद्धर्म्मित्वस्यैव कोटिद्वयोपस्थितिजनकतावच्छेदकतया जनकतापदेन स्वरूपयोग्यताविवक्षणेऽपि अनिस्तारात्। न च तथापि यत्किञ्चिद्धर्म्मितावच्छेदकविशिष्टविशेष्यक-यद्रूपविशिष्टप्रकारकज्ञानत्वं साध्यसन्देहजनकतानतिरिक्तवृत्ति तद्रूपविशिष्टत्वमित्येवास्तु किं कोटिद्वयोपस्थितिप्रवेशेनेति वाच्यं। सामान्यतः साध्यसन्देहस्य सामान्यतस्तज्जनकत्वस्य च लक्षणघटकतया पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ प्रमेयत्वादिमादाय धूमादावतिव्याप्त्यापत्तेः पर्व्वतत्वधर्म्मितावच्छेदककप्रमेयत्वादिविशिष्टप्रकारकज्ञानत्वस्य धर्म्मितावच्छेदकप्रकारकधर्म्मिज्ञानविधया पर्व्वतो वह्निमान्न वा प्रमेयं वह्निमन्न वेत्यादिसाध्यसन्देहजनकताया अनतिरिक्तवृत्तित्वात्। न च यत्किञ्चिद्धर्म्मितावच्छेदकविशिष्टविशेष्यक-यद्रूपविशिष्टप्रकारकज्ञानत्वं तद्धर्म्मविशिष्टांशे या तद्धर्म्मितावच्छेदककसाध्यसन्देहजनकता तदनतिरिक्तवृत्ति तद्रूपविशिष्टत्वं विवक्षणीयं किं कोट्युपस्थितित्वप्रवेशेनेति वाच्यं। तथापि लक्षणान्तरत्वात् सामान्यतः साध्यसन्देहजनकत्वघटितलक्षणे वैयर्थ्याभावात् द्रव्यं गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ गुण-कर्मान्यत्वमादाय विशिष्टसत्त्वादौ सद्धेतुरूपेऽतिव्याप्त्यापत्तेश्च गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावानित्याकारकगुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताधर्म्मितावच्छेदककगुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताप्रकारकज्ञानत्वस्य शाब्दातिरिक्त-

ज्ञाने[१] प्रसिद्धस्य धर्मितावच्छेदकप्रकारकज्ञानविधया गुण-कर्मा-न्यत्वविशिष्टसत्तांशे गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताधर्मितावच्छेदककगुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावद्द्रव्यं न वेति साध्यसन्देहजनकताया अन-तिरिक्तवृत्तित्वात्। न च विवक्षितेऽपि व्याप्यवत्तासंशयजन्यकोट्युप-स्थितेरपि व्यापकवत्तासंशयहेतुतामते धर्मिणि साध्यव्याप्यत्ववि-शिष्टप्रकारकसंशयजन्यकोट्युपस्थितेः साध्यसन्देहजनकत्वात् साध्यव्या-प्यत्वमादाय तद्धेतावतिव्याप्तिरिति वाच्यं। साध्यव्याप्यत्वविशिष्टप्र-कारकज्ञानजन्यकोट्युपस्थितित्वस्य साध्यसन्देहाजनकसाध्यव्याप्यत्ववि-शिष्टप्रकारकनिश्चयजन्यकोट्युपस्थितावपि सत्त्वेनातिरिक्तवृत्तित्वात्। 'हेतुत्वभिमत इति विशेषणन्तु यद्रूपविशिष्टप्रकारकज्ञानजन्यकोट्युप-स्थितित्वमित्यत्र हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन यद्रूपविशिष्टप्रकारकत्व-लाभाय, अन्यथा अयमात्मा ज्ञानादित्यादौ ज्ञानस्य समवायेन व्यभिचारित्वापत्तेः विषयतासम्बन्धेन आत्मत्व-तदभावसहचरितस्य ज्ञानस्य विषयतासम्बन्धेनात्मनि ज्ञानस्य साध्यसन्देहजनककोट्युप-स्थितिजनकत्वात् विवक्षिते तु समवायेन तादृशज्ञानवत्ताज्ञानजन्य-कोट्युपस्थितेः साध्यसन्देहाजनकत्वान्नातिप्रसङ्गः, येन सम्बन्धेन तदुभयकोटिसहचरितत्वं तेन सम्बन्धेन तद्वत्त्वज्ञानस्य साध्यसन्देह-जनकत्वादिति सङ्क्षेपः।

ननु शब्दोऽनित्यो न वेति विप्रतिपत्तिवाक्येऽतिव्याप्तिः तस्यापि साध्यसन्देहजनककोटिद्वयोपस्थापकज्ञानविषयत्वादित्यत आह,

---

(१) उद्देश्यतावच्छेदक-विधेययोरैक्यात् शाब्दबोधासम्भवः इत्यत उक्तं शाब्दातिरिक्तज्ञान इति।

प्रत्येकं न तथा न वा पक्षवृत्तिः साधारणमन्वयेन असाधारणं व्यतिरेकेण अनुपसंहारी पक्ष एवोभय-साहचर्य्येण कोटिद्वयोपस्थापकः। केवलान्वयिसाध्य-

'विप्रतिपत्तिष्विति, 'न तथेति नोभयकोट्युपस्थापकज्ञानविषय-इत्यर्थः, प्रतियोगिवाचकपदज्ञानेन भावकोट्युपस्थापनात् नञा चा-भावकोट्युपस्थापनादिति भावः। तथाच लक्षणस्थदयपदेन तदा-र्थमिति हृदयं(१)। प्रकारान्तरेण विप्रतिपत्तावतिव्याप्तिमुद्धरति, 'न वा पक्षवृत्तिरिति न वा कोटिद्वयोपस्थापकपक्षधर्म्मताज्ञानविषय-इत्यर्थः।

साधारणादिषु लक्ष्येषु लक्षणं सङ्गमयति, 'साधारणमिति, 'अन्वयेन' साध्य-तदभावोभयवद्वृत्तित्वप्रकारेण, धर्म्मिणि ज्ञातं सदिति शेषः, 'उभयकोट्युपस्थापक इत्यग्रेतनेन लिङ्गविपरिणामेनान्वयः, 'असाधारणमिति, 'व्यतिरेकेण' सर्व्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वप्रकारेण, धर्म्मिणि ज्ञातं सदिति शेषः, 'कोटिद्वयोपस्थापक इत्यग्रेणान्वयः, 'अनुपसंहारीति सर्व्वमनित्यं प्रमेयत्वादित्यनुपसंहारीत्यर्थः, 'उभय-साहचार्य्येणेति साध्य-तदभावोभयकोटिसहचरितत्वप्रकारेणेत्यर्थः, ज्ञातः सन्निति शेषः। यद्यपि साध्य-तदभावसहचरितत्वं नानुप-संहारित्वं किन्तु साध्यसन्देहाक्रान्तविश्वकत्वमेव तत्प्रकारकज्ञानञ्च न तादृशकोट्युपस्थापकं साधारणादिवह्निर्भूतत्वात्। न चानुप-

(१) तथाच न कोटिद्वयोपस्थापकत्वं प्रत्येकस्येति भावः।

वानुपसंहारी अयं घट एतत्त्वादित्यसाधारणश्च स-
द्धेतुरेव तद्ज्ञानं दोषः पुरुषस्य, अत एवासाधारण-
प्रकरणसमयोरनित्यदोषत्वम् अन्यथा सद्धेतौ बाधा-

---

संहारित्वज्ञाने नियमतः साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वरूपसाधारणत्वस्यापि विषयत्वात् साधारणधर्मज्ञानविधयैव तज्ज्ञानस्यापि तादृशकोट्युपस्थापकत्वमिति वाच्यं। तज्ज्ञाने साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वभानेऽपि साध्य-तदभावांशे तस्याप्यनिश्चयत्वात् साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वनिश्चयस्यैव च साध्यसन्देहजनककोट्युपस्थितिजनकत्वेन प्राचीनैरभ्युपगमात्। न च निश्चयत्वनिवेशे गौरवं, प्राचीनैस्तथैवानुभवस्य निर्णीतत्वेन गौरवस्याकिञ्चित्करत्वात्, अन्यथा साधारणधर्मवद्धर्मिज्ञानजन्यकोट्युपस्थितेरेव संशयजनकत्वमिति नियमे मानाभावात् साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वादिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानजन्योपस्थितित्वेन हेतु-तया निश्चयत्वस्यावच्छेदककोटावप्रवेशाच्च तादृशविषयताविशेषस्य साध्याद्यंशे निश्चय एव सत्त्वात्, तथापि नेदं व्यभिचारात्मकस्य दोषस्य लक्षणं येनानुपसंहारित्वज्ञानस्य तादृशकोट्युपस्थित्यजनक-तया अनुपसंहारित्वेऽव्याप्तिः स्यादपि तु व्यभिचारिहेतोर्लक्षणं तस्य चानुपसंहारित्वमादायानुपसंहारिण्यगमनेऽपि न क्षतिः साध्य-तदभावसहचरितत्वरूपसाधारणत्वमादायैव तत्रापि लक्षणसम्भवात्। न चानुपसंहारितादशायां हेतौ साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वनिश्चय एव नास्तीति वाच्यं। हेतौ तन्निश्चयाभावेऽपि यदा कदाचित्तत्र कुत्रचित्तन्निश्चयस्य तादृशकोट्युपस्थितिजनकतयैव तदादाय धर्मिणि

द्विमाने हेत्वाभासाधिक्यापत्तिः। न च प्रमेयत्वेना-
भेदानुमाने शब्दोऽनित्यः शब्दाकाशान्यतरत्वादित्यत्र

यद्रूपावच्छिन्नवत्ताज्ञानं साध्यसन्देहजनककोटिद्वयोपस्थितिजनकं तद्रूपवत्त्वरूपस्य लक्षणस्य सम्भवादित्यभिप्रायः।

ननु सर्वं प्रमेयं वाच्यत्वादित्यादिकेवलान्वयिसाध्यकानुपसंहारिण्यव्याप्तिः तत्र साध्याभावस्याप्रसिद्ध्या तत्सम्बन्धाप्रसिद्धेः साध्य-तद्भावसहचरितत्वरूपसाधारण्यमादाय लक्षणासंभवाच्च एवं अयं घटः एतत्त्वादित्यत्र यदा पूर्वं पक्षे घटत्वं निश्चितं तदुत्तरञ्च तत्रैव घटे स घटो नायमिति भ्रमो जातस्तदा घटत्ववत्तया निश्चितव्यावृत्तत्वेन गृह्यमाणतया असाधारणे एतत्त्वे अव्याप्तिः वास्तवतद्व्यावृत्तत्वाभावादित्यत आह, 'केवलान्वयीति, 'अनुपसंहारी' साध्यसन्देहाक्रान्तविषयकः, 'असाधारणः' पक्षमात्रवृत्तिः, 'सद्धेतुरेवेति, तथाचालक्ष्यत्वान्नाव्याप्तिरिति भावः। इदमुपलक्षणं सर्वं वह्निमद्धूमादित्याद्यन्वय-व्यतिरेकिसाध्यकानुपसंहार्य्यपि न लक्ष्यः तत्र साधारणत्वमादायापि लक्षणासम्भवादित्यपि बोध्यं।

ननु सद्धेतुत्वाज्ञानदशायां सोऽपि दुष्ट एवेत्यत आह, 'तदज्ञानमिति सद्धेतुत्वाज्ञानमित्यर्थः, 'पुरुषस्येति, न तु हेतोरपि दोष इत्यर्थः[१]। नन्वेवं सद्धेतुस्थले असाधारण-प्रकरणसमयोरनित्यदोषत्वं कथं व्यवह्रियते यदाकदाचिदपि तस्य दुष्टत्वाभावादित्यत आह, 'अतएवेति नित्यदोषत्वाभावादेवेत्यर्थः, 'अनित्यदोषत्वमिति, व्यव-

(१) न तु हेतुरपि दुष्ट इति भाव इति ख०।

च साधारणोऽव्याप्तिः तयोः साध्यवद्वृत्तित्वेन विरुद्ध-त्वादिति चेत्। न। एतद्ज्ञानेऽपि साधारण्यादिप्रत्ये-

---

ह्रियत इति शेषः, दोषशून्यत्वात्तत्रानित्यदोषव्यवहारो न तु दोषवत्त्वादिति भावः। यद्वा 'अतएव' पुरुषस्य दोषादेव, तथाच भ्रान्ता एवं व्यवहरन्ति न वयमित्यर्थः। 'अन्यथेति पुरुषस्य सद्धेतुत्वाज्ञानदशायां हेतोर्दुष्टत्वे इत्यर्थः, 'बाधादिज्ञान इति, तदानीमपि सद्धेतुत्वाज्ञानस्याविशिष्टत्वादिति भावः। 'प्रमेयत्वेनेति अयमेतदभिन्नः प्रमेयत्वादित्यत्रेत्यर्थः, 'अव्याप्तिरिति, तत्र पक्षस्यैव साध्यवत्तया साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वनिश्चयाभावेनोभयकोट्युपस्थापकत्वाभावादिति भावः। 'साध्यवद्वृत्तित्वेनेति निश्चितसाध्यवद्वृत्तित्वेनेत्यर्थः, अनवगतसाध्यसहचरितत्वे सति अवगतसाध्याभावसहचरितस्य विरुद्धत्वादिति भावः। तथाचालक्ष्यमेव तदिति हृदयं। इदञ्चाभ्युपेत्योक्तं वस्तुतो यथोपवर्णितलक्षणस्य न तत्राव्याप्तिः, अन्यथा एवं रूपेणानुपसंहारिण्यव्याप्तिः तत्रापि पक्षे साध्यानिश्चयादिति हृदयं। यद्रूपज्ञानमनुमितिप्रतिबन्धकं तदेव विभाजकोपाधिरित्यभिप्रायेण दूषयति, 'एतद्ज्ञानेऽपीति तादृशपक्षधर्मताज्ञानविषयत्वस्याज्ञानेऽपीत्यर्थः, 'साधारणत्वदीति, 'प्रत्येकस्य ज्ञानात्' प्रत्येकप्रकारकज्ञानात्, इदञ्च स्वानुमितिप्रतिबन्धे हेतुः, 'उद्भावनादिति, साधारणत्वादिप्रत्येकस्योद्भावनादित्यर्थः, इदञ्च परानुमितिप्रतिबन्धे हेतुः, 'उद्भावितेतन्निर्वाहार्थमिति, 'उद्भावितस्यैतस्य' साध्यसन्देहजनककोटिद्वयोपस्थापकपक्षधर्मताज्ञानविषयत्वस्य, 'नि-

कस्य ज्ञानादुद्भावनाच्च स्व-परानुमितिप्रतिबन्धात् उ-द्भावितैतन्निर्वाहार्थं साधारणादेरवश्योद्भाव्यत्वेन तस्यैव दोषत्वाच्च । एतेन पक्षवृत्तित्वे सत्यनुमितिविरोधि-

---

र्व्वाहार्थं' निश्चयार्थमित्यर्थः, साधारण्याद्युद्भावनं विना कथमेतस्य हेतोः तादृशपक्षधर्म्मताज्ञानविषयत्वमिति सन्देहादिति भावः । इदमुपलक्षणं यथोक्तरूपावच्छिन्नस्य सव्यभिचाररूपत्वे यथोक्तरूपवत्त्वमेव व्यभिचारित्वं स्यात् अन्यथा व्यभिचारविशिष्टस्य सव्यभिचारपदार्थत्वाभावात् सव्यभिचारपदस्य पारिभाषिकत्वापत्तेः तच्च व्यभिचारत्वं न सम्भवति उक्तरीत्या अनुपसंहारित्वे अव्याप्तेरित्यपि बोध्यं । 'एतेनेति 'परास्तमित्यग्रेतनेनान्वयः, 'अनुमितिविरोधीति अनुमितिविरोधी यो धर्म्मः 'तत्सम्बन्धाव्याप्तिः' यदा कदाचित् तत्-सम्बन्धवान् सव्यभिचार इत्यर्थः, वह्निमान् रासभादित्यादौ रासभस्य महानसवृत्तितादशायां अनुमितिविरोधिनो व्यभिचारस्य सम्बन्धा-भावात् अव्याप्तिवारणाय यदा कदाचिदिति, असाधारणत्वन्तु साध्य-वद्व्यावृत्तत्वे सति साध्याभाववद्व्यावृत्तत्वं न तु साध्यवत्तया निश्चित-व्यावृत्तत्वे सति साध्याभाववत्तया निश्चितव्यावृत्तत्वं तेन शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यत्र पक्षे साध्य-तदभावान्यतरनिश्चयदशायामपि सव्यभि-चारत्वापत्तिः, पक्षातिरिक्तमात्रे साध्य-तदभावनिश्चयदशायां तत्र सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वरूपासाधारणत्वसत्त्वादिति परास्तं, साध्य-तद-भाववद्व्यावृत्तत्वस्य कदाचिदपि तत्रासत्त्वात्, ह्रदो वह्निमान् धूमा-दित्यादौ स्वरूपासिद्धत्वरूपविरोधिधर्म्ममादाय अतिव्याप्तिवारणाय

सम्बन्धाव्याप्तिरनैकान्तिकः सपक्ष-विपक्षवृत्तित्वमु-
भयव्यावृत्तत्वमनुपसंहारित्वञ्चानुमितिविरोधि तत्स-

---

'पक्षवृत्तित्वे सतीति यथाश्रुतग्रन्थानुयायिनः । तदसत् । व्यभिचा-
रादिज्ञानस्यैवानुमितिविरोधित्वेन व्यभिचारादेरनुमित्यविरोधित्वा-
दसम्भवापत्तेः । न च विरोधित्वं विरोधिज्ञानविषयत्वं तथासति
वह्निमान् वह्नेः वह्निमान् धूमादित्यादौ व्यभिचारादिभ्रमविषय-
वह्नित्व-धूमत्वादिमादाय वह्नि-धूमादावतिव्याप्त्यापत्तेः, समूहा-
लम्बनव्यभिचारादिभ्रमविषयप्रमेयत्वादिमादाय सद्धेतुमात्रेऽतिव्या-
प्त्यापत्तेः । अथ विरोधिज्ञानविषयत्वमित्यत्र ज्ञानं भ्रमभिन्नत्वेन
विशेषणीयं । न च तथापि वह्न्यभाववद्वृत्तिप्रमेयत्वमितिभ्रमभिन्न-
वह्न्यनुमितिप्रतिबन्धकज्ञानविषयवह्नित्व-प्रमेयत्वादिमादायातिव्या-
प्तितादवस्थ्यं इति वाच्यं । अनुमितिपदं हि प्रकृतपक्षमात्रोद्देश्यक-
प्रकृतसाध्यमात्रविधेयक-प्रकृतहेतुमात्रलिङ्गकानुमितिपरं । तथाच
तन्मात्रपक्षक-तन्मात्रसाध्यक-तन्मात्रहेतुकानुमितिप्रतिबन्धकभ्रमभि-
न्नज्ञानविषयो यो धर्म्मो यदाकदाचित् तत्सम्बन्धवान् स हेतुः
तस्मिन् पक्षे तस्मिन् साध्ये सव्यभिचार इति लक्षणपर्य्यवसन्नतया न
कस्यापि दोषस्यावकाश इति चेत् । न । तादृशज्ञानविषयधर्म्मसम्ब-
न्धवत्त्वस्य सव्यभिचारत्वरूपत्वे तादृशज्ञानविषयधर्म्मस्यैव व्यभिचारत्वं
स्यात् अन्यथा व्यभिचारविशिष्टस्य सव्यभिचारपदार्थत्वाभावेन
सव्यभिचारपदस्य पारिभाषिकत्वापत्तेः, तस्य व्यभिचारत्वं न सम्भवति

म्बन्धः प्रत्येकमस्ति विरुद्धोऽप्यनेन रूपेण सव्यभिचार एव उपाधेश्च न सङ्कर इति वक्ष्यत इति निरस्तम्।

एतद्ज्ञाने ज्ञाने वावश्यकप्रत्येकज्ञानस्य दोषत्वात्

---

धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूमत्व-वह्नित्वादेरिव व्यभिचारघटकप्रत्येक-पदार्थस्यापि व्यभिचारत्वापत्तेः सव्यभिचारपदस्य पारिभाषिकत्वे इष्टापत्तौ तादृशज्ञानविषयः सद्धेतुस्तस्मिन् पक्षे तस्मिन् साध्ये सव्यभिचार इत्यस्यैव सम्यक्त्वेन तादृशज्ञानविषयधर्म्मसम्बन्धवत्त्वपर्य्यन्तस्य व्यर्थत्वापत्तेरिति।

नव्यास्तु अनुमितिविरोधी सम्बन्धो यस्येति बहुव्रीहिणा यादृशविशिष्टस्य सम्बन्धो यादृशविशिष्टनिरूपितनिश्चयनिष्ठविषयित्वं अनुमितिविरोधी अनुमितिविरोधितावच्छेदकं तादृशविशिष्ट-स्याव्यावृत्तिरभेदो यस्य इति व्युत्पत्त्या अभेदसम्बन्धेन तादृश-विशिष्टवान् सव्यभिचार इत्यर्थः, तादृशविशिष्टत्वमेव सव्यभिचार-त्वमिति भावः.। अनुमितिपदञ्च प्रकृतपक्षमात्रोद्देश्यक-प्रकृतसाध्य-मात्रविधेयक-प्रकृतहेतुमात्रलिङ्गकानुमितिपरं तेन वह्न्यभाववद्वृ-त्तिप्रमेयत्वादिकमादाय वह्निमान् धूमादित्यादिसद्धेतौ नाति-प्रसङ्गः, तथाच तन्मात्रपक्षक-तन्मात्रसाध्यक-तन्मात्रहेतुकानुमिति-विरोधितावच्छेदकं निश्चयनिष्ठं यादृशविशिष्टनिरूपितविषयित्वं तादृशविशिष्टं तस्मिन् पक्षे तस्मिन् साध्ये तस्मिन् हेतौ व्यभिचारः, अभेदसम्बन्धेन तादृशविशिष्टसम्बन्धी स हेतुः तस्मिन् पक्षे तस्मिन् साध्ये सव्यभिचारः इति व्यभिचार-सव्यभिचारयोर्लक्षणं फलितं।

असाधकतानुमितौ व्यर्थविशेषणत्वाच्च। अत एव

---

यत्पक्षक-यत्साध्यक-यद्धेतुकानुमितिरप्रसिद्धा तदलक्ष्यमेव निर्वह्नि-र्वह्निमानित्यादिवक्तव्यापार्थकत्वात्। हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन तादृशविशिष्टसम्बन्धित्वाभिधाने विशिष्य समवायादिसम्बन्धेन तादृशविशिष्टसम्बन्धित्वाभिधाने वा द्रव्यं सत्त्वादित्यादावव्याप्तिः(१) सामान्यतस्तादृशविशिष्टसम्बन्धित्वाभिधाने चानन्तसम्बन्धिताप्रवेशाद्गौरवमतो विशिष्याभेदसम्बन्धेनेत्युक्तं, अभेदत्वञ्च तादात्म्यत्वं। न च समानकालीनत्वादिसम्बन्धेन तादृशविशिष्टसम्बन्धित्वमेव कुतो नोक्तमिति वाच्यं। अभेदसम्बन्धमपेक्ष्य समानकालीनत्वादेर्गुरुत्वादशोकवनिकान्यायाच्च। अवच्छेदकत्वञ्च अनतिरिक्तवृत्तित्वं तेन साध्यप्रतियोगिकत्वेनाभावान्तरावगाहिनो व्यभिचारादिभ्रमस्यापि प्रतिबन्धकतया साध्याभाववद्वृत्तिहेत्वादिरूपविशिष्टविषयकत्वस्य स्वरूपसम्बन्धरूपप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वविरहेऽपि न क्षतिः(२)।

---

(१) सत्त्वरूपहेतौ समवायसम्बन्धेन न कस्यापि वृत्तित्वमिति भावः।

(२) यादृशविशिष्टविषयकत्वं प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकतानिरूपितस्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकतावदित्युक्तौ एकदेशविषयकत्वस्यापि स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वात् एकदेशेऽतिव्याप्तिरतोऽनाहार्य्याप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितनिश्चयवृत्तित्वविशिष्टयादृशविशिष्टविषयकत्वं प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकतानिरूपितस्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणं तादृशविशिष्टत्वं व्यभिचारत्वं इत्येव वक्तव्यं तथाच प्रतिबन्धकताया अनतिप्रसङ्गानुरोधेन परस्परनिरूप्य-निरूपकभावापन्नविषयताशालिनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकतया विशिष्टविषयकत्वस्य प्रतिबन्धकतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरण-

साध्याव्याप्यत्वे सति साध्याभावाव्याप्यहेत्वाभासत्वं

नन्वेवमपि गन्धप्रागभावकालीनो घटो गन्धवान् पृथिवीत्वादित्यादौ बाधिते सत्प्रतिपक्षिते च बाध-सत्प्रतिपक्षमादायातिव्याप्तिः काञ्चनमयः पर्व्वतो वह्निमान् पर्व्वतादित्यादौ पक्षविशेषणासिद्धे पर्व्वतः काञ्चनमयवह्निमान् वह्नेरित्यादौ साध्यविशेषणासिद्धे पर्व्वतो वह्निमान् काञ्चनमयधूमादित्यादौ हेतुविशेषणासिद्धे चातिव्याप्तिः ह्रदो धूमवान् वह्नेरित्यादौ स्वरूपासिद्धिसङ्कीर्णसाधारणादौ चाव्याप्तिः तत्र पक्षवृत्तित्वाभावेन सत्यन्तदलाभावादिति चेत्। न। 'पक्षवृत्तित्वे सतीत्यस्य पक्षवृत्तित्वग्रहाविरोधित्वे सतीत्यर्थः, पक्षवृत्तित्वग्रहाविरोधित्वञ्च पक्षतावच्छेदकरूपेण पक्षे साध्यतावच्छेदकरूपेण साध्यस्य हेतुतावच्छेदकरूपेण हेतोर्वा यज्ज्ञानं तत्प्रतिबन्धकतानवच्छेदकत्वं, तच्चानुमितिविरोधितावच्छेद-

---

भिन्नतया सर्व्वत्रासम्भवापत्तिः। न च यादृशविशिष्टविषयत्वसामान्यं प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकतानिरूपितस्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकतावदित्युक्तौ न दोष इति वाच्यं। तेजस्त्ववान् धूमाभाववद्वृत्तित्ववान् इति ज्ञानसमकालीनस्य तेजस्त्ववान् वह्निरिति ज्ञानस्य व्यावर्त्तकधर्म्मदर्शनविधया प्रतिबन्धकतया तेजस्त्ववद्वह्निविषयत्वसामान्यस्य तादृशप्रतिबन्धकतावच्छेदकतया तेजस्त्ववद्वह्नौ धूमवान् वह्नेरित्यादौ अतिव्याप्त्यापत्तिः, अनतिरिक्तवृत्तित्वरूपावच्छेदकत्वोक्तौ च तेजस्त्ववान् धूमाभाववद्वृत्तित्ववान् इति ज्ञानासमकालीनस्य तेजस्त्ववान् वह्निरिति ज्ञानस्य प्रकृतानुमित्यप्रतिबन्धकतया तेजस्त्ववद्वह्निविषयकनिश्चयत्वस्य प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकतातिरिक्तवृत्तितया तेजस्त्ववद्वह्नौ नातिव्याप्तिरिति विभावनीयं।

साध्यवन्मात्रवृत्त्यन्यत्वे सति साध्याभाववन्मात्रवृत्त्य-

---

कस्य विशेषणं, साधारण्यज्ञानस्य न साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकं अपि तु अव्यभिचारांशे[१] व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकमेवेति मतेनेदं लक्षण-मतो न तत्राव्याप्तिः, व्याप्यत्वासिद्धेश्च साधारणान्तर्गतैव वक्ष्यमा-णासिद्धिसामान्यलक्षणाक्रान्ततया असिद्धाविव व्यभिचारसामान्य-लक्षणाक्रान्ततया व्यभिचारान्तर्गतत्वेऽपि बाधकाभावात्। न चैव-मपि व्यभिचारादिविशिष्टस्य सव्यभिचारपदार्थत्वं न वृत्तं निरुक्त-विशिष्टधर्मस्य व्यभिचारत्वे विरोधेऽतिव्याप्तिः तस्यापि व्यभिचारा-न्तर्गतत्वे विरुद्धत्वेन पृथग्विभागानुपपत्तेः, व्याप्यत्वासिद्धेश्च व्याप्य-त्वासिद्धित्वेन न विभक्तः अपि तु आश्रयासिद्धिसाधारणासिद्धित्वे-नैवेति वाच्यं। विरोधान्यत्वेन निरुक्तविशिष्टधर्मस्य विशेषणीयत्वात्, विरोधान्यत्वस्य हेतु-साध्यसामानाधिकरण्यग्रहविरोधितानवच्छेद-कत्वं, असाधारणत्वस्य साध्य-तदभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगी हेतुर्नातस्तत्राव्याप्तिः, साध्यवदवृत्तित्वे सति साध्याभाववदवृत्तित्वं असाधारणत्वमिति साम्प्रदायिकमते च साध्याभावसमानाधिकरणो-हेतुरिति ज्ञानप्रतिबन्धकतानवच्छेदकं सद्यत् हेतु-साध्यसामाना-धिकरण्यग्रहविरोधितावच्छेदकं तदन्यत्वं विरोधान्यत्वं निर्वाच्य-मिति न काप्यनुपपत्तिः, व्यभिचारादिज्ञानमप्यनुमितिप्रतिबन्धक-मिति मतेनेदं लक्षणं नातोऽसम्भवः। अनुमितिपदं वा यथोक्तानु-मितिकारणीभूतज्ञानपरं, विरोधितापदेन च यदंशे तादृशानु-

---

(१) अव्यभिचरितत्वविशिष्टसाध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरिति भावः।

न्यत्वं वेति परास्तं, व्यर्थविशेषणत्वात् प्रथमं हेत्वा-
भासत्वाज्ञानाच्च, गगनमनित्यं शब्दाश्रयत्वादित्या-

---

मितिकारणता तदंशे विरोधिता ग्राह्या तेन वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वतः प्रमेयत्वं वह्न्यभाववदवृत्तीति समूहालम्बनज्ञानप्रतिबन्धकता-वच्छेदकवह्न्यभाववद्वृत्तिप्रमेयत्वादिमादाय धूमादौ नातिव्याप्ति-रिति सङ्क्षेपः।

साधारणादिषु लक्षणं सङ्गमयति, 'सपक्षेति, 'सपक्षात्' साध्याधिकरणात्, यः 'विपक्षः' भिन्नः, 'तद्वृत्तित्वं' तद्वृत्तित्वविशिष्टहेतुविषयकत्वं, साध्यवद्वृत्तित्वे सति साध्याभाववद्वृत्तित्वविशिष्टहेतुविषयकत्वमिति यथाश्रुतार्थस्तु न सङ्गच्छते 'विरुद्धोऽप्यनेन रूपेण सव्यभिचार एव' इत्यग्रिमग्रन्थासङ्गतेः। 'उभयव्यावृत्तत्वं' यावत्सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तहेतुविषयकत्वं, साध्य-तदभावोभयव्यापकीभूताभावप्रतियोगिहेतुविषयकत्वमिति यावत्, 'अनुपसंहारित्वमिति अनुपसंहारित्वविशिष्टहेतुविषयकत्वञ्चेत्यर्थः, 'अनुमितिविरोधि' अनुमितिविरोधितावच्छेदकं, 'तत्सम्बन्ध इति तेषां साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टहेत्वादीनामभेदलक्षणसम्बन्ध इत्यर्थः, 'प्रत्येकमस्तीति प्रत्येकं साधारणासाधारणानुपसंहारिष्वस्तीत्यर्थः। नन्वेवं साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टहेतोरभेदलक्षणसम्बन्धस्य विरुद्धेऽपि सत्त्वादतिव्याप्तिरित्यत आह, 'विरुद्धोपीति, 'अनेन रूपेण' साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टहेतुत्वरूपेण। नन्वेवं विरुद्धस्य पृथगभिधानं पुनरुक्तं। न चावृत्तिहेतुरूपस्य विरुद्धस्य सङ्ग्रहाय पृथक्तदभिधान-

द्विबाध-विरुद्धसंकीर्णासाधारणाव्याप्तिरिति कश्चित्। नापि सपक्ष-विपक्षगत-सर्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तान्यत-

मिति वाच्यं। तत्रापि यथोक्तासाधारणत्वस्य सत्त्वेन सव्यभिचारान्तर्गतत्वादित्यत आह, 'उपाधेरिति विभाजकोपाधेरित्यर्थः, 'न सङ्करः' नाभेदः, तथाच खतन्त्रेच्छस्येतिन्यायात्[१] एकस्यैव विरुद्धस्य विभिन्नधर्मरूपेण विभजनान्न पौनरुक्त्यमिति भावः। 'एतज्ज्ञान-इति, एतच्च दृष्टान्तार्थं, 'वाशब्दः अप्यर्थे, तथाचैतज्ज्ञानदशाया-मिव ज्ञानदशायामपि आवश्यकसाधारणत्वादिप्रत्येकधर्मप्रकारक-ज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, 'व्यर्थविशेषणत्वादिति सत्यन्त-विशेषणस्य व्यर्थत्वादित्यर्थः, विरुद्धसाधारणलक्षणं दूषयित्वा विरु-द्धव्यावृत्तं लक्षणद्वयं दूषयति, 'अतएवेति, अत्र लक्षणद्वये हृदो वह्निमान् धूमादित्यादौ साध्यव्याप्यस्य धूमादेर्वारणाय सत्यन्तं, विरुद्धवारणाय प्रथमे 'साध्याभावाव्याप्येति, द्वितीये 'साध्याभाव-वन्मात्रवृत्त्यन्यत्वमिति, विरोधसङ्कीर्णासाधारणानुपसंहारिणौ[२] न लक्ष्यौ किन्तु शब्दाकाशावनित्यौ शब्दाकाशान्यतरत्वात् सर्व्वमनित्यं प्रमेयत्वादित्यादिसाधारणसङ्कीर्णावेतौ लक्ष्यौ, वह्निमान् आका-शादित्यादावद्वत्याकाशादेर्वारणाय हेत्वाभासत्वमिति, अवृत्तिस्य न हेतुर्न वा हेत्वाभासः हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तिमतएव तथा-

(१) खतन्त्रेच्छस्य पर्य्यनुयोगानर्हत्वादिति न्यायादित्यर्थः।

(२) साध्याभिन्न-विरुद्धाभिन्नासाधारणानुपसंहारिणावित्यर्थः।

रत्वं, व्यर्थविशेषणत्वात् अनुपसंहार्य्यव्याप्तेश्च। किञ्च

त्वादित्यभिमानः। एतच्च द्वितीयलक्षणेऽप्यनुसन्धेयं, प्रथमलक्षणे साध्यव्याप्यत्वं साध्याभाववदवृत्तित्वे सति साध्यवद्वृत्तित्वं, साध्यवद्वृत्तित्वे सति साध्याभाववदवृत्तित्वञ्च साध्याभावव्याप्यत्वं, द्वितीये साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वे सति साध्यवद्वृत्तित्वं साध्यवन्मात्रवृत्तित्वं, साध्याभाववद्भिन्नावृत्तित्वे सति साध्याभाववद्वृत्तित्वञ्च साध्याभाववन्मात्रवृत्तित्वं, अतो नाभेद इति भावः। 'व्यर्थविशेषणत्वादिति हेत्वाभासत्वदलस्य व्यर्थत्वादित्यर्थः, तदुपादानेऽप्यवृत्तिहेतोर्दुर्व्वारत्वात्[१] स्वरूपासिद्धिमादाय तस्यापि हेत्वाभासत्वात्, न हि दुष्टहेतोः सामान्यलक्षणे स्वरूपासिद्धिलक्षणे वा वृत्तिमत्त्वमपि विशेषणं, गौरवाद्व्यर्थत्वाच्चेति भावः। इदमुपलक्षणं विरुद्धवारणाय प्रथमलक्षणे साध्याभावाव्याप्यत्वदलं द्वितीये साध्याभाववन्मात्रवृत्त्यन्यत्वदलञ्च व्यर्थं विरुद्धस्य सव्यभिचारभिन्नत्वे मानाभावादित्यपि बोध्यं। 'प्रथममिति साधारणादेः प्रत्येकस्य ज्ञानं विनेत्यर्थः, 'हेत्वाभासत्वाज्ञानात्' निरुक्तसाध्याव्याप्येत्यादिलक्षणज्ञानासम्भवात्, तज्ज्ञाने च तस्यैव प्रतिबन्धकतया यथोक्तधर्म्मप्रकारकज्ञानस्यानुमितेस्तत्कारणज्ञानस्य वा प्रतिबन्धकत्वे मानाभावात्। न च साध्याव्याप्यत्वादिघटिततया यथोक्तधर्म्मप्रकारकज्ञानमपि व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकमिति वाच्यं। साध्याव्याप्यत्वादेर्हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेताव-

(१) पर्व्वतो वह्निमान् गगनादित्यादौ गगनहेतुधर्म्मिकपर्व्वतवृत्तित्वाभावमादाय दुर्व्वारत्वादिति भावः।

पक्षातिरिक्तसाध्यवतः सपक्षत्वे प्रमेयत्वेनाभेदसाधनेऽनुपसंहार्य्ये चाव्याप्तिः पाक्षातिरिक्तसाध्यवतोऽप्रसिद्धेः

---

प्रकारत्वादिति भावः। इदमुपलक्षणं साध्यव्याप्यत्व-साध्यवन्मात्र-वृत्तित्वादेर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनैवावश्यं वक्तव्यतया अयं घटोऽज्ञाना-दित्यादौ यत्र हेतुतावच्छेदकविषयतादिसम्बन्धेन साध्यव्याप्यत्वादि-कमप्रसिद्धं तत्राव्याप्त्यापत्तिश्चेति बोध्यं। कस्यचिद्दूषणमाह, 'गगनमिति, 'बाध-विरुद्धसङ्कीर्णेति बाधविरुद्धाभिन्नेत्यर्थः, अनव-गतसाध्यसहचारकत्वे सति अवगतसाध्याभावसहचारित्वस्य विरोध-त्वनये अयमेतदभिन्नः प्रमेयत्वात् शब्दो नित्यः शब्दाकाशान्यतरत्वात् इत्यादेरपि विरुद्धतया तद्वारणाय 'बाध-विरुद्धेत्युक्तं, 'बाध-विरु-द्धत्वञ्च साध्याभावव्याप्यत्वरूपविरोधाश्रयत्वं, 'कश्चिदित्यस्वरसोद्भावनं तद्बीजन्तु व्याप्यसङ्कीर्णासाधारणवद्विरुद्धसङ्कीर्णासाधारणस्याप्यलक्ष्य-त्वात् तत्राव्याप्तिर्न दोषायेत्यवसेयं। अनयोर्लक्षणयोः परिष्कारस्तु दीधितावनुसन्धेयः। 'सपक्ष-विपक्षगतेति साध्यवद्वृत्तित्वे सति साध्याभाववद्वृत्तित्वेत्यर्थः, 'सर्व्वसपक्षेति साध्यवत्तानिश्चयविषय-वृत्तिसामान्यभिन्नत्वे सति साध्याभाववत्तानिश्चयविषयवृत्तिसामान्य-भिन्नत्वेत्यर्थः, सर्व्वपदं सामान्याभावलाभाय, यथाश्रुते एकमात्र-सपक्ष-विपक्षकेऽसाधारणेऽव्याप्तेः, 'व्यर्थेति विरुद्धवारकयोः सपक्ष-गतत्वदल-विपक्षव्यावृत्तत्वदलयोर्व्यर्थत्वादित्यर्थः, तदुभयदलस्य दूषक-तायामनुपयोगित्वेन साधारणत्वासाधारणत्वाघटकतया विरुद्धस्यापि साधारणासाधारणान्तर्गतत्वेन सव्यभिचारत्वादिति भावः।

साध्यवतः सपक्षत्वे विवक्षितेऽप्रसिद्धिः वृत्तिमतो धर्म्मस्य साध्यवद्विपक्षान्यतरवृत्तित्वनियमात्।

---

केचित्तु सपक्षगतत्वदल-विपक्षव्यावृत्तत्वदलयोरसाधकतानुमाने व्यर्थत्वादित्यर्थः, इत्याहुः। तदसत्। अखण्डाभावस्य हेतुत्वात्। 'अनुपसंहार्य्येति पर्व्वतो धूमवान् वह्नेरित्यादौ साधारणेऽनुपसंहारिता-दशायां क्वापि साध्य-तदभावनिश्चयासत्त्वदशायामव्याप्तेरित्यर्थः, तदानीं साध्य-तदभाववत्तया निश्चितस्याप्रसिद्धा तद्व्यावृत्तस्या-प्रसिद्धेरिति भावः।

ननु सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तेत्यत्र सपक्ष-विपक्षत्वं न साध्य-तदभाव-वत्तया निश्चितत्वं किन्तु पक्षातिरिक्तसाध्य-तदभाववत्त्वं, पक्षत्वञ्च सन्दिग्धसाध्यकत्वं, तथाच पर्व्वतो धूमवान् वह्नेरित्यादौ क्वापि साध्य तदभावनिश्चयासत्त्वदशायामपि नाप्रसिद्धिः।

यद्वा साध्यवत्त्वमेव सपक्षत्वं, साध्याभाववत्त्वमेव विपक्षत्वमित्यत आह, 'पक्षातिरिक्तेति, अस्य पूर्व्वं 'किञ्चेति क्वचित् पाठः स च न सन्दर्भशुद्धः, 'प्रमेयत्वेनेति, अभेदे तृतीया, 'साधने' साध्यके, अयमे-तदभिन्नः प्रमेयत्वादित्यभेदसाध्यकप्रमेयत्वरूपे साधारणे इत्यर्थः, 'अनुपसंहार्य्ये चेति सर्व्वमनित्यं प्रमेयत्वादित्यादिसर्व्वपक्षके चेत्यर्थः, अनुपसंहार्य्येऽव्याप्तिमेव विवृणोति, 'पक्षातिरिक्तेति, जगत एव साध्य-सन्देहाक्रान्तत्वेन तदतिरिक्ताप्रसिद्धेरिति भावः। द्वितीयं दूषयति, 'साध्यवतः सपक्षत्व इति, तदभाववतश्च विपक्षत्व इति शेषः, 'अप्रसिद्धिरिति शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादावसाधारणदशाया-

नापि पक्षातिरिक्तसाध्यवन्मात्रवृत्त्यन्यत्वे सति पक्षातिरिक्तसाध्याभाववन्मात्रवृत्तिभिन्नत्वम् अनुपसं-

---

मव्याप्तिरित्यर्थः, 'धर्मस्य' वस्तुनः, 'साध्यवद्विपक्षान्यतरेति साध्यवत्तदभाववदन्यतरेत्यर्थः।

'पक्षातिरिक्तेत्यादि, जलहृदो वह्निमान् धूमादित्यादौ साध्यव्याप्यस्य धूमादेर्व्वारणाय सत्यन्तं, घटोद्रव्यं सत्त्वादित्यादौ साधारणस्य सत्त्वादेः संग्रहाय मात्रपदं, पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ धूमादेरपि स्वानधिकरणमात्रे साध्य-तदभावनिश्चयदशायामेवासाधारणतया तत्राव्याप्तिवारणाय 'पक्षातिरिक्तत्वं साध्यवतोविशेषणं, तदर्थश्च 'पक्षः' साध्यनिश्चयाविशेष्यः, तदतिरिक्तत्वं साध्यनिश्चयविशेष्यत्वमिति यावत्, न तु 'पक्षः' सन्दिग्धसाध्यकः, तदतिरिक्तत्वं, हृदो वह्निमान् धूमादित्यादौ यदा केवलं हृद एव साध्यसन्देहः हृदातिरिक्तधूमानधिकरण एव च साध्य-तदभावनिश्चयस्तदापि धूमस्यासाधारणतया तत्राव्याप्त्यापत्तेः, यदा सर्व्वत्रैव साधनाधिकरणे साध्यवत्तानिश्चयस्तदासाधारणेऽव्याप्तिवारणाय साध्यवत्त्वप्रवेशः, सुरभिर्गौरश्वत्वादित्यादौ विरुद्धस्याश्वत्वादेर्व्वारणाय विशेष्यदलं, घटोद्रव्यं सत्त्वादित्यादौ साधारणस्य सत्त्वादेः संग्रहाय मात्रपदं, पक्षातिरिक्तत्वञ्च अत्रापि साध्याभाववत्यन्वेति अन्यथा अश्वोगौरश्वत्वादित्यादावश्वत्वादेरपि स्वानधिकरणमात्रे साध्य-तदभावनिश्चयदशायामसाधारणतया तत्राव्याप्त्यापत्तेः, क्वचित्तु मूले तथैव पाठः,

हार्य्यव्याप्तेः धूमादावतिव्याप्तेश्च तस्य पक्ष एव साध्य-वति वृत्तेः।

नापि पक्षवृत्तित्वे विरुद्धान्यत्वे च सत्यनुमित्यौपयिकसम्बन्धशून्यत्वं व्यर्थविशेषणत्वात्। एतेनानुगतं

---

पक्षातिरिक्तत्वञ्च 'पक्षः' साध्याभावनिश्चयाविशेष्यः, तदतिरिक्तत्वं साध्याभावनिश्चयविशेष्यत्वमिति यावत्, न तु 'पक्षः' सन्दिग्धसाध्यकः, तदतिरिक्तत्वं, सुरभिर्गौरश्वत्वादित्यादौ यदा केवलं सुरभावेव गोत्व-सन्देहस्तदतिरिक्तेऽश्वत्वानधिकरण एव गोत्व-तदभावनिश्चयस्तदाश्व-त्वस्यासाधारणतया तत्राव्याप्त्यापत्तेः, यदा सर्व्वत्रैव साधनाधिकरणे साध्याभाववत्तानिश्चयस्तदासाधारणेऽव्याप्तिवारणाय साध्याभाववत्त्वप्र-वेश इति ध्येयं। 'अनुपसंहार्य्येति तत्र जगत एव साध्यसन्देहाक्रान्ततया पक्षातिरिक्ताप्रसिद्धेरिति भावः। इदमुपलक्षणं द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ साधारणेऽपि साध्य-तदभाववति साध्य-तदभावानिश्चयदशायामव्याप्तिः(१) इत्यपि बोध्यं, 'धूमादाविति पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादावसाधारण्योत्तीर्णतादशायां साध्यव्याप्यधूमादावतिव्याप्तेरित्यर्थः। पक्ष एवेति 'एवकारोऽप्यर्थे, पक्षत्वं साध्यसन्देहविशेष्यत्वं, 'साध्यवतीति पर्व्वत इति शेषः, इदमुपलक्षणं अयमश्वोगौरश्वत्वादित्यादावसाधारण्योत्तीर्णतादशायां विरुद्धत्वेऽश्वत्वादावप्यतिव्याप्तिः तस्य साध्याभाववत्तासन्देहवत्यपि साध्याभाववति अश्वादौ वृत्तेरिति बोध्यं।

---

(१) साध्य-तदभावनिश्चयासत्त्वदशायामिति ख०।

सर्व्वमेव लक्षणं प्रत्युक्तं प्रत्येकमेव दूषणत्वात् उद्भावने वादिनिष्ठत्तेश्च ।

---

'पक्षवृत्तित्व इति, 'अनुमित्यौपयिकः' अनुमितिजनकज्ञान-विषयः, यः सम्बन्धस्तच्छून्यत्वमित्यर्थः, स च सम्बन्धः पक्षसत्त्वं सपक्षसत्त्वं विपक्षासत्त्वञ्च, तत्र सपक्षसत्त्वाभावमादायासाधारणे लक्षणसमन्वयः, सपक्षत्वं निश्चितसाध्यवत्त्वं न तु साध्यवत्त्वमात्रं तथा सति शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादिसद्धेतुरूपे(१) असाधारणे-ऽव्याप्त्यापत्तेः । न च एतल्लक्षणकर्त्तृमते तदसाधारणमेव न किन्तु साध्यवदवृत्तित्वस्यासाधारण्यतया नित्यः शब्दः शब्दत्वादित्यादि-विरुद्धमेवासाधारणं तत्र च विपक्षासत्त्वाभावमादायैव लक्षण-समन्वयः तेन निरुक्तसपक्षसत्त्वाभावस्य विरोधान्यत्वाभावेऽपि न क्षतिरिति वाच्यं । तथा सति विरोधान्यत्वदलवैयर्थ्यापत्तेः साध्यवदवृत्तित्वदलस्यासाधारणत्वनये आकाशाद्यवृत्तिहेतोरसाधार-णत्वेन लक्ष्यतया तत्राव्याप्त्यापत्तेश्च, केवलं निश्चितसाध्यवद्व्यावृत्तत्व-रूपं सपक्षव्यावृत्तत्वरूपमेव असाधारणत्वं न तु विपक्षव्यावृत्तत्वम-प्यत्र घटकमित्येतन्मतेनैवेदं लक्षणं तेन वह्निमान् धूमादि-त्यादौ धूमादेर्विपक्षव्यावृत्तत्वाभावदशायां सपक्षव्यावृत्तत्वेऽपि अल-क्ष्यत्वात्तदानीं केवलसपक्षसत्त्वाभावमादायातिव्याप्तिरिति निरस्तं,

---

(१) तथासत्यनित्यः शब्दः शब्दत्वादित्यादौ सद्धेतुरूप इति घ० ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सव्यभिचारपूर्व्वपक्षः ॥०॥

---

'व्यर्थेति अबाधकत्वानुमाने पक्षवृत्तित्वादिविशेषणस्य व्यर्थत्वादित्यर्थः, 'एतेनेत्यादि, अनुगतं रूपद्वयान्यतमत्वादि ॥

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सव्यभिचारपूर्व्वपक्षरहस्यं ॥

## अथ सव्यभिचारसिद्धान्तः ।

उच्यते । उभयकोट्युपस्थापकतावच्छेदकरूपवत्त्वं तत्त्वं विरुद्धान्यपक्षवृत्तित्वे सत्यनुमितिविरोधिसम्बन्धाव्याप्तिर्वा[१] तच्च साधारणत्वादि तेनैव रूपेण ज्ञातस्य प्रतिबन्धकत्वात् परस्य तथैवोद्भावनाच्च लक्षणानुरोधेन प्रत्येकमेव हेत्वाभासत्वम् । यद्वा साध्यवन्माच-

---

### अथ सव्यभिचारसिद्धान्तरहस्यं ।

दूषणौपयिक एव विभाजक इति नियमानभ्युपगमेनाह, 'उभयेति प्रकृतसाध्यसन्देहजनिका या कोट्युपस्थितिः तज्जनकतावच्छेदकरूपवत्त्वमित्यर्थः, प्रकृते तादृशजनकतावच्छेदकं साधारणत्वादि तदादाय लक्षणसमन्वयः, कोट्युपस्थापकतावच्छेदकानुवृत्तत्वादिरूपमादाय धूमेऽतिव्याप्तिवारणाय साध्यसन्देहजनकान्तं । 'विरुद्धान्येति, विरुद्ध-स्वरूपासिद्धयोर्वारणाय 'विरुद्धान्यपक्षवृत्तित्वे सतीत्युक्तं, तदर्थस्तु पक्षवृत्तित्व-साध्यसामानाधिकरण्यग्रहाविरोधित्वं तेन स्वरूपासिद्धि-विरोधसङ्कीर्णे नाव्याप्तिः । अन्यत्सर्वं पूर्ववत् । 'तच्च' उभयकोट्युपस्थापकतावच्छेदकरूपञ्च, 'तेन रूपेण' साधारणत्वादिरूपेण, 'तथैव' साधारणत्वादिरूपेणैव, 'लक्षणेति हेत्वाभासस्य विरोधिविषयत्वघटितलक्षणानुरोधेनेत्यर्थः । ज्ञायमानं सद्यदनुमितिप्रतिबन्धकं तद्धेत्वाभासत्वमित्याद्यनुरोधेनेत्यर्थः, इत्यन्ये । 'यद्वेति, अत्रापि पूर्ववत्-

---

(१) अनुमितिविरोधिसम्बन्धाव्याप्तिर्वा अनैकान्तिकत्वमिति ग० ।

वृत्त्यन्यत्वे सति साध्याभाववद्व्याप्यवृत्त्यन्यत्वं तेनासाधारणस्य साध्य-तदभावोपस्थापकतया दूषकत्वपक्षे नाव्याप्तिः ।

न चैवमाधिक्ये विभागव्याघातः, स्वरूपसतानुगतरूपेण त्रयाणामेकीकृत्य महर्षिणा विभागकरणात् । न चैवं साध्याभावव्याप्यकत्वेन बाध-प्रकरणसमयोस्त-

---

साध्यव्याप्यत्व-साध्याभावव्याप्यत्वोभयग्रहविरोधितावच्छेदकरूपवत्त्वमित्यर्थः, तेन सद्धेतुसङ्कीर्णेऽसाधारणे नाव्याप्तिः, 'तेन' अनुमितिविरोधित्वघटितलक्षणाकरणेन, असाधारणस्य सत्प्रतिपक्षोत्थापकतया दूषकत्वपक्षे अनुमितिविरोधित्वसत्त्वान्नाव्याप्तिः, 'उभयकोट्युपस्थापकेत्यादिघटितलक्षणानुसारेण संशयोत्थापकतया दूषकत्वपक्षे पुनरव्याप्तिः स्यात् असाधारणस्य ग्रहे संशयोत्पादासम्भवात्तेन प्रतिबन्धादित्यर्थः, इदं 'यद्वेत्यस्य पूर्वं 'तेनेतिपाठानुसारेण व्याख्यातं, क्वचित् पुस्तके 'यद्वेत्यनन्तरं 'तेनेतिपाठः स त्वेवं क्रमेण व्याख्येयः, 'तेन' विरुद्धसङ्कीर्णासाधारणादिसङ्ग्रहाय तदुभयव्याप्तिग्रहविरोधित्वघटितलक्षणार्थकरणेन, असाधारणस्य सत्प्रतिपक्षोत्थापकतया दूषकत्वपक्षे उभयव्याप्तिग्रहविरोधित्वाभ्युपगमात् तदनभ्युपगमे तु विरोधित्वघटितलक्षणानुसारेणेदमपि व्याख्येयं। 'आधिक्ये' त्रयाणां दूषकताबीजाधिक्ये, 'विभागव्याघातः' पञ्चैव हेत्वाभासा इति विभागव्याघातः, साधारणासाधारणादीनां दूषकताबीजभेदेन भेदादि-

दव्यापकतयान्येषामुपसंग्रहः कुतो न कृत इति वाच्यं। स्वतन्त्रेच्छस्य नियोग-पर्य्यनुयोगानर्हत्वात्[१]।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सव्यभिचारसिद्धान्तः ॥०॥

---

व्याशयः, 'स्वरूपेति तथाच दूषकतावीजभेदेऽपि स्वरूपसदनुगत-रूपेण विभजनान्नाधिक्यमित्याशयः,[२] 'एवं' स्वरूपसदनुगमकत्वे, 'साध्याभावव्यापकत्वेन' साध्यवत्ताग्रहप्रतिबन्धकत्वेन, यथाश्रुते च बाधासङ्ग्रहप्रसङ्गात्[३] 'अन्येषां' व्यभिचारादीनाम् ॥

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये सव्यभिचारसिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम्।

---

(१) 'नियोगः' एवं कुरु इत्यादिरूपः, 'पर्य्यनुयोगः' कथमेवं कृत-मित्यादिरूपः।

(२) नाधिक्यमित्यर्थः इति घ०।

(३) तथाच साध्याभाववत्पक्षरूपबाधस्य साध्याभावाव्यापकत्वेऽपि साध्यवत्ताग्रहप्रतिबन्धकत्वेन सङ्ग्रह इति भावः।

## अथ साधारणपूर्व्वपक्षः।

तत्र साधारणत्वं न साध्याभाववद्गामित्वं सर्व्वमनित्यं मेयत्वादित्यनुपसंहार्य्ये भूर्नित्या गन्धवत्त्वादित्यसाधारणे संयोगादिसाध्यकद्रव्यत्वे चातिव्याप्तेः। अत एव न साध्यवत्तदन्यवृत्तित्वं, नापि निश्चितसाध्यवत्तदन्यवृत्तित्वं, साध्यवदन्यवृत्तित्वस्य दूषकत्वेन शेषवैयर्थ्यात्।

---

### अथ साधारणपूर्व्वपक्षरहस्यं।

नन्वनुपसंहार्य्यसाधारणयोर्व्यभिचारित्वमेव[1] उपधेयसङ्करेऽप्युपाधेरसङ्करादित्युक्तत्वादित्यत आह,[2] 'संयोगादीति। 'अत एव' अनुपसंहार्य्यसाधारणयोरतिव्याप्तेरेव, 'साध्येति साध्यवद्वृत्तित्वे सति साध्यवदन्यवृत्तित्वमित्यर्थः, अन्योन्याभावघटितलक्षणकरणात् संयोगसाध्यके नातिव्याप्तिः,[3] 'अत एव' उक्तस्थलत्रयेऽतिव्याप्तेरेवेत्यर्थः।

---

(१) व्यभिचारित्वमेव साधारणत्वमेवेत्यर्थः।

(२) ननु अनुपसंहार्य्यसाधारणयोः साधारणत्वे मिथो भेदाभावात् विभागव्याघात इत्यत आह, उपधेयेति, तथाच उपधेयानां विभाज्यानां साधारणासाधारणानुपसंहारिणां सङ्करेऽपि मिथो भेदाभावेऽपि उपाधेः विभाजकस्य साधारणत्वस्य असाधारणत्वस्यानुपसंहारित्वस्य च असङ्करात् मिथो भेदात् न विभागव्याघात इति भावः।

(३) भेदभावस्य व्याप्यवृत्तितया संयोगवद्भेदस्य द्रव्येऽसत्त्वान्नातिव्याप्तिरिति भावः।

अत एवामुकेनायमनैकान्तिक इत्येवोद्भाव्यते तत एव वादिनिवृत्तेश्च न तु सपक्षगतत्वमपि। अनुपसंहार्य्यो-व्यावर्त्त्योऽन्यथा तस्यैतद्विशेषत्वापत्तिरिति चेत्, त्यज तर्हि तमधिकं कृतेऽन्तर्भावात्। नापि सपक्ष-विपक्ष-गतत्वं, व्यर्थविशेषणत्वात्। विरुद्धोव्यावर्त्त्य इति चेत्, न, विपक्षगामित्वस्यैव दूषकत्वे तस्याप्येतदन्तर्भावात्।

अथ पक्षान्यसाध्यवत्तदन्यवृत्तित्वं साधारणत्वं तेन

---

'निश्चितेति निश्चितसाध्यवद्वृत्तित्वे सति साध्यवदन्यवृत्तित्वमित्यर्थः, द्वितीयदले निश्चयांशनिवेशे सद्धेतावतिव्याप्तिः स्यात् भ्रमात्मक-साध्याभावनिश्चयविषयपर्वतवृत्तित्वात्, 'साध्येति साध्यवदन्यवृत्ति-त्वमात्रस्य दूषकतायामुपयोगित्वेन तदनुपयोगिसाध्यवद्वृत्तित्वांश-निश्चयांशयोर्वैयर्थ्यादित्यर्थः, 'अत एव' वैयर्थ्यादेव, 'अमुकेन' साध्य-वदन्यवृत्तित्वेन, 'तत एव' तादृशोद्भावनादेव, एवकारव्यवच्छेद्यार्थं दर्शयति, 'न त्विति। नन्वनुपसंहारिवारणार्थं निश्चितसाध्यवद्वृत्तित्वं सार्थकमित्याशयेनाह, 'अनुपेति, असाधारणेत्यपि बोध्यं, 'अन्यथा' तद्व्यावर्त्तने, 'तस्य' अनुपसंहारिणः, 'एतद्विशेषत्वापत्तिः' साधारण-विशेषत्वापत्तिः, 'तं' अनुपसंहारिणं। 'नापीति, अत्र 'सपक्षपदं साध्यवत्परं, न तु निश्चयगर्भं, अतो न पौनरुक्त्यं, 'व्यर्थेति सपक्ष-विशेषणवैयर्थ्यादित्यर्थः, विरुद्धवारणाय तत्सार्थकमित्याह, 'विरु-द्धेति, 'एतदन्तर्भावात्' साधारणान्तर्भावात्।

'अथेति अनुपसंहारिवारणाय 'पक्षान्येति, 'तदन्येति साध्यव-

सर्व्वमनित्यं मेयत्वादित्यनुपसंहार्य्ये नातिप्रसङ्गः । न च व्यर्थविशेषणता, घटोऽनित्यो घटाकाशोभयवृत्ति-द्वित्वाश्रयत्वादित्यनुपसंहार्य्यस्य विरुद्धस्यानैकान्तिक-भिन्नस्य व्यवच्छेद्यत्वादिति चेत् । न । दूषकताप्रयो-जकरूपभेदमन्तरेण भेदस्यैवानुपपत्तेः । साध्यवद्-वृत्तित्वे सति सर्वसाध्यवदन्यवृत्तित्वमित्यपि न व्यर्थ-विशेषणत्वात् एकव्यक्तिकसाध्ये तदभावाच्च । एतेन

---

त्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्येत्यर्थः, अन्यथा सद्धेतावतिव्याप्त्यापत्तिः, 'व्यर्थविशेषणता' साध्यवद्वृत्तित्वांशस्य व्यर्थतेत्यर्थः, अनवगतसाध्य-सहचारी विरुद्ध इति लक्षणाभिप्रायेणाह, 'घटोऽनित्य इति, इत्यस्य विरुद्धस्य सर्वपक्षकानुपसंहार्य्यस्य विरुद्धान्तरस्य अयं गौर-श्वत्वादित्यस्य साधारणभिन्नस्य व्यवच्छेद्यत्वात्, यथाश्रुते घटपक्षस्या-नुपसंहारित्वानभ्युपगमात् केवलान्वयिधर्म्मव्यापकसंशयविषयवृत्तेरे-वानुपसंहारित्वादसङ्गतेः, 'दूषकतेति तथाच भिन्न-भिन्नदूषकता-प्रयोजकरूपाभावे विरुद्धानुपसंहारिणोर्व्यभिचारिविशेषत्वात् व्यर्थं तद्वारकविशेषणमित्यर्थः, 'सर्वेति सर्वपदं धूमादेरपि साध्यवद्व्यक्ति-विशेषभेदवद्वृत्तित्वादतिव्याप्तिवारणाय, साध्यवत्पक्षव्यक्तेः प्राति-स्विकरूपेण तत्तत्साध्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावकूटनिवेशो न साध्यसामान्याभावः इत्यतः प्रागुक्तेन 'अत एवेत्यादिना न पौनरुक्त्यं तत्र साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकसामान्याभावनिवेशात्, 'व्यर्थेति

हेत्वाभासान्तरव्यवच्छेदकं लक्षणान्तरेऽपि विशेषणं व्यर्थमिति ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे साधारणपूर्व्वपक्षः ॥*॥

---

सत्यन्तभागस्य विरुद्धवारकस्य व्यर्थत्वादित्यर्थः, विरुद्धोऽप्येतद्विशेष-एवेति पूर्वमभिधानादित्याशयः, यथाश्रुताभिप्रायेणाह, 'एकेति । 'एतेनेति विरुद्धादिचतुष्टयान्यत्वे सति हेत्वाभासतावच्छेदकरूपवत्त्व-मितिलक्षणे सत्यन्तभागस्य वैयर्थ्यमित्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये साधारणपूर्वपक्षरहस्यं ।

## अथ साधारणसिद्धान्तः ।

उच्यते । विपक्षगामित्वं साधारणत्वं तन्मात्रस्य दूषकत्वात् विरुद्धस्यापि तस्याज्ञाने विपक्षवृत्तितामात्रज्ञानदशायां साधारणत्वम् अन्यथा तस्य हेत्वाभासान्तरतापत्तेः उपाधेश्च न सङ्कर एव । सर्वमनित्यं मेयत्वादित्यनुपसंहारी शब्दोऽनित्यः शब्दत्वात् भूर्नित्या गन्ध-

---

### अथ साधारणसिद्धान्तरहस्यम् ।

'विपक्षेति, ननु विपक्षगामित्वं यदि साध्यात्यन्ताभाववद्गामित्वं तदा साध्यवदन्यवृत्तित्वे हेत्वधिकरणादेः साध्याभाववत्त्वादौ चाव्याप्तिरिति(१) चेत् । न । प्रकृतहेतुधर्म्मिकप्रकृतसाध्याभाववद्वृत्तित्वग्रहत्वावच्छिन्नं प्रति ज्ञानविषयतया प्रतिबन्धकतावच्छेदकरूपस्य विवक्षितत्वात्, काञ्चनमयधूमवान् वह्नेरित्यादौ तु साध्यादेः साध्यतावच्छेदकाद्यभाववत्त्वं न तादृशग्रहत्वावच्छिन्नं प्रति विरोधितावच्छेदकं अतस्तद्व्युदासः । न चैवं धूमसामान्याभाववद्गामित्वादावव्याप्तिः तस्य काञ्चनमयधूमाभाववद्वृत्तित्वग्रहत्वावच्छिन्नं प्रत्यविरोधित्वादिति वाच्यं । तस्य व्याप्यत्वासिद्धावेवान्तर्भावणीयत्वेनालक्ष्यत्वात् साध्यादिनिष्ठस्य साधनाव्यापकत्वादेरनुपसंहारितात्वे तदन्यत्वेन प्रतिबन्धकतावच्छेदकं तदवगाहित्वानवच्छिन्नं वा प्रतिबन्धकत्वं वाच्यं इत्यास्तां विस्तरः । 'विपक्षगामित्वं' साध्यवदन्यवृत्तित्वं, 'साधारणत्वं' साधारणविधया दोषत्वं, 'तस्येति विपक्षवृत्तितामात्रेण गृहीतविरुद्धस्येत्यर्थः । ननु

---

(१) साध्याभाववद्वृत्तित्वस्यैव साध्यवदन्यवृत्तित्वस्य साध्याभाववद्धेत्वधिकरणादेश्च सव्यभिचारत्वेन तत्र तत्राव्याप्तिरिति तात्पर्य्यम् ।

पक्षत्वादित्यसाधारणश्च वस्तुगत्या साध्याभाववद्वृत्तित्वेन साधारणोऽपि पक्षतादशायाम् उद्भावयितुं न शक्यत इत्युभयोर्भेदेनोपन्यासः।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे साधारणसिद्धान्तः ॥०॥

---

विपक्षगामित्वं यदि साधारण्यं तदा साध्याभावव्याप्यत्वरूपस्य विरुद्धत्वस्य तन्नियतत्वात् न दुष्टहेतुविभाजकत्वं स्यात् मिथोविरुद्धधर्म्माणामेव तथात्वादत आह, 'उपाधेस्त्वेति साधारणत्व-विरुद्धत्वाद्युपाधेः, 'न सङ्करः' नाभेदः, तथाच मिथो भिन्नानां दोषाणामेव लक्ष्यतया दुष्टानामभेदो न क्षतिकरः, पक्षवृत्तित्वे सति साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वं साध्यासमानाधिकरणत्वमात्रं वा विरुद्धत्वं तच्च न विपक्षवृत्तित्वमतस्तन्मात्रेण न तस्यान्यथासिद्धिरिति भावः।

ननु साधारण्यं यदि विपक्षवृत्तित्वं तदानुपसंहारितादशायां पक्षमात्रवृत्तित्वग्रहदशायां वा कथायां कथमसौ नोपन्यस्यते तदानीमपि हेतौ तत्सत्त्वादत आह, 'सर्वमिति, 'पक्षतादशायामिति प्रतिज्ञाधर्म्मिणः सन्दिह्यमानसाध्यकत्वदशायामित्यर्थः, 'न शक्यते', साध्य-तदभाववत्तया कस्याप्यनिश्चये निश्चये वा तद्वृत्तित्वस्य हेतावग्रहादिति भावः। 'तयोः' अनुपसंहारित्वासाधारण्ययोः,[१] 'भेदेन' कालभेदेन, कथायामुपन्यासः।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये साधारणसिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम्।

---

(१) 'इत्युभयोः' इत्यत्र 'इति तयोः' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठमनुसृत्य तयोरिति पाठो धृतो रहस्यकृता।

## अथासाधारणपूर्व्वपक्षः ।

सर्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तोऽसाधारणः। ननु सपक्षत्वं न साध्यवन्मात्रत्वं विपक्षावृत्तेर्वृत्तिमतः साध्यवद्वृत्तित्व-नियमात्। नापि पक्षातिरिक्तसाध्यवत्त्वं, शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादेर्व्याप्तिधीदशायामप्यसाधारणतापत्तेः। न चेष्टापत्तिः, बाध-प्रतिरोधौ विना व्याप्ति-पक्षधर्म्मतया ज्ञातादनुमितिनियमादिति चेत्, न, सर्वनिश्चितसाध्यवद्विपक्षव्यावृत्तत्वस्य तत्त्वात् शब्दत्वानित्यत्वव्या-

---

### अथासाधारणपूर्व्वपक्षरहस्यं ।

प्राचां मतेनासाधारणत्वं निर्वक्ति, 'सर्वसपक्षेत्यादि, कुतश्चित् सपक्षात् कुतश्चित् विपक्षाच्च व्यावृत्तत्वं व्याप्य-विरुद्धयोरपीति तयोर्वारणाय 'सर्व्वपदं, 'साध्यवत्त्वं' साध्यवन्मात्रत्वं, क्वचित् तथैव पाठः, 'वृत्तिमतइति अवृत्तिगगनादौ व्यभिचारस्य वारणाय, 'नियमादिति, तथाच शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादौ निश्चितसाध्यवद्व्यावृत्तत्वेनासाधारणेऽव्याप्तिरिति भावः। 'व्याप्तीति साध्यसामानाधिकरण्यस्य धीदशायामित्यर्थः, 'अनुमितिनियमादित्यस्य सति पक्षतादावित्यादिः, तथाच पक्षातिरिक्तसाध्यवद्व्यावृत्तस्यानुमित्यविरोधिनः परिभाषामात्रं असाधारण्यं स्यादिति भावः। प्राचां मतेन समाधत्ते, 'न सर्व्वेति, निश्चितत्वं साध्यवत्तायामिव साध्याभाववत्तायामप्यन्वितं,(१) तथाच

---

(१) विपक्षतायामप्यन्वितमिति ग०, घ० ।

निग्रहे सति शब्दे साध्यनिश्चयान्नातिव्याप्तिः। न च घटोऽयमेतत्त्वादिति सद्धेतावतिव्याप्तिः, साध्यसन्देह-दशायां तस्य हेत्वाभासत्वात्। यद्यपि भूर्नित्या गन्ध-वत्त्वादित्यादिर्वस्तुतः साधारणः शब्दो नित्यः शब्द-त्वादिति विरुद्धः शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादिः सद्धे-तुरेव व्याप्त्यज्ञानस्य पुरुषदोषत्वादित्युदाहरणाभावा-दसाधारणो न पृथक्, तथापि पक्षतादशायां साध्य-तदभावानिश्चयेन तस्य दोषत्वम् अन्यथा पक्षत्व-भङ्गप्रसङ्गात्।

---

तत्तत्पुरुषेण तदानीं साध्यवत्तया निश्चीयमानेभ्यः सर्व्वेभ्योव्यावृत्तत्वे सति साध्याभाववत्तया निश्चीयमानेभ्यो व्यावृत्तत्वं तत्तत्पुरुषं प्रति तदानीमसाधारणमित्यर्थः, तेन शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादेर्ना-संग्रहः। न च नित्यव्यावृत्तधर्म्मवत्सर्व्वमनित्यं श्रवणमात्रग्राह्य-जातिमत्सर्व्वमनित्यमित्यादिधीदशायां शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्य-साधारणाव्याप्तिः तादृशधर्म्मवत्त्वेन शब्देऽपि साध्यवत्तानिश्चयादिति वाच्यं। तत्तज्ज्ञानान्यत्वेनापि साध्यनिश्चयस्य विशेषणीयत्वादिति भावः। 'न चेति न वेत्यर्थः, 'सद्धेतौ' सद्धेतुत्वेन निश्चिते, 'साध्येति, पक्षे साध्यस्य संशयदशायामनिश्चयदशायां वा तस्य पक्षमात्रवृत्ति-हेतोरुक्तहेत्वाभासत्वादिति भावः। 'पक्षतादशायां' पक्षे साध्यसंशय-सत्त्वदशायां,'तस्य' साधारणादेः, 'अन्यथा' साध्य-तदभावयोरन्यतरस्य पक्षधर्म्मिकनिर्णयसत्त्वे।

अथ सर्वसपक्षव्यावृत्तिरेव दोषो न विपक्षव्यावृत्ति-रपि तस्या अनुगुणत्वात् प्रत्युत विपक्षव्यावृत्तत्वेन व्य-तिरेकितया परसाध्यसाधकमेवोपन्यस्तं स्यात् । न च संशायकतया दोषत्वं तच्चोभयव्यावृत्तत्वज्ञानादिति वाच्यं । व्याप्तिग्राहकं सहचारज्ञानं तदभावद्वारा स-पक्षव्यावृत्तत्वमात्रस्य दोषत्वात् । किञ्च शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्युक्ता निवृत्ते तावन्नेदमुद्भाव्यं न्यूनत्वेनैव वादिनिग्रहात् तदुद्भावने वादिनिवृत्तेश्च । न च न्यूनत्वे तदुपजीव्यं, असाधारण्यव्यतिरेकेणापि तदुपन्यासात् ।

---

स्वमतेन सिद्धान्तयितुं प्राचांमतं निरस्यति, 'अथेति, 'दोष-इति उद्भाव्य इति शेषः, 'अनुगुणत्वादिति अधिकरणविशेषान्त-र्भावेण व्यभिचारग्रहं प्रति विरोधितया साध्यीयव्याप्तिग्रहं प्रति उपयुक्तत्वादित्यर्थः, 'व्यतिरेकितया' व्यतिरेकव्याप्त्युपयोगितया, विपक्षतया निश्चितेषु हेतोरसत्त्वग्रहे केवलभावस्य विपक्षत्वव्यापक-ताधीसम्भवादिति भावः । 'न चेति, 'संशायकतया' साध्यसंशायक-तया, 'दोषत्वं' असाधारण्येति शेषः, 'उभयव्यावृत्तत्वेति सपक्ष-विपक्षोभयव्यावृत्तत्वज्ञानादेवेत्यर्थः, 'व्याप्तीति व्याप्तिग्राहकं व्यापक-सामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिविषयकं यत्साध्य-साधनयोः सहचारज्ञानं, 'तदभावद्वारा' तत्प्रतिबन्धकद्वारा, 'सपक्षव्यावृत्तत्वमात्रस्य दोष-त्वात्', तथाचोभयव्यावृत्तत्वज्ञानत्वेनानुमितौ परामर्शे वा प्रतिबन्ध-कत्वाभावान्नासौ दोषः । ननु प्रमाणादूषणमपि सपक्ष-विपक्षो-

न च व्यतिरेकिप्रयोगे तदुपन्यासः, व्याप्ति-पक्षधर्म्म-तयोरप्रतिक्षेपेऽकिञ्चित्करत्वात्, स्वार्थानुमाने च सर्व-सपक्षव्यावृत्तिरेव दोष इत्युक्तमिति ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे असाधारणपूर्व्वपक्षः ॥*॥

---

भयव्यावृत्तत्वं दृष्टान्तस्य साधनवैकल्यवदुपाधिवच्च निग्रहस्थानत्वादि-त्योद्भाव्यमताह, 'किञ्चेति, 'इत्युक्तेति इत्यादिकतिपयावयवमु-क्तेत्यर्थः, 'निवृत्ते' वादिनीति शेषः,(१) पञ्चावयवोक्त्युत्तरं तदुपन्यासे तु पर्य्यनुयोज्योपेक्षणस्य निग्रहस्थानस्य प्रसङ्ग इति भावः । 'इदं' सपक्षादिव्यावृत्तत्वं, 'न्यूनत्वेनेति उदाहरणाद्यनुक्त्या न्यूनत्वेनेत्यर्थः । ननूद्भावितेऽपि न्यूनत्वे वादिनः प्रत्यवस्थानात् न तस्य निग्रहस्थानत्वं अत-आह, 'तदुद्भावन इति न्यूनत्वस्योद्भावन इत्यर्थः, 'तत्' असा-धारण्यं, 'उपजीव्यं', अतस्तद्धेतोरितिन्यायेन तस्योद्भाव्यत्वमित्यर्थः, सभाक्षोभादिना उदाहरणाद्यनुक्तौ व्यभिचारान्न तस्योपजीव्यत्वमि-त्याह, 'असाधारणेति, 'व्यतिरेकिप्रयोगे' व्यतिरेकव्याप्त्यन्तर्भावेण न्यायप्रयोगे, तदीयोदाहरणस्य हेतौ साध्यसामानाधिकरण्याबो-धकतया गृह्यमाणस्य हेतोः साध्याभावीयव्याप्ति-पक्षधर्मताखण्डन-प्रयुक्तपर्य्यनुयोज्योपेक्षणस्योद्भावनासम्भवादिति भावः । ननूद्भावनका-लासम्भवेन मा भूत् परार्थानुमाने सपक्ष-विपक्षोभयव्यावृत्तत्वं दोषः स्वार्थानुमाने तु स्यात् तच्चोद्भावनस्यानपेक्षणात् अत आह 'स्वार्थेति ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये असाधारणपूर्व्वपक्षरहस्यं ।

---

(१) मचिह्नितमूलपुस्तके 'वादिनि निवृत्ते' इत्येव पाठो वर्त्तते ।

## अथासाधारणसिद्धान्तः ।

उच्यते । शब्दत्वं साध्यवतस्तदभाववतश्च निवृत्तत्वेन ज्ञातमर्थाद्व्यतिरेकितया वा पक्षे साध्यं तदभावञ्च साधयेत् अविशेषात् अन्यथा पक्षवृत्तित्वानुपपत्तिरिति साध्य-तदभावोत्थापकतया स्वार्थानुमानेऽसाधारणो-दोषः, सत्प्रतिपक्षे द्वौ हेतू तथा, अत्र त्वेकएवेति तयोर्भेदः । असाधारणेन व्यतिरेकिप्रयोगे परस्य सर्व-

---

### अथासाधारणसिद्धान्तरहस्यं ।

'अर्थात्', पक्षवृत्तित्वरूपमादाय साध्यवतस्तदभाववतश्च व्यावृत्तत्वेन 'ज्ञातं शब्दत्वं', 'व्यतिरेकितया' व्यतिरेक्यनुमानविधया, 'पक्षे साध्यं तदभावञ्च', 'साधयेत्' उभयसिद्ध्यनुकूलं भवेत्, 'अविशेषात्' साध्याभाववद्व्यावृत्तशब्दत्ववत्ताग्रहस्य साध्यवत्तायामिव साध्यवद्व्यावृत्तत्वेन तद्वत्ताग्रहस्यापि साध्याभाववत्तायां साधकत्वाविशेषात्, 'अन्यथा' साध्यवद्व्यावृत्तशब्दत्ववत्ताग्रहस्य साध्याभावासाधकत्वे, 'पक्षवृत्तित्वानुपपत्तिः' विपक्षव्यावृत्तत्वविशिष्टस्यापि पक्षधर्मत्वस्य साध्यसाधकत्वानुपपत्तिः, अतः 'साध्य-तदभावोत्थापकतया' साध्य-तदभावसिद्ध्यनुकूलपरामर्शविषयतया, 'स्वार्थानुमाने', 'असाधारणः' सपक्षविपक्षव्यावृत्तत्वेन गृहीतो हेतुः, 'दोषः' । नन्वेवं साध्यीयव्याप्तिपक्षधर्मतया गृह्यमाणस्य हेतोः साध्याभावीयव्याप्ति-पक्षधर्मतावत्त्वमसाधारण्यमित्यर्थः तच्च सत्प्रतिपक्षेण चरितार्थं अत आह,

सपक्षव्यावृत्तत्वमात्रमुद्भाव्यं साध्याभावोत्थापकत्वात् न तु विपक्षव्यावृत्तत्वमपि प्रतिकूलत्वात् व्यर्थत्वाच्च। यद्वा विपक्षव्यावृत्ततया साध्यमिव सपक्षव्यावृत्ततया साध्याभावमपि साधयेदिति दृष्टान्ततया प्रतिबन्धितया वा तदुद्भावनमपि, लक्षणन्तु सर्वसपक्षव्यावृत्तत्वं न तु विपक्षव्यावृत्तत्वमपि व्यर्थविशेषणत्वात्, विरुद्ध-

'सत्प्रतिपक्ष इति साध्यव्याप्ति-पक्षधर्मतया अगृह्यमाणनिष्ठं साध्याभावीयव्याप्ति-पक्षधर्मतावत्त्वं प्रतिपक्षः तथात्वेन गृह्यमाणनिष्ठन्तु तदसाधारण्यमतस्तयोर्भेद इत्यर्थः। न चैवंक्रमेण भेदे द्रव्य-गुणादिप्रत्येकनिष्ठत्वेनापि साध्याभावीयव्याप्ति-पक्षधर्मत्वादेरधिकहेत्वाभासत्वापत्तिः, स्वतन्त्रेच्छाया इत्यादिना ग्रन्थकृतैव समाहितत्वादिति भावः। अथास्तु स्वार्थानुमाने साध्य-तदभाववद्व्यावृत्तत्वं प्रतिपक्षोत्थापकतया दूषणं तथापि परार्थानुमाने तदुद्भावनं न स्यात् साध्याभाववद्व्यावृत्तत्वांशस्य साध्यानुमित्यविरोधित्वादतस्तत्रेष्टापत्तिमाह, 'असाधारणेनेति साध्यवद्व्यावृत्तपक्षधर्मेणेत्यर्थः, अन्वयिहेतुना न्यायप्रयोगस्थले वाद्युक्तोदाहरणोत्तरमेव निरुक्तासाधारणस्य प्रतिवादिना वक्तुमौचित्यात् तदुपेक्षाप्रयुक्तस्य पर्य्यनुयोज्योपेक्षणात्मकनिग्रहस्थानस्य प्रसक्तिः स्यादतः 'व्यतिरेकिप्रयोग-इत्युक्तं, 'साध्याभावेति साध्याभाववत्ताग्रहसम्पादकत्वादित्यर्थः, 'प्रतिकूलत्वात्' अनिष्टायाः[१] साध्यानुमितेरुपयुक्तत्वात्, 'व्यर्थत्वादित्यस्य

(१) द्विष्टाया इति घ०।

मप्यनेनोपाधिना असाधारणमेव अन्यथैतद्वगमे विरुद्धत्वाज्ञाने हेत्वाभासान्तरतापत्तेः।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे असाधारणसिद्धान्तः ॥*॥

---

दूषकतायामित्यादिः। 'सर्व्वेति सर्व्वत्र पक्षे वर्त्तमानो यः सपक्ष-व्यावृत्तः साध्यवद्व्यावृत्तः तत्त्वमित्यर्थः, तेन साध्यवद्व्यावृत्तत्वमात्रस्य प्रतिपक्षविधया दूषकत्वविरहेऽपि न क्षतिः, 'विपक्षव्यावृत्तत्वमपी-त्यपिना साध्यीयव्याप्ति-पक्षधर्मतया गृह्यमाणनिष्ठत्वस्य समुच्चयः, ननूक्तलक्षणन्तु तुरगो गौरश्वत्वादित्यादिविरुद्धेऽतिव्याप्तं अत आह, 'विरुद्धमिति, 'अन्यथा' विरुद्धस्यालक्ष्यत्वे, विरुद्धत्वं साध्याभाव-व्याप्यत्वं, स्वव्यापकसाध्याभावकत्वं साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वं वा तस्याज्ञान इत्यर्थः, तज्ज्ञानन्तु मणि-मन्त्रादिन्यायेन हेतु-साध्ययोः सामानाधिकरण्यग्रहविरोधीति हृदयं।

परे तु 'सर्व्वसपक्षव्यावृत्तत्वं' पक्षवृत्तित्वे सति साध्यव्यापकी-भूताभावप्रतियोगित्वं, तस्यैव सत्प्रतिपक्षविधया दूषकत्वेनासाधार-ण्यात्, विरोधस्तु हेतु-साध्ययोरसामानाधिकरण्यादिरूपेण व्याप्ति-ग्रहविरोधितया दोष इति तदज्ञानदशायां निरुक्तस्यासाधारण-त्वस्य ज्ञानं नानुपपन्नमित्याहुः।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये असाधारणसिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम्।

## अथानुपसंहारिपूर्व्वपक्षः ।

अनुपसंहार्य्यपि नासत्सपक्ष-विपक्षः सिद्ध्यसिद्धिविरोधात् । नापि केवलान्वयिधर्म्मावच्छिन्नपक्षकः, केवलान्वयिसाध्यकस्य सद्धेतुत्वात् व्यतिरेकिसाध्यकस्य तु साध्य-तदभाववद्गामित्वेन साधारणत्वात् अन्यथा संशयाहेतुत्वेनानैकान्तिकता न स्यात्, सर्वं क्षणिकं सत्त्वादिति साध्याप्रसिद्ध्या व्याप्यत्वासिद्धमपार्थकं वा,

---

### अथानुपसंहारिपूर्व्वपक्षरहस्यं ।

'असदिति प्रमित्यविषयसपक्षत्वे सति प्रमित्यविषयविपक्षक इत्यर्थः, 'सिद्धीति', सपक्ष-विपक्षयोः सिद्धाववश्यं प्रमितिविषयत्वं असिद्धौ च कथन्तद्गर्भानुपसंहारित्वमित्युभयथापि व्याघातः । 'केवलान्वयिधर्म्मावच्छिन्नपक्षकः' केवलान्वयिधर्म्मव्यापकपक्षताकः, पक्षत्वन्तु साध्यवत्तया सन्दिह्यमानत्वं, असङ्कीर्णलक्ष्यासत्त्वान्नेदं युक्तमित्याशयेनाह, 'केवलेति सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वादित्यादेरित्यर्थः, 'व्यतिरेकिसाध्यकस्येति स्वाश्रयनिष्ठव्यतिरेकप्रतियोगिसाध्यकस्येत्यर्थः, 'साधारणत्वादिति, तथाच सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादित्यादिकमपि साधारणत्वेन न लक्ष्यमिति भावः । ननु साध्य-तदभाववद्गामित्वं न साधारण्यं किन्त्वन्यदेव तद्वाच्यम् अत आह, 'अन्यथेति, निरुक्तत्वेनेदं दूषणमिति । न च सर्वमनित्यं विभुत्वादित्यादि-

साध्यप्रसिद्धौ तु साधारण्यमेव। न च पक्षान्यसाध्यवत्तदन्यवृत्तित्वं पक्षातिरिक्तसाध्याभाववद्वृत्तित्वं वा साधारणत्वं, व्यर्थविशेषणत्वात्। न च विरुद्धं विशेषणस्य व्यावर्त्त्यमित्युक्तं। नाप्यत्यन्ताभावप्रतियोगि-

---

कमेव लक्ष्यं तथापि भागासिद्धत्वेन(१) विरुद्धत्वेन वा अलक्ष्यत्वादिति भावः। क्षणिकत्वं यदि क्षणद्वयावृत्तित्वे सति विनाशित्वं(२) तदा साध्यविशेषणासिद्ध्या(३) व्याप्यत्वासिद्धिः(४)। यदि च सर्व्वान्यत्वं तदा प्रतिज्ञावाक्यस्यापार्थकत्वं(५) सर्व्वः सर्व्वान्यदित्यन्वयबुद्धेरलीकत्वात्। यदि च क्षणद्वयावृत्तित्वमात्रं क्षणिकत्वं तच्च विभुष्वेव प्रसिद्धं पक्षे प्रतिज्ञया बोधनार्हञ्च तदाह, 'साध्यप्रसिद्धौ त्विति। उक्तहेतोः साधारण्यमसहमानः शङ्कते, 'न चेति पक्षान्यस्मिन् वर्त्तते

---

(१) सर्व्वत्वरूपपक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन परममहत्परिमाणवत्त्वरूपविभुत्वहेतोरभावात् भागासिद्धिरिति भावः।

(२) क्षणद्वयावृत्तित्वस्य अवृत्तिगगनादौ सत्त्वात् गगनादेः क्षणिकत्ववारणाय विनाशित्वरूपविशेष्यदलम्।

(३) साध्यविशेषणासिद्ध्या क्षणद्वयावृत्तित्ववैशिष्ट्यरूपस्य साध्यविशेषणस्यासिद्ध्येत्यर्थः।

(४) प्राचीनमते साध्यविशेषणासिद्धेः व्याप्यत्वासिद्धिमध्ये परिगणितत्वात् साध्यविशेषणासिद्धिरित्यनुक्त्वा व्याप्यत्वासिद्धिरित्युक्तम्।

(५) यादृशबोधत्वावच्छेदेन नियतात्वार्य्यत्वं तादृशबोधार्थप्रयुक्तवाक्यत्वं अपार्थकत्वमिति।

साध्यकत्वे सति केवलान्वयिधर्म्मावच्छिन्नपक्षकत्वं, सर्वमभिधेयं ज्ञेयत्वादित्यत्र विप्रतिपत्त्या पक्षतादशायां पक्षे साध्यानिश्चयेनानुपसंहारिण्यव्यापकत्वात् ।

---

यः साध्यवत्तदन्यवृत्तिस्तत्त्वमित्यर्थः, तेन पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ पक्षान्यो यः साध्यवान् तदन्यस्मिन् वर्त्तमाने धूमादिहेतौ नातिव्याप्तिः, सर्व्वं क्षणिकमित्यादौ च पक्षान्याप्रसिद्ध्यैव नातिव्याप्तिरित्याशयः । विरुद्धस्य साधारणमनङ्गीकुर्व्वतां मतेनेदं तदङ्गीकुर्व्वतां मते त्वाह, 'पक्षातिरिक्तेति पक्षातिरिक्ते वर्त्तते यः साध्याभाववद्वृत्तिस्तत्त्वमित्यर्थः, तेन पर्व्वतः पर्व्वतान्यो द्रव्यत्वादित्यादौ पक्षान्यस्य साध्याभाववत्ताप्रसिद्धावपि नाव्याप्तिः, 'व्यर्थेति साध्यवदन्यवृत्तित्वस्यैव सम्यक्त्वात् प्रथमे साध्यवद्वृत्तित्वेन सहितस्य पक्षातिरिक्तवृत्तित्वस्य द्वितीये च तन्मात्रविशेषणस्य व्यर्थत्वादित्यर्थः । ननु तुरगो गौरश्वत्वादितिविरुद्धस्य वारणार्थमेव पक्षान्यवृत्तित्वादिविशेषणं निवेश्यमत आह, 'न चेति, 'उक्तं', 'विरुद्धस्यापि तत्त्वाज्ञाने साधारणत्वमेवेतिग्रन्थेन । 'नापीति, 'केवलान्वयिधर्म्मावच्छिन्नपक्षकत्वं' साध्यवत्तया निश्चीयमानताशून्यपक्षकत्वं, तत्र घटः प्रमेयो वाच्यत्वादित्यादौ व्यतिरेकव्याप्तिमत्तया भ्राम्यमाणे सद्धेतावतिव्याप्तमतः सत्यन्तं, तावन्मात्रञ्च पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादावन्वयव्याप्तिमत्तया गृह्यमाणे गतमतो विशेष्यदलं, सर्वं वह्निमत् धूमात् द्रव्यत्वात् जलत्वाद्वा इत्यादयस्तु सद्धेतु-साधारण-

अथ पक्षातिरिक्ते व्याप्तिग्रहानुकूलाप्रतीतसहचा-रोऽनुपसंहार्य्यः यदि च पक्षे व्याप्तिग्रहः कथञ्चित्तदा शब्दोपदर्शितव्याप्तिकानुमानवदभेदानुमानवच्च सद्धेतु-रेवेति चेत् । न । तत्रैव सद्धेतावतिव्याप्तेः सर्वस्य

---

विरुद्धाः पक्षतादशायां लक्ष्याएवेति भावः । 'अव्यापकत्वादिति अत्यन्ताभावप्रतियोगिसाध्यकत्वाभावेन सत्यन्तार्थस्य तत्राप्तत्वादिति भावः ।

'अथेति, पक्षे तदतिरिक्ते चाप्रतीतोऽनिश्चितो व्याप्तिग्रहानुकूलः सहचारो यस्य सोऽनुपसंहार्य्य इत्यर्थः, तादृशः सहचारः साध्य-साधनयोरन्वये व्यतिरेके चाविशिष्ट इति तदेकतरग्रहेऽपि नानुप-संहारिता । ननु पक्षभिन्नाप्रतीतव्याप्तिग्रहानुकूलसहचारकत्वमि-त्येवास्तु कृतं पक्षाप्रतीततादृशसहचारकत्वदलेन इत्यत आह, 'यदि चेति, 'कथञ्चित्' तदुपनयादिवशेन, 'सद्धेतुरेवेति, तथाच तद्वा-रणार्थमेव पक्षाप्रतीतसहचारकत्वदलमिति लक्षणकृतामाशय । 'पक्षातिरिक्त इत्यस्य पक्षादन्यस्मिन् इत्यर्थं सङ्कलय्य दूषयति, 'तत्रैवेति पक्षे गृहीतव्याप्तिके इत्यर्थः । पक्षे तदतिरिक्ते चेत्यर्थ-करणे दोषमाह, 'सर्व्वस्येति, येन रूपेण पक्षता तदवच्छिन्नान्यत्वं न पक्षातिरिक्तत्वं प्रमेयत्ववत्सर्वमनित्यं वाच्यत्वादित्यादावव्याप्त्या-पत्तेः, परन्तु येन रूपेण पक्षत्वं तदाश्रयस्य प्रत्येकभेदकूटवत्त्वं तच्च सर्व्वत्वावच्छिन्नभेदस्य सत्त्वेऽपि अप्रसिद्धमेवेति भावः । अथानिश्चित-

पक्षत्वे पक्षातिरिक्ताप्रसिद्धेः, असाधारण-विरुद्धयोरति-व्याप्तेश्च दूषकतायां व्यर्थविशेषणत्वाच्च। न च दूषकता अनैकान्तिकत्वेन न प्रत्येकमिति वाच्यम्। अर्थगत्या व्यर्थविशेषणत्वात्। नापि विप्रतिपत्तिविषयमात्रवृत्तित्वं

---

व्याप्तिग्रहानुकूलसहचारसामान्यकत्वमात्रं वाच्यं अतआह, 'असाधारणेति, असाधारणः निश्चितसाध्यवद्व्यावृत्तः शब्दः प्रमेयः शब्दत्वादित्यादौ व्यतिरेकसहचाराग्रहदशायां अतिव्याप्तिरेवं विरुद्धे तुरगो गौरश्वत्वादित्यादावपि। ननु तदुभयं लक्ष्यमेव साध्यवत्तया सन्दिह्यमानविश्वकत्वादेर्दूषकतायामनुपयोगेनाकिञ्चित्करत्वादाह,—'दूषकतायामिति, 'दूषकतायां' हेत्वाभासतायां, 'व्यर्थविशेषणत्वात्' अनुपयोगित्वात् अगृहीतसहचारकत्वादिज्ञानस्यानुमितिं प्रत्यविरोधितया तस्य हेत्वाभासत्वायोगादिति फलितार्थः। अथागृहीतसहचारकत्वस्य तद्रूपेण बुद्धेरनुमित्यविरोधित्वेऽप्यनैकान्तिकत्वप्रकारेण बुद्धेस्तथात्वादेव तस्य हेत्वाभासत्वं पर्य्यवस्यतीत्याशङ्का[१] निराचष्टे, 'न चेति, 'अर्थगत्येति व्याप्तिग्रहविरोधितावच्छेदकरूपवत्त्वलक्षणस्यानैकान्तिकत्वपदार्थस्यार्थगत्या तादृशरूपस्यापि दूषकताया-मनुपयुक्तत्वादित्यर्थः। विप्रतिपत्तिविषयत्वं साध्यवत्तया सन्दिह्यमानत्वं तन्मात्रवृत्तित्वं यदि सकलतद्वृत्तित्वं तदाह, 'केवलेति,

---

(१) 'सेत्यतीत्याशङ्क्येति घ०।

केवलान्वयिसाध्यके अव्याप्तेः सर्वस्य पक्षत्वे साध्याभावादिति।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे अनुपसंहारिपूर्व्वपक्षः ॥०॥

---

केवले हेतुना विनाकृते अन्वयि सन्दिह्यमानत्वेनान्वितं साध्यं यस्य तादृशं सर्व्वमनित्यं द्रव्यत्वादित्यादिहेतावव्याप्तिरित्यर्थः, 'अति-व्याप्तिरिति पाठे शब्दः प्रमेयत्ववाननित्यो वा शब्दत्वादित्यादौ केवलान्वय्यादिसाध्यके अतिव्याप्तिर्बोध्या, यदि तु साध्यवत्तया असन्दिह्यमानव्यावृत्तत्वमेव तस्यासाधारणत्वं तदाह, 'सर्व्वस्येति, 'पक्षत्वे' सन्दिह्यमानत्वे।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये अनुपसंहारिपूर्व्वपक्षरहस्यं।

## अथानुपसंहारिसिद्धान्तः।

उच्यते। व्याप्तिग्रहानुकूलैकधर्म्युपसंहाराभावो यत्र स हेत्वभिमतोऽनुपसंहारी, स चान्वयेन व्यतिरेकेण वा सर्वस्य पक्षत्वे दृष्टान्ताभावात् घटोऽनित्यो घटाकाशोभयवृत्तिद्वित्वाश्रयत्वादित्यादौ साध्य-साधन-

---

### अथानुपसंहारिसिद्धान्तरहस्यम्।

'व्याप्तिग्रहेत्यादि, 'यत्रेति व्याप्तिग्रहान्वयि, तथाच यद्धर्म्मिक-व्याप्तिग्रहे 'अनुकूलानां' विशिष्टानां, एकस्यान्यत्र धर्म्मिणि 'उप-संहारस्य' वैशिष्ट्यस्य, अभावः सहेतुरनुपसंहारी, यादृशहेतुधर्म्मिक-प्रकृतसाध्यीयव्याप्त्यवगाहिता यदंशे यन्निरूपिता तस्य तदभाववत्त्वं, तद्धर्म्मिक-तद्व्याप्तिग्रहविरोधिरूपवत्त्वं वा तादृशहेतौ अनुपसंहारि-त्वमिति फलितार्थः, कालवान् गगनात् इत्यादौ चाधिकरणादेः ...गीयत्वाद्यभावः, कालशून्यं गगनाभाववत्त्वादित्यादौ चाधिकर-...: साध्याभावीयत्वादिविरहः सुलभो लक्ष्यः। न च साध्य-साधन-...शेषणासिद्धावतिव्याप्तिः, प्रकृतसाध्य-साधनग्रहाविरोधित्वेनापि ...रूपस्य क्वचिद्विशेषणीयत्वात्। अथाच यद्यन्वयव्याप्तिग्रहो म...तः तदा व्यतिरेकप्रयोगे वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ व्यतिरेक-मा...टकयोरेकदलेऽपरदलाभावस्य हेत्वाभासान्तरतापत्तेः अत-...चेति, वाशब्दः समुच्चये, स व्याप्तिग्रहोऽन्वयेन व्यतिरेकेण (१. इति शेषः। ननु सर्व्वमभिधेयं प्रमेयत्वादित्यादौ कुतो-

साहचर्य्याग्रहानाग्रस्य विरुद्धत्वाग्रहानदशायामनुपसंहा-रित्वेनेष्टत्वात् केवलान्वयिधर्म्मावच्छिन्नपक्षको वा सर्व-मभिधेयं प्रमेयत्वादिति सद्धेतौ न केवलान्वयी पक्षता-वच्छेदको निश्चितसाध्यवद्‌वृत्तित्वात् विप्रतिपत्त्या

---

नान्वयव्याप्तिधीः निरुक्तस्यानुपसंहारित्वस्य हेत्वाभासान्तरस्य च तत्रासत्त्वेन प्रतिबन्धासम्भवादत आह, 'सर्व्वस्येति, 'पक्षत्वे' सन्दिग्ध-साध्यकत्वे, 'दृष्टान्ताभावादित्यस्य न व्याप्तिग्रह इत्यादिः, तथाच साध्य-साधनयोः सहचारनिश्चयाभावप्रयुक्त एव तत्रान्वयव्याप्त्यग्रहो न तु हेत्वाभासप्रयुक्त इति भावः । सहचारानिश्चयद्वाराऽनुप-संहारित्वस्य दूषकत्ववादिनां प्राचामपि सर्व्वपक्षकत्वं न तस्य दूषक-तायां तन्त्रमित्याह, 'घटोऽनित्य इत्यादिना, 'दृष्टत्वात्' इत्यस्य प्राच्यैरित्यादिः, अस्माकन्तु साध्याभाववद्गामित्वेन तस्य साधारण-त्वमेवेति भावः । दूषणौपयिकमनुपसंहारित्वं निरुच्य व्यवहारौप-यिकं तदाह, 'केवलेति, केवलान्वयिधर्म्मेण 'अवच्छिन्नं' व्यापकं, 'पक्षत्वं' साध्यवत्तया सन्दिह्यमानत्वं यत्र तत्त्वमर्थः, अवच्छिन्नान्तस्य व्यावृ-त्तिमाह, 'सर्व्वमित्यादिना, 'सद्धेतौ' सद्धेतुत्वेन निर्णीयमाने, 'न पक्षतावच्छेदकः' न साध्यवत्तया सन्दिह्यमानत्वस्य अनतिरिक्तवृत्तिः, 'निश्चितेति साध्यवत्तया निश्चितवृत्तित्वादित्यर्थः, 'विप्रतिपत्त्या' सर्वमभिधेयं न वेत्याकारिकया, 'पक्षत्वे' सर्व्वस्य साध्यवत्तया सन्दिह्यमानत्वे, 'अनुपसंहार्य्येवेति अनुपसंहारित्वेन व्यवहार्य्यमे-वेत्यर्थः । ननु गगनवान् द्रव्यत्वादित्यादौ वृत्तिमत्त्वशून्यसाध्यके

साध्यानिश्चयदशायां पक्षत्वे तदनुपसंहार्य्येव व्यतिरेकिसाध्यके साध्याभाववद्वृत्तित्वाज्ञानदशायामिदं दूषणं तदवगमेऽपि साधारणसङ्कर एव, एवं व्याप्यत्वासिद्धेर्ज्ञाने तदुद्भावने चायं व्यभिचारवदुपजीव्यत्वाददोषः, घटाकाशोभयवृत्तिद्वित्वाश्रयत्वञ्च विरुद्धमेव।

---

साध्याभाववद्गामित्वरूपं साधारणमावश्यकमिति तेन सङ्कराज्ञाधिकरणस्य साध्यीयत्वाभावरूपमनुपसंहारित्वं पृथग्दोष इत्यत आह, 'व्यतिरेकीति वृत्तिमत्त्वव्यतिरेकवत्साध्यक इत्यर्थः, 'इदं' व्याप्तिग्रहानुकूलेत्यादिना उक्तमनुपसंहारित्वं। ननु वह्निमान् गगनादित्याद्यवृत्तिहेतौ साध्यव्यभिचरितत्वविशिष्ट-साध्यसामानाधिकरण्यरूपस्य साध्यसम्बन्धितावच्छेदकधर्मवत्त्वरूपस्य वा विरहरूपव्याप्यत्वासिद्धिरावश्यकीति तया सङ्कराज्ञाधिकरणस्य हेत्वीयत्वाभावरूपमनुपसंहारित्वं पृथक् दूषणमत आह, 'एवमिति, 'अयं' अधिकरणादौ हेत्वीयत्वाद्यभावः, 'व्यभिचारवदिति वृत्तिमद्धेतौ साध्याभाववद्गामित्ववदित्यर्थः, 'उपजीव्यत्वादिति, अयं हेतुर्व्याप्तिशून्यः स्वाभाववदधिकरणसामान्यकत्वादित्यादिक्रमेणानुपसंहारित्वस्य व्याप्यत्वासिद्धिग्रहं प्रत्युपजीव्यत्वादित्यर्थः। ननु घटोऽनित्यो घटाकाशोभयवृत्तिद्वित्वाश्रयत्वादित्यत्र स्वाव्यापकसाध्यकत्वेनानुपसंहारिणि व्यवहारौपयिकस्यानुपसंहारित्वस्याव्याप्तिः तत्रत्यपक्षतायाः केवलान्वयिधर्मावच्छेद्यत्वाभावात् अत आह, 'घटाकाशेति, 'विरुद्धमेवेति

एतेनानुपसंहारित्वप्रतिसन्धाने यदि व्याप्तिग्रहस्तदानुमितिरेव तदभावे व्याप्यत्वासिद्धिरेवेति निरस्तमुपजीव्यत्वादिति।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डे अनुपसंहारिसिद्धान्तः ॥*॥

---

अनुपसंहारित्वव्यवहारविरुद्धमेवेत्यर्थः, तथाच व्यवहारौपयिकमित्थमावलम्बमेव तदिति भावः। 'एतेनेति 'निरस्तमित्यनेनान्वयः, अनुपसंहारित्वस्य दोषरूपस्य 'प्रतिसन्धाने' निश्चये, यद्यनुपसंहारित्वांशे भ्रमत्वज्ञानादिवशात् हेतौ व्याप्तिनिश्चय इत्यर्थः, 'तदानुमितिरेवेति, तथाचानुमित्यविरोधित्वादनुपसंहारित्वस्य हेत्वाभासत्वायोग इति भावः। 'तदभावे' व्याप्तिग्रहस्याभावे, 'व्याप्यत्वासिद्धिरेव', अनुमित्यनुत्पत्तिप्रयोजिका न त्वनुपसंहारित्वमिति भावः। 'उपजीव्यत्वादिति व्याप्तिज्ञानस्यानुमित्युपजीव्यत्वादित्यर्थः, तथाचानुमितिविरोधित्वं न हेत्वाभासत्वं साधारण्यादव्याप्तेः किन्तु अनुमितेस्तदुपजीव्यज्ञानस्य चान्यतरविरोधित्वं तच्चानुपसंहारित्वेऽप्यनुगतमिति भावः॥

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये अनुपसंहारिसिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णं॥

सव्यभिचारग्रन्थः समाप्तः॥०॥

## अथ विरुद्धपूर्व्वपक्षः ।

विरुद्धो न साध्याभावव्याप्यः संयोगादिसाध्यके सद्धेतावतिव्याप्तेः । नापि साध्यवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगिव्याप्यत्वं तत्त्वम्, इदं द्रव्यं गुणवत्त्वादित्यादौ संयोगादिव्याप्येऽतिव्याप्तेः, किन्तु साध्यासमानाधि-

---

### अथ विरुद्धपूर्व्वपक्षरहस्यम् ।

'साध्याभावव्याप्य इति, स्वसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्याभावकत्वमत्र साध्याभावव्याप्यत्वं न तु स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्याभावत्वकत्वं 'संयोगादिसाध्यक इत्यादिवक्ष्यमाणदूषणासङ्गतेः । 'साध्यवन्निष्ठेति साध्यवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगी यो धर्मस्तद्व्याप्यत्वं तदवच्छिन्नान्योभाववदवृत्तित्वमर्थः, अस्ति च गोत्ववान् अश्वत्वादित्यादौ गोत्ववन्निष्ठाभावप्रतियोगिनोऽश्वत्वादेर्निरुक्तव्याप्यत्वमश्वत्वादाविति लक्षणसमन्वय इति भावः । पूर्व्वोक्तदूषणसत्त्वेऽप्यधिकं दोषमाह,[१] 'इदमिति, 'संयोगादिव्याप्य इति द्रव्यत्ववन्निष्ठाभावप्रतियोगिनः संयोगादेर्व्याप्ये गुणवत्त्वादावित्यर्थः, साध्यवन्निष्ठत्वं यदि साध्यवति निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वं विवक्ष्यते तदा तु नायं दोष इत्यवधेयं । 'साध्यासमानाधिकरणेति,

---

(१) 'तथाच एतल्लक्षणेऽपि संयोगी द्रव्यत्वादित्यादौ संयोगवन्निष्ठाभावप्रतियोगिनः संयोगादेः निरुक्तव्याप्यत्वस्य द्रव्यत्वहेतौ सत्त्वात् अतिव्याप्तिरिति भावः ।

करणसाध्याभावव्याप्यः साध्यवदन्योन्याभावव्याप्यो वा, साध्याभावत्वं साध्यविरोधित्वमात्रं भावाभाव-

---

साध्यासमानाधिकरणत्वं अत्र साध्यानधिकरणवृत्तित्वं अधिकरण-भेदेन संयोगाद्यभावस्य भिन्नतया च संयोगादिसाध्यकसद्धेतौ नातिव्याप्तिः, न तु साध्याधिकरणावृत्तित्वं तत् अधिकरणभेदेन संयोगाद्यभावस्य भिन्नत्वाभ्युपगमादेव संयोगी गुणत्वादित्यादावव्याप्तिविरहेऽपि[१] साध्याभावपदवैयर्थ्यापत्तेः साध्याधिकरणावृत्तित्वस्यैव सम्यक्त्वात् । न चैवमपि साध्यपदवैयर्थ्यं साध्यानधिकरणवृत्त्यभाव-व्याप्यत्वस्यैव सम्यक्त्वात् भावभिन्नाभावस्य घटकतया साध्यानधि-करणवृत्तिद्रव्यत्वादित्याप्यत्वमादाय सद्धेतौ नातिप्रसङ्ग इति वाच्यं । साध्यानधिकरणवृत्त्याकाशाभावव्याप्यत्वमादाय सद्धेतावतिप्रसङ्गात् प्रतियोगिसमानाधिकरणत्व-तद्व्यधिकरणत्वलक्षणविरुद्धधर्म्माध्यासा-भावेनाकाशाद्यभावस्याधिकरणभेदेन भेदाभावादिति भावः । अधिकरणभेदेनाभावभेदे मानाभावादाह, 'साध्यवदिति, अन्यो-न्याभावस्य साध्याप्यवृत्तित्वाभावात् न संयोगादिसाध्यकसद्धेतावति-व्याप्तिरिति भावः । ननु अधिकरणभेदेनाभावभेदाभ्युपगमेऽपि प्रथमलक्षणमसङ्गतं द्रव्यत्वाभाववान् पृथिवीत्वादित्याद्यभावसाध्यक-

---

(१) अधिकरणभेदेनाभावस्य भिन्नत्वानभ्युपगमे संयोगाभावस्य संयोगाधिकरणावृत्तित्वाभावेन संयोगी गुणत्वादित्यादावव्याप्तिः तदभ्युपगमे च गुणवृत्तिसंयोगाभावस्य संयोगाधिकरणावृत्तितया तमादाय लक्षणसमन्वय इति समुदिततात्पर्य्यम् ।

साधारणं तेनाभावे साध्येऽभावाभावस्य भावत्वेऽपि नाव्याप्तिः अभावाभावोऽभावप्रतियोगिनिरूप्यत्वेन भावभिन्न एव वा। न च भावत्वेनोपपत्तौ किमधिके-

विरुद्धेऽव्याप्तेः तत्र साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्या-प्रसिद्धेः तादृशस्य द्रव्यत्वादेर्भावत्वादित्यत आह, 'साध्याभावत्वमिति 'साध्यविरोधित्वमात्रमिति साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वमात्रमित्यर्थः, यथाश्रुते साध्यासमानाधिकरणपदवैयर्थ्यापत्तेः साध्यविरोधिव्याप्यत्वस्यैव सम्यक्त्वात्[१] मात्रपदाद्भावत्वव्यवच्छेदः। न च साध्यप्रतियोगिकत्वमेव साध्याभावत्वमुच्यतां किं साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वपर्य्यन्तेनेति वाच्यं। साध्याकाशोभयाद्यभावमादाय सद्धेतावतिप्रसङ्गापत्तेरिति ध्येयम्। 'अभावाभावस्येति साध्यीभूताभावप्रतियोगिकस्येत्यर्थः, 'अभावप्रतियोगिनिरूप्यत्वेनेति अभावात्मकप्रतियोगिनिरूप्यत्वविशिष्ट इत्यर्थः, वैशिष्ट्यस्य तृतीयार्थत्वात् एतच्च स्वरूपकथनम्। 'बाधकं विनेति बाधकाभावेनेत्यर्थः, 'अभावप्रतीतेः' द्रव्यत्वाद्यभावाभावेऽभावत्वप्रकारकप्रतीतेः प्रमात्वादिति भावः। भावस्वरूपत्वे सा प्रतीतिः प्रमा न स्यात् अभावत्वस्य भावव्यावृत्तधर्म्मविशेषत्वादित्यभिमानः। ननु गौरवमेव बाधकं किञ्चाभावत्वं न भावव्यावृत्तोधर्म्मः किन्तु भावाभावसाधारणोऽखण्डो-धर्म्मविशेष इत्यत आह, 'अन्यथेति गौरवभीत्या द्रव्यत्वाद्यभावाभावे-

(१) साध्यविरोधिपदेनैव साध्यासामानाधिकरण्यलाभात् स्वातन्त्र्येण साध्यासामानाधिकरण्यस्य वैयर्थ्यमिति भावः।

नेति वाच्यं। बाधकं विना अभावप्रतीतेः प्रमात्वात् अन्यथा अत्यन्ताभावान्योन्याभावयोरप्रसिद्धिः।

अथ साध्य-हेत्वोर्विरोधे पक्षे साध्यसत्त्वे हेत्वसिद्धिः

ऽभावत्वप्रतीतेर्भ्रमत्वाभ्युपगमेऽभावत्वस्य भावाभावसाधारणधर्मविशेषत्वाभ्युपगमे वा इत्यर्थः, 'अत्यन्तेति तत्तदधिकरणविशेषत्वेनैव तदुभयप्रतीतेः सम्भवादिति भावः[१]। ध्वंस-प्रागभावयोरधिकरणस्वरूपत्वे इहेदानीमुत्पन्नो घटध्वंसः इहेदानीं विनष्टो घटप्रागभाव इत्यादिप्रतीतेरसम्भवात् तदुभयपरित्यागः[२]।

केचित्तु ध्वंस-प्रागभावयोरधिकरणस्वरूपत्वे घटसत्त्वदशायामपि तदुभयप्रतीत्यापत्तिः तदानीमप्यधिकरणसत्त्वात् अतस्तदुभयपरित्यागः। न चैवं घटात्यन्ताभावादेरपि अधिकरणस्वरूपत्वे घटापसारणदशायामिव घटसत्त्वदशायामपि तत्प्रतीत्यापत्तिरिति वाच्यं। अत्यन्तान्योन्याभावपदस्य द्रव्यत्वादिप्रतियोगिकात्यन्ताभाव-तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावपरत्वादित्याहुः।

'अथेति, 'विरोधे' निरुक्तविरोधज्ञानदशायां, 'साध्यसत्त्वे' साध्यज्ञानसत्त्वे, 'हेत्वसिद्धिः' हेतुमत्त्वज्ञानाभावः, तदुक्ताज्ञानसत्त्वे

(१) अभावत्वस्य भावसाधारणत्वाभ्युपगमे अतिरिक्ताभावकल्पनापेक्षया लाघवेन तत्तदधिकरणेष्वेवाभावत्वकल्पनाया औचित्यमिति तात्पर्य्यं।

(२) तथाच ध्वंस-प्रागभावयोरधिकरणस्वरूपत्वे घटध्वंसस्य स्वाधिकरणात्मककपालस्वरूपतया इहेदानीमुत्पन्नो घटध्वंस इति प्रतीतेरसम्भवः कपालस्य प्रागुत्पन्नत्वेन इदानीमुत्पन्नत्वाभावादिति भावः।

हेतुसत्त्वे साध्याभावसिद्धौ बाधः। न च प्रमाणान्तरेण साध्याभावसिद्धौ बाधो न हेतुत्वेनैवेति वाच्यं। विशेषणवैयर्थ्यादिति चेत्। न। हेतोः पक्षे साध्याभावोपस्थापनेऽपि प्रथमोपस्थितविरोधस्यैव उपजीव्यत्वेन दोषत्वात्। ननु साध्याभावसम्बन्धो व्यभिचार एव दोषो न तु तन्नियतत्वमपि गौरवात् असाधकत्वे

---

तद्विरुद्धधर्मवत्त्वज्ञानासम्भवादित्यभिमानः। 'हेतुसत्त्वे' हेतुमत्ताज्ञानसत्त्वे, 'साध्याभावसिद्धौ' साध्याभावसिद्धौ सत्यां, 'बाधः' अनुमितिबाधः, तथाच किं निरुक्तविरोधज्ञानस्य पृथग्दोषत्वेनेति भावः। ननु तद्धेतुकविशिष्टबुद्धौ तद्धेतुत्वजन्यबाधज्ञानमेव प्रतिबन्धकं न तु तद्धेतुजन्यबाधज्ञानमित्यभिमानेनाशङ्कते, 'न चेति, 'प्रमाणान्तरेण' प्रमाणान्तरेणैव, 'बाधः' तद्धेतुकानुमितिबाधः, 'विशेषणेति बाधज्ञानस्य प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावे हेतुविशेषजन्यत्वाजन्यत्वविशेषणस्य गौरवापत्तिभ्यां अप्रयोजकत्वादित्यर्थः। 'हेतोरिति पञ्चमी हेतुतइत्यर्थः, 'साध्याभावोपस्थापने'(१) इति पाठः, 'विरोधस्यैव' इत्येवकारो भिन्नक्रमे, 'उपजीव्यत्वेन' इत्यनन्तरं योज्यः तथाच पक्षे निरुक्तविरोधविशिष्टहेतुमत्ताज्ञानं बाधनिश्चयसामग्रीविधया अनुमितिप्रतिबन्धकं। न च विशिष्टबुद्धौ बाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धकतावश्यकत्वे तत्सामग्र्या अपि तत्प्रतिबन्धकत्वे मानाभाव-

---

(१) साध्याभावबाधानुपस्थापनेऽपीति क्वचित्क्लिखितमूलपुस्तकपाठः।

व्यर्थत्वाच्च। न च साध्यासहचरितस्य साध्याभावसह-चरितस्य वा गमकत्वभ्रमरूपायामशक्तौ विशेषोऽस्ति येनाशक्तिविशेषोन्नायकतया न व्यर्थविशेषणता। न

---

इति वाच्यं। बाधनिश्चयोत्पत्तिकाले विशिष्टबुद्धिवारणाय तत्सामग्र्या अपि प्रतिबन्धकत्वावश्यकत्वात् ज्ञानरूपप्रतिबन्धकाभावस्य(१) केवलं पूर्व्ववर्त्तितयैव हेतुत्वात् अन्यथा विना सिषाधयिषामनुमितिः क्वापि न स्यादिति भावः। क्वचित्तु 'साध्याभावानुपस्थापनेऽपीति पाठः, तत्र यदा पक्षे साध्यव्याप्यहेतुमत्तापरामर्शरूपः सत्प्रतिपक्षोवर्त्तते साध्याभावव्याप्यत्वरूपविरोधविशिष्टहेतुमत्ताज्ञानं च पक्षे वर्त्तते तदा प्रकृतहेतुना पक्षे साध्याभावज्ञानविरहेऽपीत्यर्थः, 'उपजीव्यत्वेनेत्यस्य च साध्यानुमित्युत्पादं प्रत्युपजीव्यत्वेनेत्यर्थः, इति ध्येयम्। तदेतत् साम्प्रदायिकमतं दूषयति, 'नन्विति, 'साध्याभावसम्बन्धः', साध्याभावसमानाधिकरणोहेतुः, साध्याभावस्य सम्बन्धो यत्रेति व्युत्पत्तेः, 'दोषः' दोषपदवाच्यः, 'तन्नियतत्वमपीति साध्यसमानाधिकरणत्वे सति साध्याभावसामानाधिकरण्य-

---

(१) ननु बाधनिश्चयाभावस्य कार्य्यसहवर्त्तितया कारणत्वकल्पनेनैव बाधनिश्चयोत्पत्तिकाले विशिष्टबुद्धिवारणसम्भवे स्वातन्त्र्येण बाधनिश्चयसामग्र्याः प्रतिबन्धकत्वकल्पनं किमर्थमित्यत आह, ज्ञानरूपप्रतिबन्धकाभावस्येति, तथाच ज्ञानरूपप्रतिबन्धकाभावस्य कार्य्यसहवर्त्तितया कारणत्वाङ्गीकारे अनुमितिं प्रति सिद्ध्यभावस्यापि तथैव कारणत्वप्रसक्त्या विनानुमित्सां कुत्राप्यनुमितिर्न स्यादिति भावः।

चानैकान्तिकसामान्यलक्षणे विपक्षवृत्तित्वं न विशेषणम् असाधारणाद्यव्याप्तेः साधारणन्तु सपक्षवृत्तित्वसहितमिति वाच्यं। विपक्षगामित्वस्यैव साधारणत्वात्

---

रूपतानियतत्वान्नयोऽपीत्यर्थः, तस्य नियतत्वं यत्रेति व्युत्पत्तेः, 'गौरवादिति गौरवेण तत्र व्याप्तिज्ञानस्यानुमितेर्वा प्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वविरहादित्यर्थः। ननु स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणत्वं न दोषत्वघटकं अपि तु अनतिरिक्तवृत्तित्वरूपं तच्च गौरवेऽपि सम्भवतीत्यत-आह, 'असाधकत्व इति साध्य इति शेषः, 'वैयर्थ्यादिति[१] साध्यासहचरितत्वदलवैयर्थ्यादित्यर्थः, तथाचासाधकतासाधकत्वस्य दोषत्वव्यापकतया तदभावान्न तस्य दोषत्वसम्भवः, अतएव पूर्व्वोक्तसामान्यलक्षणमपि केवलं न दोषपदप्रवृत्तिनिमित्तं अपि तु असाधकतासाधकत्वविशेषितमिति भावः। ननु केवलमसाधकतासाधकत्वं न दोषत्वव्यापकं अपि तु असाधकतासाधकत्वाशक्तिविशेषोन्नायकत्वान्यतरवत्त्वं, तच्च तत्र वर्त्तत एव इत्यत-आह, 'न चेति, 'साध्यासहचरितस्य' साध्याभावसहचरितत्वे सति साध्यासहचरितस्य, 'गमकत्वभ्रमरूपायामिति गमकतायाः प्रयोजकताकरूपाया व्याप्तेर्भ्रमरूपायामित्यर्थः, 'न व्यर्थविशेषणता' नासाधकतासाधने व्यर्थविशेषणता दोषत्वविघटिकेति शेषः। एतच्चापाततः

---

(१) मूले 'व्यर्थत्वात्' इत्यत्र 'वैयर्थ्यात्' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठोऽनेन पाठधारणेनानुमीयते।

अधिकस्य व्यर्थत्वात्। न च विरुद्धं व्यावर्त्त्यं, विपक्ष-गामित्वेनाचैव तदन्तर्भावात्। अथानैकान्तिके विपक्ष-सम्बन्धो न दूषकताबीजम् असाधारणाद्यव्याप्तेः। न च तथान्यदेव बीजं, हेत्वाभासाधिक्यापत्तेरिति

व्यभिचारिणि अव्यभिचारांशे भ्रमः निरुक्तविरुद्धे तु सामानाधिकरण्यांशे भ्रम इत्येवाशक्तौ विशेषसम्भवात्। वस्तुतस्तु बाधविशिष्ट-व्यभिचारादिवत् विशिष्टान्तरघटितत्वान्न दोषत्वसम्भव इत्येव तत्त्वं। 'विपक्षवृत्तित्वं'[१] न विशेषणमिति तादात्म्यसम्बन्धेन विपक्षवृत्तिहेतु-मान् यः सोऽनैकान्तिक इति नानैकान्तिकसामान्यलक्षणमित्यर्थः, 'असाधारणेति व्याप्यसङ्कीर्णासाधारणाद्यव्याप्तेरित्यर्थः, 'सपक्षवृत्तित्व-सहितमिति विपक्षवृत्तित्वे सति सपक्षवृत्तित्वविशिष्टं साधनमि-त्यर्थः, तथाचानैकान्तिकसामान्यलक्षणस्य साधारणलक्षणस्य चाव्या-प्यतया साध्याभावसमानाधिकरणो हेतुरेव विरोधीवाच्यः न तु साध्यवदवृत्तित्वांशोऽपि निवेशनीय इति भावः। 'अधिकस्य' सपक्ष-वृत्तित्वांशस्य, 'व्यर्थत्वादिति दूषकतायामनुपयोगित्वादित्यर्थः।

ननु नेदं दूषकताप्रयोजकं रूपमपि तु साधारणव्यवहारविषय-तावच्छेदकं तथाच विरुद्धवारणाय तदुपादानमित्यभिप्रायेणाह, 'न चेति, 'तदन्तर्भावात्' विरुद्धस्यान्तर्भावात्, तथाच विपक्षगामित्व-मादाय साधारणव्यवहारस्य विरुद्धेऽपि सत्त्वात् नेदं साधारणव्यव-हारविषयतावच्छेदकमपीति भावः। ननु विरुद्धे साधारणव्यवहारो

(१) विपक्षगामित्वमिति क्वचित्कृतमूलपुस्तकपाठः।

चेदस्तु तावदेवं तथापि साधारणे विरुद्धप्रवेशो वज्र-लेप एवं।

अन्ये तु विरुद्धलक्षणे न व्यर्थत्वं साधारणस्य व्यव-च्छेद्यत्वात्। नाप्यसाधकतानुमितौ, एतस्यापि व्याप्य-

भाक्तः अन्यथा तत्साधारणं सव्यभिचारविभाजकतावच्छेदकमेव दुर्व्वचमित्यभिप्रायेणाशङ्कते, 'अथेति, 'न दूषकतावीजं' न विरुद्ध-साधारणं दुष्टतावीजं न विरुद्धसाधारणं दुष्टविभाजकतावच्छे-दकमिति यावत्, 'असाधारणेति व्याप्यसङ्कीर्णासाधारणाद्यव्याप्ते-रित्यर्थः। 'तत्र' व्याप्यसङ्कीर्णासाधारणादौ, 'वीजं' विभाजकता-वच्छेदकं, 'हेत्वाभासाधिक्येति हेत्वाभासविभाजकतावच्छेदकाधि-क्येत्यर्थः, 'साधारणे' साधारणमात्रस्य, 'विरुद्धप्रवेशः' विरुद्धमध्ये प्रवेशः, तथाच साध्याभावसमानाधिकरणहेतोरेव विरुद्धत्वे द्रव्यं सत्त्वादित्यादिसाधारणमात्रे विरुद्धव्यवहारापत्तेरिति भावः।

'विरुद्धलक्षण इति विरुद्धस्य इतरभेदानुमान इत्यर्थः, 'न व्यर्थत्वमिति साध्याभावव्याप्यत्वघटकस्य साध्यासहचरितत्वदलस्य न व्यर्थत्वमित्यर्थः, 'साधारणस्य' साध्यसमानाधिकरणसाधारणस्य। 'असाधकतानुमितावपि, विद्यमानापि व्यर्थता नासाधकत्वसाध-कत्वविघटिकेति शेषः, 'एतस्यापीति केवलसाध्याभावसमानाधिक-रणत्ववत् साध्यासहचरितत्वे सति साध्याभावसहचरितत्वरूपसाध्या-भावव्याप्यत्वस्याप्यसाधकताव्याप्यत्वादित्यर्थः, व्यर्थविशेषणस्य व्याप्ति-विघटकत्वादिति भावः। नन्वेवं वह्निमान्नीलधूमादित्यादावपि

त्वात्, नीलधूमादौ च व्याप्तिरस्त्वेवेति न स्वार्थानुमाने दोषः परस्य तु व्यर्थत्वमधिकं। न च विरुद्धत्वादित्यत्र शब्दाधिक्यमिति, तन्न, अर्थोहि लिङ्गं, न च व्यभिचारावारकविशेषणावच्छेदेनापि व्याप्तिः, गौरवादिति वक्ष्यते,न चार्थगत्या व्यर्थत्वेऽपि विरुद्धत्वादित्यत्र

---

व्यर्थविशेषणता दोषो न स्यादित्यत्र इष्टापत्तिमाह, 'नीलेति। नन्वेवं कथायां परप्रयुक्तहेतौ व्यर्थविशेषणता निग्रहस्थानं न स्यादित्यत आह, 'परस्येति कथायां परप्रयुक्तसाधनस्येत्यर्थः, 'अधिकं' अधिकाख्यनिग्रहस्थानान्तर्गतं। नन्वेवं विरुद्धत्वेनासाधकतासाधनेऽप्यधिकेन निग्रहापत्तिरित्यत आह, 'न चेति, 'अर्थोहीति, 'अर्थः' साध्याभावव्याप्यत्वरूपः विरुद्धत्वशब्दस्यार्थः, 'लिङ्गं' लिङ्गत्वेनाभिमतं व्याप्यत्वेनाभिमतमिति यावत्। 'अर्थगत्येति विरुद्धशब्दार्थे साध्याभावव्याप्यत्वे व्यर्थविशेषणत्वेऽपीत्यर्थः, 'उद्भावनेति विरुद्धशब्दार्थविवेचनात् प्राक् तस्योद्भावनाशक्यत्वमित्यर्थः, तत्पूर्व्वं तदुद्भावने वादिना विरुद्धशब्दस्यार्थान्तरकरणे निरनुयोज्यानुयोगापत्तेरिति भावः। 'आवश्यकतद्विवेचन इति अर्थविवेचनस्यावश्यकतयेत्यर्थः, तदुत्तरमेवेति शेषः। व्यर्थत्वमधिकमिति प्रागुक्तं दूषयति, 'हेत्विति, अवधारणार्थकचकाराद्व्यर्थत्वव्यवच्छेदः, 'अधिकं' अधिकाख्यनिग्रहस्थानं, 'कृतकर्त्तव्यताया इति हेत्वभिधानप्रयोजकाकाङ्क्षाविषयसिद्धिरूपस्य द्वितीयहेतोः कर्त्तव्यस्य प्रथमेनैव कृतत्वेत्यर्थः। 'विशिष्ट-

उद्भावनाशक्यत्वम्, आवश्यकतद्विवेचने तदुद्भावनस्य शक्यत्वादिति हेतुद्वयोपन्यासे चाधिकं प्रथमेन द्वितीयस्य कृतकर्त्तव्यताया दूषणबीजत्वात्। न च नीलधूमादित्यादौ विशिष्टकर्त्तव्यमन्येन केनापि कृतं, धूमवत्त्वादित्यनेनैव कृतमिति चेत्। न। तथानुपन्यासात् अन्यथा नीलानन्वयापत्तेः।

अपरे तु साध्यानवगतसहचारः साध्याभावसहचारी विरुद्धः अन्यथा पृथिव्यां मेयत्वेनेतरभेदानुमानं

---

कर्त्तव्यमिति हेत्वभिधानप्रयोजकाकाङ्क्षाविषयसिद्धिरूपविलक्षणकर्त्तव्यमित्यर्थः, 'तथानुपन्यासादिति धूमादितिभागेन प्रथमं धूमज्ञानज्ञाप्यो वह्निरित्यन्वयबोधाजननादित्यर्थः, 'अन्यथा' धूमादिभागेन प्रथमं तादृशान्वयबोधजनने, 'नीलानन्वयेति धूमेन समं नीलानन्वयापत्तेरित्यर्थः, धूमपदस्य जनितान्वयबोधजनकत्वेन निराकाङ्क्षत्वादिति भावः।

केचित्तु[१] 'तथानुपन्यासादिति केवलधूमहेतुत्वस्य प्रतिज्ञावाक्यार्थान्वये तत्तात्पर्य्येणैव नीलधूमवत्त्वस्यानुपन्यासादित्यर्थः, 'अन्यथेति तत्तात्पर्य्येणैव तस्योपन्यास इत्यर्थः इत्याहुः।

'साध्यानवगतेति साध्यसहचरितत्वेनानिश्चितत्वे सति साध्याभावसहचरित इत्यर्थः, 'अन्यथा' साध्याभावव्याप्यस्यैव विरुद्धत्वे,

---

(१) अन्ये त्विति ग०।

न विरुद्धं स्यात् साध्याभावाव्याप्यत्वात् । न च तत्साधारणं, सपक्षासत्त्वात् । न च साध्यसहचाराज्ञानदशायां साधारणातिव्याप्तिः, तदा तस्यापि विरुद्धत्वादिति प्राहुः । तन्न । विपक्षगामित्वं दूषकताप्रयोजकमित्युक्तत्वात् । अत एव व्यभिचरितो व्यतिरेक्यनैकान्तिक एव ।

नापि साध्याभावसाधकत्वं तत्प्रमापकत्वं वा, साध्याभावसम्बन्धबुद्धिं विना तदज्ञानात् । नापि साध्यवद्-

'सपक्षासत्त्वादिति निश्चितसाध्यवदवृत्तित्वादित्यर्थः, निश्चितसाध्यवदवृत्तित्वे सति साध्याभाववद्वृत्तेरेव साधारणत्वादिति भावः । 'साधारणातिव्याप्तिरिति द्रव्यं सत्त्वादित्यादिसाधारणातिव्याप्तिरित्यर्थः, 'विपक्षगामित्वमिति, 'दूषकताप्रयोजकं' साधारणरूपो दोषः, तथाच तद्घटिततया विशिष्टो न दोष इति भावः । ननु यदि तादृशविशिष्टो न विरोधस्तदा तदाश्रयस्य हेतोः कुत्रान्तर्भाव इत्यत आह, 'अत एवेति 'व्यभिचरितः' साध्याभावसहचरितः, 'व्यतिरेकी' अनवगतसाध्यसहचारकः ।

'साध्याभावसाधकत्वमिति साध्याभाववत्ताप्रतीतिविषयवृत्तित्वमित्यर्थः, एतच्च वह्न्यादौ साध्ये धूमादावप्यागतमत आह, 'तत्प्रमापकत्वं वेति साध्याभाववत्ताप्रमितिविषयवृत्तित्वमित्यर्थः, 'साध्याभावसम्बन्धेति हेतौ साध्याभावसामानाधिकरण्येत्यर्थः, 'तदज्ञानादिति तज्ज्ञानस्य व्याप्तिज्ञानाप्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, तथाच हेत्वा-

न्यत्वव्याप्यत्वं, व्याप्यत्वविशेषणे व्यर्थविशेषणत्वात्। नापि स्वव्यापकाभावप्रतियोगिसाध्यकत्वं, साध्याभावस्य हेतुव्यापकत्वप्रतीतौ हेतु-साध्याभावसम्बन्धभानस्यावश्यकत्वादिति।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डे विरुद्धपूर्व्वपक्षः।

---

भावसामान्यलक्षणानाक्रान्ततया नास्य हेत्वाभासोपाधित्वमिति भावः। पूर्व्वोक्तं अन्योन्याभावगर्भं लक्षणमपि दूषयति, 'नापीति, पूर्व्वोक्तमिति शेषः, तेन न पौनरुक्त्यं, 'व्यर्थेति साध्यवदवृत्तित्वे सति साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वस्य साध्यवदन्यत्वव्याप्यत्वरूपतया सत्यन्तदलवैयर्थ्यादित्यर्थः। 'स्वव्यापकेति 'स्वं' साधनत्वेनाभिमतं, स्वव्यापकत्वं स्वसामानाधिकरण्यघटितमित्यभिप्रायेण दूषयति, 'साध्याभावस्येति, 'सम्बन्धः' सामानाधिकरण्यं, तथाच बाधविशिष्टव्यभिचारादिवद्दोषान्तरघटिततया नास्य हेत्वाभासोपाधित्वमिति भावः।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये विरुद्धपूर्व्वपक्षरहस्यम्।

अथ विरुद्धसिद्धान्तः ।

उच्यते। साध्यव्यापकाभावप्रतियोगित्वं विरुद्धत्वं । न च प्रतियोगिनोरन्वये भासमान एव तदभावयो-

---

अथ विरुद्धसिद्धान्तरहस्यम् ।

'साध्यव्यापकेति हेत्वभावस्य साध्यवन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्वरूप-साध्यव्यापकत्वज्ञानं हेत्वभावाभावस्य हेतोः साध्यासामानाधिकरण्य-ज्ञानपर्य्यवसन्नं तच्च हेतोः साध्यसामानाधिकरण्यज्ञानं प्रत्येव प्रति-बन्धकमिति भावः ।

अथ तदभावाभावत्वेन साध्यसामानाधिकरण्याभावज्ञानेऽपि तत्त्वेन साध्यसामानाधिकरण्यग्रहो न विरुद्धः, न वा हेत्वभावस्य साध्यव्याप-कत्वज्ञानं हेत्वभावाभावे साध्यासामानाधिकरण्यज्ञानरूपं विशेषण-विशेष्यभावभेदादिति चेदेतदस्वरसेनैव 'यद्वेत्यादेर्वक्ष्यमाणत्वादिति भट्टाचार्य्याः ।

वस्तुतस्तु 'साध्यव्यापकेत्यस्य साध्यव्यापकाभावप्रतियोगिहेतु-मत्पक्षत्वं विरोधत्वमित्यर्थः । न चैवं सुरभिर्गौरश्वत्वादित्यादेरवि-रुद्धत्वापत्तिः, इष्टत्वात्, एतज्ज्ञानस्य साध्याभावसाधकव्यतिरेकपरा-मर्शतया अनुमितिं प्रत्येव साक्षात्प्रतिबन्धकं । न चैवं सत्प्रतिपक्षा-भेदः, तत्र हेत्वन्तरं घटकमत्र तु प्रकृतहेतुरेव घटक इत्येव विशे-षात् । न च तथाप्यसाधारणाभेदः ग्रन्थकारनये सर्व्वसपक्षव्यावृत्त-हेतुमत्पक्षस्यासाधारणतया साध्यव्यापकाभावप्रतियोगिहेतुमत्पक्ष-

र्व्याप्तिग्रहः, भिन्नग्राहकसामग्रीकत्वात् अन्यथा व्यतिरेकिविलयापत्तेः। यद्वा वृत्तिमतः साध्यवदवृत्तित्वं साध्यवद्वृत्तित्वानधिकरणत्वं साध्यासमानाधिकरणधर्मत्वं

---

वैव तथात्वादिति[१] वाच्यं। एतदस्वरसादेव 'यद्वेत्यादेर्व्वक्ष्यमाणत्वादित्याहुः।

'प्रतियोगिनोरिति साध्यस्य प्रतियोगी साध्याभावः हेत्वभावस्य प्रतियोगी हेतुरनयोः सामानाधिकरण्यं विषयीकृत्यैवेत्यर्थः, 'अभावयोर्व्याप्तिग्रहः' साध्याभावाभावस्य साध्यस्य हेत्वभावे व्यापकताग्रहः, तथाच हेतौ साध्याभावसामानाधिकरण्यात्मकव्यभिचारज्ञानमेव प्रतिबन्धकमस्तु किमेतज्ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वेनेति भावः। यद्यपि प्रतिबध्यतावच्छेदकभेदादेकेनान्यस्य नान्यथासिद्धिसम्भवः, तथापि स्फुटतरं दोषमाह, 'भिन्नेति परस्परसामग्र्यनियतसामग्रीकत्वादित्यर्थः, 'अन्यथेति यदि प्रतियोगिनोरन्वयसहचारं विषयीकृत्यैवाभावयोर्व्यापकताग्रहः तदेत्यर्थः, 'व्यतिरेकिविलयेति पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते इत्याद्यप्रसिद्धसाध्यके व्यतिरेकव्याप्तिग्रहविलयापत्तेरित्यर्थः, पृथिवीतरभेदस्याप्रसिद्ध्या पृथिवीत्वेन समन्वयस्य सहचारग्रहासम्भवादिति भावः। 'वृत्तिमत इति वृत्तिमत्त्वे सति साध्यवदवृत्तित्वमित्यर्थः, वह्निमानाकाशादित्यादावतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं। वस्तुतस्तु सत्यन्तमनुपादेयमेव वह्निमानाकाशादित्यादेरपि लक्ष्यत्वात्

---

(१) तत्त्वादितीति भावः च०।

साध्यवद्वृत्तित्वानधिकरणधर्म्मत्वं वा तत्त्वं। न च व्यतिरेक्यतिव्याप्तिः, तत्र साध्याप्रसिद्ध्या तथा ज्ञानविरहात्, असाधारणे च सङ्कर एव अनेनापि रूपेण तस्य दोषत्वात्। न च साध्यवद्वृत्तित्वे सति वृत्ति-

---

अन्यथा साध्यवद्वृत्तित्वांशमात्रग्रहस्यापि विरोधित्वेन तद्घटितस्य(१) हेत्वाभासत्वासम्भवादिति(२) ध्येयं। 'साध्यवद्वृत्तित्वानधिकरणत्वमिति, वृत्तिमत्त्वे सतीत्यत्राप्यनुषञ्जनीयं, पूर्व्वत्र साध्यवद्वृत्तित्वात्यन्ताभावोऽत्र तु तदधिकरणत्वात्यन्ताभाव इति भेदः,(३) 'साध्यासमानाधिकरणधर्म्मत्वमिति साध्यसमानाधिकरणभिन्नत्वे सति वृत्तिमत्त्वमित्यर्थः, विशेष्य-विशेषणभावभेदात्(४) अत्यन्तान्योन्याभावभेदाच्च द्वितीयतो भेदः। ज्ञानातिव्याप्तिं निराकरोति, 'न चेति, 'व्यतिरेक्यतिव्याप्तिः' व्यतिरेकिणि साध्यवद्वृत्तित्वज्ञानाभावेन साध्यवद्वृत्तित्वज्ञानापत्तिः, 'साध्याप्रसिद्ध्येति, इदमुपलक्षणं कदाचित्तथा ज्ञानेऽपि क्षतिविरहाच्च। नन्वेवं नित्यः शब्दः शब्दत्वात् इत्यसाधारणस्यापि विरुद्धत्वापत्तिरित्यत्रेष्टापत्तिमाह, 'असाधारणे चेति, 'सङ्कर एव' विरुद्धाभेद एव, 'दोषत्वात्' दुष्टत्वात्। 'न चेति, 'ज्ञानात्' ज्ञापकात्, 'तेन विना' साध्याभाववद्गामित्वज्ञानेन विना,

---

(१) तद्घटितस्य वृत्तिमत्त्वघटितस्येत्यर्थः, तथाच विरोधितायामनुपयोगिभागस्य न हेत्वाभासघटकत्वमिति भावः।

(२) तस्यापि हेत्वाभासत्वसम्भवादितीति ग०।

(३) अखण्डाभावघटकतया नाधिकरणत्वांशस्य वैयर्थ्यमिति।

(४) विशेषण-विशेष्यभावभेदादिति ग०।

मत्त्वज्ञानात् साध्याभाववद्गामित्वज्ञानमावश्यकं तेन विना साध्यवदवृत्तित्वाज्ञानादिति वाच्यम्। उपजीव्यत्वेन भिन्नत्वात् उपजीव्यत्वेऽपि साध्यवति न वर्त्तत इति ज्ञानं न स्वतोदूषकमिति चेत्। न। असहचार-

---

'साध्यवदवृत्तित्वाज्ञानात्' वृत्तिमत्त्वविशिष्टसाध्यवदवृत्तित्वज्ञानानुत्पादात्, वृत्तिमत्त्वविशिष्टसाध्यवदवृत्तित्वज्ञानोत्पत्तेः साध्याभाववद्गामित्वज्ञानोत्पत्तिव्याप्यत्वादिति यावत्, एकविशेषबाधग्राहकसामग्रीसहकृतसामान्यग्रहसामग्र्यास्तदितरविशेषप्रकारकज्ञानजनकत्वनियमादिति भावः। यद्यपि वृत्तिमत्त्वे सति साध्यवदवृत्तित्वज्ञानस्य साध्याभाववद्गामित्वविषयकत्वावश्यकत्वे न कापि क्षतिः प्रतिबध्यतावच्छेदकभेदादेकेनापरस्यान्यथासिद्ध्यसम्भवात्, तथापि तदुपेक्ष्य स्फुटतरमस्य समाधानमाह, 'उपजीव्यत्वेनेति वृत्तिमत्त्वे सति साध्यवदवृत्तित्वज्ञानस्य इतरबाधनिश्चयविधया तत्र साध्याभाववद्वृत्तित्वज्ञाने कुत्रचिदुपजीव्यत्वमात्रेणेत्यर्थः, मात्रपदात् तस्य तदात्मकत्वनियमव्यवच्छेदः, 'भिन्नत्वादिति कुत्रचित्तत्र तद्भिन्नत्वस्यापि सत्त्वादित्यर्थः, साध्याभावाद्युपस्थितिविरहेण तेन विनापि क्वचित्तदुत्पादादिति भावः। 'उपजीव्यत्वेऽपि' क्वचिदुपजीव्यमात्रसत्त्वेऽपि तस्य तदात्मकत्वनियमाभावेऽपीति यावत्, 'न स्वतो दूषकमिति नानुमिति-तत्कारणान्यतरं प्रति साक्षात् प्रतिबन्धकमित्यर्थः, तथाच साध्यवदवृत्तित्वं कथं हेत्वाभास इति भावः। 'असहचारज्ञानस्य' साध्यवदवृत्तित्वज्ञानस्य, 'विरोधितया' सहचारांशग्रहविरोधितया,

ज्ञानस्य विरोधितया व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकत्वात् व्यभिचाराज्ञानविरोधित्वेन व्यभिचारज्ञानवत्। ननु विरुद्धस्य स्वार्थानुमानदोषत्वेऽपि परार्थानुमानेऽपार्थकत्वं अयोग्यताज्ञानेन निश्चितानन्वयादिति चेत्। न। अयोग्यताज्ञानस्य विरुद्धत्वज्ञानोपजीवकत्वेन तस्यैव दोषत्वात् बाधेऽप्येवं। स चायं विधिसाधने त्रिविधः

---

'व्यभिचाराज्ञानेति व्यभिचारस्याज्ञानं यस्मादिति व्युत्पत्त्या अव्यभिचारज्ञानेत्यर्थः। 'नन्विति, 'अपार्थकत्वं' अपार्थकत्वमेव उद्भाव्यमिति शेषः, यतः शाब्ददोषस्य पुरस्फूर्त्तिकतया तस्मिन् सति हेत्वाभासोद्भावनं निरनुयोज्यानुयोगमावहतीति भावः। ननु कुतोऽपार्थकत्वमित्यत आह, 'अयोग्यतेति एकपदार्थेऽपरपदार्थाभावप्रमाया-अयोग्यतात्वेन प्रकृते साधने साध्यसामानाधिकरण्याभावप्रमैवायोग्यता तस्याः ज्ञानेनेत्यर्थः, 'निश्चितेति निश्चितायोग्यताकत्वादित्यर्थः, तथाच निश्चितायोग्यताकत्वेनापार्थकत्वं यत्रानन्वयावगतिः तदेवापार्थकमिति परिशिष्टकृताभिधानादिति भावः। 'अयोग्यताज्ञानस्येति विरुद्धत्वप्रमाया ज्ञानमेवात्रायोग्यताधीः तत्र च विषयविधया विरुद्धत्वज्ञानमुपजीव्यमिति भावः। 'दोषत्वात्' दोषत्वेनोद्भाव्यत्वात्, 'बाधेऽप्येवमिति, 'एवं' तज्ज्ञानस्यायोग्यताज्ञानोपजीव्यत्वेन परार्थस्थले उद्भाव्यत्वं। 'स चायमिति, 'अयं' विरोधः, 'विधिसाधने' विधिसाधकतया परोपन्यस्ते विरुद्धसाधने, 'त्रिविधः' लिङ्गत्रयेणैव कथावसरेऽनुमेयतया कथकसम्प्रदायसिद्धः, किं लिङ्ग-

साक्षात्साध्याभावव्याप्यत्वात् साध्यव्यापकाभावव्याप्यत्वात् साध्यव्यापकविरुद्धोपलम्भात् यथा धूमवानयं योग्यधूमवत्तया अनुपलभ्यमानत्वात्। निरग्निकत्वात् जलाशयत्वात्। न च सर्व्वंच साध्यव्यापकविरुद्धोपलम्भ-

---

त्रयं तदाह, 'साक्षात्साध्याभावेति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्याभावेत्यर्थः, 'साध्यव्यापकाभावव्याप्यत्वादिति व्याप्यपदस्य स्वरूपार्थकतया साध्यव्यापकाभावत्वादित्यर्थः, साध्यव्यापकाभावत्वञ्च साध्यव्यापकतावच्छेदकरूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वं, 'साध्यव्यापकविरुद्धोपलम्भादिति उपलम्भपदस्याभेदपरतया साध्यव्यापकविरुद्धत्वादित्यर्थः, साध्यव्यापकविरुद्धत्वञ्च साध्यव्यापकतावच्छेदकरूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावव्याप्यत्वं, हेतुभेदेन त्रयाणामुदाहरणं क्रमेणाह, 'यथेति, 'धूमवानयमिति, 'अयं' धूमवत्त्वेनानुपलभ्यमानोदेशः, 'योग्यधूमेति 'योग्यः' बाधितः, तथाच धूमवत्त्वेनानुपलभ्यमानोऽयं देशः धूमवान् धूमवत्ताप्रमित्यविषयत्वात् इति वादिना प्रयुक्ते साध्याभावव्याप्यत्वेन साध्यविरुद्धत्वमुन्नीयते, अयं देशोधूमवान् निरग्निकत्वादिति परेण प्रयुक्ते साध्यव्यापकाभावत्वेन साध्यविरुद्धत्वमुन्नीयते, अयं देशोधूमवान् जलाशयत्वात् इति वादिना प्रयुक्ते साध्यव्यापकवह्न्यादिविरुद्धत्वेन साध्यविरुद्धत्वमुन्नीयते इत्यर्थः, स्वरूपासिद्धत्ववारणाय प्रथमहेतौ प्रमात्वप्रवेशः, तत्रत्वे तस्यैव दोषस्यातिस्फुटतया तदपहाय विरुद्धोन्नयनस्यानुचितत्वापत्तेः, इदमुपलक्षणं गोत्ववान् अश्वत्वादित्यादावेकस्मिन्नपि हेतौ

इति न त्रैविध्यम्, एतदज्ञानेऽपि साध्याभाव-तद्व्यापकाभावव्याप्यत्वेनापि ज्ञातस्य दोषत्वात् । न च धूमवानयं तदभाववत्त्वादिति त्रयाधिकं, स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं हि व्यापकत्वं तच्चाभेदेऽपि धूमवानयं धूमाभाववत्तयोपलभ्यमानत्वात् तद्वत्तया-

---

कालभेदेन पुरुषभेदेन च त्रयाणामुन्नायकत्वं द्रष्टव्यं । 'साध्यव्यापकविरुद्धोपलम्भ इति साध्यव्यापकविरुद्धत्वेनैव साध्यविरुद्धोन्नयनं कथावसरे कथकसम्प्रदायसिद्धमित्यर्थः, 'न त्रैविध्यमिति कथावसरे कथकानां विरुद्धत्वोन्नायकस्य न त्रैविध्यमित्यर्थः, 'एतदज्ञानेऽपि' साध्यव्यापकविरुद्धत्वस्याज्ञानेऽपि, 'साध्याभावेति व्याप्यपदव्यत्यासात् साध्याभावव्याप्यत्वेन साध्यव्यापकाभावत्वेनापीत्यर्थः, 'ज्ञातस्य' ज्ञानस्य, 'दोषत्वादिति कथावसरे विरुद्धत्वदोषोन्नायकतायाः सकलतान्त्रिकसिद्धत्वादित्यर्थः, 'इति त्रयाधिकमिति इत्यत्र विरुद्धत्वोन्नायकं त्रयाधिकमित्यर्थः, तत्र साध्याभावव्याप्यत्व-साध्यव्यापकाभावत्वादीनां हेतौ स्वरूपासिद्धतया तेषां तदुन्नायकत्वासम्भवादित्यभिमानः, 'तच्चाभेदेऽपीति, तथाच तत्रापि साध्यव्यापकाभावत्व-साध्यव्यापकविरुद्धत्वाभ्यामेव विरुद्धत्वोन्नयनसम्भव इति भावः । इदमुपलक्षणं साध्याभावव्याप्यत्वस्यापि भेदाभेदसाधारणतया तेनापि तत्र तदुन्नयनसम्भव इति द्रष्टव्यम् । ननु तथापि धूमवानयं धूमाभाववत्तया ज्ञायमानत्वादित्यादावुक्तत्रयेण न विरुद्धत्वोन्नयनसम्भवः तत्त्रयस्य तत्रासत्त्वादित्यत-आह, 'धूमवानयमिति, अत्र हेतावुपलम्भोऽभ्रम-

नुपलभ्यमानत्वादित्यनैकान्तिकमेव। निषेधसाधनेऽपि त्रिविधः प्रतियोग्युपलम्भात् साध्यव्यापकाभावोपलम्भात् साध्यव्यापकविरुद्धोपलम्भात् यथा निरग्निको-

---

प्रमाया धारणोनिविष्टः, 'तदन्तयेति धूमप्रकारकलौकिकसाक्षात्काराविषयत्वादित्यर्थः, 'अनैकान्तिकमेवेति न तु विरुद्धमित्यर्थः, प्रथमस्य धूमाभाववत्ताभ्रमविषये धूमवति द्वितीयस्य चातीन्द्रिये धूमवति साध्यसमानाधिकरणत्वादिति भावः। 'निषेधसाधनेऽपीति निषेधसाधकतया परप्रयुक्ते विरुद्धसाधनेऽपीत्यर्थः, 'त्रिविधः' कथावसरे लिङ्गत्रयेणैवानुमेयतया कथकसम्प्रदायसिद्धः, किं लिङ्गत्रयं तदाह, 'प्रतियोग्युपलम्भादिति उपलम्भपदस्याभेदपरतया साध्यप्रतियोगित्वादित्यर्थः, एवमग्रेऽपि, हेतुभेदेन त्रयाणामुदाहरणं क्रमेण दर्शयति, 'यथेति अर्थस्तु पूर्ववत्, 'सर्व्वस्यायमिति विरोधसाधकोधर्म्म इति शेषः। 'विशेषणद्वारापि' हेतुतावच्छेदकघटकविशेषणद्वारापि, अनुमितः सन् क्वचिद्विरोधोन्नायक इति शेषः।

साम्प्रदायिकास्तु 'स चायमिति अयं विरुद्धोहेतुः विधिसाधने विधिरूपसाध्यसामानाधिकरण्यग्रहे विधिरूपसाध्यानुमितौ वा, 'त्रिविधः' त्रिधा प्रमितः सन् प्रतिबन्धकः, केन त्रयेण प्रमितस्तदाह, 'साक्षात्साध्याभावेत्यादि, सर्व्वत्र प्रकारिता पञ्चम्यर्थः, प्रमित इति शेषः, शेषं पूर्व्ववत्, हेतुभेदेन त्रयाणामुदाहरणं क्रमेणाह, 'यथेति, एकस्मिन्नपि हेतौ कालभेदेन पुरुषभेदेन च त्रयाणामुदाहरणं बोध्यं, 'विरुद्धोपलम्भः' विरुद्धत्वप्रकारकोपलम्भः, प्रति-

ऽयमग्निमत्त्वात् धूमाभावशून्यत्वात् धूमवत्त्वात् सर्व्वश्चायं विशेषणद्वारापि यथा कृष्णागुरुप्रभववह्निमानयं

---

बन्धक इति शेषः। 'इति त्रयाधिकमिति, अत्र साध्याभावव्याप्यत्वसाध्यव्यापकाभावत्वाद्यभावेन तद्वत्तया प्रमितत्वाभावादित्यभिमानः। अभिमानं निराकृत्य समाधत्ते, 'ख्यमानेति, इदमुपलक्षणं साध्याभावव्याप्यत्वस्यापि भेदाभेदसाधारणतया तद्वत्तयापि प्रमितत्वस्य तत्र सम्भवः। ननु धूमवानयं धूमाभाववत्तया ज्ञायमानत्वादित्यादिकं तत्त्रयाधिकमेव तत्र साध्याभावव्याप्यत्वादीनां अभावादित्यत आह, 'धूमवानयमिति, 'निषेधसाधनेऽपि' निषेधरूपसाध्यसामानाधिकरण्यग्रहेऽपि, 'त्रिविधः' त्रिधा ज्ञानात् प्रतिबन्धकः, 'प्रतियोग्युपलम्भात्' साध्यप्रतियोगित्वप्रकारकज्ञानात्, एवमग्रेऽपि, धर्म्मपरो निर्द्देशः, 'सर्व्वश्चायमिति अयं दूषकताप्रयोजको धर्म्मः साध्याभावव्याप्यत्वादिरूपः, 'विशेषणद्वारापीति अनुमेय इति शेषः, अस्योदाहरणमाह, 'यथेति इत्याहुः। तदसत्, साध्याभावव्याप्यत्वादिज्ञानस्य साध्यसामानाधिकरण्यग्रहप्रतिबन्धकत्वे मानाभावात् विरोध्यविषयकत्वात् साध्यसामानाधिकरण्यादिग्रहस्यापि प्रतिबन्धकतया विभागस्य न्यूनत्वप्रसङ्गाच्च।

प्राञ्चस्तु 'स चायमिति अयं विरुद्धो हेतुः, 'विधिसाधने' विधिसाधकः, 'त्रिविधः' त्रिधा तान्त्रिकैर्विभक्तः इत्यर्थः, इत्याहुः। तदसत्, 'एतद्ज्ञानेऽपीत्याद्यग्रिमग्रन्थासङ्गतेः।

'अयञ्चेति विरोधः इति शेषः, 'बाधेति बाधसङ्कीर्णः कश्चिद्यथा

कटुकासुरभिपाण्डरधूमवत्त्वात्। अयञ्च बाधाश्रयासिद्ध-स्वरूपासिद्धासाधारणसङ्कीर्णः क्वचित्।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे विरुद्धसिद्धान्तः ॥ ० ॥

---

अश्वो गौरश्वत्वादित्यादौ, आश्रयासिद्धिसङ्कीर्णः क्वचिद्यथा काञ्चनमयो गौरश्वो गोत्वादित्यादौ, स्वरूपासिद्धिसङ्कीर्णः क्वचिद्यथा सुरभिर्गौरश्वत्वादित्यादौ, असाधारणसङ्कीर्णः क्वचिद्यथा नित्यः शब्दः शब्दत्वादित्यादावित्यर्थः। प्राचीननये सपक्ष-विपक्षगामित्वस्यैव साधारण्यतया तत्साङ्कर्य्यं नाभिहितं, नव्यनये वृत्तिमति विरुद्धे तत्साङ्कर्य्यमपि बोध्यं, बाधपदं सत्प्रतिपक्षस्य, असाधारणपदञ्चानुपसंहारित्वस्याप्युपलक्षणं, साध्याव्यभिचरितत्वे सति साध्यसामानाधिकरण्यरूपव्याप्यभावासिद्धिसङ्करो बाध-स्वरूपासिद्ध्यन्यतरसङ्करस्य सर्व्वत्रैव, साध्यविशेषणासिद्धि-साधनविशेषणासिद्धि-सङ्करस्य न क्वापि, साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यसामानाधिकरण्याभावविशिष्टहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोरेव विरोधतया तस्य तत्राप्रसिद्धत्वादिति ध्येयम्।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये विरुद्धसिद्धान्तरहस्यम्।

## अथ सत्प्रतिपक्षपूर्व्वपक्षः ।

सत्प्रतिपक्षत्वं न समानबलबोधितसाध्यविपर्य्यय-लिङ्गत्वं, परस्परप्रतिबन्धेनोभयोरबोधकत्वात्, बलञ्च

---

अथ सत्प्रतिपक्षपूर्व्वपक्षरहस्यम् ।

'समानबलबोधितेति समानबलवल्लिङ्गज्ञानजन्य-तत्कालीन-तत्पुरुषीयबोधविषयसाध्यविपर्य्ययकलिङ्गत्वं[१] तत्कालीन-तत्पुरुषीय-सत्प्रतिपक्षितत्वमित्यर्थः, बलनिष्ठसमानत्वञ्च तत्कालीन-तत्पुरुषीय-साध्यानुमितिजनकस्वनिष्ठबलज्ञानसमानाधिकरणसमानकालीनज्ञा-नविषयत्वं, स्वपदं लक्ष्यीभूतहेतुपरं[२] । दूषणान्तरमाह, 'बलञ्चेति, 'पक्ष-सपक्षसत्त्वादीति[३] पक्षवृत्तित्व-सपक्षवृत्तित्वादीत्यर्थः, आदि-पदात् विपक्षावृत्तित्वपरिग्रहः, प्रथमे सपक्षत्वं साध्यवत्त्वेन निश्चितत्वं, विपक्षत्वञ्च तदभाववत्त्वेन निश्चितत्वं, द्वितीये सपक्षत्वं साध्याभाव-वत्त्वेन निश्चितत्वं विपक्षत्वं साध्यवत्त्वेन निश्चितत्वं, प्रतिहेतौ स्वहेतु-साध्याभावस्यैव साध्यत्वात्, 'व्यतिरेकिणीति केवलव्यतिरेकिणीत्यर्थः, तत्र सपक्षाप्रसिद्धेरिति भावः । इदमुपलक्षणं अन्वयिनि सपक्ष-

---

(१) समानबलेन बोधितः साध्यविपर्य्ययो येन एतादृशं लिङ्गं यस्येति व्युत्पत्त्या एतादृशार्थलाभ इति ।

(२) लक्ष्यीभूतलिङ्गपरमिति ख०, ग० ।

(३) 'सपक्षसत्त्वादि' इत्यत्र 'पक्ष-सपक्षसत्त्वादि' इति कस्यचिन्मूल-पुस्तकस्य पाठमनुसृत्य एतादृशपाठधारणमित्यनुमीयते ।

न सपक्षसत्त्वादि व्यतिरेकिण्यभावात् । नापि समान-व्याप्ति-पक्षधर्म्मतावत्त्वं, विरोधेनैकत्र तद्भङ्गनियमात् । नापि व्याप्ति-पक्षधर्म्मतया ज्ञातत्वं विरोधिव्याप्तिपक्ष-

प्रसिद्धिसत्त्वेऽप्येकत्र हेतौ तदभावस्यावश्यकत्वात् । 'समानव्याप्तीति समानसाध्याभावनिरूपितव्याप्ति-पक्षधर्म्मतावत्त्वमित्यर्थः, समानबल-वत्त्वमिति शेषः, व्याप्ति-पक्षधर्म्मतयोः समानत्वञ्च तत्कालीन-तत्पु-रुषीयसाध्यानुमितिजनकस्वनिष्ठसाध्यनिरूपितव्याप्ति-पक्षधर्म्मताज्ञान-समानाधिकरण-समानकालीनज्ञानविषयत्वं, स्वनिष्ठत्वं व्याप्ति-पक्ष-धर्म्मताविशेषणं, स्वपदं लक्ष्यीभूतलिङ्गपरं, 'विरोधेनेति साध्य-तद-भावयोर्विरोधेनेत्यर्थः, 'तद्भङ्गेति स्वसाध्यनिरूपितव्याप्ति-पक्षधर्म्मता-न्यतरभङ्गेत्यर्थः, 'व्याप्ति-पक्षधर्म्मतयेति समानसाध्याभावनिरूपितव्या-प्तिविशिष्टपक्षधर्म्मताज्ञानविषयत्वमित्यर्थः, समानबलवत्त्वमिति शेषः । ज्ञाननिष्ठसमानत्वञ्च तत्कालीन-तत्पुरुषीयसाध्यानुमितिजनकस्ववि-षयकसाध्यनिरूपितव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म्मताज्ञानसमानाधिकरणसमा-नकालीनत्वं, लिङ्गविशेष्यक साध्य-तदभावव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म्मता-प्रकारकपरामर्शाविव सर्व्वत्र सत्प्रतिपक्षौ तादृशपरामर्शस्यापि प्राचीनमते[१] अनुमितिजनकत्वादिति भावः । 'विरोधिव्याप्तिपक्ष-धर्म्मताविशिष्टज्ञानयोरिति परस्परविरुद्धयोर्व्याप्ति-पक्षधर्मतयोरेका-धिकरणे ज्ञानस्येत्यर्थः, 'अन्यतरभ्रमत्वनियमेनेति व्याप्ति-पक्षधर्म-

(१) प्राचीननये इति ख०, ग० ।

धर्म्मताविशिष्टज्ञानयोरन्यतरभ्रमत्वनियमेन नित्यत्व-व्याप्तश्रावणत्वादिवैशिष्ट्याप्रसिद्ध्यारोपयितुमशक्यत्वात्।

---

तान्यतरांशे भ्रमत्वनियमेनेत्यर्थः, एतच्चाप्रसिद्धेत्यत्र हेतुः, 'नित्यत्व-व्याप्तेति 'व्याप्तं' व्याप्तिः, 'श्रावणत्वपदं शब्दधर्मत्वपरं, नित्यत्वव्याप्ति-शब्दधर्मत्ववैशिष्ट्याप्रसिद्धेत्यर्थः, 'आरोपयितुमिति साध्याभावव्याप्ति-विशिष्टपक्षधर्मताया आरोपयितुमित्यर्थः। तथाच शब्दोऽनित्यः कृतकत्वात् शब्दोनित्यः श्रावणत्वादित्यादौ श्रावणत्वादिना सत्प्रति-पक्षिते कृतकत्वादौ लक्षणस्यासम्भवः, नित्यत्वादिरूपसाध्याभावव्याप्ति-पक्षीभूतशब्दादिधर्मत्वयोरेकाधिकरणवृत्तित्वाभावात् नित्यत्वादि-रूपसाध्याभावनिरूपितव्याप्तिविशिष्ट-पक्षीभूतशब्दादिधर्मत्वाप्रसिद्ध्या तज्ज्ञानस्यासम्भवादिति भावः। 'साध्यव्याप्तस्येति साध्याभावरूपसाध्य-व्याप्तस्येत्यर्थः, 'साध्यव्याप्यता' साध्याभावरूपसाध्यव्याप्यता, तथाच यत्र पक्षे साध्यमबाधितं तत्र क्वचित् साध्याभावव्याप्ये पक्षधर्म्मता-रोपः, क्वचिच्च पक्षधर्म्मे साध्याभावव्याप्यतारोपः, एवं यत्र पक्षे साध्यं बाधितं तत्र क्वचित् साध्यव्याप्ये पक्षधर्म्मतारोपः, क्वचिच्च पक्षधर्म्मे साध्यव्याप्यतारोप इत्यर्थः। इत्थञ्च समानज्ञानीयसाध्या-भावव्याप्यनिष्ठपक्षधर्म्मतानिरूपितविषयतावत्त्वं समानज्ञानीयपक्षधर्म्म-निष्ठसाध्याभावव्याप्यतानिरूपितविषयतावत्त्वञ्च समानबलवत्त्वं, ज्ञान-निष्ठसमानत्वमपि द्वयं साध्यव्याप्यवृत्तिपक्षधर्म्मतानिरूपितस्वनिष्ठ-विषयताप्रतियोगिज्ञानसमानाधिकरणसमानकालीनत्वं, पक्षधर्म्म-

न च साध्यव्याप्तस्य पक्षधर्म्मता पक्षधर्म्मस्य वा साध्य-व्याप्यतारोप्येति वाच्यम्। एकत्र तदुभयाभावाद्विशिष्ट-

वृत्तिसाध्यव्याप्यतानिरूपितस्वनिष्ठविषयताप्रतियोगिज्ञानसमानाधिकरणसमानकालीनत्वञ्च, स्वपदं लक्ष्यीभूतलिङ्गपरं, एकविशिष्टेऽपरवैशिष्ट्यमितिन्यायेन साध्य-तदभावव्याप्ति-पक्षधर्म्मतोभयावगाहिलिङ्गविशेष्यकपरामर्शावेव सर्व्वत्र सत्प्रतिपक्षौ तादृशपरामर्शस्यापि प्राचीनमतेऽनुमितिजनकत्वादिति भावः। 'एकत्रेति एकस्मिन् पक्षे साध्यव्याप्य-साध्याभावव्याप्ययोरुभयोरभावादित्यर्थः, एतच्चाप्रसिद्धेत्यत्र हेतुः, 'विशिष्टस्याप्रसिद्धा' क्वचित् साध्याभावव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म्मत्वस्य क्वचिच्च साध्यव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म्मत्वस्याप्रसिद्धा, 'तद्वैशिष्ट्यारोपेति यत्र साध्याभावव्याप्यत्वविशिष्टपक्षधर्म्मत्वमप्रसिद्धं तत्र तद्वैशिष्ट्यस्य यत्र च साध्यव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म्मत्वमप्रसिद्धं तत्र तद्वैशिष्ट्यस्यारोपासम्भवादित्यर्थः। यद्यपि साध्याभावव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म्मत्वादेरप्रसिद्धा तज्ज्ञानासम्भवेऽपि साध्याभावव्याप्यादौ पक्षधर्म्मतारोपस्य पक्षधर्म्मे साध्याभावव्याप्यत्वाद्यारोपस्य च सम्भवादिदमयुक्तं, तथापि यथोक्तं समानत्वद्वयं समानबलवत्त्वद्वयञ्च समुचितं न क्वापि सम्भवति प्रत्येकञ्च परस्परमव्याप्तमतः प्रागुक्तमेव समानबलवत्त्वं निर्व्वाच्यं तच्चाप्रसिद्धा न सम्भवतीति निगूढाभिप्रायः। अथ समानस्थानीयपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविषयतानिरूपितसाध्याभावव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतावत्त्वं समानबलवत्त्वं, समानत्वञ्च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविषयतानिरूपितसाध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नस्वनिष्ठविषयताप्रतियोगि-

स्याप्रसिद्धा तद्वैशिष्ट्यारोपासम्भवात्। नाप्यनिर्द्धारितविशेषेण बोधितसाध्यविपर्य्ययकत्वम्, उभयोरबोधकत्वात् विशेषस्य न व्याप्तिभङ्गाभङ्गरूपः एकत्र तद्भङ्गनियमात्।

---

ज्ञानसमानाधिकरण-समानकालीनत्वं, पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नत्वञ्च वैज्ञानिकं तेन क्वचित् पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षादेरप्रसिद्धावपि न क्षतिः, पक्षविशेष्यकसाध्य-तद्भावव्याप्यवत्तापरामर्शौ साध्य-तद्भावव्याप्यविशेष्यक-पक्षप्रकारकपरामर्शौ वा सत्प्रतिपक्षौ तादृशपरामर्शयोरेव साध्य-तद्भावानुमितिजनकत्वादिति चेत् तथापि 'परस्परविरोधेनोभयोरेवाबोधकत्वादिति प्रागुक्तदोषस्य दुरुद्धरत्वात् रत्नकोषकारमतस्य चाग्रे निरसनीयत्वादिति निगर्भः। 'अनिर्द्धारितविशेषेणेति अनिर्द्धारितविशेषकेनेत्यर्थः, वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः, अन्वयश्चास्य बोधितसाध्यविपर्य्ययकेत्यत्र, तथाचानिर्द्धारितविशेषकपरामर्शविशिष्टबोधितसाध्यविपर्य्ययकलिङ्गत्वं सत्प्रतिपक्षितत्वमित्यर्थः, अनिर्द्धारितविशेषकत्वञ्च अगृहीतसाध्यव्याप्याभाववद्विशेष्यताकत्वं अगृहीतभ्रमत्वकत्वं इति यावत्। दूषणान्तरमाह, 'विशेषस्येति, 'व्याप्तिभङ्गाभङ्गरूपः' व्याप्तिभङ्गाभङ्गत्वरूपः साध्यव्याप्याभाववद्विशेष्यताकत्वरूप इति यावत्, 'व्याप्त्या' साध्यव्याप्यत्वरूपेण, 'भङ्गः' अभावः यत्र तत् 'व्याप्तिभङ्गं' साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववदिति यावत्, तस्य विशेष्यतासम्बन्धेन 'अभङ्गः' सत्त्वं यत्रेति

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डे सत्प्रतिपक्षपूर्व्वपक्षः ॥

---

व्युत्पत्तेः, 'एकत्र' एकस्य साध्यव्याप्य-साध्याभावव्याप्ययोरन्यतरस्येति यावत्, 'भङ्गनियमात्' पत्ते भङ्गनियमात्, तथाच साध्यव्याप्याभाव-वद्विशेष्यकत्व-साध्याभावव्याप्याभाववद्विशेष्यकत्वान्यतरत्वरूपेण तदव-धारणं सर्व्वत्रैवास्तीति भावः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सत्प्रतिपक्षपूर्व्वपक्षरहस्यम् ।

## अथ सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तः।

उच्यते। साध्यविरोध्युपस्थापनसमर्थसमानबलोप-

---

### अथ सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तरहस्यम्।

यद्यपि साध्याभावव्याप्यवान् पक्षः सत्प्रतिपक्षः येन केनचित् सम्बन्धेन तद्वान् हेतुः सत्प्रतिपक्षितः, तथापि तत्र सत्प्रतिपक्षितत्व-व्यवहारौपयिकं साध्यवत्यपि पक्षे साध्य-तदभावव्याप्यवत्तापरामर्शयोः समवलनदशायां[१] सत्प्रतिपक्षव्यवहारात् साध्याभाववत्यपि पक्षे साध्य-तदभावव्याप्यवत्तापरामर्शयोः असमवलनदशायां तादृशपरामर्शयो-रेकत्राप्रामाण्यग्रहदशायां वा सत्प्रतिपक्षितत्वव्यवहाराभावाच्चेत्यतो व्यवहारौपयिकं लक्षणमाह, 'साध्यविरोधीति' 'साध्यविरोधी' साध्याभावः, तदुपस्थापनसमर्था तदनुमितिजननस्वरूपयोग्या या 'समाना' समानकालीना, 'बलोपस्थितिः' बलवती उपस्थितिः, तया 'प्रतिरुद्धः' विशिष्टः, यः 'कार्य्यलिङ्गः' साध्यानुमितिरूपकार्य्यजनन-समर्थः साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शः, तद्विशिष्टत्वमित्यर्थः, बहुव्रीहिसमा-साश्रयणाद्वैशिष्ट्यलाभः, 'व्याप्ति-पक्षधर्म्मते' इति साध्याभावव्याप्तिसम्ब-न्धित्व-पक्षसम्बन्धित्वे इत्यर्थः, साध्याभावव्याप्तिसम्बन्धित्वं साध्याभाव-व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविषयत्वं, पक्षसम्बन्धित्वञ्च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयतानिरूपितसाध्याभाव-

---

(१) समूहालम्बनदशायामिति ग०।

स्थित्या प्रतिरुद्धकार्य्यलिङ्गत्वं तत्त्वं, बलञ्च व्याप्ति-पक्ष-

व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयत्वं, अनयोर्विनिगमनाविरहेण वैकल्पिकमुपादानं, अत्र साध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शनिष्ठाप्रामाण्यग्रहसत्त्वे सत्प्रतिपक्षितत्वव्यवहाराभावात् तद्वारणाय स्वरूपयोग्यान्तमुपस्थितिविशेषणं, एवं साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शनिष्ठाप्रामाण्यग्रहसत्त्वेऽपि सत्प्रतिपक्षितव्यवहाराभावात्तद्वारणाय समर्थान्तं परामर्शविशेषणं, अप्रामाण्यज्ञानाक्रान्तपरामर्शस्य नानुमितिजननस्वरूपयोग्यः अगृहीताप्रामाण्यकपरामर्शत्वेन कारणत्वात्, गृहीताप्रामाण्यकपरामर्शस्यापि विशेषणज्ञानादिविधया अनुमितिजननस्वरूपयोग्यतया अगृहीताप्रामाण्यकनिरुक्तबलवदुपस्थितित्वेन स्वरूपयोग्यतालाभाय बलवत्त्वमुपस्थितिविशेषणं, उपस्थितित्वमपि न विशेषणीयं यथोक्तस्वरूपयोग्यतायाः अन्यत्राभावात्[१] साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शविशिष्टत्वञ्च विलक्षणविषयतासम्बन्धेन[२] विवक्षितं तेन साध्यादौ नातिप्रसङ्ग इति ध्येयं। न च तथापि पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन साध्य-तदभावव्याप्यवत्तापरामर्शयोः सम्वलनदशायामपि सत्प्रतिपक्षितव्यवहारापत्तिर्दुर्व्वारा इति वाच्यं। पक्षतावच्छेदकावच्छेदेनानुमित्यनुत्पत्त्या तत्रापि सत्प्रतिपक्षितव्यवहारस्येष्टत्वादिति भावः। अत्र यद्यप्यप्रामाण्यज्ञानं पृथक्

(१) अगृहीताप्रामाण्यकपरामर्शत्वरूपस्वरूपयोग्यत्वस्य इच्छादावभावादित्यर्थः।

(२) स्वनिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारतासम्बन्धेनेत्यर्थः।

**धर्म्मेति । विरोधिबोधकान्यगमकतौपयिकरूपसम्पत्ति-**

---

प्रतिबन्धकं न तु परामर्शनिष्ठकारणतायां तदवच्छेदकं तदा अप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितपरामर्शस्यानुमितिजननस्वरूपयोग्यत्वाद्व्यवहारातिप्रसङ्गोदुर्व्वारः ।

किञ्च यद्यप्रामाण्यज्ञानानाक्रान्तसाध्य-तदभावोभयव्याप्यवत्तापरामर्शसत्त्वेऽपि साध्याभावाभावत्वादिरूपेणैकत्र बाधावतारेण न सत्प्रतिपक्षितव्यवहारः तदातिप्रसङ्गोदुर्व्वार इत्यस्वरसात् लक्षणान्तरमाह, 'विरोधिबोधकान्येति साध्याभावानुमितिविरोधी यो बोधः अप्रामाण्यग्रहादिस्तदसमवहितान्यत्वविशिष्टेत्यर्थः;' एतच्च गमकतौपयिकरूपविशेषणं, विरोधिता च साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शनिष्ठविरोधितातिरिक्ता ग्राह्या तेन नासम्भवः, 'गमकतौपयिकरूपसम्पत्तिमत्तयेति वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः, 'ज्ञायमानेनेति भावसाधनं वर्त्तमानत्वमात्रं शानप्रत्ययार्थः, तथाच गमकतौपयिकरूपविशिष्टस्वसमानकालीनज्ञानेन 'प्रतिरुद्धः' विशिष्टः यः कार्य्यः यः साध्यानुमितिकरणे स्वरूपयोग्यः साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शस्तद्वत्त्वमित्यर्थः, करणे शक्तः कार्य्य इति व्युत्पत्तेः[१] गमकतौपयिकरूपञ्च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविषयतानिरूपितसाध्याभावव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयित्वं, साध्यानुमितिस्वरूपयोग्यत्वञ्च साध्यानुमितिविरधिबोधासमवहितत्वं, विरोधिता च

---

(१) अत्र 'कार्य्यपदेन कारणताशालिभाव' इत्यधिकः पाठः ग-चिह्नित-पुस्तके वर्त्तत इति ।

मन्यया ज्ञायमानेन प्रतिरुद्धकार्य्यत्वं वा तत्त्वं,

---

साध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शनिष्ठविरोधिताव्यावृत्ता ग्राह्या तेन नासम्भवः। न चैवं साध्य-तद्भावव्याप्यवत्तापरामर्शयोरेकत्र प्रामाण्य-निश्चये अपरत्र च तद्विरहेऽपि सत्प्रतिपक्षव्यवहारापत्तिः विरोधि-बोधासमवहितत्वस्येव प्रामाण्यग्रहासमवहितत्वस्यापि निवेशे साध्य-तद्भावव्याप्यवत्तापरामर्शयोरुभयत्रैव प्रामाण्यग्रहदशायामपि सत्प्र-तिपक्षितव्यवहारानुपपत्तिरिति वाच्यं। तादृशपरामर्शयोरुभयत्र प्रामाण्यग्रह इव एकत्र प्रामाण्यग्रहे अपरत्र च तद्ग्रहेऽपि सत्प्रति-पक्षितव्यवहारस्येष्टत्वात्। अथैवं "समानबलौ हि सत्प्रतिपक्षौ न तु हीनबलाधिकबलौ[१]। न हि भवति तरक्षुः सत्प्रतिपक्षो हरिणशावकस्य" ॥ इति सत्प्रतिपक्षस्थलीयटीकाकारग्रन्थविरोधः[२] 'तरक्षुः' मृगादनापरनामा क्षुद्रव्याघ्रविशेषः, तथाच कथमत्रेष्टा-पत्तिरिति चेत्, न, प्रामाण्यग्रहस्य बलत्वाभावात् सत्यगृहीताप्रा-माण्यकविरोधिपरामर्शे गृहीतप्रामाण्यकादपि तद्व्याप्यवत्तापराम-र्शादनुमित्यनुत्पादात् परन्तु अप्रामाण्यग्रहाभाव एव बलं एकत्रा-प्रामाण्यग्रहे यत्र न तद्ग्रहः तस्मादनुमित्युत्पादात्। न चैवं साध्य-तद्भावव्याप्यवत्तापरामर्शयोरुभयत्रैवाप्रामाण्यग्रहे सत्प्रतिपक्षता न स्यात् अप्रामाण्यग्रहाभावस्य बलतया बलवत्त्वाभावात् इति वाच्यं। इष्टत्वादिति भावः।

---

(१) न तूत्तमहीनबलाविति ख०।

(२) टीकाविरोध इति ख०।

स्थापनाया व्याप्ति-पक्षधर्म्मत्वमुभयवादिसिद्धं वादिना तदभावानुपन्यासात्, द्वितीयस्य तु तत्त्वमन्यतरासिद्ध-मिति प्रथमेन द्वितीयं बाधितमिति स्वार्थानुमान-एवायं दोष इत्येके। तन्न। एकदा निरन्तरयोर्वोभयो-

---

विवादातिरिक्तस्थल एव सत्प्रतिपक्षत्वं सम्भवति,(१) न तु विवादस्थल-इति केचिद्वदन्ति तन्मतमुपन्यस्य दूषयति, 'स्थापनाया इति, 'स्थापनायाः' साधनस्येत्यर्थः, 'उभयवादिसिद्धं' उभयवादिसिद्धत्वेन निश्चितं, मध्यस्थस्येति शेषः। 'वादिना' प्रतिस्थापनावादिना, 'तद-भावानुपन्यासादिति व्याप्ति-पक्षधर्म्मत्वाभावमनुपन्यस्य सत्प्रतिपक्षोप-न्यासादित्यर्थः। 'द्वितीयस्य तु' प्रतिस्थापनासाधनस्य तु, 'अन्य-तरासिद्धमिति स्थापनावाद्यनुमतत्वेनानिश्चितमित्यर्थः। तेन तत्र तदभावं विहाय दूषणान्तरानुपन्यासादिति भावः। 'प्रथमेन' प्रथमसाधने व्याप्ति-पक्षधर्म्मतयोरुभयवादिसिद्धत्वनिश्चयेन स्थापना-साधने व्याप्ति-पक्षधर्म्मतयोरुभयवादिसिद्धत्वनिश्चयेनेति यावत्, 'द्वितीयं' प्रतिस्थापनासाधनं, 'बाधितं' व्याप्ति-पक्षधर्म्मतान्यतरा-भाववत्तया निश्चितं, 'स्वार्थानुमान एव' विवादातिरिक्तस्थल एव, 'अयं दोषः' सत्प्रतिपक्षरूपो दोषः, सम्भवतीति शेषः। 'निरन्तर-योरिति सप्तमी, क्रमिकक्षणद्वयोरित्यर्थः, 'व्याप्ति-पक्षधर्म्मतयेति साध्य-तदभावनिरूपितव्याप्ति-पक्षधर्म्मतयेत्यर्थः। 'निरन्तयोर्वेति-

---

(१) सत्प्रतिपक्षः सम्भवतीति ख०, ग०।

व्याप्ति-पक्षधर्म्मतया ज्ञातयोः प्रतिपक्षत्वात् युगपदु-पस्थितेश्च कारणवशेन स्वपरसाधारणत्वात्।

अथ वस्तुनोऽद्व्यात्मकत्वात्[१] व्याप्ति-पक्षधर्म्मता-भङ्गएकत्रावश्यक इति स एव दोषः। न च

---

पक्षस्तु प्रथमपरामर्शपूर्व्वं सिद्ध्यादिसत्त्वे बोध्यः, अन्यथा द्वितीय-परामर्शोत्पादसमये पूर्व्वेणानुमितिजनने बाधकाभावेन नैरन्तर्य्या-सम्भवात्, 'युगपदिति, क्रमेण वेति शेषः, 'कारणवशेन' सामग्री-वशेन, 'स्वपरेति विवादस्थल-तदतिरिक्तस्थलसाधारणत्वादित्यर्थः। न चोक्तरीत्या विवादस्थले द्वितीयहेतौ व्याप्ति-पक्षधर्म्मतान्यतरा-भावनिश्चयरूपस्य प्रतिबन्धकस्य सत्त्वात् सामग्र्येव न सम्भवतीति वाच्यं। सर्व्वत्र तन्निश्चये मानाभावात्। न च स्थापनाहेतौ व्याप्ति-पक्षधर्म्मतयोरुभयवादिसिद्धत्वनिश्चयस्य सत्त्वात् सर्व्वत्र द्वितीयहेतौ तन्निश्चय आवश्यक इति वाच्यं। एकनिष्ठव्याप्ति-पक्षधर्म्मतयोरु-भयवादिसिद्धत्वनिश्चयस्याहत्यापरत्र[२] तदन्यतराभावनिश्चायकत्वा-भावात्[३] तन्निश्चयस्यापि सार्व्वत्रिकत्वे प्रमाणाभावाच्च। न च तद-भावानुपन्यासादेव सर्व्वत्र तन्निश्चयस्यावश्यकत्वमिति वाच्यं। अप्रति-षेधमात्रस्याभ्युपगमासाधकत्वात्। न हि सम्भवन्तः सर्व्व एव दोषाः

---

(१) वस्तुनोऽद्व्यात्मकत्वेनेति क०।

(२) हेतावपरत्रेति ख०।

(३) तदन्यतराभावानिश्चायकत्वादिति ख०, ग०।

तयोर्विरोधभङ्गेऽप्युपपत्तेर्न व्याप्त्यादिभङ्गनियम इति वाच्यम् । अविरोधेऽप्यनुमित्यविरोधात् विरोधे तु व्याप्त्यादिभङ्गनियमादिति चेत्, न, प्रतिरुद्धत्वज्ञानानन्तरं व्याप्त्यादिभङ्गज्ञानमित्युपजीव्यत्वेन

---

समुद्भाव्याः, आधिक्यप्रसङ्गादिति भावः । 'अद्व्यात्मकत्वादिति साध्य-तद्भावोभयानाश्रयत्वादित्यर्थः, 'व्याप्ति-पक्षधर्मताभङ्गः' तदन्यतरभङ्गग्रहः, 'एकत्र' स्थापनाहेतौ,(१) 'स एव दोष इति, एतच्च व्याप्ति-पक्षधर्मत्वाभावज्ञानस्य साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकत्वमभ्युपेत्य, 'तयोः' साध्य-तद्भावयोः, 'विरोधभङ्गेऽपि' विरोधित्वाग्रहदशायामपि, 'उपपत्तेः' साध्याभावव्याप्यवत्तानिश्चयस्य सम्भवात्, 'न व्याप्त्यादिभङ्गनियमः' न व्याप्त्यादिभङ्गग्रहनियमः, 'अविरोधे' विरोधित्वाग्रहे, 'अनुमित्यविरोधादिति, साध्य-तद्भावयोर्विरोधित्वज्ञानं विना साध्याभावव्याप्यवत्ताज्ञानं न प्रतिबन्धकमित्यभिमानः । 'विरोधे' विरोधित्वग्रहे, 'व्याप्त्यादिभङ्गेति तद्ग्रहेत्यर्थः । 'प्रतिरुद्धत्वज्ञानानन्तरमिति साध्य-तद्भावव्याप्यवत्तापरामर्शानन्तरमित्यर्थः, 'व्यभिचारवत्' तज्ज्ञानवत् । न चोपजीव्यत्वेऽपि न साक्षात्प्रतिबन्धकमिति वाच्यं । तथा सति व्याप्यभावज्ञानोत्पत्तिकाले अनुमित्यापत्तेः वह्निव्याप्यधूमवान् वह्न्यभावव्याप्यवांश्च इति परामर्शात्

---

(१) स्थापनाहेतौ इत्यनन्तरं प्रतिस्थापनायां वा इत्यधिकः पाठः, ख चिह्नितपुस्तके वर्त्तते ।

व्यभिचारवदस्यापि दोषत्वात्। ननु साध्य-तद्‌-भावयोरिव तद्‌व्याप्यत्वेनावधारितयोर्विरोधादेकत्र न निश्चयः किन्तु संशयः, निर्णये वान्यतरव्याप्ति-संशय इति व्याप्यत्वासिद्धिरिति चेत्, न, उभयोरे-

---

साध्याभाव साध्ययोर्युगपदनुमित्यापत्तेश्चेति भावः। 'साध्य-तद्‌भाव-योरिवेति 'न निश्चयः' इत्यत्र दृष्टान्तः, 'विरोधात्' परस्पराभाव-व्याप्यत्वात्। ननु साध्यव्याप्य-तद्‌भावव्याप्ययोर्वस्तुगत्या परस्परा-भावव्याप्यत्वरूपविरोधसत्त्वेऽपि तत्प्रकारेण ज्ञानाभावादेकत्र निश्चयो न विरुध्यत इत्यस्वरसादाह, 'निर्णये वेति, तदनन्तरमिति शेषः, 'अन्यतरेति उभयेत्यर्थः, 'व्याप्यत्वासिद्धिः' व्याप्यत्वनिश्चयाभावः, तथाच कारणाभावादेवानुमित्यनुत्पादसम्भवान्नासौ प्रतिबन्धक-इति भावः। पूर्व्वं व्याप्त्यभावज्ञानेनान्यथासिद्धेर्निराकरणेऽपि व्याप्तिनिश्चयाभावेनान्यथासिद्धेरनिराकरणान्न पौनरुक्त्यं। 'उभयोः' साध्यव्याप्य-तद्‌भावव्याप्ययोः, 'अन्यतरव्याप्तिसंशयः' उभयत्र व्याप्ति-संशयः, 'अस्य भिन्नत्वादिति अस्य पृथक्‌प्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः। नन्वस्योपजीव्यत्वेऽपि पृथक्‌प्रतिबन्धकत्वे किं मानमित्यत-आह, 'दूषकताबीजन्त्विति साक्षात्प्रतिबन्धकताकल्पकन्त्वित्यर्थः। 'विरोधिसामग्रीप्रतिबन्धेन' विरोधिनिर्णयासाधारणकारणविरो-धिपरामर्शविशिष्टेन परामर्शान्तरेण, 'निर्णयाजनकत्वं' अनुभव-सिद्धं निर्णयाजननं अनुभवसिद्धोऽनुमित्यनुत्पाद इति यावत्,

कथं निश्चयानन्तरमन्यतरव्याप्तिसंशयइत्युपजीव्यत्वेनास्य भिन्नत्वात् दूषकताबीजन्तु समबलविरोधिसामग्रीप्रतिबन्धेन निर्णयाजनकत्वं, न तु व्याप्तिपक्षधर्म्मताविरह एव सद्धेतोरपि सत्प्रतिपक्षत्वात्, एकत्र व्याप्तिभङ्गज्ञानद्वारा वास्य दूषकत्वं, चक्षुरादेश्च नानुमानेन प्रतिरोधः तदुपस्थितावपि फल-

---

तादृशपरामर्शस्यैव व्याप्तिनिश्चयरूपतया व्याप्तिनिश्चयाभावेनान्यथासिद्ध्यसम्भवादिति भावः। ननु विरोधिपरामर्शेन ज्ञाप्यमानो व्याप्ति-पक्षधर्म्मताविरह एव हेतुनिष्ठतया तत्रानुमित्यनुत्पादप्रयोजक इत्यत-आह, 'न त्विति न तु विरोधिपरामर्शेन ज्ञाप्यमानोव्याप्ति-पक्षधर्म्मताविरह एवेत्यर्थः, तत्रानुमित्यनुत्पादप्रयोजक इति शेषः, स्वरूपसद्व्याप्ति-पक्षधर्म्मताविरहस्यानुमित्यनुत्पादप्रयोजकत्वे ज्ञाप्यव्याप्यपक्षधर्म्मलिङ्गाद्व्याप्त्यादिभ्रमेणानुमितिर्न स्यात् अतो ज्ञाप्यमानान्तं विरहविशेषणं, 'सत्प्रतिपक्षत्वादिति विरोधिपरामर्शसत्वदशायामनुमित्यजनकत्वादित्यर्थः, 'एकत्र' परामर्शान्तरविषये हेतौ, 'अस्य' विरोधिपरामर्शस्य, 'दूषकत्वं' प्रतिबन्धकत्वं वाकारोऽनास्थायां परमुखनिरीक्षकत्वेन हेत्वाभासत्वायोगात् व्याप्त्यभावज्ञानस्य साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावाच्चेति ध्येयम्। ननु विरोधिपरामर्शो यदि विपरीतनिर्णयविरोधी कथं तर्हि विशेषदर्शने सत्यपि दोषवशाच्चक्षुरादिना पीतत्वादिभ्रम इत्यतआह, 'चक्षुरादेश्चेति, 'चस्त्वर्थः, 'नानुमानेन' न विशेष-

दर्शनेन तस्याधिकबलत्वात्। नन्वेवं वादिवाक्य-

---

दर्शनेन, 'प्रतिरोधः' कार्य्यप्रतिबन्धः, 'तदुपस्थितावपि' तत्सत्त्वेऽपि, 'फलदर्शनेन' चक्षुरादेः फलदर्शनेन, 'तस्य' चक्षुरादेः फलस्य, 'अधिकबलत्वादिति विशेषदर्शनाप्रतिबध्यत्वात्, एतच्च प्रत्यक्षा-तिरिक्तज्ञानमेव तदभावव्याप्यवत्तानिर्णयस्य प्रतिबध्यमिति जर-त्तरमतानुसारेण। यद्वा 'प्रतिरोधः' दोषाधीनकार्य्यप्रतिरोधः, 'तदुपस्थितावपि' सत्त्वेऽपि, 'फलदर्शनेन' दोषवशाच्चक्षुरादेः फलदर्शनेन, 'तस्य' दोषवशाच्चक्षुरादेः फलस्य, 'अधिकबलत्वात्' विशेषदर्शनेनाप्रतिबध्यत्वात्, तथाच दोषविशेषाजन्यज्ञानमेव विशेषदर्शनस्य प्रतिबध्यमिति भावः। यद्वा ननु विरोधिपरामर्शो यदि विपरीतनिर्णयविरोधी कथन्तर्हि आनुमानिकविशेषदर्शने सत्यपि चक्षुरादिना लौकिकोऽनुभव इत्यत आह, 'चक्षुरादेस्तेति, 'नानुमानेन' नानुमानिकविशेषदर्शनेन, 'प्रतिरोधः' लौकिकानु-भवात्मककार्य्यप्रतिबन्धः, 'तदुपस्थितावपि' तत्सत्त्वेऽपि, 'फलदर्शनेन' लौकिकानुभवात्मकस्य तत्फलस्य दर्शनेन, 'तस्य' तादृशस्य फलस्य, 'अधिकबलत्वात्' आनुमानिकविशेषदर्शनाप्रतिबध्यत्वात्, तथाच लौकिकसन्निकर्षाजन्यज्ञानमेवानुमित्यादिरूपविशेषदर्शनस्य प्रति-बध्यं, लौकिकसन्निकर्षजन्यज्ञानन्तु समानेन्द्रियजन्यलौकिकविशेष-दर्शनस्यैव प्रतिबध्यमिति भावः। 'नन्वेवमिति, 'एवं' विरोधि-परामर्शो यदि विपरीतनिश्चयविरोधी तदा, 'वादिवाक्यमात्रस्य

मात्रस्य प्रतिरोधकत्वेनानुमानमात्रोच्छेदः। न च विरोधिवाक्यस्य न्यूनबलत्वे लक्षणायोगः समबलत्वे

---

वादिनोः प्रतिज्ञावाक्यमात्रज्ञानस्य, 'मात्रपदं साकल्यार्थकं, 'प्रतिरोधकत्वेन' स्व-स्वसाध्यविपरीतज्ञानप्रतिबन्धकत्वेन, 'अनुमानमात्रोच्छेद इति विवादस्थले स्थापनासाध्य-प्रतिस्थापनासाध्ययोरुभयोरेवानुमित्युच्छेद इत्यर्थः, विरोधिपरामर्शनिष्ठप्रतिबन्धकतावच्छेदकस्य विरोधिनिर्णयसामग्रीत्वस्य विरोधिविषयकशाब्दनिर्णयजनके प्रतिज्ञावाक्यज्ञानेऽपि सत्त्वादिति भावः।

ननु विवादस्थले वादिनोः प्रतिज्ञावाक्यज्ञानात् स्थापनासाध्य-प्रतिस्थापनासाध्ययोरुभयोरेवानुमित्युच्छेदः कुत्रापाद्यते किं यत्र स्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानं स्वसाध्यशाब्दधीजनकसकलकारणसमवहितं प्रतिस्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानञ्च न तत्समवहितं तत्र, किं वा द्वयमेव यत्र स्वसाध्यशाब्दधीजनकसकलकारणसमवहितं तत्र, अथवा यत्र स्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानं न स्वसाध्यशाब्दधीजनकसकलकारणसमवहितं, प्रतिस्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानञ्च तत्समवहितं तत्र, नाद्य इत्याह, 'विरोधिवाक्यस्येति प्रतिस्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानस्येत्यर्थः, 'न्यूनबलत्वे' स्वसाध्यशाब्दधीजनकसकलकारणासमवहितत्वे, 'लक्षणायोगः' विरोधिनिश्चयसामग्रीत्वस्य प्रतिबन्धकतावच्छेदकस्यायोगः। न द्वितीय इत्याह, 'समबलत्व इति स्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञान-प्रतिस्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानयोरुभयोरेव स्वसाध्यशा-

हि व्याप्ति-पक्षधर्म्मते बलमिति। प्रत्यक्षादेर्लिङ्गभावेनैवानुमानप्रतिरोधः कथायां तदुपन्यासानर्हत्वात्।

यत्तु विरोधिव्याप्यद्वयस्यासाधारणत्वात् संशयजनकत्वं दूषकतावीजमिति। तन्न। एकैकं हि सत्प्रतिपक्षं न तु विशिष्टं एकैकञ्च न संशायकमित्यनुमिति-

---

इति साध्याभावव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयतावत्त्व-पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयतानिरूपितसाध्याभावव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतावत्त्व इत्यर्थः, तथाच तादृशविषयताशालिनिश्चयत्वेनैव विरोधिपरामर्शस्य प्रतिबन्धकत्वं न तु साध्यविरोधिनिश्चयसामग्रीत्वेनेति भावः। ननु कथं तर्हि विपरीतप्रमाफलकं चक्षुरादि प्रतिबन्धकतया कथायामुपन्यस्यत इत्यत आह 'प्रत्यक्षादेरिति चक्षुरादेरित्यर्थः, 'लिङ्गभावेनैव' लिङ्गताज्ञानेनैव साध्याभावनिरूपितव्याप्ति-पक्षधर्मताज्ञानेनैवेति यावत्, 'एवकारात् स्वरूपसच्चक्षुरादिव्यवच्छेदः, अत्र हेतुः 'कथायामिति स्वरूपसच्चक्षुरादेर्विरोधित्वे इत्यादिः।

'विरोधिव्याप्यद्वयस्येति मिलितस्येति शेषः, 'असाधारणत्वात्' सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वात्, 'दूषकतावीजमिति सत्प्रतिपक्षस्थलेऽनुमित्यनुत्पादवीजमित्यर्थः, संशयसामग्र्या निश्चयप्रतिबन्धकत्वादिति भावः। 'सत्प्रतिपक्षमिति प्रतिबन्धकमित्यर्थः, 'न तु विशिष्टमिति न तु मिलितं हेतुद्वयमित्यर्थः, 'एकैकञ्चेति, असाधारणत्वाभावा-

द्वयस्य प्रामाण्यग्राहकाप्रवृत्तिर्दूषकतावीजमित्यन्ये, तन्न, परस्परप्रतिबन्धेनानुमितेरेवानुत्पत्तेः।

रत्नकोषकारस्तु सत्प्रतिपक्षाभ्यां प्रत्येकं स्वसाध्यानुमितिः संशयरूपा जन्यते विरुद्धोभयज्ञानसामग्र्याः

---

दिति भावः। 'प्रामाण्यग्राहकाप्रवृत्तिरिति प्रामाण्यग्रहानुत्पत्तिरित्यर्थः,[१] 'दूषकतावीजं' सत्प्रतिपक्षस्य दोषव्यवहारविषयतावीजं। 'परस्परेति, विरोधिव्याप्यवत्तानिश्चयस्यानुमित्यप्रतिबन्धकत्वे तद्विषयस्य हेत्वाभासत्वायोगादिति भावः।

ननु तद्विशिष्टबुद्धिं प्रति तदभावनिश्चयस्य तदभावविशिष्टबुद्धिं प्रति च तद्वत्त्वनिश्चयस्य कार्य्यसहभावेन प्रतिबन्धकत्वादेकदा कथं साध्य-तदभावयोरनुमितिः[२] इत्यत उक्तं 'संशयरूपेति। ननु संशयत्वस्य प्रत्यक्षत्वव्याप्यतया विरुद्धोभयकोटिकप्रत्यक्षजनकसामग्र्येव संशयजनिका अनुमितिसामग्री तु न तथेति कथं संशय इत्यत आह, 'विरुद्धोभयेति विरुद्धोभयकोटिकज्ञानसामान्यसामग्र्या एवेत्यर्थः, विशेष्यतावच्छेदकावच्छेदेन तत्तद्विरुद्धान्यतरकोटिविषयक-समानविशेष्यतावच्छेदकतत्तद्विरुद्धोभयकोटिकज्ञानमेव संशयो न तु तादृशप्रत्यक्षमेव, अत एव विप्रतिपत्तिवाक्यादपि शाब्दसंशय इति

---

(१) प्रामाण्यग्राहकानुत्पत्तिरित्यर्थ इति क०।

(२) तथाच विरोधिनिश्चयाभावस्य कार्य्यकालवृत्तित्वेन कारणत्वात् साध्य-तदभावानुमितिप्राक्क्षणे विरोधिनिश्चयाभावस्य सत्त्वेऽपि कार्य्यकाले तदसत्त्वान्नानुमितिसम्भव इति भावः।

संशयजनकत्वात् संशयद्वारा अस्य दूषकत्वं। न च संशयरूपा नानुमितिः बाधस्येव विरोध्युपस्थितेरनुमितिसामग्रीविघटकत्वेनावधारणात् अन्यथा बाधे-

---

भावः। ननु सत्प्रतिपक्षस्थलेऽप्यनुमित्युत्पादे तत्र कथं दोषव्यवहार इत्यत आह, 'संशयद्वारेति संशयजनकत्वेन निर्णयविरोधित्वेनेति त्यर्थः,[१] 'अस्य' सत्प्रतिपक्षस्य, 'दूषकत्वं' दोषव्यवहारविषयत्वं। न चैवं पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन साध्य-साध्याभावव्याप्यवत्ता-परामर्शरूपयोः सत्प्रतिपक्षयोः दोषव्यवहारो न स्यात् पक्षतावच्छेदकावच्छेदेनानुमितिं प्रति पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन हेतुमत्तापरामर्शस्यैव हेतुतया तयोः संशयजनकत्वासम्भवात् विशेष्यतावच्छेदकावच्छेदेनान्यतरकोटिविषयकज्ञानस्यैव संशयत्वादिति वाच्यं। येन सम्बन्धेन हेतोर्व्याप्यता गृहीता तेनैव सम्बन्धेन हेतुमत्तापरामर्शस्यानुमितिहेतुतानियमात् पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येनानुमितिमिव तदवच्छेदेनानुमितिं प्रत्यपि पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन हेतुमत्तापरामर्श एव हेतुः यत्र च पक्षतावच्छेदकावच्छेदेनानुमित्युत्पत्तिप्रतिबन्धकबाधादेर्नावतारः तत्र नियमतोऽनुमितेर्द्विविधविषयत्वमिष्टमेव इत्यभिप्रायात्। 'बाधस्येवेति साध्याभावनिश्चयस्येवेत्यर्थः, 'विरोध्युपस्थितेरिति साध्याभावव्याप्यवत्तोपस्थितेरित्यर्थः, 'अनुमितिसामग्रीविघटकत्वेन' अनुमित्यनुत्पादप्रयोजकत्वेनेत्यर्थः, 'अन्यथेति तदुपस्थितेरनुमित्यनुत्पादाप्रयोजकत्वे इत्यर्थः,

---

(१) संशयजनकत्वेनेत्यर्थ इति ख०, ग०।

ऽप्यनुमित्यापत्तेरिति वाच्यम्। अधिकबलतया बाधेन प्रतिबन्धात् तुल्यबलत्वादनुमितिः स्यादेव, सामग्रीसत्त्वात्। साध्याभावबोधस्य च तत्र प्रतिबन्धकत्वं न तु तद्बोधकस्य चक्षुरादेः। प्रत्येकं निर्णायकत्वेनावधारितात् कथं संशय इति चेत्, न, प्रत्येकाद्धि ज्ञानमुत्पद्यमानमर्थात् संशयो न तु प्रत्येकं संशयजनकत्वमिति

---

'बाधेऽपीति, साध्यविरोधिविषयकनिश्चयत्वेनैव बाधस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वात् साध्याभावव्याप्यवत्त्वोपस्थितेरनुमित्यनुत्पादाप्रयोजकत्वे च व्यभिचारेण तेन रूपेण प्रतिबन्धकत्वासम्भवादिति भावः। 'अधिकबलतयेति पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यकसाध्याभावप्रकारकनिश्चयतयेत्यर्थः, 'बाधेन प्रतिबन्धादिति बाधनिश्चयस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, 'तुल्यबलादिति तादृशसाध्याभावप्रकारकनिश्चयाद्यभावविशिष्टात् साध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शादित्यर्थः, उत्तरत्वं पञ्चम्यर्थः। ननु चक्षुरादिना बाधोत्पत्तिकाले विशिष्टबुद्ध्यनुदयाद् बाधसामग्रीत्वेन चक्षुरादीनामपि प्रतिबन्धकत्वं वाच्यं तच्च विशेषदर्शनतया तत्राप्यविशिष्टमित्यत आह, 'साध्याभावेति, 'तत्र' साध्यविशिष्टबुद्धौ, तदभावस्य कार्य्यसहभावेन हेतुतया बाधोत्पत्तिकाले न तदुत्पत्तिरिति भावः। शङ्कते, 'प्रत्येकं निर्णायकत्वेनेति प्रत्येकविषयकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति जनकत्वेनेत्यर्थः, 'कथं संशय इति संशयत्वस्य कार्य्यतानवच्छेदकत्वादिति भावः।

मेने; तन्न। साध्य-तदभावयोर्विरोधेन यथैकज्ञानस्या-परधीप्रतिबन्धकत्वं तथा साध्याभावव्याप्यवत्त्वस्यापि साध्यविरोधित्वात्तद्बुद्धेरपि साध्यधीप्रतिबन्धकत्वात् विरोधिज्ञानत्वस्य प्रतिबन्धकत्वे तन्त्रत्वात्।

निबन्धे तु हेत्वाभासानां फलद्वारकं लक्षणं, अ-

---

'प्रत्येकाद्धीति प्रत्येककोटिव्याप्यवत्ताविषयकज्ञानाद्धीत्यर्थः, 'ज्ञानं' प्रत्येककोटिविषयकज्ञानं; 'अर्थात्' कोटिद्वयविशिष्टबुद्धिसामग्री-समाजात्, 'न तु प्रत्येकं संशयजनकत्वमिति न तु प्रत्येककोटि-विषयकज्ञानस्य संशयत्वावच्छिन्नं प्रति जनकत्वं, संशयत्वस्य निश्चय-त्वस्येवार्थसमाजग्रस्तत्वेन कार्य्यतानवच्छेदकत्वादित्यर्थः, तथाच संश-यत्वं यस्य कार्य्यतावच्छेदकं तस्मादेव संशयोत्पत्त्यभ्युपगमे प्रत्येक-कोट्युपस्थितितोऽपि संशयो न स्यादिति भावः। बाधस्य पक्षविशे-ष्यकसाध्याभावनिश्चयत्वेन न प्रतिबन्धकत्वं तादृशसाध्यवदन्योन्याभाव-निश्चयस्याप्रतिबन्धकत्वापत्तेः तस्य पृथक्प्रतिबन्धकत्वापत्तेर्वा किन्तु साध्यविरोधिविषयकनिश्चयत्वेनैव प्रतिबन्धकत्वं तच्च पक्षविशे-ष्यकसाध्याभावव्याप्यवत्तानिश्चयेऽप्यविशिष्टमित्यभिमानेन दूषयति, 'साध्य-तदभावयोरिति, 'प्रतिबन्धकत्वे तन्त्रत्वादिति प्रतिबन्धक-तायामवच्छेदकत्वादित्यर्थः। एतच्चापाततः लाघवादिति शेषः।

मन्यास्तु सत्यपि तदभावव्याप्यवत्तानिश्चये तद्गोचराप्रामाण्य-ज्ञानात् तदुत्तरं बुभुत्सातो वा तदुपनीतभानस्योदयात् न साध्या-

नैकान्तिकानामन्वयाद्व्यतिरेकाद्वा कोट्युपस्थापकतया संशयः फलं, विरुद्धस्य साध्यविपरीतस्य ज्ञानं, अपक्ष-

---

त्वाकारत्वानिरूपिततद्वत्ताबुद्धिमात्रं प्रति तदभावव्याप्यवत्तानिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकत्वं किन्तु तादृशनिश्चयवदन्यतद्वत्ताबुद्धित्वावच्छिन्नं(१) प्रत्येव तथाविधनिश्चयत्वेन विरोधित्वं वाच्यं तथाच वह्नेः संशयाकारानुमितिः पर्व्वतत्वावच्छेदेन वह्न्यभावव्याप्यवत्तानिश्चयवतीति न तस्यां तादृशनिश्चयः प्रतिबन्धकः, निश्चयात्मिका पर्व्वतत्वावच्छेदेन वह्न्यनुमितिस्तु पर्व्वतत्वावच्छिन्नधर्म्मिकवह्न्यभावव्याप्यवत्तानिश्चयवदन्येति तस्यामवश्यं(२) तथाविधविरोधिनिश्चयः प्रतिबन्धक इति तद्दशायां तस्या नोत्पत्तिरिति प्राहुः ।

'अन्वयात्' साध्य-तदभावयोरन्वयसहचारात्, 'व्यतिरेकादिति उक्तान्वयस्य व्यतिरेकादित्यर्थः, 'संशयः फलमिति, तथाच किञ्चिद्धर्म्मिकयद्रूपावच्छिन्नवत्तानिश्चयत्वेन यादृशसाध्यसंशयं प्रति जनकत्वं तद्रूपविशिष्टत्वमेव तत्साध्यकानैकान्तिकत्वमिति भावः। 'साध्यविपरीतस्य' साध्याभावस्य, 'ज्ञानं' अनुमितिः, 'फलमिति पूर्व्वेणा-

---

(१) अत्र निश्चयवत्त्वं अव्यवहितोत्तरत्व-सामानाधिकरण्योभयसम्बन्धेन बोध्यं ।

(२) 'वह्निमत्पर्व्वतत्वावच्छिन्ने द्रव्यत्वस्य गौणपर्व्वतत्वावच्छिन्ने वह्नेरनुमितिस्तु पर्व्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यकवह्न्यभावव्याप्यवत्तानिश्चयवदन्यैवेति पर्व्वतांशे वह्निमत्त्वावगाहिन्यां' इति पाठः 'तादृशनिश्चयः प्रतिबन्धकः' इत्यस्यानन्तरं 'तस्यामवश्यं' इत्यस्य प्राक् क-ग-पुस्तकद्वये वर्त्तते परन्तु तादृशः पाठो न समीचीनः ।

धर्म्मोऽपि विरुद्धोऽन्यत्र विपरीतज्ञानसमर्थ एव, बाधेऽन्यतोविपरीतज्ञानं न तु हेत्वभिमतादेः, घटो नित्यः कार्य्यत्वादिति[१] विरुद्धे बाधसङ्करेऽप्यदोषः, असिद्धे अनैकान्तिकादिचतुष्टयज्ञानान्यालिङ्गत्वज्ञानं, बाधे

---

न्वयः, तथाच तद्रूपावच्छिन्नसाध्याभावानुमित्यौपयिकरूपवत्त्वं तद्रूपावच्छिन्नसाध्यकविरुद्धत्वमिति भावः। ननु घटोगौरश्वत्वादित्यत्र विरुद्धेऽव्याप्तिः गोत्वाभावव्याप्यस्यापि हेतोर्घटात्मकपक्षावृत्तित्वेन तादृशरूपाभावादत आह, 'अपचेति उपन्यस्तपक्षावृत्तिरपि, 'विरुद्धः' साध्यासमानाधिकरणः, 'अन्यत्र' स्वाश्रये, 'विपरीतज्ञानसमर्थः' साध्याभावज्ञानौपयिकरूपवानित्यर्थः, गगनादिकन्तु[२] तादात्म्येनैव वह्न्यादेर्विरुद्धमिति भावः। ह्रदोवह्निमान् द्रव्यत्वादित्यादौ बाधितेऽतिव्याप्तिं निरस्यति, 'बाध इति, 'अन्यतः' जलत्वादितः, 'न त्विति, हेत्वभिमतस्य द्रव्यत्वादेः साध्याभावानुमित्यौपयिकव्याप्तिविरहादिति भावः। ननूक्तलक्षणं घटोनित्यः कार्य्यत्वादित्यादौ बाधसंकीर्णतादशायां अतिप्रसक्तं[३] अत आह, 'घट इत्यादि, 'अदोष इति, फलभेदाद्भिन्नहेत्वाभासत्वसम्भवादिति भावः। 'अनैकान्तिकादीति, 'चतुष्टयेत्यविवक्षितं, निबन्धकृन्मते सत्प्रति-

---

(१) नित्योघटः कार्य्यत्वादितीति क०, ख०।

(२) ननु वह्निमान् गगनात् इत्यत्र गगनरूपविरुद्धहेतौ कुत्रापि धर्म्मिण्यवर्त्तमानत्वेनाव्याप्तिरित्यत आह गगनादिकन्त्विति।

(३) बाधसङ्कीर्णत्वादयुक्तमत आहेति ख०, ग०।

पक्षधर्म्महेतौ व्याप्तिबाधः, प्रकरणसमे तु न व्याप्ति-पक्षधर्म्मताबाधः फलं, नाप्यलिङ्गत्वज्ञानं, व्याप्त्यादि-बुद्धिसत्त्वात्। नापि विपरीतबुद्धिः, स्वसाध्यविपरीतेनानियमात्। नापि संशयः, प्रत्येकं कोटिद्वयानुप-

---

प्रतिपक्षस्य ज्ञानफलकत्वाभावेन तन्निवेशस्य व्यर्थत्वात्, तथाचानैकान्तिक-विरुद्ध-बाधितानां यानि फलानि साध्यसंशय-साध्यविपरीतबोध-स्वधर्म्मिकसाध्याव्याप्यत्वज्ञानानि तेभ्यो भिन्नं 'अलिङ्गत्वज्ञानं' लिङ्गत्वग्रहविरोधिज्ञानं प्रकृतपक्षधर्म्मिक-प्रकृतसाध्यव्याप्यप्रकृतहेतुमत्त्वग्रहविरोधिज्ञानमिति यावत्, 'फलमिति पूर्व्वेणान्वयः, तथाच तादृशज्ञानौपयिकं यद्रूपं तदेव प्रकृतहेतोरसिद्धत्वमिति भावः। 'व्याप्तिबाधः' व्याप्त्यभावज्ञानं, 'फलमित्यनुषज्यते, तथाच प्रकृतपक्षधर्म्मत्वे सति प्रकृतसाध्यव्याप्त्यभावोन्नायकरूपवत्त्वमेव प्रकृतपक्ष-साध्यबाधितत्वं ह्रदोवह्निमान् धूमादित्यादिकञ्च न बाधितं किन्त्वसिद्धमेवेति भावः। प्रकृतमनुसरन्नाह, 'प्रकरणसमे त्विति साध्य-तदभावयोः परामर्शात्मकप्रतिपक्षस्थले त्वित्यर्थः, 'न व्याप्तीत्यादि, न व्याप्तेः पक्षधर्म्मत्वस्य वा 'बाधः' विरहज्ञानं, 'फलमित्यग्रेतनेनान्वयः, 'नाप्यलिङ्गत्वज्ञानमिति, 'अलिङ्गत्वस्य' लिङ्गत्वधीविरोध्यन्तरस्य, ज्ञानमित्यर्थः, 'व्याप्त्यादीत्यादिना पक्षधर्म्मत्वस्योपग्रहः, तथाच न बाधिते स्वरूपासिद्धे वा अस्यान्तर्भावः। 'विपरीतबुद्धिः' साध्याभावानुमितिः, 'फलमित्यनुषज्यते, 'अनियमादिति व्याप्य-

भयात्। किन्तु कथमत्र तत्त्वनिर्णय इति जिज्ञासा फलं, तथाच प्रकृतसाध्य-हेत्वोः किं तत्त्वमिति जिज्ञासाजनिका व्याप्ति-पक्षधर्म्मतोपस्थितिः प्रकरणसमः। न ह्यनुपस्थिते प्रतिपक्षे एकस्माज्जिज्ञासा, किन्तु निर्णय एव। अथ ज्ञातुमिच्छा जिज्ञासा सा च ज्ञानेष्टसाधनताज्ञानात् संशयाद्वेति कथं तेन विना

---

त्वान्नियमादित्यर्थः, तथाच ह्रदोवह्निव्याप्यद्रव्यत्ववान् वह्न्यभावव्याप्यसत्तावांश्च इत्यादिप्रतिपक्षहेत्वोः स्वसाध्यव्यतिरेकोन्नयनौपयिकव्याप्तिविरहाच्च तयोर्विरुद्धेऽन्तर्भावः, 'संशय इति साध्यस्ये-त्यादिः, 'प्रत्येकमिति विरोधिव्याप्ययोः प्रत्येकस्य सपक्ष-विपक्षोभयवृत्तित्वाद्यभावेन साध्य-तदभावयोः कोटिद्वययोः विशिष्टबुद्धजनकत्वादित्यर्थः। तथाच नानैकान्तिकेऽन्तर्भावः। 'प्रकृतेति प्रकृतसाध्यसिद्धिजनकविषयतापन्नयोर्हेत्वोः, 'किं तत्त्वं' किं व्याप्त्यादिमत्तया प्रामाणिकमित्यर्थः, व्याप्तीत्यादिकन्तु स्वरूपकथनमात्रं, निरुक्तजिज्ञासाजनकोपस्थितेरेव सम्यक्त्वेन तन्निवेशस्य व्यर्थत्वात् व्याप्त्यादेरननुगतत्वेनाव्याप्तिकरत्वाच्चेति ध्येयं। ननु साध्यमात्रस्य परामर्शोऽपि तादृशजिज्ञासाजनक इति तत्रातिव्याप्तिरत आह, 'न हीति, 'अनुपस्थिते' असति, 'प्रतिपक्षे' विरोधिपरामर्शे, 'एकस्मात्' साध्यस्यैव परामर्शात्, न तादृशी जिज्ञासा किन्तु साध्यस्य निर्णय एव विरोधिपरामर्शयोः सत्त्वे तु जिज्ञासासामग्र्या प्रतिब-

विरोधिसाधनज्ञानमात्रादिति चेत्, न, असति प्रति-पक्षे न जिज्ञासा सति तु सेत्यन्वय-व्यतिरेकाभ्यां प्रक-रणसमस्यापि जिज्ञासाजनकत्वात्। न चानैकान्ति-कातिव्याप्तिः, तत्र हि संशयद्वारा साध्ये जिज्ञासा अत्र तु हेतुसमीचीनत्व इति। ननु परामर्शयोरेक-दानुत्पादात् कथं प्रतिरोधः, क्रमोत्पन्नयोरेकदा स-

---

न्धात्र स इति भावः। 'ज्ञानेष्टसाधनताज्ञानादिति स्वमते, 'संशया-दिति तु निबन्धकृन्मते, तैः साध्यसंशयद्वारा अनैकान्तिकस्य साध्य-जिज्ञासाजनकताया अनुपदं वक्ष्यमाणत्वात्, 'ज्ञानमात्रादित्यत्र चेत्यनुषज्यते, 'जिज्ञासाजनकत्वादिति, कार्य्यतावच्छेदकस्य सङ्कोचाच्च न व्यभिचार इत्याशयः। लक्षणस्थस्य प्रकृतसाध्य-हेत्वोरित्यस्य हेतु-पदव्यत्यासेन प्रकृतहेतुकज्ञानविषययोरित्यर्थं मत्वा शङ्कते, 'न चेति, जिज्ञासायाः साक्षाज्जनकत्वं वक्तव्यं हेत्वोः प्रामाणिकत्वजिज्ञासा वा निवेश्यितेत्याशयेन परिहरति, 'तत्र हीति। न च जिज्ञासाजनक-स्यापि विरोधिपरामर्शद्वयस्य ज्ञानं यदि नानुमितिप्रतिबन्धकं तर्हि कथायां तदुपन्यासो न स्यादिति वाच्यं। प्रमाणादूषणस्यापि तस्याधिकत्वादेरिव[१] निग्रहस्थानविधयोद्भाव्यत्वमिति निबन्धकृता-माशयादिति ध्येयं।

---

(१) तस्यार्थान्तरत्वादेरिवेति ख०, ग०।

स्त्वादिति चेत्, न, एकानन्तरमपरहेतुव्याप्ति-पक्षधर्म्मताज्ञानाभ्यामग्रिमव्याप्तिविशिष्टज्ञानोत्पत्तिकाले पूर्व्वपरामर्शनाशात्। न चोभयहेतुव्याप्ति-पक्षधर्म्मताज्ञानानां परस्पराप्रतिबन्धात् परामर्शोत्पाद इति वाच्यं। व्याप्त्यादिज्ञानचतुष्टयस्य यौगपद्याभावात्।

यत्तु व्याप्तिद्वयसंस्कारोद्बोधकहेतुद्वयज्ञानयोः परस्परप्रतिबन्धात् नोभयव्याप्तिस्मृतिरिति दूषकताबीजमिति। तन्न। व्याप्तिस्मृतिं विना सत्प्रतिपक्षाभावात् वादिभ्यां व्याप्त्युद्भावनाच्चेति। मैवम्। हेतुद्वयसमूहालम्बनाद्युगपदुभयव्याप्तिस्मृतावुभयपरामर्शरूपं ज्ञानमुत्पद्यते, अत एकदा विरुद्धकार्य्यद्वयकारणान्नैकमपि कार्य्यमुत्पद्यते, तादृशपरामर्शश्च स्वार्थानुमाने प्रत्यक्षादितः, परस्य तु वाद्युपन्यस्तन्यायोत्थापितप्रमाणा-

---

शङ्कते, 'नन्विति, ज्ञानद्वययोर्यौगपद्याभावादिति भावः। सिद्धान्तयति, 'क्रमेति, 'सत्त्वादिति 'प्रतिरोध इत्यन्वयः, एकानन्तरं, एकहेतोः परामर्शानन्तरं, 'अपरेति अपरहेतौ व्याप्तेः पक्षधर्म्मत्वस्य च ज्ञानेनेत्यर्थः, तथाच द्वित्वमविवचितं, 'ज्ञानेति एकहेतुकव्याप्तिज्ञान-तत्परामर्श-हेत्वन्तरव्याप्तिज्ञान-तत्परामर्शात्मकज्ञानचतुष्टयस्येत्यर्थः। साध्यस्य केवलान्वयित्वधीदशायां पक्षधर्म्मिक-तत्तदभावोभयव्याप्यवत्तापरामर्शासम्भवात्तदानीं सत्प्रतिपक्षो नास्तीति सोन्दडमतं

वतारात्। अस्य च केवलान्वयिन्यपि सम्भवः घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वादित्यत्राभिधेयत्वं घटनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगिजात्यन्यत्वे सति घटमात्रवृत्त्यन्यधर्म्मत्वात् घटान्योन्याभाववत् पटरूपवच्च, घटनिष्ठात्यन्ताभावोऽभिधेयत्वप्रतियोगिकः घटवृत्तिनित्याभावत्वात् घटनिष्ठान्योन्याभाववदिति विशेषादर्शनदशायां, न

---

निरस्यति, 'अस्य चेति, 'अस्य' विरोधिपरामर्शात्मकप्रतिपक्षस्य, 'केवलान्वयिनि' तत्त्वेन गृहीतसाध्यके, 'घटेत्यादि, प्रतियोगित्वं स्वरूपसम्बन्धेन ग्राह्यं तेन संयोगेनाभिधेयत्वस्याभावमादाय न सिद्धसाधनं, सत्ताद्याश्रयत्वे व्यभिचारस्य वारणाय 'सत्यन्तं जात्याश्रयतान्यत्वे सतीत्यर्थकं, घटत्वादिप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वे तद्वारणाय 'घटमात्रेत्यादि, घटवृत्त्यन्यत्वं अभिधेयत्वे स्वरूपासिद्धमतो मात्रपदं। ननु घटनिष्ठत्वं अवश्यं दैशिकविशेषणतया वाच्यं अन्यथा जातिमत्त्वादेरभावस्यापि कालिकादिसम्बन्धेन घटनिष्ठत्वाद्धेतोर्व्यर्थविशेषणत्वापत्तेः तथाच घटान्यत्वाभावस्य घटत्वस्वरूपस्य तादृशसम्बन्धेन घटावृत्तित्वात् तत्प्रतियोगिनो घटान्योन्याभावस्य दृष्टान्तत्वायोगादाह, 'पटरूपवच्चेति, 'पेटत्यविवक्षितं, 'घटनिष्ठेति, अत्राप्यत्यन्ताभावः स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताको ग्राह्यः तेन न पूर्ववत् सिद्धसाधनं, हेतौ च घटवृत्तित्वं घटत्वाभावे नित्यत्वं घटनिष्ठध्वंसेऽभावत्वं घटत्वादौ व्यभिचारस्य वारणाय, 'अन्योन्येति घटवृत्त्य-

च पक्षैक्यमपि तन्त्रं, विरोधस्यैव दूषकत्वेऽधिकस्य व्यर्थत्वादिति ॥

इति श्रीगङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तः ॥

---

भिधेयत्वभेदवदित्यर्थः। ननूक्तहेतुद्वयमपि पटत्वाद्यभावे व्यभिचारीत्यत आह, 'विशेषेति उक्तहेत्वोर्व्यभिचाराग्रहदशायामित्यर्थः, 'पक्षैक्यं' एकधर्म्मिकत्वं, 'तन्त्रं' प्रतिपक्षताव्यापकमित्यर्थः,[१] घटोऽभिधेयत्वव्यापकाभाववान् इत्येवं व्यतिरेकपरामर्शेन पक्षैक्यस्य सम्भवाच्चेत्यपि द्रष्टव्यं।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तरहस्यं ॥

---

(१) प्रतिपक्षतायां तन्त्रं व्यापकमित्यर्थ इति क०, ग०।

## अथासिद्धिपूर्व्वपक्षः ।

असिद्धिस्तु न व्याप्ति-पक्षधर्म्मताविरहः, प्रत्येकमननुगमात् । अथ प्रत्येकाभावेऽनुगतोव्याप्ति-पक्षधर्म्मताविशिष्टाभावोऽसिद्धिः, यद्यपि विशिष्टस्यान्यत्वे प्रत्येकाभावाव्याप्तिरपसिद्धान्तश्च अनन्यत्वे प्रत्येकाभाव-

---

### अथासिद्धिपूर्व्वपक्षरहस्यं ।

'व्याप्तीति, तथाच व्याप्ति-पक्षधर्म्मत्वाभाववान् हेतुरसिद्ध इति भावः । अत्र घटो द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ[१] व्याप्यत्वासिद्धेः संग्रहाय व्याप्यत्वस्य, अयोगोलकं वह्निमत् धूमादित्यादौ स्वरूपासिद्धेः संग्रहाय च पक्षधर्म्मत्वस्य प्रवेशः, व्याप्तिश्च साध्याभाववदवृत्तित्वे सति साध्यसामानाधिकरण्यरूपा ग्राह्या न तु हेतुव्यापकसाध्यसामानाधिकरण्यरूपा द्रव्यं सत्त्वादित्यादिसाध्यव्याप्यत्वासिद्धिस्थले तदप्रसिद्ध्या[२] असम्भवापत्तेः । पक्षधर्मत्वञ्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन पक्षवृत्तित्वं तेन ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादौ स्वरूपासिद्धे कालिकादिसम्बन्धेन हेतोः पक्षवृत्तित्वेऽपि न क्षतिः । व्याप्ति-पक्षधर्मत्वयोः प्रत्येकाभावद्वयमसिद्धिः व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मत्वाभावो वा आद्ये आह, 'प्रत्येकमिति प्रत्येकाभावस्येत्यर्थः, 'अननुगमात्' सर्व्वासिद्ध्यसाधारण्यात्,

(१) जलह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादाविति ख॰, ग॰ ।

(२) सत्त्वसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगिद्रव्यत्वसामानाधिकरण्याप्रसिद्धेत्यर्थः ।

एव स इत्यननुगमः, तथापि विशेषणावच्छिन्नप्रतियोगिको विशेष्याभावो विशेषण-विशेष्यसम्बन्धाभावो वा विशिष्टाभावोऽनुगत इति चेत्, न, विशिष्टाभावाज्ञानेऽपि व्याप्त्यादिप्रत्येकाभावज्ञाने उद्भावने चानुमितिप्रतिबन्धो वादिनिवृत्तिश्चेति तत्प्रत्येकाभावाव्याप्तिः, अन्यथा तेषां हेत्वाभासान्तरतापत्तेः, न च

---

ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादिस्वरूपासिद्धे व्याप्यत्वाभावस्य घटो द्रव्यं सत्त्वादित्यादिव्याप्यत्वासिद्धे च पक्षधर्मत्वाभावस्यासत्त्वादिति भावः। अन्याभिप्रायेणाशङ्कते, 'अथेति, 'प्रत्येकाभावेऽनुगतः' प्रत्येकाभावमात्रवत्यपि वर्त्तमानः, 'प्रत्येकाभावाव्याप्तिरिति प्रत्येकाभावमात्रवत्यव्याप्तिरित्यर्थः। ननु विशिष्टस्यातिरिक्तत्वेऽपि तदभावः प्रत्येकाभावस्थलेऽपि वर्त्तत एवेति नाव्याप्तिरित्यत आह, 'अपसिद्धान्तश्चेति, 'अननुगम इति तदवस्थ इति शेषः, 'अनुगत इति प्रत्येकाभावमात्रवत्यपि वर्त्तमान इत्यर्थः, 'निवृत्तिश्चेति, व्याप्त्यादिप्रत्येकाभावद्वयस्याप्यसिद्धितयेति शेषः, 'तत्प्रत्येकाभावाव्याप्तिरिति व्याप्त्यादिप्रत्येकाभावद्वये असिद्धिलक्षणाव्याप्तिरित्यर्थः, विशिष्टाभावत्वस्यातिरिक्तत्वात्(१) तस्य च प्रत्येकाभावयोरसत्त्वादिति भावः। इदमुपलक्षणं अयोगोलकं धूमवत् वह्नेर्ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादौ बाधसङ्कीर्णासिद्धे असिद्धिलक्षणस्याव्याप्तिः तत्र विशिष्टस्याप्रसिद्धतया तदभाव-

---

(१) विशिष्टाभावत्वस्यासिद्धित्वरूपत्वादिति क०।

विशिष्टाभावधीद्वारा प्रत्येकाभावो दोषो न तु स्वत इति वाच्यं। प्रत्येकाभावस्य स्वतएव दोषत्वसम्भवात्। वस्तुतो विशिष्टाभावो दोष एव न प्रत्येकस्य समर्थत्वे

---

स्यान्यथासिद्धेरित्यपि बोध्यं। ननु प्रत्येकाभावज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वेऽपि न तस्यासिद्धत्वमतो नाव्याप्तिरित्यतआह, 'अन्यथेति, 'तेषां' प्रत्येकाभावानां, हेत्वाभाससामान्यलक्षणाक्रान्तानामिति शेषः। साध्यादिभेदेन व्याप्त्यादीनां नानात्वाद्बहुवचनं, 'प्रत्येकाभावः' प्रत्येकाभावज्ञानं, 'न तु स्वतः' न तु साक्षात्, तथाच हेत्वाभाससामान्यलक्षणाक्रान्तत्वमेव तत्र नास्ति अनुमिति-तत्कारणपरामर्शयोः साक्षात्प्रतिबन्धकत्वस्य तल्लक्षणघटकत्वादिति भावः। 'स्वत एव' साक्षादेव, ग्राह्याभावावगाहित्वादिति भावः। इदमुपलक्षणं आश्रयासिद्धि-साध्यविशेषणासिद्धि-हेत्वसिद्धिषु चाव्याप्तिरित्यपि बोध्यं। 'दोष एव नेति हेत्वाभासएव नेत्यर्थः, कुतस्तद्विशेषोऽसिद्धिरिति शेषः,[(१)] 'प्रत्येकस्य' प्रत्येकाभावस्य, 'समर्थत्वे' दूषणसमर्थत्वे, हेत्वाभासत्वे इति यावत्, 'अन्यथासिद्धेरिति विशिष्टाभावस्य हेत्वाभासत्वं विनापि विशिष्टाभाववतः साधनस्य दुष्टत्वव्यवहारोपपत्तेरित्यर्थः, विशिष्टाभाववति प्रत्येकाभावस्यावश्यकत्वादिति भावः। ननु साध्यव्याप्यो हेतुः पक्षवृत्तिरित्याकारकविषयकलितव्याप्ति-पक्षत्वोभयविषयकपरामर्शस्यानुमितिहेतुत्ववादिनां प्राचां नये साध्यव्याप्यत्वे सति पक्षवृत्तित्ववान् हेतुरिति व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म्मत्वप्रकारकपरा-

---

(१) इति भाव इति ग०।

तेनैशान्यथासिद्धेर्व्यर्थविशेषणत्वात् प्रत्येकाभावमज्ञात्वा

मर्शस्याप्यनुमितिहेतुतया तद्विरोधित्वेन विशिष्टाभावस्यापि हेत्वाभासत्वं(१) दुर्व्वारं विनिगमकाभावेन तादृशविशिष्टप्रकारकपरामर्शप्रतिबन्धकत्वस्यापि सामान्यलक्षणघटकत्वात् साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्ष इति पक्षविशेष्यकपरामर्शस्यैवानुमितिहेतुत्वमिति नव्यमतानुयायित्वे व्याप्ति-पक्षधर्म्मत्वयोः द्वयोः प्रत्येकाभावस्यापि दोषत्वाभ्युपगमासङ्गतेः पक्षवृत्तित्वाभावज्ञानस्य तादृशपक्षविशेष्यकपरामर्शप्रतिबन्धकत्वादित्यरुचेराह, 'व्यर्थविशेषणत्वादिति इदमसाधकं व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म्मत्वाभावादित्यसाधकतानुमाने पक्षधर्म्मत्वाभावादित्यस्यैव सम्यक्त्वे व्यर्थविशेषणत्वादित्यर्थः। तथाच हेत्वाभासत्वस्यासाधकताव्याप्यत्वनियमाद्व्यर्थविशेषणतया च विशिष्टाभावे तदभावेन न तस्य हेत्वाभासत्वं। न चैवं तत्र सामान्यलक्षणातिव्याप्तिरिति वाच्यं। तस्य हेत्वाभासत्वाभावेनानायत्या विषकलितव्याप्ति-पक्षधर्म्मत्वोभयविषयताशालिपरामर्शप्रतिबन्धकत्वस्यैव सामान्यलक्षणे निवेशनीयत्वादिति भावः। नन्विदमप्ययुक्तं व्यर्थविशेषणत्वेऽपि व्याप्तिसत्त्वात्(२) विशिष्टाभावत्वस्य प्रत्येकाभावत्वाघटिततया(३) विशिष्टाभावस्यातिरिक्तत्वेन धूमप्राग-

(१) तत्त्वमिति ग०।

(२) तथाच व्याप्तिशरीरे प्रयोजनविरहेण व्यर्थविशेषणाघटितत्वस्यानिवेशनीयत्वेन व्यर्थविशेषणघटितस्यापि व्याप्यत्वमिति भावः।

(३) प्रत्येकाभावत्वस्य व्याप्यतावच्छेदकधर्म्मान्तरत्वेऽपि तदघटितत्वेन न व्यर्थविशेषणघटितत्वमिति भावः।

न विशिष्टाभावज्ञानमित्युपजीव्यत्वाद्विशिष्टाभावानुद्भावनेऽपि प्रत्येकोद्भावने वादिनिवृत्तेश्च। अत एव

भाववह्निमद्धर्म्मिकतया[१] च वैयर्थ्यशङ्कानवकाशाच्च इत्यरुचेराह, 'प्रत्येकाभावमिति, 'उपजीव्यत्वादिति प्रत्येकाभावज्ञानस्योपजीव्यत्वादित्यर्थः, तथाच प्रत्येकाभावज्ञानस्योपजीव्यतया प्रत्येकाभाव एव हेत्वाभासो न तु विशिष्टाभावः तज्ज्ञानस्य प्रत्येकाभावज्ञानस्योपजीवकत्वात् सामान्यलक्षणे चानायत्या विषकलितव्याप्ति-पक्षधर्मत्वोभयविषयताशालिपरामर्शप्रतिबन्धकत्वस्यैव निवेशान्नातिव्याप्तिरिति भावः। नन्विदमप्ययुक्तं प्रत्येकाभावमज्ञात्वापि प्रत्यक्ष-शब्दाभ्यां लिङ्गान्तरजन्यानुमानेन च विशिष्टाभावज्ञानसम्भवात्। न च तथापि प्रत्येकाभावलिङ्गकानुमानेन विशिष्टाभावज्ञानं प्रति प्रत्येकाभावज्ञानस्योपजीव्यत्वमस्त्येवेति वाच्यं। विशिष्टाभावलिङ्गकानुमानेन प्रत्येकाभावज्ञानं प्रति विशिष्टाभावज्ञानस्याप्युपजीव्यत्वेन क्वाचित्कोपजीव्योपजीवकभावस्याविशेषादित्यरुचेराह, 'विशिष्टाभावानुद्भावनेऽपीति, एतदप्यापाततः, एवञ्च विरुद्धत्वादेरपि हेत्वाभासत्वं न स्यात् तदनुद्भावनेऽपि बाध-स्वरूपासिद्ध्यादेरुद्भावने वादिनि-

(१) धूमप्रागभावत्वस्य व्याप्यतावच्छेदक-धर्म्मान्तरधूमत्व-घटितत्वेऽपि धूमत्वस्य धूमप्रागभावत्वासमानाधिकरणत्वात् यथा न तेन धूमप्रागभावत्वस्य व्यर्थविशेषणघटितत्वं तथा प्रत्येकाभावत्वस्य विशिष्टाभावत्वासमानाधिकरणत्वात् न तेन विशिष्टाभावत्वस्य व्यर्थविशेषणघटितत्वमिति भावः।

व्याप्ति-पक्षधर्म्मताविशिष्टज्ञानविषयाभावत्वं प्रत्येकाभावानुगतमसिद्धत्वं व्यभिचारादावसिद्धत्वेऽप्युपजीव्यत्वेन

---

वृत्तेः। न च तत्र बाधादेरनुद्भावनेऽपि विरुद्धमात्रोद्भावने वादी निवर्त्तते अतो विरुद्धस्यापि हेत्वाभासत्वं अत्र तु प्रत्येकाभावानुद्भावने विशिष्टाभावमात्रोद्भावनेऽपि न वादिनिवृत्तिरिति न विशिष्टाभावस्य दोषत्वमिति वाच्यं। विशिष्टाभावमात्रोद्भावनेऽपि वादिनिवृत्तेः, तस्मात् साध्यव्याप्यत्वे सति पक्षवृत्तित्ववान् हेतुरिति परामर्शस्याप्यनुमितिहेतुत्ववादिनां प्राचान्नये व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मत्वाभाववद्धेतुरपि हेत्वाभासः स च व्याप्यत्वासिद्धावेवान्तर्भूत इति तत्त्वं। 'अत एवेति 'निरस्तमित्यनेनान्वयः, 'व्याप्तीति व्याप्ति-पक्षधर्मत्वोभयमात्रमुख्यविशेष्यकबुद्धिमुख्यविशेष्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वमित्यर्थः, नातो विशेषाभाव-सामान्याभावविकल्पाभ्यामतिव्याप्त्यसम्भवशङ्कावकाशः,(१) अधिकं सिद्धान्ते वक्ष्यामः, 'प्रत्येकाभावानुगतमिति व्याप्ति-पक्षधर्मतयोः प्रत्येकाभावद्वये वर्त्तमानमित्यर्थः, 'असिद्धत्वं' असिद्धित्वं। नन्वेवं व्यभिचारादेः कथं दोषत्वं तद्वति हेतौ असिद्धेरावश्यकत्वेन तस्यैव दोषत्वसम्भवादित्यत आह, 'व्यभिचारादाविति व्यभिचारादिमति हेतावित्यर्थः, आदिना विरोधपरिग्रहः, 'उपजीव्यत्वेनेति असिद्धत्वज्ञानं प्रति

---

(१) व्याप्ति-पक्षधर्म्मताविशिष्टज्ञानविषयाभावत्वं यदि तादृशविषयप्रतियोगिकाभावत्वं तदा विशेषाभावे अतिव्याप्तिः, यदि तादृशविषयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वं तदा सर्व्वत्रासम्भव इति तात्पर्य्यं।

प्राथम्यात्तदुद्भावने वादिनिवृत्तेश्च स स्वत एव दूषकः तत्र व्याप्त्यसिद्ध्यर्थमुपाधौ तूद्भाविते विप्रतिपद्यतेऽपि तस्य दुरूहत्वात् व्यभिचारेणैव तदुन्नयनाच्च, यदि च व्यभिचारादिकमज्ञात्वाप्यसिद्धिबुद्धिः तथाप्युपधेयस-

---

लिङ्गविधया व्यभिचारादिज्ञानस्य उपजीव्यत्वेनेत्यर्थः, 'प्राथम्यात्' प्रथमोपस्थितत्वात्, 'तदुद्भावने' व्यभिचारादिमात्रोद्भावने, विरोधित्वाविशेषाच्चेत्यपि द्रष्टव्यं, 'सः' सोऽपि व्यभिचारादिरऽपीति यावत्। नन्वेवमसिद्धिज्ञानोपजीव्यत्वेन उपाधिरपि हेत्वाभासान्तरं स्यादित्यत आह, 'तत्रेति व्यभिचारादिमति हेतावित्यर्थः, 'व्याप्त्यसिद्ध्यर्थं' व्याप्त्यज्ञानार्थं, 'उपाधौ त्विति, 'तुशब्दो भिन्नक्रमे, 'उद्भावितइत्यनन्तरं योज्यः, 'विप्रतिपद्यतेऽपीति व्याप्तौ विप्रतिपद्यतेऽपीत्यर्थः, विप्रतिपत्तिर्भ्रमः, तथाचोपाध्युद्भावनेऽपि व्याप्तिभ्रमोदयात्तस्य साक्षाद्विरोधित्वाभावेन हेत्वाभासान्तरत्वमिति भावः। किञ्च उपाधिज्ञानं नासिद्धिज्ञानोपजीव्यं किन्तु तद्व्यभिचारज्ञानमेवेत्याह, तस्येति असिद्धत्वस्येत्यर्थः, 'दुरूहत्वात्' उपाधितोदुर्ज्ञेयत्वात्, 'व्यभिचारेणैव' उपाधिव्यभिचारेणैव, 'तदुन्नयनात्' असिद्ध्युन्नयनात्, एतच्चापाततः व्यभिचारितासम्बन्धेन उपाधेरप्युन्नायकतासम्भवात् तथापि उपाधेर्व्यभिचारस्येव हेत्वाभासान्तरताया दुर्व्वारत्वाच्च, किन्तु पूर्वोक्तयुक्तिरेव समीचीनेति द्रष्टव्यं। 'असिद्धिबुद्धिरिति प्रत्यक्ष-शब्दाभ्यां लिङ्गान्तरजन्यानुमानेन चासिद्धिबुद्धिरित्यर्थः, 'उपधेयेति, 'उपधेययोः असिद्ध-व्यभिचारिणोर्धर्म्मिणोः, 'सङ्करेऽपि' अभेदेऽपि,

ङ्करेऽप्युपाधेरसङ्कर एवेति निरस्तं। व्यर्थविशेषणत्वा-
द्देव। एतेन व्याप्ति-पक्षधर्म्मतान्यतराभावोऽसिद्धिरिति

---

'उपाधेः' असिद्धत्वव्यभिचारादेर्धर्म्मस्य, 'असङ्कर एव' ज्ञानासङ्कर-
एव परस्पराग्रहकालीनग्रहविषयत्वमेवेति यावत्, तथाचासिद्धत्वा
ज्ञानदशायामपि व्यभिचारादिमात्रज्ञानाद्व्याप्तिज्ञानानुदयेन तस्यापि
स्वतः प्रतिबन्धकत्वमावश्यकमेवेति भावः। 'अत एवेति विवृणोति,
'व्यर्थेति तथाविधबुद्धिमुख्यविशेष्यतावच्छेदकत्वरूपस्य विशेषणस्य
दूषकतायामप्रयोजकत्वात् तथाविधबुद्धिमुख्यविशेष्यतावच्छेदकत्व-
प्रकारकज्ञानस्यानुमिति-तत्कारणपरामर्शाविरोधित्वादिति यावत्,
यद्रूपेण ज्ञानं अनुमिति-तत्कारणपरामर्शान्यतरप्रतिबन्धकं तदेव
च विभाजकतावच्छेदकमित्यभिमानः। यद्वा 'व्यर्थविशेषणत्वात्' अयं
हेतुरसाधकः निरुक्तबुद्धिमुख्यविशेष्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगि-
ताकाभाववत्त्वादित्यसाधकतानुमाने निरुक्तबुद्धिमुख्यविशेष्यतावच्छे-
दकत्वरूपस्य विशेषणस्य व्यर्थत्वात् व्याप्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-
काभावत्वेनैव व्याप्त्यभावस्य पक्षधर्म्मतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव-
त्वेनैव पक्षधर्म्मत्वाभावस्य हेतुत्वसम्भवादित्यर्थः, असाधकतानुमापक-
तावच्छेदकरूपमेव विभाजकतावच्छेदकमित्यभिमानः। एतच्चापा-
ततः विरोधितावच्छेदकरूपमेव विभाजकतावच्छेदकमिति नियमे
मानाभावात् विरोधितानवच्छेदकरूपेणापि पूर्व्वं व्यभिचारादेर्वि-
भजनात्, एवमसाधकतानुमापकतावच्छेदकरूपमेव विभाजकताव-
च्छेदकमिति नियमेऽपि मानाभावात् व्यर्थविशेषणत्वस्य व्याप्यवि-

**प्रत्युक्तम् अन्यतरत्वाज्ञानेऽपि प्रत्येकाभावस्य दोषत्वात् व्यर्थविशेषणत्वाच्च ।**

घटकतया तत्त्वेऽप्यसाधकतानुमापकत्वसम्भवाच्च तथाविधबुद्धिमुख्यविशेष्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वस्य व्याप्त्याद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वाघटिततया व्यर्थविशेषणताशङ्काया अप्यनवकाशाच्च। वस्तुतस्तु अत्राप्याश्रयासिद्धि-साध्यविशेषणासिद्धि-हेतुविशेषणासिद्धि-हेत्वसिद्धिष्वव्याप्तिरेव दोषो बोध्यः, एवमग्रेऽपि। 'व्याप्तीति व्याप्तित्व-पक्षधर्मतात्वान्यतरधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावोऽसिद्धिरित्यर्थः, यद्वा 'अन्यतरपदव्यत्यासेन व्याप्तिसामान्याभाव-पक्षधर्मतासामान्याभावयोरन्यतरोऽसिद्धिरित्यर्थः, यथाश्रुते सामान्याभाव-विशेषाभावविकल्पाभ्यां अव्याप्त्यतिव्याप्तिप्रसङ्गस्य(१) दुर्व्वारत्वादिति ध्येयं। 'प्रत्येकाभावस्येति प्रत्येकाभावत्वप्रकारेण प्रत्येकाभावज्ञानस्येत्यर्थः, 'दोषत्वात्' प्रतिबन्धकत्वात्, प्रत्येकाभावाद्यज्ञाने चान्यतरत्वप्रकारकज्ञानस्याप्रतिबन्धकत्वादिति शेषः। तथाच विरोधितानवच्छेदकतया कथमस्य विभाजकतावच्छेदकत्वमित्यभिमानः। 'व्यर्थेति असाधकतानुमानेऽन्यतरत्वरूपस्य विशेषणस्य व्यर्थत्वादित्यर्थः,

(१) व्याप्ति-पक्षधर्म्मत्वान्यतराभावपदस्य तादृशान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकसामान्याभावपरत्वे अव्याप्तिः, अत्राव्याप्तिपदं असम्भवपरं, तादृशान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य अप्रसिद्धनात्मकत्वात्, तादृशान्यतरप्रतियोगिकाभावपरत्वे विशेषाभावे अतिव्याप्तिरिति तात्पर्य्यं ।

यत्तु व्याप्ति-पक्षधर्म्मताप्रमितिविरह आश्रयासि-द्ध्याद्यनुगतोऽसिद्धिः, तत्प्रमितिसत्त्वे तत्रानुमितिप्रमि-त्यापत्तेरिति। तदपि व्यर्थविशेषणत्वात् तदज्ञानेऽपि प्रत्येकज्ञानस्य दोषत्वाच्च निरस्तं।

---

प्रत्येकं व्याप्तित्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वेनैव गमकत्वसम्भवा-दिति भावः।

'व्याप्ति-पक्षधर्मतेति हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतुविशेष्यक-साध्य-तावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यनिरूपितव्याप्तिविशिष्ट-पक्षतावच्छेदकावच्छि-न्नपक्षधर्मताप्रकारकभ्रमभिन्नज्ञानविरह इत्यर्थः, 'आश्रयासिद्ध्याद्यनु-गत इति आश्रयासिद्ध्यादिरूपसकलासिद्धिव्यापक इत्यर्थः, तत्र तादृश-ज्ञानस्य पक्षतावच्छेदाद्यंशे भ्रमत्वनियमादिति भावः। 'आदिना स्वरूपासिद्धि-साध्य-साधनविशेषणासिद्धि-व्याप्यसिद्धीनां परिग्रहः, 'तत्प्रमितिसत्त्व इति आश्रयासिद्ध्यादिषु तादृशपक्षधर्मत्वप्रकारक-ज्ञानस्य भ्रमभिन्नत्वे इत्यर्थः, 'अनुमितिप्रमित्यापत्तेरिति अनुमिते-रपि भ्रमभिन्नत्वापत्तेरित्यर्थः, एवञ्च तादृशज्ञानविरहवान् हेतु-रसिद्ध इत्यसिद्धलक्षणमिति भावः। 'तदपीति 'निरस्तमित्यनेना-न्वयः, निरासे हेतुमाह, 'व्यर्थेति विशेषणस्य प्रमित्यंशस्य व्यर्थत्वात् दूषकतायामप्रयोजकत्वादित्यर्थः, परामर्शे प्रमितेरविशेषणतया तद-भावज्ञानस्याप्रतिबन्धकत्वादिति भावः। हेत्वन्तरमाह, 'तदज्ञाने-ऽपीति, 'प्रत्येकज्ञानस्य' व्याप्त्यभावादिप्रत्येकज्ञानस्य, तथाच प्रत्येका-भावस्यासिद्धितया तत्राव्याप्तिरिति भावः। प्रत्येकाभावेष्वसिद्धि-

वस्तुतस्तु प्रकृतहेतुव्याप्ति-पक्षधर्म्मतावैशिष्ट्यस्य तत्प्रमितेश्चाप्रसिद्ध्या तदभावो ज्ञातुमुद्भावयितुञ्चाशक्य एव।

---

लक्षणस्याव्याप्तिमभिधाय साधनविशेषणासिद्ध्यादिस्थले हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेत्वादेरप्रसिद्ध्याऽसिद्धिलक्षणस्यासम्भवमाह, 'वस्तुतस्त्विति, 'प्रकृतहेत्विति हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेतोरित्यर्थः, एतदप्रसिद्धिश्च पर्व्वतो वह्निमान् काञ्चनमयधूमादित्यादिसाधनविशेषणाऽसिद्धिस्थले बोध्या, 'व्याप्तीति साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यनिरूपितव्याप्तेरित्यर्थः, एतदप्रसिद्धिश्च पर्व्वतः काञ्चनमयवह्निमान् धूमादित्यादिसाध्यविशेषणासिद्धिस्थले बोध्या, 'पक्षधर्मतेति पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षनिरूपितधर्मत्वस्येत्यर्थः, एतदप्रसिद्धिश्च काञ्चनमयः पर्वतो वह्निमान् धूमादित्याद्याश्रयासिद्धिस्थले बोध्या, 'वैशिष्ट्यस्येति व्याप्तिपक्षधर्मतोभयवैशिष्ट्यस्येत्यर्थः, एतदप्रसिद्धिश्च अयोगोलकं धूमवत् वह्नेः ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादिबाधसङ्कीर्णासिद्धिस्थले बोध्या। न च 'वैशिष्ट्यस्येत्यत्र द्वन्द्वसमासे बहुवचनापत्तिः समाहारद्वन्द्वस्य नियतविषयतया अत्र तदसम्भवादिति वाच्यं। "सर्व्वोद्वन्द्वो विभाषया एकवचनं भवति" इति पाणिन्यनुशासनादितरेतरद्वन्द्वेऽप्येकवचनसम्भवात्। न चैवं धव-खदिरइत्यपि प्रयोगापत्तिरिति वाच्यं। "द्वन्द्वैकत्वं" इति सूत्रेण द्वन्द्वस्य एकवचनत्वे नपुंसकलिङ्गतावश्यकत्वबोधनात्। न चैवं समाहारेतरेतरयोः कोभेद इति वाच्यं। समाहारद्वन्द्वस्य समाहारत्वप्रकारकबोधजनकत्वेनैव भेदात्तथैव च[1]

---

(१) तस्यैव चेति ख०, ग०।

यत्किञ्चिद्व्याप्ति-पक्षधर्म्मताविशिष्टप्रमितिविरहः सद्धेतु-साधारणः स्वप्रमितिविरहो यत्किञ्चित्प्रमितिविरहो

---

नियतविषयत्वात् इत्यसमधिकेन। नन्वत्र हेतुतावच्छेदकादिवैशिष्ट्यं वैज्ञानिकं न तु वास्तविकं ग्राह्यं येन साधनविशेषणासिद्ध्यादिस्थले ऽप्रसिद्धिः स्यात् तथाच हेतुतावच्छेदकरूपेण हेतौ साध्यतावच्छेदकरूपेण साध्यव्याप्यत्वं पक्षतावच्छेदकरूपेण पक्षधर्म्मत्वञ्चावगाहते या साध्यव्याप्यो हेतुः पक्षवृत्तिरित्याकारिका भ्रमभिन्ना प्रतीतिस्तद्विरहवत्त्वमसिद्धित्वमिति फलितार्थ इत्यत आह, 'तत्प्रमितेस्चेति असिद्धस्थले भ्रमभिन्नतादृशप्रतीतेश्चेत्यर्थः। ननु व्याप्ति-पक्षधर्मता-प्रमितिपदेन प्रकृतहेतुविशेष्यक-प्रकृतसाध्यनिरूपितव्याप्त्यादिप्रमितिर्न विवक्षिता किन्तु यत्किञ्चित्साध्यनिरूपितव्याप्तिविशिष्ट-यत्किञ्चित्पक्षधर्मत्वप्रकारक-यत्किञ्चिद्धेतुविशेष्यकप्रमितिरेव विवक्षिता तद्विरहश्च न तत्सामान्याभावः किन्तु तत्प्रतियोगिकाभावमात्रं तेन हेत्वन्तरे साध्यान्तरीयव्याप्त्यादिप्रमितिसत्त्वदशायां नाव्याप्तिरित्यत आह, 'यत्किञ्चिद्व्याप्तीति 'यत्किञ्चिदिति पक्षेऽपि सम्बध्यते, यत्किञ्चिन्निरूपितव्याप्तिविशिष्ट-यत्किञ्चित्पक्षधर्म्मत्वप्रकारक-यत्किञ्चिद्धेतुविशेष्यकप्रमितिप्रतियोगिकविरह इत्यर्थः। ननु हेतुतावच्छेदकरूपेण हेतौ साध्यतावच्छेदकरूपेण साध्यनिरूपितव्याप्यत्वं पक्षतावच्छेदकरूपेण पक्षधर्मत्वञ्चावगाहते या प्रतीतिर्भ्रमानिरूपित-विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन हेतुतावच्छेदके तदभावोऽसिद्धिर्भ्रमानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नतादृशप्रतीत्यभाववद्धेतु-

वा सद्धेतावपि सकलतत्प्रमितिविरहो दुर्निरूपः व्या-प्यभावादेव तद्ग्रहे सत्त्व दोष उपजीव्यत्वात्। यदि च प्रमितिविरहः स्वरूपसन्नेव दोषः कारणाभाव-त्वात् तदा व्याप्यादिभ्रमादनुमितिर्न स्यात् न स्याच्च हेत्वाभासता ज्ञानगर्भतल्लक्षणाभावात्। एतेन व्याप्ति-प्रमिति-पक्षधर्मताप्रमितिविरहान्यतरत्वमसिद्धिः अ-

---

तावच्छेदकवान् हेतुरसिद्ध इति न कोऽपि दोष इत्यत आह, 'स्वप्रमितीति भ्रमानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन स्वीयता-दृशप्रतीतिविरहो वा विवक्षितः तेन सम्बन्धेन यस्य कस्यचित् पुरुषस्य तादृशप्रतीतिविरहो वा तेन सम्बन्धेन तादृशप्रतीतिसा-मान्याभावो वा, नाद्यौ सद्धेतावपि सत्त्वात्, नान्त्यः दुर्ज्ञेयत्वात् परकीयप्रतीतेरयोग्यत्वादित्यर्थः। ननु व्याप्यभावादिहेतुना स्व-परसाधारणतादृशप्रतीतिविरहो ज्ञेय इत्यत आह, 'व्याप्यभावा-दिति। ननु स्वरूपसन्नेवायं प्रतिबन्धकोऽतो दुर्ज्ञेयत्वेऽपि न क्षतिः इत्यत आह, 'यदि चेति, "प्रमितिविरहः' भ्रमानिरूपितविशेष्य-तावच्छेदकतासम्बन्धेन तादृशप्रतीतिसामान्याभावः, 'तदेति, असि-द्धहेताविति शेषः। तादृशाभावस्य प्रतिबन्धकस्य सत्त्वादिति भावः। 'तल्लक्षणाभावादिति हेत्वाभाससामान्यलक्षणाभावादित्यर्थः। 'अन्य-तरत्वमिति अन्यतरवत्त्वमित्यर्थः, यथाश्रुतेऽन्यतरत्वस्यासिद्धिनिष्ठ-धर्मतयाऽसिद्धिरित्यस्यानन्वयापत्तेः। नन्वन्यतरवत्त्वमनयोः प्रत्येक-

न्यतरत्वञ्च तदन्यान्यत्वं तेनोभयविरहेऽपि नाव्याप्ति-रिति निरस्तं। व्यर्थविशेषणत्वादेव। स्यादेतत् व्याप्ति-पक्षधर्मताभ्यां निश्चयः सिद्धिः तदभावोऽसिद्धिः, अतएवाव्याप्तेऽपक्षधर्मे च तदारोपरूपा सिद्धिरि-त्यनुमितिः न तु व्याप्त-पक्षधर्मादपि तदनिश्चये। न चैवं हेतोरप्याभासत्वं तदाभासस्यापि हेतुत्वं स्यात्,

---

माववत्त्वं तथाच प्रमितिद्वयाभावस्थलेऽव्याप्तिरित्यत आह, 'अन्य-तरत्वमिति, 'एतेनेति विवृणोति, 'व्यर्थविशेषणत्वादेवेति पूर्ववत्। 'व्याप्तीति स्वीयव्याप्ति-पक्षधर्मतोभयप्रकारकनिश्चय इत्यर्थः, 'तद-भावः' विषयतासम्बन्धेन प्रकृतहेतौ तदभावः, 'व्याप्त्यादिभ्रमादनु-मितिर्न स्यादिति पूर्व्वोक्तबाधकमुद्धरति, 'अतएवेति यत एव विष-यतासामान्येन भ्रम-प्रमासाधारणस्वीयतदुभयप्रकारकनिश्चयसामा-न्याभावोऽसिद्धिर्न तु भ्रमानिरूपितविषयतासम्बन्धेन[१] स्व-परसा-धारणतादृशनिश्चयाभावोऽत एवेत्यर्थः, 'तदा' व्याप्त्यादिभ्रमदशायां, 'सिद्धिः' व्याप्ति-पक्षधर्मतोभयप्रकारकनिश्चयः, 'तदनिश्चय इति, स्वीयतदुभयप्रकारकनिश्चयाभाव इत्यर्थः, पुरुषान्तरीयतदुभयनिश्च-यादनुमितिरिति शेषः। 'न चैवमिति, 'एवं' स्वीयतदुभयनिश्चया-भावस्यासिद्धित्वे, 'हेतोरपि' पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादिसद्धेतो-रपि, स्वीयतदुभयनिश्चयाभावदशायामिति शेषः, 'तदाभासस्यापि'

---

(१) प्रमानिरूपितविषयतासम्बन्धेनेति ख० ।

दशाविशेषदुष्टत्वात् सेयं स्वरूपसती दूषिका कारणा-
भावत्वात्। न च व्याप्त्यादिप्रत्येकनिश्चयाभाव एव दूषक-
आवश्यकत्वादिति वाच्यं। विशिष्टनिश्चयस्य हेतुत्वे
तदभावस्य कार्य्यानुत्पादकत्वादिति। मैवम्। एवं स-
व्यभिचारादेरप्यत्रैवान्तर्भावप्रसङ्गात् असिद्धेः स्वरूप-

---

पर्व्वतो वह्निमान् आकाशादित्याद्यसिद्धहेतोरपि, स्वीयभ्रमात्मक-
तदुभयनिश्चयदशायामिति शेषः, 'हेतुत्वं' सद्धेतुत्वं। न च भ्रमा-
त्मकतदुभयनिश्चयदशायामपि असाधारण्य-विरोधान्यतरस्य हेत्वा-
भासत्वप्रयोजकस्यावश्यं सत्त्वेन सद्धेतुत्वासम्भव इति वाच्यं। पक्ष-
वृत्तित्वे सति साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपस्यासाधारण्यस्य
वृत्तिमत्त्वे सति साध्यवदवृत्तित्वरूपस्य पूर्व्वोक्तविरोधस्य च तत्रासत्त्वा-
दिति भावः।

केचित्तु 'हेतुत्वमित्यस्य असिद्धिशून्यहेतुत्वमित्यर्थः इत्याहुः।

'सेयमिति, पूर्व्वोक्तश्च न हेत्वाभासलक्षणमिति भावः। 'न
चेति, न तूभयप्रकारकनिश्चयाभाव इति भावः। 'आवश्यकत्वात्'
कारणाभावत्वेन तस्य दोषताया आवश्यकत्वात्। 'विशिष्टेति तदुभय-
प्रकारकनिश्चयस्येत्यर्थः, 'तदभावस्य' तदभावस्यापि, 'कार्य्यानुत्पा-
दकत्वात्' इति कार्य्यानुत्पत्तिप्रयोजकत्वादित्यर्थः। 'अत्रैवेति
असिद्धावेवेत्यर्थः, व्याप्ति-पक्षधर्म्मतानिश्चयाभावेनैवानुमित्यभावसम्भ-
वादिति भावः। ननु प्रतिबन्धकीभूतासिद्धिज्ञानोपजीव्यतया व्यभि-

सत्या एव दोषत्वे स्वज्ञानार्थं व्यभिचाराद्यनुद्भावनात्।
यदि च तस्मात् सिद्धिर्नोपपद्यत इति तस्योपजीव्यत्वं
तदाश्रयासिद्ध्यादिज्ञानात् सिद्धिर्नेति स एवं पृथग्दोषः
स्यात् असिद्धिश्च ज्ञाता परस्योद्भाव्येति स्वज्ञानार्थ-
मुद्भावितासिद्धिनिर्व्वाहार्थञ्चाश्रयासिद्ध्यादिज्ञानमाव-
श्यकं, कथञ्च हेतु-तदाभासविवेकः सिद्धौ द्वयोरपि

---

चारादिर्दोष इत्यत आह, 'असिद्धेरिति, 'स्वज्ञानार्थं' प्रतिबन्धकी-
भूतासिद्धिज्ञानार्थं, 'अनुद्भावनात्' अनपेक्षणात्। ननु प्रतिबन्ध-
कीभूतासिद्धिज्ञानं प्रति व्यभिचारादेरनुपजीव्यत्वेऽपि असिद्धि-
स्वरूपे तस्योपजीव्यत्वमस्त्येव व्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयरूपसिद्धिप्रतिब-
न्धकत्वेनैवासिद्धिस्वरूपोपजीव्यत्वादतः पृथग्दोषत्वं इत्यतआह, 'यदि
चेति, 'तस्मात्' व्यभिचारादिज्ञानात्, 'सिद्धिः' व्याप्ति-पक्षधर्मता-
निश्चयः, 'तस्य' व्यभिचारादेः, 'उपजीव्यत्वं' असिद्धिस्वरूप उपजी-
व्यत्वं, 'स एवेति, 'एवकारो भिन्नक्रमे, 'दोष इत्यनन्तरं योज्यः,
स पृथक्दोष एव स्यादित्यर्थः, असिद्धिस्वरूपे उपजीव्यत्वात् तथाच
हेत्वाभासाधिक्यापत्तिरिति भावः। नन्वसिद्धिपूर्व्वं आश्रयासिद्ध्यादि-
ज्ञानाभावात् तस्य नोपजीव्यत्वं, न च व्यभिचारादावपि तुल्यं,
तज्ज्ञानार्थं तत्स्वरूपनिर्व्वाहार्थञ्च तत्पूर्व्वं तज्ज्ञानस्यावश्यकत्वादित्यत-
आह, 'असिद्धिश्चेति, 'आश्रयासिद्ध्यादिज्ञानं' आश्रयासिद्ध्यादि-
ज्ञानमपि। दूषणान्तरमाह, 'कथञ्चेति कथं वेत्यर्थः, 'हेतु-तदा-
भासविवेक इति पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादेरसद्धेतुभिन्नत्वेन

हेतुत्वात् असिद्धौ तदाभासत्वात् व्यभिचारादेः सद्धेतौ सिद्धिमखण्डयतश्च हेत्वाभासत्वाभावात् । अथ सुप्तौ

पर्व्वतो वह्निमानाकाशादित्यादेश्च सद्धेतुभिन्नत्वेन व्यवहार इत्यर्थः, 'सिद्धाविति व्याप्ति-पक्षतानिश्चयरूपसिद्धिसत्त्व इत्यर्थः, 'हेतुत्वात्' सद्धेतुत्वात्, 'आभासत्वात्' द्वयोरप्यसद्धेतुत्वात्, अन्योन्याभावस्तु नाव्याप्यवृत्तिरिति भावः। किञ्च यदि व्यभिचारादेरसिद्धिस्वरूपं प्रत्युपजीव्यतयैव हेत्वाभासत्वं तदा व्यभिचार्य्यादिहेतौ सद्धेतुत्वग्रह-दशायां व्यभिचारादेः सिद्धिविघटकत्वाभावेनासिद्धिस्वरूपोपजीव्य-त्वाभावात् तस्य तदानीन्तनहेतुदोषत्वाभावप्रसङ्गः तस्य तदानीन्तन-हेत्वाभासत्वाभावे तत्सम्बन्धेन तद्वतो हेतोरपि तदानीन्तनहेत्वाभासत्वं न स्यात् तथाच व्यभिचार्य्यादिहेतोर्नित्यदुष्टत्वभङ्गप्रसङ्ग इति दूष-णान्तरमाह, 'व्यभिचारादेरिति, 'सद्धेतौ' व्यभिचार्य्यादिहेतोः सद्धेतुत्वग्रहदशायां व्यभिचार्य्यादिहेतोर्व्याप्ति पक्षधर्म्मतानिश्चयदशा-यामिति यावत्,' 'सिद्धिमखण्डयतः' व्याप्ति-पक्षधर्म्मतानिश्चयरूपां सिद्धिमविघटयतः, 'हेत्वाभासत्वाभावात्' तदानीन्तनहेतुदोषत्वा-भावप्रसङ्गात्, भिन्नक्रमस्थचकारोऽत्रैव योज्यः । न चेष्टापत्तिः, तथा सति तत्सम्बन्धेन तद्वतो हेतोरपि तदानीन्तनहेत्वाभासत्वासम्भवात् व्यभिचार्य्यादिहेतोर्नित्यदुष्टत्वभङ्गप्रसङ्गापत्तिरिति भावः। एतच्चापा-ततः व्यभिचारादेस्तदानीं सिद्धिप्रतिबन्धफलानुपहितत्वेऽपि सिद्धि-प्रतिबन्धस्वरूपयोग्यत्वस्य तस्य तदानीमपि सत्त्वादेव तदानीन्तन-हेतुदोषत्वसम्भवात् तत्सम्बन्धेन तद्वतो हेतोरपि तदानीन्तनहेत्वा-

जागरेऽपि व्याप्ति-पक्षधर्म्मतासत्त्वे तदनिश्चयेऽनुमित्यनुत्पादो हेत्वाभासप्रयोज्यः सव्यभिचारादौ तथावधारणादित्यसिद्धिरज्ञातापि हेत्वाभासः। न चैवं

---

भासत्वस्य सुग्रहत्वात् अन्यथा सिद्धान्तिनयेऽपि व्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयात्मकसिद्धिविघटकतयैव व्यभिचारादेर्हेतुदोषतयैतदनुयोगस्य तुल्यत्वात् ।

केचित्तु 'हेतु-तदाभासविवेक इति पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादेरसद्धेतुभिन्नत्वेन द्रव्यं सत्त्वात् गोत्ववान् अश्वत्वादित्यादेश्च सद्धेतुभिन्नत्वेन व्यवहार इत्यर्थः। 'सिद्धावित्यादिग्रन्थस्तु पूर्व्ववत्। ननु सिद्धिसत्त्वे द्वयोरपि सद्धेतुत्वादिदमयुक्तं सिद्धिसत्त्वेऽपि द्रव्यं सत्त्वादित्यादेर्व्यभिचारादिहेतुदोषवत्त्वेन दुष्टत्वादित्यत आह, 'व्यभिचारादेरिति, अप्यर्थकाग्रिमचकारोऽत्रैव योजनीयः व्यभिचारादेरपीत्यर्थः। 'सद्धेतौ' सद्धेतुत्वग्रहस्थले व्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयरूपसिद्धिसत्त्व इति यावत्, 'सिद्धिमखण्डयतः' व्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयरूपां सिद्धिमविघटयतः, 'हेत्वाभासत्वाभावात्' हेत्वाभासत्वप्रयोजकत्वासम्भवात्, भवन्मये सिद्धिविघटकत्वरूपस्यासिद्ध्युपजीव्यत्वस्यैव व्यभिचारादेर्हेतुदोषत्वप्रयोजकत्वादिति भावः, इति व्याचक्षुः।

'व्याप्ति-पक्षधर्मतासत्त्व इति व्याप्ति-पक्षधर्मतासत्त्वेऽपीत्यर्थः, 'तथावधारणादिति अनुमित्यनुत्पादस्य हेत्वाभासप्रयोज्यत्वावधारणादित्यर्थः, 'अज्ञातापीति, तच्चानुमित्यनुत्पादस्य हेत्वाभासप्रयोज्यत्वान्यथानुपपत्त्येति भावः। 'हेत्वाभासाधिक्यमिति अः अयासिद्ध्यादे-

हेत्वाभासाधिक्यं क्लृप्तान्तर्भावो वा, तेन रूपेण व्याप्यसिद्ध्यादेरेव संग्रहादिति चेत्, न, एवं सव्यभिचारादिरप्यसिद्धिः स्यादित्युक्तत्वात् उपजीवनाद्भेदे आश्रयासिद्ध्यादिरपि पृथक् स्यात् सुषुप्त्यादावनुमित्यभावः कारणाभावात् कार्य्यानुत्पादो हि न प्रतिबन्धकमाचात् किन्तु कारणाभावादपि असत्यपि प्रतिबन्धके वह्न्यभावेन दाहानुत्पत्तेः। अथानुमित्यनुत्पादो हेत्वाभासप्रयुक्त एवेति चेत्, तर्ह्यनुमितौ मनोयोगादिरपि न हेतुः हेत्वाभासादेवानुमित्यनुत्पादे तद्व्यति-

रतिरिक्तहेत्वाभासत्वमित्यर्थः, 'क्लृप्तान्तर्भाव इति क्लृप्तानां व्यभिचारादीनां असिद्ध्यन्तर्भाव इत्यर्थः,[१] 'तेन रूपेण' तत्साधारणाश्रयासिद्ध्याद्यन्यतमत्वरूपेण, व्याप्यसिद्ध्यादेरेवेति व्याप्तिनिश्चयाभावादेरेवेत्यर्थः, 'सङ्ग्रहात्' विभागस्थासिद्धिपदेन संग्रहात्, 'एवकाराद्व्यभिचारादिव्यवच्छेदः। 'असिद्धिः स्यादिति असिद्धित्वेनैव सूत्रकृता विभक्तः स्यादित्यर्थः, 'उपजीवनादिति असिद्धिस्वरूपं प्रति उपजीव्यत्वादित्यर्थः, 'भेदे' पृथग्विभजने, 'पृथक् स्यात्' पृथग्विभक्तः स्यात्। नन्वेवं व्याप्ति-पक्षधर्मतासत्त्वेऽपि सुषुप्त्यादौ कथमनुमित्यभावः हेत्वाभासाभावादित्यत आह, 'सुषुप्त्यादाविति, 'कारणाभावात्' परामर्शात्मककारणाभावात्, 'कारणाभावादपि' भावरूपकारणाभा-

(१) क्लृप्तानां व्यभिचारादीनां अन्यतमत्वरूपेण सङ्ग्रहे असिद्धावन्तर्भाव इत्यर्थं इति क०। व्यभिचारादीनामसिद्ध्यन्तर्भाव इत्यर्थं इति ग०।

रेकेणानुमित्यनुत्पादाभावात् सिद्धेरेव तत्र मित्य-
मकारणमेव हेतुः स्यात्।

अन्ये तु गमकतौपयिकप्रतिद्वन्द्विव्याप्ति-पक्षधर्म्मता-
विरह-तन्नियतयोरन्यतरत्वं हेत्वाभासत्वं तत्राधिक-

---

वादपि, 'न हेतुरिति, स्यादिति शेषः, 'अनुमित्यनुत्पादे' अनुमित्यनु-
त्पादाभ्युपगमे, 'तद्व्यतिरेकेणेति आत्म-मनोयोगादिव्यतिरेकेणेत्यर्थः,
यद्व्यतिरेकेण कार्य्यानुत्पादः तस्यैव च कारणत्वादिति भावः।
नन्विदमिष्टमेवेत्यत आह, 'सिद्धेरेवेति व्याप्ति-पक्षधर्म्मतानिश्चयस्यै-
वेत्यर्थः, 'हेतुः स्यादिति सर्व्वत्र हेतुः स्यादित्यर्थः, तथाच कार्य्यं
निष्कारणकं स्यादिति भावः। इदमापाततः भवन्मतेऽपि कथमात्म-
मनोयोगो हेतुः इतरकारणसत्त्वे तद्व्यतिरेकेणानुमितिव्यतिरेका-
सिद्धेः। अथानुमित्यादिकमसमवायिकारणवत् भावकार्य्यत्वादि-
त्यनुमानात् तत्सिद्धिस्तदा ममापि तुल्यं चरमे सत्यपि कार्य्यं
सकरणकमिति व्याप्तिबलात् व्याप्तिज्ञानादेः करणतासिद्धेः अन्यथा
तवापि व्याप्तिज्ञानादिकं करणं न स्यात् परामर्शादिचरमकारणे
सति तद्व्यतिरेकेण कार्य्यव्यतिरेकाभावात्, परमार्थतस्तु तादृशव्या-
प्तिरप्रयोजिकेत्येव तत्त्वं।

केचित्तु हेत्वाभाससामान्यलक्षणं तद्विशेषलक्षणानि च प्रकारा-
न्तरेणाहुः तन्मतमुपन्यस्यति, 'अन्ये त्विति, अत्र गमकतौपयिक-
प्रतिद्वन्द्वी च व्याप्ति-पक्षधर्मताविरहस्य गमकतौपयिकप्रतिद्वन्द्वि-
व्याप्ति-पक्षधर्मताविरहं तादृशपक्षधर्मताविरहस्य तन्नियतस्य ता-

बलसमानबलौ बाध-प्रतिरोधौ प्रतिद्वन्द्विनौ व्याप्ति-पक्षधर्म्मताविरहश्चासिद्धिः तन्नियतौ च सव्यभिचार-विरुद्धौ। न चानयोरप्यसिद्धान्तर्भावः, व्याप्तिविरहनि-यतत्वेन ज्ञातयोः स्वातन्त्र्येणैव दूषकत्वात् भ्रमे विशेष-

---

दृश्यपक्षधर्मताविरह-तन्नियतौ तयोरित्येकवचनान्तसमाहारद्वन्द्वगर्भ-इतरेतरद्वन्द्व इति न बहुवचनापत्तिरिति द्रष्टव्यं। तथाच गमक-तौपयिकप्रतिद्वन्द्विव्याप्ति-पक्षधर्मताविरह-तद्व्याप्यानामन्यतमत्वं हेत्वा-भाससामान्यलक्षणमित्यर्थः, गमकतौपयिकप्रतिद्वन्द्वित्वञ्च साक्षादनु-मितिप्रतिबन्धकत्वं, गमकतौपयिकस्याबाधितत्वासत्प्रतिपक्षितत्वस्य विरोधित्वमित्यपि केचित्। 'तत्र' तेषु मध्ये, 'अधिकबल-समान-बलाविति, 'अधिकबल-समानबलौ' 'प्रतिद्वन्द्विनौ' 'बाध-प्रतिरोधा-विति योजनया समानबलप्रतिद्वन्द्वी प्रतिरोधः अधिकबलप्रतिद्वन्द्वी बाधः इत्यर्थः, समानबलप्रतिद्वन्द्वित्वं बाधनिश्चयत्वाद्यनवच्छिन्नसा-क्षादनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वं, असाधारणत्वमप्येतन्मते प्रति-रोधान्तर्गतमेव, तन्निश्चयत्वाद्यनवच्छिन्नत्वेनापि वा प्रतिबन्धकता विशेषणीया, अधिक-बलप्रतिद्वन्द्वित्वञ्च साध्याभावव्याप्यवत्तानिश्चय-त्वाद्यनवच्छिन्नसाक्षादनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वमिति भावः। 'तन्नियतौ' व्याप्ति-पक्षधर्मताविरहव्याप्तौ, 'सव्यभिचारेति, धर्म-प्रधानो निर्देशः। ननु यदि तौ तन्नियतौ तदा तदुन्नयनद्वारैव दोषत्वसम्भवेन कथं तयोः पृथक् दोषत्वमुपेयते इत्याशङ्क्य निरा-करोति, 'न चेति, 'असिद्धान्तर्भावः' असिद्ध्युपनयनद्वारा दूषकत्वं, 'अनयोः' व्यभिचारि-विरुद्धयोः, 'स्वातन्त्र्येणैवेति व्याप्त्यादिविरह-

दर्शनस्यैवेति, तन्न, अत्रापि व्याप्ति-पक्षधर्म्मताविरह-एवासिद्धिः पर्य्यवस्यति तच्च चोक्तमेवान्यतरत्वञ्च न लक्षणं व्यर्थविशेषणत्वात् हेत्वाभासान्तरबहिष्कृतस्य व्याप्ति-पक्षधर्म्मतानिश्चयविरोधिनो रूपस्य विवक्षितत्वात् तच्चाश्रयासिद्ध्यादिकमेवेति।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डे असिद्धिपूर्व्वपक्षः ॥०॥

---

निश्चयं विनैवेत्यर्थः, व्याप्तिविरहव्याप्यत्वेनेत्युपलक्षणं व्यभिचारवत्त्वादिनेत्यपि बोध्यं। नन्वेवं व्याप्ति-पक्षधर्मताविरहत्वमेवासिद्धिलक्षणं पर्य्यवसितं तच्च दूषितमेवेत्यत आह, 'अत्रापीति अस्मिन्मतेऽपीत्यर्थः, 'उक्तमिति अननुगमरूपं दूषणमिति शेषः। नन्वन्यतरत्वेनानुगमोऽस्त्वित्यत आह, 'अन्यतरत्वञ्चेति, 'व्यर्थेति असाधकतानुमानेऽन्यतरत्वरूपस्य विशेषणस्य व्यर्थत्वादित्यर्थः, प्रत्येकं व्याप्तित्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वेनैव गमकत्वसम्भवादिति भावः। ननु विशिष्टाभाव एव सामान्यलक्षणघटको न तु व्याप्त्यादिप्रत्येकाभावः तथाच विशिष्टाभावस्यैवासिद्धित्वेन व्याप्त्यादिप्रत्येकाभावस्यातथात्वान्नाननुगम इत्यत आह, 'हेत्वाभासान्तरेति, 'बहिष्कृतस्य' भिन्नस्य, 'विवक्षितत्वात्' अत्र शास्त्रेऽसिद्धित्वेन विवक्षितत्वात्, 'आश्रयासिद्ध्यादिकमेवेति न तु विशिष्टाभाव इत्यर्थः, 'आदिपदाद्व्याप्त्यादिप्रत्येकाभावपरिग्रहः।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये असिद्धिपूर्व्वपक्षरहस्यम्।

## अथासिद्धिसिद्धान्तः ।

उच्यते आश्रयासिद्धिः स्वरूपासिद्धिः व्याप्यत्वासिद्धिश्च प्रत्येकमेव दोषः प्रत्येकस्यं ज्ञानादुद्भावनाच्चानुमितिप्रतिबन्धात् न तु विशिष्टाभावः परामर्शविषयाभावो वा व्यर्थविशेषणत्वात् तस्य ज्ञान-

---

### अथासिद्धिसिद्धान्तरहस्यं ।

'ज्ञानादिति प्रत्यक्षादितो ज्ञानादित्यर्थः, तेनोद्भावनादिति सङ्गच्छते, एवमग्रेऽपि, 'विशिष्टाभाव इति व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मत्वाभाव इत्यर्थः, एतच्च साध्यव्याप्यहेतुमान्पक्षः इति पक्षविशेष्यकपरामर्शस्यैव हेतुतावादिनां नव्यानां नयेन, साध्यव्याप्यत्वे सति पक्षवृत्तित्ववान् हेतुरिति परामर्शस्यापि हेतुत्वनये तु विशिष्टाभाववद्धेतुरपि दोष इत्युक्तमधस्तात् । 'परामर्शविषयाभावो वेति परामर्शविषयप्रतियोगिकाभावत्वरूपेण व्याप्त्यादिप्रत्येकाभावो वेत्यर्थः, दोष इत्यनुषज्यते, 'व्यर्थविशेषणत्वात्' विशिष्टाभावत्वपरामर्शविषयप्रतियोगिकाभावत्वरूपस्य विशेषणस्य दूषकतायामप्रयोजकत्वात्, तेन रूपेण ज्ञानस्याप्रतिबन्धकत्वादिति यावत् । नन्वेवं तद्रूपेण ज्ञानादिसत्त्वेऽप्यनुमितिः स्यादित्यत आह, 'तस्येति, प्रकारित्वं षष्ठ्यर्थः, तद्रूपेण ज्ञानमुद्भावनञ्च 'अनुमितिप्रतिबन्धात् विनापीति योजना, यत्रानुमितिप्रतिबन्धस्तत्रापि तत्प्रकारकज्ञानमुद्भावनञ्च तिष्ठतीत्यर्थः, तथाच तद्रूपेण ज्ञानादिसत्त्वेऽनुमिताविष्टापत्तिरिति भावः ।

मुद्भावनं विनाप्यनुमितिप्रतिबन्धात् अनुभवसिद्धं हि लक्षणं न तु लक्षणानुरोधेनानुभवकल्पना, परामर्शविषयाभावत्वेनानुगतेन त्रयाणामसिद्धत्वेन संग्रहो महर्षिणा कृत इति न विभागविरोधो हेत्वाभासाधिक्यं वा।

---

केचित्तु तद्रूपेण ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वाभावे हेतुमाहुः, 'तस्येति, तेन रूपेण ज्ञानमुद्भावनञ्च विनाप्यनुमितिप्रतिबन्धात्तेन रूपेण ज्ञानमनुमित्यप्रतिबन्धकमित्याहुः। तदसत्। तथा सति व्यभिचारादिज्ञानं विनाप्यनुमितिप्रतिबन्धात् व्यभिचारादिज्ञानस्याप्यप्रतिबन्धकत्वापत्तेरिति ध्येयं। ननु परामर्शविषयप्रतियोगिकाभावत्वस्य महर्षिप्रणीतासिद्धिलक्षणतया तद्रूपेण ज्ञानाद्यनुमितिप्रतिबन्धो भवतीत्यनुभवः कल्प्यत इत्यत आह, 'अनुभवसिद्धं हीति लक्षणप्रकारकज्ञानादनुमितिप्रतिबन्धेऽनुभवसिद्धं हीत्यर्थः, 'लक्षणं' लक्षणस्यानुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वं। ननु त्रयाणां प्रत्येकमेव दोषत्वे त्रितयसाधारणैकरूपाभावेन विभागस्य वा न्यूनत्वं त्रयाणां मध्ये कयोश्चिद्द्वयोः(१) हेत्वाभासव्यतिरिक्तत्वं वा स्यादित्यत आह, 'परामर्शविषयेति परामर्शविषयाभावत्वरूपेणानुगतेनासिद्धित्वेन त्रयाणां सङ्ग्रह इति योजना, 'विरोधः' न्यूनत्वं, 'हेत्वाभासाधिक्यं' वेति त्रयाणां मध्ये कयोश्चिद्द्वयोर्हेत्वाभासव्यतिरिक्तत्वं वेत्यर्थः। ननु परामर्शविषयाभावत्वं परामर्शविषयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वं

---

(१) कयोश्चित्त्रयोरिति ग०।

तत्प्रतियोगिकाभावत्वमात्रं वा नाद्यः, व्याप्यादिप्रत्येकाभावेऽव्याप्तेः तादृशाभावस्याप्रसिद्धेश्च, 'न ह्येवं पदार्थोऽस्ति यत्र परामर्शविषयो नास्ति, अन्ततः परामर्शविषयाभावस्यैव सर्व्वत्र वृत्तेः'। न द्वितीयः, वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकव्याप्याद्यभावे केवल-साध्याभाव-साधनाभावादौ चानाभासेऽतिव्याप्तेः। अथ हेत्वाभासत्वे सति परामर्शविषयप्रतियोगिकाभावत्वमभिसिद्धित्वं अतो नाभासभिन्नेऽतिव्याप्तिः परामर्शपदस्य साध्याव्यभिचरितसम्बन्धिहेतुमान्पक्षः[१] इत्याकारकातिरिक्ताविषयकान्वयव्याप्तिघटितपरामर्शपरमतो हेतु-निष्ठव्यतिरेकव्याप्त्यभावरूपानुपसंहारित्वे नातिव्याप्तिः, सप्तमपदार्थ-रूपाभावस्य घटकतया[२] च हेतुनिष्ठसाध्याभाववद्वृत्तित्वरूपे साधा-रण्ये नातिव्याप्तिः तस्य भावत्वादिति चेत्। न। गोत्ववान् अश्वत्वा-दित्यादौ हेतोः साध्यसमानाधिकरण्याभावरूपे विरोधे, ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादौ यत्र भावस्य साध्यता तत्र पक्षवृत्तिसाध्या-भावरूपे बाधे, गोत्वाभावः सास्नादिमान् .गोत्वाभावादित्यादौ यत्राभावस्य पक्षता हेतुता च तत्र साध्याभाववत्पक्षरूपे बाधे, साध्याभावव्याप्यवत्पक्षरूपे सत्प्रतिपक्षे, साध्याभाववद्वृत्तिहेतुरूपे साधारण्ये साध्यासमानाधिकरणहेतुरूपे विरोधे चातिव्याप्तेः तेषां हेत्वाभासत्वात् परामर्शविषयप्रतियोगिकाभावत्वाच्च। यत्र भावस्य पक्षता तत्र पक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षरूपाश्रयासिद्धौ साधनाभाव-

---

(१) साध्याभाववदवृत्ति-साध्यसमानाधिकरणहेतुमान् पक्ष इत्यर्थः।

(२) षट्पदार्थातिरिक्तस्वरूपस्याभावस्य घटकतयेत्यर्थः।

वत्पचरूपस्वरूपासिद्धौ चाव्याप्तेः तत्त्वाभावत्वाभावात्, एवं यत्र भावस्य साध्यता तत्र साध्यतावच्छेदकाभाववत्साध्यात्मकसाध्यविशेषणासिद्धौ, यत्र भावस्य साधनता तत्र साधनतावच्छेदकाभाववत्साधनात्मकसाधनविशेषणासिद्धौ, व्याप्यभाववत्साधनात्मकव्याप्तिविरहरूपासिद्धौ चाव्याप्तेः। अथ साध्याव्यभिचरितसम्बन्धिहेतुमान् पच इत्याकारकातिरिक्ताविषयकान्वयिपरामर्शेन यद्धर्मावच्छिन्ने यद्धर्मावच्छिन्नवत्त्वं विषयीक्रियते तद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववत्तद्धर्मावच्छिन्नमसिद्धिरिति विवचितं। न चैवं हेतुनिष्ठपचवृत्त्यभावप्रतियोगित्व-हेतुनिष्ठपचवृत्त्यन्यत्वादिरूपे स्वरूपासिद्ध्यादावव्याप्तिरिति वाच्यं। समानप्रकारकज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्ववादिनां नव्यानां नये साधनाभाववत्पचादेरेव स्वरूपासिद्ध्यादितया तस्य स्वरूपासिद्धित्वादिविरहादिति चेत्। न। साध्यसामानाधिकरण्याभाववद्धेतुरूपे विरोधे साध्याभाववदवृत्तित्वाभाववद्धेतुरूपे साधारणे चातिव्याप्तेः साधनात्यन्ताभाववत्पचादेरिव साधनात्यन्ताभावव्याप्यवत्पच-साधनवद्भिन्नपच-साधनवद्भेदव्याप्यवत्पचादेरपि स्वरूपासिद्ध्यादितया तत्राव्याप्तिश्चेति[1]। मैवं। परामर्शविषयाभावत्वपदेन परामर्शविरोधितावच्छेदकरूपवत्त्वस्य विवचितत्वात्, परामर्शविरोधितावच्छेदकत्वन्तु निश्चयनिष्ठं याद्दशविशिष्टनिरूपितविषयित्वसामान्यं परामर्शप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति ताद्दशविशिष्टत्वं, हेत्वाभाससामान्यलचणोक्तदिशैवात्रापि

(१) तत्राव्याप्तिश्चेति ग०।

तत्तद्दलप्रयोजनमवसेयं। एतेनावच्छेदकत्वमत्र न स्वरूपसम्बन्धवि-
शेषः माणिक्यमयः पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ माणिक्यमय-
त्वाभाववत्पर्व्वतादिरूपे आश्रयासिद्ध्यादावसम्भवापत्तेः पर्व्वतत्वादि-
रूपेण वस्त्वन्तरे माणिक्यमयत्वाभावत्वरूपेण यत्किञ्चिद्वस्तुज्ञान-
स्यापि वह्निव्याप्यधूमवान् माणिक्यमयः पर्व्वत इत्यादिपरामर्श-
प्रतिबन्धकतया प्रतिबन्धकतावच्छेदकपर्व्वताद्यप्रवेशात्, अत एव
विषयितासम्बन्धेनान्यूनवृत्तित्वमपि न, नापि विषयितासम्बन्धेनान-
तिरिक्तवृत्तित्वं माणिक्यमयत्वाभाववत्पर्व्वतादिरूपाश्रयासिद्ध्यादेः
केवलपर्व्वताद्यनतिरिक्ततया पर्व्वत इत्यादिकेवलपर्व्वतादिविषयक-
निश्चयेऽपि विषयितासम्बन्धेन तत्सत्त्वादसम्भवापत्तेरिति निरस्तं।
माणिक्यमयः पर्व्वतो वह्निमानित्यादौ पर्व्वतत्वविशिष्टपर्व्वतनि-
रूपितस्य माणिक्यमयत्वाभाववान् पर्व्वत इति निश्चयनिष्ठस्य
माणिक्यमयत्वाभाववत्पर्व्वतत्वविशिष्टनिरूपितविषयित्वस्य परा-
मर्शप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तितया केवलपर्व्वतत्वविशिष्टपर्व्वतादा-
वतिव्याप्तेर्वारणाय सामान्यपदं, यन्निरूपितविषयितासामान्यमि-
त्युक्तौ माणिक्यमयत्वाभाववत्पर्व्वतादावसम्भवः पर्व्वत इतिनिश्चय-
निष्ठपर्व्वतनिरूपितविषयित्वस्यापि माणिक्यमयत्वाभाववत्पर्व्वत-
निरूपितत्वेन सामान्यान्तर्गतत्वात् तस्य च प्रतिबन्धकतानवच्छेद-
कत्वादतो यादृशविशिष्टनिरूपितेति, पर्व्वत इतिनिश्चयनिष्ठपर्व्व-
तविषयित्वञ्च न माणिक्यमयत्वाभाववत्पर्व्वतत्वविशिष्टपर्व्वतनिरू-
पितं विशिष्टसत्तानिरूपिताधारत्ववद्विशिष्टपर्व्वतनिरूपितविषयि-
त्वस्य विलक्षणस्य माणिक्यमयत्वाभाववान् पर्व्वत इतिज्ञान एव

सत्त्वात्, पर्व्वतो माणिक्यमयो न वेति संशयनिष्ठस्य तादृश-विषयित्वस्य सामान्यान्तर्गतस्य प्रतिबन्धकतातिरिक्तवृत्तित्वात् असम्भववारणाय निश्चयनिष्ठमिति, निश्चयस्याग्रहीताप्रामाण्यकत्वेन निवेशनीयः नातस्तद्दोषतादवस्थ्यं।

न चाच विशिष्टनिरूपितविषयितासामान्यनिवेशे प्रतिबन्धकतायाः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वमेव निवेश्यतां किमनतिरिक्तवृत्तित्वनिवेशेनेति[१] वाच्यं। माणिक्यमयत्वाभाववान् पर्व्वतोरूपवान् इति निश्चयनिष्ठस्य रूपप्रकारित्वावच्छिन्नमाणिक्यमयत्वाभाववत्-पर्व्वतत्वविशिष्टपर्व्वतनिरूपितविशेष्यकत्वस्य माणिक्यमयत्वाभावप्रकारित्वावच्छिन्नकेवलपर्व्वतत्वविशिष्टविशेष्यकत्वातिरिक्तस्य तादृशविषयितासामान्यान्तर्गतस्य स्वरूपसम्बन्धरूपतादृशपरामर्शविरोधितावच्छेदकत्वविरहादसम्भवापत्तेः। न च तथापि साधारणे साध्यासमानाधिकरणहेत्वादिरूपविरोधे साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वाभाववद्धेतुरूपे अनुपसंहारित्वे चातिव्याप्तिर्दुर्वारेति वाच्यं। साधारणत्व-विरुद्धत्वानुपसंहारित्वादिविषयकत्वेन निश्चयस्य साधारणत्व-विरुद्धत्वानुपसंहारित्वानिरूपितत्वेन यादृशविशिष्टनिरूपितविषयित्वस्य वा विशेषणात्। न चैवं वह्न्यव्यभिचारिमेयत्ववान् पर्व्वतो वह्निमान् मेयत्वादित्यादौ वह्निव्यभिचारिमेयत्वरूपाश्रयासिद्धेः साधारण्यरूपत्वादव्याप्तिः एवं वह्निसमानाधिकरणह्रदत्ववान् पर्व्वतो वह्निमान् ह्रदत्वादित्यादौ वह्न्यसमानाधिकरणह्रदत्वरूपाश्रयासिद्धे-

---

(१) किमनतिरिक्तवृत्तित्वपर्य्यन्तेनेति ग०।

विरोधित्वरूपत्वादव्याप्तिः वह्न्यभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिह्रदत्व-वान् पर्व्वतो वह्निमान् ह्रदत्वादित्यादौ वह्न्यभावव्यापकीभूताभाव-प्रतियोगित्वाभाववद्ह्रदत्वादिरूपाश्रयासिद्धेः. अनुपसंहारित्वरूपत्वा-दव्याप्तिरिति वाच्यं। साध्य-साधन-पक्षभेदेनासिद्धिलक्षणस्य विभि-न्नतया वह्न्यव्यभिचारिमेयत्ववानित्यादौ आश्रयासिद्ध्यात्मकसाधा-रण्याद्यविषयकत्वादिविशेषणस्य लक्षणाघटकत्वात् शब्दानुगमस्या-किञ्चित्करत्वात्। अत एव माणिक्यमयः पर्व्वतो वह्निमान् धूमा-दित्यादौ साधारण्याद्यप्रसिद्धावपि न क्षतिः तत्र तदविषयकत्व-विशेषणस्यानुपादेयत्वात्। परामर्शे च व्यतिरेकव्याप्तेरप्युपादानाद्व्य-तिरेकव्याप्तिविशिष्टहेत्वभाववत्पक्षरूपायां व्याप्यत्वासिद्धौ नाव्याप्तिः। ननु तथापि पर्व्वतान्यः पर्व्वतोदहनान्यदहनवान् धूमान्यधूमात् इत्यादौ पर्व्वतान्यत्वाभाववत्पर्व्वतादिरूपाश्रयासिद्ध्यादावव्याप्तिः तत्रा-नाहार्य्यपरामर्शाप्रसिद्ध्या तत्प्रतिबन्धकत्वाप्रसिद्धेः। न च तत्तदि-च्छानामुत्तेजकत्वनये आहार्य्यज्ञानस्यापि प्रतिबध्यतया आहार्य्य-परामर्शविरोधितामादायैव तत्र लक्षणसम्भव इति वाच्यं। पर्व्वता-न्यत्वाभाववान् पर्व्वत इत्यादिबाधनिश्चयविरहदशायामपीच्छाविरहे पर्व्वतान्यः पर्व्वत इत्यादिप्रत्यक्षोत्पादवारणाय तादृशप्रत्यक्षं प्रती-च्छाया हेतुत्वावश्यकत्वे तत्र तादृशबाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वे मानाभावात्। न च यादृशविशिष्टनिरूपितविषयिताशाल्यघटही-ताप्रामाण्यकनिश्चयाव्यवहितोत्तरवर्त्त्यनाहार्य्यज्ञानसामान्यं न प्रकृत-परामर्शात्मकं तादृशविशिष्टमसिद्धिरिति विवक्षितं पर्व्वतान्यः पर्व्वत-इत्यादावाहार्य्यरूप एव परामर्शः प्रसिद्धः परामर्शप्रतिबन्धकत्वस्य

अतएव "ये व्याप्तिविरह-पक्षधर्म्मताविरहरूपास्ते-ऽसिद्धिभेदमध्यमध्यासते तदन्ये च यथायथं व्यभिचारादयः" इति सिद्धान्तप्रवादोऽपि। न चैवं साक्षात्-प्रतिबन्धकत्वेन बाध-प्रतिरोधयोर्व्याप्तिविरहलिङ्गत्वेन सव्यभिचार-विरुद्धयोरपि सङ्ग्रहे विभागव्याघातः, स्वतन्त्राभिप्रायस्य निषेद्धुमशक्यत्वात् अन्यथा शास्त्रे परिभाषोच्छेदापत्तेः सव्यभिचारादेरप्येवंरूपसत्त्वेऽप्यु-पजीव्यत्वेन पृथक्त्वम् उपधेयसङ्करेऽप्युपाधेरसङ्करात्।

---

लक्षणेऽप्रवेशात् तस्याप्रतिबध्यत्वेऽपि न क्षतिरिति वाच्यं। वस्तुमात्र-विषयकनिश्चयाव्यवहितोत्तरवर्त्यनाहार्य्यज्ञानसामान्यस्यैव तादृशपरा-मर्शानात्मकतया वस्तुमात्रस्यैव तत्राभिसिद्धित्वापत्तेरिति चेत्, न, पर्व्वतान्यः पर्व्वत इत्यादेरपार्थकतया[1] तत्र पर्व्वतान्यत्वाभाववत्पर्व्व-तादेराश्रयासिद्धित्वानभ्युपगमादित्यास्तां विस्तरः।

'अत एवेति यत एव एकोविशिष्टाभावो नासिद्धिः किन्तु नानारूपेत्यर्थः, अन्यथा ये इत्यादौ बहुवचनमसङ्गतं स्यादिति भावः। 'लिङ्गत्वेन' व्याप्यत्वेन, 'सङ्ग्रहे' सङ्ग्रहसम्भवे, 'विभागव्याघातः' विभागस्य पञ्चविधत्वविरोधः, 'परिभाषेति, एवं कथं न कृतमिति सर्व्वत्रानुयोगसम्भवादिति भावः। 'एवंरूपसत्त्वेऽपि' उक्तरूपासिद्धि-त्वसत्त्वेऽपि, 'उपजीव्यत्वेनेति, ज्ञानकृतेनेति भावः। हेत्वन्तरमाह,

---

(१) अपार्थकत्वं यादृशबोधत्वावच्छेदेन आहार्य्यत्वं तादृशबोधार्थप्रयुक्त-वाक्यत्वं।

नन्वाश्रयाप्रसिद्धा कथमाश्रयासिद्धिरुद्भाव्या। न च ग्रशीयतया गवि शृङ्गनिषेधवत् व्योमकमलमिति वाच्यं। शशशृङ्गनिषेधो न गवीत्युक्तत्वादिति चेत्,

---

'उपधेयेति, 'असङ्करात्' ज्ञानासङ्करात्, यद्वा ननु उपजीव्यत्वमेव कथं विषयाभेदादित्यत आह, 'उपधेयेति, 'असङ्करात्' भेदात्। पक्षाप्रसिद्धापि आश्रयासिद्धिः यथा व्योमकमलं सुगन्धि कमलत्वादित्यादिभ्रमेणाशङ्कते, 'नन्विति, 'कथमिति, पक्षोऽसिद्ध इत्यत्र सिद्धासिद्धिव्याघातादिति भावः। 'व्योमकमलमिति, निषेध्यमिति शेषः, व्योमीयतया कमलं नास्तीत्युद्भाव्यमित्यर्थः। 'शशशृङ्गेति शशीयतया शृङ्गनिषेधोनास्तीत्युक्तत्वादित्यर्थः। आश्रयासिद्धेर्नोक्तमुदाहरणमि[illegible] परिहरति, 'व्योमेति व्योमकमलं सुरभीत्यर्थः, 'निश्चितानन्वयत्वेन' व्योमकमलस्य निश्चितान्वयकत्वाभावेन व्योमकमलस्याप्रसिद्धत्वेनेति यावत्, 'अपार्थकं' अनुमित्यजनकं, न त्वाश्रयासिद्धिनिबन्धनमिति भावः। इदन्त्वसतोव्योमकमलस्य पक्षतातात्पर्य्यदशायामुक्तं, यदा तु गगनीयत्वेन प्रसिद्धकमलमेव पक्षस्तदा तु पक्षविशेषणाभावरूपाश्रयासिद्धिरेवेति बोध्यं। नन्वेवं आश्रयासिद्धेराश्रयासिद्धित्वाभावे का तह्र्याश्रयासिद्धिरित्यत आह, 'आश्रयेति, आश्रये पक्षे विशेषणस्य पक्षतावच्छेदकस्यासिद्धिरभावः आ[illegible]यासिद्धिरित्यर्थः, धान्येन धनवानितिवदभेदे तृतीया, उदाहरणञ्च माणिक्यमयः पर्व्वतोवह्निमान् धूमादित्यादौ माणिक्यमय-

व्योमकमलमिति निश्चितानन्वयत्वेनापार्थकम् आश्रयविशेषणासिद्धा चाश्रयासिद्धिरसङ्कीर्णा।

त्वादिविशेषणस्य पर्व्वते अभावादिति भावः। 'असङ्कीर्णेति सा च हेत्वाभासान्तरेणासङ्कीर्णापि माणिक्यमयः पर्व्वतोवह्निमान् धूमादित्यादावित्यर्थः, एतत्तु सम्भवप्राचुर्य्येणोक्तं, वस्तुतो हेत्वाभासान्तरसङ्करेऽपि न दोष इत्युक्तमेव। इदन्त्ववधातव्यं न केवलं पक्षे पक्षतावच्छेदकाभावः[१] आश्रयासिद्धिः किन्तु पक्षे पक्षतावच्छेदकाभावव्याप्यः, पक्षे पक्षतावच्छेदकवदन्योन्याभावः, पक्षे तादृशान्योन्याभावव्याप्यः, पक्षतावच्छेदके पक्षतावच्छेदकतावच्छेदकाभावः, पक्षतावच्छेदके पक्षतावच्छेदकतावच्छेदकाभावव्याप्यः, पक्षतावच्छेदके पक्षतावच्छेदकतावच्छेदकवदन्योन्याभावः, पक्षतावच्छेदके तादृशान्योन्याभावव्याप्यः, पक्षतावच्छेदकाभाववान् पक्षः, तद्व्याप्यवान् पक्षः, पक्षतावच्छेदकवदन्योन्याभाववान् पक्षः, तद्व्याप्यवान् पक्षः, पक्षतावच्छेदकतावच्छेदकाभाववत्पक्षतावच्छेदकं, तद्व्याप्यवत्पक्षतावच्छेदकं, पक्षतावच्छेदकतावच्छेदकवदन्योन्याभाववत्पक्षतावच्छेदकं, तद्व्याप्यवत्पक्षतावच्छेदकमित्यादिरप्याश्रयासिद्धिः। समानप्रकारकज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्ववादिनां नव्यानां नये तु पक्षतावच्छेदकाभाववान् पक्षः, तद्व्याप्यवान् पक्षः, पक्षतावच्छेदकवदन्योन्याभाववान् पक्षः, तद्व्याप्यवान् पक्षः इत्यादिरेवाश्रयासिद्धिः, न तु पक्षे पक्षतावच्छेदकाभावः तद्व्याप्यादिरपि[२] तज्ज्ञानस्यानुमिति-तत्कारणपरामर्शाप्रतिबन्धक-

(१) पक्षवृत्तित्वविशिष्टपक्षतावच्छेदकाभाव इत्यर्थः।

(२) पक्षतावच्छेदके पक्षतावच्छेदकतावच्छेदकाभावतद्व्याप्यादिरपीति क०।

तथा हेत्वाभासत्वस्यैव तत्राभावात् वक्ष्यमाणानुगताश्रयासिद्धिलक्षणस्य तत्रासत्त्वाच्च। सर्व्वसाधारणाश्रयासिद्ध्यनुगतलक्षणन्तु पक्षतावच्छेदकप्रकारकपक्षग्रहविरोधितावच्छेदकत्वं, तादृशग्रहविरोधितावच्छेदकत्वञ्चाप्यचागृहीताप्रामाण्यकनिश्चयनिष्ठं यादृशविशिष्टनिरूपितविषयित्वसामान्यं तादृशपक्षग्रहप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तादृशविशिष्टत्वं तेन नासिद्धिसामान्यलक्षणवदवच्छेदकत्वविकल्पावकाशः, प्रत्येकदलव्यावृत्तिरपि तत्रोक्तदिशाऽवसेया। पक्षतावच्छेदकप्रकारकग्रहपदेन पक्षतावच्छेदकवान् पक्ष इत्याकारकातिरिक्ताविषयकग्रहो ग्राह्यः तेन स्वरूपासिद्धि-व्याप्यत्वासिद्ध्यादेरपि परामर्शात्मकपक्षतावच्छेदकप्रकारकग्रहविरोधितावच्छेदकत्वेऽपि नातिव्याप्तिः पक्षतावच्छेदकांशे वा प्रतिबन्धकत्वं ग्राह्यं। एवं स्वरूपासिद्धिरपि नानाविधा साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनाभाववत्पक्षः, तादृशसाधनाभावव्याप्यवत्पक्षः, साधनवदन्योन्याभाववान् पक्षः, तादृशान्योन्याभावव्याप्यवान् पक्षः, पक्षे साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनाभावः, पक्षे तादृशसाधनाभावव्याप्यः, पक्षे साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनवदन्योन्याभावः, पक्षे तादृशान्योन्याभावव्याप्यश्चेति क्रमेणाष्टविधत्वात्। समानप्रकारकज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्ववादिनां नव्यानां नये तु साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनाभाववत्पक्ष इत्यादिरूपा चतुर्विधैव स्वरूपासिद्धिः न तु पक्षे साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनाभावादिरूपापि तज्ज्ञानस्यानुमिति-तत्कारणपरामर्शाप्रतिबन्धकतया हेत्वाभासत्वस्यैव तत्राभावात् वक्ष्यमाणानुगतस्वरूपासिद्धिलक्षणस्य तत्रासत्त्वाच्च। पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविशेष्यक-साधनतावच्छेदकाव-

च्छिन्नसाधनप्रकारकग्रहविरोधितावच्छेदकत्वं स्वरूपासिद्धित्वं, भवति च ह्रदोवह्निमान् धूमादित्यादौ धूमाभाववद्ह्रदादिरूपा स्वरूपासिद्धिः धूमवान् ह्रद इत्यादिपक्षविशेष्यकग्रहविरोधितावच्छेदिकेति लक्षणसमन्वयः, ह्रदोवह्निमान् धूमादित्यादौ द्रव्यसामान्याभाववद्-ह्रद-धूमसामान्याभाववद्द्रव्यादिष्वतिव्याप्तिवारणाय पक्षतावच्छेदक-साधनतावच्छेदकयोः प्रवेशः। न चैवं ह्रदोवह्निमान् धूमादित्यादौ ह्रदवृत्तित्वाभाववद्धूमादिरूपस्वरूपासिद्धौ वह्निमानाकाशादित्यादौ वृत्तित्वाभाववदाकाशादिरूपस्वरूपासिद्धौ चाव्याप्तिः नव्यनये शाब्दाभावावगाहिनिश्चयस्यैव प्रतिबन्धकतया तज्ज्ञानस्य पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यक-साधनतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारकग्रहाविरोधित्वादिति वाच्यं। नव्यमते तस्य स्वरूपासिद्धित्वविरहात्। न चैवं तस्याधिक्यापत्तिरिति वाच्यं। ह्रदो मह्निमान् धूमादित्यादौ ह्रदवृत्तित्वाभाववद्धूमादेर्हेत्वाभासत्वस्यैवाभावात् वह्निमानाकाशादित्यादौ वृत्तिमत्त्वाभाववदाकाशादेश्च साध्यसामानाधिकरण्याभाववद्धेत्वादेरिवासाधारणत्वे विरोधे वान्तर्भावात्। पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यक-साधनतावच्छेदकावच्छिन्नग्रहविरोधितावच्छेदकत्वञ्चापि अगृहीताप्रामाण्यकनिश्चयनिष्ठयादृशविशिष्टनिरूपितविषयितासामान्यं तादृशग्रहविरोधितानतिरिक्तवृत्ति तादृशविशिष्टत्वं, तेन सासिद्धिसामान्यलक्षणवदवच्छेदकत्वविकल्पावकाशः, प्रत्येकदलव्यावृत्तिरपि पूर्व्वोक्तदिशाऽवसेया, तादृशग्रहविरोधित्वञ्च तादृशग्रहत्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरूपितविरोधित्वं तेन पर्व्वतो वह्निमान् ह्रदत्वादित्यादौ वह्न्यभाववद्वृत्तिह्रदत्वादिरूपसाधारण्य-वह्निमदवृत्ति-

ह्रदत्वादिरूपविरोध-वह्न्यभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिह्रदत्वादि-रूपानुपसंहारित्व-वह्न्यव्यभिचरितसम्बन्धित्वाभाववद्ह्रदादिरूपव्याप्यत्वासिद्धिषु परामर्शात्मकतादृशग्रहविरोधितामादाय नातिव्याप्तिः। न वा आश्रयासिद्धि-साधनविशेषणासिद्ध्योरतिव्याप्तिः तेषां ज्ञानस्य तादृशग्रहत्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकत्वाभावात्, अत-एव ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्न्यभाववद्वृत्तिधूमाभाववद्-ह्रद-वह्निसमानाधिकरणधूमाभाववद्ह्रद-वह्न्यभावव्यापकीभूताभा-वप्रतियोगिधूमाभाववद्ह्रद-वह्न्यव्यभिचरितसम्बन्धिधूमाभाववद्ह्र-दादिषु व्याप्यत्वासिद्ध्यन्तर्गतेषु नातिव्याप्तिः तेषां परामर्शात्मकतादृ-शग्रहविरोधितावच्छेदकत्वेऽपि तादृशग्रहत्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरू-पितप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वविरहात्, स्वरूपासिद्धेरसङ्कीर्णोदाहरणञ्च पर्व्वतो वह्निमान् महानसत्वादित्यादिकमेव, आश्रयासिद्धि-स्वरू-पासिद्धिभिन्नासिद्धिस्तु व्याप्यत्वासिद्धिः, यादृशविशिष्टमाश्रयासि-द्धिर्यादृशविशिष्टञ्च स्वरूपासिद्धिस्तदुभयविशिष्टानिरूपितं साधा-रणत्व-विरुद्धत्वानुपसंहारित्वानिरूपितञ्च निश्चयनिष्ठं यादृशविशिष्ट-निरूपितविषयितासामान्यं परामर्शविरोधितानतिरिक्तवृत्ति तादृश-विशिष्टं व्याप्यत्वासिद्धिरिति तु निष्कर्षः, तेन ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्निव्याप्यधूमाभाववद्ह्रदादिरूपव्याप्यत्वासिद्धेर्व्विशि-ष्टस्यानतिरिक्ततया धूमाभाववद्ह्रदाद्यात्मकस्वरूपासिद्धिभिन्नत्वा-भावेऽपि नाव्याप्तिः, न वा काञ्चनमयह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्निव्याप्यधूमाभाववद्ह्रदादिरूपव्याप्यत्वासिद्धेर्व्विशिष्टस्यानतिरिक्त-तया काञ्चनमयत्वाभाववद्ह्रदादिरूपाश्रयासिद्धिभिन्नत्वाभावेऽप्य-

व्याप्तिः, पक्षादिभेदेन व्याप्यत्वासिद्धेर्भेदात् पर्व्वतो धूमवान् वह्ने-रित्यादौ यत्राश्रयासिद्ध्यादिकमप्रसिद्धं तत्र तदनिरूपितत्वविशेषणं नोपादेयं शब्दानुगमस्याकिञ्चित्करत्वात् तेन तत्रत्यव्याप्यत्वासिद्धौ नाव्याप्तिः। एतेन वह्निव्याप्यह्रदत्ववान् पर्व्वतो वह्निमान् ह्रद-त्वादित्यादौ वह्निव्याप्यत्वाभाववद्ध्रदत्वादिरूपव्याप्यत्वासिद्धेराश्र-यासिद्धिरूपत्वादव्याप्तिः, ह्रदत्वाभाववत्पर्व्वतरूपाश्रयासिद्ध्यन्तरेऽति-व्याप्तिवारणाय तत्राश्रयासिद्धिभिन्नत्वस्यावश्यं प्रवेशनीयत्वात्, एवं काञ्चनमयवह्निसमवायी पर्व्वतः काञ्चनमयवह्निमान् धूमादित्यादौ काञ्चनमयत्वाभाववद्वह्निरूपसाध्यविशेषणासिद्ध्यात्मकव्याप्यत्वासिद्धेरा-श्रयासिद्धिभिन्नत्वाभावादव्याप्तिः वह्निसमवायित्वाभाववत्पर्व्वतरूपा-श्रयासिद्ध्यन्तरेऽतिव्याप्तिवारणाय तत्राप्याश्रयासिद्धिभिन्नत्वस्यावश्यं प्रवेशनीयत्वात्, एवं वह्निः काञ्चनमयवह्निमान् काञ्चनमयत्वादि-त्यादौ काञ्चनमयत्वाभाववद्वह्न्यादिरूपसाध्यविशेषणासिद्ध्यात्मकव्या-प्यत्वासिद्धौ स्वरूपासिद्धिभिन्नत्वाभावादव्याप्तिः। न च तद्द्वयं न व्याप्यत्वासिद्धिः किन्त्वाश्रयासिद्धिः स्वरूपासिद्धिरेव इति वाच्यं। विनिगमकाभावादत्राश्रयासिद्ध्यादिभिन्नत्ववदाश्रयासिद्ध्यादिलक्षणे-ऽपि व्याप्यत्वासिद्धिभिन्नत्वविशेषणस्य वक्तुमशक्यत्वात् कथकसम्प्रदा-यव्यवहारस्य च सन्दिग्धत्वादिति दूषणमपि प्रत्युक्तं। आश्रया-सिद्ध्यादीनां प्रातिस्विकरूपेण भेदस्यैव लक्षणघटकतया वह्निव्याप्य-ह्रदत्ववान् पर्व्वतो वह्निमान् ह्रदत्वादित्यादौ ह्रदत्वाभाववत्पर्व्व-तादिरूपाश्रयासिद्ध्यन्तरभेदस्यैव तत्र लक्षणघटकतया उक्तरूपाश्र-यासिद्ध्यात्मकव्याप्यत्वासिद्धावव्याप्तिविरहात्। न चैवं तत्रोभयरूप-

त्वापत्तिरिति वाच्यं। विनिगमकाभावेनाश्रयासिद्धि-व्याप्यत्वासिद्ध्यु-भयरूपत्वस्य तत्रेष्टत्वात्। सा च व्याप्यत्वासिद्धिस्त्रिविधा साध्यविशेषणासिद्धिः साधनविशेषणासिद्धिः व्याप्तिविरहरूपा च, साध्यतावच्छेदकप्रकारकसाध्यग्रहविरोधितावच्छेदकरूपं साध्यविशेषणासिद्धिः, विरोधितावच्छेदकत्वादिकमाश्रयासिद्धिलक्षणवदवसेयं, तादृशं रूपञ्च साध्यतावच्छेदकाभाववत्साध्यं, तादृशाभावव्याप्यवत्साध्यं, साध्यतावच्छेदकवदन्योन्याभाववत्साध्यं, तादृशान्योन्याभावव्याप्यवत्साध्यं, साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकाभाववत्साध्यतावच्छेदकं, तादृशाभावव्याप्यवत्साध्यतावच्छेदकं, साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकवदन्योन्याभाववत्साध्यतावच्छेदकं, तादृशान्योन्याभावव्याप्यवत्साध्यतावच्छेदकमित्यादि, भिन्नप्रकारकज्ञानस्यापि प्रतिबन्धकत्वनये साध्ये साध्यतावच्छेदकाभावः, साध्ये तादृशाभावव्याप्यः, साध्ये साध्यतावच्छेदकवदन्योन्याभावः, साध्ये तादृशान्योन्याभावव्याप्यः, साध्यतावच्छेदके साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकाभावः, साध्यतावच्छेदके तादृशाभावव्याप्यः, साध्यतावच्छेदके साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकवदन्योन्याभावः, साध्यतावच्छेदके तादृशान्योन्याभावव्याप्य इत्यादिकं बोध्यं, एतदसङ्कीर्णोदाहरणञ्च पर्व्वतः काञ्चनमयवह्निमान् धूमादित्यादि। साधनतावच्छेदकप्रकारकसाधनग्रहविरोधितावच्छेदकरूपं साधनविशेषणासिद्धिः, विरोधितावच्छेदकत्वादिकमाश्रयासिद्धिलक्षणवदवसेयं, तादृशञ्च रूपं साधनतावच्छेदकाभाववत्साधनादिकमेवेत्युक्तप्रायं, एतदसङ्कीर्णोदाहरणञ्च पर्व्वतो वह्निमान् काञ्चनमयधूमादित्यादि। साध्यविशेषणासिद्धि-साधनविशेषणासिद्धि-स्वरूपासिद्ध्याश्रयासिद्धि-

**व्याप्तिविरहस्तु व्यर्थविशेषणादौ, तदुक्तं, एकामसिद्धिं परिहरतो द्वितीयापत्तेरिति।**

---

भिन्नासिद्धिर्व्याप्तिविरहरूपासिद्धिः, निष्कर्षस्तु व्याप्यत्वासिद्धिसामान्यलक्षणवदवसेयः, तत्स्वरूपञ्च साध्याव्यभिचरितसम्बन्धित्वरूपान्वयव्याप्यभाववत्साधनं, तादृशव्याप्यभावव्याप्यवत्साधनं, तादृशव्याप्तिमदन्योन्याभाववत्साधनं, तादृशव्याप्तिमदन्योन्याभावव्याप्यवत्साधनं, तादृशव्याप्तिमत्साधनाभाववत्पक्षः, तादृशव्याप्तिमत्साधनाभावव्याप्यवत्पक्षः, तादृशव्याप्तिमत्साधनवदन्योन्याभाववत्पक्षः, तादृशव्याप्तिमत्साधनवदन्योन्याभावव्याप्यवत्पक्षः, एवं साध्याभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपव्यतिरेकव्याप्तिमत्साधनाभाववत्पक्षादि, साध्याभाववदवृत्तिसाधनाभाववत्पक्षादि, साध्यसमानाधिकरणसाधनाभाववत्पक्षादि, भिन्नप्रकारकज्ञानस्यापि प्रतिबन्धकत्वनये साधने तादृशान्वयव्याप्यभावादिरपि बोध्यः। ननु साध्यविशेषणासिद्धि-साधनविशेषणासिद्धिरूपव्याप्यत्वासिद्धेरसङ्कीर्णोदाहरणसत्त्वेऽपि व्याप्तिविरहरूपव्याप्यत्वासिद्धेरसङ्कीर्णोदाहरणं दुर्लभमित्यतआह. 'व्याप्तिविरहस्त्विति. 'व्यर्थविशेषणादाविति, 'असङ्कीर्ण इति लिङ्गविपरिणामेनानुषज्यते, आदिपदाद्व्यर्थविशेष्यत्वपरिग्रहः, तदुदाहरणञ्च द्रव्यं गुण कर्म्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादि तत्र हेतुतावच्छेदकविशेष्यीभूतस्य सत्तात्वस्य व्यर्थत्वात् न तु पर्व्वतो वह्निमान् धूमप्रागभावादित्यादि भिन्नधर्म्मिकत्वात्। व्यर्थविशेषणस्य व्याप्यत्वासिद्धित्वे आचार्य्यसंवादमाह, 'तदुक्तमिति क्षितिरकर्तृका शरीराजन्यत्वादिति ईश्वरज्ञा-

उपाधिस्तु न व्याप्तिविरहः वह्निव्यापकधूमाव्यापक-धर्म्मस्याप्रसिद्ध्या धूमे तद्विरहासिद्धेः, किन्तु यावत्स्व-

नानुमाने सत्प्रतिपक्षानुमान इति शेषः। 'एकामसिद्धिं' स्वरूपा-सिद्धिरूपां असिद्धिं, 'परिहरतः' शरीरविशेषणेन परिहरतः, 'द्वितीयापत्तेः' शरीरविशेषणस्य व्यर्थतया व्याप्यत्वासिद्ध्यापत्तेः, एतच्च प्राचीनमतानुसारेण। वस्तुतो व्यर्थविशेषणत्वेऽपि स्वव्यापकसाध्य-सामानाधिकरण्यरूपा साध्याव्यभिचरितसम्बन्धित्वरूपा वा व्याप्ति-र्दुर्व्वारा। न चैवं वह्निमान् नीलधूमादित्यादिप्रयोगे कथं निग्रह-इति वाच्यं। उद्भावितदृष्टान्तस्य साध्यादिवैकल्यवदधिकप्रयोगस्यापि निग्रहस्थानत्वात् निग्रहस्थानविभाजकसूत्रस्थचकारेणानुक्तसमुच्चय-परेण उद्भावितदृष्टान्तस्य साध्यवैकल्यादिवत्तस्यापि समुच्चयात्। न चैवं एकामसिद्धिमित्याचार्य्याभिधानविरोध इति वाच्यं। व्यर्थविशे-षणतया व्याप्तिविरहस्याभ्युपगमेऽपि तदभिधानस्याशुद्धत्वात् शरी-रजन्यत्वाभावस्याखण्डतया व्यर्थविशेषणत्वस्यैव तत्र विरहात्। न चैवं व्याप्तिविरहस्यासङ्कीर्णोदाहरणाभाव इति वाच्यं। तद्विरहेऽपि न क्षतिरित्यसकृदावेदितत्वादिति पुनर्नव्यमतानुयायिनो राद्धान्त-सरणिः।

केचित्तु उपाध्यभावस्य व्याप्तितया तदभावत्वेन उपाधिरपि व्याप्यत्वासिद्धिरिति वदन्ति प्रसङ्गात्तन्मतं निराकरोति, 'उपाधि-स्त्विति' उपाध्यभावस्य व्याप्तित्वे तथा स्यान्न चैतदित्याह, 'वह्नीति'। नन्वेवं अनौपाधिकत्वं व्याप्तिरित्युच्छिद्येतेत्यत आह, 'किन्त्विति'।

व्यभिचारिव्यभिचारिसाध्यसामानाधिकरण्यमनौपाधिकत्वं[1] व्याप्तिः साध्यव्यापक-साधनाव्यापकश्च धर्म्मान्तरं न तु तद्विरहः अपि तु तन्नियतः। न चैवमुपजीव्यत्वेन उपाधिर्हेत्वाभासान्तरम्, उपजीव्यत्वेऽपि स्वतोऽदूषकत्वेन तदर्थं परमुखवीक्षकत्वात्, न हि साध्यव्यापकाव्याप्यत्वमनुमितिविरोधि, किन्तु व्यभिचारोन्नयनेन स्वव्यतिरेकेण सत्प्रतिपक्षतया वा, तदाह उपाधाववश्यं व्यभिचार उपाधेरेव व्यभिचारशङ्केति, अप्रयोजकान्यथासिद्धौ च सोपाधी नासिद्धौ।

---

नन्वेवं तद्विरहरूपत्वेनोपाधिर्व्याप्यत्वासिद्धिः स्यादत आह, 'साध्येति, 'उपजीव्यत्वेन' व्याप्तिज्ञानाभावोपजीव्यत्वेन, 'हेत्वाभासान्तरं' स्यादिति शेषः। 'तदर्थं' व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धार्थं, 'अनुमितिविरोधि' साक्षादनुमिति-तत्कारणयोर्विरोधि, 'सत्प्रतिपक्षतया' साक्षात्साध्याभावोज्ञापकतया। ननु साध्यव्यापकाव्याप्यत्वस्य स्वतोऽदूषकत्वे साध्यव्यापकाभाववद्वृत्तित्वरूपमप्रयोजकत्वं साध्यव्यापकविरहाव्यापकाभावकत्वरूपमन्यथासिद्धत्वञ्च कुतोऽसिद्धिः तयोरेव साध्यव्यापकाव्याप्यत्वरूपत्वादित्यत आह, 'अप्रयोजकान्यथासिद्धौ चेति प्रथमाद्विवचनं,

---

(१) स्वं हेतुः व्यभिचारि येषां ते स्वव्यभिचारिणः, यावन्तः स्वव्यभिचारिणः यावत्स्वव्यभिचारिणः, तेषां व्यभिचारि यावत्स्वव्यभिचारिव्यभिचारि, तादृशं यत्साध्यं तत्सामानाधिकरण्यमित्यर्थः, हेतौ यावतां व्यभिचारित्वं तावतां व्यभिचारि यत्साध्यं तत्सामानाधिकरण्यं व्याप्तिरिति फलितार्थः।

प्रतिकूलतर्कानुकूलतर्काभावावुपजीव्यत्वे सति स्वतोदूषकावपि न हेत्वाभासौ स्वरूपसतोरेव प्रतिबन्धकत्वादित्युक्तम्।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे असिद्धिसिद्धान्तः।

---

धर्मप्रधानस्य निर्देशः, अप्रयोजकत्वमन्यथासिद्धत्वमित्यर्थः। 'सोपाधी' सोपाधी अपि उपाधिसमानाधिकरणे अपीति यावत्, 'नासिद्धौ' नासिद्धौ, सर्व्वत्र प्रथमाद्विवचनं।

केचित्तु प्रतिकूलतर्कोऽनुकूलतर्काभावस्यासिद्ध्यन्तर्गत इत्याहुः तन्मतं निराकरोति, 'प्रतिकूलेति, 'उपजीव्यत्वे सतीति अनुमित्यनुत्पादप्रयोजकत्वे सतीत्यर्थः, स्वतोदूषकावपीति व्याप्तिग्रहकारणाभावावपीत्यर्थः, 'स्वरूपसतोरेव' ज्ञायमानत्वानवच्छिन्नयोरेव, 'प्रतिबन्धकत्वादिति व्याप्तिज्ञानकारणीभूताभावप्रतियोगित्वादित्यर्थः, ज्ञायमानत्वावच्छिन्नानुमिति-तत्कारणज्ञानान्यतरकारणीभूताभावप्रतियोगित्वाश्रयस्यैव च हेत्वाभासत्वादिति भावः।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्येऽसिद्धिसिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम्॥

## अथ बाधपूर्व्वपक्षः ।

बाधो न साध्याभाववत्पक्षकत्वं पक्षवृत्त्यभावप्रतियोगिसाध्यकत्वं वा, पक्षे साध्याभावज्ञानमात्रस्य प्रमात्वज्ञानं विना अधिकबलत्वाज्ञानेन बाधाभावादिति वक्ष्यते। अतएव साध्याभाववत्पक्षवृत्तित्वमपि न अ-

---

### अथ बाधपूर्व्वपक्षरहस्यं ।

'बाध इति बाधितत्वमित्यर्थः, 'साध्याभाववत्पक्षकत्वमिति येन केनचित् सम्बन्धेन साध्याभाववत्पक्षसम्बन्धित्वमित्यर्थः, अतो नाग्निमाभेदः। साध्याभाववत्पक्षादिकं यदि बाधः स्यात्तदैव तत्सम्बन्धित्वं बाधितत्वं स्यात्तदेव च न बाध इत्याह, 'पक्ष इति, 'मात्रपदं साकल्यार्थकं सर्व्वेषां पक्षनिष्ठसाध्याभावज्ञानानामित्यर्थः, 'अधिकबलत्वाज्ञानेन' अधिकबलत्वाभावेन अनुमितिप्रतिबन्धकत्वाभावेनेति यावत्, अत्र हेतुः 'प्रमात्वज्ञानं विनेति सर्व्वत्र पक्षे साध्याभावज्ञाननिष्ठप्रमात्वविषयकत्वानावश्यकत्वेनेत्यर्थः, 'बाधाभावादिति तद्विषयस्य साध्याभाववत्पक्षादेर्बाधत्वाभावादित्यर्थः, पक्षे साध्याभावज्ञाननिष्ठप्रमात्वविषयकज्ञानस्यैवानुमितिप्रतिबन्धकतया ज्ञाननिष्ठस्य तद्विषयत्वस्यानुमितिप्रबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वाभावेन हेत्वाभाससामान्यलक्षणस्यैव तत्राभावादित्यभिमानः। 'अत एवेति उक्तरीत्या साध्याभाववत्पक्षस्य बाधत्वाभावादेवेत्यर्थः, 'साध्याभाववदिति हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्याभाववत्पक्षसम्बन्धित्वं न बाधितत्वमित्यर्थः,

सिद्धिसङ्कीर्णबाधाव्याप्तेश्च किन्तु साध्याभाववत्त्वप्रमा-विषयपक्षकत्वं प्रमितसाध्याभाववत्पक्षकत्वं पक्षनिष्ठ-प्रमाविषयत्वप्रकाराभावप्रतियोगिसाध्यकत्वं वेति, वि-वक्षितविवेकेन साध्याभावादिप्रमैव दोषः, सा च

'असिद्धिसङ्कीर्णेति ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादौ स्वरूपासिद्धि-सङ्कीर्णबाधाश्रयेऽव्याप्तेरित्यर्थः,[१] 'साध्यभाववत्त्वप्रमेति विषयतासम्ब-न्धेन साध्याभाववत्पक्षविशेष्यक-साध्याभावप्रकारकज्ञानसम्बन्धित्वमि-त्यर्थः, सर्व्वत्रान्ततो भगवत्तादृशसमूहालम्बनज्ञानविषयतामादायैव लक्षणसमन्वय इति भावः। 'प्रमितेति येन केनापि सम्बन्धेन साध्याभाववद्विशेष्यक-[२]साध्याभावप्रकारकज्ञानविषयसाध्याभाववत्प-क्षसम्बन्धित्वमित्यर्थः, 'विषयत्वप्रकारेति सप्तमीसमासः, तथाच पक्ष-निष्ठप्रमाविषयतायां प्रकारीभूतो योऽभावस्तत्प्रतियोगिसाध्यसम्ब-न्धित्वमित्यर्थः, एतच्चातिरिक्तविषयतावादिनये, स्वमते तु पक्ष-निष्ठप्रमाप्रकारीभूतेत्यादि बोध्यं। 'विवक्षितविवेकेनेति बाधसम्ब-न्धित्वस्यैव बाधितत्वरूपत्वेनेत्यर्थः, 'साध्याभावादिप्रमैवेति साध्याभाव-वत्पक्षविशेष्यक-साध्याभावप्रकारकज्ञानादिरेवेत्यर्थः, 'दोषः' बाधः, 'आदिपदात्प्रमितसाध्याभाववत्पक्ष-पक्षनिष्ठप्रमाप्रकारीभूताभावप्रति-

(१) एतदनन्तरं 'वह्न्यभाववद्ह्रदादौ हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तिम-त्त्वस्य हेतावसत्त्वादव्याप्तिरिति भावः' इत्यधिकः पाठः क०पुस्तके वर्त्तत इति।

(२) साध्याभाववत्पक्षविशेष्यकेति ग०।

प्रमात्वेन ज्ञाता न स्वरूपसती हेत्वाभासत्वात्। प्रमात्वज्ञानं विना अधिकबलत्वाभावेनादोषत्वात् अप्रमायामपि प्रमात्वज्ञानेऽनुमितिप्रतिबन्धाच्च। अथ साध्याभाववति पक्षे हेतोः सत्त्वज्ञाने व्यभिचारः,

---

योगिबाध्ययोः परिग्रहः। 'प्रमात्वेन ज्ञातेति, अनुमितिप्रतिबन्धिकेति शेषः, 'हेत्वाभासत्वादिति हेत्वाभासत्वानुरोधादित्यर्थः। एतदेव विवृणोति, 'प्रमात्वज्ञानं विनेति प्रमात्वप्रकारकतज्ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वेन विनेत्यर्थः, 'अधिकबलत्वाभावेनेति ज्ञाननिष्ठतद्विषयित्वस्यानुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वाभावेनेत्यर्थः, 'अदोषत्वात्' हेतुदोषत्वासम्भवात्। ननु हेत्वाभासत्वानुपपत्तिर्न प्रतिबन्धकतायां मानमित्यस्वरसादाह, 'अप्रमायामपीति, इदमुपलक्षणं सत्यामपि प्रमायां तत्र प्रमात्वनिश्चयं विना अनुमितिप्रतिबन्धानभ्युपगमाच्चेत्यपि बोध्यं। निरुक्तप्रमात्वपक्षे पक्षे साध्याभाववत्त्वग्रहोऽप्यावश्यक इत्यभिप्रायेण 'प्रमितसाध्याभाववत्पक्षो बाध इति द्वितीयलक्षणाभिप्रायेण वा शङ्कते, 'अथेति, 'साध्याभाववति पक्ष इति निरुक्तप्रथमबाधज्ञाने निरुक्तद्वितीयबाधज्ञाने वा पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने साध्याभाववत्त्वस्य हेतौ च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वस्य ज्ञान इत्यर्थः, 'व्यभिचारः' व्यभिचारज्ञानं, हेतौ यद्धर्मावच्छिन्नवृत्तित्वं विषयीक्रियते तद्धर्मावच्छिन्ने साध्याभाववत्त्वविषयकस्यापि समूहालम्बनज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानत्वादित्यभिमानः, तथाच तत एवानुमित्यनुत्पादसम्भवादनुमितिं प्रति पृथग्बाधज्ञानस्य प्रति-

तदज्ञानेऽसिद्धिः, संशययोग्यत्वाभावेन पक्षत्वाभावा-

---

-प्रकत्वे मानाभावः,। एतच्चानुमितिं प्रत्येव साध्याभाववद्वृत्तित्वरूप-व्यभिचारज्ञानं प्रतिबन्धकं न तु तत्कारणीभूतव्यापकसामानाधि-करण्यरूपव्याप्तिज्ञानं प्रति प्राचीननये तादृशव्याप्तिज्ञानस्यैवानुमिति-हेतुत्वादित्यभिप्रेत्य। ननु पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने साध्याभाववत्त्वमेव तत्र विषयो न तु हेतौ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वमपीत्यत-आह, 'तदज्ञान इति हेतौ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वाज्ञान-इत्यर्थः, 'असिद्धिः' परामर्शविरहः, पक्षधर्म्मो हेतुः साध्यव्याप्य इति लिङ्गविशेष्यकपरामर्शस्यानुमितिजनकस्य प्रथमं हेतौ पक्षवृत्तित्वग्रहं विनाऽनुपपत्तेः। न च बाधग्रहोत्तरं हेतौ पक्षवृत्तित्वग्रहः ततस्तृतीयक्षणे परामर्शो न तु बाधग्रह एव हेतौ साध्याभाववत्पक्षवृत्तित्व-ज्ञानमिति वाच्यं। तथापि परामर्शोत्पत्तिक्षण एव बाधग्रहनाशात् तस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावात्। न च हेतौ पक्षवृत्तित्वज्ञाना-नन्तरं बाधग्रहस्ततः परामर्श इति वाच्यं। तथा सति बाधग्रहेऽपि हेतौ पक्षवृत्तित्वभाने बाधकाभावात् व्यभिचारज्ञानेन अन्यथासिद्धे-स्तादवस्थ्यात् इत्यभिमानः। स चायुक्तः, साध्यव्याप्यहेतुमान्पक्ष इति पक्षविशेष्यकपरामर्शस्यानुमितिजनकतया यत्र हेतौ पक्षवृत्तित्वा-विषयकबाधनिश्चयोत्तरं तादृशपरामर्शः तत्रैव बाधज्ञानस्य पृथक्-प्रतिबन्धकतावश्यकत्वात् यत्र हेतौ पक्षवृत्तित्वग्रहोत्तरं शाब्द-स्मृत्या-द्यात्मकं हेतौ पक्षवृत्तित्वाविषयकं बाधज्ञानं ततः पक्षवृत्तिर्हेतुः साध्यव्याप्यइति लिङ्गविशेष्यकः परामर्शः, 'यत्र वोच्छृङ्खलपक्षवृत्तित्व-

दाश्रयासिद्धिश्च। न च पक्षभिन्ने व्यभिचारो दोषः, व्यर्थविशेषणत्वात् सर्व्वोपसंहारप्रवृत्तव्याप्तेः साध्याभाववति साधनमित्यवगमादेव भङ्गात्। अथ सन्दिग्धसाध्यदृष्टान्ते सन्दिग्धानैकान्तिकत्वपक्षत्वं व्यभिचारसंशयादनुमानमात्रोच्छेद इति, पक्षे साध्यसन्देहा-

---

विषयकबाधनिश्चयोत्तरं तादृशोलिङ्गविशेष्यकः परामर्शः, पक्षवृत्तित्वाविषयकबाधनिश्चयोत्तरं स्मरणात्मकः तादृशलिङ्गविशेष्यकः परामर्शो वा तत्रापि बाधज्ञानस्य पृथक्प्रतिबन्धकत्वावश्यकत्वाच्चेति बोध्यं। 'संशययोग्यत्वाभावेनेति पक्षे साध्य-तदभावनिश्चयाभावस्य संशययोग्यतात्वादिति भावः। 'पक्षत्वाभावादाश्रयासिद्धिरिति पक्षत्वाभावरूपाश्रयासिद्धिरित्यर्थः, तथाचासङ्कीर्णत्वत्वाभावाद्बाधज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभाव इति भावः। पूर्व्वोक्तव्यभिचारज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वरूपबाधकमुद्धरति, 'पक्षेति, 'व्यभिचारः' व्यभिचारज्ञानं, 'व्यर्थेति पक्षभिन्नत्वविशेषणस्य प्रतिबन्धकतायामप्रयोजकत्वादित्यर्थः, एतदेवोपपादयति, 'सर्व्वेति साध्याभाववद्वृत्तित्वसामान्याभावादिविषयकव्याप्तिबुद्धेरित्यर्थः, 'अवगमादेवेति, 'एवकारोऽप्यर्थे, 'भङ्गात्' अनुत्पादात्। 'न चेति, 'अनुमानमात्रोच्छेदइत्यग्रेणान्वयः, 'दृष्टान्ते' पक्षभिन्ने, पक्षत्वं प्रतिज्ञाविषयत्वं, 'अनुमानमात्रोच्छेदः' संशयोत्तरकालीनानुमानमात्रोच्छेदः, 'पक्ष इति, तथाच पक्षवृत्त्यपक्षीयव्यभिचारसंशयान्यव्यभिचारसंशय एव दोषः, व्यभिचारनिश्चयस्तु पक्षीयोऽपि प्रतिबन्धक इति भावः। व्यर्थ्यप्रयोजकत्व-

ऽनुमानाङ्गमिति। व्याप्तस्य पक्षधर्म्मताज्ञानादनुमित्युत्पादेन संशयनिवृत्तेः, अन्यथा विशेषदर्शनस्य संशयविरोधिता भज्येत। न च पक्षे साध्याभावं प्रतीत्य

---

स्थले पक्षीयव्यभिचारसंशयस्यापि प्रतिबन्धकत्वादिदमसङ्गतं तथापि प्राचीनमताभ्युपगमवादेन इदमभिहितं।

भट्टाचार्य्यास्तु 'पक्षे साध्यसन्देहः' हेतुमति पक्षे साध्यसन्देहः पक्षीयव्यभिचारसंशय इति यावत्, 'अनुमानाङ्गं' सति शब्दादिना व्याप्तिनिश्चयेऽनुमित्यनुकूलः,(१) तथाच पक्षीयव्यभिचारसंशयसत्त्वेऽपि यत्र शब्दादिना व्यभिचारनिश्चयस्तत्रैव नानुमानोच्छेदः,(२) व्याप्तिनिश्चयासत्त्वे तु तस्मात्तदुच्छेद इष्ट एवेति भावः इत्याहुः।

ननु परामर्शपूर्व्वं साध्यसन्देहासम्भवात् कथं साध्यसन्देहोऽनुमित्यङ्गमित्यत आह, 'व्याप्तस्येति, 'अनुमित्युत्पादेन' अनुमित्युत्पादेन च,(३) तथाच परामर्श-तज्जन्यानुमित्योरेव संशयप्रतिबन्धकत्वं न तु परामर्शसामग्र्यपि कार्य्यसहवर्त्तितया साध्यसन्देहप्रतिबन्धिकेति भावः। ननु तथापि साध्यसन्देहसत्त्वे कथं परामर्शोत्पाद इत्यत आह, 'अन्यथेति ग्राह्यसंशयस्य परामर्शप्रतिबन्धकत्वे चेत्यर्थः, 'संशयविरोधिता' संशयोत्तरं संशयानुत्पादप्रयोजकता।

---

(१) अनुमित्यप्रतिकूल इति ख०, ग०।

(२) नानुमानमात्रोच्छेद इति ग०।

(३) चकारपूरणेन व्याप्तस्य पक्षधर्म्मताज्ञानस्यैव अनुमित्युत्पादस्यापि संशयनिवर्त्तकत्वं सूचितं।

व्यभिचारज्ञानमित्युपजीव्यत्वाद्बाधः पृथक्, पक्षे साध्या-भावप्रतीतिरेव हि साध्याभाव-हेत्वोः सम्बन्धोल्लेखि-नीत्येकवित्तिवेद्यत्वेन नोपजीव्यत्वम्, अन्यथा बाध-

---

भट्टाचार्य्यानुयायिनस्तु ननु यदि व्याप्तिनिश्चयसत्त्वे पक्षीय-व्यभिचारसंशयो न प्रतिबन्धकस्तदा परामर्शोत्तरं हेतुमति पक्षे साध्यसन्देहोत्पत्तावपि अनुमित्यापत्तिरित्यत आह, 'व्याप्त्येति परामर्श-तज्जन्यानुमित्योः संशयप्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, तथाच परा-मर्शोत्तरं साध्यसन्देहोत्पत्तिरेव न सम्भवतीति भावः। यद्यप्यनुमितेः संशयप्रतिबन्धकत्वाभिधानं प्रकृतानुपयुक्तं तथापि फलतोऽपि परा-मर्शस्य संशयप्रतिबन्धकत्वबोधनाय दृष्टान्ततया वा तदभिधानं, 'अन्यथेति परामर्शस्य सन्देहविरोधित्वाभाव इत्यर्थः, 'संशयविरो-धिता' प्रामाणिकानां संशयविरोधिताप्रवाद इत्याहुः।

'पक्ष इति हेतौ, साध्याभाववत्पक्षवृत्तित्वात्मकव्यभिचारज्ञान-मित्यर्थः, 'बाधः' साध्याभाववत्पक्षज्ञानं, 'पृथगिति; अनुमितिप्रति-बन्धक इति शेषः, तथाच साध्याभाववत्पक्ष एव बाधो न तु प्रमा-लान्तर्भाव इति भावः। यद्यप्युपजीव्यत्वेऽपि तज्जन्यव्यभिचारज्ञानमेव प्रतिबन्धकमावश्यकत्वादित्येव समाधानं सुकरं तथापि तदुपेक्ष्य उपजीव्यत्वमेव निराकरोति, 'पक्ष इति, साध्याभाववत्पक्षज्ञानं विनापि विशेष्ये विशेषणमिति न्यायेन विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्ध्युत्पत्तौ बाधका-भावादिति भावः। 'एकवित्तिवेद्यत्वेन' एकवित्तिस्वरूपत्वेन। ननु सर्व्वत्र बाधपक्षे हेतौ पक्षवृत्तित्वभाने मानाभाव इत्यत आह,

दशायां पक्षे हेतोरज्ञानादसिद्धिरेव। न चोद्भावित-व्यभिचारनिर्व्वाहाय बाधोद्भावनमावश्यकमित्युपजीव्यत्वं, व्यभिचारोद्भावने परकथन्तानावश्यकत्वात् तत्त्वे वा तन्निर्व्वाह्यमेव दूषणं कृतत्वात्। वह्निरुष्णः कृतक-इत्युद्भावनाद्वह्निरुष्ण इत्युद्भावने लाघवमितिबाधः पृथगिति कश्चित्,(१) तन्न, पक्षे साध्याभावप्रमा स्वार्थानु-

'अन्यथेति, 'बाधदशायां' बाधग्रहदशायां, 'पक्षे हेतोरिति हेतौ पक्षवृत्तित्वस्येत्यर्थः, 'असिद्धिरेव' परामर्शविरह एव, तथाच सुषुप्त्यादिदशायामिव कारणविरहादेवानुमित्यनुत्पादः(२) किं बाधज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वेनेति भावः। परार्थस्थले व्यभिचारज्ञानं प्रत्युद्भावनद्वारा बाधज्ञानस्य उपजीव्यत्वमाशङ्कते, 'न चेति, 'उद्भावितव्यभिचारेति तेजोऽनुष्णं कृतकत्वादित्यादावुद्भावितव्यभिचारसिद्ध्यर्थमित्यर्थः, 'कथन्तेति व्यभिचारस्यासिद्धत्वाशङ्केत्यर्थः, 'तत्त्वे वेति उद्भावनद्वारा साध्याभाववत्पक्षज्ञानस्योपजीव्यत्वे वेत्यर्थः, 'तन्निर्वाह्यमिति, साध्यव्यभिचारित्वमिति शेषः। 'वह्निरुष्णः कृतक इति उष्णत्ववद्वह्निवृत्तिकृतकत्वमितिव्यभिचारोद्भावनादित्यर्थः, 'इत्युद्भावन इति साध्याभाववत्पक्षरूपबाधोद्भावने इत्यर्थः, 'लाघवं' शब्द-लाघवं, 'बाधः' साध्याभाववत्पक्षः, 'पृथगिति, परार्थस्थले दोष इति

(१) कश्चित्तु वह्निरुष्णः कृतक इत्युद्भावनाद्वह्निरुष्ण इत्युद्भावने लाघव-मिति बाधः पृथगिति मेने इति ग०।

(२) कारणविरहप्रयोज्य एव तदानुमित्यनुत्पाद इति ख०, ग०।

माने यदि न दोषः तदा परं प्रत्यपि न स्यादविशेषादिति तदुद्भावनस्य दूरनिरस्तत्वात्। अथापनीतकाञ्चनमयत्वविशिष्टवह्न्यनुमितेः सल्लिङ्गजन्याया आभासत्वं हेत्वाभासाधीनं। न चानुमितेः पूर्व्वं तत्र व्यभिचारज्ञानं, विशिष्टस्याप्रसिद्धा तदभावस्याज्ञानात्, अत-

शेषः, 'साध्याभावप्रमेति साध्याभावसत्त्वेत्यर्थः, 'अविशेषादिति क्लृप्तदोषान्तरसाङ्कर्य्यस्याविशेषादित्यर्थः, 'तदुद्भावनस्य दूरेति, इदमुपलक्षणं शब्दगौरवमपेक्ष्य प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावान्तरकल्पनागौरवस्यैव जघन्यत्वाच्चेत्यपि द्रष्टव्यं(१)। 'अथेति, पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादाविति शेषः, 'उपनीतेति, एतच्चानुमितावप्युपनीतभानमभ्युपेत्य, 'आभासत्वमिति भ्रमत्वमित्यर्थः, 'हेत्वाभासाधीनमिति दुष्टहेतुकत्वव्याप्यमित्यर्थः, हेतुदोषश्चान्यः कोऽपि तत्र नास्तीति बाधस्यैव तत्र दोषत्वसिद्धिः। न च काञ्चनमयत्वाभाववद्वह्निरूपा साध्यविशेषणासिद्धिरेव दोष इति वाच्यं। अनुमितिजनकपरामर्शाविघटकतया तस्य प्रकृतेऽसिद्धित्वासम्भवादिति भावः। ननु धूमे काञ्चनमयवह्निव्यभिचारज्ञानात्तादृशानुमितिरेव न सम्भवति कुतस्तस्याभासत्वमित्यत आह, 'न चेति, 'विशिष्टस्याप्रसिद्धेति अनुमितेः पूर्व्वं काञ्चनमयत्वप्रकारकवह्निज्ञानाभावेनेत्यर्थः, 'तदभावस्येति, काञ्चनमयत्वावच्छिन्नप्रयोगिताकवह्न्यभावस्य व्यभिचारघट-

(१) बोध्यमिति ख०, ग०।

एव पक्षासिद्धिरपि न, अतः काञ्चनमयवह्न्यभावरू-पाद्बाधात्तथाभासत्वं व्यधिकरणप्रकारावच्छिन्नप्रतियो-गिकस्याप्यभावइति चेत्, न, वस्तुतोऽव्यभिचारस्यापि तत्र सत्त्वात् ज्ञानञ्च तस्य बाधस्येवानुमित्यनन्तरमेव ।

---

कस्य ज्ञानासम्भवादित्यर्थः, प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगि-ज्ञानस्याभावधीहेतुत्वादिति भावः । इदमुपलक्षणं काञ्चनमयवह्नि-व्यभिचारज्ञानेऽपि सामान्यतोवह्निव्याप्यवत्तापरामर्शादुपनीतकाञ्च-नमयत्वप्रकारकवह्न्यनुमितौ बाधकाभावाच्चेत्यपि द्रष्टव्यं । 'अत-एवेति अनुमितेः पूर्व्वं काञ्चनमयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकवह्न्यभाव-ज्ञानासम्भवादेवेत्यर्थः, 'पक्षासिद्धिरपीति पक्षविशेष्यक-काञ्चनमयत्व-विशिष्टवह्न्यभावनिश्चयप्रयुक्तो बाधकमानाभावरूपपक्षत्वाभावोऽपि नेत्यर्थः, 'बाधादिति स्वरूपसतो बाधादित्यर्थः,. 'आभासत्वं' भ्रमत्वं । ननु काञ्चनमयवह्नेरसिद्धौ कथं तदभावरूपोबाध इत्यत आह, 'व्यधिकरणप्रकारेति व्यधिकरणधर्म्मेत्यर्थः, 'प्रतियोगिकः' प्रति-योगिताकः, यदि व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाव-मादाय बाधस्तदा तादृशसाध्याभावमादाय व्यभिचारोऽपि तत्र सम्भवतीत्यभिप्रायेण समाधत्ते, 'वस्तुत इति स्वरूपसत इत्यर्थः । नन्वनुमितेः पूर्व्वं तज्ज्ञानासम्भवात् तत्सत्त्वे किम्मानमित्यत आह, 'ज्ञानञ्चेति, अन्यथा बाधसत्त्व एव किम्मानमिति भावः । ननु सामान्यधर्म्मावच्छिन्नव्याप्यवत्तापरामर्शजन्यानुमितौ विशेषव्यभिचारो

किञ्च, वह्नौ काञ्चनमयत्वस्यानुमितावेव भाने काञ्चनमयवह्निमानित्यनुमितिर्न स्यात् विशिष्टस्य पूर्व्वमज्ञानाद्वह्नौ काञ्चनमयत्वांशेऽनुमितेराभासत्वं वह्नौ लिङ्गस्यासिद्धेः व्यभिचाराच्च। न चानुमितेर्विषयाभावाधीनमप्रमात्वं, किन्तु हेत्वाभासाधीनं, यस्य हि ज्ञानमनुमितिप्रतिबन्धकं स हेत्वाभासः। न च साध्याभावो-

---

न हेत्वाभासः कारणीभूतपरामर्शाविघटकत्वादित्यरुचेराह, 'किञ्चेति, 'विशिष्टस्येति, विशेषणतावच्छेदकप्रकारकविशेषणज्ञानस्य च विशिष्टवैशिष्ट्यधीहेतुत्वादिति भावः। ननु विशिष्टस्य पूर्व्वमज्ञानेऽपि विशेष्ये विशेषणमितिन्यायेन तादृशानुमितिः स्यादित्यस्वरसादाह, 'वह्नाविति, 'लिङ्गस्य' धूमादेः, 'असिद्धेः' स्वरूपासिद्धेः, 'व्यभिचाराच्चेति धूमादेः पर्व्वतादौ काञ्चनमयत्वव्यभिचाराच्चेत्यर्थः, तथाच तत्राभासताप्रयोजकं दोषान्तरमेव सम्भवति किं बाधस्य दोषत्वेनेति भावः। ननु यथोक्तस्वरूपासिद्धि-व्यभिचारयोर्न दोषत्वं अनुमितितत्कारणीभूतपरामर्शयोरविघटकत्वादित्यतो दोषान्तरमाह, 'न चेति, 'विषयाभावाधीनमिति विषयाभावमात्राधीनमित्यर्थः, 'किन्त्विति, तथाच प्रकृते हेत्वाभासविरहात्कथमुपनीतकाञ्चनमयत्वप्रकारिका भ्रमानुमितिः[१] स्यादिति भावः। नन्वस्मन्मते बाध एव हेत्वाभासोऽस्तीत्यत आह, 'यस्य हीति। 'साध्याभाव इति

---

(१) •अप्रमानुमितिरिति ख०, ग०।

ज्ञातः प्रतिबन्धकइति न स हेत्वाभासः। वस्तुतस्तु उपनीतस्यानुमितौ भाने मानाभावः प्रत्यभिज्ञादौ च प्रतीतिबलेन तत्कल्पनम् अन्यथा पूर्व्वोपस्थितसकल-

काञ्चनमत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकवह्न्यभाव इत्यर्थः, अनुमितिं विना विशिष्टस्याप्रसिद्धा तदभावस्य ज्ञानासम्भवादिति भवतैवाभिधानात्। न चानुमित्यनन्तरं तदभावज्ञानसम्भव इति वाच्यं। तथा सति तस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावादिति भावः। ननु कचिदनुमितेः पूर्व्वं विशिष्टस्याप्रसिद्धत्वेऽपि न सर्व्वत्र तदसिद्धिः। न च तथापि व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य प्रागेव निराकृततया पर्व्वते काञ्चनमयवह्न्यभावस्यैवाप्रसिद्धत्वात् कथं तस्य दोषत्वमिति वाच्यं। तथापि पर्व्वतो वह्निमान् धूमादित्यादावुपनीतमहानसीयत्वादिविशिष्टवह्न्यनुमितेर्भ्रमत्वप्रयोजकतया पर्व्वते तादृशवह्न्यभावस्य दोषत्वावश्यकत्वादित्यस्वरसाद्दोषान्तरमाह, 'वस्तुतस्त्विति, 'उपनीतस्येति पक्षतावच्छेदकव्यापकतावच्छेदकादिविधया परामर्शाविषयीभूतस्याप्युपनीतस्येत्यर्थः, बाधादिसहायं विनेति शेषः। नन्वेवं सोऽयमित्यादिप्रत्यभिज्ञादेरपीदन्त्वादिविशिष्टे उपनीततत्तादिवैशिष्ट्यविषयकत्वे मानाभावः क्रमोत्पन्नज्ञानद्वयस्यैव तत्र सुवचत्वादित्यत आह, 'प्रत्यभिज्ञेति, 'प्रतीतिबलेनेति(१) इदन्त्वादिविशिष्टे तत्तादिवैशिष्ट्यविषयकत्वस्यानुव्यवसायबलेनेत्यर्थः,(२) 'तत्कल्पनं' इद-

(१) प्रतीतिबलादितीति क०, ख०।

(२) अनुव्यवसायबलादित्यर्थः इति क०, ख०।

पदार्थभाने यथार्थानुमित्युच्छेदः। अपि चैवं परार्थानुमानेऽप्युपनीतभाने बाधितोऽर्थ उपनीतोऽयं मम

---

त्वादिविशिष्टे उपनीततत्त्वादिवैशिष्ट्यविषयकत्वकल्पनं। न चानुमितावपि तादृशस्याप्युपनीतस्य भाने सामग्र्येव मानमिति वाच्यं। तदसिद्धेः ज्ञानलक्षणायास्तत्प्रकारकप्रत्यक्षत्वस्यैव कार्य्यतावच्छेदकत्वात्। न च विशेषणज्ञानादिरूपविशिष्टबुद्धिसामान्यसामग्रीमर्य्यादयैवानुमितौ तादृशोपनीतस्य भानापत्तिर्दुर्व्वारेति वाच्यं। प्रत्यक्षादिरूपविशेषसामग्रीसहिताया एव विशिष्टज्ञानसामान्यसामग्र्याः प्रत्यक्षफलोपधायकत्वादनुमितिसामग्र्या बलवत्त्वेन च उपनीतप्रत्यक्षादिसामग्रीविरहात्। न चानुमित्यात्मकविशेषसामग्र्येव वर्त्तते इति वाच्यं। पक्षतावच्छेदकत्व-विधेयत्व-तदवच्छेदकत्वातिरिक्तस्यानुमितिप्रकारत्वस्यालीकतया तदवच्छिन्नं प्रति सामग्र्यन्तराकल्पनात्। न च पक्षतावच्छेदकादिविधयैव तादृशस्याप्युपनीतस्यानुमितौ भानमस्तु इति वाच्यं। तदवच्छिन्नपक्षकानुमितिं प्रति तदवच्छिन्नपक्षकपरामर्शस्य तदवच्छिन्नविधेयताकानुमितिं प्रति तदवच्छिन्ननिरूपितव्याप्त्यादिज्ञानस्य हेतुत्वादिति भावः। साधकाभावमुक्त्वा बाधकमप्याह, 'अन्यथेति तादृशस्याप्युपनीतस्यानुमितौ भाननियम इत्यर्थः, 'सकलपदार्थभान इति सकलपदार्थानां साध्य-पक्षोपरि प्रकारतया भाने इत्यर्थः, 'यथार्थानुमितीति भ्रमभिन्नानुमितीत्यर्थः, एतच्चापाततः असति बाधक एव पूर्व्वोपस्थितपदार्थभानाभ्युपगमात् यत्र च न बाधकं तत्रानुमितेर्भ्रमत्वस्य तेनेष्टत्वात् अन्यथा प्रत्यक्षेऽप्युपनीतस्य प्रकार-

भात इत्युद्भावनादेव विजयेत वादी, उद्देश्यानुमितेरप्रतिबन्धान्न तच्च बाधो दोष इति चेत्, तुल्यं स्वार्थानुमानेऽपि। अत एव यच्च सामान्यतोदृष्टानुमानमेवेतरबाधस-

---

तया भानाभ्युपगमे तत्रापि स्थलविशेषे भ्रमत्वापत्तेः सुवचत्वादिति(१) ध्येयं। प्रकृते, 'उद्देश्यानुमितेरिति यद्धर्म्मावच्छिन्नव्याप्यवत्तापरामर्शस्तद्धर्म्मावच्छिन्नानुमितेरित्यर्थः, 'बाधः' उपनीतपदार्थस्य बाधः, 'दोषः' दोषपदवाच्यः। परामर्शाविरोधिनोरूपस्य दोषत्वे परामर्शविषयतावच्छेदकावच्छिन्नविधेयताकानुमितिप्रतिबन्धकत्वस्य तन्त्रत्वादित्यभिमानः। 'स्वार्थानुमानेऽपीति स्वार्थानुमानेऽप्युपनीतकाञ्चनमयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकवह्न्यभावो न दोषः परामर्शविषयतावच्छेदकवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमित्यप्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः। नन्विच्छा द्रव्याश्रिता गुणत्वादित्यादौ द्रव्याश्रितत्वव्याप्यगुणत्ववतीच्छा इति सामान्यधर्म्मावच्छिन्नव्याप्यवत्तापरामर्श एव पृथिव्याश्रितत्वातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वाभाववतीच्छा इति भ्रमात्मकबाधज्ञानसहकारादिच्छा पृथिव्याश्रितेति विशेषप्रकारकभ्रमानुमितिं जनयति तदनुमितेर्भ्रमत्वञ्च स्वरूपसद्धेत्वाभासाधीनं हेत्वाभासान्तरञ्च तत्र नास्तीतीच्छायां पृथिव्याश्रितत्वाभावरूपस्य बाधस्यैव हेत्वाभासत्वं सिद्ध्यतीति केचिद्वदन्ति तन्मतमुपन्यस्य दूषयति, 'अत एवेति 'इत्यपास्तमित्यग्रेतनेनान्वयः, 'सामान्यतोदृष्टानुमानमेव' सामान्य-

---

(१) सुकरत्वादितीति ख०, ग०।

हायं विशेषानुमापकं तच बाधकानामाभासत्वे सिद्धे तत्प्रयुक्तं सामान्यतोदृष्टस्याप्याभासत्वमिति बाधस्यासाङ्कर्य्यात्। न च यदि विशेषविप्रतिपत्तौ सामान्यप्रतिज्ञा तदा अर्थान्तरं सामान्यविप्रतिपत्तौ तु नेतरबाधकापेक्षेति वाच्यं। स्वार्थानुमानएवैवं बाधासङ्करस्योक्तत्वादित्यपास्तम्। अनुमित्यप्रतिबन्धेन तच बाधस्यादो-

---

धर्म्मावच्छिन्नव्याप्यवत्तापरामर्श एव, 'इतरबाधसहायं' इतरबाधज्ञानसहकृतं, 'विशेषानुमापकं' विशेषधर्म्मप्रकारकानुमितिजनकं, 'बाधकानां' इतरबाधज्ञानानां, 'आभासत्वे' भ्रमत्वे, 'तत्प्रयुक्तं' स्वरूपसद्बाधमात्रप्रयुक्तं, 'आभासत्वं' भ्रमानुमितिजनकत्वं, 'असाङ्कर्य्यं' दोषान्तरासाङ्कर्य्यं, 'सामान्यप्रतिज्ञेति, विशेषप्रतिज्ञायान्तु व्यभिचार एव स्फुट इति भावः। 'सामान्यविप्रतिपत्तौ त्विति, अनुमितेरपि सामान्यधर्म्मप्रकारकत्वादिति शेषः, विप्रतिपत्तिविषयतावच्छेदकधर्म्मप्रकारेणैव परार्थस्थलेऽनुमितिनियमादिति भावः। 'नेतरेति, न वानुमितेरप्रमात्वमित्यपि बोध्यं। 'अनुमित्यप्रतिबन्धेनेति यद्धर्म्मावच्छिन्नव्याप्यवत्तापरामर्शस्तद्धर्म्मावच्छिन्नप्रकारताकानुमित्यप्रतिबन्धकत्वेनेत्यर्थः, 'बाधस्य' विशेषतोबाधस्य, तथाचानुमितेर्भ्रमत्वस्य दोषप्रयुक्ततया तदभावात्तत्र विशेषप्रकारकानुमितिरेव न जायत इति भावः। एतच्चापाततः अनुमिति-तत्कारणीभूतपरामर्शान्यतरप्रतिबन्धकतामात्रस्यैव हेत्वाभासत्वप्रयोजकतया परामर्शविषयतावच्छेदकावच्छिन्नानुमित्यप्रतिबन्धकत्वेऽपि विशेषप्र-

षत्वात्। ननु पक्षे साध्याभावग्रहवत्साध्याभाववव्याप्यग्रहेऽपि दूषकोविरोधित्वाविशेषात् तत्राच साध्याभावसम्बन्धोव्यभिचारः साध्याभावव्याप्यसामानाधि-

---

कारकानुमितिप्रतिबन्धकत्वादेव हेतुदोषत्वसम्भवात्। न च तथापि परार्थानुमाने बाधस्यासङ्कीर्णस्यलाभाव इति वाच्यं। स्वार्थानुमाने दोषान्तरासाङ्कर्य्येण तस्य हेत्वाभासत्वव्यवस्थितौ परार्थानुमानेऽपि तथात्वस्य दुर्व्वारत्वात् परार्थस्थलेऽपि बाधादिज्ञानसहकारेण विप्रतिपत्तिविषयतानवच्छेदकधर्म्मप्रकारेणानुमित्यभ्युपगमाच्चेति ध्येयं। 'दूषक इति अनुमितिप्रतिबन्धक इत्यर्थः, 'विरोधित्वाविशेषादिति अनुमित्यनुत्पादप्रयोजकत्वाविशेषादित्यर्थः। यद्यपि 'पक्षे साध्याभाववत्त्ववदित्यसङ्गतं पूर्व्वपक्षिणा तद्ग्रहस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वानभ्युपगमात् अन्यथा तत्र हेत्वाभासत्वस्य दुर्व्वारत्वात्, तथाप्यस्य दोषस्य ग्रन्थकृतैवानुपदं वक्ष्यमाणत्वान्नासङ्गतिः। 'साध्याभावसम्बन्ध इति हेतौ साध्याभावसामानाधिकरण्यमित्यर्थः, 'साध्याभावव्याप्येति हेतौ येन केनापि सम्बन्धेन साध्याभावव्याप्यवत्पक्षसम्बन्धित्वमित्यर्थः, तेन जलहृदोवह्निमान् धूमादित्यादौ नाव्याप्तिः, अत्र हेतुनिष्ठत्वसम्पादनाय सम्बन्धित्वप्रवेशः न तु तदन्तर्भावेन बाधत्वं प्रतिबन्धकतायामनुपयोगित्वात्, बाधस्तु साध्याभावव्याप्यवत्पक्ष एव। न चैवं सत्प्रतिपक्षाभेद इति वाच्यं। साध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शकालीन साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शस्यैव सत्प्रतिपक्षत्वात्, प्रतिबन्धकत्वमपि तस्य तथैव बाधज्ञानस्य तु प्रतिबन्धकत्वं केवल-

करण्यं बाधः साध्याभावव्याप्यञ्च वह्नित्वादिकमेवेति चेत्, न, पक्षे हि साध्याभावे ज्ञायमाने ज्ञाते वा यदि ...ाध्याभावव्याप्यसामानाधिकरण्यबुद्धिस्तदा व्यभिचार एव। अथ पक्षे साध्याभावबुद्धिं विनैव सा, तर्हि हेतु-साध्याभावव्याप्ययोरगृह्यमाणविशेषयोः सत्प्रतिपक्षत्वम्। अथ तुल्यबलेन सत्प्रतिपक्षोऽधिकबलेन बाध इति चेत्, न, गमकतौपयिकरूपसाकल्यं हि बलं तच्च

---

साध्याभावव्याप्यवत्पक्षनिश्चयत्वेनेत्यभिमानः। 'साध्याभावव्याप्यञ्चेति, वह्निरनुष्णः कृतकत्वादित्यादाविति शेषः। 'पक्षे हीति हेतुविशिष्टपक्षे हीत्यर्थः। 'साध्याभावव्याप्यसामानाधिकरण्यबुद्धिः' हेतुमति पक्षे साध्याभावव्याप्यवत्त्वबुद्धिः, 'व्यभिचार एव' व्यभिचारज्ञानमेव, दोष इति शेषः। 'तर्हीति, हेतौ साध्यव्याप्यवत्त्वज्ञाने बाधकाभावेनेति शेषः। 'हेतु-साध्याभावव्याप्ययोरिति पक्षे साध्यव्याप्यहेतुमत्त्व-साध्याभावव्याप्यवत्ताज्ञानयोरित्यर्थः, 'अगृह्यमाणेति 'विशेषोऽप्रामाण्यं, सत्त्वादिति शेषः। 'सत्प्रतिपक्षत्वं' सत्प्रतिपक्षस्यैव दोषत्वं। मतान्तरमाशङ्कते, 'अथेति, 'तुल्यबलेनेति तुल्यबलेन साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शेन समवहितः साध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्श इत्यर्थः, 'अधिकबलेनेति अधिकबलेन साध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शेन समवहितः साध्यव्याप्यवत्तापरामर्श इत्यर्थः, 'गमकतौपयिकेति गमकतौपयिकं रूपमप्रामाण्यज्ञानाभाववत्त्वयुक्तत्वमित्यर्थः, 'तच्च'

द्वयोर्ज्ञातमिति कथं न सत्प्रतिपक्षत्वं गमकताबहि-भूतस्य न बलम्। अथ साध्याभावव्याप्यवह्नेरनन्यथा-सिद्धत्वं बलं, तदा ततः साधनवति पक्षे साध्याभावानु-मितावनैकान्तिकत्वमेव पक्षे साध्याभावग्रहवदिति

---

तद्युक्तञ्च, 'ज्ञातमिति भावसाधनं द्वयोर्ज्ञानमेवेत्यर्थः। 'गमकता-बहिर्भूतस्येति अप्रामाण्यज्ञानाभावातिरिक्तस्येत्यर्थः। न च यत्र सा-ध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शोऽप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितः साध्यव्याप्यव-त्तापरामर्शस्य तदास्कन्दितः तत्रैव बाधस्य दोषत्वमिति वाच्यं। तथा सति कारणाभावादेव साध्यानुमितेरसम्भवादलं बाधस्य दोषत्वेन अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितपरामर्शस्यैवानुमितिजनकत्वादि-ति भावः। 'अनन्यथासिद्धत्वमिति प्रामाण्यग्रहविशिष्टत्वमित्यर्थः, साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शस्य तदभावविशिष्टत्वमेव दुर्बलत्वमिति शेषः। निश्चितप्रामाण्यकपरामर्शस्यैवानुमितिहेतुतया प्रामाण्यग्रह-तदभाव-योरेव बलाबलत्वादित्यभिमानः। अभिमानमभ्युपेत्यैव दूषयति, 'तदेति तदापीत्यर्थः, 'ततः' तत एव साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शस्य प्रामाण्यज्ञानविरहादेवेति यावत्, 'साधनवतीति साध्यव्याप्यसाधन-वत्तया ज्ञात इत्यर्थः, 'साध्याभावानुमितौ' साध्याभावस्यैवानुमित्यु-त्पादसम्भव इति यावत्, निश्चितप्रामाण्यकपरामर्शस्यैवानुमिति-हेतुत्वाभ्युपगमादिति भावः। 'अनैकान्तिकत्वमेवेति निरुक्तबाधस्या-प्रतिबन्धकत्वमेव।

प्राञ्चस्तु 'ततः' निश्चितप्रामाण्यकसाध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शतः,

यदुक्तं तदप्यसिद्धं तस्य दोषत्वानभ्युपगमात् अन्यथा हेत्वाभासान्तरतापत्तिः।

अथ हेतुतः साध्यसिद्धिसम्भावनायां व्यभिचारासिद्धेः बाधेन हेतोरसाधकत्वे सिद्धे व्यभिचारसिद्धि-

---

'साधनवति' साधनवत्तया ज्ञायमाने, 'साध्याभावानुमितौ' साध्याभावस्यानुमितेरावश्यकत्वे, 'अनैकान्तिकत्वमेव' व्यभिचारज्ञानमेव, तथाच व्यभिचारज्ञानसामग्रीतयैवास्य प्रतिबन्धकता न तु बाधत्वेनेति भाव इत्याहुः।

तदसत् व्यभिचारज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वमतेऽपि तत्सामग्र्या अनुमितिप्रतिबन्धकत्वानभ्युपगमात्, न हि प्रतिबन्धकसामग्री अवश्यं प्रतिबन्धिकेति नियमः।

केचित्तु 'अनैकान्तिकत्वमेवेति, तथाच व्यभिचारज्ञानमेव कार्य्यसहवर्त्तितया प्रतिबन्धकमस्तु किं निरुक्तबाधस्य पृथक् प्रतिबन्धकत्वेनेति भाव इत्याहुः।

पूर्व्वमते दृष्टान्तासिद्धिमपि आह, 'पक्ष इति, 'तस्य' पक्षे साध्याभावग्रहस्य, 'अन्यथा' पक्षे साध्याभावग्रहस्यापि प्रतिबन्धकत्वे, 'हेत्वाभासान्तरतेति साध्याभाववत्पक्षस्यातिरिक्तहेत्वाभासतापत्तेरित्यर्थः, साध्याभावव्याप्यवत्पक्षस्यैव तन्मते बाधतया बाधे तदनन्तर्भावादिति भावः।

'हेतुतः साध्यसिद्धिसम्भावनायामिति हेतोः साध्यसिद्धिस्वरूपयोग्यत्वसन्देहे सतीत्यर्थः, 'व्यभिचारासिद्धेरिति पाठः व्यभिचार-

रित्युपजीव्यत्वाद्बाधः पृथक्, अन्यथा हेतोरसाधकत्वे सिद्धे साध्यसिद्धिसम्भावनाविरहाद्व्यभिचारबुद्धिः त-स्याञ्च सत्यां हेतोरसाधकत्वधीरित्यन्योन्याश्रयइति चेत्। न। साध्यसिद्ध्युन्मुखहेतुज्ञानस्य प्रमितसाध्या-भावसहचरितहेतुविषयत्वेन व्यभिचारज्ञानतयाऽदूष-कत्वात्। तथापि व्यभिचारे साध्याभावप्रमा तन्त्रं

ज्ञानासम्भवादित्यर्थः, 'बाधेन' प्रमितसाध्याभाववत्पक्षात्मकबाधज्ञा-नेन, 'असाधकत्वे सिद्धे इति साध्यसिद्धिस्वरूपायोग्यत्वनिश्चयइत्यर्थः, 'उपजीव्यत्वात्' व्यभिचारज्ञानं प्रत्युपजीव्यत्वात्, 'पृथगिति, दोष-इति शेषः, क्वचित् 'व्यभिचारसिद्धेरिति पाठः तत्र व्यभिचारसिद्धे-र्बाधेनेति योजना व्यभिचारसिद्धेरसम्भवेनेत्यर्थः, 'हेतोरित्यस्य पूर्व्वं बाधज्ञानादिति पूरणीयं। ननु व्यभिचारज्ञानमेव हेतोः साध्या-साधकत्वनिश्चायकमस्त्वित्यत आह, 'अन्यथेति व्यभिचारज्ञानस्यैव साध्यासाधकत्वनिश्चायक इत्यर्थः, 'सिद्धिसम्भावना' हेतोः साध्यसा-धकत्वसम्भावना, 'तस्याञ्च' व्यभिचारबुद्धौ च। 'साध्यसिद्ध्युन्मुखहेतु-ज्ञानस्येति साध्यसिद्धिस्वरूपयोग्यतया हेतुज्ञानस्येत्यर्थः, क्वचिदिति शेषः। अदूषकत्वादित्यकारप्रश्लेषः हेतौ साध्यसाधकत्वज्ञानस्य व्यभि-चारज्ञानाप्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः। न च पूर्व्ववर्त्तितयैव तज्ज्ञानं प्रति-बन्धकं न तु कार्य्यसहवर्त्तितयेति वाच्यं। पूर्व्वं तत्सत्त्वेऽपि(१) व्यभिचारज्ञानोदयान्मानाभावाच्चेति भावः। प्रकृते, 'तथापीति

(१) तज्ज्ञानेऽपीति क०।

तां विना तदभावादिति सैव दोषइति चेत्, सत्यं, किन्तु साध्याभावप्रमा व्यभिचारज्ञानत्वेन दूषिका क्लृप्तत्वात् न तु स्वतन्त्रा, अत एव पक्षे साध्याभावज्ञानत्वेन प्रतिबन्धकत्वं न तु साध्याभावसमानाधिकरणसाधनज्ञानत्वेनेति प्रत्युक्तं, तस्य लघुत्वेऽप्यक्लृप्तत्वात्। अथ प्रत्यक्षादौ प्रमामात्रं प्रति स्वातन्त्र्येण बाधो दोषत्वेन क्लृप्तइत्यनुमितावपि स एव दोषइति चेत्, न, तर्हि हेत्वाभासः अनुमित्यसाधारणदोषस्य त-

---

व्यभिचारे साध्याभाववत्पक्षवृत्तिर्हेतुरिति विशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकव्यभिचारनिश्चये, 'साध्याभावप्रमेति पक्षे साध्याभावप्रकारकप्रमेत्यर्थः, 'तां विनेति, विशिष्टवैशिष्ट्यबोधं प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चयस्य हेतुत्वादिति भावः। 'साध्याभावप्रमेति साध्याभाववत्पक्षवृत्तिर्हेतुरिति व्यभिचारनिश्चयरूपा फलीभूता साध्याभावप्रमैवेत्यर्थः, 'न तु स्वतन्त्रेति न तु कारणीभूता साध्याभावप्रमैवेत्यर्थः, 'साध्याभावज्ञानत्वेन' साध्याभावप्रकारकनिश्चयत्वेनेत्यर्थः, 'प्रतिबन्धकत्वमिति फलीभूतव्यभिचारनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वमित्यर्थः, 'प्रमामात्रं प्रतीति पक्षविशेष्यक-साध्यविशिष्टानुभवं प्रतीत्यर्थः, 'स्वातन्त्र्येण' साध्याभाववत्पक्षनिश्चयत्वेन, 'बाधः' साध्याभाववत्पक्षनिश्चयः, 'सएव दोषः' स दोष एव, 'न तर्हीति तर्हि न हेत्वाभास इति योजना, 'अनुमित्यसाधारणेति अनुमिति-तत्कारणयोरसाधारणेत्यर्थः। नन्वनुमितिदोषत्वमेव हेत्वाभासत्वप्रयोजकं न तु तदसाधारणदोषत्व-

त्वात् मनोयोगाभाववत् स्वरूपसत एव प्रतिबन्धकत्वात् हेतुत्वाभिमतावृत्तित्वेनासाधकतालिङ्गत्वाभावाच्च[1]। बाधितपक्षकत्वं लिङ्गमिति चेत्, न, अन्यत्र तथा दूषकत्वाकल्पनात्॥

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे बाधपूर्व्वपक्षः॥०॥

---

मित्यरुचेर्द्दोषान्तरमाह, 'मनोयोगाभाववदिति। ननु साध्याभाववत्पक्षनिश्चयो न बाधः किन्तु तद्विषयीभूतः साध्याभाववत्पक्ष एव बाधः स च न स्वरूपसत्प्रतिबन्धक इत्यतो दोषान्तरमाह, 'हेतुत्वाभिमतेति क्वचिद्धेतुत्वाभिमतवृत्तित्वसम्भवेऽपि सर्व्वत्र तदसम्भवेनेत्यर्थः, 'असाधकतेति, असाधकतासाधकस्यैव च हेत्वाभासत्वादिति भावः। 'बाधितेति येन केनापि सम्बन्धेन साध्याभाववत्पक्षो लिङ्गमित्यर्थः, 'अन्यत्रेति प्रत्यक्षादावित्यर्थः, 'तथा दूषकत्वेति पक्षविशेष्यक-साध्यविशिष्टानुभवसामान्यं प्रति साध्याभाववत्पक्षनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकत्वाकल्पनादित्यर्थः।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये बाधपूर्व्वपक्षरहस्यम्॥

---

(१) लिङ्गत्वाभासाच्चेति ग०।

## अथ बाधसिद्धान्तः ।

उच्यते । पक्षे साध्याभावनिश्चयः साध्याभावज्ञान-प्रमात्वनिश्चयात् ज्ञानमात्रादर्थनिश्चये प्रामाण्यग्रहवै-

---

### अथ बाधसिद्धान्तरहस्यं ।

यथोक्तञ्चयं न बाधः किन्तु पक्षविशेष्यक-साध्याभावप्रकारक-ज्ञाननिष्ठं 'साध्याभाववद्विशेष्यकत्वे सति साध्याभावप्रकारकत्वरूपं प्रमात्वमेव बाधः, तथाच पक्षे साध्यभावज्ञानं प्रमेत्याकारकं ज्ञान-मनुमितिप्रतिबन्धकं। न च तज्ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे किम्मान-मिति वाच्यं। साध्याभावांशे निश्चयाकार-साध्याभाववत्यवृत्तित्व-रूपव्यभिचारनिश्चयाधीनमनुमित्यनुत्पादं प्रति पक्षविशेष्यक-साध्या-भावप्रकारकनिश्चयनिष्ठप्रमात्वज्ञानस्योपजीव्यतया तन्निष्ठप्रमात्वज्ञा-नस्यापि पृथक्प्रतिबन्धकत्वादित्यभिप्रेत्य समाधत्ते. 'पक्ष इति, 'प्रमात्वनिश्चयादिति निश्चयत्वेन स्वप्रयोज्ये वस्तुनि प्रयोजक इति शेषः, निश्चयत्वेन तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकनिश्चयप्रयोज्यस्य च तद्विशे-ष्यक-तत्प्रकारकनिश्चयनिष्ठप्रमात्वग्रहसापेक्षत्वनियमादिति भावः। ननु तादृशनियम एवासिद्ध इत्यत आह, 'ज्ञानमात्रादिति तद्वि-शेष्यक-तत्प्रकारकनिश्चयमात्रादित्यर्थः,(१) मात्रपदेन प्रमात्वग्रहव्यव-च्छेदः, 'अर्थनिश्चये' निश्चयत्वेन तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकनिश्चयप्रयो-

---

(१) तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकज्ञानमात्रादित्यर्थ इति क० ।

यर्थं भ्रमत्वेन ज्ञातादर्थनिश्चयप्रसङ्गश्च तथाचोपजीव्य-त्वेनाधिकबलत्वेन वा पक्षे साध्याभावज्ञानस्य प्रमात्व-निश्चये सव्यभिचारो नान्यथेत्युभयथापि साध्याभाव-निश्चयाधीनव्यभिचारज्ञानात् पूर्व्वं ज्ञातं साध्याभाव-

---

व्यस्य निर्व्वाहे, 'प्रामाण्यग्रहवैयर्थ्यमिति निष्कम्पप्रवृत्त्यादिजनके दृष्ट-साधनत्वादिनिश्चये प्रामाण्यग्रहवैयर्थ्यप्रसङ्ग इत्यर्थः, 'भ्रमत्वेन ज्ञाता-दिति, तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकनिश्चयादिति शेषः, 'अर्थनिश्चयप्रसङ्ग-श्चेति निश्चयत्वेन तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकनिश्चयप्रयोज्यस्य उत्पत्ति-प्रसङ्गश्चेत्यर्थः, 'तथाचेति तादृशनियमे चेत्यर्थः, 'उपजीव्यत्वेन' प्रति-बन्धकतावच्छेदकत्वेन, 'अधिकबलत्वेन वा' अधिकबलस्वरूपत्वेन वा, अप्रमात्वग्रहनिवर्त्तकत्वेन वेति यावत्, अपेक्षणीय इति शेषः, 'सव्यभिचार इति व्यभिचारेण सह वर्त्तते इति व्युत्पत्त्या साध्या-भावांशे निश्चयाकारो यथोक्तविषयको ग्रह इत्यर्थः, अनुमित्यनु-त्पादप्रयोजक इतिशेषः, क्वचित् 'व्यभिचार इति पाठः तत्राप्यय-मेवार्थः, 'उभयथापीति निश्चितप्रामान्यकसाध्याभावनिश्चयाकार-व्यभिचारनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकत्वपक्षेऽगृहीताप्रामाण्यकसाध्याभाव-निश्चयाकारव्यभिचारनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकत्वपक्षेऽपीत्यर्थः, 'साध्या-भावनिश्चयाधीनव्यभिचारज्ञानादिति व्यभिचारज्ञानस्य साध्याभाव-निश्चयाधीनत्वादिति योजना, व्यभिचारज्ञानपदञ्च साध्याभावांशे निश्चयाकारव्यभिचारज्ञाननिष्ठानुमित्यनुत्पादप्रयोजकत्वपरं, साध्या-भावनिश्चयपदन्तु साध्याभावो निश्चीयते येनेति व्युत्पत्त्या पक्षविशे-

ज्ञानप्रमात्वमेव दोषउपजीव्यत्वात्। यदि च पक्षे साध्याभावज्ञानस्य प्रमात्वनिश्चयो नानुमितिविरोधी, तदा व्याप्ति-पक्षधर्म्मतया हेतुज्ञानं विशेषदर्शनत्वेन पक्षे साध्याभावज्ञानं परिभूय साध्यं साधयेदेव पर्व्वते

---

ष्यक-साध्याभावप्रकारकज्ञाननिष्ठप्रमात्वग्रहपरं, तथाच साध्याभावांशे निश्चयाकारसाध्याभाववत्पक्षवृत्तित्वरूपव्यभिचारज्ञाननिष्ठानुमित्यनुत्पादप्रयोजकत्वस्य पक्षविशेष्यक-साध्याभावप्रकारकज्ञाननिष्ठप्रमात्वग्रहाधीनत्वादित्यर्थः, 'पूर्व्वं ज्ञातमिति तादृशव्यभिचारज्ञानाधीनानुमित्यनुत्पादकालात् पूर्व्वं ज्ञातमित्यर्थः, 'दोषः' बाधः, 'उपजीव्यत्वादिति तादृशव्यभिचारनिश्चयाधीनानुमित्यनुत्पादं प्रत्युपजीव्यत्वेन तज्ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः। ननूपजीव्यत्वेऽपि तज्ज्ञानस्य साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावः, न हि यज्ज्ञानमुपजीव्यं तज्ज्ञानमेव साक्षात्प्रतिबन्धकमिति नियम इत्यत आह, 'यदि चेति, 'विशेषदर्शनत्वेनेति साध्यसाधकदर्शनत्वेनेत्यर्थः, 'पक्षे साध्याभावज्ञानं परिभूयेति पक्षे साध्याभावज्ञानं यस्मादिति व्युत्पत्त्या पक्षे साध्याभावज्ञानपदं पूर्व्ववत् तादृशज्ञाननिष्ठप्रमात्वग्रहपरं, तं परिभूय तत्सत्त्वेऽपीत्यर्थः, 'धूम इवेति साधकत्वांशे दृष्टान्तः न तु परिभवांशेऽपि असिद्धेः। ननु प्रमात्वग्रहो यदि साध्याभावांशे निर्द्धर्म्मितावच्छेदकस्तदा तत्सत्त्वेऽपि परामर्शात् साध्यसिद्धिरिष्टैव, यदि च पक्षतावच्छेदकं तद्धर्म्मितावच्छेदकं तदा पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यक-साध्याभावनिश्चयत्वेनैव प्रतिबन्धकत्वं लाघवादन्यत्र क्लृप्तत्वाच्चेत्यभिप्रेत्य

धूमइव वह्निं। न च साध्याभावबुद्धिरेवागृह्यमाण-विशेषा सत्प्रतिपक्षवत् प्रतिबन्धिकेति वाच्यं। रजते नेदं रजतमिति ज्ञानेऽपि विशेषदर्शनेन रजतत्वस्य शङ्खे पीतत्वज्ञाने शुक्लत्वस्य चानुमानात् वादिवाक्येन पक्षे साध्याभावज्ञानादनुमानोच्छेदप्रसङ्गाच्च(१)। अथ पक्षे साध्याभावप्रमैव साध्याभाव-हेतुविषया व्यभि-

---

शङ्कते, 'न चेति, 'साध्याभावबुद्धिः' पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यक-साध्याभावनिश्चयः, 'अगृह्यमाणविशेषा' अगृहीताप्रामाण्यका, 'विशेषदर्शनेन' रजतत्वव्याप्यवत्तानिश्चयेन, 'पीतत्वज्ञाने' शुक्लत्वाभावज्ञाने, शुक्लत्वव्याप्यवत्तानिश्चयेनेति शेषः, 'वादिवाक्येन' वादिप्रतिज्ञा-वाक्येन। नन्विदमयुक्तं तत्र रजतत्वाभावादिज्ञाने भ्रमत्वादिग्रहा-नन्तरमेव रजतत्वाद्यनुमित्यभ्युपगमात्। न च 'तथापि प्रागुक्तरीत्या हेतौ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वविषयकत्वस्यापि तत्रावश्यकतया आवश्यकव्यभिचारनिश्चयप्रतिबन्धकत्वेनान्यथासिद्धिर्दुर्वारेति वाच्यं। प्रमात्वग्रहे साध्याभावांशे पक्षतावच्छेदकस्य धर्मितावच्छेदकत्वे प्रमात्वग्रहप्रतिबन्धकतायामपि तद्दोषतादवस्थ्यात् इति चेत्, एतदस्व-रसेनैव 'पक्षधर्मतावलेनेत्यादिना स्वमतस्य वक्ष्यमाणत्वात्सङ्गतिः।' 'साध्याभाव-हेतुविषयेति पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने साध्याभाववत्त्व-विषयिका सती हेतौ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वविषयिकेत्यर्थः,

---

(१) अनुमानमात्रोच्छेदप्रसङ्गाच्चेति ग०।

चारज्ञानत्वेन दोषो न तु तस्याः प्रमात्वज्ञानमपीति चेत्, तर्हि प्रमायाः अप्रमात्वज्ञाने भ्रान्तानुमितिर्न स्यात् न स्याच्च पक्षे साध्याभावज्ञानप्रमात्वभ्रमादनुमितिप्रतिबन्धः। ननूपजीव्यत्वेऽप्यत्र साध्याभावप्रमेति ज्ञानं न स्वतोदूषकं क्लृप्तत्वात्[१] पक्षे साध्याभावनिश्चयं कुर्व्वत् व्यभिचारज्ञानद्वारेति चेत्। न। अत्र साध्याभावप्रमेति ज्ञानान्नियमतः साध्यज्ञानानुदयात्

---

'व्यभिचारज्ञानत्वेन' साध्याभावांशे प्रमात्मकव्यभिचारज्ञानत्वेन,[२] 'दोषः' अनुमितिप्रतिबन्धकः, रजते नेदं रजतमित्यादिज्ञानञ्च न वस्तुगत्या साध्याभावप्रमेति भावः। 'नन्विति, 'अत्र' पक्षे, एवमपेऽपि, 'न स्वतो दूषकमिति न साक्षात्प्रतिबन्धकमित्यर्थः, तथाच प्रमात्वं कुतो हेत्वाभास इति भावः। 'नियमत इति व्यभिचारज्ञानं विनापीत्यर्थः, 'तस्यैवेति, 'एवकारोऽप्यर्थे, 'प्रतिबन्धकत्वात्' साक्षात्प्रतिबन्धकत्वात्, 'शब्दादाविति शब्दजन्यबोध इत्यर्थः, 'तथा दर्शनादिति एकपदार्थेऽपरपदार्थसंसर्गाभावप्रमेति ज्ञानस्यायोग्यताज्ञानत्वेन प्रतिबन्धकत्वदर्शनादित्यर्थः। ननु तथापि हेत्वभिमतावृत्तित्वेन पक्षे साध्यप्रत्ययाजनकत्वरूपासाधकतालिङ्गत्वाभावात् कुतो हेत्वाभासत्वमित्यत आह, 'साध्याभावप्रमेति साध्याभावप्रमात्वस्य

---

(१) किन्तु क्लृप्तत्वादिति ग०।

(२) प्रमात्मकनिश्चयाकारव्यभिचारज्ञानत्वेनेति क०। प्रमात्वनिश्चयाकारव्यभिचारज्ञानत्वेनेति ख०।

तस्यैव प्रतिबन्धकत्वात् शब्दादौ तथा दर्शनात्, साध्याभावप्रमाविषयवृत्तित्वस्य हेतुवृत्तित्वादसाधकत्वेन साध्याभावप्रमाया हेत्वाभासत्वं साधारण्येऽपि ज्ञायमानं सत् यदनुमितिं प्रतिबध्नाति तस्यैव हेत्वाभासत्वं। न च साध्याभावप्रमाचेति निश्चयदशायां पक्षे साध्याभाव-हेत्वोर्ज्ञानाद्व्यभिचारइति वाच्यं।

---

स्वाश्रयविशेष्यीभूतपक्षवृत्तित्वसम्बन्धेन हेतुवृत्तित्वादित्यर्थः, 'असाधकत्वेनेति पाठः हेतोरसाधकत्वसाधकत्वेनेत्यर्थः, 'असाधनत्वेनेति पाठेऽप्ययमर्थः, 'असाधारणत्वेनेति पाठस्त्वप्रामाणिकः,(१) 'साध्याभावप्रमाया इति भावप्रधानोनिर्देशः, 'हेत्वाभासत्वमिति, अनेनैव परम्परासम्बन्धेन तस्यासाधकतासाधकत्वात्। न च स्वरूपासिद्धिसङ्कीर्णं कथमनेन सम्बन्धेनासाधकतासाधकत्वं तस्येति वाच्यं। येन केनचित् सम्बन्धेन पक्षवृत्तित्वस्यैव तत्र घटकत्वात् इति भावः।

ननु तथापि शाब्दबोधेऽप्येतज्ज्ञानस्य प्रतिबन्धकतया न हेत्वाभासत्वसम्भवः अनुमित्यसाधारणदोषस्यैव हेत्वाभासत्वादित्यत आह, 'साधारण्येऽपीति, साधारण्येनासाधारण्येन वा यज्ज्ञानमनुमितिप्रतिबन्धकं तस्यैव हेत्वाभासत्वमित्यर्थः। व्यभिचारज्ञानेनान्यथासिद्धिं निराकर्त्तुं शङ्कते, 'न चेति, 'अत्र' पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने पक्षे,

---

(१) पाठस्तु प्रामादिक इति ख०।

प्रमात्वज्ञानस्य साध्याभावनिश्चयहेतुत्वेन तद्दशायां तदभावात्। पक्षधर्म्मताबलेन प्रसिद्धं बाधान्न सिध्य-

'साध्याभाव-हेत्वोर्ज्ञानादिति(१) पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने साध्याभाववत्त्वस्य हेतौ च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वस्य ज्ञानादित्यर्थः, 'व्यभिचारः' व्यभिचारग्रहः, हेतौ यद्धर्म्मावच्छिन्नवृत्तित्वमवगाहते तद्धर्म्मावच्छिन्ने साध्याभाववत्त्वविषयकस्यापि समूहालम्बनज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानत्वादिति भावः। 'प्रमात्वज्ञानस्य' यथोक्तप्रमात्वप्रकारकज्ञानस्य, हेतुतावच्छेदकप्रकारकज्ञानविधया इति शेषः। 'साध्याभावनिश्चयहेतुत्वेनेति साध्याभावप्रमाविशेष्यत्वेन हेतुना पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने अनुमित्यात्मकसाध्याभावनिश्चयहेतुत्वेनेत्यर्थः, 'तद्दशायां' प्रमात्वज्ञानदशायां, 'तदभावादिति पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने साध्याभावनिश्चयानावश्यकत्वादित्यर्थः, प्रमात्वस्य साध्याभाववत्त्वघटितत्वेऽपि तदंशे निर्द्धर्म्मितावच्छेदकत्वात्, यद्धर्म्मावच्छिन्नवृत्तित्वं हेतौ विषयीक्रियते तद्धर्म्मोपलक्षिते निर्द्धर्म्मितावच्छेदककसाध्याभाववत्त्वज्ञानन्तु न व्यभिचारज्ञानमिति भावः। पूर्व्वोक्तास्वरसेन स्वमतमाह, 'पक्षधर्म्मताबलेनेत्यादिना 'वयमित्यन्तेन, 'पक्षधर्म्मताबलेन' वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वतवृत्तिरिति सामान्यतः परामर्शेन, 'प्रसिद्धं' दृष्टान्तेन ज्ञातं महानसीयवह्न्यादिकं, 'बाधात्' बाधादेव पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने तदभावनिश्चयादेवेति यावत्, 'इति बाधः पृथगिति

(१) साध्याभाव-हेतुज्ञानादितीति क०, ग०, साध्याभाव-हेतुज्ञानादिति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठः।

तीति बाधः पृथक्। प्रसिद्धवह्न्यभाववति पक्षे व्यभिचारान्न तत्सिद्धिरिति चेत्, तर्ह्यप्रसिद्धवह्न्यभाववति सपक्षे व्यभिचारात् तमपि न साधयेत् तदज्ञानात्तत्साधनेऽनुमितिरप्रमा स्यात्। अथ पक्षवृत्तेरन्य एव धूमादिः सपक्षे, तर्हि गोत्व-पृथिवीत्व-द्रव्यत्वादे-

---

अतः पक्षविशेष्यक-तदभावनिश्चयत्वेनापि तदनुमितौ प्रतिबन्धकत्वमावश्यकमित्यर्थः, तथाच तदभाववत्पक्ष एव पक्षविशेष्यक-तदनुमितौ बाध इति भावः। 'प्रसिद्धवह्न्यभाववतीति प्रसिद्धवह्न्यभाववत्त्वेन विषयीकृतस्य पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नस्य हेतौ वृत्तिमत्त्वज्ञानादित्यर्थः, 'न तत्सिद्धिरिति व्यभिचारज्ञानादेव न तत्सिद्धिरित्यर्थः। गूढाभिसन्धिमाह, 'तर्हीति, 'अप्रसिद्धवह्न्यभाववतीति दृष्टान्ते अज्ञातस्य पक्षीयसाध्यस्याभाववतीत्यर्थः, 'व्यभिचारात्' हेतौ वृत्तित्वज्ञानात्। ननु यदैवाप्रसिद्धवह्न्यभाववत्त्वज्ञानं न सपक्षे तदैव तत्साधयेदित्यत आह, 'तदज्ञानादिति, 'तत्साधने' तत्साधनसम्भवेऽपि, 'अनुमितिरप्रमा स्यादिति व्यभिचारिहेतुजन्यत्वेनानुमितिरप्रमा स्यादित्यर्थः, एतच्चापाततः व्यभिचारिलिङ्गजन्यत्वेऽपि विषयबाधाभावेनानुमितेरप्रमात्वासम्भवात्[१] अन्यथा घटो द्रव्यं सत्त्वादित्यादावप्यनुमितेरप्रमात्वप्रसङ्गादिति ध्येयं। 'अथेति, तथाच पक्षवृत्तिहेतौ पक्षीयसाध्यव्यभिचारज्ञानाभावात् तद्धेतुकपक्षीयसाध्यानुमितौ न किमपि बाधकमिति भावः। 'तर्हि' तथापि, 'अप्रसिद्धसाध्यायेति पक्षवृत्तिसा-

---

(१) अप्रमात्वाभावसम्भवादिति क॰।

रप्रसिद्धसास्नाद्यनुमानं न स्यात् सास्नादिप्रत्येकव्यभिचारात्। यदि च साध्यतावच्छेदकसास्नात्वादिसामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववति न गोत्वादिकमिति न व्यभिचारः, तर्हि धूमेऽप्येवंव्यभिचाराभावात् साध्यतावच्छेदकेन प्रकारेणाप्रसिद्धमिव प्रसिद्धमपि साध्यं

---

स्नादेरित्यर्थः, 'आदिपदाद्गन्धवत्त्व-गुणवत्त्वादिपरिग्रहः, 'सास्नादीति गोत्वादिषु सास्नादीनां प्रत्येकं व्यभिचारज्ञानादित्यर्थः। अभिसन्धिमुद्घाटयति, 'यदि चेति, 'साध्यतावच्छेदकेति गृहीतव्यापकतावच्छेदकेत्यर्थः, 'न गोत्वादिकमिति न गोत्वादिज्ञानं, 'न व्यभिचार इति न प्रतिबन्धकीभूतो व्यभिचारग्रह इत्यर्थः, तद्धर्मावच्छिन्नव्यापकताविषयकपरामर्शहेतुकतद्धर्मावच्छिन्नविधेयकानुमितिं प्रति तद्धर्मावच्छिन्नाभाववद्वृत्तित्वरूपव्यभिचारज्ञानं प्रतिबन्धकमित्येव प्राचामभ्युपगमादिति भावः। 'एवं व्यभिचाराभावादिति गृहीतव्यापकतावच्छेदकवह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववद्वृत्तित्वरूपव्यभिचारज्ञानाभावादित्यर्थः,'साध्यतावच्छेदकेनेति, तथाचेत्यादिः,'अप्रसिद्धमिव' अप्रसिद्धं वह्नि-सास्नादिकमिव, 'साध्यं' वह्नि-सास्नादिकं, 'यदि बाधो न दोष इति यदि पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यक-तदभावनिश्चयत्वेन तदनुमितौ न प्रतिबन्धकत्वमित्यर्थः। नन्विदमयुक्तं प्रसिद्धवह्नेर्बाधज्ञानं वह्नित्वरूपेण महानसीयवह्नित्वरूपेण वा आद्येऽप्रसिद्धवह्नेरपि साध्यतावच्छेदकवह्नित्वरूपेण असिद्धिप्रसङ्गः, अन्त्ये तत्सत्त्वे प्रसिद्धवह्नेर्वह्नित्वरूपेणानुमितिरापाद्यते महानसीयवह्नित्वादिना वा प्रथमे

इष्टापत्तिः भिन्नप्रकारकत्वेन तादृशबाधज्ञानस्य तत्र प्रतिबन्धकत्वानभ्युपगमात् वायौ पार्थिवादिसकलविशेषरूपाभावग्रहेऽपि वायूरूपवान्न वेति संशयस्य वायूरूपवानिति निश्चयस्य चोत्पादात् द्वितीयकल्पस्य च तद्रूपेण परामर्शविरहादेवासम्भवः तद्रूपेण परामर्शसत्त्वे च व्यभिचारज्ञानेनान्यथासिद्धिस्तदवस्थेति । मैवं । इतरबाधादिसहकारात्[१] व्यापकतानवच्छेदकेनापि रूपेणानुमितौ साध्यं प्रकारीभवति यथा अयं जीवन-मरणान्यतरप्रतियोगी प्राणित्वादित्यत्र जीवनप्रतियोगित्वेन जीवनप्रतियोगित्वं, इत्यश्च वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वतवृत्तिरिति सामान्यतः परामर्शो महानसीयवह्नीतरवह्न्यभाववान् पर्व्वत इतीतरबाधज्ञानं महानसीयवह्निकल्पने लाघवमिति लाघवज्ञानं वा वर्त्तते अथ च महानसीयवह्न्यभाववान् पर्व्वत इति महानसीयवह्नेरपि बाधज्ञानं वर्त्तते तत्र महानसीयवह्नित्वरूपेणानुमितिवारणाय बाधज्ञानस्य पृथक्प्रतिबन्धकत्वावश्यकत्वात् । न चैवं 'साध्यतावच्छेदकेन प्रकारेणेति मूलासङ्गतिरिति वाच्यं । तस्याप्रसिद्धमिवेत्यत्रैवान्वयात् प्रसिद्धमपि साध्यमित्यस्य च महानसीयवह्नित्वादिनेति शेषः, इति न काप्यनुपपत्तिः ।

नव्यास्तु अयं वृक्षः 'कपिसंयोगी एतत्त्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यके यदा केवलविशेषणताविशेषसम्बन्धेन पक्षे साध्यतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववत्त्वज्ञानमस्ति अव्याप्यवृत्तित्वज्ञानञ्च साध्याभावे नास्ति तदा तत्रानुमितिवारणाय पक्षविशेष्यक-

---

(१) इतरबाधादिज्ञानसहकारादिति ग॰ ।

धूम-गोत्वादिकं साधयेत् यदि बाधो न दोष इति वयम्। -साध्याभाववन्मात्रसहचारो न व्यभिचारः

तदभावनिश्चयत्वेन[१] पृथक्प्रतिबन्धकत्वमावश्यकं तस्य हेतौ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वविषयकत्वेऽपि व्यभिचारज्ञानत्वाभावात् अनवच्छिन्नाधिकरणतासम्बन्धेन साध्याभाववत्त्वस्य व्यभिचारघटकत्वात् बाधज्ञानस्य तु केवलविशेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्याभावावगाहित्वेऽपि अव्याप्यवृत्तित्वग्रहविरहदशायां प्रतिबन्धकत्वात्। न चैवं केवलविशेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्याभाववतः पक्षस्यापि बाधतया अव्याप्यवृत्तिसाध्यक-व्याप्य-पक्षधर्म्महेतोरपि बाधितत्वापत्तिरिति वाच्यं। हेत्वाभासविभाजकतावच्छेदकबाधितत्वस्य तत्रेष्टत्वात् बाधितव्यवहारनियामके चानवच्छिन्नाधिकरणतासम्बन्धेन साध्याभाववत्त्वस्य घटकत्वात् "बाधितोऽयमपक्षधर्म्मो हेतुरनैकान्तिको वा" इति प्रवादस्य व्याप्यवृत्तिसाध्यकबाधपरत्वात् अन्यथा यादृशविशिष्टविषयित्वमित्यादिप्रागुक्तहेत्वाभाससामान्यलक्षणस्य केवलविशेषणताविशेषसम्बन्धेन कपिसंयोगाद्यभाववति वृक्षादावतिव्याप्त्यापत्तेः तत्राप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितत्ववदव्याप्यवृत्तित्वग्रहानास्कन्दितत्वस्यापि निश्चयविशेषणत्वावश्यकत्वादिति तत्रैव स्फुटमिति प्राञ्चः।

ज्ञानासाङ्कर्य्यं व्यवस्थाप्य विषयासाङ्कर्य्यं व्यवस्थापयति, 'साध्याभाववन्मात्रेति, 'सहचारः' वृत्तित्वं, 'साध्याभावमात्रेति पाठे 'सहचारः'

(१) साध्याभावनिश्चयत्वेनेति ख०, ग०।

साध्यप्रागभाव-ध्वंसवद्वृत्तित्वेन व्यभिचारितया पृथिवीत्वादिना गन्धादेः द्रव्यत्वादिना 'गुणस्यानुमानभङ्गप्रसङ्गात्, किन्तु साध्यात्यन्ताभाववद्गामित्वम् एवञ्च स्वप्रागभाव-ध्वंसावच्छिन्नतदाश्रये तत्प्रतियोगिसाधने पक्षे व्यभिचारोनेति बाधोदूषणम्। अथा-

---

सामानाधिकरण्यं, 'अनुमानभङ्गप्रसङ्गादिति अनुमाने व्यभिचार्य्यहेतुकत्वभङ्गप्रसङ्गादित्यर्थः, तथाच गन्धवान् पृथिवीत्वात् गुणवान्द्रव्यत्वादित्यादावतिव्याप्तिप्रसङ्गादिति फलितं। 'साध्यात्यन्ताभावेति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववद्गामित्वमित्यर्थः, एतादृशाभावविशेषलाभायैवात्यन्ताभावपदं अन्यथा अत्यन्ताभावपदोपादानेऽपि वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावमादायैव गन्धवान् पृथिवीत्वादित्यादावतिव्याप्तितादवस्थ्यात्। 'स्वप्रागभावेति स्वप्रागभाव-स्वध्वंसकालविशिष्टेत्यर्थः, 'तदाश्रय इति, 'पक्ष इत्यग्रेतनमत्र सम्बध्यते, तन्मात्रवृत्तिना हेतुनेति शेषः, 'तत्प्रतियोगीति कर्म्मधारयः तद्रूपप्रतियोगिसाधन इत्यर्थः, 'व्यभिचारो नेति ध्वंस-प्रागभावाधिकरणे देशे सामान्यात्यन्ताभावाभावेन यथोक्तव्यभिचारस्य तत्रासम्भवादिति भावः। 'बाधो दूषणमिति प्रागभावादिरूपसाध्याभावत्पक्षात्मको बाधः स एव दोष इत्यर्थः, तथाचैतद्गन्धप्रागभावकालीनैतद्गन्धध्वंसकालीनो वायं घट एतद्गन्धवान् एतद्घटत्वादित्यादावेव बाधस्य व्यभिचारासङ्कीर्णोदाहरणमिति भावः। प्रागभाव-ध्वंसकालस्य पक्षतावच्छेदकत्वाभिधानं

वच्छेद्ये सिद्धसाधनम्, अवच्छेदके हेत्वसिद्धिः, वि-

---

वक्ष्यमाणरीत्या सिद्धसाधनवारणायेति ध्येयं। प्रतियोगिमत्ताज्ञानं विना दैशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धेन प्रागभावादिमत्त्वज्ञानं न सम्भवतीत्यभिमानेन शङ्कते, 'अथेति, 'अवच्छेद्य इति विशेष्यीभूते पक्षे इत्यर्थः, 'सिद्धसाधनमिति साध्यप्रागभावादिमत्त्वज्ञानकाले साध्यनिश्चय इत्यर्थः, तथाच तदानीं सिद्धिसत्त्वादेवानुमित्यनुत्पाद-सम्भवात् तज्ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावेन प्रागभावादि-रूपसाध्याभाववत्पक्षो न बाध इति भावः। ननु प्रागभावादिरूपसाध्या-भाववत्पक्षस्य बाधत्वाभावेऽपि प्रकृतहेतुना पक्षतावच्छेदकीभूतप्राग-भावादिकालेऽपि कदाचिदवच्छेदकतासम्बन्धेन प्रकृतसाध्यानुमित्यु-त्पत्त्या तत्प्रतिबन्धकज्ञानविषयत्वेन पक्षतावच्छेदकप्रागभावादिकाले अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रकृतसाध्यात्यन्ताभाववत्त्वं बाध एव तथाच एतद्गन्धप्रागभावाद्यधिकरणक्षणः एतद्गन्धवान् एतद्घटत्वादित्यादावेव बाधस्यासङ्कीर्णोदाहरणं सुलभमित्यत आह, 'अवच्छेदक इति, पक्ष-तावच्छेदकप्रागभावादिकाल इत्यर्थः, 'हेत्वसिद्धिरिति, तथाच तस्य व्यभिचारासङ्कीर्णत्वेऽपि स्वरूपासिद्धिसङ्कीर्णतया स्वरूपासिद्धि-व्यभि-चारान्यतरासङ्कीर्णं बाधोदाहरणं दुर्लभमेव अन्यथा ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादावेव केवलव्यभिचारासङ्कीर्णोदाहरणस्य सौलभ्यादिति भावः। ननु तथापि साध्यतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छिन्नसाध्या-त्यन्ताभाववान् पक्षतावच्छेदकप्रागभावादिकालविशिष्टः पक्षो बाध एव। न चैवं तत्र हेतोः सत्त्वासत्त्वाभ्यां व्यभिचार-स्वरूपासिद्ध्यन्यतरस-

शिष्टञ्च नान्यदिति चेत्, तर्हि प्रागभाव-ध्वंसप्रतियोगिनोरेकवृत्तित्वेनैकसमयतापि स्यात्। अथ यत्समयावच्छेदेन तत्र प्रागभावः प्रध्वंसो वा न तत्समयावच्छेदेन प्रतियोगीति चेत्, तर्हि तदवच्छेदेन

---

ङ्करो दुर्व्वार एवेति वाच्यं। प्रतियोगिव्यधिकरणसाध्याभावस्यैव व्यभिचारघटकत्वात् बाधे च प्रतियोगिव्यधिकरणत्वस्याघटकत्वात् इत्यत आह, 'विशिष्टञ्चेति, तथाच तस्यापि प्रागभावाद्यधिकरणदेशतया नात्यन्ताभावसम्भव इति भावः। गूढ़ाभिसन्धिमाह, 'तर्हीति विशिष्टस्यानतिरिक्तत्वे हीत्यर्थः, 'प्रागभाव-ध्वंसप्रतियोगिनोरिति प्रागभावस्य ध्वंसस्य प्रागभाव-ध्वंसं प्रागभाव-ध्वंसस्य प्रतियोगी च प्रागभाव-ध्वंसप्रतियोगिनोरित्येकवचनान्तद्वन्द्वगर्भः इतरेतरद्वन्द्वः "सर्व्वो द्वन्द्वो विभाषया एकवचनं भवति" इत्यनुशासनादितरेतरद्वन्द्वस्यापि कदाचिदेकवचनान्तता, 'प्रागभाव-ध्वंसप्रतियोगिनामिति बहुवचनान्तपाठस्तु सुगम एव, 'एकवृत्तित्वेन' एकदेशवृत्तित्वेन, 'एकसमयतापीति एककालविशिष्टैकदेशनिरूपितवृत्तितापीत्यर्थः, विशिष्टस्यानतिरिक्तत्वादिति भावः। अभिसन्धिमुद्घाटयितुमाह, 'अथेति, तथाचैकसमयावच्छिन्नैकदेशवृत्तित्वस्याभावात् विशिष्टनिरूपितवृत्तित्वाभाव इति भावः। 'तर्हीति एकसमयावच्छिन्नस्यैकदेशवृत्तित्वस्याभावेऽपीत्यर्थः, 'तदवच्छेदेनेति स्वप्रागभावादिसमयावच्छिन्नपक्षवृत्तित्वप्रकारेण प्रतियोग्यनुमितिप्रतिबन्धकं सिद्धसाधनं नेत्यर्थः, शुद्धप्रतियोगि-

प्रतियोगिसाधने न सिद्धसाधनं किन्तु बाध एव, अन्यथा भावात्यन्ताभावयोरप्यव्याप्यवृत्तित्वभङ्गः एक-वृत्तित्वात् अवच्छेदकभेदेन वृत्तिरिहापि तुल्या तत्र

---

सत्त्वानिश्चयस्य तादृशप्रतियोग्यनुमितावप्रतिबन्धकत्वादिति भावः। एतच्च देशः कालो वा यत्र पक्षतावच्छेदकस्तत्र पक्षतावच्छेदका-वच्छिन्नपक्षवृत्तित्वं साध्ये प्रकारीभूय भासते अवच्छिन्नत्वञ्च स्वरूप-सम्बन्धविशेष इति जरत्तरमतानुसारेणाभिहितं। 'किन्तु बाध-एवेति किन्तु प्रागभावादिरूपसाध्याभाववत्त्वेन पक्षज्ञानमेवेत्यर्थः, तादृशानुमितिप्रतिबन्धक इति शेषः। तथाच प्रागभावादिरूप-साध्याभाववत्पक्षोऽपि बाध इति भावः।

ननु साध्याधिकरणदेशेऽपि साध्यप्रागभावादिसत्त्वे प्रागभावादेर-व्याप्यवृत्तित्वभङ्गप्रसङ्गः प्रतियोग्यधिकरणदेशावृत्तित्वस्याव्याप्यवृत्ति-त्वरूपत्वात् किन्तु प्रतियोग्युत्पत्तिप्राक्कालादिवृत्तिरेव प्रागभावादिः अतएव प्रागभाव इति व्यावहार इत्यत आह, 'अन्यथेति प्रतियोग्य-धिकरणदेशावृत्तित्वस्याव्याप्यवृत्तित्वरूपत्वे इत्यर्थः, 'भावात्यन्ताभाव-योरिति पाठः, भावस्य संयोगादेस्तदत्यन्ताभावस्य चेत्यर्थः, 'अन्यो-न्यात्यन्ताभावयोरिति पाठस्तु प्रामादिकः, 'एकवृत्तित्वात्' प्रति-योगिना सममेकदेशवृत्तित्वात्। इदमुपलक्षणं समवायादिसम्बन्धा-वच्छिन्नगोत्वाद्यभावस्याव्याप्यवृत्तित्वप्रसङ्ग इत्यपि बोध्यं, तस्मात्प्रति-योग्यनवच्छेदकावच्छेदेन प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वमेवाव्याप्यवृत्तित्वं तच्चेहाप्यस्तीत्यभिप्रेत्याह, 'अवच्छेदकभेदेनेति 'तत्र' संयोगादि-

देशभेदोऽवच्छेदकोऽत्र तु समयभेदइति। असिद्धेरपि

तदत्यन्ताभावेषु, 'अत्र तु' ध्वंस-प्रागभावयोस्तु, एतच्चापाततः अव्याप्य-वृत्तित्वादिग्रहाभावविशिष्टस्य पक्षविशेष्यक-साध्यतावच्छेदकसम्बन्धाव-च्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववत्त्वज्ञानस्यै-वानुमितिप्रतिबन्धकतया तादृशसाध्याभाववत्पक्षस्यैव बाधत्वेन साध्य-प्रागभावादिमत्पक्षस्य बाधत्वविरहात् तज्ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावात्। न चैवं स्वरूपासिद्धि-व्यभिचारान्यतरासङ्कीर्णबाधो-दाहरणमेव दुर्लभमिति वाच्यं। घटो गन्धवान् पृथिवीत्वात् अयं वृक्षः कपिसंयोगवान् एतद्वृक्षत्वादित्यादिकालिक-दैशिकाव्याप्यवृत्ति-साध्यकव्याप्य-पक्षधर्मव्याप्यवृत्तिहेतुमात्रस्यैव तादृशबाधोदाहरणस्य सुलभत्वात् ध्वंस-प्रागभावयोरत्यन्ताभावविरोधित्वे मानाभावात् गन्धवत्यपि घटे उत्पत्तिकालावच्छेदेन गन्धात्यन्ताभावसत्त्वात् अग्रा-वच्छेदेन कपिसंयोग-तद्ध्वंस-प्रागभाववत्यपि वृक्षे मूलावच्छेदेन कपि-संयोगाभावसत्त्वात् व्याप्तिलक्षणे प्रतियोगिव्यधिकरणाभावस्य घटक-तया व्यभिचारलक्षणेऽपि तादृशसाध्याभावस्यैव घटकत्वेन व्यभिचार-विरहात् हेतोर्व्याप्यवृत्तितया न तत्र स्वरूपासिद्धिरिति बोध्यं। न च प्रतियोगिव्यधिकरणसाध्याभाववत्पक्षस्यैव बाधतया बाध एव तत्र कुथमिति वाच्यं। प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्य बाधज्ञानप्रतिबन्धकता-यामघटकतया साध्याभाववत्पक्षमात्रस्यैव बाधत्वात् अन्यथा यादृश-विशिष्टविषयित्वमित्यादि हेत्वाभाससामान्यलक्षणस्य बाधलक्षणस्य च तत्रातिव्याप्तिप्रसङ्गात् प्रतियोगिव्यधिकरणसाध्याभाववत्पक्षस्य प्रति-

सन्धकतावच्छेदकत्रिशिष्टान्तरघटितत्वेन हेत्वाभासत्वाभावस्येष्टत्वात्[1] पर्व्वतो वह्निमान् पर्व्वतत्वात् कालो गोत्ववान् गोत्वादित्यादेरपि बाधासङ्कीर्णोदाहरणस्येष्टत्वात्। न च प्रतियोगिवैयधिकरण्या-विषयकव्याप्तिज्ञानस्याप्यनुमितिहेतुतया तत्प्रतिबन्धकज्ञानविषयत्वेन केवलसाध्याभाववद्वृत्तिसाधनमपि व्यभिचारस्तस्य च यथोक्तस्थलेष्वपि सत्त्वात् कथं व्यभिचारासाङ्कर्य्यमिति वाच्यं। यथोक्तस्थलेषु व्यभिचा-रित्वस्य व्यवहारविरहेण प्रतियोगिव्यधिकरणसाध्याभावस्यैव व्याप्य-वृत्तिसाध्यकस्थले व्यभिचारघटकत्वात् अत एव तत्साध्यकहेत्वाभा-ससामान्यलक्षण-व्यभिचारसामान्यलक्षण-साधारणलक्षणेष्वप्यनायत्या प्रतियोगिव्यधिकरणाभावघटितैव व्याप्तिर्घटिका अन्यथा भट्टाचार्य्या-दीनां स्वोत्पत्तिकालीनो घटो गन्धवान् पृथिवीत्वादित्यादेः स्व-रूपासिद्धिव्यभिचारान्यतरासङ्कीर्णबाधोदाहरणत्वाभिधानस्यासङ्गत-त्वापत्तेः गन्धादेः कालिकाव्याप्यवृत्तितया साध्याभाववद्वृत्तित्वस्य तत्रापि सत्त्वात्। यदि च शुद्धसाध्याभाववद्वृत्तिसाधनस्यापि व्यभि-चारित्वमुपेयते हेत्वाभासादिलक्षणेष्वपि प्रतियोगिव्यधिकरणसाध्या-भाववद्वृत्तित्व-शुद्धसाध्याभाववद्वृत्तित्वयोरुभयोः सङ्ग्रहाय प्रतियोगि-वैयधिकरण्याघटिता व्याप्तिरेव निवेश्यते भट्टाचार्य्यादीनां वचनं नाद्रियते उक्तहेतुषु बाधितत्वव्यवहारवद्व्यभिचारित्वव्यवहारोऽपि स्वीक्रियते, तदा तु स्वरूपासिद्धि-व्यभिचारान्यतरासङ्कीर्णत्वं बाधस्य न क्वापीति समासः। ननु बाधज्ञाने सति सिषाधयिषाया असम्भवात् पक्षताविरहादाश्रयासिद्धिसत्त्वादेव नानुमितिर्भविष्यति किं बाधस्य

(१) तत्त्वाभावस्येष्टत्वादिति ग०।

बाध एवोपजीव्यः । न चैवमुपजीव्यत्वाद्बाधवत् सिद्ध-साधनमपि पृथक्, उपजीव्यत्वेऽपि स्वतोऽदूषकत्वात् । न हि साध्यज्ञानं तद्बुद्धिविरोधि, धारावाहिकज्ञानो-दयात् । नाप्यनुमितिविरोधि अनुमित्सया प्रत्यक्ष-सिद्धेऽप्यनुमानदर्शनात्, तदुक्तं प्रत्यक्षदृष्टमप्यनुमानेन बुभुत्सन्ते तर्करसिका इति श्रवणानन्तरं मननदर्श-नाच्च तस्मात् सिद्धिमात्रार्थिनः सिद्धौ न तदिच्छा

---

पृथग्दोषत्वेनेत्यत आह, 'असिद्धेरपीति सिषाधयिषात्मकपक्षता-विरहरूपाश्रयासिद्धेरपीत्यर्थः, 'उपजीव्य इति, तथाचोपजीव्यत्वात् बाधोऽपि दोष इति भावः । इदमुपलक्षणं बाधज्ञानसत्त्वे सिषा-धयिषोत्पत्तौ बाधकाभावाच्चेत्यपि बोध्यं । 'उपजीव्यत्वादिति सिषा-धयिषाविरहरूपपक्षताविरहं प्रत्युपजीव्यत्वादित्यर्थः, 'सिद्धसाधनं' साध्यवत्पक्षः, 'पृथगिति, हेत्वाभासः स्यादिति शेषः । 'स्वतोऽदूषक-त्वादिति तज्ज्ञानस्य साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकत्वासम्भवादित्यर्थः, 'साध्यज्ञानं' साध्यवत्पक्षज्ञानं, 'तद्बुद्धिविरोधीति पक्षे साध्यज्ञान-सामान्यविरोधीत्यर्थः, 'ज्ञानोदयात्' प्रत्यक्षोदयात्, 'प्रत्यक्षसिद्धे-ऽपीति प्रत्यक्षतोनिश्चितेऽपीत्यर्थः, 'बुभुत्सन्ते' अनुमित्सया जानन्ति, 'मननदर्शनाच्चेति, श्रवणानन्तरं मननबोधनाच्चेत्यर्थः, 'सिद्धिमात्रा-र्थिन इति सामान्यतः सिद्धित्वप्रकारकफलसाधनताज्ञानमात्रवत-इत्यर्थः, 'सिद्धौ' प्रत्यक्षतः सिद्धौ सत्यां, 'न तदिच्छा' न सिद्धीच्छा,

सिद्धिविशेषार्थिनः सास्तीति तस्यानुमितिरेव, एवञ्च सिषाधयिषितपक्षविघटनद्वारा सिद्धसाधनं दूषणं न स्वतः। नन्वभावधीरपि न भावधीप्रतिबन्धिका नेदं रजतमिति भ्रमानन्तरं रजतनिश्चयात्। नचाभावप्रमा तथा, अपीतः शङ्ख इति प्रमापयतएव पीतोऽयमिति भ्रमदर्शनादिति चेत्, न, विरोधिज्ञानं हि प्रति-

---

'सिद्धिविशेषार्थिन इति अनुमित्यादिरूपसिद्धिविशेषत्वप्रकारकफलसाधनताज्ञानवत इत्यर्थः, 'सास्ति' प्रत्यक्षतः सिद्धौ सत्यामपि सिद्धीच्छास्ति, 'सिषाधयिषितेति सिषाधयिषारूपपक्षताविघटनद्वारेत्यर्थः, 'सिद्धसाधनं' साध्यवत्पक्षनिश्चयः, 'दूषणं' क्वचिदनुमितिविघटकं, 'न स्वत इति न साक्षादित्यर्थः, एतच्च सिषाधयिषायाः पक्षतात्वमतेन, मणिकृन्मते तु साध्यवत्पक्षो यथा न हेत्वाभासस्तथोक्तं सामान्यलक्षणविचारावसर इति ध्येयं। 'भ्रमानन्तरमिति सति विशेषदर्शन इति शेषः; तथाच साध्याभाववत्पक्षरूपस्यैव बाधस्य कथं हेत्वाभासत्वमिति भावः। 'अभावप्रमेति अगृहीताप्रामाण्यकाभावज्ञानमित्यर्थः, नेदं रजतमिति भ्रमे च विशेषदर्शनोत्पत्तिकाले अप्रामाण्यग्रहादिति भावः। 'प्रमापयतः' अगृहीताप्रामाण्यकज्ञानवतः, 'भ्रमदर्शनादिति दोषविशेषजन्यचाक्षुषभ्रमदर्शनादित्यर्थः, 'विरोधिज्ञानमिति विरोधितावच्छेदकावच्छिन्नं

बन्धकं प्रत्यक्षभ्रमस्य च प्रत्यक्षप्रमा विरोधिनी सा च शङ्खादौ दोषात् नास्त्येव अनुमितौ त्वभावप्रमामात्रमेव विरोधीति कथमभावप्रमायां भावानुमितिरिति । स चायं दशविधः धर्म्मिग्राहकमानबाधितं घटो व्यापकः सत्त्वादिति प्रत्यक्षेण परमाणवः सावयवा मूर्त्त-

---

ज्ञानमित्यर्थः, 'प्रतिबन्धकं' प्रतिबध्यानुत्पादप्रयोजकं, 'प्रत्यक्षभ्रमस्य चेति लौकिकप्रत्यक्षात्मकभ्रमस्य चेत्यर्थः, 'प्रत्यक्षप्रमेति समानेन्द्रियजन्यलौकिकप्रत्यक्षप्रमेत्यर्थः, लौकिकप्रत्यक्षं प्रति समानेन्द्रियजन्यलौकिकग्राह्याभावनिश्चयस्यैव प्रतिबन्धकत्वादिति भावः । 'सा चेति लौकिकचाक्षुषापीतत्वप्रमा चेत्यर्थः, एतच्चापाततः यत्रापीतः शङ्ख इति लौकिकचाक्षुषोत्पत्तिसमकालं तदुत्तरकालं वा दोषोत्पत्तिस्तत्र तदनन्तरं पीतः शङ्ख इति भ्रमानुत्पत्तेर्दुर्व्वारत्वात् । वस्तुतस्तु दोषविशेषाद्यजन्यत्वस्य प्रतिबध्यतावच्छेदकत्वात्तदर्थं दोष इत्येव तत्त्वं । 'अभावप्रमामात्रमिति अगृहीताप्रामाण्यकाभावनिश्चयमात्रमित्यर्थः, 'अभावप्रमायां' अगृहीताप्रामाण्यकाभावनिश्चये, 'स चायमिति स चायं बाधितो हेतुरित्यर्थः, 'दशविध इति धर्म्मिग्राहकमानबाधितं त्रयं, साध्यप्रतियोगिग्राहकमानबाधितं त्रयं, साध्यग्राहकमानजातीयमानबाधितमेकं, हेतुग्राहकमानबाधितं त्रयं, क्रमेण दशविधमित्यर्थः, एतदेव विवृणोति, 'धर्म्मिग्राहकमानबाधितमिति, त्रयमिति शेषः, 'धर्म्मी' पक्षः, तदेव त्रयं क्रमेण दर्शयति, 'घट इत्यादिना आगमेनेत्यन्तेन, 'व्यापकः' विभुः, 'प्रत्यक्षेणेति धर्म्मिणो घटस्य ग्राहकं यत्प्र-

त्वादित्यनुमानेन मेरुः पाषाणमयः पर्व्वतत्वादिति सु-
वर्णमयत्वबोधकागमेन, साध्यप्रतियोगिग्राहकबाधितं
वह्निरनुष्णः कृतकत्वादिति प्रत्यक्षेण शब्दोऽश्रावणो
गुणत्वादित्यनुमानेन गवयत्वं गवयपदाप्रवृत्तिनिमित्तं
जातित्वादित्युपमानेन, साध्यग्राहकबाधितं शुचि नर-

---

त्यचं तेनेत्यर्थः, 'बाधितमिति सर्व्वत्र सम्बध्यते, 'अनुमानेनेति धर्म्मिणः परमाणोर्ग्राहकानुमानेनेत्यर्थः, 'पाषाणमयः' असुवर्णमयः, 'सुवर्ण-मयत्वबोधकेति धर्म्मिणो मेरोः सुवर्णमयत्वबोधकेत्यर्थः। यद्यपि गव-यत्वविशिष्टं गवयादिपदवाच्यत्वं न गवयसम्बन्धि वाच्यतात्वादिति धर्म्मिग्राहकोपमानबाधितमप्यतिरिक्तं सम्भवति तथाप्युपलक्षणमेत-दिति द्रष्टव्यं। 'साध्यप्रतियोगिग्राहकबाधितमिति, त्रयमिति शेषः, तदेव त्रयं क्रमेण दर्शयति, 'वह्नीत्यादिना 'उपमानेनेत्यन्तेन, 'प्रत्य-क्षेणेति साध्यप्रतियोगिग्राहकप्रत्यक्षेणेत्यर्थः, 'अनुमानेनेति साध्य-प्रतियोगिग्राहकानुमानेनेत्यर्थः, 'उपमानेनेति साध्यप्रतियोगिग्रा-हकोपमानेनेत्यर्थः। यद्यपि स्वर्गो नाग्निष्टोमकरणकः सुखत्वाल्लौकिक-सुखवदिति साध्यप्रतियोगिग्राहकागमबाधितमप्यतिरिक्तं सम्भवति, तथाप्युपलक्षणमेतदिति द्रष्टव्यं। 'साध्यग्राहकबाधितं' साध्यग्राहक-जातीयमानबाधितं, एकमिति शेषः, तदेव दर्शयति, 'शुचीति नरशिरः कपालं शुचीति योजना, 'आगमेनेति दृष्टान्ते शङ्खे शुचिताद्रूपसाध्यग्राहकं यद्वाक्यमागमरूपेण तत्सजातीयेन नरशिरः

शिरः कपालं[1] प्राण्यङ्गत्वादित्यागमेन, हेतुग्राहकबाधितं जलानिलावुष्णौ पृथिवीतो विपरीतस्पर्शवत्त्वात् तेजोवदिति प्रत्यक्षेण मनो विभु ज्ञानसमवाय्याधारत्वादित्यनुमानेन राजसूयं ब्राह्मणकर्त्तव्यं स्वर्गसाधनत्वादग्निष्टोमवदिति राजसूयकर्त्तव्यताबोधकागमेनेति।

---

कपालं अशुचीति वाक्येनेत्यर्थः, 'हेतुग्राहकबाधितमिति', त्रयमिति शेषः। तदेव त्रयं दर्शयति, 'जलेत्यादि, 'उष्णौ' उद्भूतोष्णौ, 'प्रत्यक्षेणेति हेतुग्राहकप्रत्यक्षेणेत्यर्थः, महति वायावुद्भूतरूपसामान्याभाववत् उद्भूतोष्णस्पर्शसामान्याभावस्यापि प्रत्यक्षत्वसम्भवादिति भावः। 'अनुमानेनेति मनसि ज्ञानसमवायिसंयोगाधारत्वरूपग्राहकानुमानेनेत्यर्थः, 'राजसूयकर्त्तव्यतेति राजसूयस्य क्षत्रियकर्त्तव्यताबोधकहेतुग्राहकागमेनेत्यर्थः, "स्वाराज्यकामो राजसूयेन यजेत" इत्यादिश्रुत्या क्षत्रियकर्त्तव्यतां राजसूयस्य बोधयन्त्या अर्थाद्ब्राह्मणकर्त्तव्यत्वनिषेधादिति भावः। उपलक्षणमिदं, गवयपदं न पशुवाचकं गवयत्ववाचकत्वादिति हेतुग्राहकोपमानबाधितमप्यतिरिक्तं द्रष्टव्यं। यद्यपि वह्निरनुष्णः कृतकत्वादित्यादिकं सर्व्वमेव धर्म्मिग्राहकमान-

---

(१) 'नरशिरः कपालं शुचि' इति क्वचिल्लिखितपुस्तकपाठः परन्त्वयं न समीचीनः तथा सति 'नरशिरः कपालं शुचीति योजना' इति रहस्यसन्दर्भस्यासङ्गत्यापत्तेः।

बाधितं वह्न्यादावुप दिग्राहकमानस्यापि वह्न्यादिरूपधर्मिग्राहकत्वात्। न च धर्मिग्राहकत्वं धर्मितावच्छेदकविशिष्टधर्मिग्राहकत्वमिति वाच्यं। घटो व्याप्य इत्यादावप्यतथात्वात्, तथाप्युद्भावने कथकसम्प्रदायसिद्धप्रकारभेदोऽनेन दर्शित इति न काप्यनुपपत्तिरिति संक्षेपः।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये बाधसिद्धान्तरहस्यं(१) ॥

---

(१) बाधनिरूपणप्रस्तावे हेत्वाभासनिष्ठासाधकतासाधकत्वव्यवस्थापकः 'अथेत्यादिसन्दर्भः यदि रहस्यकृता व्याख्यातः तदा एतत्समाप्तिसूचकं वाक्यं अत्र लेखकप्रमादादायातमिति सम्भाव्यते।

## अथ हेत्वाभासानामसा[illegible]ता-
## साधकत्वनिरूपणं ।

अथ हेत्वाभासानामसाधक[illegible]ासाधकत्वेन सदुत्तरत्वं जात्यादीनाञ्चासाधकतासाधारण्येन परासाधकता-साधकतया स्वव्याघातकत्वादसदुत्तरत्वं, अथ विरुद्ध-त्वादिज्ञानादेव स्वार्थानुमितेरिव परार्थानुमितेरपि प्रतिबन्धे किमसाधकतानुमानेन यद्वचसि वाद्युक्तदूष-णावगतिः स निगृहीत इति समयबन्धेन कथाप्रवृत्तौ दूषणमात्रमुद्भाव्यमन्यथार्थान्तरत्वादिति चेत्, न, इयं ह्युद्देश्यं परार्थानुमितिप्रतिबन्धः, स्थापनाया असाध-

---

### अथ हेत्वाभासानामसाधकतासाधकत्व-
### निरूपणव्याख्यानं ।

असाधकतासाधकत्वनिर्वचनीय उपोद्घातसङ्गतिमाह, 'हेत्वा-भासाभामिति, तथाचासाधकत्वाज्ञाने सदुत्तरत्वापरिचये हेत्वा-भासनिर्व्वचनमेव व्यर्थमापद्येतेति भावः.। नन्वसाधकतासाधकत्वं न सदुत्तरत्वं असाधकतासाधनस्यैवाभावात् इत्याह, 'अथेति, 'परेति परेण यामनुमितिमुद्दिश्य प्रयोगः कृतस्तस्या इत्यर्थः, अन्यथा यद-पेक्षया परत्वं तदीयविरुद्धत्वज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वप्राप्तेरसङ्गत्यापत्तेः, विरुद्धत्वाद्युद्भावनस्य त्वत्प्रयुक्तानुमानाद्विरुद्धत्वादिप्रतिहतात् मेऽनु-मितिरित्यर्थो न तदुद्भावितेन प्रयोक्तुरनुमितिप्रतिबन्ध इत्यर्थ इति

कतासाधनत्वञ्च, तत्राद्यं दूषणमावश्यानादेव, द्वितीयन्तु अलिङ्गत्वज्ञापनात् प्रतिबन्धकत्ववदनेनापि रूपेण दूषकत्वसम्भव इत्यभिप्रायेण वा असाधकतासाधनं। नन्वेवं पञ्चावयवप्रयोगापेक्षा स्यात् अन्यथा न्यूनतापत्तिरिति चेत्। न। दूषणस्यासाधकताव्याप्यत्वमङ्गीकृत्य कथेति तत्पक्षधर्म्मताया एवोद्भाव्यत्वात् अन्यथा अधिकत्वापत्तेः। नन्वेवं कृतकत्वेनानित्यत्वानुमानेऽपि व्याप्तिर्नाभिधेया उभयसिद्धत्वादिति चेत्। न। कथायां समयविषयतया दूषणे त्वसाध-

---

भावः, एवमग्रेऽपि, 'द्वितीयन्त्विति, असाधकतासाधनं न तावद्‌-यावद्विरुद्धत्वादिलिङ्गत्वेन हेतुपञ्चम्यन्तत्वेन उच्यत इत्यर्थः। ननु द्वयमुद्देश्यमित्यत्रैवाक्षेपः स एव च समाधिरित्यसङ्गतेर्द्वयोरुद्देश्यत्वे वीजमाह, 'प्रतिबन्धकत्ववदिति, 'दूषणस्योद्भाव्यतया' दूषणत्वस्योभयरूपतया तदुभयरूपोद्भावनमुद्देश्यमित्यर्थः, वस्तुगत्यासाधकेऽसाधकतानुमितावपि न स्वपक्षसिद्धिरित्यनुमितिप्रतिबन्धकोऽन्यास-आवश्यकः तेनासाधकतानिर्व्वाहात् असाधकतानुमितिस्तु नावश्यकी तदभावेऽपि स्वपक्षसिद्धेः दूषणत्वप्रकारापेक्षया क्वाचित्कस्तदुपन्यासः सामयिक इति सर्व्वतात्पर्य्यार्थः। 'पक्षधर्म्मताया इति, अन्ययसाधकतानुमाने विरुद्धत्वादित्येव प्रयोज्यं न तु पक्षधर्म्मतापि धूमवत्त्वादित्यत्रैवानाकाङ्क्षितत्वात्, तथापि विरुद्धोऽयमिति प्रथमोद्भावनमभिप्रेत्यैतद्द्रष्टव्यं। 'अधिकेति आकाङ्क्षितादधिकमनाकाङ्क्षित-

कताद्यात्युपस्थितेरावश्यकत्वात् अन्यथा कथकत्वविरोधात्। नन्वेवं कृतकत्वेनानुमाने तद्व्याप्तिमनङ्गीकृत्यापि कथासम्भवात् यस्तु कथारम्भे बाधस्यासाधकत्व-

---

मर्थान्तरमिति यावत्। हेतुद्वयाद्युपन्यासेन यथाश्रुतस्यासङ्गतेरिति। 'अन्यथेति, नन्वनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकरूपदूषणत्वनिश्चयादेव कथकत्वनिर्वाहात् कथमेवं, न हीदमेवासाधकत्वव्याप्तिः, अपि त्विदमसाधकत्वमेव, तथाच तद्व्याप्तिप्रतिसन्धानं कथकत्वेऽतन्त्रमेव। न चानुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकरूपवत्त्वमनुमित्यभावनियतं यज्ज्ञानं तद्वत्त्वं तथाच यत्र विरुद्धत्वादिस्तत्रानुमित्यभाव इति व्याप्तिर्भातैवेति वाच्यं। अनुमित्यभावस्यासाधकत्वरूपत्वाभावात् अपि त्वनुमित्यभावप्रयोजकज्ञानविषयतावच्छेदकवत्त्वस्य तत्त्वं तद्व्याप्तिस्त्वाप्रतिसंहितैवेति। मैवं। विरुद्धत्वस्यैवानुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकतया यत्र विरुद्धत्वं तत्र प्रतिबन्धकतावच्छेदकवत्त्वमिति सहचारधीध्रौव्येण व्याप्तिग्रहावश्यकत्वादित्युत्तरकल्पे प्रथमकल्पे च स्फुटैव प्रतीतिरित्युपगमात्, अतएवानुमित्यभावस्य ज्ञानेन साध्यनिश्चये पक्षत्वाभावानुमितिः सम्भवतीत्यनुमित्साधीनपक्षतया अनुमितिरिति सामयिकमसाधकतासाधनं सर्व्वसिद्धमिति। 'अनङ्गीकृत्येति तथाचाङ्गीकारनियमो नास्त्येव तत्रापीति भावः। नन्वेवं पृथिवीत्वेन पक्षतावच्छेदकेनेव इतरभेदानुमानेन पक्षधर्म्मत्वं न प्रदर्श्येत उभयसिद्धत्वात्। न च तत्राप्यभ्युपगमानियमोऽनभ्युपगमे व्याघातापत्तिरिति दूषणान्तरं न त्वभ्युपगमनियम इति वाच्यं। तर्हि चाप्य-

व्याप्तिं नाङ्गीकरोति तं प्रति तद्दूषकत्वं प्रसाध्य पञ्चावयवप्रयोगः कर्त्तव्य एव। यत्तु दूषणे पक्षधर्म्मतामात्रमुद्भाव्यं तत्र, यत्र वादिनोस्तथा समयोऽन्यत्र तु पञ्चावयवप्रयोग एवेति। तन्न। कथासम्प्रदायविरोधात्। अथासाधकत्वं[१] न पक्षे साध्यप्रत्ययाजनकत्वं। तेनापि तत्त्वेनाज्ञानदशायां पक्षे साध्यभ्रमजननात् कदाचिदजनकत्वं सद्धेतावपि। नन्वेतत्काले साध्यविशिष्टपक्षज्ञानाजनकं तत्, न हि दूषणत्वज्ञानदशायां पक्षे भ्रमरूपाप्यनुमितिः, साध्यविशिष्टपक्षज्ञानञ्च हेतुत्वेन ज्ञानदशायां प्रसिद्धमिति चेत्, न, सद्धेता-

---

भ्युपगमाभावे व्याघातोऽस्तु दोषो न त्वभ्युपगमनियम इत्यत आह, 'यस्त्विति यस्तु व्याप्तिमात्रानङ्गीकर्त्ता चार्व्वाकादिः, 'बाधस्य' दोषमात्रस्य, 'दूषकत्वम्' असाधकत्वव्याप्यत्वं, 'प्रसाध्य' व्याघातेनैव, 'प्रयोग' इत्यनन्तरं समाचार इति शेषः। तेनासिद्धिरुत्तरं घटते अन्यथा पञ्चावयवप्रयोगः कर्त्तुमर्हतीत्युक्तौ समाचारविरोधो नोत्तरं घटते अनर्हताया अत्र युक्तत्वादित्यवधेयं। हेतुत्वेनेत्युपलक्षणं हेत्वन्तरेण असिद्धमित्यपि द्रष्टव्यं। अन्यथा वह्निमानयं वह्निविरहादित्यादौ हेतुत्वभ्रमस्याप्यभावादसङ्गत्यापत्तेरिति। विशेषणत्वजये सिद्धान्त एवेति स्वकालस्योपलक्षणत्वपक्षमालम्ब्य दूषयति, 'सद्धेताविति।

---

(१) नन्वसाधकत्वमिति ख०, ग०।

वसत्प्रतिपक्षतादशायामपि पूर्व्वकाले साध्यविशिष्ट-पक्षज्ञानाजनकत्वमस्तीत्यसाधकताप्रसङ्गात्। अथ पक्षे साध्यभ्रमजनकत्वं तत् बाध-विरुद्धयोरपि तत्त्वाज्ञान-दशायां भ्रमजनकत्वादिति चेत्, न, सद्धेतौ सत्प्रतिपक्षेऽसाधारणे च तत्त्वेन ज्ञानदशायां साध्यभ्रमजनकत्वात् अज्ञाने साध्यभ्रमाजनकत्वात्। नापि व्याप्ति-पक्षधर्म्मतान्यतरराहित्यं, सत्प्रतिपक्षासाधारणसद्धेतोरभावात् दशाविशेषे तस्य दोषत्वात् साध्याप्रसिद्धौ प्रकृतसाध्य-व्याप्त्यप्रसिद्धेश्च। नाप्यनैकान्तिकाद्यन्यतमत्वं, यत्कि-ञ्चिदनैकान्तिकत्वस्यातिव्याप्तेः प्रकृतसाध्यानैकान्तिक-त्वस्याप्रसिद्धत्वेन केवलान्वयिसाधनेऽप्रसिद्धेः अंशतः सिद्धसाधनात् साध्याविशेषाच्च। यत्तु एतत्कालीनै-तत्पक्षीयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिकैतत्साध्यप्रमाकरणत्वा-भावः, तत्तत्काल-तत्तत्पक्षविषयसाध्यत्वाभिमतानित्य-

---

'साध्याप्रसिद्धाविति, न च वक्ष्यमाणमप्यसाधकत्वं साध्यगर्भं तत्र न सम्भवतीति तदसङ्ग्राह्यत्वेन न युक्तमव्याप्तिप्रदर्शनं तस्य केवला-मार्थकत्वादिति वाच्यं। साध्याप्रसिद्धेरपि तत्प्रत्ययसिद्धेः शुक्ति-रजतप्रत्ययादौ तथा दर्शनेन तदजनकत्वलक्षणवक्ष्यमाणासाधकत्वस्य प्रकृते समर्थनीयत्वादिति भावः। 'केवलेत्याद्युपलक्षणं सत्प्रतिपक्षा-द्यनुपस्थितेऽन्यत्राप्यप्रसिद्धिर्द्रष्टव्या। 'अंशतः सिद्धेति संशयस्य सिद्ध-

त्वादिप्रमाजनकत्वाभावो वाऽसाधकत्वं। न च प्रतियोग्यप्रसिद्धिः, एतत्कालीनैतत्पक्षीयत्व-तत्तत्काल-तत्तत्पक्षविषयत्वयोर्व्यधिकरणयोरेव प्रतियोगितावच्छेदकत्वादिति। तन्न। सद्धेतोः सत्प्रतिपक्षत्वाज्ञानदशायामपि तादृशप्रमायामकरणभावेनासाधकतापत्तेः। नापि तृतीयलिङ्गपरामर्शस्याप्रमात्वं तत्, विरुद्धादौ परामर्शाभावात् सद्धेतौ सत्प्रतिपक्षेऽसाधारणे च तत्प्रमात्वाच्च। नाप्यनुमितिहेतुभूताभावप्रतियोगिज्ञानविषयत्वं तत् सद्धेतावपि कदाचित् व्यभिचारित्व-सत्प्रतिपक्षत्व-ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वात्। अथानुमितिप्रतिबन्धकप्रमाविषयत्वमसाधकत्वं सद्धेतौ व्यभिचारादिभ्रमः प्रतिबन्धकः अनुमितिप्रतिबन्धकत्वञ्च व्यभिचारादिप्रमायास्तृतीयलिङ्गपरामर्शविघटनद्वारा तुल्यबलताविषयतया वेति चेत्। न। सत्प्रतिपक्षयोर्विरुद्धयोर्वास्तवतुल्यबलत्वाभावेन तद्भ्रमस्य प्रतिबन्धकत्वात्। न च तुल्यबलतया ज्ञायमानेन बोधितसाध्यविपर्य्ययकत्वज्ञानं प्रतिबन्धकं तच्च प्रमैवेति वाच्यं। तुल्यबलताज्ञानमेव हि प्रतिबन्धकं न तु ज्ञाय-

---

स्यैव साधनादित्यर्थः। एवमग्रेऽपि 'तुल्यबलतेति' अत्र वस्तुगत्या यत्तुल्यबलमगृहीतविशेषबलं तद्विषयतया उभयविरुद्धबलविषयतया

मानत्वज्ञानं गौरवादसिद्धेश्च। न च सत्प्रतिपक्षेऽन्यतराङ्गवैकल्यभ्रमैव प्रतिबन्धिकेति वाच्यं। अन्यतरत्वं तदतद्वृत्तिः न च तदतद्वृत्तिसामानाधिकरण्येन ज्ञायमानस्य दोषत्वं, धर्म्ममात्रस्य व्यभिचारज्ञानादनुमित्युच्छेदापत्तेः अन्यतराङ्गवैकल्यज्ञानोपजीव्यस्य तुल्यबलत्वज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्वाच्च। अन्यथा व्याप्यत्वासिद्ध्यन्तर्भावापत्तेः। अथानैकान्तिकादिज्ञानस्य तत्तदनुमितिप्रतिबन्धकत्वमसाधकत्वं तथा हीदमनैकान्तिकादिज्ञानमेतत्साध्यवत्त्वैतत्पुरुषस्यैतत्कालीनैतत्पक्षकानुमितिप्रतिबन्धकम् एतदनैकान्तिकादिज्ञानत्वात् एतदन्यतज्ज्ञानवदिति चेत्। न। एतत्साध्यवत्त्वैतत्पक्षकानुमितेः कदाचिल्लिङ्गभ्रमात् प्रसिद्धावप्येतत्कालीनैतत्पुरुषस्य तादृशानुमित्यप्रसिद्धेः। नापि समीचीनसाध्य-पक्षविषयानुमित्यजनकत्वं,(१) बाध-विरुद्धासिद्धेषु साध्यानधिकरणे पक्षे सत्यसाध्यप्रतीत्य-

---

वेत्यर्थः, न तु तुल्यत्वमपि विषय इति ध्येयं। नन्वन्यतराङ्गवैकल्यसंशयाधायकतया दोष इत्यनुभवसिद्धमित्यरुचेर्दोषान्तरमाह, 'अन्यतरेति, 'एकेति सास्नाशून्यायामपि गवि तदारोपाद्दोत्वा-

---

(१) समीचीनसाध्यविशिष्टपक्षप्रत्ययाजनकत्वमिति ख०।

प्रसिद्धेः वह्निमति बाष्पे धूमभ्रमात् वह्न्यनुमितेः सत्यत्वाच्च। न चान्य एव वह्निस्तत्र भासते, मानाभावात् तद्वह्नेः प्रत्यभिज्ञानात् एकव्यक्तिके तदसम्भवाच्च। न च सानुमितिर्लिङ्गविषयत्वेन भ्रमः, अनुमितौ लिङ्गविषयत्वे मानाभावात्। किञ्च भावोऽभावो-वोभययापि प्रमेयमिति सत्यानुमितौ भावत्वाभावत्व-वति प्रमेयत्वज्ञाने एकत्र तयोरभावादसत्यानुमितिः स्यात्। न चान्यतरत्वं लिङ्गं, तद्व्याप्तिमविदुषोऽप्यनु-मितेर्व्यर्थविशेषणत्वाच्च। अथ साध्यव्याप्यत्वमेव तत्र तन्त्रं तत्र च बाधोनास्तीति चेत्, तर्हि कूटलिङ्गा-दनुमितौ वह्निव्याप्यवत्त्वमेव तन्त्रं वह्निव्याप्यञ्च कि-ञ्चित्तत्रास्त्येव। अथ कूटलिङ्गे वह्निव्याप्याभेदः प्रती-यते तथाच वह्नौ कूटलिङ्गव्यापकाभेदोऽपि, अन्यथा कूटस्यैव वह्निव्याप्यत्वाप्रतीतेः एवञ्च कूटलिङ्गव्यापको वह्नित्वेन भासत इति वह्न्यनुमितिरसत्यैवेति चेत्। न। वह्निव्याप्यालोके धूमारोपात् यत्रानुमितिस्तत्रा-सिद्धिभेदेऽसत्यत्वाभावापत्तेः आलोकव्यापके धूमव्या-पकाभेदात्। अथ लिङ्गमनुमितिविषयोनियमतः पक्ष-

---

ध्यनुमितावित्यर्थः। 'लिङ्गं' लिङ्गतावच्छेदकं, 'वह्निव्याप्येति, एत-च्चाभ्युपेत्य समाहितं, वस्तुतो वह्निव्याप्याभेदे वह्निस्तद्व्यापकतया-

धर्म्मताज्ञानविषयत्वात् व्याप्तिज्ञानविषयत्वात् नियमेनानुमितिहेतुविशेषणधीविषयत्वाच्च पर्व्वतत्ववत्साध्यवच्च। किञ्चैकविशेषणवत्त्वेन ज्ञाते विशेषणान्तरधीसामग्री तत्रैव विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानमिति धूमविशिष्टएव वह्निवैशिष्ट्यानुमितिरिति। ननु चानुमितौ व्यापकत्वभानेऽनुमित्यविच्छेदः। न च फलीभूतज्ञानन्यूनविषयस्यैव परामर्शस्यानुमितिहेतुत्वं, गौरवात्, विषयान्तरसञ्चारात् नानुमितिरित्यपि न, परामर्शस्य चरमकारणत्वात् प्रत्यक्षादिसामग्रीतो बलवत्त्वाच्चेति चेत्। न। सिद्धसाधनेन विच्छेदात्। यद्यप्येवं लिङ्गांशेऽप्रमात्वेऽपि साध्यप्रमात्वात् कथं तस्यासाधकत्वं, तथाप्युक्तसाधकत्वमस्त्येवेति चेत्, अस्तु तावदेवं, त-

---

भासते न तु कूटव्यापके वह्नित्वं सामग्रीविरहादिति ध्येयं। 'नियमत' इति क्लिष्टं आवश्यकतया निश्चीयमानतया चेत्यर्थः। तेनाद्येन आकस्मिकं द्वितीयेन तु व्यापकतावच्छेदकावच्छिन्नमपि सन्दिग्धमुदाहृतभावादि वार्य्यत इति भावः। मध्यस्थेतावपि नियमेनेति पूरणीयं आकस्मिकस्य तत्रापि वारणीयत्वादिति। नांशविवक्षयेदमसाधकत्वं निरुच्यत इत्याह, 'तथापीति। 'अस्तु तावदेवमिति; अभ्युपगमवादोऽयं वस्तुतो नोक्तानुमानादपि तथा सिद्धिरित्येवम्परः तदसिद्धिवीजन्तु अनुमानं सामग्र्यभावेन फलाभावाद्बाधितं तथाहि

थापि दैवात्तत्र धूमसत्त्वे कथं तदंशेऽप्यसत्यता। अतएव आर्द्रेन्धनप्रभवो वह्निर्धूमव्यापको नान्यः। न च वह्नित्वेन व्यापकत्वादन्योऽपि तथा, तेन विनापि धूमसत्त्वात्, एवं वाष्पे धूमभ्रमाद् धूमव्यापको वह्निर्भासते स च तत्र नास्त्येवेति न सानुमितिः सत्येति निरस्तं दैवाद्धूमसत्त्वे सत्यत्वादिति। उच्यते। स्वज्ञानदशायां पक्षे साध्यप्रत्ययाजनकत्वमसाधकत्वं, तथाहि विरुद्धत्वादिज्ञानदशावर्त्तीदं पक्षे साध्यप्रत्ययाजनकं

---

किं साध्यविशिष्टपक्षकानुमितित्ववत् तत्र लिङ्गमपि विषयतया कार्य्यतावच्छेदकं विशेष्यानुमितिं प्रति व्याप्तिज्ञानादीनां हेतुतेति मन्यसे, अथवा सामान्य एव प्रमाणमात्रस्य उपनीतभानजनकत्वं सुरभि चन्दनमित्यादौ क्लृप्तमित्यत्राद्यैवमिति। आद्योगौरवानुभवविरोधाभ्यामेव निरसनीयो द्वितीयस्तु स्यादेव यदि सौरभांशे संस्काररूपप्रत्यासत्तिसन्निकर्षवदिहापि व्याप्तिरूपलिङ्गसन्निकर्षो लिङ्गेनापि भवेत्। अतएव शब्दे: शब्दसन्निकर्षस्याभावाच्छब्दो न शाब्दज्ञानविषयः विशेष्याभाने संसर्गाभाने च विशिष्टबुद्ध्यसिद्धेरन्यथानुपपत्त्यैव पक्षसंसर्गावन्तर्भाव्यैवानुमिति-शाब्दौ प्रति लिङ्ग-शब्दयोर्हेतुतेति व्याप्तिशक्तिविरहेऽपि पक्षसंसर्गगोचरे ताभ्यां ते जन्येते इति सर्वं सुस्थं। स्वज्ञानकालस्य विशेषणत्वमादाय सिद्धान्तयति, 'स्वज्ञानेति, 'साध्यप्रत्ययाजनकत्वं' साध्यप्रत्ययजनकतावच्छेदकरूपविरहः, तानि च अव्यभिचरितत्वादीनि अबाधितत्वासत्प्रतिपक्षि-

विरुद्धादित्वात् पक्षविशेषणमहिम्ना तद्दशायां पक्षे

---

सत्वान्तानि 'तदभावः कदाचित् सत्प्रतिपक्षोत्तीर्णेऽपीति, स्वज्ञानकालीनतया संविशेषितः स च न तादृशोऽन्यदा तथा ज्ञानरूपविशेषणाभावेन विशिष्टाभावात् । एवञ्च सति सव्यभिचारित्वादिरेव पर्य्यवसितः तथा सत्यपि यथा न साध्याविशेषः तथाकरएव स्फुटं । ननु स्वज्ञानकालीनतया जनकत्वाभावे विरुद्धत्वादित्यादिव्यभिचरितस्य तज्जनकतावच्छेदकरूपविरहरूपत्वेऽपि स्वज्ञानविरहकाले विशिष्टाभावात् तथा जनकत्वाभावे यथाश्रुते जनकतावच्छेदकाभावरूपे विवक्षितेऽपि साध्ये स्वज्ञानाप्रवेशे विरुद्धत्वादिति व्यर्थविशेषणं कदाचिदजनकत्वस्य ज्ञायमानत्वलक्षणजनकतावच्छेदकरूपविरहात्मनोऽज्ञायमानत्वस्य च केवलान्वयित्वादित्यभिसन्धिना साध्यं निष्कृष्याह, 'तथाहीति, तथाच ज्ञानकालस्य पक्षतावच्छेदकतया तत्कालीनत्वं साध्यस्य न तु तस्यापि साध्ये प्रवेशो येन व्यभिचारः । न च व्यर्थविशेषणता, विवक्षितसाध्यस्यासार्व्वत्रिकत्वात्, साध्यसिद्धिजनकतावच्छेदकत्वन्तु सत्प्रत्ययजनकज्ञाने विषयतावच्छेदकत्वं अतएवासत्प्रतिपक्षत्वं तुल्यबलज्ञानाभावरूपं प्रतिबन्धकाभावतया स्वरूपसदेवानुमितिजनकं न तु ज्ञातमिति मतावकाशेनेदं घटत इत्यरुच्या लक्षणान्तरं वक्ष्यते, तथाच ज्ञायमानत्वज्ञानमपि यद्यनुमितिहेतुः स्यात् तदा ज्ञायमानत्वमपि तथा जनकतावच्छेदकं भवेत् येनाज्ञातत्वमवच्छेदकाभावः स्यात् एवञ्च सद्धेतौ सत्प्रतिपक्षाद्यनवतारे नोक्तावच्छेदकाभावः कोऽपीति न

साध्यप्रत्ययाजनकत्वं सिद्ध्यति, बाधितादावपि लिङ्ग-त्वभ्रमात् पक्षे साध्यप्रत्ययजनकत्वमिति न प्रति-योग्यप्रसिद्ध्या साध्याप्रसिद्धिः।

यद्वा अनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकरूपवत्त्वमसा-

---

केवलान्वयित्वमिति न व्यर्थविशेषणता। न च सर्व्वो वह्निव्याप्यवान् वह्निमान् तत्त्वादित्यनुमाने स न तद्वान् मेयत्वादित्यादिना सत्प्र-तिपक्षेणैवमन्यत्रापीति सर्व्वमेव सत्प्रतिपक्षितमिति वाच्यं। सर्व्वस्य सर्व्वत्रैवमवताराभावात्। न च स्वज्ञानदशायामित्यत्र ज्ञाने यथा-र्थत्वायथार्थत्वविकल्पः, ज्ञानमात्रस्य विवक्षितत्वात् भ्रममादायाति-प्रसङ्गस्य तादृशावच्छेदकाभावस्वरूपसत्त्वाभावादेवाभावात्। न हि व्यभिचारिभ्रमे वास्तवः सः। न च सत्प्रतिपक्षे विरुद्धव्याप्त्यादौ लिङ्गान्तरे कुतो वास्तवसत्त्वमिति वाच्यं। प्रतीतिबलेन तत्र तत्स-म्बन्धाभ्युपगमात् स च स्वरूपसम्बन्धविशेष एव इत्युक्तं हेत्वाभास-लक्षणे। ये तु यथाश्रुते साध्ये व्यर्थविशेषणत्वाभावेन स्वज्ञानकालमपि साध्ये प्रवेशयन्ति तेषां ज्ञानमात्रगर्भतायां सद्धेतावतिप्रसङ्गः प्रमा-त्वपर्य्यन्ते च वक्तव्ये सत्प्रतिपक्षेऽव्याप्तिरित्यपि दोषो भवति, अस्मा-कन्तु न दोषलेश इति संक्षेपः। ननु बाधिते तथा साध्यप्रत्य-यासिद्ध्या तज्जनकतावच्छेदकाभावोऽप्रसिद्ध इत्यत आह, 'लिङ्गेति तस्यान्यस्य वा लिङ्गत्वभ्रमदशायामित्यर्थः।

उक्ताद्युक्त्या लक्षणान्तरमाह, 'यद्वेति, तत्त्वज्ञात्र तद्वर्त्तमानत्वं विवक्षितमतो न सत्प्रतिपक्षोत्तीर्णेऽतिप्रसङ्गः, न हि पूर्व्वमेवासावपि

धकत्वं, तथाहीदानीमिदमनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकरूपवदनैकान्तिकादित्वात् ज्ञानवत् अनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकञ्च रूपं ज्ञाने विषयतयानैकान्तिकादित्वमेव । न च साध्याविशेषः, उपाधिविशेषस्यानुमेयत्वात् तोयत्वेन पिपासोपशमनसमर्थतावच्छेदकरूपपरत्वानुमानवत् ।

---

स्वज्ञानदशायामित्यस्ति, अतएव वर्त्तमानत्वस्य तदवच्छिन्नत्वरूपस्य सार्व्वत्रिकत्वाद्विरुद्धत्वादित्यादौ न व्यर्थविशेषणतेति भावः ।

केचित्तु नात्र व्यर्थविशेषणता व्याप्तेरुभयगृहीततया व्याप्तिग्राहकसामग्रीसम्पादनाय हेतुत्वनुपन्यासादपि तु समयबन्धादुपन्यस्तस्य हेतुत्वप्रतिपादनाय तद्व्याप्यतानवच्छेदकस्य विशेषणस्य प्रवेशेऽपि नक्षतिः, प्रतिबन्धप्रयोजकतयोपन्यस्तस्य विशिष्टस्योभयसिद्धव्याप्तिकस्य पञ्चम्या हेतुत्वाभिधानादित्यपि वदन्ति ।

ननु व्यभिचारित्वादि न प्रतिबन्धकतावच्छेदकं तत्सत्त्वेऽप्यप्रतिबन्धादित्यत आह, 'अनुमितीति, तथाचानुमितिप्रतिबन्धकज्ञानविषयतावच्छेदकत्वमसाधकत्वमिति पर्य्यवसितोऽर्थः । ननु साध्याप्रसिद्धावव्यापकमिदमिति चेत्, न, आद्ये स्वज्ञानदशायामिति विशेषणदानादेव तदसङ्ग्राह्यत्वलाभात्, अन्त्येऽपि न पदार्थरूपसाध्यस्याप्रसिद्धिः जवगड़दशादिवन्निरर्थकत्वात् किन्तु वाक्यार्थरूपसाध्याप्रसिद्धिर्व्याच्या तथाच साध्यज्ञानस्य प्रकृतहेतुनिष्ठव्याप्तिप्रतियोगिकत्वाप्रकारकत्वमनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदको धर्म्मः स चात्रा-

अन्ये त्वनैकान्तिक-बाधित-विरुद्धेष्वव्याप्यत्वं व्याप्यत्वासिद्धेऽनैकान्तिकत्वं स्वरूपासिद्ध-सत्प्रतिपक्षासाधारणेषु दशाविशेषेऽनुमितिप्रतिबन्धकज्ञानविषयत्वमसाधकत्वं। न चैवमनैकान्तिकोऽसाधक इति सह-प्रयोगानुपपत्तिः, तत्राव्याप्यत्वस्यासाधकशब्दार्थत्वात्, असाधकताननुगमे हेत्वाभासत्वमनुगतमेव यस्य ज्ञानमनुमितिप्रतिबन्धकं तस्य हेत्वाभासत्वादिति(१)।

---

प्रसिद्धावपि साध्यस्य तद्भ्रमे तथा प्रतियोगित्वप्रकारकत्वाभावादुक्तः। वस्तुतः साध्याप्रसिद्धिः प्रत्युक्तमपार्थकं हेत्वाभासानामेवासाधकतासाधकत्वात् अज्ञानरूपासिद्ध्यादीनान्त्वपार्थकत्वं हेत्वर्थान्वययोग्यताविरहनिश्चयात् हेत्वाभासानान्तथात्वेऽप्युपजीव्यतया पृथग्दोषत्वं। न चाज्ञाने किञ्चिदाभासान्तरं तथोपजीव्यमस्ति, अतएव तेषामनाभासत्वे निग्रहान्तरत्वाभावेऽपि कथायामुद्भावनं, अन्यथा अपार्थकाप्रवेशे अन्यत्राप्रवेशे द्वाविंशत्यधिकनिग्रहस्थानानामभावे तदुद्भावनं न स्यादेव। "हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः" इत्यत्रानुक्तसमुच्चय-

---

(१) बाधनिरूपणप्रस्तावे 'अथ हेत्वाभासानामसाधकतासाधकत्वेनेत्यादिना 'तस्य हेत्वाभासत्वादित्यन्तेन सन्दर्भेण मणिकृता हेत्वाभासस्यासाधकतासाधकत्वं व्यवस्थापितं, तादृशमणिकृत्सन्दर्भस्य मथुरानाथकृतव्याख्याया समस्तु मथुरानाथकृतटीकापुस्तकेषु अदर्शनात् तादृशसन्दर्भो मथुरानाथेन न व्याख्यातः अथ वा बहुकालाध्ययनाध्यापनाभावेन मथुरानाथकृततादृशसन्दर्भव्याख्याविभागो विलुप्त इत्यनुमाय जयदेवकृतव्याख्यया सहितः तादृशसन्दर्भो मुद्रित इति।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ [अ]नुमानाख्यद्वितीयखण्डे हेत्वाभासानामसाधकता-साधकत्वनिरूपणं ।

॥०॥समाप्तश्च अनुमानखण्डो बाधान्तः ॥०॥

---

रतया चकारव्याख्यानात् तत्सङ्ग्रहः, अनुक्तप्रकारसमुच्चयार्थत्वेन च व्याख्यानात् । न हि धर्म्म्यैवानुक्तोऽपि तूक्तस्य व्याप्यसिद्ध्यादेरुक्तसाध्यविकलदृष्टान्तादिप्रकारलाभाय चकारकरणात् तदपि [उद्भा]वनाय, तेन व्याप्यसिद्धिवद्दृष्टान्तवैकल्यं तेनैव रूपेणोद्भाव्यत-लभ्यते, तद्वदिहापि साध्याप्रसिद्धिलिङ्गांशज्ञानाद्यपार्थकान्त-साध्याप्रसिद्धत्वादिनैव उद्भाव्यं न त्वन्यथेति सर्व्वं समञ्जसं । गतसम्भवेऽननुगतं हेयमित्यरुचिं सन्सिद्धत्याह, 'अन्येत्विति ।

श्रीजयदेवमिश्रविरचितः हेत्वाभासानामसाधकतासाध-निरूपणालोकः ।

समाप्ता बाधान्तानुमानखण्डटिप्पनी ।